080498

080498

080498

सचित्र आयुर्वेद

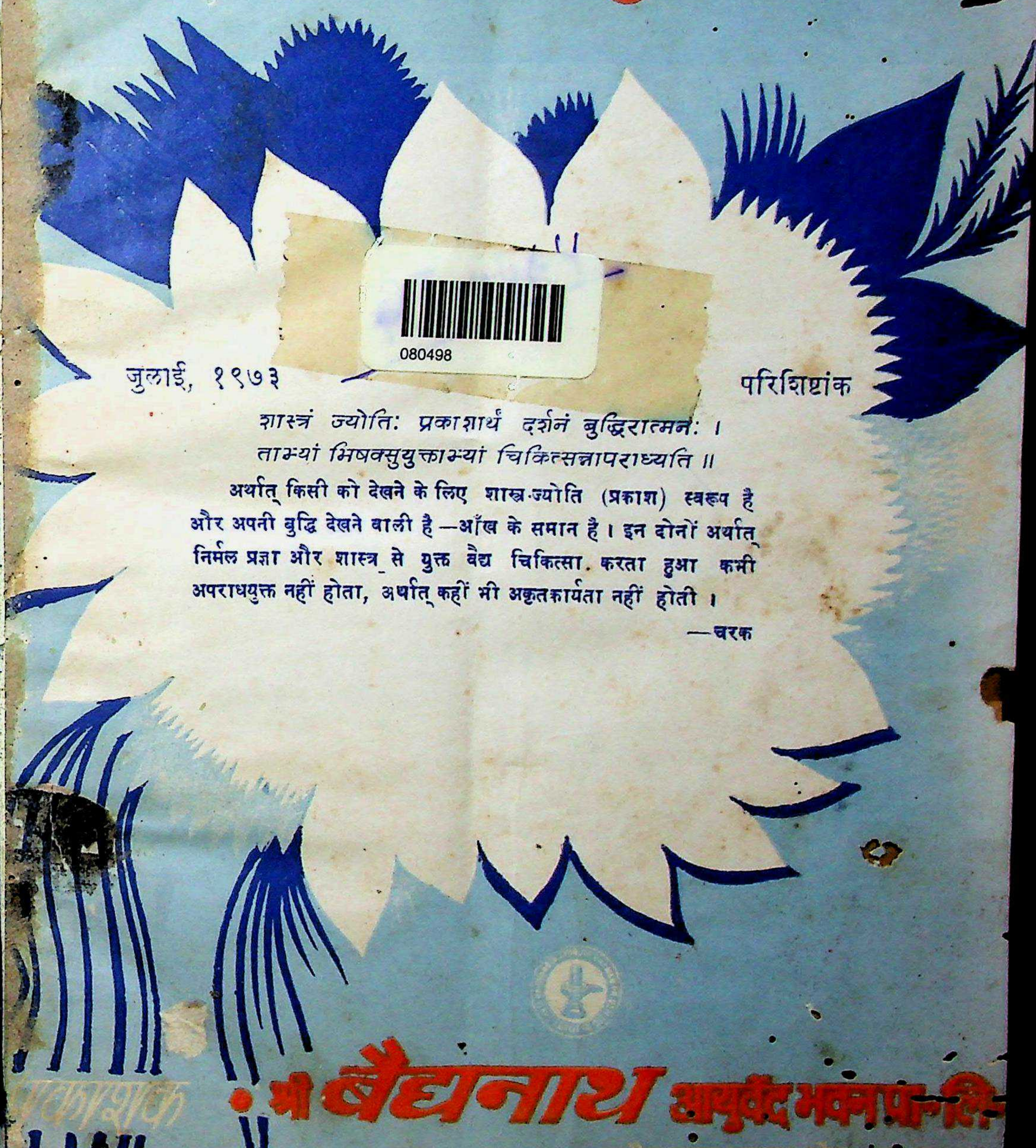

080498

जुलाई, १९७३

परिशिष्टांक

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यां भिषक्सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थात् किसी को देखने के लिए शास्त्र-ज्योति (प्रकाश) स्वरूप है और अपनी बुद्धि देखने वाली है—आँख के समान है। इन दोनों अर्थात् निर्मल प्रज्ञा और शास्त्र से युक्त वैद्य चिकित्सा करता हुआ कभी अपराधयुक्त नहीं होता, अर्थात् कहीं भी अकृतकार्यता नहीं होती।

—चरक

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना

ताकत
ताजगी
एवं
स्फूर्ति के लिए

सुमधुर
टॉनिक
बैद्यनाथ
द्राक्षासव

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

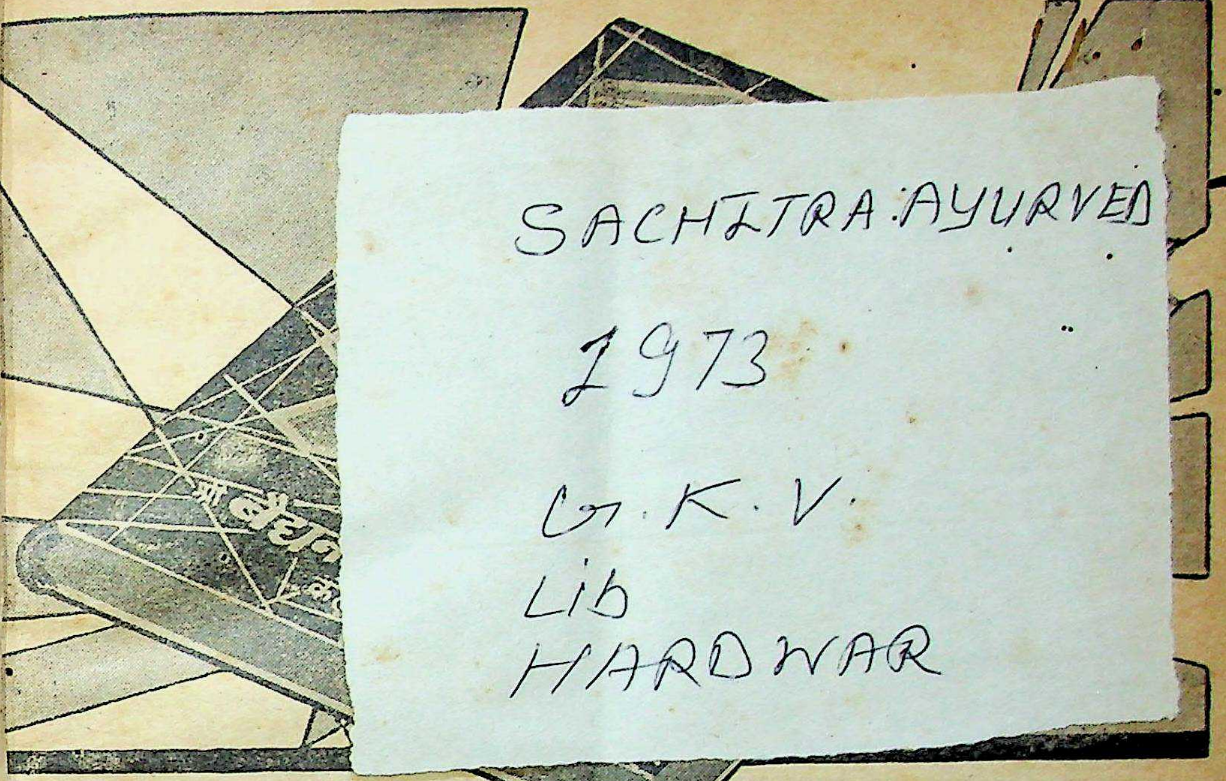

SACHITRA AYURVED
1973
G.K.V.
Lib
HARDWAR

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान के लिए जिस प्रकार भौतिक (Physics), रसायन (Chemistry) शास्त्र की जानकारी आवश्यक है उसी प्रकार 'भारतीय चिकित्सा शास्त्र' को पूर्ण रूप से समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वर्तमान समय में उपलब्ध संहिता-ग्रन्थों में पदार्थ विज्ञान का विषय विविध स्थलों पर विकीर्ण रूपमें प्राप्त होता है। उनका एकत्र संग्रह कर स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में पाठ्यग्रन्थ तैयार करने की प्रयोजनीयता सदा अनुभव की जाती रही है।

वैद्य श्री रणजित राय देसाई, आयुर्वेदालंकार ने 'आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान' ग्रन्थ लिखकर अत्यन्त समयोचित कार्य किया है। पदार्थ विज्ञान को यथावत् समझने के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग अध्ययन और अध्यापन में अध्यापक, विद्यार्थी और वैद्यजन करें, ऐसा मेरा अनुरोध है।

—वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

बैद्यनाथ
प्रकाशन

कलकत्ता-६, पटना कार्यालयः बैद्यनाथभ [illegible]

संरक्षक :

आयुर्वेद-चक्रवर्ती आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

परामर्शदाता :

आयुर्वेद-बृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक

संपादक :

श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

विषय सूची

विषय	पृष्ठ	लेखक
यौगिक क्रियाओं से घातक रोगों की चिकित्सा	३	
योग और विज्ञान	४	
सम्पादकीय	५	सम्पादक की कलम से
लघु उद्योग और बिक्री-प्रोत्साहन	६	प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा
आयुर्वेद के शिक्षण में आधुनिक चिकित्सा का स्थान	९	कविराज एस० एन० बोस
आयुर्नेद का पथ्य-अपथ्य विचार एवं आधुनिक मिथ्या आहार-विहार	२०	प्रोफेसर क्रान्तिकृष्ण
उदर	२८	वैद्य रणजित राय देसाई
संशोधन एवं पंचकर्म चिकित्सा का महत्व	३३	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे
रसायन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन	३८	कविराज राजेन्द्रप्रकाश भटनागर
Psychology & Psychiatry in Aurveda	४५	Dr. K. R. Srikant Murthy
ठाकुर बलवन्त सिंह	४८	वैद्य मायाराम उनियाल शास्त्री
सामयिक चर्चाएँ	५०	
पाठकों के पत्र	५३	
आयुर्वेद जगत	५४	

वार्षिक मूल्य ५ रु०]   [एक प्रति ५० पै

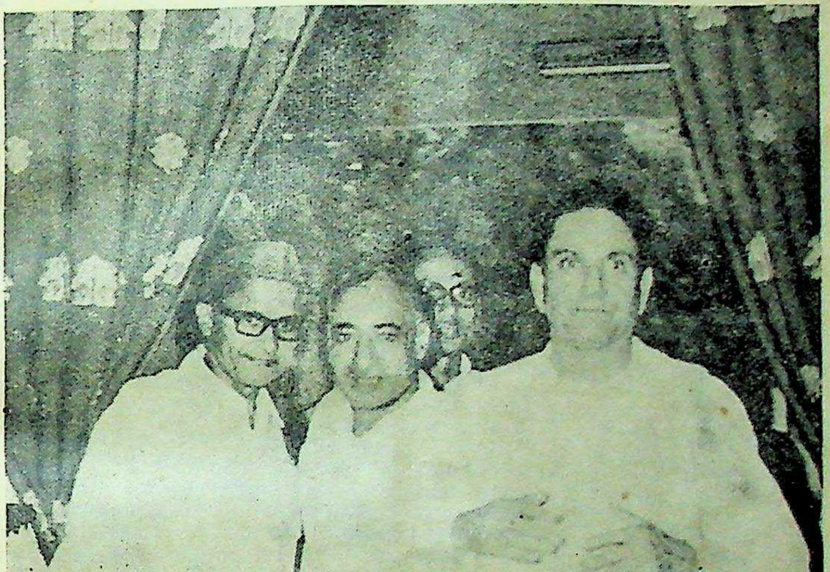

जोशी स्मृति-ग्रंथ-विमोचन-समारोह के अवसर पर साहू जैन हाल के मुख्य द्वार पर लिया गया एक चित्र। चित्र में भू० पू० मुख्य मंत्री श्री केदार पांडेय, बैद्यनाथ के निदेशक पं० दुर्गा प्र० शर्मा एवं बैद्यनाथ के उप-व्यवस्थापक श्री महेश्वर जी मिश्र प्रसन्न मुद्रा में दिख रहे हैं।

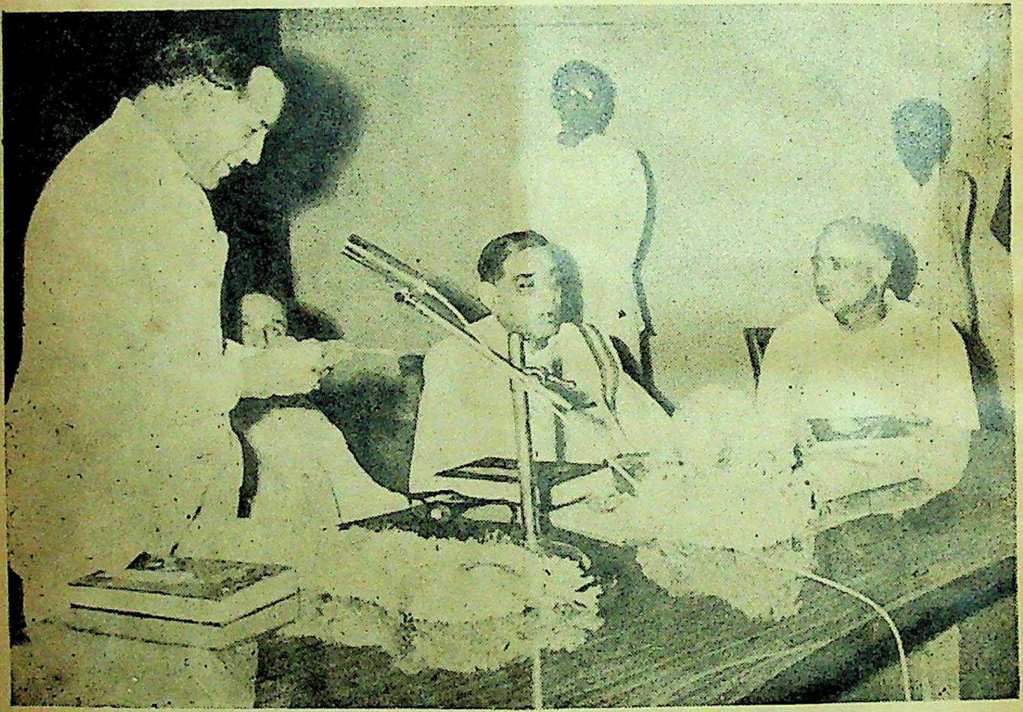

जोशी स्मृति-ग्रंथ-विमोचन-समारोह का एक दूसरा दृश्य। चित्र में समारोह के अध्यक्ष, बिहार के प्रथम लोकायुक्त श्री श्रीधर वासुदेव सोहनी, आई० सी० एस० अध्यक्षीय भाषण दे रहे हैं। सामने श्री दिनकर तथा प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्र० शर्मा गम्भीर मुद्रा में दिख रहे हैं।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामायमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष २६ | पटना, जुलाई, १९७३ : परिशिष्टांक | अंक— १

यौगिक क्रियाओं से घातक रोगों की चिकित्सा

प्रेस ट्रस्ट की एक रिपोर्ट के अनुसार न्यूयार्क स्थित मिनीगंर फाउण्डेशन के सलाहकार व. विशेषज्ञ डा० राम ने बताया कि कैंसर, लकवा तथा हृदयरोग जैसी घातक बीमारियों की योग-पद्धति से आसानी से चिकित्सा हो सकती है। डा० राम ने पुनः बताया कि ऐसी सभी व्याधियां मस्तिष्क एवं श्वास क्रिया तथा फेफड़ों की क्रिया को नियंत्रित कर तथा विभिन्न ग्रन्थि-व्यवस्थाओं के नियमन से ठीक की जा सकती हैं। डा० राम के अनुसार इन व्याधियों का मूल कारण "शारीरिक तथा मानसिक प्रक्रिया में एकाग्रता का अभाव" ही हैं। आपने पुन. बताया कि गत दो वर्षों में यौगिक क्रियाओं के जरिए न्यूयार्क पुनर्वास-केन्द्र में कैंसर के नौ तथा लकवे के करीब सात सौ रोगियों की चिकित्सा की गयी और वे बिल्कुल अच्छे हो गए।

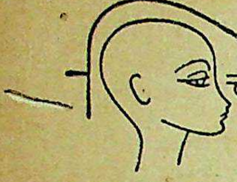

चिन्तन के क्षणों में

योग और विज्ञान

योग विद्या भारत का ऐसा महान दाय है कि उस पर भारत उचित रूप से गर्व कर सकता है। पर अतीत में उस पर जिस प्रकार रहस्य का आवरण पड़ा रहा है, उसके कारण उसका जन-सामान्य में प्रचार नहीं हो पाया। शायद भारतवासी अब भी अपने इस महान दाय के प्रति उतने जागरुक न होते यदि विदेशों ने रुचि लेनी प्रारंभ न की होती। अब भी योगविद्या के प्रति जितनी जिज्ञासा विदेशियों में है, उतनी कदाचित भारतवासियों में नहीं।

जिस चीज का मूल्य बढ़ने लगता है उसमें मिलावट भी प्रारम्भ हो जाती है। कभी-कभी नकल इतनी खूबसूरत होती है कि वह असल को भी मात कर देती है। योग के साथ भी यह बात प्रारम्भ हो गयी है। पर नकल के डर से असल की उपयोगिता को क्यों नकारें? योगविद्या के सम्बन्ध में अमित आकर्षण का कारण वे सिद्धियां हैं जिनके सम्बन्ध में प्रायः अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किए जाते हैं। तंत्र विद्या के वर्णित चमत्कार भी प्रकारान्तर से योग के ही चमत्कार हैं। योग के नाम से अन्धविश्वास को भी बहुत प्रश्रय मिला है। इसीलिए वैज्ञानिक मानस अबतक उसके प्रति उदासीन रहा। पर अब वैज्ञानिक दृष्टि से उसके अध्ययन का प्रयत्न किया जा रहा है।

जिस तरह शारीरिक व्याधियों की चिकित्सा के लिए तरह-तरह की "पैथियां" हैं, उसी तरह योग की भी एक पद्धति है। योग का आसनों वाला रूप बहुत कुछ फिजियोथिरैपी से मिलता-जुलता है। शरीर को स्वस्थ और मन को सन्तुलित रखने के लिए योग से अधिक सरल, व्ययहीन और लाभकारी कोई पद्धति नहीं। फिर जिस तरह अन्य पैथियों को सरकार प्रोत्साहित करती है, उसी तरह इस पद्धति को क्यों नहीं प्रोत्साहन देती? क्यों न इसे शिक्षा का आवश्यक अंग बनाया जाए। वैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् इस विद्या के भी मानक स्थापित किए जा सकते हैं और इसके शिक्षण-प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जा सकती है। अब तो अंतरिक्ष अनुसंधान में भी योग की भूमिका पर विचार किया जा रहा है। निस्सन्देह यदि भारत ने अपनी इस महान थाती की सुरक्षा और उसके विकास पर उचित ध्यान नहीं दिया तो यह विद्या भी विदेश से ही सीखने की नौबत आ सकती है।

सम्पादकीय

विश्व आयुर्वेद-संघ : एक सुखद कल्पना

आयुर्वेद जगत के सर्वमान्य नेता एवं भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् (सेण्ट्रल कौंसिल आफ इंडियन मेडिसिन) के अध्यक्ष पं० शिव शर्मा ने, जो हाल ही में आस्ट्रेलिया, एवं विभिन्न पूर्वीय देशों की मासव्यापी यात्रा से भारत लौटे हैं, एक वक्तव्य में बताया कि कुछ देशों में लोगों ने इस आशय का मंतव्य व्यक्त किया कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन) के ढंग पर देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रतिनिधियों के एक विश्व संघ की स्थापना की जानी चाहिए । आपने आगे बताया कि जहां तक आस्ट्रेलिया, जापान तथा चीन आदि देशों का संबंध है, ये देश इसकी स्थापना में पर्याप्त अभिरूचि रखते हैं । इतना ही नहीं, आस्ट्रेलिया की सरकार आस्ट्रेलिया में उपलब्ध वनौषधियों के सर्वेक्षण की दिशा में भी प्रयत्नशील है और इस कार्यके लिए किसी भारतीय वैज्ञानिक की सेवाएँ भी उपलब्ध करने के लिए उत्सुक है ।

महाराष्ट्र के शिक्षा-मंत्री प्रोफेसर नामजोशी ने भी एक वक्तव्य में कहा है कि देशी चिकित्सा-पद्धति (आयुर्वेद) के अनुसंधानार्थ भारत के विभिन्न स्थानों में स्थापित अनुसंधान इकाइयों (रिसर्च यूनिट) के लिए सैकड़ों की संख्या में शोध-कर्त्ताओं की अतीव आवश्यकता महसूस की जा रही है । श्री नामजोशी महोदय एवं श्री शिव शर्मा के उपर्युक्त विचारों से कोई भी आयुर्वेद-प्रेमी असहमत नहीं होगा ।

पिछले डेढ़ दशकों में आयुर्वेद के सर्वाङ्गीण पुनरूज्जीवन के लिए शतधा प्रयास होते रहे हैं और फलस्वरुप आज हमारी यह स्थिति बन सकी है कि आयुर्वेद विकास के सम्बन्ध में न केवल राष्ट्रीय अपितु जागतिक पैमाने पर सुधीजनों द्वारा गंभीर विचार-विमर्श होना शुरू हुआ है । निःसंदेह आयुर्वेद हित में यह शुभ लक्षण ही कहा जायगा । विश्व स्वास्थ्य संघ के ढंग का आयुर्वेद का भी एक विश्व मंच बने, इसकी कल्पना सुखद तो है ही, आयुर्वेद-प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उपयोगी भी है । कोई भी विज्ञान क्षेत्रीय तो क्या एकदेशीय भी नहीं होता-वह विश्वजनीन होता है । आयुर्वेद भी एक विज्ञान है-और इस नाते इसकी सीमाओं का विस्तार होना ही है—पहले से भी आयुर्वेद भारत की सीमा के पार अपनी गुणवत्ता के बल पर अपना वर्चस्व स्थापित कर चुका था—फिर कोई कारण नहीं कि आज के संचार-साधन-सम्पन्न युग में क्योंकर आयुर्वेद भारत तक ही सिमट कर रह सके ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि कुछ दिनों पूर्व अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के पटियाला अधिवेशन में भण्डारनायक आयुर्वेद शोध-संस्थान के अवकाशप्राप्त निदेशक और पं० रामदयाल जोशी स्मारक शोध-संस्थान के वर्त्तमान निदेशक आचार्य रामरक्ष जी पाठक ने एशियाई देशों के आयुर्वेद-सेवियों का एक मंच स्थापित करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसका जोरदार समर्थन भी हुआ । बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक एवं अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महामंत्री, आयुर्वेद चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा भी अपने हृदय में एशियाई देशों के आयुर्वेदीय संगठन की कल्पना बहुत दिनों से संजोए हुए हैं और तदर्थ श्री शर्मा जी एशियाई देशों यथा श्रीलंका, जापान, नेपाल एव सुदूर पूर्व के देशों की कई बार यात्राएँ भी कर आए हैं और एशियाई देशों के आयुर्वेद-सेवियों का एक मंच बने, उसके लिए सतत् प्रयासी रहे हैं-आयुर्वेद हित में ऐसे प्रयास सदैव वांछनीय एवं प्रशस्त ही कहे जायेंगे । श्रीयुत् शिव शर्मा की विदेश यात्रा निश्चय ही आयुर्वेद के संदेश को भारतेतर देशों में पहुँचाने में फलवती साबित हुई-ऐसी आशा करनी चाहिए । आयुर्वेद के बद्ध द्वार अब मुक्त हो रहे हैं और विश्व के प्रकाश में वह पुनः आलोकित होने जा रहा है-यह प्रत्येक आयुर्वेद-प्रेमी के लिए संतोष एवं प्रसन्नता का विषय है ।

लघु उद्योग और बिक्री प्रोत्साहन

प्राणाचार्य पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा,
आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेदाचार्य
अध्यक्ष—बिहार चेम्बर आफ कामर्स

आज का युग उद्योग-धन्धे का युग है। किसी भी देश की उन्नति वहां के उद्योग-धन्धे पर ही निर्भर है और उद्योग-धन्धे में अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काम नहीं लिया जाय, तो उत्पादक के लिए बाजार में माल की खपत एक चुनौती बन जाती है, और उद्योग के मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसी कठिनाइयाँ जिनका कोई निदान नहीं। ऐसे हालात का मुकाबला करने के लिए सरकार जहां एक तरफ बड़े-बड़े कल-कारखानों के निर्माण में भरपूर सहयोग देती रही, वहीं दूसरी तरफ लघु उद्योग को भी काफी प्रोत्साहित तथा आवश्यकतानुसार मदद करती रही, जिससे बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास हो सके और देश-विदेश के बाजार में क्वालिटी का माल आपूर्ति किया जा सके। १९६०-६१ से ही देश में लघु-उद्योग प्रगति के मार्ग में है किन्तु १९६५-६६ के बाद इस क्षेत्र में हुई प्रगति विशेष उल्लेखनीय है। पहले जहां इस उद्योग में कुल ५८ लाख व्यक्ति काम कर रहे थे, वहां पांच वर्षों में ६५ लाख से भी अधिक लोगों को रोजगार मिला। वैसे इधर के आंकड़े के अनुसार काफी प्रगति हुई है। सन् १९६६ में उद्योग के महानिदेशालय में एक लाख इक्कीस हजार ६१६ कारखाने रजिस्टर्ड हुए थे, जो १९७० के अन्त तक एक लाख नब्बे हजार सात सौ सताइस हो गये। इस तरह प्रति वर्ष की दर से १७,००० कारखानों की वृद्धि हुई। सन् १९६९-७० के आंकड़े के अनुसार छोटे कारखानों में ३६ अरब ७० करोड़ रुपये का माल तैयार हुआ। ऐसी प्रगति से जाहिर है कि हमारे देश का भविष्य लघु उद्योगों से संवारा जा सकता है। एक तरफ बेरोजगारी की समस्या हल हो रही है तथा दूसरी तरफ देश स्वावलम्बी होने लगा है। आयात-निर्यात के आँकड़े को देखकर बताया जाता है कि आज औद्योगिक क्रांति के बल पर देश कहाँ से कहां पहुँच गया है। इस तरह सरकार की सहायता से आज लघु उद्योग का भविष्य काफी उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है।

इधर कुछ वस्तुओं का उत्पादन छोटे उद्योगों के लिए सुरक्षित कर दिया गया है ताकि इनके मार्ग में बड़े उद्योग रोड़ा न बनें। इनमें अनेक तरह की चीजें हैं। आधुनिक उपभोगी वस्तुओं के साथ-साथ मशीन आदि भी शामिल हैं, क्योंकि सरकार को इस बात का इत्मीनान हो गया है कि लघु उद्योग अच्छे स्तर की सामग्री उत्पादन करने में अब समर्थ हैं। बैंक तथा अन्य संस्थाओं से मिलनेवाली आर्थिक सहायता से लघु उद्योग को इधर काफी सहायता मिली है। सन् १९६६ के अन्त तक स्टेट बैंक तथा अन्य बैंकों ने छोटे कारखानों को कुल ९० करोड़ ७६ लाख रुपये के ऋण दिये थे किन्तु बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण और फिर उनके राष्ट्रीयकरण के बाद अब कल-कारखानों को मिलनेवाले ऋणों में काफी वृद्धि हुई है। मैंने पिछले १९७० के आंकड़े देखे थे, जिनमें लघु उद्योगों को दिये गए ऋण की राशि ३ अरब, ९५ करोड़ ८९ लाख रुपये हो गयी थी जबकि इधर मैंने बिहार चेम्बर आफ कामर्स के माध्यम से आज से दो माह पूर्व करोड़ों रुपये ऋण दिये जाने की सिफारिश की है। फिलहाल जिसमें काफी प्रगति दिखायी दे रही है। इस दिशा में बिहार में अब भी बहुत-ऐसे इलाके खाली हैं, जहाँ लघु उद्योग की काफी गुंजाइश है तब सवाल है कि लघु उद्योग आज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कहाँ तक समर्थ है? मैं समझता हूं कि पिछले एक दशक में लघु उद्योग ने देश की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा बेरोजगारी दूर करने में आदर्श भूमिका निभायी है, जो स्तुत्य है। थोड़ी पूंजी द्वारा लाखों रुपया कमाने का यह तरीका वैसे तो सराहनीय है। लेकिन कोई भी उद्योग शुरू करने से पहले कुछेक ऐसी आवश्यक बातें हैं, जिन पर

विशेष ध्यान देना चाहिए; जैसे मान लिया जाय कि अलमोनियम का सल्फेट निर्माण करना है तो इस धातु के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी कर लेने से सहूलियत होगी। उसे पता करना चाहिए कि अलमोनियम की रेट क्या है? यह आयात तो नहीं होता? इसके मूल स्रोत कैसे हैं? सस्ता से सस्ता कहां मिलेगी? बीस किलो अलमोनियम से कितना सल्फेट बनेगा? सल्फेट का फिलहाल थोक या रिटेल भाव क्या है? प्रति किलो सल्फेट तैयार करने में क्या खर्च आता है? प्रति किलो क्या बचत होती है? अपने देश में इसकी मांग कैसी है? खपत के कौन-कौन से क्षेत्र हैं? जगह तथा उपकरणों आदि पर क्या खर्च आयेगा? कुल लागत कितनी चाहिए? इसके निर्माण में क्या-क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी तथा दूसरी कम्पनियाँ इसे किस रेट में बेचती हैं? वगैरह-वगैरह। इतनी जानकारी किये बगैर यदि आप ने उद्योग शुरू कर दिया तो आपका भविष्य हमेशा अंधकार में रहेगा, क्योंकि सब मिलाकर आपको ४० प्र० लाभ चाहिए अन्यथा इसमें आपको घाटा ही हाथ लगेगा। क्योंकि इसके निर्माण में वेस्टेज, डैमेज तथा पैकेज का खर्च कभी-कभी अनुमान से ज्यादा हो जाता है जिससे औसत आय की जगह घाटा लगने की संभावना हो जाती है।

जहाँ तक लघु उद्योग से उत्पादित वस्तुओं की बिक्री का सवाल है, इसके लिए आज प्रोत्साहन की सख्त जरूरत है क्योंकि जबतक माल की खपत नहीं होगी, तबतक उत्पादक के मन में उत्साह की सर्वथा कमी रहेगी। उसका मनोबल कमजोर पड़ जायगा। ऐसी स्थिति में लघु उद्योग समुचित विकास नहीं कर सकेगा। अस्तु,

कतिपय ऐसे मनोवैज्ञानिक सूत्र हैं जिनके प्रयोग से एक हद तक बिक्री की गति में तेजी लायी जा सकती है। बिक्रेता की भूमिका सभी नहीं निभा सकते, उसके लिए एक खास तरह की कला अनिवार्य है। आज ग्राहक को जितनी सुविधाएँ उपलब्ध हैं शायद इसके पहले उतनी कभी न थीं। इसलिए प्रत्येक बिक्रेता को ग्राहकों के साथ सही ढंग से पेश आने की तमीज होनी चाहिए। बिक्रेता को अपने आपको केवल नियोजकों का ही कर्मचारी मात्र नहीं समझना चाहिए, वरन जनता का सेवक भी समझना चाहिए, क्योंकि वस्तुतः उसका नियोजक जनता ही है। ग्राहकों को वह वस्तु कभी नहीं देनी चाहिए जो उसकी आवश्यकता की पूर्ति न कर सके। अपना गला छुड़ाने के लिए अपनी खराब सामग्री दूसरों के गले एकबार आप मढ़ सकते हैं किन्तु वह ग्राहक आपके हाथ से सदा के लिए छूट जाएगा, जिससे आपको स्थायी लाभ होता। बिक्रेता को अपना कार्य शीघ्रता से करने की आदत डालनी चाहिए, क्योंकि ग्राहक बड़ी तेजी से आते हैं और सामान लेकर जाना चाहते हैं। थोड़ी-सी आपने ढ़िलाई की कि ग्राहक की खरीद-सूची सिमट जाएगी। ऐसी स्थिति में बिक्रेता को विशेष ख्याल रखने की जरूरत होती है और यह तभी संभव है, जब नियोजक बिक्रेता की योग्यता को ध्यान में रखकर उसकी नियुक्ति करे। मनोवैज्ञानिक का कहना है कि-किसी भी बिक्रेता के लिए निम्नलिखित गुण अनिवार्य है :-

(क) **प्रसन्नता**—बिक्रेता को प्रसन्न मुख होना अनिवार्य है, क्योंकि आज सभी खरीदार हंसमुख बिक्रेता पसन्द करते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि ग्राहक उस बिक्रेता को तलाशने की कोशिश करता है, जो पहले उसके साथ अच्छा सलूक किये होता है।

(ख) **नम्रता**—विक्रेता को हर ग्राहक के साथ विनम्रता के साथ पेश आना चाहिए और नम्रता तभी संभव है, जब इसका अभ्यास किया जाय। अपने सहयोगियों से लेकर ग्राहकों के साथ विनम्र व्यवहार रखने से बिक्री में वृद्धि होती है।

(ग) **आत्म-नियंत्रण**—बिक्रेता को आत्म-नियंत्रण रखना चाहिए। कभी-कभी ऐसा नहीं होने से ग्राहक से हाथ धोता ही है नियोजक की लागत पूंजी भी खत्म कर देता है। अतः बिक्रेता के लिए आत्म-नियंत्रण अनिवार्य है।

(घ) **सत्यता**—बिक्रेता को सत्यभाषी होना चाहिए। बढ़ा-चढ़ाकर कभी भी बातें नहीं करनी चाहिए। ग्राहक से बढ़ा कर बात करने का अर्थ है धोखा देना। असलियत सामने रखकर यदि बिक्रेता ग्राहक से कुछ अधिक मूल्य भी ले ले तो बुरा नहीं लगता लेकिन असत्य बोलकर लेने से धन्धा में गिरावट आने देर नहीं लगती।

(च) **सामाजिकता**—बिक्रेता को सामाजिक ज्ञान होना चाहिए। इसके अभाव में वह ग्राहकों के साथ अ

व्यवहार नहीं कर सकता और सामाजिक ज्ञान नहीं होने से वह ग्राहकों से वंचित रह जाता है ।

(छ) **समय की पाबन्दी**—बिक्रेता के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है । उसे समय की पाबन्दी रखनी चाहिए । बिक्रेता को अपने पहरे जगह पर रहना चाहिए । ग्राहक आए न आए अलग बात है । ग्राहक के समय का मूल्य होता है, वह अपने अन्य कार्यों को छोड़ कर क्रय हेतु दूर से आता है । अत; बिक्रेता को समय से सेवा देने की आदत डालनी चाहिए । समय पर उसे दूकान में प्रवेश करना चाहिए । जितना तत्पर वह घर जाने के लिए रहता है, उतना ही तत्पर होकर उसे अपनी दूकान पर भी जाने की चेष्टा करनी चाहिए ।

(ज) **प्रयत्न सातत्य**—इससे मेरा मतलब निरन्तर प्रयत्न से है । दुनिया में कोई ऐसा कार्य नहीं जो सम्पन्न न हो । बशर्ते उसके लिए आप में सामर्थ्य हो । प्रयत्न करने से असम्भव कार्य भी संभव हो जाता है । अतः बिक्रेता को सातत्य प्रयत्न से बाज नहीं आना चाहिए ।

(झ) **कुशल व्यवहार**—बिक्रेता की यह सबसे अनिवार्य योग्यता है । वह अपने कुशल व्यवहार से ग्राहक को इस तरह गिरफ्त कर लेता है कि वह सदा-सदा के लिए उसका ग्राहक बन बैठता है । धैर्य, अच्छा निर्णय, कल्पना, विचार और मधुर वाणी । ये ऐसे गुण हैं, जिनसे ग्राहक मुग्ध हो जाते हैं । कभी-कभी तो आँख मूंद कर अपना थैला उठाये चले जाते हैं । इसे बिक्रेता की व्यवहार-कुशलता कही जाएगी ।

(ट) **उद्देश्य-निष्ठता**—का अर्थ सत्यता में अन्तर्निहित है । बिक्रेता को अपनी वस्तु के विषय में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, ताकि वह अपने ग्राहक को भली-भांति समझा सके । इसके अभाव में बिक्रेता बयान करते-करते कुछ ऐसी बहकी-बहकी बातें कर बैठता है जिसका सम्बन्ध उस वस्तु से तनिक भी नहीं होता । अतः बिक्रेता को अपनी विशेष जानकारी रखनी चाहिए । वर्णन के समय भी अपने सीमित शब्दों से ग्राहक को समझाना चाहिए ऐसा नहीं होने से ग्राहक का वक्त बर्बाद होता है । ऐसी अवस्था में बिक्रेता को संयमित ढंग से काम लेना चाहिए ताकि उसके भाषण से ग्राहक को चिढ़ न हो जाय ।

एक चीनी कहावत है —एक प्रदर्शन का मूल्य एक हजार शब्दों से अधिक है । आज विज्ञापन के बल पर लाखों ऐसे प्रतिष्ठान नियामक हैं जो घर बैठे देश-विदेश के बाजारों में माल की खपत कर रहे हैं । अतः विज्ञापन बिक्री के लिए आज वरदान साबित हो रहा है । विज्ञापन अगर सही तरीके से किया जाय, तो इसमें संदेह की कतई गुंजाइश नहीं कि बिक्री में अनुमानित लाभ न हो । इसलिए विज्ञापन के साफ-सुथरे तरीके को इस्तेमाल में अवश्य लाना चाहिए । साथ ही बिक्री प्रोत्साहन के लिए समय-समय पर बिक्रेता के लिए पुरस्कर की व्यवस्था भी होनी चाहिए । पिछले वर्ष मैंने कई ऐसे एशियाई उद्योग-प्रधान देशों का भ्रमण किया जहां बिक्री प्रोत्साहन के नये-नये तरीके देखने को मिले । जापान की हर चीज ऐसे सजा-संवार कर दुकानों में रखी गई हैं कि ग्राहक को अपनी आवश्यक वस्तुओं के चुनाव में तनिक भी असुविधा नहीं होती । पैकेजिंग भी इतना सुन्दर और मनमोहक कि नजर हटाने की तनिक भी इच्छा नहीं होती ।

अन्त में अपनी सरकार से इस संदर्भ में अनुरोध करूंगा कि जहां तक हो सके लघु उद्योग को अधिक से अधिक सहायता करे ताकि देश का भविष्य संवारा जा सके क्योंकि किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का निर्णायक वहां का उद्योग-धंधा ही है ।

(आकाशवाणी पटना से साभार)

बैद्यनाथ
लवन भास्कर चूर्ण
कब्जियत-नाशक और अग्नि-वर्धक सुस्वादु चूर्ण

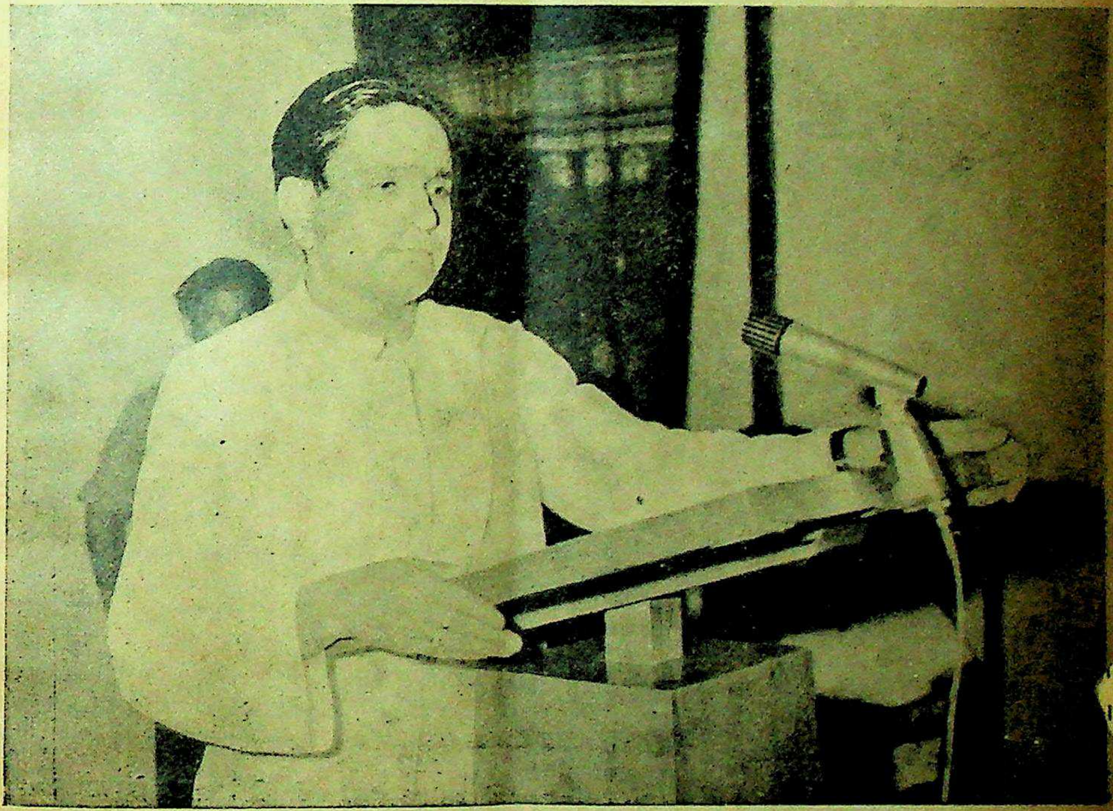

जोशी स्मृति-ग्रंथ-विमोचन-समारोह के अवसर पर भू० पू० मुख्य मंत्री श्री पांडेय ग्रंथ-विमोचनोत्तर स्व० जोशी जी को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

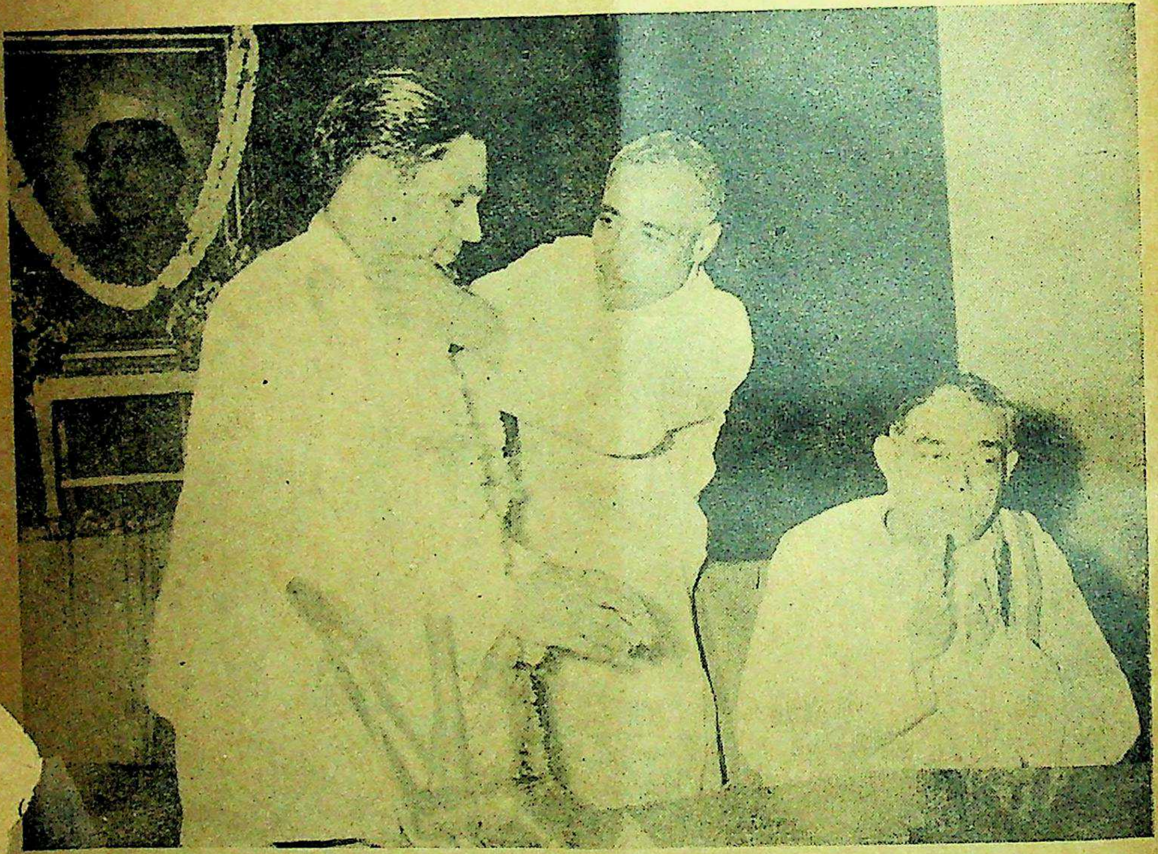

जोशी स्मृति-ग्रंथ-विमोचन-समारोह में ग्रंथ के विमोचनकर्त्ता भू० पू० मुख्य मंत्री श्री केदार पांडेय को पं० दुर्गा प्र० शर्मा माल्यदान कर रहे हैं—पार्श्व में श्री दिनकर करतलध्वनि द्वारा हर्ष प्रकट कर रहे हैं।

आयुर्वेद के शिक्षण में आधुनिक चिकित्सा का स्थान

(२)

कविराज एस० एन० बोस

अशुद्ध आयुर्वेद क्या है !

आयुर्वेद-शास्त्र के साथ पाश्चात्य चिकित्सा के संमिश्रण से अशुद्ध आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई। आयुर्वेद के छात्रों के साथ ही साथ पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना, उनके द्वारा चिकित्सा-क्षेत्र में प्रयोजनानुसार आधुनिक औषधियों का उपयोग करना, इससे आयुर्वेद अशुद्ध हो रहा है; यही शुद्ध आयुर्वेद-सेवियों का कहना है। इसका सूत्रपात कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ आलोचना करनी चाहिए ताकि रोग का निदान स्पष्ट हो जाय !

१९वीं शताब्दी के अन्तिमार्द्ध में महानगरी कलकत्ते के प्रख्यात तथा विशिष्ट विद्वान वैद्यों के मन में उपलब्ध आयुर्वेद-शास्त्र में कुछ कमियों का अनुभव हुआ। दूसरे प्रान्तों में भी वैद्यों के मन में यह अनुभूति अवश्य हुई होगी, क्योंकि अशुद्ध आयुर्वेद तो आज सारे भारत में ही परिव्याप्त है। वंग देश में जन्म लेने के कारण मुझे वहाँ के इतिहास का कुछ विशेष ज्ञान होना स्वाभाविक है। उन प्रतिष्ठित वैद्यों ने देखा कि आयुर्वेदशास्त्र जिस रूप में उन्हें प्राप्त हुआ है, उससे चिकित्सा-क्षेत्र में परम आवश्यक शरीर - रचना-सम्बन्धी ज्ञान पूर्णरूप से प्राप्त नहीं हो सकता है। आयुर्वेद के अनेक ग्रथ विभिन्न कारणों से लुप्त हैं। जिससे प्रत्यक्ष दर्शनमूलक ज्ञान का विशेष अभाव है। आयुर्वेद-शास्त्र में उपलब्ध शल्य-शालाक्य तथा प्रसूतितन्त्र-सम्बन्धी ज्ञान भी नहीं के बराबर है। शास्त्र में जीवक की शस्त्र-कर्म निपुणता, सुश्रुत संहिता के चिकित्सा स्थान चतुर्दश अध्याय में वर्णित अस्त्रों में शस्त्रकर्म, सुश्रुत संहिता, निदान स्थान अष्टम अध्याय में वर्णित मूढगर्भ - निष्कासन तथा आयुर्वेद शास्त्र-वर्णित प्लास्टिक सर्जरी आदि रहने पर भी आज के आयुर्वेदीय चिकित्सकों की उन सब शस्त्र प्रक्रियाओं में अज्ञता तथा अक्षमता भोजराज (खृः पश्चात् ९२७ अब्द) के मस्तक में शस्त्र क्रिया तथा उसके पूर्व क्रिया के रूप में सम्मोहनी तथा पश्चात् कर्म के रूप में संजीवनी का प्रयोग आदि की संविहासिकता आदि उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करने लगा। वे आयुर्वेद के इन लुप्तांगों के पुनरुद्धार के लिए उपाय खोजने लगे। वह समय अंग्रेज शासन का प्रथम शताब्दी का अन्तिम भाग था। जिस समय पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र का प्रचार हमारे देश में होने लगा था, उन वैद्यों ने देखा, कि पाश्चात्य चिकित्सक शवच्छेद के द्वारा शरीर-रचना-विषयक ज्ञान को भलिभांति प्राप्त करते रहते हैं। यद्यपि हमारे शास्त्र में भी शवच्छेद के द्वारा उक्त ज्ञान को प्राप्त करने का विधान था। और शायद प्राचीन काल में कुछ-कुछ होता भी होगा, परन्तु उस समय के वैद्य लोग उससे पूर्णतया अनभिज्ञ थे। शल्यतन्त्र का अध्ययन भी पाश्चात्य चिकित्सा - विज्ञान में पर्याप्त होता था, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे शस्त्रक्रिया के द्वारा साधारण रोगियों तथा स्त्री प्रसूताओं को रोग मुक्त कर सकते थे। परन्तु वैद्य लोग उन विषयों में पूर्णतया अनभिज्ञ थे। उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत अत्यन्त जटिल तथा केवल कुशाग्र बुद्धियुक्त व्यक्तियों के बोधगम्य होने के योग्य है। प्रधानतः यह अनुमान मूलक ही रहा, जिसे सरल तथा अल्पबुद्धि गम्य बनाने के लिए कुछ प्रत्यक्ष दर्शन की भी आवश्यकता है। उन्होंने सोचा कि अगर आयुर्वेद के छात्रों से पाश्चात्य चिकित्सा - विज्ञान की सहायता से उन कमियों का पूरा किया जाय तो शायद आयुर्वेद पुनरपि सम्पूर्ण अष्टांगायुर्वेद के रूप में विश्व के कल्याण में उपयोगी होगा। परन्तु ऐसे आयुर्वेद छात्र बनें कैसे ? उन्होंने सोचा कि इसके लिए यदि प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों चिकित्सा विज्ञान में पठित व्यक्ति ही आयुर्वेद छात्रों के अध्यापन का भार ले तो ही यह पाश्चात्य चिकित्सा

विज्ञान की शिक्षा में प्रणोदित किया और उसके फलस्वरूप कलकत्ते में महामहोपाध्याय गणनाथ सेन, यामिनी भूषण राय, शिवनाथ सेन, मणीन्द्रलाल दास गुप्त, आदि की सृष्टि हुई। ये सभी प्रातःस्मरणीय व्यक्ति पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के सफल स्नातक होने के बावजूद एकनिष्ठ आयुर्वेद व्यवसायी रहे थे और अपने-अपने पितृदेवों के इच्छानुसार आयुर्वेद के पुनरुद्धार में बद्धपरिकर हो उठे। उसी के फलस्वरूप १९१२ खृष्टाब्द में 'अष्टांग आयुर्वेद कालेज' की स्थापना कलकत्ते में हुई। परन्तु बाद में पता लगा कि उससे भी पहले सन् १९०१ में मद्रास में पं० गोपालाचार्लु जी 'मद्रास आयुर्वेद कालेज' की स्थापना कर चुके थे। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि कलकत्ता स्थित विशिष्ट आयुर्वेदसेवियों की चिन्ताधारा मद्रास में प्रवाहित हो चुकी थी और वहां के विशिष्ट वैद्यों के मन में भी आयुर्वेद के पुनरुद्धार की यही कल्पना जागृत हुई थी। अन्यान्य प्रान्तों का तो विशेष पता नहीं है, तो भी लाहौर स्थित दयानन्द आयुर्वेद कालेज भी इनके समसामयिक ही रहा होगा। आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिए कलकत्ता स्थित अष्टांग आयुर्वेद कालेज में किस प्रकार की पठन-पाठन शैली प्रचलित थी, इसका वर्णन मैंने 'सचित्र आयुर्वेद' की अक्टूबर, १९७२ संख्या में 'समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति' शीषक एक निबन्ध में प्रकाशित किया है। जिससे महामहोपाध्याय गणनाथ सेन, यामिनी भूषण राय आदि महानुभावों की आयुर्वेदीय शिक्षा के सम्बन्ध में विचारधारा सुस्पष्ट हो जावेगी।

आयुर्वेद की इस प्रकार शिक्षा को अनुकरणीय समझ कर शासन भी इस ओर प्रभावित हुआ जिसके फलस्वरूप मद्रास में सर्वप्रथम एक कमिटी का निर्माण हुआ जो उसमान कमिटी के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमिटी का निर्माण १०-१०-१९२१ में हुआ था। उस कमिटी का उद्देश्य था—"To report on the question of the recognition and encouragement of the Indigenous systems of medicine in vogue in this presidency (Madras)"—शासन की ओर से यही प्रथम कमिटी गठित हुई थी। इस कमिटी का संक्षिप्त निर्णय इस प्रकार था।

(1) From the stand point of science, the Indian systems are logical and scientific.

(2) In the best interest of science as well as of suffering humanity, it is highly desirable that the followers of Indian Madicine should study the scientific methods of the west and adopt into their system, whatever is useful in western medicine.

रिपोर्ट काफी लम्बी है, परन्तु इस निबन्ध के लिए इतना उल्लेख पर्याप्त हैं। अतः हम देख सकते हैं कि सन् १९२२-२४ में भी इस कमिटी के अशासकीय विद्वान सदस्यों का भी यह स्पष्ट अभिमत था कि आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिए पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त ज्ञान का आत्मसात् करना नितान्त आवश्यक है। उसमान कमिटी की सिफारिशों के अनुसार मद्रास सरकार ने १९२४ में मद्रास में Govt school of Indian Medicine की स्थापना की। केवल मद्रास के कैप्टेन डा० जी० श्रीनिवासमूर्ति तथा डा० लक्ष्मीपति आदि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों का नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान भर के 'शुद्ध आयुर्वेद के महारथियों—जैसे बम्बई के स्वानामधन्य पं० यादव जी त्रिकम जी महाराज, जयपुर के लक्ष्मीराम स्वामी, पूना के पं० कृष्ण शास्त्री कवड़े, अहमदनगर के पं० गंगाधर शास्त्री गुणे, उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद-पंचानन जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आदि का भी समर्थन महामहोपाध्याय जी की आयुर्वेदीय शिक्षा की नवीन पद्धति को मिला। इन्हीं दिनों में महामना मदनमोहन मालवीय जी ने भी इस पद्धति से प्रभावित हो कर आचार्य यादव जी तथा महामहोपाध्याय जी के सहयोग से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद कालेज की प्रतिष्ठा की। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय जी के सुयोग्य शिष्य दयानन्द आयुर्वेद कालेज, लाहौर के आचार्य सुरेन्द्र मोहन, डा० आशानन्द पंचरत्न एम० बी० बी० एस, वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह आदि का भी सहयोगितापूर्ण समर्थन प्राप्त था। शासन इस आन्दोलन से प्रभावित होकर उसमान कमिटी के अतिरिक्त भोर कमिटी, पण्डित कमिटी और १९४६-४८ में प्रख्यात चौपड़ा कमिटी का निर्माण कर आयुर्वेद की उन्नति के लिए यथोपयुक्त मार्ग का अनुसन्धान किया। चोपड़ा कमिटी की सिफारिशं इनमें से सर्वोत्तम एवं यथोपयोगी होने पर भी राजनीतिक कारणों से उन

सिफारिशों को अमल में नहीं लाया गया । फिर से शासन ने जनमत के दबाव में आकर उडुपा कमिटी का निर्माण किया, परन्तु उस समय शुद्ध आयुर्वेद-सेवियों के व्यक्तिगत प्रभाव में आकर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री उस कमिटी की सिफारिशों को भी उपयोग में नहीं लाए एवं व्यास कमिटी के नाम से एक कमिटी का निर्माण किया गया । जिसका पूर्वनियत उद्देश्य था शुद्ध आयुर्वेद का प्रचलन । आयुर्वेद की सही प्रगति में बाधक के रूप से केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रियों के रूप में राजकुमारी अमृत कौर तथा श्री गुलजारी लाल नन्दा के नाम चिरस्मरणीय रहेंगे ! राजकुमारी किसी तरह से भी आयुर्वेद का पुनरुत्थान नहीं चाहती थीं, परन्तु श्री नन्दा ने पं० शिव शर्मा जी के प्रभाव में आकर मिश्र आयुर्वेद का घोर विरोध किया । इसी बीच राजनीतिज्ञों के दबाव में आकर राज्य सरकार तथा कुछ अत्युत्साही जन नेता ने सस्ती लोकप्रियता का लाभ लेने के लिए यत्र-तत्र साधन-विहीन आयुर्वेद कालेजों की स्थापना कर समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति की रातोरात उन्नति का स्वप्न देखा और चारों ओर आयुर्वेद कालेजों का जिसे mushroom growth कहा जाता है, वही हुआ । इसमें उत्तर प्रदेश सबसे अग्रणी रहा । मिश्रित आयुर्वेदीय पद्धति का चिकित्सा-क्रम यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त विकृति विज्ञान के ऊपर अनेकांश में आधारित है, तो भी उनमें आयुर्वेदीय औषधियों का वही विज्ञान-सम्भत प्रयोग किया जाता है । यहाँ कुछ उदाहरण अप्रासांगिक नहीं होगा । आयुर्वेद शास्त्रों में सन्निपात ज्वर के वर्णन उपलब्ध हैं । उसके द्वारा पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र द्वारा वर्णित विभिन्न रोग जैसे—Influenza, lobar & Broncho Pneumonia, pleuriey, Typhoid आदि रोगों का अनुधावन किया जा सकता है । इन रोगों में दोष-दूष्य के अन्दर सम्प्राप्ति व्यक्ति तथा भेद की विभिन्नता के कारण चिकित्सा-क्षेत्र में औषधि-निरुपण में भी सहायता मिलती है । परन्तु आयुर्वेद में जो वर्णन हैं, उस से इन विभिन्नता का सम्यक ज्ञान सरल नहीं होता है । इसके लिए पाश्चत्य चिकित्सा विज्ञान उद्देश्य सिद्धि में विशेष रूप से सहायक हो सकता है इन बातों को ध्यान में रखकर महामहोपाध्याय जी ने सिद्धांत निदान ग्रंथ का प्रणयन किया । और वहां क्रम से उपरोक्त व्याधियों का नवीन नामकरण के साथ-साथ दोष, दूष्य-सम्प्राप्ति व्यक्ति तथा भेद की भी विभिन्नता का वर्णन किया है ।

अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय में उन्होंने तदनुसार हमें प्रत्यक्ष ज्ञान देने के उद्देश्य से वहां के आतुरालय में चिकित्सा-प्रणाली चालू किया, जिससे रोगियों के ऊपर उक्त चिकित्सा-प्रणाली की सफलता देखकर छात्रों को आयुर्वेदीय औषधियों से चिकित्सा करने की प्रेरणा मिले । मैं यहां Pneumonia के महामहोपाध्याय द्वारा प्रचलित चिकित्सा-पद्धति का उदाहरण पाठकों के समक्ष रखना चाहता हूं । ताकि उन्हें पता चले कि समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति किसे कहते हैं । और उससे कैसे विंश-शताब्दी के पाश्चात्य सभ्यता-विमूढ़ जनता में आयुर्वेद का सम्मान अक्षुण्ण रखा जा सकता है । पश्चात्य विज्ञान से यह विदित है । कि Pneumonia में एक या उभय फुसफुस आक्रान्त हो सकता है । और फुसफुसों के अन्दर Cougestion, Red hepatisation, grey hepatisation तथा Resolution, यह चार अवस्था क्रमशः रोगारम्भ से रोगमुक्ति तक आती है । महामहोपाध्याय जी ने सिद्धान्त निदान में प्रत्येक अवस्था के दोष-दूष्यों के सम्बन्ध में विशेष वर्णन किया है । Lobar Pneumonia में ५ से ७-८ दिन के अन्दर अचानक ज्वर-मुक्ति हो कर रोगी का जीवन संशय होता है । आयुर्वेद में भी इसका स्पष्ट वर्णन है । Broncho Pneumonia में उस प्रकार अकस्मात् ज्वर मुक्ति न होकर अधिकतर दीर्घ काल में धीरे-धीरे ज्वरमुक्ति होती है । परन्तु दोनों प्रकार के Pneumonia रोगी को काफी दुर्बल बना देता है । इसी को दृष्टिकोण में रखकर रोग-निर्णय के तुरन्त पश्चात् सन्निपात ज्वराधिकारोक्त वृःकस्तूरी, भैरव २ रत्ती की मात्रा में रोगी की आयु बल आदि के विचार से प्रातः-सायं अथवा प्रातः काल ही पान के रस और शहद के साथ प्रयोग करते थे । परन्तु हमें उक्त अधिकारोक्त स्वल्प कस्तूरी भैरव के सम्बन्ध में मना कर समझते थे कि उसमें वत्सनाभ है । जो कि हृत्पिण्ड में दुर्बलता ला सकता है ! एक तो रोगी दुर्बल, सन्निपात ज्वराक्रान्त, उसके ऊपर किसी तरह से हृत्पिण्ड के दुर्बलता-कारक औषधियों का प्रयोग उचित नहीं है । किन्तु आज हमारे आयुर्वेद कालेजों में इस प्रकार की

शिक्षा दी ही जाती है। सन् १९६३ की बात है, मुझे जियाजी विश्वविद्यालय ने काय चिकित्सा के सैद्धांतिक पत्र का परीक्षक नियुक्त किया था। मेरे प्रश्न - पत्र में एक प्रश्न था, कि स्वल्प तथा वृ:कस्तूरी भैरव, मृगांक-रस, राजं मृगांक तथा महा मृगांक आदि कुछ समनामी औषधियों के प्रयोग क्षेत्र उपादान के आधार पर निर्णय करो—या ऐसा ही कुछ। छात्रों ने शायद शिकायत की, ग्वालियर कालेज ही एक मात्र सम्बद्ध संस्था थी। वहां के अध्यापक ने मुझे लिखा कि, आपका प्रश्न-पत्र अति कठिन है; और यह स्नातक पूर्व कालेज के लिए नहीं—स्नातकोत्तर कालेज के लिए ही उपयुक्त हो सकता है। फलस्वरूप मुझे अगले वर्ष से परीक्षक ही नियुक्त नहीं किया गया। खैर, Pneumonia में प्रथम तथा द्वितीय अवस्था में फुसफुस में काफी रक्त-संचार होता है। और तृतीय अवस्था में कफ का संचय होता है! शुष्क कास से रोगी परेशान होता है, परन्तु कफ निर्गम होता ही नहीं है। उसके स्वाभाविक नियम से कफ ढीला हो जाता है, और कफ निर्गम होने लगता है। इन परिवर्त्तनों को ध्यान में रखकर महामहोपाध्याय जी हमें कासाधिकार के शृंगाराभ्र के साथ नौसादर ३।४ रत्ती मिला कर दिन में दो-बार प्रयोग करने के लिए उपदेश देते थे। अभ्रक फुसफुस का क्षतरोपक है, नौसादर कफ को ढीला करने में सहायक होता है जिससे स्वाभाविक विश्लिष्टावस्था आने में शुरू में ही सहायता पहुँचाई जा सकती है। कास के लिए अष्टांगावलेह उसमें भी कभी-कभी नौसादर मिलाकर शहद के साथ दिन भर थोड़ा-थोड़ा अवलेहन कराया जाता था। श्वसनक सन्निपात याने Pneumonia दौर्बल्यकारक व्याधि है। इसमें रोग विष के निर्हरण के लिए जुलाब देना नहीं चाहिए अथच रोग विषनिर्हरण की कुछ व्यवस्था होनी चाहिए। इसीलिए तृणपंचमूल व गोक्षुर के पेय में मिश्री डालकर एक बोतल में रखा जाता था। और दिन भर में उस बोतल को समाप्त करने के लिए सेवक को आदेश दिया जाता था। साथ ही साथ मूत्रकारक शुभ्र पर्पटी २ रत्ती एवं योगवाही मकरध्वज १ रत्ती मिलाकर उसी पानी से अथवा उदराध्मान रहने पर सौंफ के शीत कषाय के साथ दिन में २ बार दिया जाता था। प्रलाप आदि देखने पर व्रत व्याधि अधिकारोक्त रसराज, रस जटामांसी के शीत कषाय, बड़ी इलाइची चूर्ण व शहद के साथ साथ काल दिया जाता था। इस चिकित्सा से रोगी को काफी लाभ मिलता था। Lobar Pneumonia में सहसा ज्वर मोक्ष होने पर मृत संजीवनी सुरा, मृगमदासव, वृ:कस्तूरी भैरव आदि के अतिरिक्त Strychnine digitatis, stropauthin आदि का सूचीवेध आवश्यकतानुसार दिया था। Lobar Pneumonia में सहसा ज्वर मोक्ष के पश्चात् तथा Broncho-Pneumonia में Resolution अथवा विश्लिष्टावस्था आने के पश्चात् कफ निःसारक नौसादर को बन्द कर उसके स्थान पर क्षतरोपक तथा बलवर्द्धक प्रवाल भस्म शृंगाराभ्र के साथ २ रत्ती श्वसनक सन्निपात के रोगी, अष्टांगायुर्वेद कालेज आतुरालय से स्वस्थ हो कर घर जाते थे। अष्टांगायुर्वेद कालेज में Pneumonia, Broncho Preumonia की चिकित्सा का काफी सम्मान था। उस समय (१९२६-३०) Coromine आदि हृदयोत्तेजक औषधियाँ भी (Antibiotics) उपलब्ध नहीं थीं। हम छात्रों के हृदय में वह चिकित्सा-पद्धति इस प्रकार दृढ़मूल हो गई कि Antibiotics के प्रचलन के पहले हमने बड़े विश्वास के साथ उक्त चिकित्सा-पद्धति को अपना कर जनता की सेवा की। परन्तु आज यह चिकित्सा-पद्धति अचल है यद्यपि उस चिकित्सा-पद्धति पर हमें पूर्ण विश्वास है। आज कोई भी Lobar Pneumonia में सहसा ज्वर-मोक्ष की विपत्ति को स्वीकार करने को तैयार नहीं। कोई नहीं चाहता कि Broncho Pneumonia में २।३ सप्ताह तक शय्याग्रस्त रह कर आर्थिक हानि व मानसिक अशान्ति भोग करे। तो भी हम मिश्रित चिकित्सा पद्धति के स्नातक उपरोक्त चिकित्सा-पद्धति को अपनाते हुए साथ ही साथ Penicillin का प्रयोग कर सकते हैं। इससे जैसे रोग-मुक्ति, त्वरान्वित होती है। और अन्य किसी पाश्चात्य औषधियों की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। परन्तु आज के युग में अगर हमें आधुनिक औषधियों का प्रयोग करने से मना किया जाता है! तो भी हम पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में वर्णित सम्प्राप्ति, व्यक्ति तथा भेद के आधार पर केवल आयुर्वेदीय औषधियों से भी नवीन व्याधियों की चिकित्सा कर सकते हैं। परन्तु यह चिकित्सा समयसापेक्ष है। और आधुनिक Antibiotics, sulpha drugs अथवा chemio Therapy के समान अन्य समय में रोग निवारण कर ही सकती है। किन्तु यह चिकित्सा दूसरे रोगों को

उत्पन्न नहीं करेगी। और न रोगी की रोग प्रतिवेधिका शक्ति को हानि पहुँचाएंगी, यह बात दावे के साथ नहीं कही जा सकती। यहां उसका भी एक उदाहरण मैं देना चाहता हूं। सन् १९६३ की बात है। जब मैं सरदार शहर स्थित आयुर्वेद विश्वभारती में प्रिन्सिपल के पद पर कार्य कर रहा था। उस समय जयपुर आयुर्वेद कालेज का एक स्नातक, जो स्नातकोत्तर (जामनगर) उपाधिधारी भी था, हमारे अधीन आतुरालय में Resident medical officer के पद पर कार्य कर रहा था! उसकी नियुक्ति भी मेरी अनुमति से ही की गई थी। उम्र में वह मेरे पुत्र के समान था परन्तु बुद्धिमान तथा विद्वान भी था—शायद मुझ से भी अधिक। उस समय उक्त कालेज के अध्यापक श्री सुधाकर चौधरी की धर्मपत्नी ने (एक महिला विद्यालय की प्रधानाध्यापिका) आतुरालय में ७।८ वर्ष के बालक रोगी को मेरे पास चिकित्सा के लिए भेज दिया। उसे आतुरालय में प्रविष्ट कराकर उसकी चिकित्सा का भार मुझे अपने हाथ में लेना पड़ा। यद्यपि मैं आतुरालय का अध्यक्ष भी था, तो भी यह कार्य मैंने उस R. M. O की अनुमति तथा सम्मति से किया। उसे आन्त्रिक ज्वर था और तदनुसार मैंने आनन्द भैरव, शुभ्र पर्पटी तथा मकरध्वज आदि की व्यवस्था दी। परन्तु २।१ दिन में सुनने में आया कि उस R. M. O. ने मेरे विरुद्ध प्रचार कार्य शुरू किया। मैंने Typhoid जान कर भी Chloromycetin का प्रयोग नहीं किया। मैंने उसे शुभ्र पर्पटी दिया। उसके आन्त्र में क्षत है। 'शुभ्र' पर्पटी में शोरा रहने के कारण उससे अन्त्र-विदारण हो सकता है! इत्यादि-२। मेरे सामने एक दुरूह समस्या खड़ी हुई। मुझे ५०।६० छात्रों के सामने आदर्श उपस्थित करना था। मुझे यह दिखाना था कि आयुर्वेदीय औषधियों से भी आंत्रिक ज्वर की चिकित्सा की जा सकती है। उधर उस रोगी को हमारे कालेज के ही एक अध्यापक की उच्च पदस्था महिला ने मेरे पास चिकित्सा के लिए भेजा है। अगर कुछ हो गया तो बदनामी होगी। उस समय मुझे भी जिद्द चढ़ गई। मैंने किसी आधुनिक औषधि की सहायता न लेने की प्रतिज्ञा की और प्रतिदिन छात्रों के समक्ष उस बालक की चिकित्सा-व्यवस्था की। उसे कास (Initial bronchitis) था। परन्तु श्वसनक सन्निपात का उपसर्ग नहीं आया, यही भगवान की कृपा रही। नहीं तो शायद मेरी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो पाती। खैर उदराध्मान, तरल मल भेद, प्रलाप आदि सभी उपसर्ग आये, मैंने कोष्ठबद्धता के समय प्रातः-सायं आनन्द भैरव पान का स्वरस व मधु अनुपान से, दो बार शुभ्र पर्पटी, रस सिन्दूर, धनिया व सौंफ के शीत व कषाय व मिसरी से एवं सितोपलादि चूर्ण मधु से अवलेहनार्थ दिया! पेय के रूप में तृणपंचमूल का पेय मिश्री मिला कर दिया था। मैंने ग्लुकोज तक उपयोग में न लाने का निश्चय किया था। तरल मल भेद के समय वही आनन्द भैरवी नागरमो था, तण्डुलोदक व शहद के साथ देता रहा। प्रलाप उपस्थित होने पर शाम को रसराज, जटामांसी का शीतकषाय, बड़ी इलाइची चूर्ण एवं शहद व उदराध्मान अधिक होने पर प्रातः कृष्ण चतुर्मुख सेंका हुआ परवल के रस के साथ देता रहा। पथ्य में दूध फाड़कर उसका पानी, बार्ली का पानी आदि देते थे और एक दिन के अन्तर से बन्द कमरे में उष्णोदक से गात्र परिमार्जन करने का आदेश दिया था। भगवान धन्वन्तरि के आशीर्वाद से वह लड़का पूर्ण स्वस्थ हो कर घर गया, और मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो सकी। अवश्य समय ३ सप्ताह लगा। उसे कम करने का कोई तरीका मेरे पास नहीं था। परन्तु ५०।६० छात्रों को यह दिखा कर सन्तुष्ट किया कि आयुर्वेदीय औषधि से भी सफलता के साथ आन्त्रिक ज्वर के समान सन्निपातज व्याधि की चिकित्सा की जा सकती है। और मन में भी सन्तोष मिला। उक्त R. M. O का मैं अधिक दोष नहीं देना चाहता हूं। वह शास्त्रज्ञ तथा बुद्धिमान था। परन्तु उसे योग्य शिक्षा नहीं मिली। आयुर्वेद कालेजों में इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञानमूलक शिक्षा नहीं दी गई। और उसे आयुर्वेदीय औषधियों के इस प्रकार प्रयोग देखने का अवसर शायद नहीं मिला। पाश्चात्य विज्ञान के पाठ्यक्रम से उसे यह शिक्षा मिली थी कि Typhoid में chloromycetin व्यर्थ औषधि है। इसके अलावा और कोई चिकित्सा फलवती नहीं हो सकी।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि यदि उचित शैली मे समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा दी जाय तो आयुर्वेद के छात्र चिकित्सा के क्षेत्र में आकर केवल आधुनिक औषधियों का ही उपयोग नहीं करेंगे या आयुर्वेदीय औषधियों को हीन दृष्टि से देखेंगे। बल्कि अधिक सफलता

के साथ सुचारुरूप से रोगी को रोगमुक्त होने में सहायक हो सकेंगे।

भोर कमिटी के पश्चात् १९४६ में स्वास्थ्य मन्त्रियों के सम्मेलन के प्रस्तावानुसार केन्द्रीय सरकार ने आयुर्वेद के पुनरूद्धार में मार्गदर्शन के लिए चोपड़ा कमिटी के नाम से एक शक्तिशाली कमिटी का निर्माण किया, जिसक उद्देश्य था, 'To consider and recommend the step that should be taken to improve facilities for research and training in indigenous systems and generally to increase their usefulness to public.' इस कमिटी में आधुनिक चिकित्सा शास्त्रविद के अतिरिक्त आचार्य यादव जी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आयुर्वेद कालेज के आचार्य डॉ० पाठक, मद्रास आयुर्वेद आलेज के आचार्य डा० लक्ष्मीपति, ढाका तिब्बिया कालेज के आचार्य हकीम हबिबुर रहमान, लाहौर तिब्बिया कालेज के प्रिन्सिपल हकीम मुहम्मद हसान कुरेसी, देहली के आयुर्वेद व तिब्बी बोर्ड के जनरल सेक्रेटरी हकीम नसीरुद्दीन अहमद खान आदि सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रांत में दौरे के समय वहां के प्रख्यात वैद्य तथा हकीमों को भी कमिटी में अस्थायी रूप से सम्मिलित किया गया था। आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल डा० सी० द्वारकानाथ इस कमिटी के सेक्रेटरी थे। ३ वर्ष व्यापी अथक परिश्रम के बाद २८ जुलाई, १९४८ में इस कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस कमिटी की रिपोर्ट अति विस्तृत थी। परन्तु उसका मूलसूत्र निम्न प्रकार था। 'Taking into consideration the practical working of central schemes that have been adopted for the last two decades towards integration of Indian and western medicine in the teaching institutions of Indian Medicine in India, our considered opinion im that synthesis is not only possible but practicable also, though it will be time consuming and not easy.' चोपड़ा कमिटी की सिफारिशों में निम्नलिखित बातें भी सम्मिलित हैं।

(1) To facilitate the integration of teaching and studies, the following steps should be taken simultaneously (i) improvement in the basic education of the entrants (ii) Compilation of unified Text books giving integrated version of Indian and western Medicine and (iii) training of teachers for the integrated studies (2) The first source of supply of teachers for integrated studies will be from the present schools and Colleges of Indian Madicine. Though, in the beginning, they may not be of a high order, they should be forthcoming in sufficient number soon. (3) Promising graduates of both systems with proper training. will form the second source of supply to the future colleges provided good prospects are open to them. (4) One of the main objections raised against integration is that, it will give rise to mental confusion in the student but if the teachers and the taught are of the right type this should not occur. मैं शुद्ध आयुर्वेद के समर्थकों का ध्यान चोपड़ा कमिटी की उन सिफारिशों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। मैं इतना मानने के लिए तैयार हूं कि आयुर्वेद की परिस्थिति कहीं अधिक बिगड़ी हुई है। और इस परिस्थिति की सृष्टि में आधुनिक आयुर्वेद स्नातक अंशत: उत्तरदायी भी हैं, परन्तु आयुर्वेद की स्थिति को बिगाड़ने में प्राचीन-पंथी आयुर्वेद-सेवियों का उत्तरदायित्व भी कुछ कम नहीं। आयुर्वेद कालेजों में शुरू-शुरू वही लोग हमारे अध्यापक थे और उन्हीं के मार्गदर्शन पर हम चलते थे। बीज उन्होंने बोया, वृक्ष उत्पन्न हुआ, परन्तु उसका फल कटु निकला।

अगर उस समय स्थिति को सुधारने के लिए वे तत्पर होते तो शायद यह परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती। आत्म-निरीक्षण के वजाय उन्होंने आयुर्वेद स्नातकों को आयुर्वेद का घातक' Half Vaids and half doctors, they are of no use to Ayurved. इत्यादि विशेषणों से विभूषित किया।

आयुर्वेद स्नातक इस तरह से अवहेलित, अपमानित तथा लांछित होकर प्राचीन पंथी के विरूद्ध विद्रोही बन गया और अपने को वैद्य न कहकर डाक्टर कहने लगा।

मैं 'सचित्र आयुर्वेद' की अगस्त-सितम्बर, अक्टूबर-नवम्बर १९७० संख्या में प्रकाशित 'आयुर्वेद का भविष्य' शीर्षक निबन्ध में आयुर्वेद की वर्त्तमान स्थिति के कुछ मुख्य कारणों की विशद् विवेचना कर चुका हूं, जिसका उल्लेख यहां अनावश्यक प्रतीत होता है।

आयुर्वेद रत्न का भण्डार है। पृथ्वी की प्राचीनतम सुसम्बद्ध चिकित्सा-पद्धति है। और है सभी वर्त्तमान चिकित्सा-पद्धतियों की जननी। परन्तु साथ ही साथ हमें यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि यह कम से कम ३००० वर्ष पुरानी पद्धति है और इस परिवर्त्तनशील जगत में आधुनिक मनुष्यों के रहन-सहन में विशेष रूप से पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण से आकाश और पाताल का अन्तर आया है। जो पद्धति युगानुरूप परिवर्तन के अनुसार अपने को नहीं ढाल सकेगी, उसे वह युग न तो श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा और न उसे मान्यता देगा। अगर आयुर्वेद को युगानुरूप न्यूनतम सज्जा से सज्जित नहीं किया गया तो उसे आधुनिक मनुष्य ग्रहण नहीं करेगा। इसमें तर्क-वितर्क के लिए स्थान ही नहीं है। आयुर्वेद को युगानुरूप सुसज्जित करने के लिए ही महामहोपाध्याय गणनाथ सेन, यामिनीभूषण राय, कैप्टेन जी० श्री निवासमूर्ति, यादवजी महाराज आदि आयुर्वेद के ख्यातनामा विद्वानों ने समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति का प्रणयन किया था। जिसे उस्मान कमिटी, चोपड़ा कमिटी, उडूपा कमिटी आदि के विद्वान तथा अभिज्ञ सदस्यों ने भी आयुर्वेद तथा हमारे देशवासियों की स्वास्थ्य-समस्या के निराकरण के लिए परमहितकर तथा एकमात्र मार्ग बतलाया है। उक्त कमिटियों में सर्वोतम चोपड़ा कमिटी की सिफारिशों को आन्तरिकता के साथ अमल करने से आज भी आयुर्वेद का पूर्ण गौरव वापस लाया जा सकता है जिससे केवल हमारे देशवासी ही नहीं, विश्व के सभी देशवासी लाभान्वित हो सकते हैं। आज विदेशों में आयुर्वेद का गम्भीर अध्ययन हो रहा है। और वे भी इस बात से सहमत हैं कि आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति विश्व के कल्याण के लिए विशेष सहायक हो सकती है।

बहुत दिन की बात नहीं—मई १९७२ में आगरा में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४७वें अधिवेशन के उद्घाटन भाषण में हमारे उपराष्ट्रपति माननीय डा० गोपालस्वरूप पाठक जी ने वैद्यों से कहा कि वे आयुर्वेद को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के समन्वय द्वारा जन साधारण के लिए उपयोगी बनावें और आज के बदलते हुए समाज में उनके स्थान को सुरक्षित करें। आयुर्वेद को शक्तिशाली बनाने के लिए आज आवश्यक है, कि हम उसे अन्य पद्धतियों से मिल कर, समन्वय को अपना कर उसका कार्यरूप में प्रयोग करें। हमारा समाज तेजी से बदल रहा है, इसलिए हम उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप आयुर्वेद के ज्ञान को ढालें। उसी महीने में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में संस्थापित धन्वन्तरि भवन के अन्तर्गत आयुर्वेदिक अस्पताल का शिलान्यास करते हुए माननीय भू० पू० केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री उमाशंकर दीक्षित जी ने कहा कि 'विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों तथा अनुसंधानकर्त्ताओं को चाहिए कि वे एक ऐसी चिकित्सापद्धति को निकाले जिसमें सभी पद्धतियों के गुण विद्यमान हों।' उन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सकों से आग्रहपूर्ण अपील करते हुए कहा कि वे अपनी चिकित्सा-पद्धतियों की कमी को दूर कर अन्य पद्धतियों की अच्छी बातों को अपनाएं। ये दोनों महानुभाव चिकित्सा-शास्त्रविद नहीं हैं। प्रौढ़ राजनीतिज्ञ तथा जन साधारण के कल्याण के लिए दत्तचित्त रहनेवाले व्यक्ति हैं। इनके मन्तव्यों का गुरुत्व या प्रणिधान योग्य हैं। मई-जून १९६६ में बम्बई विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० आर० व्ही, साठे ने एक श्वेत पत्र निकाल कर सभी राज्यों के आयुर्वेदिक बोर्ड तथा फैकल्टी के पास भेजा था। जिसमें उन्होंने राष्ट्रीय चिकित्सा - पद्धति के नाम से एक ऐसे चिकित्सा विज्ञान की सृष्टि पर बल दिया, जिसमें सभी पद्धतियों का समन्वय हो और आज के समाज में उसके प्रचलन से अधिकतम लाभ मिल सके। डा० साठे पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के एक उच्चस्तरीय विद्वान हैं, और उच्चपदस्थ व्यक्ति हैं। उनके मत भी अवश्य ही प्रणिधान योग्य हैं।

अब शुद्ध आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जाय। शासन ने शुद्ध आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए व्यास कमिटी का निर्माण किया था। उस कमिटी की सिफारिशों के संबंध में विस्तृत विवेचना अनावश्यक है। उनके प्रतिवेदन में शुद्ध आयुर्वेद का जो स्वरूप प्रकट हुआ है, उस सम्बन्ध में भारत सरकार के प्राक्तन आयुर्वेदीय परामर्शदाता डा०

द्वारकानाथ का मतामत विशेष महत्व रखता है। क्योंकि डा० द्वारकानाथ उभयज्ञ हैं और प्राच्य, पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्रों के गुण-दोषों के पूर्ण ज्ञाता एवं विचारक हैं। कई वर्ष आयुर्वेदीय परामर्शदाता के रूप में भी उन्हें आयुर्वेद की शिक्षा तथा अनुसंधान के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध है। अतः हम व्यास कमिटी के सम्बन्ध में उनके मतामत उद्धृत करके ही शुद्ध आयुर्वेद का परिचय देना चाहते हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप में बताया है कि 'The term 'suddha' is more a slogan and less school of thought.' उन्होंने यह भी बताया कि शुद्ध आयुर्वेद-सेवी ने भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में जो प्रगति हुई है उसे आयुर्वेद में सन्निविष्ट करना चाहते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं, परोक्ष रूप से'। परोक्ष से भी अगर यह मिश्रण हुआ तो आयुर्वेद की शुद्धता नष्ट नहीं होगी।

पहले बताया गया है, प्रकृत शुद्ध आयुर्वेद वृहत्रयी तथा लघुत्रयी में ही निबद्ध है! उनमें हम नागार्जुन तथा वाग्भट्ट द्वारा प्रचलित रसशास्त्र का समावेश तक कर सकते हैं। नैतिक दृष्टि से उसमें और किसी प्रक्षेप का स्थान नहीं होना चाहिये। तो भी मुसलमानों के राजत्व काल के प्रभाव से, जहरमोहरा, अकीक, संगें जवाहरात, रूमी मस्तकी, खमीरेगाँवजवान आदि 'यूनानी, औषधियों का प्रवेश हुआ है और प्राचीन आयुर्वेद-सेवी बिना हिचकिचाहट उन औषधियों का उपयोग अपने चिकित्सा व्यवसाय में कर रहे हैं। उससे आयुर्वेद अशुद्ध नहीं हो रहा है। परन्तु आधुनिक औषधियों के सम्मिश्रण से आयुर्वेद अशुद्ध होता है। यह आश्चर्य की बात है। शुद्ध आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में छात्रों को पढ़ायेंगे क्या। शरीर-सम्बन्धी ज्ञान के आहरण के लिए सबसे पहले शरीर रचना का ज्ञान आवश्यक हैं। वह क्या सुश्रुत संहिता से आयेगा? महामहोपाध्याय गणनाथ सेन ने स्पष्ट रूप से कहा है 'शारीरे सुश्रुतो नष्टः।' उनके समान आयुर्वेद हितैषी के मुंह से ऐसा मन्तव्य निकलते देखकर अनायास समझा जा सकता है। कितने खेद के साथ उन्होंने ऐसे वाक्य का उच्चारण किया है। वस्तुतः सुश्रुत से शरीर रचना-शास्त्र पढ़कर मानव शरीर सम्बन्धी ज्ञान पूर्णतया असम्भव है। अतः शुद्ध आयुर्वेद के छात्रों को महामहोपाध्याय प्रणीत 'प्रत्यक्ष शारीर' पढ़ाना ही होगा। प्रत्यक्ष शरीर पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त Anatomy का ही संक्षिप्त रूप है। उसे पढ़ने से तो आयुर्वेद अशुद्ध ही होगा। आयुर्वेद में शल्य-शालक्य तन्त्र का भी वर्णन है। परन्तु वह सूत्र रूप से वर्तमान होने पर छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है। आयुर्वेद के छात्र भले ही शस्त्र-चिकित्सक न हों, तो भी उन्हें शस्त्र-साध्य रोगों के सम्बन्ध में ज्ञान तो होना ही चाहिए ताकि वे रोग का निदान कर यथासमय शस्त्र चिकित्सक के पास भेजकर रोगी की जीवन-रक्षा में सहायक हो सकें, परन्तु उन्हें अगर शस्त्र-साध्य रोगों के सम्बन्ध में ज्ञान ही न हो तो वे अपना कर्त्तव्य कैसे पूरा कर सकते हैं! हमारे देश में अभी भी सैकड़ों व्यक्ति की Cholera तथा Small pox आदि महामारी से अकाल मृत्यु होती है। पाश्चात्य शस्त्र-वेत्ता Vaccine के द्वारा उन मृत्युओं की संख्या यथेष्ट कम करने की चेष्टा करते हैं। उन रोग-प्रतिषेधक उपायों के अभाव में मृत्यु--संख्या कई गुणा अधिक होती थी। आयुर्वेद में अनागत रोग प्रतिषेध नामक एक अध्याय अवश्य है। परन्तु वे उपाय आज के युग के लिये अक्षम तथा असफल प्रतीत होते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के बहिष्कार के उन उपायों के अवलम्बन में शुद्ध आयुर्वेद के स्नातक अक्षम होंगे। अतः महामारी के समय वे लोग हमारे देशवासियों को कोई भी सहायता नहीं कर सकेंगे, तो उनकी सामाजिक परिस्थिति कैसी होगी। इन सबों को छोड़ दीजिए। आयुर्वेद में जो कर्मतत्परता अभी तक शेष है, वह है–'काय चिकित्सा'। आज के युग में नवीन—२ रोगों की उत्पत्ति हो रही है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में उदाहरण के लिए जो सन्निपात ज्वर का वर्णन है, उनमें पाश्चात्य विज्ञानोक्त Influenza, Lobar Pneumonia Broncho Pneumonia, Typhoid, Pleurisy, आदि का समावेश हो सकता है। परन्तु उनकी सम्प्राप्ति व्यक्ति तथा भेद में काफी अन्तर है। यह पहले ही बताया गया है। उनमें भेदाभेदपूर्वक चिकित्सा केवल आयुर्वेद—शास्त्र सम्मत ज्ञान से होना सम्भव नहीं। विशेषतः जब हमारे लिये आयुर्वेदोक्त अंशांश कल्पना केवल ग्रन्थों में ही सन्निविष्ट है। उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें उपलब्ध नहीं। इस युग में कोई भी रोगी Lobar Pneumonia, Broncho Pneumonia, Typhoid, आदि व्याधियों में २।३।४ सप्ताह शय्यागत रहकर जीवनी शक्ति की हानि, आर्थिक क्षति, मानसिक दुश्चिन्ता आदि का संकट मोल लेना नहीं चाहेगा। तब शुद्ध आयुर्वेद के चिकित्सक के सम्मुख वही पुरानी जीर्ण व्याधि अथवा डाक्टरों से हताश रोगियों के अतिरिक्त और कौन आयेगा। देशवासियों की स्वास्थ्य समस्या को दूर करने में उनसे क्या सहायता मिलेगी। मिश्रित आयुर्वेद के स्नातक इनके स्थान पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सहायता से उन सब व्यापारों में पर्याप्त सहायता कर सकेंगे। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के चिकित्सकों के मुकाबले में वे उनके समान रूप से उपयोगी सिद्ध होंगे। इसके सैकड़ों उदाहरण आज भी वर्त्तमान हैं। उचित शिक्षा मिलने पर वे और भी उपयोगी हो सकेंगे। आयुर्वेद की परिस्थिति को उन्नत बनाना ही हमारा ध्येय होना चाहिए, संकुचित मनोवृत्ति से वह सम्भव नहीं है। यह बात जितनी जल्दी समझ में आवे उतना ही मंगल है।

और एक बात है! शुद्ध आयुर्वेद के पाठ्यक्रम को वर्तमान आयुर्वेदीय कालेजों में चालू किया जा रहा है! उसका अध्यापन कौन करेगा। प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्सक या आयुर्वेद कालेजों में अभी जो मिश्रित अर्थात् अशुद्ध आयुर्वेद के स्नातक हैं वे लोग। शेषोक्त अध्यापक वृन्द तो Half Vaids and Half doctors and they are of no use to Ayurved—जैसे विशेषज्ञों से विभूषित है। अतः शुद्ध आयुर्वेद पढ़ाने के लिए आयुर्वेद विद्यापीठ के स्नातकों को ही नियुक्त करना चाहिए, परन्तु क्या वे भी आधुनिक औषधियों का उपयोग नहीं करते हैं? तो भी वे शुद्ध आयुर्वेद-सेवी हैं। आधुनिक औषधियों को भारतीय नाम से अथवा रंग बदलकर प्रयोग करने से आयुर्वेद नहीं होता है। मुझे कुछ प्रत्यक्ष अभिज्ञता है। इन्दौर के एक प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य उपाधिधारी वैद्य Elixir Valerian Brom, को जर्मनी से मंगाते थे। उसका प्रयोग वे ‘भारतीय तरल सार’ के नाम से करते थे। एक दातव्य चिकित्सालय के भिषक् उपाधिधारी प्रधान वैद्य ने एक बार किसी लड़के को इंजेक्शन दिया, जिससे उसका जीवन विपन्न हो गया। जब महल्ला की जनता ने उनसे पूछा कि आप इन्जेक्शन देने के लिए Qualified नहीं हैं, तो injection क्यों देते हैं? उन्होंने बहुत ही दिलचस्प उत्तर दिया, ‘मैं इंजेक्शन तो देता नहीं हूं, मैं सूची वेध करता हूं; आयुर्वेद में सूची वेध का विधान है।’ कलकत्ते के एक प्रसिद्ध राजवैद्य हैं जो आयुर्वेद के प्रबल समर्थक तथा आधुनिक आयुर्वेद स्नातकों के घोर विरोधी हैं, अपने को कैन्सर रोग के विशेषज्ञ कहते हैं; समय-समय पर आयुर्वेद के मासिक पत्रों में उनके कैन्सर-सम्बन्धी लेख भी देखने को मिलते हैं। शायद एक पुस्तक भी उन्होंने कैंसर की चिकित्सा के सम्बन्ध में लिखी है। आयुर्वेद-सेवियों के लिए यह तो गर्व की बात है। परन्तु मुझे आश्चर्य होता है! कैन्सर रोग का वर्णन तो आयुर्वेद में है ही नहीं। उन्हें कैंसर-सम्बन्धी ज्ञान कहाँ से मिल गया? आयुर्वेदीय कौन से ग्रंथ से? अगर वे सच्चे अर्थ में शुद्ध आयुर्वेद-सेवी तथा उसके समर्थक हैं तो उन्हें कैंसर रोग का नाम ही नहीं लेना चाहिए। यह एक प्रकार की प्रतारणा नहीं तो क्या है? मेरे ख्याल से पाश्चात्य चिकित्सा में संमिश्रण से नहीं पूर्वोक्त प्रकार से ही आयुर्वेद अशुद्ध हो रहा है। औषधियों के सम्बन्ध में ज्ञान आहरण के पश्चात् उन्हें प्रयोग में लेने से, साहस के साथ उनके प्रकृत नाम से प्रयोग करने से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है। उन औषधियों को छुपाकर देशीय नाम से अथवा रंग बदल कर उपयोग में लेने से ही आयुर्वेद अशुद्ध होता है। पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र संबंधी ज्ञान न रहने पर भी उसका ढोंग करना, आयुर्वेद के लिए घातक है। कभी-कभी ऐसे विद्वान आयुर्वेद की परिस्थिति को और भी उपहासास्पद बना देते हैं। ‘सचित्र आयुर्वेद’ के मार्च १९६३ संख्या में मैंने एक उच्च पदस्थ आयुर्वेद विद्वान के एक लेख में प्रकाशित अंश को अविकल उद्धृत किया था। पाठकों के स्मरण के लिए यहाँ फिर से उद्धृत कर रहा हूं। ‘प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ रोगी के शरीर में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखकर चिकित्सा प्रारम्भ करता है। यदि वह कीटाणुओं, जीवाणुओं की उपस्थिति और नाश के आधार पर चिकित्सा करे तो अपनी चिकित्सा-पद्धति के क्षेत्र से अलग हो जायगा। ‘इन्सोलिन दे देने से ही गुर्दों में इन्सोलिन प्राप्त करने की क्षमता नहीं आ जाती। आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति इस प्रकार औषधि देकर केवल गुर्दों की सहायता देने का कार्य ही नहीं करती; वरन् वह इसमें ऐसी शक्ति पैदा करती है जिससे गुर्दे स्वयं इन्सोलिन पैदाकर सकें’ यह है शुद्ध आयुर्वेदज्ञों

की स्थिति; जिनके पीछे आज हमारा शासन भी दौड़ना चाहता है। आज शुद्ध आयुर्वेद-सेवियों के भीतर शायद ही ऐसा व्यक्ति हो जो अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने परिवार की चिकित्सा के लिए पाश्चात्य विज्ञान की आवश्यकता को नहीं समझता या उसे ग्रहण नहीं करता है। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद के छात्रों को 'पुनर्मूषिको भव" करने का दुराग्रह क्यों ?

१९५५ में जिस समय मैं इन्दौर मेडिकल कालेज में आयुर्वेदीय रिसर्च अफसर के पद पर कार्य कर रहा था, उस समय कलकत्ते के कविराज ज्योतिर्मय सेन के आग्रह पर InJian pharmaceutical congress के बड़ौदा अधिवेशन में आयुर्वेदीय विभाग में एक 'पेपर' पढ़ने के लिए उपस्थित हुआ था। वहां आयुर्वेदीय औषधियों की एक प्रदर्शनी भी लगायी गई थी। मुझे वहां हेमगर्भ पोट्टली रस के कई रंग-विरंगे - (जैसे—कोई चित्रकार से चित्रित) गुटिकायें देखने को मिलीं। खोज करने पर पता चला कि उन गुटिकाओं का प्रदर्शन बड़ौदा के एक प्रसिद्ध वैद्य ने किया था। और वे गुटिकायें उनके स्वहस्त निर्मित थीं। मैं उस समय हृदय रोग पर Terminalia tomentosa (असन) पर कार्य करने का विचार कर रहा था। हेमगर्भ पोटली रस के सम्बन्ध में सुना था कि वह रोगी की शीतांग सन्निपातावस्था में भी चमत्कारिक फल दर्शाता है। और हृत्पिण्ड के रोगियों के लिए परम लाभदायक औषधि है। बड़ौदा प्रदर्शनी में उस हेमगर्भ पोट्ली रस की गुटिकाओं को देखकर मुझे भी इच्छा हुई कि ये हेमगर्भ पोट्ली रस पर कार्य करूं। तदनुसार मैंने उस वैद्यजी से मिलकर प्रार्थना की कि वे मुझे उत्पादन की जानकारी-सह कुछ औषधियाँ दें। मैंने उनसे पूरा दाम देने के लिए भी वादा किया, परन्तु उन्होंने उस समय देने से इन्कार कर दिया। बाद में भेजने का वचन दिया। मैंने इन्दौर आकर मेरे कार्यनियन्ता डॉ० मुखर्जी से बातचीत की; उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। मैंने वैद्य जी से पत्राचार करना प्रारंभ किया, परन्तु मेरे एक भी पत्र का जवाब नहीं मिला। मैंने डा० करन्दीकर, जो उस समय बड़ौदा मेडिकल कालेज में Pharmacology के प्रोफेसर थे, तथा वहां के अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष थे, के द्वारा भी वैद्य जी से हेमगर्भ पोट्ली रस के संग्रह के लिए चेष्टा की, परन्तु सफलता नहीं मिली। फिर स्वयं औषधि को बनाने का निश्चय किया। उस समय मेरे गुरुदेव के मित्र पं० ख्याली रामजी इन्दौर में थे। और मुझे उनका पूरा स्नेह प्राप्त था। मैं उनके पास गया और अपनी इच्छा प्रकट की तथा उनसे मार्गदर्शन व उपदेश मांगा। उन्होंने पुस्तक निकालकर मुझे दिखाईं कि शास्त्र में १६ या १८ प्रकार की हेमगर्भ पोट्लियों का वर्णन है। मैंने उन्हें हृदयरोग में उपयोगी तथा शीतांग सन्निपात में जिस हेमगर्भ पोट्ली रस का प्रयोग होता है; उसका जिक्र किया है। हम दोनों ने सभी हेमगर्भ पोट्लियों के उपादानों का विचार किया, परन्तु इसमें से एक भी हेम गर्भ पोट्ली रस उसके लिए उपयोगी नहीं समझा। अन्त में पं० ख्यालीराम जी ने मुझे बड़े प्रेम के साथ कहा—'बोस साहब' मैंने तो हेमगर्भ पोट्ली रस कभी बनाया नहीं, और न उसका कभी प्रयोग किया। मेरे बाप-दादा बनाते थे। परन्तु उस संबंध में मेरा कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है।' मुझे उस स्वीकारोक्ति से उनके ऊपर श्रद्धा और बढ़ गई और डा० मुखर्जी से इस बात को दुहरा कर अपना संकल्प छोड़ने के लिए बाध्य होने पड़ा। परन्तु ऐसे शुद्ध आयुर्वेद-सेवी कितने हैं ? एक बात का और उल्लेख करके लेख का उपसंहार करूंगा।

बात १९७१ की है। मैं अचानक तीव्र शिर: पीड़ा से आक्रान्त हो गया। दिन-रात चैन नहीं मिलता था और किसी भी वेदनाशामक औषधि से सामयिक मामूली लाभ के अतिरिक्त पूर्णरूप से शांति नहीं मिलती थी। मैं चण्डीगढ़ में था। वहां मेरा पुत्र Pcst graduate Medical college में सहकारी अध्यापक है। उसके जरिये मेरी उक्त महाविद्यालय के Cardiology, opthalmelogy, E. N. T. Neuro surgery आदि सभी विभागों में परीक्षाएं हुईं, परन्तु रोग - निर्णय नहीं हो सका। Orthopaedics विभाग में X-ray की सहायता से परीक्षा के बाद मुझे बताया गया, कि Cervical region में intra vertelraldise के calcif.cation की वजह से शिर:शूल हो रहा है। तदनुसार डा० कौशल की व्यवस्थानुसार मुझे Physiotherapy विभाग में सप्ताह तक Diathermy Traction आदि चिकित्सा की गई। तो भी मुझे पूर्ण आराम नहीं मिला। अन्त में

मेरे पुत्र ने मुझे Prednisoton (ortisone preparation) का एक सप्ताह तक सेवन करने को कहा, ३।४ दिन के बाद मेरी शिरः पीड़ा समाप्त हुई। परन्तु उसके बाद परामर्शानुसार एक सप्ताह तक दवा ली। यह अगस्त सितम्बर की बात है। नवम्बर महीने में मुझे बम्बई जाना पड़ा। वहां पुनः शिरः पीड़ा शुरू हुई। मेरे पास prdenisolon था परन्तु मैंने बम्बई के एक प्रसिद्ध वैद्य जो शुद्ध आयुर्वेद के भी एक वरिष्ठ नेता हैं को दिखाने का निश्चय किया। वैद्यराज जी मुझ से २० वर्षों से परिचित थे। उनसे समय लेकर उनके दवाखाने में पहुँचा। मैं अपना रोगवृत्त लिखकर ले गया था वह उन्हें दिखलाया। उन्होंने १ मिनट के लिए मेरी नाड़ी देखी, शायद एक बार जिह्वा—का भी निरीक्षण किया। फिर व्यवस्था-पत्र लिख दिया। स्वर्ण सूतशेखर प्रातः—सायं पथ्यादि के साथ खाने को बताया—शांर्ङ्गधर ने शिरोरोग की चिकित्सा में एक ही क्वाथ, पथ्यादि क्वाथ, को पर्याप्त समझकर दूसरी कोई औषधि ही नहीं लिखी। इसमें जो गुड़ (उन्होंने अवश्य (gayglery) बताया था) है—वह अकेले ही शिरोरोग को नष्ट कर सकता है। वे शायद भूल गये थे, कि वे एक २८ वर्षीय आयुर्वेद-सेवी से बात कर रहे थे। शायद मुझे अशुद्ध आयुर्वेद सेवी समझ कर आयुर्वेद का गुणगान कर रहे थे। पथ्यादि क्वाथ में जितना गुड़ का प्रक्षेप होता है उसके चार गुणा प्रतिदिन भोजन के साथ लेने को अभ्यस्त हूं। खैर, मैं चुपचाप सुनकर घर चला आया। दूसरे दिन बम्बई स्थित पोद्दार आयुर्वेद कालेज में पथ्यादि क्वाथ बनवाने के लिए चला गया। वहां कई अध्यापक मेरे परिचित हैं? रिसर्च विभाग में डा० पिशाल से उसके लिए अनुरोध किया, क्योंकि बाजार से पथ्यादि क्वाथ शुद्ध रूप से बनना अनिश्चित था। शार्ङ्गधर संहिता खोलकर जब देखा तब पता लगा, पथ्यादि क्वाथ में गुड़ नहीं, गुग्गुलु का प्रक्षेप है। २।३ पुस्तक देखी, परन्तु सभी में गुग्गुलु। मैंने वैद्यराजजी से दूरभाष पर सम्पर्क किया। उन्होंने बाद में बताया 'मेरी शार्ङ्गधर संहिता में 'गुड़' लिखा हुआ है। आप वही उपयोग में करें। उनका वक्तव्य शिरोधार्य कर मैंने पुरातन इक्षु गुड़ डालकर तीन दिन उक्त औषधियों का सेवन किया। परन्तु शिरः पीड़ा कम होना तो दूर की बात, उपसर्ग भी होने लगे, तो मैं दवा बन्द कर फिर से Prednisolon लेना शुरू किया, और आज तक मैं उस व्याधि से मुक्त हूं।

मुझे उनकी चिकित्सा से लाभ न मिलने का दुःख नहीं है, मुझे दुःख है, उनके वक्तव्य पर, आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार शिरः पीड़ा एक प्रकार की नहीं है। सभी प्रकारों की शिरः पीड़ा की एक मात्र महौषधि 'पथ्यादि क्वाथ' है, यह जानकर मुझे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। आयुर्वेद का दोष, दूष्य भेद-दोषों की अंशांश कल्पना, यह सब उपदेश कहां गये। हम तो अशुद्ध सेवी हैं, परन्तु शुद्ध आयुर्वेद के एकनिष्ठ साधक से इस प्रकार मन्तव्य सुनकर मुझमें जिस भाव का उदय हुआ वह भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। आयुर्वेदीय चिकित्सा क्या इतनी सरल है? अगर इतनी सरल होती है तो गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी। घर पर पुस्तक देखकर ही बड़े-बड़े वैद्य बन सकते थे। आयुर्वेद शास्त्र तो Empirical नहीं हैं। यह Rational है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है, परन्तु हमारे शुद्ध आयुर्वेदयूनानी वैद्यों के हाथ में पड़कर इसकी जो दुर्दशा हुई है, इसका एक मात्र उपाय पाश्चात्य चिकित्सा तथा विज्ञान की सहायता से आयुर्वेद के सूत्र रूप में वर्त्तमान वैज्ञानिक तथ्यों का पुनः विस्तार करना तथा उसको छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करना ताकि छात्र आयुर्वेद की महानता को समझ सकें। पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से उसके लुप्तांगों का उद्धार कर फिर से आयुर्वेद को उसके गौरवपूर्ण आसन पर बैठा सकें, देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति बनाकर देशवासियों के क्षीण स्वास्थ्य के पुनरुद्धार में सहायक बन सकें। इस हेतु हमें अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाना होगा।

वैद्यनाथ जन्मघुँटी
बच्चों को नीरोग रखनेवाली गुणकारी दवा

आयुर्वेद का पथ्य-अपथ्य विचार एवं आधुनिक मिथ्या आहार-विहार

080499

प्रोफेसर क्रान्तिकृष्ण,
आयुर्वेदालंकार, एम० ए०

हम अतीत के गीत गाते हैं। शेखी बघारने, डींग हांकने, आत्मश्लाघा, में समय गंवाते हैं। हम वर्त्तमान नहीं देखते कि हम वर्त्तमान में क्या हैं। जब आयुर्वेद के विकास का सवाल आता है तो आयुर्वेद के अतीत की गौरवगाथा गाकर लोगों को चकित कर देते हैं। आयुर्वेद के अतीत में चकित करने वाली बातें भी हैं। दक्ष के कटे हुए सिर के स्थान पर बकरे का सिर जोड़ दिया था, पूषा के दांतों को उखाड़ कर दूसरे दाँत लगा दिये गये थे, इन्द्र की अण्डग्रन्थियों को निकाल कर मेष के वृषण लगा दिये थे जिससे इन्द्र को मेषवृषण कहा जाने लगा, भग की आखें निकाल कर दूसरी आंखें लगा दी थी, राजा खेल की पत्नी विश्पला का पैर युद्ध में कट जाने पर लोहे के पैर लगा दिये थे, वृद्ध च्यवन ऋषि को नवयौवन प्रदान किया गया था, इन्द्र के भुजस्तम्भ की चिकित्सा की गयी थी, श्यावाश्व के तीन टुकड़े किये हुए अंगों को पुनः जोड़ कर पुनर्जीवित कर दिया था, नपुंसक पति वाली व्याघ्रिमती को पुत्र की प्राप्ति अश्विनी कुमारों ने करायी थी।

इस प्रकार वर्त्तमान की दुरवस्था को अतीत के पर्दे से ढंक देना उचित नहीं होगा। आयुर्वेद की चिकित्सा के चमत्कार को चिकित्सालय में प्रत्यक्ष दिखाना होगा। आयुर्वेद कालेजों में आयुर्वेद की चिकित्सा का चमत्कार छात्रों को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित नहीं किया जाता है जिससे छात्र आयुर्वेद में रुचि नहीं लेता। फिर आयुर्वेद में रुचि नहीं पैदा होने का कारण यह भी है कि **आयुर्वेद कालेजों में डाक्टरों को ऊंचा पद और ऊंची वेतनराशि** दी जाती है जिससे छात्र डाक्टरों की ओर रुचि लेने लगते हैं। आयुर्वेद में जो स्थान क्षुद्ररोगों का है वही स्थान आयुर्वेद कालेजों में वैद्यों को दिया जाता है, और सरकार भी क्षुद्ररोगों की तरह ही देशी चिकित्सा-पद्धतियों के नाम पर क्षुद्र चिकित्सा-पद्धतियों का वर्ग अलग बनाती है जबकि यूनानी या होम्योपैथी भारत की देशी चिकित्सा-पद्धति नहीं है। यूनानी का मतलब तो ग्रीक चिकित्सा-पद्धति है जो कि ग्रीस देश (यूनान) से प्रारम्भ हुई थी। इसलिए यूनानी चिकित्सा से हकीमी या तिब्बी चिकित्सा का बोध कदापि नहीं होता है—और यदि यवनों की चिकित्सा-पद्धति ही तात्पर्य है तो **यवनानी** चिकित्सा प्रणाली नाम दे सकते हैं। लेकिन यवनों की चिकित्सा का मतलब यूनानी चिकित्सा नहीं है।

मिश्रित चिकित्सा-प्रणाली के आयुर्वेद कालेजों में डाक्टरों को ही ऊँचा पद और ऊंचा वेतन दिया जाता है जिससे आयुर्वेद को पनपने का मौका ही नहीं मिलता। आयुर्वेद कालेजों के चिकित्सालय में आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए मरीज नहीं रखे जाते हैं और, जो मरीज रखे जाते हैं उन मरीजों को डाक्टरी नुसखा ही लिखा जाता है और डाक्टरी इलाज ही किया जाता है। फिर आयुर्वेद के खिलाफ डाक्टरों का प्रचार शुरू हो जाता है जिस कारण आयुर्वेद कालेजों में आयुर्वेद की उपे या दुर्गति होने लगती है। आयुर्वेदिक चिकित्सालय के लिए बेशुमार एलोपैथी की दवाइयां खरीदी जाती

जबकि आयुर्वेद के प्रसूता मरीज के लिए 'दशमूल क्वाथ बनाकर देने का प्रबन्ध भी नहीं किया जाता है। आमातिसार के रोगी को यदि वत्सकादि क्वाथ बनाकर देना हो तो उसके द्रव्य खरीदे जाने के लिए भी अनेक टालमटोल की जाने लगती है, लेकिन मैक्सा फौर्म खरीद कर मंगा दी जायगी। आयुर्वेद चिकित्सालय में सद्य प्रसूता को गर्भाशय शुद्धि के लिए पिप्पलादि चूर्ण देने की व्यवस्था तो दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन मैथर्जिन प्रयोग करने का प्रबन्ध जरूर रहता है। इस प्रकार जहां आयुर्वेद चिकित्सा का चमत्कार दिखाया जा सकता है और छात्रों को आयुर्वेद की चिकित्सा की ओर विश्वास पैदा किया जा सकता है—वहाँ भी आयुर्वेद की उपेक्षा की जा रही है।

फिर आयुर्वेद कालेज के आयुर्वेद चिकित्सालय में मरीजों के लिए पथ्य का प्रबन्ध भी समुचित नहीं किया जाता है। संसर्जन क्रम भी चिकित्सालय में मरीज पर प्रत्यक्षतः दिखाया नहीं जाता है। शोधन से निर्मूल होने वाले रोगों में शोधन कर्म भी नहीं करके दिखाया जाता है जिससे छात्र आयुर्वेद की चिकित्सा को भी कोरा दार्शनिक सिद्धांत मानने लगता है। स्नेहन और स्वेदन का भी प्रयोग किसी रोगी पर चिकित्सालय में नहीं कराया जा सकता है क्योंकि उसके लिए साधनों को ही मुहैया नहीं किया जाता है। लेकिन स्ट्रैप्टोमाइसिन, पेनिसिलीन खरीदने के लिए आयुर्वेद कालेजों में बेशुमार रुपया खर्च कर दिया जायगा। कहने का मतलब कि मिश्रित चिकित्सा-पद्धति के आयुर्वेद कालेजों में आयुर्वेद के नाम पर एलोपैथी का ही चमत्कार दिखाया जा रहा है, अथवा डाक्टरों का ही टिपटौप-चकाचौंध या धमाचौकड़ी दीख पड़ रही है। इसलिए मिश्रित चिकित्सा-पद्धति के आयुर्वेद कालेजों को **'प्रच्छन्न मेडिकल कालेज'** कहना ही उचित होगा। आयुर्वेद की चिकित्सा का चमत्कार उसके पथ्य-अपथ्य निर्देशों में भी है।

दोषों आयुर्वेद की चिकित्सा के अनेक सिद्धांतों--अल्प में लंघनकर्म (शमन चिकित्सा) मध्यम दोषों में दीपन पाचन, प्रभूत दोषों में शोधन कर्म (**तत्राल्पे लंघनं पथ्यम् मध्ये दीपन पाचनम्, प्रभूते शोधनं तद् हि मूलाद् उन्मूलयेत् मलान्**)। साम दोषों, का पाचन, स्रोतों में लीन दोषों को चलायमान करना, (स्नेहन स्वेदन से) उत्क्लिष्ट दोषों का निर्हरण करना (वमन-विरेचन से), क्षीण दोषों का वर्धन, परिवृद्ध दोषों को क्षीण करना, सम-प्राकृत दोषों का परिपालन, विमार्गगमनशील दोषों को स्वमार्गगमनार्थ प्रवृत्त करना, शाखाश्रित विकारों का कोष्ठानयन और कोष्ठानीत मलों का वहिर्निष्कासन, सन्तर्पणजन्य रोगों में अपतर्पण क्रिया और अपतर्पणजन्य रोगों में सन्तर्पण क्रिया करना जहां मुख्य हैं वहां निदान का परिवर्जन भी मुख्य है। रोगोत्पादक हेतुओं का त्याग करना भी चिकित्सा का सिद्धांत है। अतएव सुश्रुत ने कहा है कि —सक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम् अर्थात् दोष प्रकोपक (रोग कारक) हेतुओं का परित्याग करना ही हर रोग की चिकित्सा का सारांश है। रोग मात्र का हेतु मिथ्या विषम आहार-विहार है। दोष-प्रकोप से रोग होते हैं और दोष-प्रकोप (दोष वैषम्य, का हेतु विषम अहार-विहार है। यही कारण है कि रोग - निवारण के लिए आयुर्वेद ने जितना महत्व औषध सेवन को दिया है उससे कहीं ज्यादा महत्व **पथ्य अपथ्य** सेवन को दिया है—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणम् ।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणम् ॥

अर्थात् यदि रोगी पथ्य का सेवन करता है तो उसे औषध-सेवन की क्या जरूरत है? यदि रोगी पथ्य का असेवन करता है तो उसे भी औषध सेवन की क्या जरूरत है? इस उक्ति पर अधिक बल देने के लिए **वैद्यजीवनकार लोलिम्बराज** ने भी पथ्य - अपथ्य का महत्व दर्शाया है—

विनाऽपि भेषजैः व्याधिः पथ्यादेव निवर्त्तते ।
न तु पथ्य विहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥

अर्थात् औषध सेवन के बिना भी रोग केवल पथ्य-सेवन से निवृत्त हो जाता है। इसके विपरीत पथ्य-सेवन न करने वाले रोगी का रोग सैंकड़ों औषधियों के सेवन से भी निवृत्त नहीं होता है।

पथ्य-सेवन का महत्व 'मधुमेह' रोगी में प्रत्यक्ष देखने में आता है। मधुमेह रोगी यदि आहार में अपथ्य (अहितकर) वस्तुओं-चीनी-गुड़, शक्कर, खांड, मिश्री, शहद, पिच्छिलद्रव्य, उड़द, चावल, आलू, शकरकन्द, मिष्टान्न, गुरु पदार्थ, पिष्ट द्रव्य पिट्ठी के बने पदार्थ) अत्याहार (ओवर ईटिंग) का त्याग कर दे और विरुद्ध

में आस्यासुख-स्वप्न सुख, दिवास्वप्न, मैथुन-भोगविलास का त्याग कर दे तो उसका मधुमेह रोग शान्त रहता है—उसको औषध सेवन की भी उतनी आवश्यकता नहीं रहती है। आस्यासुख जो मधुमेह का निदान है उनका वर्जन करके चंक्रमण-व्यायाम करे तो मधुमेह के लक्षण अतितृष्णा, अतिमूत्र, रक्तगत शर्करावृद्धि शान्त हो जाते हैं। मधुर लवण रसों का त्याग और कटुतिक्त कषाय रसों का सेवन (करेला-जामुन) करना चाहिए। हर रोग में हितकर आहार तथा अहितकार आहार का महत्व आचार्य चरक ने भी दर्शाया है— (च० सू० २५-३२)

हिताहारोपयोग एक एव पुरुषवृद्धिकरो भवति,
अहिताहारोपयोगः पुनः व्याधिनिमित्तम् इति।

अकेला हितकर आहार का उपयोग ही पुरुष के शरीर की वृद्धि करने वाला, रोग-निवारण करने वाला, स्वस्थ के स्वास्थ्य का रक्षण करने वाला है। इसके विपरीत अहितकर आहार का उपयोग रोगकारक विकार-जनक होता है।

पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में अभी भी पथ्य-अपथ्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है। पाश्चात्य-चिकित्सा-शास्त्र में आहार, विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, सदाचार-स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य-स्वास्थ्य, तपश्चर्या-स्वास्थ्य का विकास नहीं हो पाया है। मधुमेह में भोग विलास का त्याग करके तपश्चर्या कर जीवन व्यतीत किया जाय तो मधुमेह को व्याधिमन्दिर शरीर से निकलना ही पड़ता हैं। फिर मधुमेह में मैथुन पर संयम रख कर ब्रह्मचर्य पालन किया जाय तो दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। मधुमेह में आहार-संयम का सिद्धान्त पाश्चात्य चिकित्साशास्त्री भी स्वीकार करने लगे हैं। रोगों की चिकित्सा में औषध-सेवन के साथ-साथ रोगकारक अपथ्य का त्याग करके पथ्य-सेवन का विधान अब किया जाने लगा है जो आयुर्वेद की ही देन है। **अतिरक्तचाप** की चिकित्सा में लवण वर्जित आहार के लिए और क्रोध, शोक, चिन्ता, मानसिक, विकारों का त्याग करने के लिए पाश्चात्य चिकित्सा में भी विधान किया जाने लगा है। शोथ रोग में लवण त्याग का महत्व आयुर्वेद में सहस्रों वर्षों से प्रतिपादित है, जबकि एलोपैथी में शोथ में लवण वर्जित आहार का उपदेश अब किया जाने लगा है। भारत में जो षड्ऋतुओं की चौंसठ व्यंजनों की, षड्रसों की विविधता या विचित्रता है वह पाश्चात्य देशों में नहीं पायी जाती है। पाश्चात्य देशों में एक जैसी ऋतु, शीतप्रधान, होने से दैनिक आहार में अनेक खाद्यों-फलों-शाकों का या रुचिकारक दीपन-पाचन मसालों का उपयोग नहीं हो पाता है। वहां पानी के बदले 'बीयर' (जौ की शराब) की बोतल ही पीते हैं। मांस-मछली-अण्डा का सेवन **प्रोटीन के** नाम पर बहुतायत से करते हैं जो कैन्सर का एक कारण है। सुश्रुत ने मांसार्बुद कैन्सर के हेतुओं में 'मांस परायणता' मांस-लोलुपता को कारण बताया है—**'प्रदुष्ट मांसस्य नरस्य बाढम्, एतद् भवेत् मांसपरायणस्य मांसार्बुदं तु एतद् असाध्यम् उक्तम्** (सु० नि० ११-१७)। मांसों का अल्पाहार, उष्ण-तीक्ष्ण-कटु पदार्थों का अल्पाहार ही कैन्सर का हेतु है। एक दिन पाश्चात्यों को इस परिणाम पर पहुँचना पड़ेगा कि मांसाहार भी कैन्सर के कारणों में है। धूम्रपान (बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू-गाँजा-सुलफा) जिस प्रकार श्वास प्रणाली-फुफ्फुस-ओष्ठ-जिह्वा में कैन्सर का हेतु है उसी प्रकार **अत्यन्त मैथुन** भी योनि-गर्भाशय-स्तन के कैन्सर का हेतु है और अत्यन्त मद्यपान तम्बाकू-भक्षण, अत्यन्त उष्ण-तीक्ष्ण-कटु द्रव्यों का आहार भी आमाशय कैन्सर का हेतु है—जिन हेतुओं से सतत क्षोभ (Tissue Irritation) पैदा होते रहने से उन अंगों पर विकारात्मक प्रभाव पैदा होता रहता है। आयुर्वेद ने पग-पग पर अति मैथुन का निषेध किया है और ब्रह्मचर्य पालन को दीर्घायुष्यकारक बताया है। अति वीर्यपात से शरीर की बलहानि होती है, नाड़ियों की शक्ति क्षीण होती है पेशियों की शक्ति दुर्बल होती है, पाचक रसों की उत्पत्ति कम होने से मन्दाग्नि-अजीर्ण-संग्रहणी रोग, पाण्डु रोग भी हो सकते हैं। शरीर में रस, रक्त, मांस, अस्थि आदि धातुओं की यथावत् उत्पत्ति के लिए तथा उनकी पुष्टि के लिए वीर्य का संरक्षण आवश्यक है, उतना ही आवश्यक रक्त का संरक्षण भी है।

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते,
तस्माद् यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः।

क्योंकि रक्त द्वारा ही शरीर की प्रत्येक कोशा का पोषण होता है। शुक्रक्षय और रक्तक्षय होने से बल-हानि, थकान (क्लम) आंखों के सामने अंधेरा (तम), सिर में चक्कर आना (भ्रम), तन्द्रा-आलस्य, किसी काम की इच्छा न होना (अरति), कहीं मन न लगना, मन्दाग्नि

आदि लक्षण होते हैं। अतः स्वास्थ्य या आरोग्य के लिए वीर्यरक्षा (ब्रह्मचर्य) आवश्यक है। क्योंकि वीर्यरक्षा भी पथ्य है। रुग्ण अवस्था में वीर्य-रक्षा तो अत्यावश्यक पथ्य है।

आयुर्वेद ने पदे-पदे **दिवास्वप्न** को अपथ्य बताया है। स्मृतिकारों ने भी मृगया, द्यूतक्रीड़ा की तरह ही दिवास्वप्न को दुर्व्यसनों में माना है। दिवास्वप्न कफ प्रकोपक है जिस कारण तन्द्रा, आलस्य, अंगमर्द गौरव, स्तम्भ, श्वास, कास, प्रतिश्याय, मन्दाग्नि, अरुचि, मुखमाधुर्य, जड़ता, मन्द बुद्धि, दीर्घसूत्री होना, प्रमेह आदि पैदा होते हैं। इसके विपरीत जिसने रात्रिजागरण किया हो, पैदल यात्रा करने से जो अध्वखिन्न हो, अति मैथुन करने से जो कृश हो गया हो, अधिक व्यायाम से जो थका हो (श्रान्त), ग्रीष्म ऋतु में जबकि रात्रि छोटी होती है तब दिवास्वप्न करने का विधान है। शोक-चिन्ताग्रस्त, भयग्रस्त के लिए भी दिवास्वप्न पथ्य है। व्रणित रोगी को दिवास्वप्न करने से व्रण में शोथ लालिमा पीड़ा पैदा होती है (**व्रणे श्वयथुः आयासात् स च रागश्च जागरात्, तौ च रुक् च दिवास्वापात् ताश्चमृत्युश्च मैथुनात्** सु० सू० २०-३५)। फिर सुश्रुत ने बतलाया है कि—

तत्र श्लेष्मलाहार सेविनो दिवास्वप्नरतस्य च
आम एव अन्नरसो मधुरतरश्च शरीरम् अनुक्रामत्

अर्थात् कफकारक भावों दिवास्वप्न का सेवन करने वालों का अन्न पचन सम्यक् नहीं हो पाता है जिससे अन्नरस अपक्व होने से आम की उत्पत्ति करके क्षुद्र श्वास (हांफनी), गद्गद्त्व दोष, गात्रसाद, स्रोतोरोध स्रोतोदुष्टि को पैदा करता है। **राजयक्ष्मा** चिकित्सा के लिए लिखा है कि—**दिवानिद्रां क्षयी कोपं विवर्जयेत्** (भै०र०) अर्थात् क्षयरोगी को दिवानिद्रा तथा क्रोध का त्याग कर देना चाहिए। पाण्डु रोग की चिकित्सा में भी कहा है दिवास्वप्न, मृद् भक्षण, लवण रस का त्याग कर दे **मृद् भक्षणं दिवास्वप्नः तीक्ष्णानि लवणानि च....त्यजेत्,** (भै० र०) अर्थात् **क्रिमीरोग** की चिकित्सा में कहा कि दिवास्वप्न का त्याग कर दे (भै० र०)। यहां स्मरणीय है कि पाश्चात्य चिकित्सा में दिवास्वप्न का इतना विचार रोगों की चिकित्सा में नहीं किया गया है। कुष्ठरोग तथा शीत पित्त में भी दिवास्वप्न का निषेध किया है।

आयुर्वेद की चिकित्सा में पथ्य - अपथ्य का वर्णन करते समय मानसिक विकारों को भी अपथ्य माना है। अजीर्ण उत्पन्न करने में मानसिक विकार कहां तक उत्तरदायी है, इसके लिए सुश्रुत ने बताया है कि—**ईर्ष्या-भय-क्रोध परिक्षतेन, लुब्धेन रुक् दैन्य निपीडितेन, प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानम्, अन्नं न सम्यक् परिणामम् एति** (सु० सू० ४६-५००) अर्थात् ईर्ष्या (परोत्कर्ष असहिष्णुता), भय, क्रोध, लोभ, चिंता, दैन्य (दुःख-शोक), द्वेष (मात्सर्य) इन मनोविकारों से ग्रस्त होने पर आहार का परिपाक सम्यक्तया नहीं होता है। इन मनोविकारों के समय पाचनप्रक्रिया में प्रत्यक्षतया बाधा उपस्थित हो जाती है जिससे पाचक रसों की उत्पत्ति यथासम्भव नहीं होती है—अमाशय-आन्त्र की पेशियों की क्रिया में मन्दता या क्षिप्रता आ जाती है। पाश्चात्यचिकित्सा - विज्ञानी भी हृदय रोगों ('हर्ट अटैक' या 'एन्जाइना पैक्टोरिस') में प्रणीन-प्रसादन-हर्षकारक भावों या सौम्य वातावरण के द्वारा चिन्ता-शोक-क्लेश दुःख से मन को मुक्त करके चिकित्सा करते हैं। 'हाई ब्लड प्रेसर' की चिकित्सा के लिए तो रोगी के मन में सौम्य-शान्त मनोभावों को उत्पन्न करना परमावश्यक है। रोज-रोज के क्रोध-शोक-चिन्ता से हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, रक्त-प्रवाह में तेजी आ जाती है और रक्तभार भी बढ़ जाता है और हृदय प्रदेश में स्तम्भ या शूल भी प्रतीत होने लगता है। हम देखते हैं कि क्रोध के समय सारा मुखमण्डल लाल सुर्ख हो उठता है—मानो अग्नि में तपाया गया हो। जब मुखमण्डल की यह अवस्था हो सकती है तो आप सोच सकते हैं कि आमाशय की क्या हालत होगी, आमाशय भी रोज-रोज के क्रोध के कारण लाल सुर्ख शोथग्रस्त (इन्फ्लेम्ड) होता रहता है जो कि अन्ततोगत्वा **आमाशयव्रण** 'पेप्टिक अल्सर' का रूप ग्रहण कर लेता है। क्रोध के समय सारा शरीर कांपने लगता है—जैसे आंधी ने वृक्ष को झकझोर दिया हो। व्रण रोगी हो तो क्रोध के कारण उसका व्रण रक्तस्राव पैदा कर सकता है। ज्वर रोगी हो तो क्रोध से उसके तापमान में वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार भय भी शारीरिक क्रियाओं में मन्दता या वृद्धि पैदा करके विषमता पैदा करता है। जंगल में कोई आदमी लकड़ी काटने जा रहा हो, सामने अचानक शेर दिखाई पड़ जाय तो पुरीषमूत्र का वेग उपस्थित [illegible]

होने पर भी मूत्र-पुरीष सहसा धोती में निकल पड़ता है। क्योंकि भय के कारण आन्त्र पेशियां शिथिल हो जाती हैं। इसके विपरीत कोई जंगल में शाम के झुटपुटे में लोटा लेकर जल्दी-जल्दी टट्टी होने जा रहा हो और सामने शेर आता हुआ दिखाई पड़ जाय तो वह टट्टी होना भूल कर उलटे पाँव पीछे भागता है जिस कारण भय से उसका उपस्थित पुरीष वेग भी सहसा रूद्ध हो जाता है, क्योंकि भय की अवस्था में आन्त्र पेशियों की क्रिया स्तब्ध या शून्य हो जाती है। यदि हृदय रोगी हो तो हृदय गति रूद्ध या स्तब्ध होकर भय की अवस्था में मूर्छित हो सकता है। आज जब कि हृदय रोगों की वृद्धि हो रही है तब वातावरण की सौम्यता, शान्तता की अत्यन्त आवश्यकता है लेकिन हम विपरीत स्थिति देख रहे हैं। चारों ओर युद्ध-युद्ध का भय व्याप्त हो रहा है—जातीय दंगों की बिभीषिका फैल रही है, डकैतियों की वृद्धि हो रही है, लूटपाट-उचक्केबाजी-राहजनी - बटमार, बलात्कार की रोज-रोज की घटनाओं से मनुष्य भयग्रस्त-शंकाग्रस्त-चिन्ताग्रस्त है।

आज शहरी जीवन में भीड़-भाड़, शोर-शराबा, खून-खराबा ने मनुष्य की शान्ति का अपहरण कर लिया है। **आज मनुष्य का हृदय मानो क्रिकेट का गेन्द बन गया है जिस पर शोर-शराबे की बल्लेबाजी की निरन्तर तेज चोट** पड़ रही है जिस कारण हृदय रोज-रोज के शोर की तेज चोट की मार से अधमरा हो गया है। मानो शोर-शराबा, खून-खराबा, भीड़ - भाड़—इन सबने मिल कर दिल धड़कने की बीमारी पैदा कर दी है। रोजाना लाउडस्पीकर की बौखलाहट, रोजाना जुलूसों की नारेबाजी मुर्दाबाद ! जिन्दाबाद, रोजाना स्कूटरों-मोटरों की भड़भड़ाहट, रोजाना हड़ताली कर्मचारियों के प्रदर्शन की लबड़ धों-धों, और रोजाना ढोल का ढम-ढम और भोंपू की भों-भों—इन सबने मिलकर मनुष्य के मन को परेशान तथा मस्तिष्क को चिड़चिड़ा बना दिया है। शहरी जीवन के कोलाहल में और आतंक व्याकुल ग्रामीण जीवन में हृदयशूल, हृदयस्तब्धता, मस्तिष्कसंक्षोभ सदृश रोग पैदा होना अब स्वाभाविक होता जा रहा है। मानो शहर क्या है—कोलाहल का जाल है, मकानों, दूकानों का जाल है, औरत-मर्द की भीड़-भाड़ का जंजाल है जिसमें शान्ति गुम हो गई है। शहरियों में आधी रात तक लाउडस्पीकर की चिल्लाहटों ने अनिद्रा रोग की स्थिति पैदा कर दी है। तीव्र कोलाहल ने श्रवण नाड़ियों की असंज्ञता पैदा कर के बाधिर्य रोग को पैदा कर दिया है। शोर के अति योग से मस्तिष्क के श्रवण - केन्द्र पर ही आघात शुरू हो गया है। मिनिस्टरों के अत्युच्च राजनीतिक भाषणों ने मनुष्य को विक्षिप्त बना दिया है। वह है शोर का परिणाम मनुष्य जीवन पर !

आधुनिक सभ्यता में धूम्रपान का शौक बढ़ता जा रहा है। बसों में, रेल के डिब्बों में, सिनेमा घरों में—सब जगह बीड़ी-सिगरेट के धुएं की भरमार है। सिनेमा घर तो बीड़ी-सिगरेट पीने वालों के जूठे धुएं से भर जाता है। उस जूठे धुएं को वह मनुष्य भी, जो धूम्रपान नहीं करता है, अपने श्वास के साथ फेफड़ों में ग्रहण करता है जिससे धूम्रपान नहीं करने वाले को भी धूम्रपान की हानियों का खतरा मोल लेना पड़ता है। एक बार एक बस ड्राइवर को बस में बीड़ी पीते हुए मैंने टोका, क्योंकि बीड़ी का जो जूठा धुआं वह अपने मुंह - नाक से बाहर निकालता था वह श्वासनलिका में जाकर मुझमें तेज खांसी पैदा कर रही थी, क्योंकि बीड़ी का तेज धुआं मेरे कण्ठ में श्वास के साथ जाकर क्षोभ-दाह पैदा करता था जिससे श्वासनलिका विक्षुब्ध होकर बीड़ी के उस तेज धुएं को श्वास में लेने का प्रबल प्रतिरोध कास के वेग के रूप में कर रही थी। सिनेमा घर में तीन घण्टे बैठ कर बाहर निकलो तो कोट-पैन्ट, धोती-कुर्त्ता-रूमाल सब कपड़ों में बीड़ी के धुएं की बदबू एक दिन के लिए भर जाती है। फिर उस बस-ड्राइवर को बीड़ी पीने के लिए कई यात्री उकसाते रहे—क्योंकि ड्राइवर बीड़ी पीना बन्द करके बस को तेज रफ्तार में नहीं चला सकता था—क्योंकि बीड़ी-सिगरेट के बिना उसमें सुस्ती आ जाती। इस पर मैंने कहा कि बस से उतर कर बाहर बीड़ी पी सकते हो; लेकिन बीड़ी का जूठा धुआं सब यात्रियों की नाक में मत ठूंसो। सिनेमाघर में बीड़ी-सिगरेट का तेज धुआं जिस कदर भर जाता है उससे तो मानो दम-घुटने लगता है। कई लोग किशोरावस्था में देखा-देखी शौक के लिए सिगरेट पीने की लत को पकड़ लेते हैं और कई लोग किशोरावस्था में दोस्तों के जाल में फंसकर सिगरेट पीना सीख जाते हैं जिसको बाद में छोड़ना मुश्किल हो जाता है।

यदि स्कूलों में ही बीड़ी-सिगरेट की हानियों की शिक्षा दी जाय तो कई किशोरों को धूम्रपान की ओर आकर्षण नहीं भी हो सकता है । स्कूलों में वैयक्तिक स्वस्थवृत्त-सद्वृत्त की शिक्षा भी शारीरिक, मानसिक बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए अवश्य दी जानी चाहिए । विदेशों में धूम्रपान-निषेध के लिए कानून भी बनाये गये हैं, अब अमरीका-ब्रिटेन-नार्वे-इटली आदि देशों में रेडियो-टेलिविजनों पर सिगरेट के विज्ञापन पर प्रतिबन्ध लगा दिया है । सिगरेट की डिब्बियों पर यह चेतावनी भी लिखी जाती है कि धूम्रपान से स्वास्थ्य को हानि का खतरा है । जीर्ण श्वास रोग, कास रोग, फुफ्फुस, कैंसर, हृदय रोगों का खतरा धूम्रपान से है । परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि धूम्रपान से दिल की गति तेज हो जाती हैं, दिल धड़कने (पैल्पिटेशन) का रोग हो जाता है, हाथ-पैर की अंगुलियों की रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ने लगती हैं जिससे उतना स्थान सूखने लगता है और उतने स्थान में संज्ञाशून्यता भी पैदा हो जाती है । रक्तवाहिनियों की स्वाभाविक लचक खतम हो जाती है जिससे धमनियों की दीवार कठोर हो जाती है जिसको 'आर्टीरिओस्क्लिरोसिस' (धमनी कठिनता) कहते हैं; जिस कारण रक्तवाहिनियों में रक्तभार वृद्धि (हाई ब्लड प्रेशर) हो जाती है, फिर कभी रक्तभार वृद्धि को न सह सकने के कारण धमनी फट भी जाती है (विशेषतः मस्तिष्क में) जिससे मूर्च्छा-सन्यास रोग (एपोप्लैक्सी) हो सकता है । श्वास-नली या कण्ठ में शोथ होकर श्वास-कास बना रहता है । सिगरेट की तम्बाकू में 'निकोटीन' नामक विष होता है । यह 'निकोटीन' श्वास प्रणाली-फुफ्फुस में दाहशोथ पैदा कर देता है । फुफ्फुस के वायुरन्ध्रों में धुएँ की तह जमने लगती है जिससे कफ भी वहीं चिपकने लग जाता है और पर्याप्त काल तक चिपका रहने से कफ सड़ने लगता जिसको निकालने के लिए बार-बार कास के वेग पैदा होते हैं और श्वास नलिका भी संकुचित होकर उस चिपटे हुए कफ को निकालने का प्रयत्न करती है और श्वासनलिका संकुचित होने की अवस्था में श्वास कष्ट भी पैदा होता है—इस प्रकार सतत कास श्वास का क्रम जारी रहता है । धूम्रपान से मुख में दुर्गन्ध होने लगती है और आँतों में खुश्की होकर सख्त कब्ज हो जाती है ।

अधुना वायु प्रदूषण की समस्या स्वास्थ्य पर विकृत प्रभाव डाल रही है । वायुप्रदूषण से ग्रस्त शहरों में फुफ्फुस विकृतिजन्य क्षय रोग का प्रसार हो रहा है । मिलों की चिमनियों का धुआँ, कल-कारखानों का विषैला धुआँ, डीजल इंजनों का तीक्ष्ण धुआँ बसों-मोटरों के पेट्रोल का दमघोंटू धुआँ; शुगर मिलों की सड़ांदभरी बदबू, हड्डी खाद कारखाने की तेज बदबू, गन्दी नालियों की उबकाई लाने वाली बदबू, टट्टी पेशाबघरों की सड़ी बदबू, और घर-घर के चूल्हों का धुआँ—सबने मिलकर शहर के वायुमण्डल को प्रदूषणग्रस्त कर दिया है । फेफड़ों को शुद्ध ताजी हवा नहीं मिलने से फुफ्फुस क्षय रोग होता है । अब वैज्ञानिक एक स्वर से यह भी मानने लगे हैं कि विषैली गैसों के धुएं, पेट्रोल के धुएं, फैक्टरियों के धुएं, डीजल के धुएं से फेफड़ों का कैन्सर होना संभव है क्योंकि धुएं की तीक्ष्णता से श्वास प्रणाली तथा फेफड़ों में सतत दाह-सन्ताप-क्षोभ होता रहता है जिससे कैन्सर की उत्पत्ति होती है ।

वायु-प्रदूषण की तरह ही जल-प्रदूषण भी गाँवों, शहरों में स्वास्थ्य पर विकारी प्रभाव डाल रहा है । नदी-तालाब के किनारे टट्टी फिर कर तालाब के पानी में टट्टी धो लेना, गन्दे कपड़े धोना, थूक-खखार पानी में फेंकना, कोढ़-फिरंग ग्रस्त का भी तालाब में नहाना-धोना, बरसात में गली-कूचों-नालियों का गन्दा पानी भी नदी-तालाब में मिलाया जाना, शहरों का गन्दा नाला नदियों में मिलाया जाना, नदी तालाब में कूड़ा-कर्कट डालना, कुओं में जूठे -गन्दे-मैले डोल-बाल्टी डुबाना, कुओं में नालियों का गन्दा पानी रिसरिस कर मिलना—इन सबसे जल प्रदूषणग्रस्त रहता है । लोग स्वच्छ जल पीने के लिए नहीं व्यवहार कर पाते हैं जिस कारण आन्त्र-शोथ, डिसेन्ट्री, कौलरा, टाइफाइड रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं । पीलिया रोग का व्यापक प्रसार भी जलप्रदूषण के कारण हो चुका है । दिल्ली में आन्त्रशोथ का प्रसार भी जलप्रदूषण के कारण हो चुका है । आन्त्र में क्रमि भी हो जाते हैं । विदेशों में जलाशय को प्रदूषण से बचाये रखने के लिए तालाब में स्नान के लिए प्रवेश करने से पहले शरीर-परीक्षा की जाती है कि कोई छूतदार रोग कोढ़, सिफिलिस, गनोरिया, क्षयरोग-खाजदाद तो नहीं है । विदेशों में अत्यधिक स्वच्छता का प्रबन्ध करके छूतदार रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है । शुद्ध स्वच्छ पेय जल का व्यापक प्रबन्ध गांवों में किया जाना चाहिए । स्कूलों में बालक-बालिकाओं की स्वास्थ्य-परीक्षा-मलमूत्र-

थूक-रक्त परीक्षा किये जाने का व्यापक प्रबन्ध होना चाहिए।

आधुनिक आहार में चीनी का उपयोग अधिक मात्रा में किया जाने लगा है। रोज के आहार में मिष्टान्न-लड्डू-पेड़ा-बरफी, गुलाब जामुन, रसगुल्ला-जलेबी-इमरती-गुड़-खाण्ड का प्रयोग सबेरे से शाम तक दावतों में या निजी नाश्ते में करते—ही रहते हैं चीनी का प्रयोग ग्रीष्म में रोज शर्बत के रूप में भी करते हैं। इतना अधिक चीनी का प्रयोग स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। यह चीनी का अतियोग है। आधुनिक सभ्यता के महारोगों में—हृदय रोग, प्रमेह, रक्तभार वृद्धि, मधुमेह की जो बहुलता दीख पड़ रही है उसका एक कारण मिष्टान्नों का अत्पाहार भी है।चीनी या मिष्टान्नों के दैनिक अत्याहार से अजीर्ण-अम्लपित्त (एसिडिटी) तथा जोड़ों का दर्द भी आम लोगों में देखने को मिल रहा है। आन्त्र या आमाशय में चीनी-मिष्टान्न का फर्मेन्टेशन होकर वहां अम्लता-अम्लपित्त - अम्लोद्‌गार तथा आन्त्र में बदबूदार गैस पैदा होती रहती है जिससे बदबूदार अपानवायु का निष्कासन होता रहता है। चीनी से आमाशय आन्त्र में क्षोभ पैदा होता है जिससे अजीर्ण-जीर्ण आमाशयशोथ होकर अम्लपित्त के लक्षण पैदा होते हैं। आमवात-सन्धि-शूल-उरूस्तम्भ के रोगियों को चीनी मिष्टान्न का त्याग जब कराया गया तो रोग के लक्षणों में शान्ति पायी गयी है। उरूस्तम्भ का लक्षण मधुमेह रोगियों में पाया गया है, जोड़ों का दर्द भी मधुमेह रोगियों में देखने को मिलता है। **चीनी या मिष्टान्नों के अत्याहार से किशोरों, युवकों में स्वप्नदोष** का रोग भी बहुलता से पाया गया है—स्वप्नदोष के रोगियों को जब मिष्टान्नों का प्रयोग रोक दिया गया तब मैंने देखा कि उसका स्वप्नदोष होना भी बिलकुल कम हो गया है। **बहुमूत्र रोग** भी मिष्टान्नों तथा चीनी के शर्बतों-कोल्डड्रिंक से होता पाया गया है—किसी - किसी को मिष्टान्नों के अत्याहार से आन्त्र-कृमि भी होते हैं और आन्त्रकृमि होकर अजीर्ण भी सदा बना रहता है और ऐसे अजीर्ण के रोगियों में बहुमूत्र **रोग भी पाया जाता है जिसमें मैंने कुचला के योगों का** प्रयोग करके लाभ पाया है। किसी-किसी को मिष्टान्नों का अत्याहार अल्प कर देने से आकृति पर मुंहासा-युवान पिडका रोग शान्त होती पाया गया है। मिष्टान्नों के अत्याहार से नजला रोग के लक्षण—बाल सफेद होना, बाल झड़ना, आँखों की रोशनी कम होना, सदा कास प्रतिश्याय बना रहना, दाँत सड़ना (कृमिदन्त), पेशाब ज्यादा होना, स्वप्न में वीर्यपात होना, प्रमेह-मधुप्रमेह अनेक रोग हो सकते हैं। दान्तों का पायोरिया भी मिष्टान्नों का प्रयोग अल्प कर देने से शान्त हो जाता है। मिष्टान्नों के अति भोजन से आयु अल्प होकर वृद्धावस्था लक्षण—बालश्वेत होना, कृमिदन्त होकर दान्त गिरना—असमय में ही प्रकट होने लगते हैं।

आधुनिक आहार में पकवान-पूरी-पकौड़ी का प्रयोग भी अतिमात्रा में होने लगा है। पकवानों की दावत शादियों में—पार्टियों में खूब होने लगी है। आज जो मेदोवृद्धि - स्थौल्य रोग-मोटापा रोग से ग्रस्त होकर लोग तन्द्रालु दीर्घ-सूत्री-आलसी होते जा रहे है उसके मूल में पकवानों का अतिभोजन ही है। मोटापा शरीर को बदसूरत-भद्दा, फूहड़ बना देता है। मोटापा के कारण थोड़ा-सा व्यायाम-पैदल चलना-सीढ़ी चढ़ना, पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ना आदि कारणों से ही सांस फूलने लगती है, हांफने लगता है (क्षुद्रश्वास)। अतिरक्त चाप, हृदयरोग, हार्ट अटैक के कारणों में पकवानों का अत्याहार भी है। आज का फैशन भी कहता है कि शरीर की खूबसूरती में मोटापा बाधक है। औरतों में बन्ध्यापन का कारण उनका मोटापा भी है। मोटापाग्रस्त रोगियों पर आयुर्वेदिक औषधियों का प्रभाव मैं प्रयोग करके देख रहा हूं कि मेदोवृद्धि स्थौल्य रोग-मोटापा रोग पर आयुर्वेद की औषधियां चमत्कारी प्रभाव दिखाती हैं। आज के सौन्दर्य प्रसाधन के युग में अनेक स्त्री-पुरुष मोटापा रोग की शिकायत लेकर मेरे पास चिकित्सा कराने के लिए आते हैं। मैंने उन मोटापाग्रस्त रोगियों पर आयुर्वेदिक औषधियों का प्रभाव सफल पाया है, जबकि एलोपैथी में थायरायड एक्सट्रेक्ट सदृश औषधियां अनुकूल नहीं पड़ती हैं। **आयुर्वेदिक औषधियों में चन्द्रप्रभावटी आरोग्यवर्धिनीवटी, योगराज गुग्गुलु, लौह भस्म, कैशोर गुग्गुलु का प्रभाव मोटापा कम करने के लिए** मैंने चमत्कारी पाया है। पाश्चात्य-चिकित्सा ने मेदोवृद्धि, स्थौल्य रोग, मोटापा रोग के लिए पथ्यों-अपथ्यों का वर्णन नहीं किया है डाक्टर लोग सिर्फ **फैट** का त्याग करने को कहते हैं

जबकि आयुर्वेद ने मोटापा कम करने के लिए सैकड़ों पथ्य-अपथ्य का उपदेश किया है। उदाहरणार्थ –

मेदोवृद्धि में पथ्य--परिश्रम, (व्यायाम), रात्रि जागरण, मैथुन, शास्त्रचिन्तन, उबटन (उद्वर्त्तन), लंघन, विरेचन, आतपसेवन जन्य स्वेदन, रक्तमोक्षण, अश्व, हस्ति वाहनों पर सवारी करना, पर्यटन करना, अपतर्पण-कर्षण करना (डाइटिंग), पुराना कोदो-सांवा-नीवार-प्रियंगु, जौ, कुलथी, चना, मसूर मूंग, अरहर, शहद, धान की खील (लाजा), तीखा-कड़वा-कसैला पदार्थ, तक्र, भुना बैंगन, त्रिफला, गूगल, लौह भस्म, त्रिकटु, सरसों का तैल, इलायची, रूक्ष द्रव्य, तिल तैल, पत्रशाक (मेथी-पालक-बथुआ) अगुरुलेपन, उष्णजल, शिलाजीत, भोजन पूर्व जल पीना— ये सब मेदोवृद्धि को नष्ट करने वाले होते हैं।

मेदोवृद्धि में अपथ्य—शीतल जल स्नान, रसायन द्रव्य, नवीन अन्न जैसे—शालि-गोधूम, आस्या सुख, स्वप्नसुख, दुग्धविकृति जैसे—मलाई-रवड़ी-मावा, इक्षु विकृति जैसे— चीनी, खांड, गुड़ राब, शक्कर, उड़द, सौहित्य (संतृप्ति से भोजन), स्नेहन-अभ्यग-स्नेहपान, मत्स्य-मांस दिवाशयन, पुष्पमाला, सुगन्धि द्रव्य, मधुर द्रव्य, (मिष्टान्न) भोजन पश्चात् जल पीना, वमन कर्म (मूर्च्छा की सम्भावना से) इन सब को मेदोवृद्धि में नाति स्थूल-नातिकृश देह होने के लिए त्याग देना चाहिए।

प्रमेह में अपथ्य—मूत्र वेग सन्धारण, धूम्रपान, स्वेदन करना (मूर्च्छा की सम्भावना से), रक्त मोक्षण, (मूर्च्छा की सम्भावना से), सदा आसन सुख, दिवाशयन, नवीन अन्न, दधि, आनूप मांस; निष्पाव (लोबिया), पिष्ट अन्न (पिट्ठी के पकवान), मैथुन, तुम्बी, ताड़ के फल की अस्थि की मज्जा, विरुद्ध पदार्थोंका सेवन, कूष्माण्ड, ईख, दूषित जल मधुर-अम्ल-लवण रस, अभिष्यन्दि पदार्थ, पिच्छिल पदार्थ कफकारक पदार्थों को प्रमेह रोगी त्याग देवे।

प्रमेह पिडका में अपथ्य—अभिष्यन्दि-क्लेदी-पिच्छिल अन्नपान, रूक्ष पदार्थ, व्यायाम, रात्रिजागरण, मैथुन, वेगरोध अर्थात् वातप्रकोपक आहार-विहार, तीक्ष्ण द्रव्य (मूर्च्छा पैदा होने की सम्भावना से), दुर्जर भोजन, मदिरा, मछली, प्याज, लहसुन, तीक्ष्ण सूर्य सन्ताप अग्नि सन्ताप को प्रमेह पिडका का रोगी त्याग देवे।

'नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्य परः क्षमावान, आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥"

और भी

तथा ब्रह्मचर्य-निवात शयन-उष्णोदक स्नान-निशा स्वप्न व्यायामाः च एकान्ततः पथ्यतमाः(सु०सू०अ०२०-५)

बैद्यनाथ
बसन्त
कुसुमाकर रस
इसके सेवन से मस्तिष्क व
हृदय स्वस्थ एवं बलवान होते हैं।

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

(छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

उदर

वैद्य रणजित राय देसाई

सामान्य परिचय—एकाङ्गशोथ के प्रकारों में प्रसिद्ध यह रोग है। एकाङ्गरोगों का संक्षिप्त परिचय चरक ने त्रिशोथीय अध्याय (सू० २८) में दिया है। इसमें उदरों के सम्बन्ध में कहा है—

यस्य वातः प्रकुपितस्त्वङ् मांसान्तरमाश्रितः।
शोथं संजनयेत्कुक्षावुदरं तस्य जायते ॥

च० सू० १८।३१

वायु प्रकुपित होकर कुक्षि (उदर) की त्वचा तथा मांस के मध्य में स्थित होकर उदर में उत्सेध (शोथ) उत्पन्न करे तो इस विकृति को उदर कहा जाता है।

यों जैसा कि आगे शास्त्र के आधारानुसार देखेंगे इस रोग में तीनों दोषों का प्रकोप हुआ करता है। प्रधान दोष के अनुसार दोषज उदरों का नामाभिधान भी पृथक्-पृथक् किया गया है। तथापि इस पद्य में एक मात्र वायु का ही कारणतया निर्देश किया गया है। अतः इस रोग में **वायु का प्राधान्य** स्पष्ट है।

उदर में शोथ का आश्रय स्थान त्वचा एवं मांस का मध्य कहा गया है। इसमें स्थिति यह होती है कि वास्तव में तो दोष का संचय उदर के अन्तर्गत अवयवों में होता है। तथापि उनका पीडन (दबाव) उदर की सामने की दीवाल (एण्टीरीअर एब्डोमिनल वॉल) पर आता है और वही उदर रोगों में उत्सेध का कारण होता है।

संक्षिप्त संप्राप्ति—वाग्भट ने उदर रोगों की चिकित्सा के आरम्भ में ही इन में विरेचन का अग्रस्थान दर्शाने के लिए इनकी संप्राप्ति संक्षेपतः की है। उस पर संक्षेपतः दृष्टिपात करना उचित होगा।

दोषातिमात्रो पचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्।
संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥

—अ० हृ० चि० १५।१

अन्य रोगों की तुलना में उदर रोगों में दोषों का संचय सविशेष होता है; अथच इनमें विभिन्न स्रोतों के छिद्रों का दोषकृत स्थान संश्रयवश अवरोध हुआ करता है। अतः उदर रोगों में रूग्ण को नित्य विरेचन देते रहना चाहिए।

उदरों की सामान्य संप्राप्ति[1]

अग्नि दोषान्मनुष्याणां रोगसंघाः पृथग्विधाः।
मलवृद्ध्या प्रवर्तन्ते विशेषादुदराणि तु ॥

—च० चि० १३।६

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ विशेषादुदराणितु।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥

—अ० हृ० नि० १२।१; भा० प्र० मा० नि०

वैसे तो रोगमात्र अग्नि के मन्द होने से होते हैं, तथापि उदरों की उत्पत्ति में **अग्नि की मन्दता विशेषतः कारणभूत** हुआ करती है। पुरुष का अग्नि पहले से मन्द हो, तथापि वह मलिन (मलों और दोषों की वृद्धि करने वाले) अन्नपान-का सेवन करे तो अन्नपान का पचन न होने से—किसी भी प्रकार का अजीर्ण होने से—दोषों एवं पुरीष का संचय होता है।

संक्षेपतः कहे इस वक्तव्य का विस्तार से निरूपण करते आचार्य, विशेषतः चरकाचार्य, कहते हैं अति दुर्बल, अग्निवाला (**अत्यन्तोपहताग्नि**) पुरुष अहिताहार करे; उदाहरणतया, अति उष्ण, अम्ल, लवण, बिदाही, क्षार, अति शुष्क, पूर्ति (दुर्गन्धयुक्त, सड़ा-गला), रूक्ष तथा अशुचि (अपवित्र) भोजन किया करे; समशन, अत्यशन (अति पूरण), अध्यशन, विरुद्धाशन किंवा विषमाशन

---

[1] देखिए: च० चि० १३।६-१५; सु० नि० ७।५-७; अ० हृ० नि० १२।१-३; भा०प्र० म०चि० ४०।१-२; मा० नि० ३५।१-२।

करता रहे; स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन-इन कर्मों का मिथ्या-चरण (असम्यक् करण) उसके शरीर में हुआ हो (कर्म-विभ्रम); अथवा । और वमनादि कर्मों के अनन्तर करणीय संसर्जन-क्रम मिथ्या(आयोग्य विधि से) हुआ हो; वह वेगों का धारण किया करता हो; उसके शरीर में रूक्षता की वृद्धि हुई हो; प्लीहा (एवं यकृत्), अर्श तथा ग्रहणी इन रोगों से पुरुष के पीडित होने पर उनका उपचार न कराया जाए; अथवा इन रोगों के योग से उसका शरीर कृशता को प्राप्त हो गया हो; उसके शरीर में आम का अनुबन्ध (सम्बन्ध) हो; उसके स्रोतों की दुष्टि हुई हो; उसके (शरीर को किसी) प्रकार का अति क्षोभ हुआ हो; अर्श, बाल, अथवा पुरीष से उसके आमपच्यमानाशय में अवरोध हुआ हो; अथवा उसके अन्त्रों में स्फुटन (चीरा) किंवा भेदन (छिद्र) हुआ हो—तो इन कारणों के योग से वह आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण अथवा रसशेषाजीर्ण इनमें से किसी अजीर्ण से पीडित होता है; इन अजीर्णों के परिणामस्वरूप उसके शरीर में मलों का (तीनों दोषों अथच पुरीष का) अतिमात्र संचय होता है; इसके अतिरिक्त पुरुष पापकर्म-रत हो तो प्रकुपित हुए दोष कोष्ठ में स्थान-संश्रय कर उदर में गुल्म (झाडी)-सदृश उत्सेध उत्पन्न करते हैं । इस रोग का उदर यह अभिधान है ।

कोष्ठगत दोष उदर का उत्सेध किस प्रकार करते हैं इसका विस्तरण करते आचार्य कहते हैं—दुष्ट (प्रकुपित) हुए वात-प्रभृतिदोष ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी जलवह एवं रसवह स्रोतों को रूद्ध करते हैं—प्राकृत स्थिति में उनमें रस एवं अब्धातु का वहन जितनी मात्रा में तथा जिस वेग से होना चाहिए उसमें न्यूनाधिक प्रमाण में ह्रास करते हैं, साथ ही स्वेदवह स्रोतों को (स्वेदोत्पादक ग्रंथियों-समेत स्वेदवहही नलिकाओं को) भी रूद्ध करते हैं—जिस मात्रा में इन स्रोतों द्वारा स्वेद का प्रवर्तन होना चाहिए उसमें न्यूनाधिक ह्रास करते हैं । पुनश्च. प्राण, अपान एवं अग्नि को अति दूषित कर देते हैं; अन्ततः, त्वचा तथा मांस के अन्तरगत अवकाश में (इन अवयवों की सन्धि में) स्थित हो कुक्षि (उदर) को आध्मात करते हुए (फुलाते हुए) तत्-तत् उदर को उत्पन्न करते हैं ।

सुश्रुत ने इस संप्राप्ति को उपमान प्रमाण द्वारा अधिक विशद करते कहा है—

> कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो
> निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्न ।
> त्वचः समुन्नम्य शनैः समन्ता-
> द्विवर्धमानो जठरं करोति ॥
>
> —सु० नि० ७।६-७

उपस्नेह न्याय से—उपस्नेह के समान, अर्थात् जिस प्रकार नवीन घट में बाहर की ओर स्थित अणु छिद्रों (स्रोतों) से जल का स्रवण हुआ करता है, तद्वत् अन्नसार (रस) कोष्ठ—ग्रहणी—से स्रुत होकर ग्रहणी के बाहर संचित एवं क्रमेण वृद्धि को प्राप्त होता हुआ वायु के वेग से प्रेरित होकर, जैसा कि ऊपर कहा, त्वचा तथा मांस की संधि में स्थान-संश्रयपूर्वक उदर (पेट) को आध्मापित कर (फुलाकर) उदर रोगों को उत्पन्न करता है ।[1]

डल्हन कहते हैं—इस प्रकरण में 'कोष्ठ' शब्द से पचन एवं रस, दोष, मूत्र तथा पुरीष के विभजन की क्रिया जहाँ हुआ करती है उस ग्रहणी का ग्रहण होता है । कारण, संप्राप्ति में उपस्नेह न्याय से रस का बहिःस्रवण होने का उल्लेख हुआ है और यह रस सार-किट्ट विभजन होने के अनन्तर ग्रहणी में ही स्थित होता है ।

---

[1] यहां 'उपस्नेह' शब्द से 'ग्रहणी में से अब्धातु के बाहर स्रवण' यह अर्थ लिया है । अन्यत्र, गर्भ का पोषण किस रीति से होता है इस वस्तु का निरुपण करते हुए भी आचार्य सुश्रुत ने इस 'उपस्नेह' शब्द का ही व्यवहार किया है । (देखिए : सु० शा० ३।३१) । वहाँ कहा है, गर्भ के अङ्ग-प्रत्यङ्ग बन जाने पर तो नाभी नाड़ी द्वारा गर्भ को पोषक रस-रक्त प्राप्त होता है, परन्तु उसके पूर्व गर्भ के चारों ओर जो धमनियाँ होती हैं उनके 'उपस्नेह से – उनमें से हुए रस-रक्त के क्षरण से—गर्भ पोषण को प्राप्त करना है । इस वचन में आए उपस्नेह का अर्थ बताते हुए टीकाकार डल्हन कहते हैं—जिस प्रकार जलपूर्ण जलाशय का उपस्नेह तटवर्ती वृक्ष-समूह की पुष्टि किया करता है वही स्थिति अवयवों, अपरा एवं नाभिनाड़ी बनने के पूर्व गर्भ की पुष्टि में हुआ करती है । तात्पर्य, भूमि में स्थित क्लेद का ग्रहण वृक्षों के मूलों द्वारा होती है वैसे ही गर्भ के चतुर्दिक् स्थित रस-रक्त का ग्रहण गर्भ के अंश करते हैं । डल्हन का मूल वचन यह है—

पूर्णसरःसलिलोपस्नेहहस्ती रजाति तरुकदम्बके जीवयति व

इस विकार को 'उदर' क्यों कहा गया है इसकी विशदता करते टीकाकारों ने कहा है कि यह रोग उदर में स्थित होने से इसे उदर (पर्याय-जठर) कहा गया है। (यथा, ग्रहणी में स्थित हुए दोषों से उत्पन्न प्रसिद्ध विकृति को इसी न्याय से ग्रहणी नाम ही दिया गया है।)[1]

उदरों की द्विविध संप्राप्ति—च० चि० १३।२० की टीका में चक्रपाणि कहते हैं—आचार्य चरक ने इस अध्याय में उदरों की संप्राप्ति ९।१५ पद्यों में तथा २० वें पद्य में इस प्रकार दो स्थलों पर बताई है। इसका अर्थ यह है कि प्रथमोक्त संप्राप्ति सभी उदरों की सामान्य संप्राप्ति है, जबकि अनन्तरोक्त संप्राप्ति पृथक् (अर्थात् जलोदर की) है। (सुश्रुत ने उपस्नेह की उपमा देते हुए जो संप्राप्ति बताई है वह भी निश्चित ही जलोदर के प्रति ही संकेत करती है।)

द्रव-संचय के दो प्रकार—सुश्रुत के टीकाकार डह्लन ने जलोदर की इस संप्राप्ति की टीका में एक अति उपयोगी विधान किया है। वे कहते हैं—स्रोतों की इस दुष्टि के पृथक्-पृथक् स्वरूप हुआ करते हैं: या तो उनके मुख अर्थात् छिद्र या विवर रुद्ध (सवृत) होते हैं या खुले (विनिवृत्त)। इस वक्तव्य को उदाहरणों द्वारा विशद करते डह्लनाचार्य ने चरक ने स्वेदवह स्रोतों की दुष्टि के जो लक्षण गद्यरूप में बताए हैं उन्हें पद्यबद्ध कर उद्धृत किया है। (कदाचित् ये पद्य ग्रंथान्तर के भी हों। कारण, संपादक ने इन पद्यों के स्थल का निर्देश किया नहीं है।) इस पद्य में चरक ने स्वेदवह स्रोतों की दुष्टि के लक्षणों में स्वेद का अभाव अथवा अति स्वेद इन दो परस्पर विरुद्ध लक्षणों का उल्लेख किया है। इसका फलितार्थ यह है कि कि स्वेदवह स्रोत अवरुद्ध हों तो पुरुष को स्वेदाभाव (एनहायड्रोसिस) होता है। इसके विपरीत स्वेदवह स्रोत खुले (विस्तृत) हों तो पुरुष को स्वेदाधिक्य (हायपर हायड्रोसिस) होता है। कुष्ठों में भी वे दो परस्पर-विरुद्ध लक्षण हुआ करते हैं। डह्लन का मूल वचन यह है—**दुष्टिश्चैतेषां (रसस्वेदाम्बुवहानां स्रोतसां) संवृतमुखत्वेन विनिवृत्तमुखत्वेन च। तदुक्तं चरके – स्वेदवाहिषु दुष्टेषु पारुष्यं लोमहर्षणम्। अतिस्वेदो न वा स्वेदो परिदाहश्च जायते।** (सु० नि० ७.६ पर)।

आधुनिकों ने जलोदर की संप्राप्ति के जो दो स्वरूप या प्रकार कहे हैं उनमें तथा जलोदर की डह्नोक्त व्याख्या में अतिशय साम्य है। आधुनिक मतानुसार जलोदर उदरधरा कला (पेरीटोनियम) के अवकाश में अब्धातु के संचयवश होता है। यह संचय दो प्रकार से हो सकता है। सामान्यतया, अन्य कलाओं के समान उदरधरा कला में भी द्रव स्रुत होता है तथा कला में ही स्थित अन्य छिद्रों द्वारा उसका शोषण (ग्रहण, एब्जॉर्शन) होता रहता है। परिणामतया, कला के आन्तर अवकाश में द्रव धातु की मात्रा समावस्था में रहती है। कारणवश, इस कला में अन्दर की ओर पाक (इन्फ्लेमेशन) हो जाए तो (जैसे मुखपाक में लालास्राव अधिक होता है तद्वत्) उदरधरा कला के स्रावी छिद्रों का विस्तारण होने से द्रव का स्राव शोषण की तुलना में अधिक होता है। इस स्थिति में स्वभावतः उदरधरा कला के अवकाश में उसकी (द्रव्य धातुकी) मात्रा अधिक हो जाती है। इसी विकृति को जलोदर यह संज्ञा है।

जलोदर के द्वितीय प्रकार में अब्धातु का ग्रहण करने वाले छिद्र अवरूद्ध होते हैं। यह अवरोध मूल में यकृत में हुआ करता है। इस वक्तव्य की थोड़े में विशदता कर लें। जैसा कि सुविदित है, उभय सक्थियों (अधः शाखाओं, पैरों) तथा उदरावयवों का सिरागत रस-रक्त हृदय की दिशा में गमन करता हुआ सीधा हृदय में नहीं जाता; प्रत्युत प्रथम समग्र रस-रक्त यकृत में जाता है। वहाँ इस पर तत्-तत् शोधन क्रिया होती है, तत्पश्चात् यह हृदय में जाता है। कथंचित् यकृत् में अवरोध हो तो उक्त रस-रक्त पूर्ण मात्रा में यकृत् में जा नहीं पाता। परिणामस्वरूप, उसका संचय उदरावयवों एवं सक्थियों की सिराओं में होता है। संचय के स्थान-भेद से—अन्य शब्दों में संप्राप्ति के भेदवश—इस विकृति के परिणामवश विविध रोग उत्पन्न होते हैं। यथा, उदरावयवों की सिराओं में रस रक्त का संचय हुआ हो तो इन स्थूल सिराओं की पूरणी इनमें रस-रक्त का प्रवाह लाने वाली—अणुतम सिरा

---

[1] टीकाकारों ने इस प्रकरण में कोई शब्द किन कारणों से अन्य अर्थ का अभिधायक (वाचक) हो जाता है इस वस्तु के चार कारणों का सूचक **वाचस्पति मिश्र** का यह पद्य उद्धृत किया है:

वास्त्यतद्धर्मताभ्यां च तत्समीपतयाऽपि च।
वृत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरेषा चतुर्विधा॥
—आतंकदर्पण; निर्णयसागरी सुश्रुत में पादटिप्पण।

में भी वह संचित हो जाता है। संचय की मात्रा अत्यधिक हो जानेपर अणुतम सिराएं जो एक ही मंडल (कोट) से बनी होती हैं, उनमें से रस-रक्त के द्रव्य भाग का क्षरण होता है। रस-रक्त का यह क्षरण उदरधरा कला के अन्तराल में हो तो इसके कारण जलोदर होता है। (सक्थियों में इस प्रकार रस-रक्त का संचय हुआ हो तो उभयपादशोथ होता है। मलद्वार की सिराओं में इस प्रकार रस-रक्त संचित हों तो संचयवश सिराओं के फूल जाने से अर्श उत्पन्न होते हैं।)

अग्निमांद्य से दोषत्रय का प्रकोप—उदरों की उपर्युक्त संप्राप्ति में अग्नि की मन्दता का उल्लेख दो बार हुआ है। प्रथम तो, अग्नि यों भी मन्द होता है। पश्चात् अग्निमान्द्यवश और अजीर्ण से तीनों शारीर दोषों का प्रकोप होता है। संप्राप्ति-क्रम से प्रकुपित हुए ये दोष मन्द अग्नि को मन्दतर (**प्राणाग्न्पानान् संदूष्य**) कर देते हैं। (देखिए —च० चि० १३।१० पर चक्रपाणि; अ० हृ० नि० १२।२ पर अरुणदत्त तथा मधुकोश टीका)

सुश्रुत ने उदरों के अतिसंक्षिप्त हेतुभूत निदान में अहिताशन का ही प्रायः स्मरण किया है। टीकाकार गयदास कहते हैं कि, वैसे तो अग्नि को मन्द करनेवाले कारण अन्यान्य भी हैं, यद्यपि उनमें अहिताशन प्रधान है। (देखिए: सु० नि० ७।५ की टीका)।

चरक में उदरों की संप्राप्ति बताते आरम्भ में ही आचार्य ने यह पद्य दिया है—

> **अग्नि दोषान्मनुष्याणां रोग संघाः पृथग्विधाः।**
> **मलवृद्ध्या प्रवर्तन्ते विशेषेणोदराणितु ॥**
>
> —च० चि० १३।९

इसकी टीका में चक्रपाणि जी कहते हैं

अग्नि दोषेणात्राग्नि मान्द्यमेव विवक्षितम्। तस्यैवेहोदर-कारणदोषत्रय कर्तृत्वमुक्तम्। 'वर्षास्वग्नि बले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः (च० सू० ६। ३४)। मधुकोश-कार भी कहते हैं **अग्निमान्द्य च दोषत्रयजनकम्। यदुक्तं 'वर्षा स्वग्निबले हीने कुप्यन्ति पवनादयः ॥**

तात्पर्य, चरक-वाक्य में आया उदरमात्र का कारण-भूत 'अग्निदोष' शब्द 'अग्निमान्द्य' का वाचक है। (अन्यत्र तो स्वयं 'अग्निमान्द्य' या 'मन्द अग्नि' शब्दों कर आचार्यों ने कण्ठरव से निर्देश किया है।) यह अग्नि-मान्द्य तीनों दोषों की वृद्धि करने वाला है। स्वयं आचार्य ने ऋतुओं की चर्चा के प्रकरण में ऊपर धृत पद्य में अग्नि के मन्द होने से तीनों दोष प्रकुपित होते हैं, यह विधान किया है। काश्यप ने अम्लपित्त के प्रकरण में इतनी ही स्पष्टता से अग्नि मन्द हो तो तीनों दोषों की वृद्धि होने का निर्देश किया है। यह विषय हम इसी लेखमाला में पहले अम्लपित्त के प्रकरण में दर्शा भी आए हैं।

अग्निमान्द्य में''''मूलतः जठराग्नि मन्द होती है। इसके मन्द होने से सेवित अन्नपान से स्वभावतः अन्नरस अल्प मात्रा में बनता है। उसके किट्ट की ही मात्रा अधिक होती है। अन्नपान के तीन किट्ट हैं—पुरीष, स्वेद-मूत्र एवं वायु। इस प्रकार जठराग्नि मन्द होने के परिणामस्वरूप अन्नपान के अन्य किट्टों के साथ वायु की वृद्धि या प्रकोप होता है।

अब जठराग्नि मन्द हो तो इस लेखमाला के आरंभ में, अथच, निदान चिकित्सा हस्तामलक के प्रथम खण्ड में दर्शाये प्रकार से धात्वग्नियाँ भी मन्दता को प्राप्त होती हैं। इन धात्वग्नियों में रसाग्नि तथा रक्ताग्नि भी हैं। रसाग्नि मन्द हो तो अन्नरस से रस धातु अल्प बनता है, उसका किट्ट या मल कफ ही अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। अन्य शब्दों में अग्नि की मन्दता से कफ की वृद्धि या प्रकोप होता है।

इसी प्रकार रक्तधात्वग्नि की मन्दता होने से रस-धातु में से रक्त धातु अल्प मात्रा में बनता है। उसके मल भूत पित्त की उत्पत्ति ही अधिक मात्रा में होती है। इस प्रकार अग्नि की मन्दता से तीनों दोषों की वृद्धि हुआ करती है। अतएव अग्निमान्द्य को आचार्यों ने विविध व्याधियों की उत्पत्ति का मूल माना है।

चक्रपाणि तथा मधुकोशकार कहते हैं—अग्निमान्द्य के समान मलिन अन्न भी तीनों दोषों का प्रकोपक है। परन्तु इनकी दोष-प्रकोपकता पृथक-पृथक होती है। दोनों ही अपने-अपने ढंग से दोषों को कुपित किया करते हैं। इस प्रकार दोषों के प्रकोप के दो बलवान् कारण एकत्र होने से उनके प्रकोप की मात्रा भी अतिशय हुआ करती है। संप्राप्ति में आया 'मलसंचयात्' शब्द इसी वस्तु के बोधनार्थ रखा गया है।

स्वेदवह स्रोतों का अवरोध होने से अप्रवृत्त अब्धातु अन्दर प्रविष्ट होकर अन्तरावयवों में अब्धातु की वृद्धि करता हुआ उदरों को उत्पन्न किया करता है। (देखिए—

मधुकोश)। इस स्थिति में जलोदर ही हो, यह निश्चित नहीं मानना चाहिए। उदरावयवों में द्रवधातु की मात्रा अधिक (शैथिल्य, फ्लेबीनेस) हो जाने से उनकी प्राकृत क्रिया में विक्षेप पड़ता है। इस स्थिति की यथावत् परीक्षा और विनिश्चय कर उदरों में मूत्र तथा स्वेद के प्रवर्तनार्थ उचित उपाय करना प्राप्त होता है।

बालों से आमपक्वाशय में अवरोध

सामान्यतया यह स्थिति मादा प्राणियों में देखी जाती है। वे अपने बच्चों का शरीर स्वच्छ करने के निमित्त उनकी त्वचा को जिह्वा से चाटती रहती हैं। इस क्रिया में त्वचा के कोमल रोम उखड़कर मादाओं के पेट में जाते हैं, और काल-क्रम से संचित होकर अवरोध उत्पन्न करते हैं।

मानवों में, विशेषतः स्त्रियों में बाल खाने के विकृत स्वभाववश यह दृष्टि हुआ करती है। आधुनिकों ने भी इस विकृति का दर्शन किया है। बालों के अतिरिक्त गोले में मुक्त अन्न की वनस्पतियों के रेशे आदि भी संचित होते हैं। इसके अनेक नाम हैं। यथा, हेअर बाल, हेअर कास्ट, हेअर मास, ट्राइकोबेजोर (इसमें पूर्व पद का अर्थ 'बाल' होता है), फायटोट्रायको बेजोर तथा ट्रमेर पेलुझ।

(सावशेष)

प्रसव के बाद
अवश्य सेवनीय

बैद्यनाथ
दशमूलारिष्ट

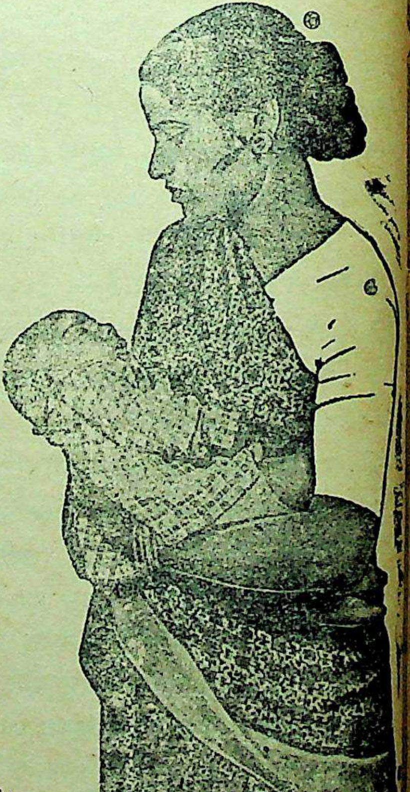

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता·पटना·झाँसी·नागपुर·नैनी (इलाहाबाद)

बैद्यनाथ दशमूलारिष्ट सब जगह, एक समान, एक स्वर और एक ही मूल्य पर मिलता है।

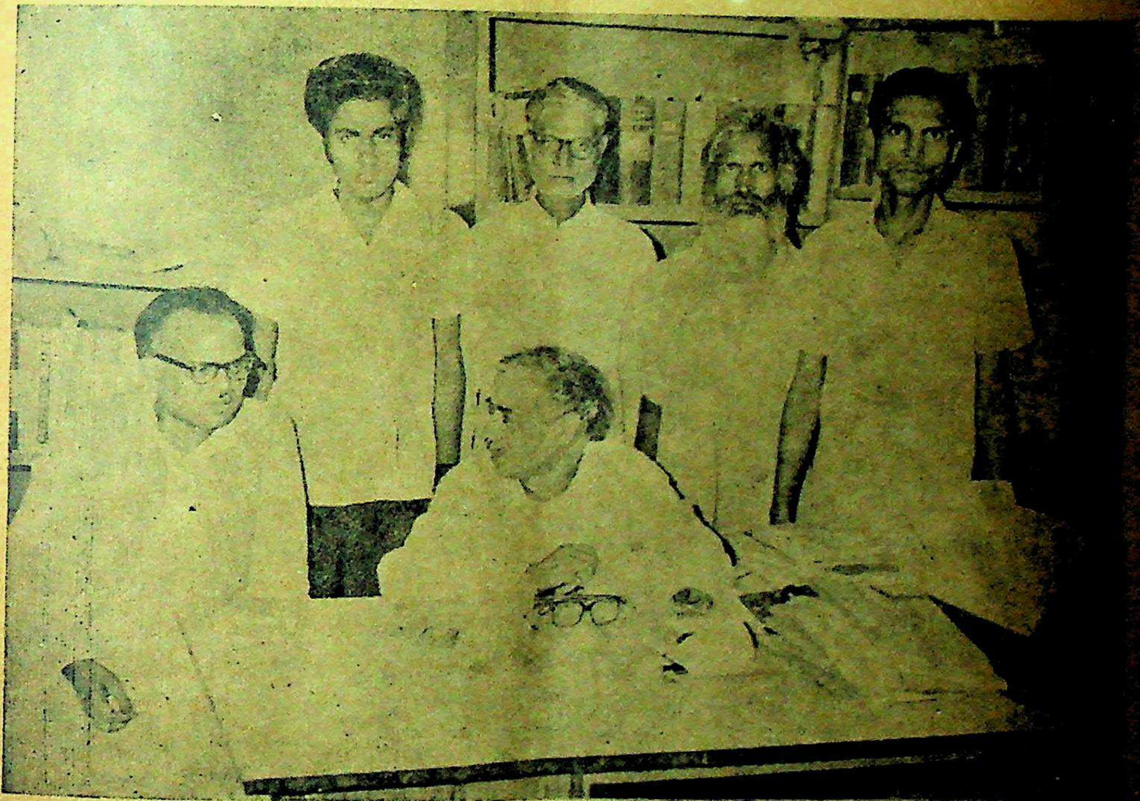

'सचित्र आयुर्वेद' कार्यालय का एक चित्र । चित्र में 'सचित्र आयुर्वेद' के संरक्षक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा शर्मा, एवं स० आ० के संपादक श्रीकान्त शास्त्री वार्त्ता में संलग्न दिखायी दे रहे हैं । पीछे स० आयुर्वेद कार्यालय कर्मीगण खड़े हैं ।

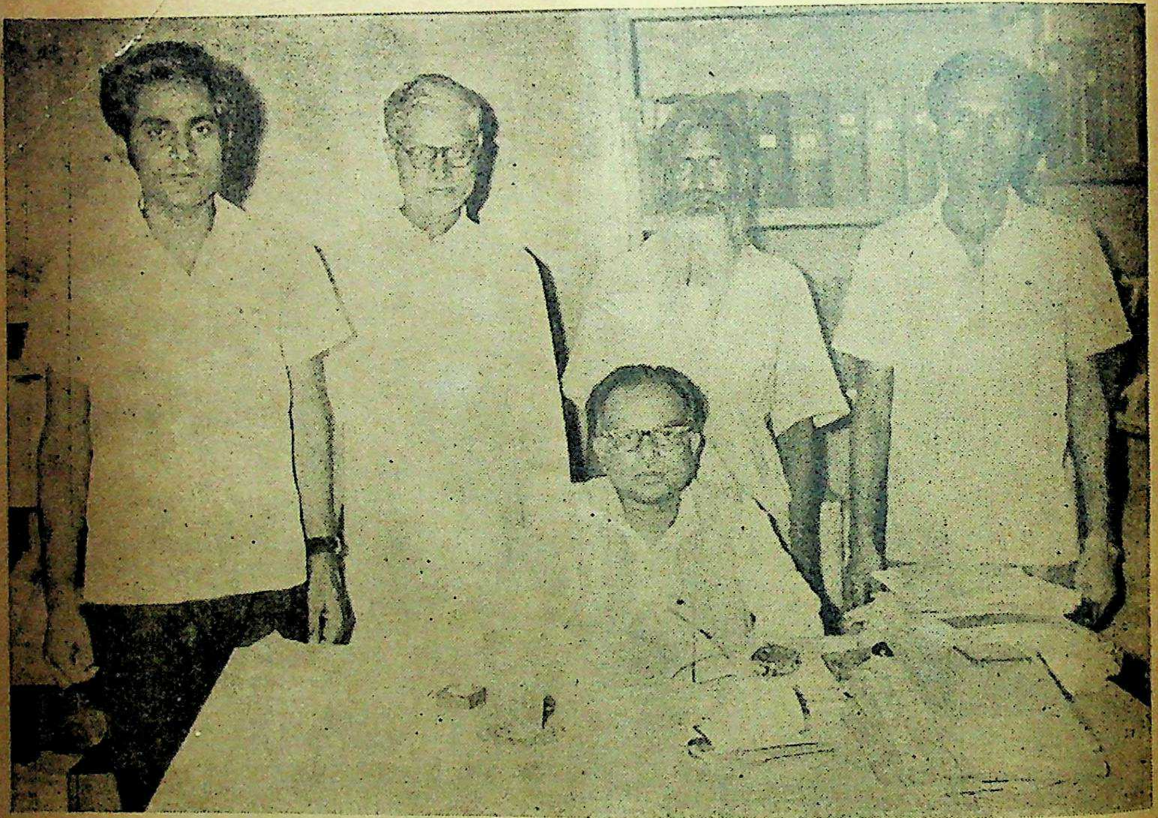

'सचित्र आयुर्वेद' कार्यालय के कर्मियों का समूह चित्र। चित्र में स० आयुर्वेद के संपादक बैठे हैं और पीछे कर्मीगण क्रमशः (बायीं ओर से) श्री विमलचन्द्र झा, श्री सच्चिदानन्द झा, श्री श्रीराम एवं श्री काशीनाथ खड़े हैं।

संशोधन एवं पंचकर्म चिकित्सा का महत्व

वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे

संशोधन के प्रति नैसर्गिक प्रवृत्ति

संशोधन-यह शरीर की एक अत्यावश्यक प्रवृत्ति है। शरीर स्वयं ही अपने दुष्ट तत्वों को बाहर कर देने में प्रवृत्त रहता है। अहर्निश करोड़ों कार्य में प्रवृत्त रहनेवाले शारीरिक धातुओं में नित्य नवधातु का निर्माण जैसे जरूरी होता है वैसे ही नवागत धातुओं को स्थान देने के लिए जीर्णशीर्ण, कार्यहीन, थके हुए, खराब और दुष्ट धातुओं को अपनी जगह खाली करना भी अत्यावश्यक होता है। यह सृष्टि का प्राकृत नियम है। सृष्टि का अर्थ ही है सर्जन करन, सृजन करना और प्रकृति स्वयं नित्य नवसर्जन करती है—और प्राचीन जीर्णशीर्ण को उठा लेती है—नष्ट करती है। शरीर में भी इस यंत्रणा को सुचारु रूप से रखने के लिए त्रयोदश स्रोतस बने हुए हैं। ये स्रोतस तीन प्रकार के हैं। पहले तीन स्रोतस होते हैं जिनका—आभ्यन्तर घटकों को नवनिर्मिति के लिये पोषण देने के लिये पोषक तत्वों की पूर्ति करने से सम्बन्ध है। ये स्रोतस 'प्रवेशक' अथवा 'इंजेशन' (Ingestion) के स्रोतस हैं। इनमें प्राणवह स्रोतस, उदकवह स्रोतस, और अन्नवह स्रोतस ऐसे तीन स्रोत हैं। प्रथम स्रोत के द्वारा शरीर में वायुतत्वों का पोषण होता है, द्वितीय से उदक तत्वों का और अंतिम स्रोतस से अन्न तत्वों का पोषण धातु के लिये होता है।

इन तीनों स्रोतों द्वारा प्राप्त तत्वों को शारीरिक भावों में परिणमन करने का कार्य अन्य स्रोत करते हैं। इनमें रसवह, रक्तवह, मांसवह, मेदवह, अस्थिवह, मज्जावह, शुक्रवह इन धातुओं को वहन करनेवाले स्रोत समाविष्ट हैं। इन धातुओं की निर्मिति में उत्पन्न प्रदुष्ट तत्व तथा कार्योत्तर क्षीण हुए धातुओं को शरीर से बाहर कर देना यह शरीर का प्रमुख उद्देश्य रहता है। और इसमें 'निर्गम' अथवा विसर्जन करने वाले 'स्वेदवह, मूत्रवह तथा पुरीषवह' स्रोतों का समावेश होता है। इनके द्वारा प्रदुष्ट तत्व शरीर में से सतत बाहर निकाल दिये जाते हैं। किन्तु केवल इतने ही मार्ग से शरीर दुष्ट तत्वों को निकाल कर शांत नहीं होता अपितु नेत्र से—नेत्रमल (मज्जा धातु के प्राप्त मल), नासा से क्षवथु द्वारा, उद्गीरण अथवा छर्दि द्वारा आमाशय के दुष्ट तत्व, कर्ण-मल, त्वक् रोम कूपों के मल, विद्रधि होने पर स्वयं छेदन होकर दुष्ट पूय रक्त का वहिर्गमन—इ० द्वारा सतत शोधन की प्रक्रिया चालू ही रहती है।

किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि केवल प्रकृति द्वारा शोधन की यह प्रक्रिया सम्पूर्ण दुष्ट तत्वों को बाहर कर देने में समर्थ नहीं होती। क्योंकि दुष्ट तत्व या तो प्रभूत मात्रा में जमा होते हैं, या तो अपनी दुष्ट प्रवृत्ति के कारण आशय से ऐसे चिपक कर बैठते हैं कि उनको जबर्दस्ती से वेग-सा Force के साथ निकालनेवाला न हो तो सरलतया नहीं निकलते। और तब संशोधन की जरूरत पड़ती है। इसमें भी प्रबुद्ध शरीर अपना-अपना संशोधन भी ढूंढ़ लेता है। कुत्तों को अजीर्ण होता है तो वह कुछ वनस्पति भक्षण कर स्वयं वमन करा लेता है ऐसा देखा जाता है। डाकूमेंटा गिगि की एक पत्रिका में एक चित्र दिया है—यह चित्र एक समुद्री पक्षी का है—जो अपने लम्बी चोंच के द्वारा समुद्र का पानी भर स्वयं

अपने गुदा में डालकर 'एनिमा' ले रहा है। कहा जाता है कि मध्य अफ्रिकन युग में इसी को देखकर एनिमा की कल्पना का सृजन हुआ है। इस तरह शोधन प्रकृति की अपनी मांग है।

यथासन्नं विनिर्हरेत—

यदि दुष्ट तत्वों को शरीर में से बाहर कर देना है तो नजदीक का मार्ग ढूंढ़ना चाहिए। 'यथासन्न विनिर्हरेत' यह नियम है। नजदीक के रास्ते में निकालने में हेतु यह है कि दोषों की गति जिस दिशा में होगी—उस आशय में वे प्रभूतमात्रा में इकट्ठे हो जाएंगे। और उसके दूरवर्ती द्वार से निकालना हो तो वे जल्दी निकल नहीं सकेंगे जाते समय अन्य आशय में घुस जाएंगे और अन्य कष्ट खड़ा कर देंगे। जैसे किसी सभा खंड में या सिनेमा गृह में इकट्ठे जनसमूह को यदि निकलते समय नजदीक द्वार मिल जाय तो वे बिना कष्ट के निकल सकते हैं और दूरवर्ती द्वार हो तो वे कितनी सारी व्यापत्ति खड़े करते-करते निकलते हैं। वैदिक साहित्य में—

"अक्षिभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां चुबुकादपि।
यक्ष्मं शीर्षण्य मस्तिष्काणि ह्वायाँ निवृहामि ते॥
ग्रीवाभ्यां उष्णिहाभ्यां कीकसाभ्यो अनुक्यात्।
यक्ष्म दोषाण्य मांसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते॥"

उपर्युक्त प्रकार का मंत्र ऋग्वेद में मिलता है। इसका भवितार्थ ऐसा है कि—रोग पीड़ित हे मनुष्य, तेरी आंखों में से, नाक में से, कान में से, चुबुक (हनु) से, सिर से, मस्तिष्क से, जिह्वा से, मैं रोग को पृथक् कर निकाल लेता हूं। तेरे ग्रीवा से उष्णिहा-धमनियों से, अस्थियों से, बाहू से, मांस से रोग को निकालता हूं। इस तरह जहां रोग हो वहां के सन्निकट मार्ग से उसे निकालना प्रशस्त होता है। संशोधन में यह सिद्धांत बहुत महत्व का है।

दोष स्वभाव और संशोधन—

(१) वात, पित्त और कफ ये शरीर के तीन दोष हैं और उनके लिये क्रमशः बस्ति, विरेचन और वमन ये प्रधान-उपक्रम हैं। वात दोष पक्वाशय, कटि, सक्थि, श्रोत, अस्थि, स्पर्शनेंद्रियत्वचा, इनमें आश्रित हैं तथापि पक्वाशय यह इसका प्रधान स्थान है। पित्त, आमाशय, स्वेद, लसीका, रक्त, रस, नेत्र, त्वक् में आश्रित होता है तथापि नाभि प्रधान स्थान है। कफ के—उर, कंठ, शिर, क्लोम, पर्व, आमाशय, रस, घ्राण (नासा) जिह्वा, में स्थान हैं तथापि आमाशय प्रधान स्थान हैं। अपने स्थान में रहते हुए संपूर्ण शरीर के कार्यों को सुचारू रूप से संपन्न करने के लिये दोनों की स्वभावतः तीन प्रकार की गति-होती है। ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् गति। जब तक गतिशीलता में कोई बाधा न हो शरीर में कोई रोग उत्पन्न नहीं होता। किंतु यदि स्रोत के अवरोध—संग के कारण गति रुक जाये तो उनका कहीं पर विकृत व्यापार प्रारंभ होता है। ऐसे समय स्रोतों का शोधन करना तथा दोषों को अपने प्राकृत गतियों में नियमित करना, और एक जगह अधिक समय रुकने से उत्पन्न 'मात्रातः दुष्टि, गुणतः दुष्टि, द्रव्यनः दुष्टि' को शरीर में बाहर निकाल देना जरूरी होता है। दोषों का यह स्वभाव है कि वे व्यायाम से, दुष्ण गुण से, तीक्ष्ण गुण से, अहितकारक आहार विहार से-कोष्ठ में रहने वाला उनका स्थान छोड़कर शाखा में चले जाते हैं। यहां आकर दोष-काल तथा निमित्त की अनुकूलता के लिये विलम्बन करते हैं। यदि अनुकूलता मिल जाए तो तुरन्त प्रकुपित होकर रोग निर्माण करते हैं। ऐसे समय उनको पुनः कोष्ठ में लाना और वहां से नजदीक के रास्ते से निकालना यह मुख्य चिकित्सा सूत्र है। दोषों को कोष्ठ में लाने के लिये निम्नांकित चिकित्सा सूत्र हैं—

१. वृद्धि कराना २. विष्यंदन कराना ३. पा कराना-पचन कराकर ४. स्रोतोंमुख को खोलना वायु का नियंत्रण करना—इस तरह से दोष कोष्ठ प्रत्यागमित होते हैं। कहा गया है—

प्रायस्तिर्यग्ताः दोषाः क्लेशयंत्यतुरांश्चिरम॥
कुर्यान्न तेषु त्वरया देहाग्नि बल वित् क्रियाम्।
शमयेत्तान प्रयोगेण सुखं वा कोष्ठ मानयेत्।
ज्ञात्वा कोष्ठ प्रपन्नाश्च यथासन्नं विनिर्हरेत्॥"

अ० हृ० १३-२

अर्थात् दोष तिर्यग् गति में जाकर जो रोग उ करते हैं वे प्रायः अत्यधिक कष्टप्रद होते हैं। ऐसी अवस्था में-देह-अग्नि-बल को जानने वाले वैद्य कोई भी तात्कालिक कर्म की भूल नहीं करनी चा इन्हें या तो सुखपूर्वक कोष्ठ में लाए और व निर्हरण करे।

(२) दोषों का दूसरा स्वभाव है—

व्याप्नोति सहसा देहंमापाद तत्र मस्तकं।
निवर्तते तु कुपितो मलाल्पाल्पं जलौधवत् ॥
अ० हृ० सू० १२-२६

अर्थात् प्रदुष्ट दोष पादतल से मस्तक तक एकदम (सहसा)—शीघ्र गति से व्याप्त होते हैं किन्तु उनकी निवृत्ति (शमन)—शनैः-शनैः अलग-अलग करके होती है। जैसे नदी में बाढ़ आनी हो तो बहुत जोर से, वेगसे और शक्ति से प्रवाह-भरपूर गति से पूर्ण पात्र को भर देता है—किन्तु-धीरे-धीरे और थोड़ा-थोड़ा कर के शांत होती है वैसे ही दोषों का है। इसका अर्थ ऐसा है कि दोषों के प्रकोप की गति के समय में चिकित्सक को शांतिपूर्वक चिकित्सा-निर्णय करना चाहिये। और उनको प्रशमित होने की स्वभाव की मर्यादा की कल्पना कर शमन तथा शोधन की योजना करनी चाहिये। इसी अनुसंधान में ध्यान में रखने योग्य है कि—

"दोषाः कदाचित्कुप्यंति जिता लंघन पाचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धाः न तेषां पुनरुद्भवः ॥"
च० सू० १६-२०

अर्थात् लंघन और पाचनादि शमन चिकित्सा के द्वारा जिनकी चिकित्सा की जाती है उनमें पुनः-पुनः प्रकुपित होने की प्रवृत्ति होती है किन्तु जिनका शोधन किया हो उनको पुनः प्रकुपित होने का अवसर नहीं मिलता।

दोषों के मूल—

जैसे वनस्पति के मूल होते हैं वैसे ही दोषों के भी मूल होते हैं—

दोषाणां च द्रुमाणां च मूलेऽनुपहते सति।
रोगाणां प्रसवानां च गतानामागतिर्ध्रुवा ॥
च० सू० १६-२१

दोषों के और द्रुमों के मूल में यदि घात नहीं करें और मूल से ही उनको विभक्त न करे तो गए हुए रोग वैसे ही पुनः आ जाते हैं जैसे अधकटे मूल से उनके प्रमेह पुनरुज्जीवित होजाते हैं। ये मूल कहाँ हैं? इसका निर्देश सूत्र स्थान के २० वें अध्याय में किया है। यहां वात, पित्त और कफ के प्रत्येक के नानात्मज रोगों का वर्णन किया है और उनकी मूलतः चिकित्सा का निर्देश किया है। वात के लिये—मधुराम्ल लवण, स्निग्ध, उष्ण उपक्रम तथा स्नेह-स्वेद आस्थापन अनुवासन बस्ति का प्रयोग कहा है—और कहा है—

'तदादित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति। तत्रावाजिते वातेऽपि शरीरांतर्गता वातविकाराः प्रशांतिमापद्यन्ते, यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कंध शाखा प्ररोह कुसुम फलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वत् ॥'
च० सू० २०-१५

अर्थात् बस्ति प्रथम पक्वाशय (वातमूल) में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण वातमूल को छेदन करती है। और वहां वात का नियंत्रण हो जाने पर सम्पूर्ण शरीर के वात के विकारों का प्रशमन होता है जैसे वनस्पति मूल का छेदन होने पर उसकी शाखा, प्ररोह, पुष्प-फलादि का नियत नाश होता है।

इसी तरह पित्तविकारों के लिये विरेचन आमाशय-नाभि तक प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण पित्तविकारों का मूलतः छेदन करना है और वमन-आमाशय में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण कफ विकारों को मूलतः छेदन करता हैं।

शोधन पाँच प्रकार के हैं—(१) वमन (२) विरेचन (३) वस्ति (४) नस्य (५) रक्तमोक्षण।

इनमें वमन कफ को आमाशय से शोधन कराता है। विरेचन-पित्त का शोधन कराता है। और, बस्ति-वात के शोधन में उपयुक्त हैं। नस्य—कफ प्रधान दोषां को शिर तथा ऊर्ध्व जत्रुगत अधिष्ठान से शुद्ध करने में प्रयुक्त किया जाता है और रक्तमोक्षण रक्तविकार तथा पित्त विकार के लिये शाखागत रोगों में प्रधानतया उपयुक्त होता है।

पंचकर्म का महत्वः

ऊपर शोधन के महत्व के कुछ पहलू पर विचार किया है। तथापि यहां एक खास ध्यान यह रखना है कि क्या पंचकर्म एवं शोधन एक ही है? इसका उत्तर है—नहीं। पंचकर्म केवल शोधन मात्र नहीं किन्तु प्रायशः शोधन है पंचकर्म में शमन, और बृंहणादि की परम्परा भी समाविष्ट है।

वाग्भटोक्त द्विविधोपक्रमः

वाग्भट ने उपक्रम को संतर्पण और अपतर्पण दो विभाग में विभक्त किया। संतर्पण को बृंहण तथा अपतर्पण को लंघण ऐसे पर्याय कहे गये हैं। लंघन में शोधन तथा शमन ऐसे दो प्रकार हैं। शोधन में—निरुह, वमन, विरेचन, नस्य, और रक्तमोक्षण ये प्रकार किये हैं और शमन में पाचन, दीपन, भूख, प्यास, व्यायाम, धूप और वायु सेवन ये सात प्रकार किये गए हैं। उपर्युक्त में दीपन, पाचनादि कार्य वमन, विरेचन, बस्ति आदि के द्वारा भी प्राप्त होते हैं।

वैसे ही बृंहण का कार्य भी बस्ति और नस्यादि के बृंहण प्रकार के भेद से प्राप्त होता है। अतएव कहा जा सकता है कि पंचकर्म केवल शोधन नहीं है। शोधन उनका प्रधान कार्य है। किन्तु वे बृंहण, शमनादि कार्य से वंचित नहीं हैं।

पंचकर्म के ऊपर अधिक शास्त्रीय वाद-विवाद खड़ा करने का और उनका समाधान देने का यह स्थल नहीं है। एतदर्थ इन पंक्तियों के लेखक का 'आयुर्वेद पंचकर्म विज्ञान' ग्रंथ देखने का अनुरोध है। मेरे नम्र मत में हम निम्नोक्त कर्मों का अध्ययन करते हैं—

पूर्वकर्म—१. स्नेहन २. स्वेदन।
प्रधानकर्म—१. वमन २. विरेक ३. बस्ति
४. नस्य ५. रक्तमोक्षण
पश्चात्कर्म—१. संसर्जनक्रम
२. शमनौषध सेवन
३. रसायनादि सेवन

पंचकर्म एवं शोधन चिकित्सा का शास्त्र में बारम्बार महत्व प्रतिपादन किया है। किन्तु बड़े बड़े श्लोक और प्रभावोत्पादक सूत्रों को रटाने से वस्तु-सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव उपर्युक्त सम्पूर्ण चिकित्सा प्रणाली का सार्वदैहिक और व्यापक विचार के कुछ तत्वों को हम नीचे प्रदर्शित करते हैं।

स्नेहन - स्वेदन का महत्व—स्नेह-स्वेद ये पंचकर्म के पूर्व कर्म है। जिस क्रिया में स्नेहन, विष्यंदन, मार्दव और प्रक्लेदन होता है उसे स्नेहन कहते हैं। यह बाह्य तथा आभ्यन्तर दो प्रकार का है। बाह्य अभ्यंग, उद्वर्तन, मर्दनादि अनेक प्रकार का है। और आभ्यन्तर स्नेह मुख्यतः घृत, तैल, वसा, मज्जा चार प्रकार का है। केवल अभ्यंग के ही गुण और लाभालाभ पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि—यह—१. जराहर २. श्रमहर ३. वातहर ४. दृष्टि प्रसादकर ५. पुष्टिकर, ६. आयुष्यकर ७. स्वप्नकर, ८. त्वक् दार्ट्यकर ८. क्लेश सहत्वकर १०. अभिधान सहत्वकर ११. वर्णकर १३. बलकर ऐसे अनेक गुणों को करता है। आभ्यन्तर स्नेहन से निम्नोक्त गुण प्राप्त होते हैं—१. वात को शमन करता है। २. दोषों का मृदुकरण होता है। ३. जठराग्नि प्रदीप्त होता है। ४. कोष्ठ शुद्धि होती है। ५. मल संधान को स्नेह दूर करता है। ७. नूतन धातुओं की उत्पत्ति होती है। ७. शरीर का बल एवं वर्ण प्रसार होना है। ८. इन्द्रियों को दृढ़ बनाता है।

शोधन पूर्व स्नेहन-स्वेदन कराने स्नेह क्लिन्न धातु-संस्थित दोष स्नेह के साथ स्रोतों मुख का विकास के कारण कोष्ठ में आने में मदद होती है जिससे वमन या विरेचन से उनको शरीर के बाहर कर दिया जाता है। इसका स्पष्टार्थ ऐसा है कि स्नेह-स्वेद के बाद दिया हुआ संशोधन ही सार्वदैहिक शुद्धि कराता है।

वमन-विरेचनः स्नेह-स्वेदन के बाद प्रयुक्त वमन यां विरेचन शरीर के संपूर्ण दोषों का शोधन करता है। कफ प्रधान दोष वमन से और पित्त प्रधान दोष विरेचन से निकाल दिये जाते हैं। शोधन के द्वारा निम्नोक्त लाभ देखे जाते हैं।

१. शरीर में लघुता उत्पन्न होती है। २. जाठराग्नि तथा धात्वग्नि प्रदीप्त होते हैं। ३. अग्नि पर शोधन पूर्व आम तथा दुष्ट धातुओं के द्वारा जो विषचक्र निर्माण हुआ होता है उसका नाश होने से शुद्ध धातुओं का ही निर्माण होता है। ४. धातु बल बढ़ता है। ५. शरीर में उत्साह बढ़ता है। ६. मन प्रसन्न होता है। ७. भोजन में रूचि बढ़ती है। ८. इंद्रियों में इंद्रियार्थ के प्रति ग्रहण शक्ति बढ़ती है। बस्ति — के महत्व को बताना तो स्व-तंत्र विषय होगा किन्तु इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चरक-सुश्रुत ने जो निम्नोक्त भेद बस्ति के निर्दिष्ट किये हैं वे ही उनकी महत्ता दिखाते हैं—

१. संशोधन—नाना द्रव्यों के साथ संमीलित बस्ति शोधन करती है।

२. संशमन—वात-पित्त-कफ संशमन वर्गों से संमी-लित बस्ति दोष शमन करती है।

३. संग्राही बस्ति—अतिसार तथा प्रवाहण में ग्राही द्रव्यों से दी जाती है।

४. स्तंभन—पित्त स्राव, रक्त स्राव को बंद करने के लिये स्तंभन बस्ति प्रयुक्त की जाती है।

५. वाजीकरण बस्ति—क्षीण शुक्र को बढ़ाने के लि मांसरस के साथ दी जाती है।

६. बृंहण बस्ति—कृश व्यक्तियों को बृहत् करने लिये दी हुई बस्ति बृंहण-बस्ति कहलाती है।

७. कर्शन बस्ति—स्थूल-मेदस्वी रोगी को कृश करने के लिये दी हुई बस्ति कर्शन बस्ति कहलाती है।

इनके अतिरिक्त लेखन बस्ति, दीपन-पाचन बस्ति, बलवर्णकर बस्ति, वयःस्थापन बस्ति, चक्षुष्य बस्ति, ऐसे अनेक प्रकार बस्ति के होते हैं। और तत्तद् रोगानुसार तो कुष्ठघ्न, क्रिमिघ्न, गुल्मघ्न, ऐसी अनेक बस्तियां दी जाती हैं जिनका समावेश 'सिद्ध बस्ति' या 'यापन बस्ति' में होता है।

नस्य—यह शिर तथा इंद्रियायतन के दोषों का शोधन करता है। किन्तु यह शमन बृंहण तथा स्तंभन के लिये भी प्रयुक्त होता है। विधिवत् दिया हुआ नस्य शिरोरोग को मिटाने के लिये अक्सीर इलाज है। भयंकर, शिरःशूल, सूर्यावर्त, नासागत रक्त पित्त, आक्षेप, अपस्मार, बुद्धिमंदता (Mental retardation), अनिद्रा, शिरोगौरव, इंद्रिय गौरव इनमें नस्य का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद होता है।

रक्तमोक्षण—सार्वदैहिक रक्त शोधन के लिये महत्व की चिकित्सा है। यकृत, प्लीहा के रोग, त्वक् रोग कुष्ठरोग, शीतपित्त, उदर्द, विसर्प, इ० में रक्तमोक्षण अपेक्षातीत लाभप्रद होता है।

संक्षेप में संशोधन चिकित्सा शरीर में 'विषचक्र' या 'दुष्ट आवर्त' को नष्ट कर एक सुचारू नवीन मधु 'आवर्त' कायम करने के लिये केवल प्रशस्त चिकित्सा नहीं अपितु एक अत्यन्त अनिवार्य चिकित्सा है।

सदा
सबके लिये
सेवनीय
परम पौष्टिक
रसायन
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
(अष्टवर्गयुक्त)
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन

रसायन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

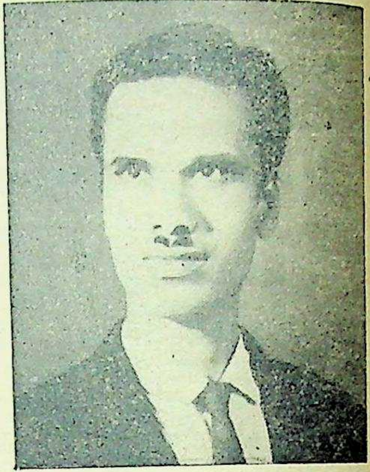

कविराज राजेन्द्रप्रकाश भटनागर

वर्तमान में जहां मनुष्य का आयुमान क्रमशः घटता जा रहा है, वहां आयुवृद्धि के लिए प्रयत्नों ने भी जोर पकड़ लिया है। राष्ट्रसंघ में विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O) का गठन इसलिए हुआ है कि मनुष्य को नीरोग रखने के उपायों हेतु कार्य किया जाय। वार्धक्योत्पत्ति के कई तथ्य प्रकाश में लाये जा चुके हैं जैसे विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के अन्तःस्रावों (Hormones) के परिवर्तन, विटामिन्स की न्यूनता, अधिक परिश्रमशीलता आदि। इन कारणों के लिए आयुर्वेद की अंगभूत 'रसायन चिकित्सा' कहां तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है यह विचारणीय तथ्य है। इस सम्बन्ध में कतिपय विचारों को निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है, चूंकि रसायन का अन्यतम प्रयोजन है—स्वस्थ व्यक्ति को "उर्जस्कर" अर्थात् प्रशस्त धात्वादि-सम्पन्न बनाना।

आयुर्वेद, भारतीय चिकित्सा विज्ञान की पारिभाषिक संज्ञा है। इसके दो उद्देश्य हैं—(१) अनागत-बाधा-प्रतिषेधात्मक और स्वास्थ्य रक्षात्मक (२) रोग प्रतिषेधात्मक। इन्हें ही आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में (1) Preventive Medicine and Hygiene (2) Curative Medicine or Healing of the disease कहते हैं।

आयुर्वेद में प्रयुक्त **'स्वस्थ'** और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का **'हैल्थ'** (Health) शब्द में किञ्चित् अन्तर है। 'सुष्ठु तिष्ठति इति स्वस्थः' अर्थात् अपनी प्रकृति में यथाचेत् रहना **'स्वस्थ'** कहलाता है। इससे रोगोत्पत्ति होने का भाव लक्षित ही नहीं होता। जबकि हैल्थ शब्द 'हील' (To Heal) धातु से बनता है। अर्थात् रोगनाशन पूर्वक शरीर को पुनः प्राकृत बनाना। अतः इससे प्रारंभ में रोग का होना फिर उसका शमन होना "हैल्थ" की पारिभाषिकता के लिए आवश्यक है। इस आशय से संस्कृत का 'स्वस्थ' शब्द अधिक योग्य और मूल अभिप्राय का बोधक है।

इस प्रकार सारांश में यह कहा जा सकता है, स्वास्थ्य भी दो प्रकार का होता है—

(१) **व्याध्युत्पत्तिपूर्वकालिक**—अर्थात् शरीर और मन में जब तक किसी भी व्याधि की उत्पत्ति नहीं होती तब तक की प्राकृत अवस्था।

(२) **व्याधिनिवृतिपश्चात्कालिक**—अर्थात् रोग निवारण हो जाने के बाद होने वाली शरीर की प्राकृत अवस्था। इन दोनों ही दशाओं में रसायन की युक्तियुक्तता सिद्ध है। तथापि प्रयोजन की दृष्टि से व्याध्युत्पत्तिपूर्वकालिक स्वास्थ्य को बनाये रखना रसायन का **मुख्य उद्देश्य** है। तथा व्याधिनिवृत्तिपश्चात् कालिक स्वास्थ्य स्थापन करना इसका **गौण लक्ष्य** है। अपि च इन दोनों प्रकार के स्वास्थ्य का अनुवर्त्तन कर **दीर्घ जीवन प्रदान** करना ही रसायन का परम उद्देश्य है। कहा भी है

"यथाऽमराणामृतं यथा भोगवतां सुधा।
तथाऽभवन्महर्षीणां रसायन विधिः पुरा॥
न जरां न च दौर्बल्यं न चातुर्यं निधनं न च॥
जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा॥

(च० चि० १।१।७८-

चक्र : "अमराणाममृतं जरादिहरं नागानां च सु
[illegible] पादानं दृष्टान्ते।"

तथा--'प्राणकामाः पुरा जीर्णाश्च्यवनाद्या महर्षयः।
रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुररमितायुषः ॥
ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्यमध्यात्मध्मानमेव च ।
दीर्घायुषो यथा कामं संभृत्य त्रिदिवं गताः ॥
तस्मादायुः प्रकर्षार्थं प्राणकामैः सुखार्थिभिः ।
रसायनविधिः सेव्यो विधिवत्सु समाहितैः ॥
(च० चि० १।२।२०-२२)

इस प्रकार आयुर्वेद के मूल प्रयोजन **'दीर्घजीवन'** प्राप्ति की इससे उपलब्धि होती है। इसी उद्देश्य से चरक सं० का उपक्रम **'दीर्घञ्जीवितीय'** नामक अध्याय से तथा वाग्भट का प्रारम्भ **'आयुष्कामीय'** अध्याय से हुआ है। दीर्घजीवन की कामना से ही आयुर्वेद का प्रवर्तन हुआ। रोग जीवननाशक होने से उनकी चिकित्सा को सोचा गया (**'रोगस्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च'** च० सू० १)। अतः रसायन चिकित्सा की श्रेष्ठता के मूल में आयुर्वेद या चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत लक्ष्य की पूर्ति संनिहित है।

चरक ने भेषज (चिकित्सा) के 'स्वस्थोर्जस्कर' प्रकार में रसायन और वाजीकरण की गणना की है।

'स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम्।
प्राय, प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रशमेमतम् ॥
प्रायः शब्दो विशेषार्थो ह्युभयं ह्युभयार्थकृत ॥'
च० चि० (१।१।५-६)

अर्थात् स्वस्थ के लिए 'उर्जस्कर' द्रव्य प्रायः वृष्य और रसायन होता है। प्रायः 'द्वितीय' (अर्थात् **'आर्तस्य रोगनुत'** चक्रपाणि के मत में, **'रसायन'**—गंगाधर के मत में) प्रकार रोगों के शमन में उपयोगी होता है। यहां 'प्रायः' शब्द विशेष (आधिक्य) के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि उभय=दोनों प्रकार ('स्वस्थस्योर्जस्कर' और 'आर्तस्य रोगनुत्' चक्रपाणि के मत में 'वृष्य और रसायन' गंगाधर के मत में) दोनों प्रकार के कार्य करते हैं।

यहाँ 'उर्जस्कर' शब्द विशेष रूप से विवेचनीय है। चक्रपाणि ने अपनी टीका में 'उर्जः' का 'प्रशस्त' अर्थ किया है। स्वस्थ व्यक्ति द्वारा सेवित जो द्रव्य स्वाभाविक रूप से होनेवाले वार्धक्य, क्षुधा, पिपासा आदि रोगों को दूर करता है तथा शरीर में होनेवाले अपहर्ष, क्षीण शुक्रता-आदि अप्रशस्त (अश्रेष्ठ) भावों को नष्ट करता है तथा प्रशस्त रसादि का स्थापन करता है। उसे 'उर्जस्कर' कहते हैं। रसायन की दृष्टि से 'उर्जस्कर' की चक्रपाणि सम्मत उक्त व्याख्या सर्वथा समीचीन है।

आयुर्वेदोक्त प्रथम उद्देश्य की पूर्ति हेतु आयुर्वेद में दो चिकित्सा विधियाँ प्रचलित हैं—(१) रसायन (२) वाजीकरण (वृष्य)। यहाँ प्रकृत विषयानुसार रसायन सम्बन्धी विशेष विचार अपेक्षित है। रसायन चिकित्सा के **प्रयोजन** को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है।

(१) स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखना और उसे दीर्घायु करना।

(२) शरीर की प्रतिषेधात्मक शक्ति की वृद्धि करके रोगों से बचाना।

(३) व्याध्युपरान्त क्षीण शरीर को पुनः स्वस्थ बनाना और उसे चिरंजीवी करना।

(४) कुछ क्षीणकारी रोगों के शमन की दृष्टि से भी रसायन द्रव्यों का प्रयोग विहित है।

(५) स्मृति, मेधा आदि मानस गुणों का और प्रभा, वय, स्वर, बल आदि शरीर गुणों की अभिवृद्धि करना।

परिचय—रसायन चिकित्सा आयुर्वेद की अष्ट विध चिकित्सा विधाओं में से एक है। (च० सू० ३०।२८ सु० सू० १ अ० हृ० सू० १)। इसे सुश्रुत में **'रसायनतंत्र'** भी कहा है—

'रसायन तंत्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधा बलकरं रोगापहरण समर्थं च' (सु० सू० १।८)।

इस वचन पर डल्हण टीका—'वयः स्थापनं वर्ष शतमायुः स्थापनम्। आयुष्करं शताधिकमपि करोति। अन्ये तु वयः स्थापनं जरापहरणं, तारुण्यं बहुकालं स्थापयतीत्यर्थः।'

चरक (सू० ३०।२८) पर टीका करते हुए **शिवदाससेन** ने लिखा है—**'रसायनानीति अत्र रसशब्देन रस—कार्यत्वात् सर्वेषामेव धातूनां ग्रहणं, तेन रसादीनां शुक्रान्तानां किंवा रसवीर्य विपाकानामयनं लाभोपायो रसायनं; वक्ष्यति च 'लाभोपायोहि शस्तानां रसादीनां रसायनम् इति।'**

सु० चि० अ० २७ के प्रारम्भ में टीका करते हुए **डल्हण** ने लिखा है—

'रसादि धातुनामयनमाप्यायनम्, अथवा भेषजाश्रितानां रसवीर्यविपाक प्रभावाणामायुर्बल वीर्य दायादीनां वयः स्थैर्यकराणामयनं लाभोपायो रसायनम् वर्धकं स्थापकमप्राप्तप्रापकं वेत्यर्थः।'

चक्रदत्त में रसायन की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—**'यज्जराव्याधि विध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।'** संक्षेप में जो द्रव्य (१) वय को स्थापित करने वाला, जरा को स्थगित कर और तारूण्य को चिरकाल पर्यन्त स्थायी रख कर अर्थात् आयु को सौ वर्ष तक लम्बा जीवन काल बनाने वाला (२) आयु को करने वाला (सौ वर्ष से भी अधिक जीवन काल को बढ़ाने वाला) (३) मेधाकर (मानस गुणों की वृद्धि करने वाला), (४) बलकर (शारीरिक व्यायाम शक्ति को बढ़ाने वाला), (५) रोग (प्रायः क्षत-क्षीण, कास आदि धातु क्षीणकारी रोग) नाशक होता है, उसे **'रसायन'** कहते हैं। इन द्रव्यों से चिकित्सा को बताने वाला अंग—**'रसायन तन्त्र'** कहलाता है।

चरक ने निम्न पंक्तियों में रसायन से प्राप्त होने वाली उपलब्धियों का समुच्चयत्वेन उल्लेख किया है—

[१]'दीर्घमायुः [२]स्मृति [३]मेधामा[४]रोग्यं [५]तरूणं वयः ।
[६]प्रभावर्ण[७] [८]स्वरौदार्यं [९]देहेन्द्रिय [१०]बलं परम् ॥
[११]वाक्सिद्धिं [१२]प्रणति [१३]कांति लभते ना रसायनात्॥'
(च० चि० १।१।७-८)

इन उपर्युक्त १३ गुणों की प्राप्ति रसायन से होती है। इसके अतिरिक्त भी लिखा है—

'न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनंयो विधिवन्तिषेवते ।
गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्मतथेति चाक्षयम् ।'
(च० चि० १।१।८०)

स्रोत

किसी समय आयुर्वेद के इस अंग का अच्छा विकास हुआ था। किन्तु कालान्तर में एतद्विषयक तंत्रग्रंथ लुप्त हो गये। आज कोई भी स्वतन्त्र रसायन तंत्र या तत्संबंधी ग्रंथ प्राप्त नहीं है। प्राचीन संहिताओं में रसायन - संबंधी कुछ प्रकरण आधार-रूप में उपलब्ध है।

चरक चिकित्सा अ० १ रसायनाध्याय के रूप में है। इसमें चार पाद हैं (१) **अभयामलकीय रसायन पाद**—इसमें हरड़ और आमले के रसायन प्रयोग दिये हैं, जो सर्वोपयोगी और सर्व सुलभ भी हैं।

(२) प्राणकामीय रसायन पाद—इसमें प्राण = आयुः-प्रकर्ष की कामना (च० चि० १।२।२२) से आमलक, भल्लातक, विडंग, नागबला से रसायन प्रयोग बताये गये हैं।

(३) **करप्रचितीम रसायन पाद**—इसमें सिद्ध रसायन योग दिये गये हैं। आमलकायस, लौहादि, मेध्यरसायन, ऐन्द्र रसायन, पिप्पली, त्रिफला और शिलाजतु रसायन दिये हैं।

(४) **आयुर्वेद समुत्थानीय रसायन पाद**—इसमें कुटी प्रावेशिक रसायन विधि हेतु प्रयोग तथा आचार रसायन निर्दिष्ट हैं।

सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय २७ से ३० ये चार अध्याय रसायन से संबंधित हैं—

(१) सर्वोपघात शमनीय रसायनोपक्रमः ।

(२) मेधायुःकामीय रसायन चिकित्सितोपक्रमः ।

(३) स्वभाव व्याधिप्रतिषेधनीय रसायनोपक्रमः ।

(४) निवृत्त संतापीय रसायनोपक्रमः ।

मध्य युग में **रस शास्त्र** का विकास हुआ। रस अर्थात् पारद और उससे घटित होने वाले योग 'रसायन' कहे गये। इसका मूल कारण इनकी रसायन द्रव्यों से फल की समानता ही है। रसायनों का प्रयोग देह सिद्धि और लौह सिद्धि के लिए हुआ। देह सिद्धि में इनके प्रयोग से शरीर को सुदृढ़, रोग-रहित और जरा-रहित करके दीर्घायु बनाने का विधान है तथा लौह सिद्धि द्वारा बंग आदि हल्की धातुओं को पारद के वेध से स्वर्ण और रौप्य जैसी उच्च धातुओं में बदलने का विधान है। देह सिद्धि के प्रयोजन के कारण पारद और पारद घटित योगों को **'रसायन'** कहा जाने लगा और आयुर्वेदज्ञों ने उनका अपनी चिकित्सा विधि में समन्वय भी किया।

रसायन सेवन विधि

भेद "द्विविधं रसायनं—कुटी प्रावेशिकं, वातातपिकं च; **पुनश्च त्रिविधं** - काम्यं, नैमित्तिकम्, आजस्मिकं च; 'प्राणमेधाकामः श्री काम'- इत्यादिकं काम्यं, नैमित्तिकं व्याधि निमित्तं शिलाजतु भल्लातकतुवरकाद्यम्, आजस्मिकं क्षीरघृताभ्यासादिकम्, **पुनश्चद्विविधं** संशोधन-संशमन भेदेन; दोषस्य संशोधनात् संशोधनं सस्यादि रसायनं (१) संशमनं नागबला- प्रयोगादिकमिति ।"

(सुश्रुत चि० २७ पर प्रारंभ में डल्हण टीका)।

(अ) **प्रयोग विधि** की दृष्टि से रसायन के दो भेद हैं—

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयोविदुः ।
कुटीप्रावेशिकं चैव वातातपिक मेव च ॥
(च० चि० १।१।१६)

विधय—समर्थानामरोगाणां धीमतां नियतात्मनाम् ॥
कुटी प्रवेशः क्षणिणां परिच्छदवतां हितः ॥

(नृपवैद्य द्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम् ।)
अतोऽन्यथा तु ये तेषां **सौर्यमारुतिको विधिः** ॥
श्रेष्ठता—'तयोः श्रेष्ठतरः पूर्वो विधि स तुसुदुष्करः ॥
(च० चि० १।४।७-२८)

(१) **कुटी प्रावेशिक विधि**—अर्थात् "कुटी प्रवेशेन निर्वृतः प्रयोगः कुटी प्रावेशिकः, तम् कुटी प्रावेशिकम्" (Indoor management)। एक विशेष प्रकार से निर्मित कुटी जो एक के भीतर दूसरा, इस प्रकार तीन गृहों वाली छोटे गवाक्षों से युक्त और यथावश्यक ऊंचाई, नीचाई और विस्तार वाली होती हैं, में व्यक्ति को विधिपूर्वक रखकर रसायन प्रयोग कराया जाता है। पूरी प्रयोग अवधि में व्यक्ति बाहर नहीं जा सकता। इसका प्रयोजन, राजा, वैद्य, द्विजाति और साधुओं के लिए है। चरक ने लिखा है—

कुटी प्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते ।
नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम् ॥
निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे ।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां च सुभूमौ कारयेत् कुटीम् ॥
विस्तारोत्सेधसंपन्नां त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् ।
घनभित्तिमृतुसुखां सुस्पष्टां मनसः प्रियाम् ॥
शब्दादीनामशस्तानामगम्यां स्त्रीविवर्जिताम् ॥
इष्टोपकरणोपेतां सज्जवैद्यौषध द्विजाम् ॥
(च० चि० १।१ १७-२०)

(१) **वातातपिक विधि---(या सौर्य मारुतिक विधि—**(Outdoor management)—खुले वातावरण में—सूर्य और वायु का सेवन करते हुए—रसायन सेवन किया जाता है। इन दोनों विधियों में प्रथम विधि श्रेष्ठ है किन्तु अत्यन्त कठिन होती है।

ये दोनों विधियां सामान्य मनुष्य के लिए साध्य हैं। इसके अतिरिक्त चरक ने एक अन्य विधि भी बताई है—

(३) **द्रोणी प्रावेशिक विधि**—ब्रह्मसुवर्चलादि आठ औषधियों का स्वरस भरपेट पीकर ढक्कनयुक्त गीले पलाश की नौका में छः माह तक मूर्छित अवस्था में सो जाये। फिर बकरी का दूध पीना चाहिये। इससे रसायन गुण प्राप्त होते हैं। यह विधि च० चि० १।४।७ पर विस्तार से दी गई है। यह दिव्य औषधियों के **रसायन की सेवन विधि है।**

उपर्युक्त तीनों प्रकार **द्रव्यभूत रसायन प्रयोग** के हैं कतिपय सदाचरणों द्वारा **अद्रव्य भूत रसायन** की उपलब्धि होती है। इसे चरक ने '**आचार रसायन** कहा है।

(४) **आचार रसायन** सत्यवादी, क्रोध - रहित, मद्य सेवन और मैथुन से दूर रहने वाला, हिंसा न करने वाला, श्रम न करने वाला, शांत, प्रियवादी, जप और पवित्रता में तत्पर, धीर, सदा दान देने वाला, तपस्वी, देवता, गाय, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु और वृद्ध व्यक्तियों की पूजा (सेवा) में लगा हुआ, सदा क्रूरता से दूर रहने वाला, सदा करुणा और दया रखने वाला, समान (यथोचित) रूप से सोने और जागने वाला, नित्य दूध और घृत का सेवन करने वाला, देश-काल और मात्रा को जानने वाला, युक्तिज्ञ, अहंकार-रहित प्रशस्त आचरण करने वाला, असंकीर्ण (उदार) विचार रखने वाला, आत्मिक ज्ञान में इन्द्रियों को प्रवृत्त करने वाला, वृद्धों, आस्तिकों और जितात्माओं की उपासना (सामीप्य) करने वाला, धर्मशास्त्र को पढ़ने वाला व्यक्ति नित्य रसायन का सेवन करने वाला होता है। इन गुणों से युक्त व्यक्ति को स्वतः ही रसायन के गुण प्राप्त हो जाते हैं।

"सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं पपस्विनम् ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम् ॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम् ।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम् ।
शस्त्राचारमसङ्कीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्य रसायनम् ॥
गुणैरेतैः समुदितै प्रयुक्ते यो रसायनम् ।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते ॥
(च० चि० १।४।३०-३५)

वस्तुतः वर्तमान युग में इसकी नितान्त आवश्यकता है। इन सदाचरणों से मानसिक शिथिलीकरण होता है। परिणामस्वरूप **परासंवेदनिक नाड़ी संस्थान** की तनाव (Strain) दूर होकर सम्यक् रस-रक्त-संचरण (Circulation) में मदद मिलती है। फलतः समस्त धातुओं की शक्ति भी सशक्त होती है।

(अ) प्रयोजन की दृष्टि से रसायन के तीन भेद—

१. **काम्य रसायन**—किसी विशेष इच्छा (कामना) से प्रयुक्त होने वाले रसायन, यथा प्राण कामीय, मेधा-कामीय आदि ।

२. **नैमित्तिक रसायन**—किसी रोग विशेष के निवारण हेतु प्रयुक्त होनेवाला रसायन, यथा कुष्ठ के लिए शिलाजतु रसायन, मधुमेह के लिए तुवरक रसायन आदि।

३. **आजस्रिक रसायन**—जो रसायन आहार द्रव्य के रूप में नित्य सेवन किया जाता है। जैसे—घृत, क्षीर आदि ।

(इ) चिकित्सितीय उपयोग की दृष्टि से रसायन के दो प्रकार हैं—

(१) **संशोधन रसायन**—इनसे विकृत दोष बाहर निकाले जाते हैं । जैसे—हरीतकी आदि ।

(२) **संशमन रसायन—**इन दोषों का शरीर में ही शमन हो जाता है । जैस—आमलकी, नागबला आदि ।

रसायन से पूर्व संशोधन—रसायन सेवन से पूर्व शरीर और मानस दोषों का शोधन अपेक्षित होता है। उसके बिना रसायन के गुण नहीं प्राप्त होते । **चरक** ने इसके लिए **कोष्ठ शुद्धिकर** सर्व सामान्य 'हरीतक्यादि **चूर्ण**' (च० चि० १।१।२५-२८) का विधान बताया है ।

'यथास्थूलमनिर्वाह्य दोषाञ्छारीरमानसान् ।
रसायन गुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन ॥
योगाह्यायुः प्रकर्षार्थाः जरारोगनिबर्हणाः ।
मनः शरीर शुद्धानां सिद्धयन्ति प्रयतात्मनाम् ॥
तदेतन्न भवेद्वाच्यं सर्वमेव हतात्मसु ।
अरुजेभ्योऽद्विजातिभ्यः शुश्रुषा येषु नास्ति च ।'
(च० चि० १।४।३६-३८)

'तस्यां संशोधनैः शुद्धः सुखीजात बलः पुनः ।
रसायनं प्रयुञ्जीत तत्प्रवक्ष्यामि शोधनम् ॥'
(च० चि० १।१।२४)

'पूर्वे वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् ।
प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥
नाविशुद्ध शरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः ।
न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥
(सु० चि० २७।३-४)

रसायन सेवन की आयु—रसायन का सेवन जितात्मा व्यक्ति को स्निग्ध और शुद्ध होने के पश्चात् पूर्व वय (यौवन के प्रारम्भ में) अथवा मध्यायु (५० वर्ष की आयु के बाद) करना चाहिए । बाल्यावस्था में धातुएं अपरिपक्व होती हैं अतः औषधियों की क्रिया को सहन नहीं कर सकते । वृद्धावस्था में धातुएं शीर्यमान होने से उनमें रस अप्रीणन करनेवाला होता है । सुश्रुत ने लिखा है—

'पूर्व वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् ।
प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥'
(सु० चि० २७।३)

प्रचलित रसायन प्रयोग—यद्यपि शास्त्र ग्रंथों में रसायन के सैकड़ों प्रयोग दिये गये हैं, किन्तु नीचे सर्वथा प्रचलित और उपयोगी केवल द्वादश प्रयोगों को लिखा जा रहा है—(१) **सामान्य प्रयोग**—शीतोदक, दूध, मधु और घृत का एक, दो, तीन या सबका मिलित नित्य प्रयोग करें ।

'शीतोदकं पयः क्षौद्रं सर्पिरित्येकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक् प्रीतांस्थापये द्वयः ।
(सु० चि० २७।६)

(२) च्यवनप्राश (च० चि० १।१।६३-७४)

(३) ब्राह्म रसायन (च० चि० १।१।४१-५७)

(४) आमलकी रसायन (भै० र०)

(५) त्रिफला रसायन (च० चि० १।३।४१-४२)

(६) शु० शिलाजतु (च० चि० १।३)

(७) मेध्य रसायन (मण्डूकपर्णी स्वरस, क्षीरयुक्त मुलेठी चूर्ण, गुडूची रस, शंखपुष्पी पञ्चांग कल्क)
(च० चि० १।३।३०-३१)

(८) पिप्पली रसायन (च० चि० १।३)

(९) अमृतादि रसायन (गुडूची, आंवला, गोखरू)
(वाग्भट, वै० जी०)

(१०) शतावरी घृत (अ० हृ० उ० ३९)

(११) गुडूच्यादि रसायन (सर्वाधिक मेधाकर है।)—गुडूची, अपामार्ग, विडंग, शंखपुष्पी, वच, हरड़, कूठ और शतावरी (चक्रदत्त) ।

(१२) अश्वगन्धा रसायन (भै० र०)

रसायन द्रव्यों की कार्मुकता—इस सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व 'रसायन' शब्द का निर्वचन देखना चाहिए। 'रसस्य अयनम् रसायनम्' । 'अयन' शब्द 'इ (ण्) गतौ' धातु से बनता है और गति शब्द के तीन अर्थ होते हैं—ज्ञान, गमन या चेष्टा और प्राप्ति । यहां 'ज्ञान' अर्थ अभि

प्रेत नहीं है, शेष दो अर्थ 'गमन' और 'प्राप्ति' अभिप्रेत हैं। रस की गति और प्राप्ति को रसायन कहते हैं। इस कार्य में सहयोग और सुविधा या तीव्रता प्रदान करनेवाले द्रव्य 'रसायन' कहलाते हैं।

रस शब्द से आयुर्वेद में ४ अर्थ सूचित हुए हैं—

(१) अन्नपान रस (२) रस धातु (३) रस (जिह्वा ग्राह्य गुण) और (४) रस अर्थात् पारद।

रसायन प्रकरण में रस शब्द से **अन्नपान रस** का ग्रहण किया जाता है। साथ ही समस्त द्रव धातुओं को भी लेना चाहिए —'रसतीति रसोद्रवधातु रुच्यतेः तेन रस रुधिरादीनामपि द्रवाणां ग्रहणं भवति।' (च० चि० १५।३६ पर चक्रपाणि)। अन्नपान रस ही समस्त धातुओं का पोषण करता है। अतः प्रशस्त रस-रक्तादि की प्राप्ति, जो रसायन का ध्येय है, इस पर निर्भर करती है। इसके लिए **धातुवाही स्रोत** की निर्दुष्टि भी आवश्यक होती है, क्योंकि **'स्रोतसा च—यथा स्वेन धातुः पुष्यति धातुतः'** (च० चि० ८।३६) रस अनवरत गति करता है अतः इसे रस कहतेहैं—**"तत्र 'रस' गतौ धातुः, अहरहर्गच्छतीत्यतो रसः"** (सु०सू० १४।१३)

सुश्रुत ने शोणित वर्णनीय अध्याय (सु० अ० १४) में रसोत्पत्ति और उससे रक्तोत्पत्ति तथा अन्य धातुओं की पुष्टि का सविस्तार सम्यक् विवेचन किया है। इससे रसायन द्रव्यों की कार्मुकता अपेक्षित वर्णन समझा जा सकता है। धातु-पोषण की दृष्टि से रसायन द्रव्य स्रोतोरोध दूर करने का कार्य भी करते हैं।

वर्तमान काल में रसायन की उपयोगिता—जहां मानव के **(१) दीर्घायुष्य कामना की दृष्टि** से रसायन की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है, वहीं (२) **परिस्थिति वशात् नवीन उत्पन्न परिस्थितियों और रोगों के शमन** की दृष्टि से भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। यथा—आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की देन स्वरूप निवारण हेतु आशुफलप्रद सल्फावर्ग की और प्रतिजीवी (Sulpha drugs और Antibiotics) वर्ग की औषधियाँ अस्तित्व में आयी हैं, उनके प्रयोग के घातक परिणामस्वरूप आज मानवीय रोग क्षमता की न्यूनता, दुर्बलता, रक्ताल्पता, नाड़ी विकार, मानसिक रोग और धातु नाश जैसी **भयंकर स्थितियां** प्रादुर्भूत होती जा रही हैं। उनके शमन के लिए निश्चय ही आयुर्वेदीक रसायन चिकित्सा पूर्णतया लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। व्यवहार में ऐसे हजारों रोगी वैद्यों द्वारा रसायन प्रयोगों से ठीक किये जाते देखे गये हैं। अतः रसायन द्रव्यों की यह कार्मुकता निश्चय ही वर्तमान युग में समाज के लिए अमृतत्व साधन कही जा सकती हैं।

(३) औद्योगिक विकारों के शमन के लिए—वर्तमान युग में जहां अनेक प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ है, वहीं उद्योगों से उत्पन्न समस्याओं ने जन्म लिया है। विषाक्त पदार्थों के कारखानों में काम करना, रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग अथवा अन्न पान की वस्तुओं में उनकी मिलावट टाइप या प्रेस में काम करने वालों को सीस विष होना, विषैले शस्त्रों और धुओं का प्रयोग, अश्रुगैस आदि का उपयोग आदि परिस्थितियाँ निश्चय ही शरीर पर घातक विषैला प्रभाव करती हैं। इनसे बचने के लिए तथा इनके प्रभाव को दूर करने के लिए रसायन प्रयोग निश्चय ही फलप्रद हो सकते हैं। इस विषय में वस्तुस्थिति के अन्वेषण की आवश्यकता है।

(४) इसके अतिरिक्त रसायन सेवन **रोग प्रतिरोध क्षमता (Immunity) का उत्पन्न करना भी** वर्तमान युग के लिए रोग-निवारक-चिकित्सा की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेयस्कर है। संक्षेप में जीवाणु या अन्य बाह्य पदार्थों के प्रति रसायन से शरीर में 'प्रकृतिविघात' उत्पन्न होता है।

(५) रोगी की पुनरावृत्ति से रक्षा—रसायन प्रयोगों से रोगों की पुनरावृत्ति न होने में मदद मिलती है। जिस अवयव में रोग उत्पन्न होता है, उसके रोग का निवारण होने के बाद भी उस अवयव की क्षीणता अवशिष्ट रह जाती है, अतः अनुकूल परिस्थितियों के मिलने पर पुनः रोग होने की सम्भावना रहती है। चरक ने लिखा है—

> निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना।
> क्षीणे मार्गीकृते देहे शेषः सूक्ष्म इवानलः ॥
> (च० चि० ३०।३२७)

अतः अवयव की पुनः पुष्टि और बल स्थापन के लिए रोग निवृत्ति के अनन्तर रसायन द्रव्यों का विधिवत् प्रयोग अपेक्षित होता है।

(६) वर्तमान युग में सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के बदल जाने से व्यक्ति का स्वस्थ वृत्तानुपालन पर विशेष लक्ष्य नहीं रह पाता। विषम स्वस्थ-वृत्त के कारण ही अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः स्वस्थवृत्त का पालन यथाशक्य आवश्यक है। साथ ही संशोधन कर्म,

रसायन प्रयोग और वृष्य प्रयोग भी धातु पोषक हेतु सर्वथा सेवनीय होते हैं। इस संबंध में चरक ने लिखा है— (च० सू० ७।४५।५०)

१. विषामस्थवृत्तानामेते . रोगास्तथाऽपरे ।
जायन्तेऽनातुरस्तस्मात् स्वस्थवृत्तपरो भवेत् ॥

+ ×

स्निग्ध स्विन्ना शरीराणामूर्ध्वं चाधश्च नित्यशः ।
वस्तिकर्म ततः कुर्यान्तस्यकर्म च बुद्धिमान् ॥
यथाक्रमं यथायोग्यमत ऊर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
रसायनानि सिद्धानि वृष्ययोगांश्च कालवित् ॥
रोगास्तथा न जायन्ते प्रकृतिस्थेषु धातुषु ।
धातवश्चाभिवर्द्धन्ते जरा मान्द्यमुपैति च ॥
विधिरेषविकाराणामनुत्पत्तौनिर्वेशितः । निजानामिति

संक्षेप में रसायन से **जीने के योग्य जीवन का निर्माण और सुरक्षा** होती है।

आचार रसायन के माध्यम से मानसिक तनावों (Mental Strains) से बचने का सुलभ साधन हस्तगत होता है। इससे वात नाड़ी जन्य तनावों की स्थिति दूर होकर रक्त-रस-संवहन सम्यक् होने लगता है, अतः धातुओं का पोषण भी भलीभाँति होने लगता है। परिणामस्वरूप शारीरिक धातुओं की पुष्टि और मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होने के साथ ही आचार रसायन से ही अनेक मानसिक और शारीरिक रोगों से बचा जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि इसका विधिवत् नियमित रूप से चिरकाल पर्यन्त अनुपालन किया जाय।

अतः इस वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में रसायन का उपयोग स्वास्थ्य-रक्षा, दीर्घायु प्राप्ति, विष-प्रभाव से बचाव, विषाक्त औषधियों के प्रभाव का शमन, रोग की पुनरावृत्ति को रोकना और मानसिक रोगों से प्रतिरक्षा की दृष्टि से पूर्णतया अपेक्षित है।

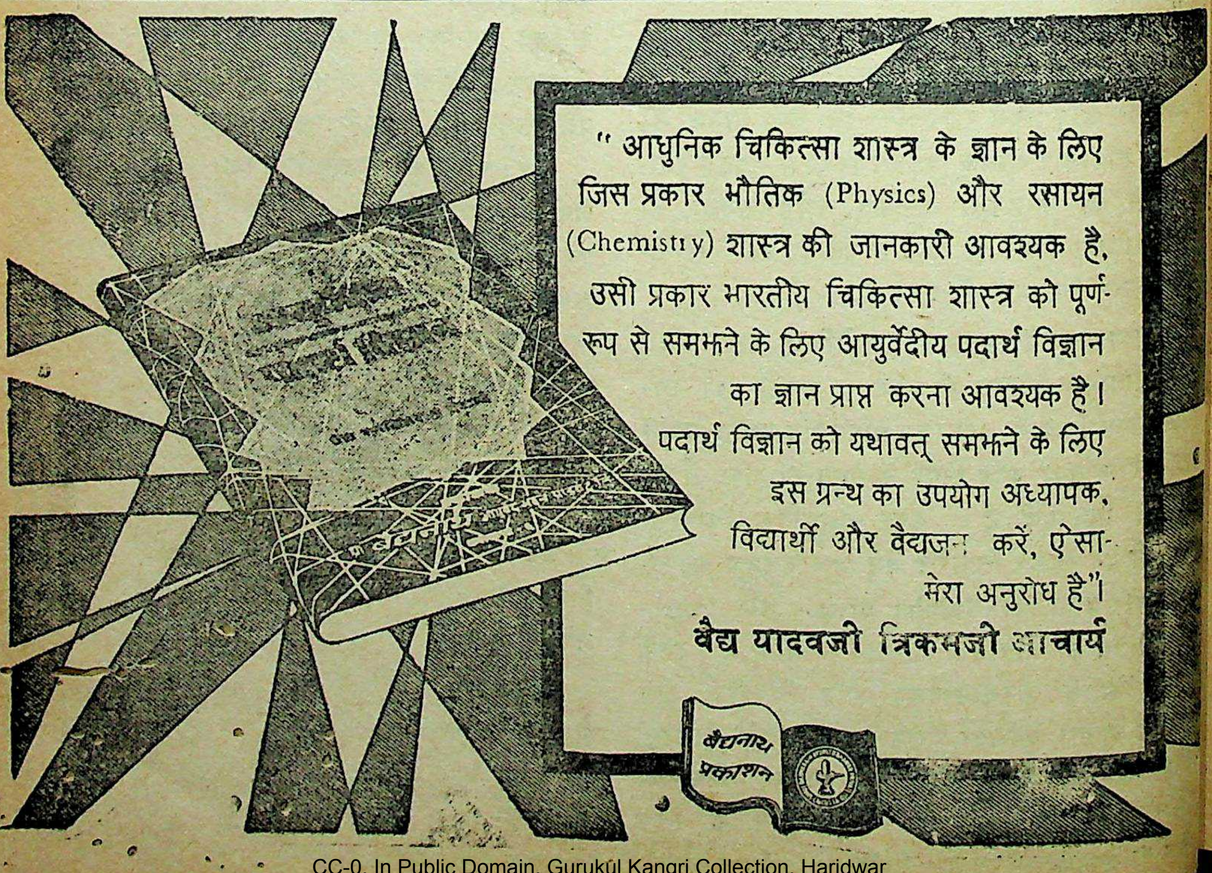

" आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान के लिए जिस प्रकार भौतिक (Physics) और रसायन (Chemistry) शास्त्र की जानकारी आवश्यक है, उसी प्रकार भारतीय चिकित्सा शास्त्र को पूर्णरूप से समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। पदार्थ विज्ञान को यथावत् समझने के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग अध्यापक, विद्यार्थी और वैद्यजन करें, ऐसा मेरा अनुरोध है"।

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

वैद्यनाथ प्रकाशन

PSYCHOLOGY AND PSYCHIATRY IN AYURVEDA

Dr. K. R. SRIKANTA MURTHY

In India, the knowledge about the mind and its activity is very ancient. The Rigeveda (2000 B. C.) shows that people of that age had a clear idea about the importance of mind and its influence on all human activities. Prayers were offered to Gods like Indra, Agni, Pushan, etc. to bestow intelligence, good memory, courage, happiness and long life. In the Atharvaveda (1000 B. C.) we see the next phase; prayers to Gods supplemented with elaborate sacrifices became the order of the day. Magical rites to gain intellectual superiority was practiced. Drugs in the form of amulets and potions came to be used as MedhaJanana (promoter of intellect) Soumanasya (bestower of courage). Belief in Grahas or evil spirits like Gandharva, Yaksha, Pishacha, Rakshasa, Naga which produced both mental and physical diseases, gave rise to many methods of driving them out of the body. Affliction by these Grahas or seizures was sometimes by their own accord and some other times due to inimical act by foes (kritya). Methods of Krityapahasana or warding of the seizures were in fact the next stage of psychotherapy.

The upanishads (800 B. C. to 600 A. D.) are a great storehouse of psychological information. What we find here is an attempt at evolving an integrated personality-a happy correlation of Body, Mind and Soul-to enjoy a trouble free, purposeful long life. Philosophy and psychology exist here an inseparable union each one complimentary to the other. It is this happy blending which formed the basis of the many doctrines of Ayurveda, Yoga and Vedanta.

The Ayurvedic literature (600 B. C. to 600 A. D.) which mark another step forward have not only retained the essence of upanishadic philosophy to help men to lead a full life but even go a step further to correct the disorders of the mind. Recognition and treatment of mental diseases on rational lines was achieved. Drug therapy replaced magical rites, sacrifices gave place to assurance and other types of mental training. Aetiology, symptomatology and management of diseases like Unmada (insanity), Apasmara (epilepsy), Moorcha and sanyasa (convulsions seizures and unconsciousness), Atatwabhinivesha (personality complexes schizophrenia etc.) have been described in the treatises of charaka, sushruta and vagbhata.

MIND AND ITS ACTIVITIES

According to Ayurveda, Manas (mind) is an internal organ (antahkarana) subtle in size (Anu) swift in movement (sheeghragami)-

intermediary link between the jnanendriyas (sensory organs) and atma (soul); receives information of external objects, analyses it, purveys it to Atma for Orders, executing such orders through the karmendriyas (organs of work). In this task, it is helped by the Tridoshas of the body viz, Vata, Pitta and Kapha more by the first than the other two.

Functional make up of the mind is influenced by the three Mahagunas (primary qualities) the Satwa, Rajas and Tamas; Satwa stands for purity, activeness, right conduct and its influence confers health, happiness, enthusiasm, vigour and such other good traits. Rajas stands for activity and gives room to overactivity, fickleness, hasty, indecision, anger and such other violent emotional states; Tamas is dull and inert, and confers upon the person ignorance, inactivity, ideocy, lethargy, deficiency and other inadequacies. Hence influence of Rajas and Tamas are enumerated as the conditions predisposing to mental diseases. These three Gunas, in their, turn are influenced by food and habits, heredity and society etc. The changes in the normalcy of the Tridoshas also bring about changes in the mind. Ayurveda has prescribed rules for maintaining the health of the body and the mind and insists upon its adherence by one and all. Causes of Diseases; Causes of mental diseases can be described under two heads. (a) Predisposing causes, and (b)exciting.

Predisposing causes, common to both bodily and mental diseases are the following:

(a) **ASATMYENDRIYARTHA SAMYOGA:** improper correlation (hyper, hypo and perverse) of senses with their objects.

(b) Prajnaparadha : intentional or unintentional violations of rules of right conduct. Physical, religious, social, familiar and other circumstantial behaviour,

PARIHAMA - time - period of life, seasonal effects Teluric influences circumstantial stress and strain.

Chief exerting causes for mental diseases are:

1. Sudden and violent emotions such as krodha (anger), Bhaya (fear), Dukha (grief) etc.

2. Improper food habits and unhealthy diet indulgence in foods and drinks which tend to increase the qualities of Rajas and Tamas.

3. Injury - specially to the head,

4. Mental stress - long periods of overactivity, discouraging situations.

5. Affliction by evil spirits - persons who are born mentally weak, and others at times of certain circumstance, will have their mental stamina at the lowest ebb. At moments of transgression of rules of right conduct traditions, customs and manners etc. Some persons are apt to loose the mental balance in such trying situations, and become victims of circumstances. This, the ancients called graha avesha or affiiction by evil spirits. Quite a large number of such trying situations have been enumerated in Ayurvedic literature.

PRINCIPLES OF TREATMENT

The following are the important principles of treatment of mental disorders.

1. **REMOVAL OF THE CAUSE** - Sudden emotions, factors and circumstances which bring about them should be avoided.

2. **SUPPLYING THE NEEDS** - ambitions and desires of the patient are to

be fulfilled if possible, if they are impracticable alternatives to comfort and console him should be tried. Educating him in various ways to forget about his previous conditions which caused him the disease should be attempted.

3 **DRUG THERAPY** – The tridoshas being the common cause for both physical and mental diseases, any imbalance in them should be corrected by suitable therapies. Shodhana Karmas (purifictory mea sures) such as Vamana (emesis), virechana (purgation), basti (enemata) and shamana karmas (palliative measures) like shirobasti, shirodhara, nasya, abhyanjana, etc. are to be done. Administration of Nidrakara (hypnotics), soumanasya (tranquillisers and tonics), avsadaka (sedatives), uttejaka (stimulants) drugs might also become necessary.

. 4. **SHOCK THERAPY** – In olden days ingenious methods of 'Catching the person unwares' such as throwing a live serpent on him, sudden shower of cold water on his head, bringing in a police man, a butcher, or hunter with his weapons, exploiding the news of loss of persons or things loved most, intoxicating drinks etc. were being used as part of treatment.

RELIGIOUS RITES–In cases where history of wilful transgression of traditions are there and the person thinks always of his sins, he is advised to resort to religious rites like Dana (Charity), Pooja (Worship of Gods), Homa (Sacrifices), Teerthyatra (Pilgrimage) and such other Prayaschittas (Expitiatory rites) which give a sense of satisfaction of getting out of the guilt of sin and thus comfort him.

This is in short a glimpse into the nature of psychological and psychiatrical information available in Ayurveda. There is much more to be studied, evaluated and adopted.

बैद्यनाथ
महायोगराज
गुग्गुलु
सर्वांग शूल, कमर या मेरुदण्ड के
दर्द एवं समस्त प्रकार के वायु के
विकारों की सुप्रसिद्ध महौषधि।

आयुर्वेद को जिनपर गर्व है

आयुर्वेद-वनौषध-निर्णायक ठा० बलवन्त सिंह

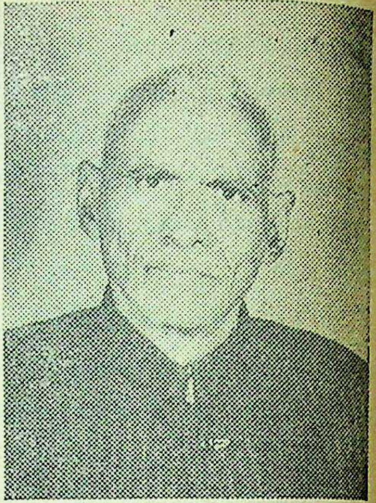

वैद्य मायाराम उनियाल शास्त्री

भारतीय वनौषधि-शास्त्र के महान स्तम्भ ठा० बलवन्त सिंह जी का जन्म १ जुलाई, १९०७ को ग्राम सखाई, जिला जौनपुर के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वाराणसी जिले में हुई, तथा हाई स्कूल की परीक्षा आपने जौनपुर, उत्तीर्ण की। महाविद्यालय स्तर का शिक्षण आपने काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में पूर्ण किया, एवं १९२७ में आपने अपनी शिक्षा पूरी कर वनस्पति विज्ञान में एम० एस० सी० की उपाधि प्राप्त की। सौभाग्यवश, महामना मदन मोहन मालवीय जी ने आयुर्वेद कालेज की स्थापना की, आचार्य-पद पर श्रीयादव जी त्रिकम जी आचार्य को नियुक्त किया। मालवीय जी ठा० साहब के व्यक्तित्व से विद्यार्थी अवस्था से ही प्रभावित थे; और संयोगवश आपको वनस्पति-विज्ञान के लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया।

आप कालेज में छात्रों को वनस्पति-विज्ञान की शिक्षा देते थे, परन्तु इतने कार्य से आपको सन्तोष नहीं हुआ और धीरे-धीरे आपकी रूचि आयुर्वेदिक संदिग्ध वनौषधियों के निर्णय की दिशा में बढ़ने लगी। यह विषय द्रव्यगुण - क्षेत्र में बहुत ही पिछड़ा रहा। लोगों का ध्यान बहुत कम इस ओर गया, जिसके निराकरण का ठा० साहब ने व्रत लिया। आपने धीरे-धीरे चरक, सुश्रुत, अष्टाङ्गहृदय आदि संहिताओं का अध्ययन प्रारम्भ कर० दिया। इसी समय इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले स्व० पं० भगीरथ स्वामी, कलकत्ता - निवासी एवं जय कृष्णचन्द्र जी गुजरात-निवासी से आपका परिचय हुआ और कई शास्त्रीय विषयों का आदान-प्रदान चलता रहा।

ठा० साहब के सामने समस्या थी कि वनों का भ्रमण किये बिना इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकेगी। अत: इस जटिल समस्या को ध्यान में रखते हुये आपने अपने खर्चे से छात्रों को वनौषधि-यात्रा के लिये तैयार किया, और समय-समय पर विभिन्न प्रान्तों में वनौषधि अन्वेषणार्थ टोलियाँ जाने लगीं।

आपके पुरुषार्थ एवं लगनशीलता को देख कर श्रद्धेय श्री यादव जी आपकी प्रतिभा की ओर आकृष्ट हुए और समय-समय पर संदिग्ध वनौषधियों के नामकरण के सम्बन्ध में आपसे परामर्श लेते रहे। इस प्रकार इन वनौषधि - सर्वेक्षण-यात्राओं में आप को बराबर सफलताएं मिलती रहीं। आचार्य यादव जी ने आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपका परिचय श्रीयुत वैद्य पं० रामनारायण शर्मा, संचालक, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन से कराया। श्रद्धेय ठा० साहब ने चरक की इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए कि जंगली आदिवासियों से सम्पर्क स्थापित किये बिना संदिग्ध एवं अज्ञात वनौषधियों का निर्णय कठिन है; वनौषधि अन्वेषकों एवं वनौषधि-प्रेमियों से अपना प्रेम बढ़ाया। श्रीयुत् वैद्य रामनारायण जी भी आपकी प्रतिभा से प्रभावित हुए और समय-सम पर वनौषधि-अन्वेषकों की टोली, बिहार प्रान्त, मध्य प्रदेश, राजस्थान, आसाम, दार्जिलिङ्ग, उत्तराखण्ड जम्मू-कश्मीर आदि विभिन्न प्रान्तों में आपके नेतृ में जाती रहीं।

श्रद्धेय ठा० साहब का मूल लक्ष्य वनौषधियोके निर्णय कर में उनके लोक में प्रचलित परम्परागत स्थानिकनाम, स्था निक प्रयोग, देशभेद से स्थानिकनाम निश्चित करना था डल्हन, चक्रपाणि, जेज्जट आदि टीकाकारोंकी उक्ति वनौ

आयुर्वेद-विभूति पं० रामदयाल जोशी की स्मृति में प्रकाशित ग्रन्थ के विमोचन-समारोह का एक दृश्य । चित्र में बायीं ओर से क्रमशः श्री श्रीधर वासुदेव सोहनी, भू० पू० मुख्य मंत्री श्री केदार पाण्डेय, राष्ट्रकवि श्री दिनकर एवं बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक पं० दुर्गा प्र० शर्मा मंचासीन दिखायी दे रहे हैं ।

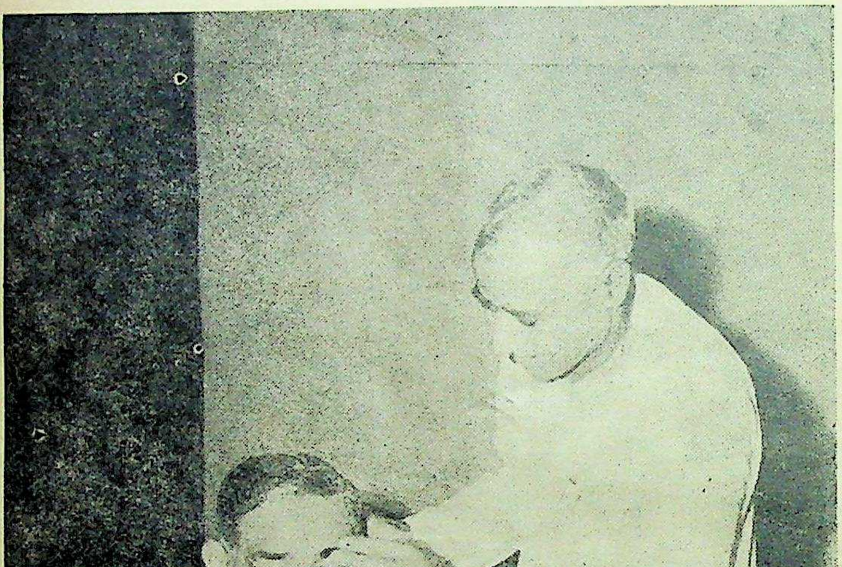

पं० रामदयाल जोशी-स्मृति-ग्रन्थ-विमोचन समारोह के अवसर पर बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती पं० दुर्गा प्र० शर्मा, राष्ट्रकवि श्री दिनकर जी को माल्य प्रदान कर रहे हैं।

पहिचान में खरी उतरी, जिसका प्रमाण आपके द्वारा निर्णीत कतिपय संदिग्ध एवं अज्ञात द्रव्य हैं; जिनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। यथा—(१) मूर्व्वा, एलवालुक, भिल्लोटक, स्थौणेयक, तिलक, तिल्वक, मयूरशिखा आदि—कतिपय द्रव्य हैं जो कि आपने अपनी पुस्तक वृहत्त्रयी की ग्लसरी में स्पष्ट किया है।

रचनाएं

(१) वनौषधिदर्शिका—आयुर्वेद कालेज, छात्र संघ द्वारा १९४७ में प्रकाशित, (हिन्दी)।

(२) बिहार की वनस्पतियाँ,—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा प्रकाशित १९५५ (हिन्दी)।

(३) प्रारम्भिक उद्भिज शास्त्र, चौखम्मा, वाराणसी १९४९, (हिन्दी)।

(३) ग्लोसरी आफ भेजिटेबल ड्रग्स इन वृद्धत्रयी (अंग्रेजी प्रकाशन, चौखम्मा १९७२, वाराणसी

मानपत्र : (१) श्री बुन्देलखण्ड वैद्य-हकीम परिषद्, झांसी श्रीवैद्य पं० रामनारायण जी शर्मा, प्रा० लि०, झांसी द्वारा एवं हकीम परिषद् द्वारा समर्पित ८ जनवरी, १९६५।

(२) अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् द्वारा समर्पित १२ फरवरी, १९७२ इलाहाबाद।

(३) भूतपूर्व प्राध्यापक एवं आयुर्वेद स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान के प्राध्यापकों द्वारा समर्पित २० दिसम्बर, १९७० वाराणसी।

ऐसे महान् आयुर्वेद वनस्पति - शास्त्र के अद्वितीय साधक का साक्षात्कार एवं चरणों में कार्य करने का अवसर मुझे १९६२ में मिला जबकि केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत सरकार के सलाहकार डा० द्वारिकानाथ जी के निमन्त्रण पर आपको, भिलंगनाघाटी, एवं केदारनाथ के हिमालय प्रदेशों की वनौषधियों की जानकारी हेतु वनौषधि सर्वेक्षण एकक, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के तत्वावधान में वनौषधि अन्वेषणार्थ यात्रा करनी पड़ी। ऐसे प्रतिभाशाली महान् आचार्य से परिचय होना मेरे पूर्व जन्मों का ही फल था। उनके सम्पर्क में आकर अपने को धन्य समझा।

इस प्रकार श्रद्धेय ठा० साहब से मेरा परिचय बढ़ता गया है। उनका आशीर्वाद एवं प्रेम बराबर मुझे मिलता रहा। १९६४ से १९६८ तक उत्तराखण्ड हिमालय का सर्वेक्षण मुझ अकिञ्चन के साथ आप करते रहे। आपकी असीम कृपा एवं प्रेरणा से अष्टाङ्गसंग्रह की वनौषधियों का वर्गीकरण प्रारम्भ किया, जिसका प्रकाशन श्रद्धेय प्राणाचार्य श्री दुर्गाप्रसाद जी शर्मा, निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन पटना, ने स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त 'उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका' नामक पुस्तक के लिखने में जो सुझाव एवं निर्देशन आपसे मुझे मिला है वह भुलाया नहीं जा सकता।

मौलिक विचारों का स्वागत

आपके मौलिक विचारों को आचार्य यादव जी, वैद्य बापालाल जी, आचार्य प्रियव्रत शर्मा, आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी, आदि कतिपय विद्वानों ने स्वीकार किया।

आप कई वर्ष तक केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत सरकार के फारमोकोपिया एवं संदिग्ध कमेटी के सदस्य रहे हैं और अब भी आप यूनानी फारमोकोपिया एवं संदिग्ध कमेटी के सदस्य हैं।

मैं अपने को धन्य मानता हूं कि ऐसे महान् वनौषधिनिर्णायक से मेरा सम्पर्क हुआ, जिनके सरल, सौम्य, निश्छल, ज्ञान-योग से कौन प्रभावित न होगा। श्रद्धेय ठा० साहब की प्रेरणा मेरे लिये पथप्रदर्शन का कार्य करेगी जो अक्षय निधि उन्होंने 'ग्लोसरी आफ भेजिटेबिल ड्रग्स इन वृद्धत्रयी' में एकत्रित कर दिया है उससे आयुर्वेद - शास्त्र का भण्डार समृद्ध हुआ है। इस लेख के लिखने में मुझे दैनिक 'आज' के साप्ताहिक विशेषांक (२४ दिसम्बर १९७२) में प्रकाशित लेख "ठा० बलवन्त सिंह : भारतीय वनौषधि-शास्त्र में काशी-परम्परा के प्रवर्त्तक" से पर्याप्त सहायता मिली है।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
सदा, सबके लिए सेवनीय पौष्टिक रसायन

पं० रामदयाल जोशी-स्मृति-ग्रन्थ-विमोचन-समारोह

गत दिनांक ६ मई, ७३ रविवार को सायंकाल ६ बजे पटना के साहू जैन हाल में पं० रामदयाल जोशी-स्मृति-ग्रंथ का विमोचन-समारोह बिहार के मुख्यमंत्री श्री केदार पांडेय द्वारा उल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ। समारोह में मुख्यमंत्री श्री पांडेय, श्री एस० बी० सोहनी, राष्ट्रकवि श्री दिनकर के अतिरिक्त पटना नगर के ख्यातिप्राप्त पत्रकार, साहित्यिक, आयुर्वेद-विद्वान, प्राध्यापक प्रभृति भारी संख्या में सम्मिलित थे।

प्रो० आद्याचरण जी झा द्वारा मंगलाचरण किए जाने के पश्चात्, 'सचित्र आयुर्वेद' के संपादक, श्रीकांत जी शास्त्री के प्रस्ताव एवं जितेन्द्र सिंह राठौर के समर्थन से श्री एस० बी० सोहनी आई० सी० एस० ने अध्यक्ष-पद को सुशोभित किया। अध्यक्षीय निर्वाचन के बाद जोशी-स्मृति-ग्रंथ के संपादक श्री युत् दिनकर ने अपना वक्तव्य संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए दिवंगत जोशी जी के प्रति श्रद्धाञ्जली अर्पित की। तत्पश्चात् मुख्यमंत्री श्री पांडेय जी ने करतल ध्वनि के बीच ग्रंथ का विमोचन किया और दिवंगत जोशी जी के औदार्यपूर्ण व्यक्तित्व एवं मानवीय सद्गुणों की भरपूर चर्चा करते हुए जोशी जी के सम्बन्ध में कई संस्मरण सुनाये। मुख्यमंत्री ने आगे कहा कि जोशी जी के व्यक्तित्व की विशेषता यह थी कि वे खरा बोलते थे, किन्तु अप्रिय नहीं बोलते थे। उन्होंने घर-घर में आयुर्वेद की औषधियां पहुँचा कर जनता की बड़ी सेवा की-ऐसे कर्मपुरुष युगों तक सश्रद्धा स्मरण किए जायंगे।

आपने पुनः कहा कि आयुर्वेद और संस्कृत इस देश की प्राचीन थाती है। इन दोनों का विकास होना चाहिए। आयुर्वेद इस देश की संस्कृति की मूल भित्ति है, अतएव इसकी जड़ दृढ़ और मजबूत होनी चाहिए। दिवंगत जोशी जी की पावन स्मृति में प्रकाशित स्मृति-ग्रंथ के विमोचन-समारोह के अवसर पर हम संस्कृत और आयुर्वेद के उद्धार का व्रत लें।

मुख्यमंत्री के वक्तव्य के बाद समारोह में पधारे कई विद्वान वक्ताओं के भाषण हुए। भाषण-कर्ताओं में संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के कुलपति आचार्य देवेन्द्रनाथशर्मा, 'दैनिक आर्यावर्त्त" के संपादक श्री जयकांत मिश्र, कविराज सुखराम प्रसाद, वैद्य सुरेशदत्त शर्मा, त्रैमासिक 'अंजोर' के संपादक पाँडेय नर्मदेश्वर सहाय प्रभृति प्रमुख थे।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा

जोशी-स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन पर हर्ष प्रकट करते हुए आपने कहा कि ग्रंथ एक महान व्यक्ति के गुणों का समुच्चय है। आपने बताया कि जोशी जी से संस्कृत संजीवन समाज की बैठक में सम्पर्क हुआ। वे उसके संचालक थे। आर्थिक संकट का निराकरण जोशी जी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक करते थे। जोशी जी द्वारा प्रवर्तित संस्थान बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन केवल व्यावसायिक प्रतिष्ठान ही नहीं है। भारतीय संस्कृति के अविभाज्य अंग आयुर्वेद के उद्धार की दिशा में इस प्रतिष्ठान ने स्तुत्य प्रयास किए हैं। इस संस्था ने आयुर्वेद को आगे बढ़ाने में बड़ी सेवाएं की हैं।

आपने कहा कि जोशी जी की वदान्यता का क्या कहना। पैसे का अर्जन और उसका सात्विक उपयोग दुर्लभ है। जोशी जी के यहां से खाली हाथ कोई लौटा हो, मैं नहीं जानता। उनके यहाँ से लोग सफल मनोरथ होकर ही लौटते थे। ये दोनों ही गुण उनके सुपुत्र

श्रीमान् दुर्गा प्र० शर्मा जी में भी हैं। अपने पूज्य पिता के चरण - चिह्नों पर वे चल रहे हैं। बल्कि यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि श्री दुर्गा प्रसाद जी अपने पूज्य पिता जी के कार्यों को वीप्त होकर ही बढ़ा रहे हैं। संस्कृत पत्रिका "पाटल श्री" केवल उनकी सहायता से ही चलती है। उनकी सहायता के बिना उसका प्रकाशन संभव ही नहीं था। श्री दुर्गा बाबू अपने पूज्य पिता के सच्चे अधिकारी हैं। योग्य पिता के योग्य पुत्र की परम्परा बड़ी प्रशस्य है।

श्री जयकान्त मिश्र

'दैनिक आर्यावर्त' के संपादक श्री जयकान्त मिश्र ने दिवंगत जोशी जी के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए कहा कि स्व० जोशी जी बीसवीं सदी के आयुर्वेदोत्थान के प्रतीक थे। परोपकार तथा मिलनसारी उनके विशेष गुण थे। बिहार की उनने बड़ी सेवा की। जोशी जी ने बिहार तथा बिहार के बाहर जो कुछ भी किया, वह अनुकरणीय है। सचमुच वे उदारवृत्ति के लोग थे। सामाजिक कार्यों में वे भरपूर सहायता देते थे। हृदय विशाल था उनका। उन जैसे लोग आज कम ही मिलेंगे। मैं तो सुझाव दूंगा कि स्व० जोशी जी सरीखे महापुरुष के नाम पर कैंसर इन्स्टीट्यूट पटने में स्थापित होना चाहिए।

वैद्य सुरेशदत्त शर्मा

आपने जोशी-स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन को सर्वथा उपयुक्त बताते हुए कहा कि जोशी जी की स्मृति में प्रकाशित ग्रंथ लोगों को सदैव अनुप्राणित करता रहेगा। मेरा ख्याल है कि इस ग्रंथ में जो कुछ कहा गया है, वह उनके उदात्त गुणों की तुलना में कम ही साबित होंगे। आयुर्वेद का प्रणयन करूणा से भावित है, जोशी जी भी करुणा के आगार थे। वे भारतीय विद्याओं की ओर भी उन्मुख हुए थे और उसे अपने उज्ज्वल भविष्य का आधार बनाया था।

आपने आगे कहा कि जोशी जी में प्रबन्ध-पटुता भी गजब की थी। कुटीर उद्योगों के द्वारा भी निर्धन भारत का भरण-पोषण हो सकता है। इस बात को जोशी जी की प्रतिभा ने समझ लिया था। फलतः उन्होंने कुटीर उद्योग की स्थापना करके बिहार राज्य की बड़ी सेवा की है—साथ ही भारतीय विद्या—आयुर्वेद को नवजीवन प्रदान करने की दिशा में भी उन्होंने आजीवन प्रयास किया।

पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय

पटना के सुख्यात अधिवक्ता एवं साहित्यकार पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय ने दिवंगत जोशी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि जोशी जी बड़े गुणग्राही थे। उदार भी थे और गुप्तदान प्रायः दिया करते थे। उन्होंने कहा—मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि साहित्य-सेवियों का समादर करने वाला जोशी जी जैसा व्यक्ति पटने में तो क्या, बिहार के बाहर भी शायद ही होगा।

अध्यक्षीय भाषण

ग्रंथ-विमोचन-समारोह के मनोनीत अध्यक्ष श्री एस० वी० सोहनी, लोक-आयुक्त, बिहार ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा कि आज के ग्रंथ-विमोचन-समारोह को अभिनन्दन का समारोह मानता हूं। जोशी जी निःसन्देह अभिनन्दनीय थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व भारत के प्राचीन विज्ञान (आयुर्वेद) के प्रति जैसी उपेक्षा थी, उसको देखते हुए आयुर्वेदोद्धार की दिशा में जो कुछ हुआ, उसका अधिकांश श्रेय जोशी जी को है। जोशी जी संस्कृत भाषा के भी आश्रयदाता थे। आजीवन संस्कृत भाषा के अनुरागियों के वे आश्रयस्थल बने रहे। जहां तक आयुर्वेद का प्रश्न है, उसके विकास के लिए देशव्यापी प्रयास उन्होंने किया। ऐसे वरेण्यजनों के लिए स्मृति-ग्रंथ का प्रकाशन सर्वथा अभिनन्दनीय कार्य है। मेरा विश्वास है कि स्मृति ग्रंथों में यह ग्रंथ अनुपम है। यह ग्रंथ एक ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में है, जिसका कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। ग्रंथ का संपादन भी सुप्रसिद्ध कवि श्री दिनकर जी द्वारा हुआ है, यह और भी सौभाग्य की बात है।

अध्यक्षीय भाषण के अनन्तर वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य द्वारा समागत अतिथियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के बाद समारोह समाप्त हुआ। स्मृति ग्रंथ की प्रतियाँ भी समुपस्थित जनों को भेंट में दी गयीं। समारोह के कई चित्र भी उतारे गए।

कविराज कृष्णकान्त अधिकारी
(नेपाल)
द्वारा
वैद्यनाथ प्रतिष्ठान का निरीक्षण

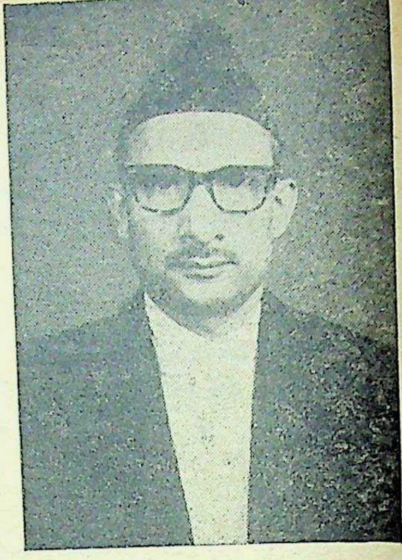

नेपाल के प्रमुख आयुर्वेद-विद्वान एवं चिकित्सक तथा प्रमुख अधिकृत, सिंह दरबार वैद्यखाना, काठमांडू कविराज कृष्णकान्त अधिकारी, सप्ताहव्यापी भारत यात्रा के सिलसिले में गत ११ जून को पटना पधारे। श्री अधिकारी का नेपाल सरकार की ओर से पर्यवेक्षक के रूप में पटना-आगमन हुआ था। श्री अधिकारी ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना-निर्माण-केन्द्र का त्रिदिवसीय निरीक्षण किया और वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के विभागीय अध्यक्षों से आयुर्वेद-औषध-निर्माण-प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त की। श्री अधिकारी ने 'सचित्र आयुर्वेद' के संपादक को एक भेंट में बताया कि नेपाल सरकार आधुनिक ढंग से अपने यहाँ भी आयुर्वेदीय औषध-निर्माण कराने की दिशा में अग्रसर हो रही है—मैं पटना आकर वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के सभी विभागों का निरीक्षण कर प्रसन्न हुआ और औषध-निर्माण के सम्बन्ध में एक प्रतिवेदन मैं शीघ्र ही नेपाल सरकार को लौटने पर दूंगा।

श्री अधिकारी ने वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक आयुर्वेद चक्रवर्त्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य से भी भेंट की और वैद्यनाथ के पटना केन्द्र में आयुर्वेद औषध-निर्माण एवं आयुर्वेद-विषयक विविध प्रश्नों के बारे में विचार-विमर्श किया। श्री अधिकारी ने वैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित प्रमुख मासिक पत्र 'सचित्र आयुर्वेद' के कार्यालय का भी निरीक्षण किया और 'सचित्र आयुर्वेद' के सुन्दर प्रकाशन पर प्रसन्नता प्रकट की। प्रतिष्ठान के निदेशक, प्राणाचार्य पं० दु प्र० शर्मा तथा स० आयुर्वेद के संपादक तथा अन्य कर्मचारियों के साथ श्री अधिकारी के चित्र भी उतारे गए

वैद्यनाथ
आइ-ऑरव
आँखों की रक्षा के लिए सदा व्यवहार कीजिये

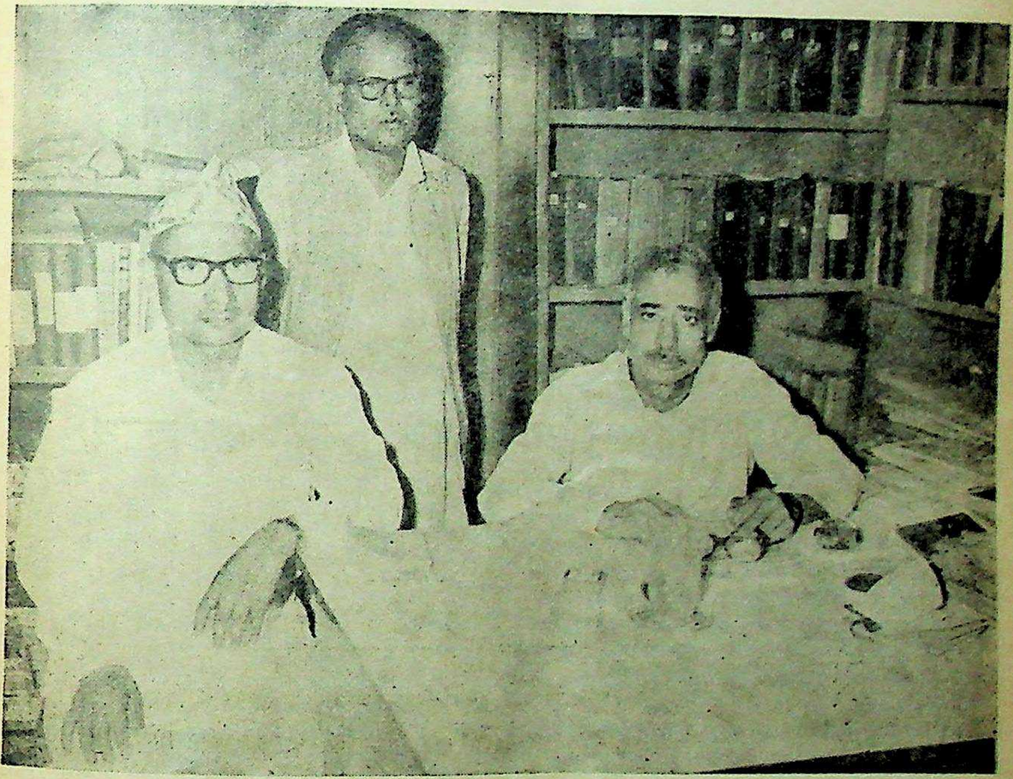

बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना-केन्द्र स्थित 'सचित्र आयुर्वेद' कार्यालय में नेपाल के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद-विद्वान श्री कृष्णकान्त अधिकारी के साथ प्रतिष्ठान के निदेशक प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्र० शर्मा एवं 'सचित्र आयुर्वेद' के संपादक श्रीकान्त शास्त्री का उतारा गया चित्र।

वनौषधि संबंधी सर्वाधिक उपयोगी पुस्तक

वनौषधि-शतक

लेखक :—

प्राणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा

निर्देशक :—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा॰ लि॰

अध्यक्ष :-

बिहार-राज्य आयुर्वेद-यूनानी अधिकाय,
पटना

अब तक वनस्पति-सम्बन्धी ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था, जिसके आधार पर चिकित्सक या सर्वसाधारणजन वनस्पतियों का स्वरूप, गुण-धर्म और रोगानुसार इसके उपयोग से लाभ उठा सकें। अंतएव, वनस्पति-विशेषज्ञ वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा ने जन-कल्याणार्थ प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें १०० वनौषधि के रंगीन और सादे चित्रों के साथ वनस्पति-परिचय, गुण-धर्म और रोगाणुसार उपयोगों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में है। यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्वानों, छात्रों चिकित्सकों एवं सर्वसाधारणजन के लिये बहुत उपयोगी है।

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

डबल डिमाई १६ पेजी, पृष्ठ संख्या २०८, सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र ५.०० है। पोस्टेज पृथक।

पाठकों के पत्र

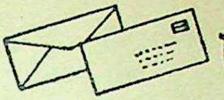

आयुर्वेद - यूनानी के स्नातकों के वेतन-स्तर में एकरूपता क्यों नहीं :

मैं आपके जनप्रिय मासिक पत्र के माध्यम से वेतन आयोग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन में आयुर्वेदिक स्नातकों से सम्बन्धित संस्तुतियों की असंगतियों की ओर शासन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। आयोग ने राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्साधिकारियों के तीन वेतन स्तर रखे हैं—

१—वैद्य तथा हकीम-३००-१०-३५०-१२-४७०-१६-५५०
२—चिकित्सक ग्रेड२-४५०-२५-७००-३०-८५०
३-चिकित्साधिकारी-५००-२५-६५०-३०-८००-४०-१०००

इसके अतिरिक्त राजकीय औषधि निर्माणशाला में कार्य करने वाले चिकित्साधिकारी तथा श्रम विभाग में आयुर्वेदिक चिकित्साधिकारियों का वेतन-स्तर ४००-१५-४७५-२०-५७५-२५-७५० आयोग ने निर्धारित किया है। जबकि उपरोक्त सभी पदों पर कार्य करने वाले चिकित्साधिकारियों की आधारभूत योग्यता एक समान होती है।

इसके विपरीत जब हम यह देखते हैं कि एलोपैथिक चिकित्साधिकारियों का वेतन स्तर केवल एक रखा गया है जो कि ५५०-३०-७००-४०-९००-५०-१२०० है, चाहे वह चिकित्साधिकारी ग्रामीण क्षेत्र के चिकित्सालय का हो अथवा नगर के चिकित्सालय का रेडियोलाजिस्ट, सर्जन या कोई विशेषज्ञ हो अथवा श्रम विभाग में एलोपैथिक चिकित्सालय में कार्य करने वाला चिकित्साधिकारी हो, सभी के लिए एक ही वेतन स्तर की संस्तुति आयोग ने की है। परन्तु आयुर्वेद विभाग में सेवारत चिकित्साधिकारियों की योग्यता एक समान होते हुए भी उनमें विभिन्न प्रकार के वेतन स्तर रखने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। मेरा शासन से अनुरोध हैं कि इन विभिन्नताओं को समाप्त करके इन चिकित्सकों का न्यूनतम वेतन-स्तर किसी भी दशा में ५००-१२०० से कम नहीं होना चाहिए, क्योंकि आयोग ने दन्त चिकित्सकों का वेतन स्तर यही रखा है जबकि उनका प्रशिक्षण काल केवल ४ वर्ष का है और हमारे स्नातकों को ५ वर्ष प्रशिक्षण में व्यतीत करने पड़ते हैं। इस आधार पर हमारा न्यूनतम वेतन-स्तर दन्त चिकित्सकों से अधिक ही होना चाहिए क्योंकि आयोग ने वेतन-निर्धारित करने के सिद्धांतों में प्रशिक्षण अवधि का भी ध्यान रखा है।

इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि वैद्य एवं हकीम तथा चिकित्सक ग्रेड २ समाप्त कर सभी चिकित्साधिकारियों को ५००-१००० वेतन स्तर देकर एकरूपता लायी जाये तथा किसी विभाग में हमारे स्नातकों को इस न्यूनतम सीमा रेखा से नीचे वेतन स्तर कदापि प्रदान न किया जाये।

दुर्भाग्य की बात है कि उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य विभाग में असिस्टेन्ट इपीडेमिक आफिसर का वेतन स्तर केवल ३००-५०० ही रखा है। जबकि अन्य स्थानों पर १७५-३०० के वेतन स्तर को ४००-३५० में पुनरीक्षित किया गया है। इस पद पर कार्य करने वाले हमारे आयुर्वेदिक एवं यूनानी स्नातक ही होते हैं अस्तु इनका वेतन स्तर भी न्यूनतम ५००-१००० ही होना चाहिए।

दूसरा वेतन स्तर स्टेट आयुर्वेदिक सर्विस को ५५०-१२०० का प्रदान किया जाना चाहिए, क्योंकि वेतन स्तर की संस्तुति की है तो क्यों न आयुर्वेद विभाग में राज्य स्तर की सेवा को ५५०-१२०० का वेतन स्तर प्रदान कर सामाजिक न्याय का परिचय-शासन दे। इसी प्रकार की संस्तुति दन्त चिकित्सकों को कतिपय पदों के लिए ५५०-१२०० के वेतन मान देकर आयोग ने की है।

अतएव शासन का ध्यान इन असंगतियों की ओर आकृष्ट करते हुए हम निवेदन करते हैं कि आयुर्वेद विभाग में चिकित्साधिकारियों के अराजपत्रित वेतन स्तर को समाप्त करके सभी को ५००-१००० का न्यूनतम वेतन-स्तर प्रदान करे तथा जिन पदों के लिए ५००-१००० वेतन स्तर की स्तुति आयोग ने की है अर्थात् राज्य स्तर की आयुर्वेद सेवा के लिए वही वेतन स्तर प्रदान किया जाये जोकि अन्य विभागों की राज्य सेवाओं के लिए शासन ने प्रदान करने का निश्चय किया है।

वैद्य आनन्द कुमार [illegible]
महामन्त्री,
राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सक संघ
२६६।११५क, नई बस्ती, भदेवा, लखनऊ

डा० प्रियव्रत शर्मा की विदेश यात्रा

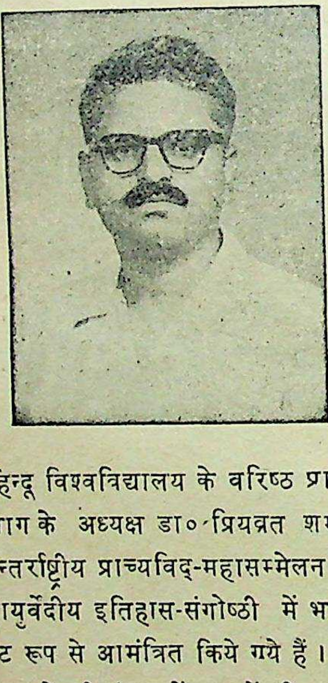

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक एवं द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष डा० प्रियव्रत शर्मा पेरिस में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्-महासम्मेलन के अन्तर्गत आयोजित आयुर्वेदीय इतिहास-संगोष्ठी में भाग लेने के लिए विशिष्ट रूप से आमंत्रित किये गये हैं। आप 'आयुर्वेदीय इतिहास के सीमांकन में द्रव्यों की भूमिका' पर अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। इस अवसर पर आप फ्रांस, इंगलैंड, जर्मनी, इटली आदि यूरोपीय देशों की अनेक संस्थाओं का भी अवलोकन करेंगे और उनमें व्याख्यान देंगे। उपर्युक्त संगोष्ठी अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्-महासम्मेलन के शताब्दी समारोह के उपलक्ष में १६ से २२ जुलाई तक आयोजित हो रही है।

डा० शर्मा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान के निदेशक रह चुके हैं और आयुर्वेद के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान हैं। आयुर्वेद के विभिन्न विषयों पर आपके लगभग एक दर्जन ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और आयुर्वेदीय अनुसन्धान के क्षेत्र में भी आपके अनेक महत्वपूर्ण शोधपत्र प्रकाश में आ चुके हैं।

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सक संघ उ. प्र. की विज्ञप्ति

सभी चिकित्साधिकारी बन्धुओं से सूचनार्थ निवेदन है कि वेतन आयोग उत्तर प्रदेश का प्रतिवेदन विधान सभा के पटल पर आ गया है जिसके अनुसार आयुर्वेद विभाग में अधोलिखित संस्तुतियां आयोग ने वेतनमानों के सम्बन्ध में की है, जिसे शासन ने स्वीकार कर लिया है।

क्र० सं० १	पद का नाम २	वेतनमान ३
१-	निदेशक वेतन क्रम	१२००-५०-१५००-६० १८०० रु०
२-	सहायक निदेशक	६५०-३०-८००-४०-१०००-५०-१३०० रु०
३-	क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारी	५५०-३०-७००-४०-९००-५०-१२०० रु०
४-	चिकित्साधिकारी	५००-२५-६५०-३०-८००-४०-१००० रु०
५-	चिकित्सक ग्रेड ॥	४५०-२५-७००-३०-८५० रु०
६-	वेद्य एवं हकीम	३००-१०-३५०-१२-४७०-१६-५५० रु०
७-	कम्पाउन्डर	२००-५-२५०-६-२८०-८-३२० रु०
८-	चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी	१६५-२-१८५-३-२१५ रु०
	चिकित्साधिकारी श्रम विभाग एवं चिकित्साधिकारी आयुर्वेदिक फार्मेसी	४००-१५-४७५-२०-५७५-२५-७५० रु०
	चिकित्साधिकारी इन्ट्रिग्रेटेड डिस्पेन्सरी	४००-१५-४७५-२०-५७५-२५-७५० रु०
	असिस्टेन्ट इपीडेमिक आफिसर	३००-८-३४०-१०-४५०-१२-५०० रु०

उपरोक्त वेतनमान दिनांक १ अगस्त, १९७२ प्रभावी होंगे। प्रत्येक कर्मचारी के लिए यह विक रहेगा कि वह चाहे तो १ अगस्त, १९७२ से नवीन वे मानो की स्वीकृति दे अथवा उसके उपरान्त पड़ने वा वेतन वृद्धि की तिथि से स्वीकार करे। उसमें देखना हो कि किसमें अधिक लाभ है जिसमें जिसमें अधिक हो उ तिथि से स्वीकृति कर्मचारी को देनी चाहिए।

वैद्य आनन्द कुमार बरनवाल
महामन्त्री
राजकीय आयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सक
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

बहराइच के क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारी की विदाई

बहराइच क्षेत्र के समस्त आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्साधिकारियों एवं कार्यालय के कर्मचारियों की ओर से श्री हकीम मोइनुद्दीन सिद्दीकी साहब क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी के स्थानान्तरण के उपलक्ष में दिनांक ६-४-१९७३ को सायंकाल ५ बजे बहराइच के क्षेत्रीय आयुर्वेदिक कार्यालय में प्रीतिपेय का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ग्रुप फोटो के बाद चिकित्साधिकारियों की ओर से भावभीनी विदाई देते हुए वैद्य श्री अविनाशचन्द मिश्र ने कहा कि इस अल्प अवधि के कार्यकाल में हकीम साहब ने जिस कार्यदक्षता एवं जनप्रियता का परिचय दिया वह अनुकरणीय है। उनका अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति आत्मीय व्यवहार को वैद्य एवं हकीम सदैव स्मरण रखेंगे।

इस अवसर पर विशेष रूप से राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सक संघ के महामन्त्री श्री वैद्य आनन्द कुमार बरनवाल श्री वैद्य अवनीशचन्द्र जी, उप मन्त्री के निमंत्रण पर इस आयोजन में सम्मिलित हुए, उन्होंने चिकित्साधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आयुर्वेद विभाग में क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारियों को प्रशासन का उत्तरदायित्व प्राप्त होना एक एतिहासिक घटना है। अतएव इन बढ़ती हुई परिस्थितियों में विभाग के सभी वर्ग के व्यक्तियों पर गुरुतर भार आ गया है। विशेष कर चिकित्सा अधिकारियों को अब अपने मान-सम्मान एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए त्याग एवं सेवा भाव से जनता की सेवा करनी है क्योंकि चिकित्साधिकारी ही विभाग के पृष्ठ वंश की भांति कार्य करता है। वैद्यों व हकीमों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे अपनी चिकित्सा द्वारा जनता के समक्ष आयुर्वेद एवं यूनानी के उज्ज्वल एवं विकसित स्वरूप को प्रस्तुत करें। ताकि नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत हम अपने विभाग को उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर ले जा सकें।

साथ ही महामन्त्री ने अपने संघ के प्रति कर्त्तव्यों की ओर भी चिकित्सा अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया कि जो व्यक्ति भी चिकित्साधिकारी के पद पर कार्य कर रहा है वह तो संघ का सदस्य है ही; तो फिर क्या कारण है कि संघ का वार्षिक सदस्यता-शुल्क भेजने में विलम्ब किया जाता है। इस वर्ष शत प्रतिशत सदस्यता शुल्क एकत्र करना है तथा भविष्य में होने वाले वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रत्येक की उपस्थिति अनिवार्य है। ताकि हम अपनी शक्ति का उपयोग अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों की सुरक्षा हेतु कर सकें। इस वर्ष सितम्बर अथवा अक्टूबर में वार्षिक अधिवेशन होने की सम्भावना है।

वेतन आयोग की रिपोर्ट के बारे में बताते हुये, उन्होंने कहा कि शीघ्र ही एक सप्ताह के अन्दर ही विधान सभा के पटल पर शासन द्वारा प्रस्तुत कर दी जायेगी। हमें आशा है कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति में निश्चय ही एक पग आगे बढ़ेंगे। अतएव सभी बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि वे संघ को नैतिक एवं आर्थिक सम्बल प्रदान करें ताकि संघ आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सकों को शासन में सम्मानजनक स्थान पर प्रतिष्ठित कराने का संकल्प पूर्ण कर सकें।

अन्त में हकीम मोइनुद्दीन साहब ने सम्बोधन करते हुए कहा कि आपको जनता का विश्वास एवं श्रद्धा प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। पैसा तो आपके पास आवश्यकतानुसार आ ही जायेगा। उन्होंने अपने चिकित्साकाल के अनुभवों के द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से अपने कथन की सत्यता प्रतिपादित की।

तदुपरान्त संघ के उपमन्त्री ने सभी अभ्यागत मान्य अतिथियों का, जिस में नगर के राज्य अधिकारी भी उपस्थित थे, संघ के महामन्त्री का जिन्होंने कि लखनऊ से आकर के कष्ट उठाया तथा समस्त चिकित्साधिकारियों एवं अन्य सभी लोगों का, जिन्होंने कि इस आयोजन को सफल बनाया, के प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया।

अन्त में जलपान के बाद आयोजन समाप्त हो गया।

आयु० चि० संघ, नागौर

राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ जिला शाखा नागौर का प्रथम अधिवेशन दिनांक ६-४-७३ को नागौर में सम्पन्न हुआ, जिसका उद्घाटन आयुर्वेद विभाग राजस्थान के उपनिदेशक महोदय श्री चन्द्रशेखर जी गुप्त के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ, इसी अवसर पर नागौर जिला शाखा का नवीन निर्वाचित वैद्य श्री हरिमोहन जी शर्मा प्रान्तीय अध्यक्ष के नेतृत्व में निम्नानुसार सम्पन्न हुआ।

(१) अध्यक्ष—वैद्य श्री वंशीधर शर्मा, (२) महा समिति सदस्य—वैद्य श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, (३) जिला समन्वय समिति—वैद्य श्री रामगोपाल शर्मा। तदनन्तर अध्यक्ष वैद्य श्री वंशीधर शर्मा ने जिला शाखा की कार्यकारिणी के पदाधिकारियों की घोषणा निम्नानुसार की—उपाध्यक्ष—वैद्य श्री राधेश्याम शर्मा, मंत्री—वैद्य श्री तुलसीदास वैष्णव, संयुक्त मन्त्री—वैद्य श्री महावीर प्रसाद, संगठन मंत्री—वैद्य श्री प्रह्लादचन्द्र, प्रचारमंत्री—वैद्य श्री मूलचन्द शर्मा, कोषाध्यक्ष—वैद्य श्री सीताराम शर्मा। सदस्य कार्यकारिणी—वैद्य सर्वश्री मोतीलाल शर्मा, मिश्री लाल तिवारी, वाचस्पति शर्मा, वंशीलाल 'अजेय', हेमचन्द्र शर्मा।

‘‘आयु० स्नातकोत्तर वैद्य सम्मेलन राजस्थान : स्थापना दिवस”

श्री गंगानगर : आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर सम्मेलन राजस्थान ने १ जून को अपना सातवां स्थापना दिवस मनाया। स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त वैद्यों का यह संगठन है। वर्तमान में इसके राज्य में सत्तर सदस्य हैं। स्नातकोत्तर वैद्य सम्मेलन के प्रयास से राजस्थान में भी 'आयुर्वेद वृहस्पति' का स्नातकोत्तर अध्ययन जयपुर में प्रारम्भ हो गया है। सम्मेलन के महासचिव वैद्य श्री कृष्णदत्त शर्मा की अपील पर सभी स्थानों पर स्थापना दिवस मनाया गया। मुख्य स्थापना दिवस श्री गंगानगर में मनाया गया। महासचिव ने राज्य सरकार से भी अपील की है कि आयु० पोष्टग्रेज्यूएट्स की की नियुक्ति में भेद-भाव की नीति समाप्त की जाय, तथा कम से कम पोस्ट ग्रेज्यूएट्स को पाँच अधिक वेतनवृद्धियाँ दी जानी चाहिए। सम्मेलन यह भी विचार प्रस्तुत किया कि बालकों के उपयोगी सामग्री की पाठ्य-पुस्तकों के लिए सिखाने की योजना विचाराधीन है। आयु० पोस्ट ग्रेज्यूएट्स के प्रति उदात्त भावना रखी जानी चाहिए। समस्त सदस्य अपना पत्र व्यवहार, वार्षिक सदस्यता शुल्क दस रुपया, महा सचिव के पास गणेशगढ़ जिला श्रीगंगानगर (राजस्थान) के नाम पर भेजें।

'राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ द्वारा आन्दोलन का निश्चय'

जयपुर राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ की एक महत्वपूर्ण महासमिति एवं कार्यकारिणी की बैठक गत १६-४-७३ को मारवाड़ जंक्शन (पाली) पर हुई। इस अधिवेशन में प्रान्त भर के ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अधिवेशन के अवसर पर १५ सूत्री सशोधित मांगपत्र स्वीकार किया गया तथा यह भी निश्चय किया गया कि विभागीय चिकित्सक संघ अपनी मांगों के पक्ष में शीघ्र ही आन्दोलन प्रारम्भ करेगा। महासमिति एवं कार्यकारिणी की इस बैठक की बहस में सभापति वैद्य श्री कृष्णदत शर्मा, अध्यक्ष वैद्य श्री हरिमोहन शर्मा, महामन्त्री वैद्य श्री श्यामसुन्दर व शिष्ठ, कोषाध्यक्ष वैद्य श्री कुशलानन्द व्यास ने भाग लिया। आन्दोलन की संघर्ष समिति का संयोजक वैद्य श्री कुशलानन्द व्यास को चुना गया। यह आन्दोलन पांच चरणों में पूरा होगा। इसी समय पाली जिला शाखा का अधिवेशन भी सम्पन्न हुआ। महासमिति की बैठक में खारची के विधायक श्री दलपत सिह जी ने उद्बोधन भाषण दिया।

'हनुमानगढ़ टाउन में चिकित्सक संघ का अधिवेशन सम्पन्न'

श्री गंगा नगर-राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ जिला शाखा का अधिवेशन १४-४-७२ को एक सुसज्जित भवन में प्रारम्भ हुआ। इस अधिवेशन में सभापति, प्रान्तीय अध्यक्ष, महामन्त्री ने भी उद्बोधन दिया। जिला आयुर्वेद अधिकारी वैद्य श्री रामरतन त्रिपाठी ने भी उद्घाटन भाषण दिया। जिला शाखा के मंत्री श्रीराममेहर सिंह ने प्रगति-पत्र पढ़ा। अध्यक्ष श्री शिवकुमार ने जिले की समस्याएं प्रस्तुत कीं। अन्य वक्ताओं वैद्य श्री बनवारी लाल शर्मा, वैद्य श्री वृजमोहन शर्मा, वैद्य श्री श्यामसुन्दर वाशिष्ठ, वैद्य श्री इन्दुच शर्मा ने अपने विचार प्रकट किये। बाद में चुनाव हु जो इस प्रकार है—महासमिति के सदस्य वैद्य श्री कृष्णदत शर्मा, जिला शाखा के अध्यक्ष वैद्य श्री जगदी राम लालगढ़ जाटन, वैद्य श्री जगदीशचन्द्र विश्नो जिला कर्मचारी संघ के प्रतिनिधि चुने गए।

'सम्मान व स्वागत समारोह'

श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल, उज्जैन तत्वावधान में दिनांक ५-५-७३ को आयुर्वेद के मह विद्वान एवं शिक्षा शास्त्री, प्रान्तीय आयुर्वेद मण्डल अध्यक्ष प्राणाचार्य डा० पं० वासुदेव शास्त्री आयुर्वेद

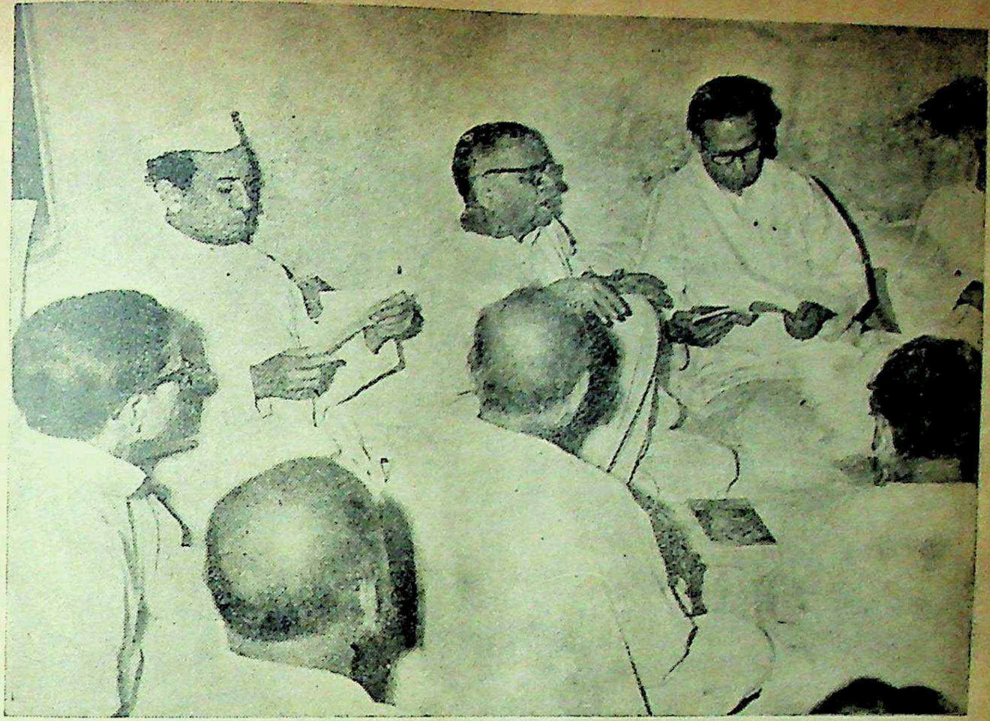

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना में आयोजित संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के कुलपति आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के स्वागत-समारोह का एक दृश्य । चित्र में आचार्य शर्मा, आचार्य पाठक एवं ज्योतिषाचार्य पं० विष्णुकान्त झा प्रभृति परिलक्षित हो रहे हैं ।

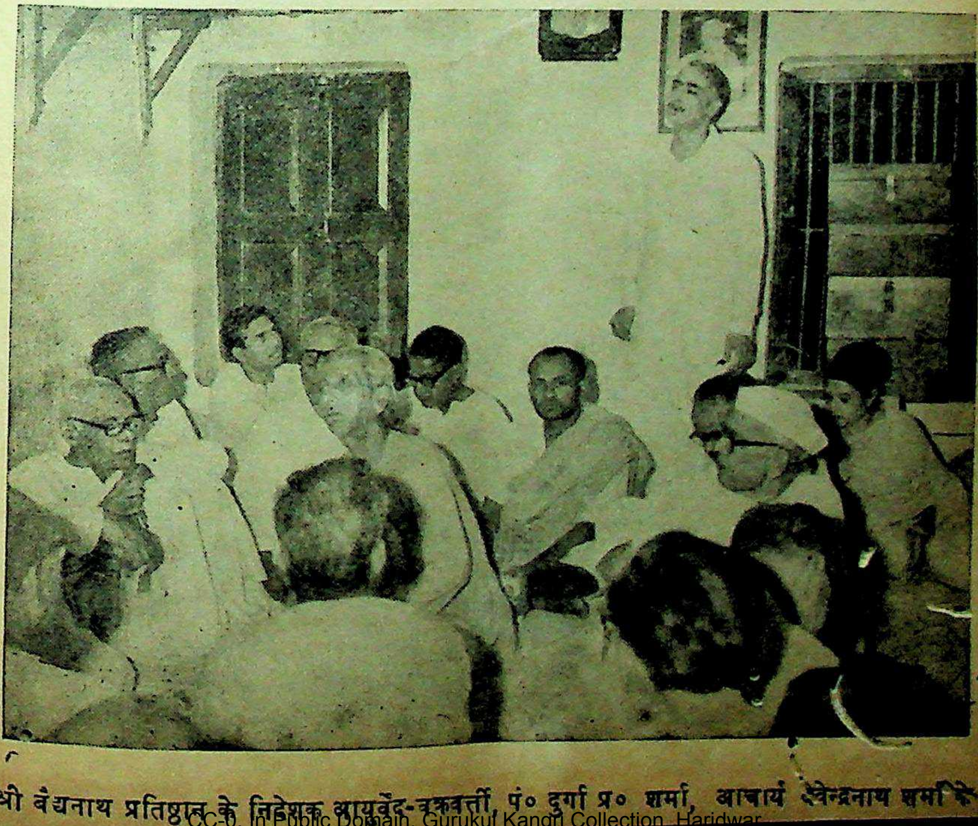

श्री वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा प्र० शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के

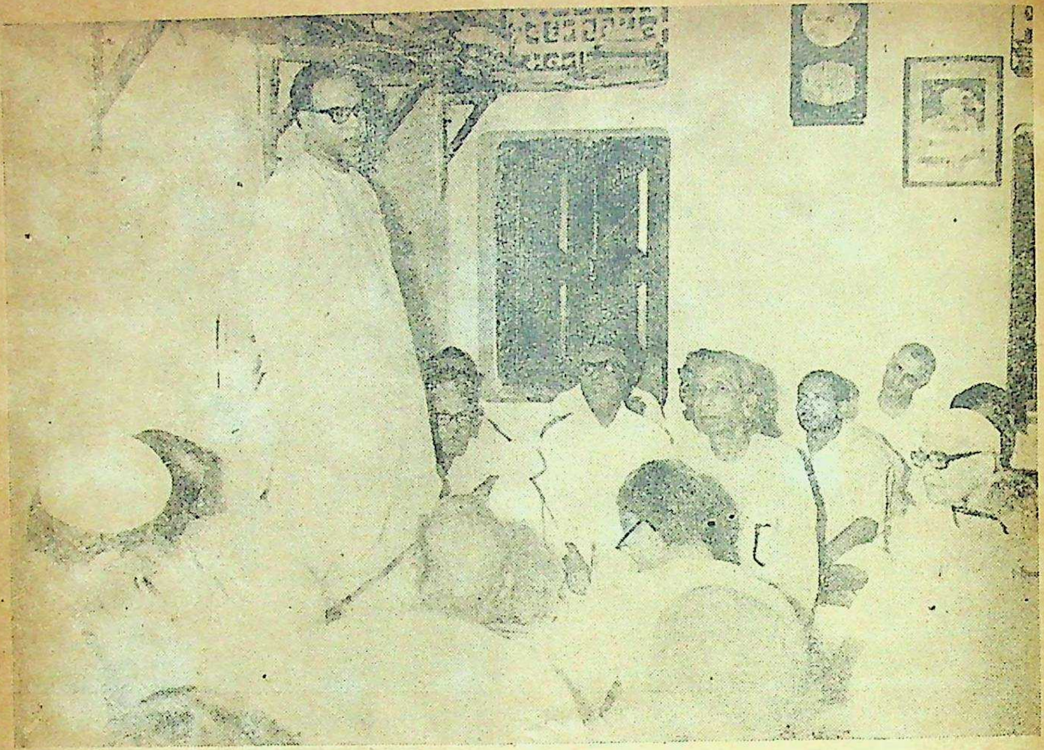

श्री वैद्यनाथ प्रतिष्ठान में अनुष्ठित स्वागत-गोष्ठी में आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा विद्वानों द्वारा व्यक्त किए गए उद्गारों के लिए आभार व्यक्त कर रहे हैं।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के नागपुर केन्द्र के व्यवस्थापक श्री ग्यारसी लाल मोदी के सेवा-

स्पति, आयुर्वेदाचार्य; व भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् तथा भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होमियोपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् के सम्मानित सदस्य कविराज डा० कृष्णचन्द्र पिण्डावाला, ए० एन० एन० आयुर्वेदाचार्य; व सुप्रसिद्ध समाजसेवी डा० कमल सिंह जी का भव्य सम्मान समारोह विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' के विशेष आतिथ्य में वैद्य गुलाबचन्दजी शर्मा की अध्यक्षता में श्री अवन्तिका आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रांगण में आयोजित किया गया।

धन्वन्तरि-स्तवन के बाद वैद्य बाबूलालजी मित्तल ने स्वागत व परिचय भाषण दिया। अनन्तर श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल की ओर से वैद्य प्रभाकर कानडकर, नेशनल इन्टीग्रेटेड मेडिकल एसोसिएशन की ओर से डा० मनोहरलाल शाह, मध्यप्रदेश आयुर्वेद मंडल की ओर से प्रधानमन्त्री श्री हमीर सिंह जी मोदी, इन्दौर नगर वैद्य मंडल की ओर से वैद्य श्री हरीकृष्ण जी जोशी, उज्जैन जिला आयुर्वेद मण्डल की ओर से वैद्य बाबूलालजी मित्तल, इन्दौर जिला आयुर्वेद मण्डल के अध्यक्ष इन्दौर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक सीतारामजी अजमेरा की ओर से श्री वैद्य चोरसिया, शासकीय धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय छात्रसंघ ओर से श्री रन्जन कुमार त्रिवेदी तथा रवीन्द्र दिराावल तथा अवन्तिका आयुर्वेद महाविद्यालय की ओर से श्री श्यामसुदर निगम ने तथा अनेकों संस्थाओं और विद्वान वैद्यों की ओर से पुष्पमाल्यार्पण द्वारा कुलपति डा० सुमन, श्रीमान् शास्त्री जी, डा० पिण्डावाला तथा डा० कमल सिंह जी का स्वागत किया गया। अपने स्वागत के उत्तर में डा० वासुदेव शास्त्री ने आजकल बढ़ रहे मानसिक रोगों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए उसका कारण प्रज्ञापराध बतलाया। इसकी एकमात्र चिकित्सा व उपाय आयुर्वेद में वर्णित दिनचर्या व ऋतुचर्या और आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का अनुकरण करना बतलाया। स्वतंत्रता-संग्राम - सेनानी डा० कमल सिंह जी ने, सरफरोसी की तमन्ना अब हमारे दिल में हैं, इस उद्घोष के साथ अपना ओजस्वी भाषण प्रारम्भ किया व स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान घटित घटनाओं के अनेकों संस्मरण सुनाये। डा० कृष्णचन्द्र पिण्डावाला ने अपने सारगर्भित भाषण में आयुर्वेद चिकित्सा की महानता का उल्लेख करते हुए श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय में स्नातकोत्तर शिक्षण व शोध संस्थान खुलवाने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए माननीय कुलपति महोदय से सहयोग के लिए अपील की। उन्होंने सेन्ट्रल काउन्सील में विषय को रखने व उसके लिए प्रयत्न करने की भी प्रतिज्ञा की। डा० पिण्डावालाजी ने भारतीय चिकित्सा पद्धति तथा होमियोपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् की गतिविधियों को भी विस्तार से बताया।

मुख्य अतिथि डा० शिवमंगलसिंह जी सुमन ने अपने मधुर व कवित्वपूर्ण भाषण में बतलाया कि अनेकों राष्ट्रों का ध्यान आयुर्वेद प्रणाली की ओर आकृष्ट हो रहा है। मोरिशस में तो आयुर्वेद महाविद्यालय प्रारम्भ करने की योजना भी बन रही है। आपने धन्वन्तरि महाविद्यालय में स्नातकोत्तर शिक्षण व शोध संस्थान की आवश्यकता महसूस करते हुए उसको चालू करवाने का आश्वासन प्रदान किया। अन्त में अध्यक्ष के भाषण के पश्चात वैद्य बाबूलाल जी मित्तल द्वारा आभार प्रदर्शित किया गया। शीतल पेयपान के साथ समारोह का समापन हुआ। समारोह का संचालन डा० श्यामसुन्दर निगम ने साहित्यिक व काव्यपूर्ण भाषा में किया।

श्री मोदीजी की बिदाई

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० नागपुर के मैनेजर तथा नगर के सुपरिचित प्रतिष्ठित नागरिक श्री जी० एल० मोदी को प्रतिष्ठान के ग्रेट नागरोड स्थित कार्यालय में उनके सभी अधिकारी, कर्मचारी एवं सहयोगियों की ओर से भावभीनी बिदाई दी गई। इस सादगीपूर्ण किन्तु आकर्षक समारोह की अध्यक्षता प्रतिष्ठान के निर्देशक श्रीयुत सुरेश कुमारजी शर्मा ने की, सर्वप्रथम इस आयोजन के संयोजक वैद्य रामदत्त जी शर्मा ने प्रमुख अतिथि तथा श्रीयुत मोदीजी तथा समारोहके अध्यक्ष श्रीयुत सुरेशजी शर्मा का पुष्पमालाओं से स्वागत किया। तदपश्चात् श्री शिवशक्ति प्रेस प्रा० लि०, औषधि कामगार संघ, वैद्यनाथ स्वास्थ्य - रक्षा - केन्द्र, तथा प्रतिष्ठान के विभिन्न विभागों के प्रतिनिधियों ने प्रमुख अतिथि का पुष्पमालाओं से स्वागत तथा शाल एवं श्रीफल भेंट किया। श्रीयुत के० एन० शर्मा (जनरल मैनेजर) ने अपने प्रारंभिक और ओजस्वी भाषण में श्रीयुत मोदीजी के हो रहे इस भव्य स्वागत का उल्लेख करते हुए कहा कि स्वयं प्रेरणा से हो रहे इस स्वागत से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीयुत

मोदीजी का स्थान अपने सहयोगियों के बीच कितना स्नेह एवं आदरपूर्ण रहा है। श्री उमेश शर्मा ने श्रीयुत मोदीजी के सादगीपूर्ण और कर्मठ जीवन से प्रेरणा लेने का आग्रह, तो श्री हरिशचंद्रजी आर्य ने श्री मोदीजी को कर्मयोगी निरूपित किया। वैद्य सीतारामजी शर्मा, श्री अम्बादास आरेकर, श्री लक्ष्मण राव धौपटे, श्री दिवाकर जी उपगडे ने भी अपने सामयिक विचार व्यक्त किये। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्रीयुत सुरेशजी शर्मा ने कहा कि यह श्रीयुत मोदीजी की ही अथक मेहनत और व्यापारिक कुशलता का प्रतिफल है कि हमारा यह प्रतिष्ठान आज नागपुर का एक प्रमुख औद्योगिक प्रतिष्ठान बन सका है। इसके प्रत्युत्तर में श्रीयुत मोदीजी ने कहा कि मैं तो निमित्त मात्र हूं। मैंने कुछ नहीं किया है। यह तो सबके प्रेम और प्रतिष्ठान के संचालकों के भाग्य और परिश्रम के फल हैं। भावविभोर करने वाले अपने आर्शीवादात्मक भाषण से श्रीयुत मोदीजी ने सभी सहयोगियों को प्रतिष्ठान के प्रति वफादारी रखते हुए कार्य करने का परामर्श दिया। स्वल्पाहार के पश्चात् कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

राज० आयु० यू० कम्पाउण्डर, संघ, उ० प्र०

कार्यकारिणी की बैठक

गत दिनांक १०-५-७३ ई० को राजकीय आयुर्वेदिक एवम् यूनानी कम्पाउन्डर संघ उत्तर-प्रदेशकी कार्यकारिणी की बैठक श्री रामायण प्रसाद पाठक के मकान नम्बर ६३ अमीनाबाद लखनऊ के निवास स्थान में श्री मारकण्डेय नाथ उपाध्याय, उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे। निम्नांकित प्रस्ताव पारित हुए :

(१) श्री मारकण्डेयनाथ उपाध्याय, उपाध्यक्ष, कम्पाउंडर रा० आ० चि० नौली जिला गाजीपुर।

(२) श्री शिवपूजन सिंह, कम्पाउण्डर, महामन्त्री, रा० आ० चि० बांसगांव, आजमगढ़।

(३) श्री रामदयाल शर्मा, कम्पाउण्डर, उपमन्त्री, रा० आ० चि० कुम्भा, जिला मथुरा।

(४) श्री जयकर पांडेय, कम्पाउण्डर, सदस्य, रा० आ० चि० कर्मी, जिला आजमगढ़।

(५) श्री शत्रुघ्न सिंह, फारमेसिटकल असिसटेन्ट, रा० औ० नि० शाला, उ० प्र० लखनऊ।

(६) श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, प्रशिक्षण कम्पाउण्डर, सदस्य, रा० आ० कालेज, लखनऊ।

(७) श्री श्रीप्रकाश वाजपेयी, कम्पाउण्डर, सदस्य, राजकीय चिकित्सालय, लखनऊ।

(८) श्री शीतलप्रसाद मिश्र, कम्पाउण्डर, सदस्य, रा० आ० चि० बरगढ़, जिला बान्दा।

(९) श्री रामायण प्रसाद पाठक, फारमेसिटकल असिसटेंट, कोषाध्यक्ष, राजकीय औषधि नि० शाला, उ०प्र० लखनऊ।

प्रस्ताव नं० १

संघ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने हेतु २ सदस्यों के चुनाव हेतु विचार।

निर्णय

सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया कि कार्यकारिणी के सदस्य श्री प्रकाश वाजपेयी को कार्यवाहक मन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया एवम् दो सदस्य श्री जयनारायण तिवारी रा० आ० चि० लखनऊ तथा हबीब अहमद सिद्दीकी रा० आ० नि० लखनऊ को मनोनीत किया गया।

प्रस्ताव नं २

विभागीय राजकीय आयुर्वेद यू० कम्पाउण्डरों एवम् फारमेसटीकल असिस० की पदोन्नति पर विचार।

निर्णय

यह संघ सरकार से मांग करता है कि प्रदेश में नवस्थापित नगरीय या जिला चिकित्सालय में सेलेक्शन ग्रेड के ही कम्पाउण्डरों को नियुक्त किया जाय तथा प्रत्येक जिला चिकित्सालय में एक प्रधान कम्पाउण्डर के पद का उच्चतर वेतनक्रम का सृजन किया जाय ताकि हमारे कम्पाउण्डरों को भी पदोन्नति के अवसर प्राप्त हो सकें।

प्रस्ताव नं ३

अप्रशिक्षित यूनानी कम्पाउण्डरों के प्रशिक्षण पर विचार।

निर्णय

राजकीय यूनानी कम्पाउण्डरों को आयु० कम्पाउण्डरों की भांति स्टेट आयु० का० लखनऊ में ही अविलम्ब प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

प्रस्ताव नं ४

आवास सम्बन्धित प्रस्ताव पर विचार।

निर्णय

यह संघ सरकार से मांग करता है कि एलोपैथिक कम्पाउण्डरों की ही भांति सभी आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डरों को भी अविलम्ब आवास-सम्बन्धी सुविधायें प्रदान की जायं ।

प्रस्ताव नं ५

दक्षता अवरोध एवम् स्थायीकरण पर विचार।

निर्णय

यह संघ मांग करता है कि विभाग में कार्यरत रा० आ० एवम् यू० कम्पाउण्डरों को जो अस्थायी हैं उनको यथा-शीघ्र स्थायी किया जाय एवम् जिन कम्पाउण्डरों का दक्षता अवरोध रुका हुआ है उनको अविलम्ब दक्षता अवरोध पार कराया जाय ।

प्रस्ताव नं ६

वेतन आयोग की प्रस्तुत रिपोर्ट की असंगतियों पर विचार ।

निर्णय

सर्व सम्मति से तय हुआ कि इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश वेतन आयोग की (१९७१-७३) रिपोर्ट से उत्पन्न असंगतियों के पत्रावली को पूर्ण कर पुनः प्रार्थना-पत्र एनामिली कमेटी को विभाग द्वारा प्रस्तुत किया जाय ।

प्रस्ताव नं ७

रा० आ० यू० कम्पाउण्डर संघ को जनपदीय स्तर पर संगठन बनाने हेतु मांग पर विचार ।

निर्णय

यह संघ मांग करता है कि हमें जनपदीय स्तर पर कठिनाइयों से अवगत कराने के प्रत्येक जनपदीय स्तर पर संगठन बनाने हेतु आज्ञा प्रदान की जाय ।

शिवपूजन सिंह
महामन्त्री
राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ
उत्तर प्रदेश

म० प्र० के अनुभवी वैद्य हकीमों के प्रति घोर अन्याय

प्रायः सभी जानते हैं कि म० प्र० में आयुर्वेद-यूनानी के २ बोर्ड स्थापित थे । एक का नाम महाकौशल क्षेत्र आयुर्वेदिक-यूनानी चिकित्सा बोर्ड जबलपुर था और दूसरे का नाम मध्य भारत देशी औषधि परिषद् लश्कर ग्वालियर था । महाकौशल क्षेत्र के बोर्ड का नियमन सेन्ट्रल प्राविसेन्स एण्ड बरार आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी प्रैक्टिशनर्स एक्ट १९४७ (क्रमांक ४ सन् १९४८) के द्वारा किया जाता था । और म० भा० बोर्ड का संचालन अ० भा० देशी औषधि विधान सम्वत् २००७ (क्रमांक २८ सन् १९५२) के अन्तर्गत होता था । इसके पूर्व महाकौशल क्षेत्र का निर्माण जब नहीं हुआ था तो नागपुर, गोंदिया, भंडारा, अमरावती अकोला आदि जिले इसी म० प्र० बोर्ड में शामिल थे और यहां से जो वैद्य-हकीम म० प्र० बोर्ड द्वारा अनुभव के आधार पर रजिस्टर्ड किये गये थे, उक्त जिले जब महाराष्ट्र में मिलाये गये तो उन्हें उसी रजिस्ट्रेशन के आधार पर रजिस्टर्ड मानकर उनके नाम महाराष्ट्र के आयुर्वेदिक बोर्ड में रजिस्टर्ड कर लिये गये थे । इसी प्रकार राजस्थान के कुछ जिले जब म० भा० में मिलाये गये तो राजस्थान इंडियन मेडिसिन एक्ट १९५३ के आधार पर रजिस्टर्ड किये गये वैद्य-हकीम भी म० भा० बोर्ड में लिख लिये गये थे । इसके बाद जब भोपाल का विलीनीकरण म० प्र० के अन्तर्गत हुआ तो यहां पर एक मेडिकल कौन्सिल स्थापित थी जिसका संचालन मेडिकल प्रैक्टिशनर्स रजिस्ट्रेशन एक्ट १९३५ के अन्तर्गत होता था । इन सभी बोर्डों में अनुभव के आधार पर चिकित्सा करने वाले वैद्य, हकीमों को रजिस्टर्ड किया गया था और प्रमाणपत्र दिये गये थे, जिसके आधार पर वे आज तक रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर्स लिखते रहे तथा रोगियों को मेडिकल एवं फिटनेश के प्रमाणपत्र भी देते रहे हैं और शासन के आदेशानुसार वे एलोपैथिक औषधियों का भी व्यवहार करते रहे ।

म० प्र० का स्वरूप जब कुछ और चौड़ा हुआ तो विन्ध्य प्रदेश का भी विलीनीकरण म० प्र० में किया गया किन्तु म० भा० या महाकौशल क्षेत्र तथा भोपाल मेडिकल कौन्सिल, तीन-तीन जगह वैद्य - हकीमों का रजिस्ट्रेशन चालू रहने पर भी विन्ध्य प्रदेश के वैद्य-हकीमों का रजिस्ट्रेशन किसी बोर्ड ने नहीं किया । अतः शासन के समक्ष एक समस्या खड़ी हो गयी । इसी विचार से म० प्र० शासन ने तीनों बोर्डों का एकीकरण करने के लिए एक नया कानून बनाया जिसका नाम 'म० प्र० आयुर्वेदिक-यूनानी एवं प्राकृतिक चिकित्सा, प्रणाली अधिनियम १९७०' रक्खा और इसे दिनांक [illegible] फरवरी सन् १९७१ से म० प्र० में लागू कर दिया । इस अधि-

नियम के आधार पर एक नये बोर्ड का गठन किया गया जिसका कार्यालय भोपाल में स्थापित हुआ।

हमने जब इस नये अधिनियम का अध्ययन किया तो हमें इसे पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि म० प्र० के महाकौशल क्षेत्र तथा म० भा० ग्वालियर आयुर्वेदिक-यूनानी चिकित्सा बोर्ड और मेडिकल कौंसिल भोपाल द्वारा जिन वैद्य-हकीमों का १० वर्ष के अनुभव के आधार पर रजिस्ट्रेशन हुआ था वे पुराने उपर्युक्त कानूनों के रद्द हो जाने के कारण अब रजिस्टर्ड नहीं रह गये। हमने इसका विरोध उसी समय किया था और म० प्र० शासन को पत्र भी लिखा था तथा म० प्र० के नये बोर्ड के चेयरमैन राजवैद्य रामेश्वर शास्त्री, लश्कर ग्वालियर एवं म० प्र० के आयुर्वेदिक डाइरेक्टर मेडिकल सेक्रेटरी से भी व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया था। हमें आशा थी कि रजिस्ट्रेशन-सम्बन्धी नियमों का निर्माण होने पर शायद कुछ रास्ता निकल आवे किन्तु, खेद के साथ लिखना पड़ता है कि दिनांक १४ मार्च सन् १९७३ के असाधारण गजट क्रम संख्या ७२ में जो नियम छपे हैं उनको भली प्रकार पढ़ लेने के पश्चात् अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि म० प्र० के किसी बोर्ड द्वारा अनुभव के आधार पर जिन वैद्य-हकीमों का रजिस्ट्रेशन किया गया था वे चाहें तो अधिनियम की धारा २८ के अन्तर्गत बनाई जाने वाली सूची में ५०) देकर अपना नाम लिखा सकेंगे किन्तु खेद है कि इन नियमों में सूचीबद्धता के नियम भी स्पष्ट नहीं दिये गये। हमें इन नियमों को देखने से यह भी नहीं पता चलता है कि यह सूची बनाने का कार्य कब से प्रारम्भ होगा और कब समाप्त होगा। क्योंकि अधिनियम में इसकी अवधि दो वर्ष लिखी है। यही नहीं अधिनियम में यह भी लिखा है कि इस अधिनियम के लागू होने के पाँच वर्ष पूर्व से जो वैद्य-हकीम या प्राकृतिक चिकित्सक चिकित्सा व्यवसाय में रत रहे हों और जिनका एकमात्र व्यवसाय चिकित्सा-कार्य रहा हो वे ही इस सूची में अपना नाम लिखाने के अधिकारी होंगे। हम समझ न पाये इतना कठोर नियम क्यों रखा गया है? इससे सभी वैद्य-हकीम जो अब तक अनुभव के आधार पर रजिस्टर्ड हैं वे सूचीबद्ध भी न हो सकेंगे। इसी के साथ प्रारूप ७ में सूचीबद्धता का जो आवेदन - पत्र छपा है उसमें आवश्यक जानकारी और सुसंगत प्रमाणपत्रों को मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित कराके भेजने की बात लिखी गई है। यह आवश्यक जानकारी और सुसंगत प्रमाणपत्र कौन-कौन से देने होंगे इसका कोई विवरण नियमों में नहीं दिया गया है। अधिनियम और नियमों का अध्ययन करने से यह भी प्रतीत होता है कि जिनके नाम इस प्रकार की सूची में लिखे जायेंगे उन्हें कोई प्रमाणपत्र भी दिया जायगा या नहीं? प्रमाणपत्र के अभाव में अनुभवी वैद्य-हकीमों के सामने एक विशेष कठिनाई उपस्थित हो जायगी। साथ ही ऐसे वैद्य-हकीम न तो रजिस्टर्ड माने जायेंगे और न वे भविष्य में मेडिकल या फिटनेस प्रमाणपत्र देने के ही अधिकारी रहेंगे और न वे एलोपैथिक औषधियों का ही प्रयोग कर सकेंगे। हम म० प्र० शासन का यह निर्णय अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं। क्योंकि इससे म० प्र० के अनुभवी वैद्य-हकीमों की घोर मानहानि होगी और उन्हें आगे चलकर भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अतएव आवश्यक है कि म० प्र० के अनुभवी वैद्य-हकीम संगठित होकर सरकार के इस अन्याय का जोरदार विरोध करें और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए वे उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटायें। इस सम्बन्ध में हम हर प्रकार का सहयोग वैद्य-हकीमों को देने को तैयार हैं।

म० प्र० के किसी बोर्ड द्वारा जिनके रजिस्ट्रेशन किसी उपाधिपत्र या प्रमाणपत्र के आधार पर किये गये थे वे बदस्तूर बने रहेंगे किन्तु उन्हें अपना नाम पता रजिस्ट्रेशन नं० सूचित करने के लिए अपने रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र की प्रमाणित प्रतिलिपि शीघ्र ही "रजिस्ट्रार म० प्र० आयुर्वेदिक, यूनानी एवं प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली बोर्ड ओल्ड टी० बी० क्लीनिक बिल्डिंग भोपाल" के पते पर भेज देनी चाहिए।

म० प्र० में उपाधिपत्र या प्रमाणपत्र जिन वैद्य-हकीमों के पास है या जिन्होंने किसी मान्य संस्था से कोई परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है वे २०) रजिस्ट्रेशन फीस भेजकर आवेदन पत्र मंगा सकते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से वैद्य विशारद या आयुर्वेदरत्न परीक्षा पास तथा नि: भा० आयुर्वेद विद्यापीठ देहली से जिन्होंने कोई भी परीक्षा उत्तीर्ण की हो वे भी अपना नाम रजिस्टर्ड करा सकेंगे। रजिस्ट्रेशन का कार्य प्रारम्भ हो गया है। किन्तु हमें खेद है कि म०प्र० शासन ने अनुभवी रजिस्टर्ड वैद्य-हकीमों के साथ घोर अन्याय किया है जिसका निपटारा उच्च न्यायालय में जाने पर ही हो सकेगा। इसके अ

रिक्त अन्य कोई मार्ग दिखाई नहीं देता है। आशा है कि म० प्र० के वैद्य-हकीम इस पर तुरन्त विचार करेंगे। अन्यथा उच्च न्यायालय में जाने की अवधि समाप्त हो जायगी।

भवदीय
सुरेन्द्रनाथ दीक्षित
संयोजक

निःशुल्क नेत्र-चिकित्सा-शिविर

भारतीय समाज सेवा संस्थान, भारतीय चिकित्सा प्रतिष्ठान एवम् भोगा भिवानी आई रिलीफ सोसाइटी कोटा के सहयोग एवम् सौजन्य से आयोजित निम्न निःशुल्क नेत्र शूल्य चिकित्सा शिविरों का आयोजन शालाक्य चिकित्सक कविराज डाक्टर चन्द्रदेव शर्मा की देखरेख एवम् डा० बी० एस० वागला के सहयोग से किया गया।

कोटा-१६०, वार ३५, मागरोल २०, सागोद ३२, छबड़ा २८, बड़ौद ४०, लालसोठ ४०, विभिन्न नेत्र रोगों के शल्य कर्म किये गये। इस शिविरों में आयुर्वेद की मान्यता प्राप्त उपाधिधारी स्नातकों को क्रियात्मक प्रशिक्षण भी दिया गया। समापन समारोहों में शल्य शालाक्य के विकसित क्रम की चर्चा की गई तथा आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के प्रति जन मानस जागृत किये जाने पर जोर दिया गया।

वैद्य ब्रह्मानन्द जी दीक्षित का निधन

वैद्य पं० ब्रह्मानन्द जी दीक्षित आयुर्वेदाचार्य, विद्यालंकार का स्वर्गवास दिनांक ३०।५।७३ को मध्यान्ह २॥ बजे एक लम्बी बीमारी के बाद हो गया। ७ मार्च, १९७३ की रात्रि को उन्हें पक्षाघात हुआ और अनेकों उपचार के उपरान्त भी उनकी जीवन-रक्षा न हो सकी।

श्री दीक्षित ने गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार से सन् १९१४ में विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की व अष्टांग आयुर्वेदिक कालेज, कलकत्ता से आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। कुछ वर्षों तक वह गुरुकुल कांगड़ी में प्रोफेसर रहे। निखिल भारतवर्षीय द्वितीय ग्रेजुएट वैद्य सम्मेलन के प्रधान चुने गए। हिन्दी और संस्कृत के वह धारा-प्रवाह वक्ता थे। अपने जीवन काल में आयुर्वेद में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की और गत १० वर्षों से तो वह केवल कैंसर चिकित्सा ही कर रहे थे, जिस से अनेकों रोगियों ने जीवन प्राप्त किया।

उनके अनेकों शिष्य आयुर्वेद के आज भी प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं और प्रत्येक गुरु पूर्णिमा पर पूर्ण श्रद्धा के साथ अपने श्रद्धा-सुमन लेकर प्रति वर्ष उपस्थित होते थे।

माननीय सेठ अचल सिंह जी, एम० पी० ने अपने भाव व्यक्त करते हुए कहा कि वैद्य जी आगरा के जाने-माने उच्च कोटि के वैद्य व शोधकर्त्ता थे। योगी थे और कैंसर के विशेषज्ञ थे। उनका निधन देश के लिए क्षति है।

श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय-पटना-१

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ स्वास्थ्य - रक्षा - केन्द्र व धर्मार्थ औषधालय, पटना-१ में माह मई १९७३ में ११४१ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। जिनमें २५१ रोगी नये और ८९० रोगी पुराने थे।

ज्वर ५०, चर्म रोग ६०, आमातिसार ३०, प्रवाहिका-११, कासश्वास ८, उदरशूल १०, कर्णशूल एवं-स्राव ३२, प्रदर-१०-बाल रोग २० मुखपाक ६, वातव्याधि ५, कोष्ठबद्धता १०

श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, झांसी

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र झांसी में माह अप्रैल सन १९७३ में रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। कुल रोगी २६४३ थे जिसमें नवीन रोगी ६४२ आये हैं। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार है।

पित्तज ज्वर ४१, बालातिसार २७, आमाजीर्ण १८, वातज कास ३४, वातज ज्वर ६९, वातोदर शूल २०, प्रतिश्याय ६५, अण्डकोष वृद्धि १, गृध्रसी वात ३, शोथ ५, विबंध ८, कण्डू २३, कृमि ७, अम्लपित्त १३, विदग्धाजीर्ण २, अग्निमांद्य ३, वात कफज ज्वर २, विश्वाची ४, रक्त प्रदर ६ विचर्चिका १०, श्वेत प्रदर २२, प्रमेह ८, पाण्डु २, रक्तातिसार ६, शिरःशूल १४, प्रसूत ज्वर ७, अतिसार २६, कफज कास १९, मधुमेह २, अर्श २, अम्लपित्त ४, भ्रम ११, अग्निदग्ध २, गल ग्रन्थि शोथ २, रक्त पित्त ४, कु० कास ३, पिड़िका ६, गर्भ-रोग १२, तुण्डकेरी शोथ ९, कटि शूल ८, ज्वरातिसार १३, मुखपाक ५, रक्ताल्पता ६, आघात २, अभिष्यन्द १, वात पित्त ज्वर १, छर्दि १, पीनस १, विष्टब्धाजीर्ण

४, व्रण ४, आमवात ३, पित्तज कास १, उरः शूल २, वात व्याधि १०, मूत्रकृच्छ ३, दन्तशूल ६, विषम ज्वर ७, मेद वृद्धि ४, स्फोट १, क्षुद्र श्वास २, जीर्ण ज्वर ५, कण्ठ माला २, रक्तार्श ५, क्षीरालसक १, आमातिसार २, कर्णशूल ४, अंशुघात ३, दद्रु २, पार्श्व शूल २, ग्रहणी २, अर्द्धविभेदक १, दन्तोद्‌भेदन्तक १, जानु संन्धि शोथ २, श्वेत कुष्ठ १ तमक श्वास २, संधि वात १, मासिक नवीन संख्या योग ६४२, नवीन ६४२, पुरातन २००१, मासिक योग २६४३ ।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह अप्रेल सन् १९७३ में ५२८४ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ५०१ रोगी नये आये । रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है ।

ज्वर १०३, कास ५७, उदावर्त्त ५, श्वास १०, अतिसार ७, प्रतिश्याय ३४, उदरशूल ७, दन्त रोग ३, कर्ण रोग ९, वातव्याधि ४२, आमविकार २२, कृमि ५, पार्श्वशूल बहूमूत्र २, शीतपित्त १, व्रण १४, दौर्बल्य ४२ मूत्राधात १, दाह २, मुखपाक ९, गलग्रंथि शोथ २, छर्दि (वमन) १; मूत्रकृच्छ्र ४, अर्श ४, अम्लपित्त १६, पित्त विकार ३, रक्त विकार १४, मन्दाग्नि ५, पाण्डू १, रक्त प्रदर २२, कोष्ठबद्धता २, विसर्प १३, अपबाहुक ४, उदम्बर १, गृध्रसी १, यकृतोदर ३, पामा ४, कष्टार्तव १, जलोदर १, अजीर्ण ५, कटिशूल १, मधुमेह १, स्वप्नमेह २, संग्रहणी १, गुदभ्रंश २, अर्धावभेदक १, पीनस २, इद्ररोप १ टान्सील ३, चेचक २, विवर्चिका २, जोड़ नं० ४ ११, जोड़ नं० १ ३६७, जोड़ नं० २ ९९, जोड़ नं० ३ २३, जोड़ नं० ४-११, कुल जोड़ ५०१

वैद्य काशी प्रसाद शुक्ल शास्त्री
प्रधान वैद्य
श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय
वाकर रोड, नागपुर

आयुर्वेद चिकित्सालय के नरदेवी, काठमांडू

नेपाल अधिराज्य के एक मात्र आयुर्वेद चिकित्सालय (अस्पताल) द्वारा गत २०२९ साल भर में कुल ६२८ रोगियों की अन्तरंग विभाग से चिकित्सा की गयी और इस अवधि में १९ हजार १४३ रोगियों का निःशुल्क औषधी-उपचार वहिरंग विभाग से किया गया था ।

गत २०२८ साल में अन्तरंग विभाग में कुल रोगियों का प्रवेश हुआ और १६४५२ रोगियों का बहिर विभाग द्वारा चिकित्सा की गई । जिसमें २०२८ सा और २०२९ साल भर में क्रमश ९, ११ रोगियों मृत्यु हुई थी ।

२५ शय्या का इस आयुर्वेद चिकित्सालय के अन्त पुरुष शय्या के अतिरिक्त स्त्री और बालकक्ष का भी प्रब किया गया है ।

इस चिकित्सालय में उपचारार्थ आने वाले रोगियों मुख्यता ज्वर, श्वास, कास, वातउदर-सम्बन्धी रोग, पाण् क्रिमि, अतिसार, प्रबाहिका, ग्रहणी, अजीर्ण, अम्लपि और शोथ रोग से पीड़ित देखा गया है और, इसके अ रिक्त कुछ समय से, फैले हुए कामला की चिकित्सा बहुत सफल देखा गया है । इस चिकित्सालय की वि विज्ञान प्राविधिज्ञ के अभाव से, इस समय संचालन न हो रहा है ।

स्वास्थ्य उपपरी

श्री ५ को सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग
आयुर्वेद चिकित्सालय

निःशुल्क सेवा विवरण

इस चिकित्सालय से २०२९ साल फागुन म भर में रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा सेवा की जिसका विवरण निम्नानुसार हैं ।

बहिरंग विभाग के रोगियों की संख्या :..........
पुनरागत रोगियों की संख्या : ....
कुल संख्या : ....

जिसमें

काय चिकित्सा में नया रोगियों की संख्या :.......
,, पुनरागत - ....
शल्य-शालाक्य में नया रोगियों की संख्या :.......
,, पुनरागत ,, ...

अन्तरंग विभाग के रोगियों का तथ्यांक

पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या :.......

स्वेच्छा से जाने वालों की संख्या : १३
मृत्यु की संख्या ....+,
कुल स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या : ८

स्वास्थ्य उपरिक्षक

श्री ५ को सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग
आयुर्वेद चिकित्सालय

निःशुल्क सेवा विवरण

इस चिकित्सालय से २०२९ साल चैत्र महिने भर में रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा सेवा की गयी, जिसका विवरण निम्नानुसार हैं।

बहिरंग विभाग के रोगियों को संख्या :...........१८३९
पुनरागत रोगियों की संख्या : ९०८
कुल संख्या : २७४७

जिसमें

काय चिकित्सय में नए रोगियों की संख्या : १२४२
,, पुनरागत ,, ... ७२३
शल्य-शालाक्य में नए रोगियों की संख्या :........ ५९७
,, पुनरागत ,, ... १८५

अन्तरंग विभाग के रोगियों का तथ्यांक

पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या : ६६
स्वेच्छा से जाने वालों की संख्या : १५
मृत्यु की संख्या १
कुल स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या : ८

स्वास्थ्य उपरीक्षक

आयुर्वेदीय
क्रिया-शारीर

किशोर किशोरियों के लिये
जीवन और यौवन का ज्ञान

यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश

डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वारा लिखित अपूर्व ग्रन्थ

यौवन-
विज्ञान
पर
नया प्रकाश
किशोर किशोरियों के लिये
जीवन और यौवन का ज्ञान
डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा
प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
मूल्य
३ रु.

V. KAKDE/BA/172-2

प्रकाशक- श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्रा. लि.
ग्रेट नाग रोड, नागपुर .९

बैद्यनाथ दन्तमंजन

लाल· काला और सफेद

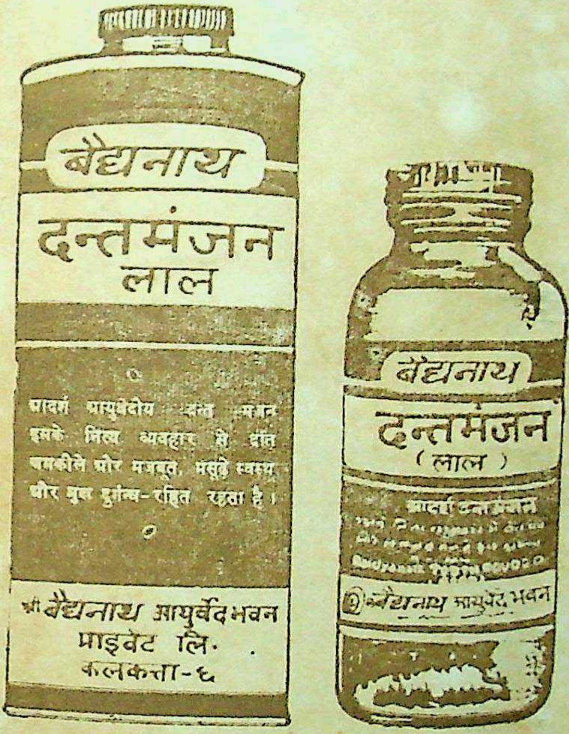
बैद्यनाथ
दन्तमंजन
लाल
आदर्श आयुर्वेदीय दन्त मंजन
इसके नित्य व्यवहार से दाँत
चमकीले और मजबूत, मसूढ़े स्वस्थ
और मुख दुर्गन्ध-रहित रहता है।
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
प्राइवेट लि·
कलकत्ता-६
बैद्यनाथ
दन्तमंजन
(लाल)
आदर्श दन्त मंजन
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

इन मंजनों के रोजाना
व्यवहार से दाँत
चमकीले, मुँह
दुर्गन्ध रहित और
मसूढ़े मजबूत
रहते हैं

सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से श्री [illegible]

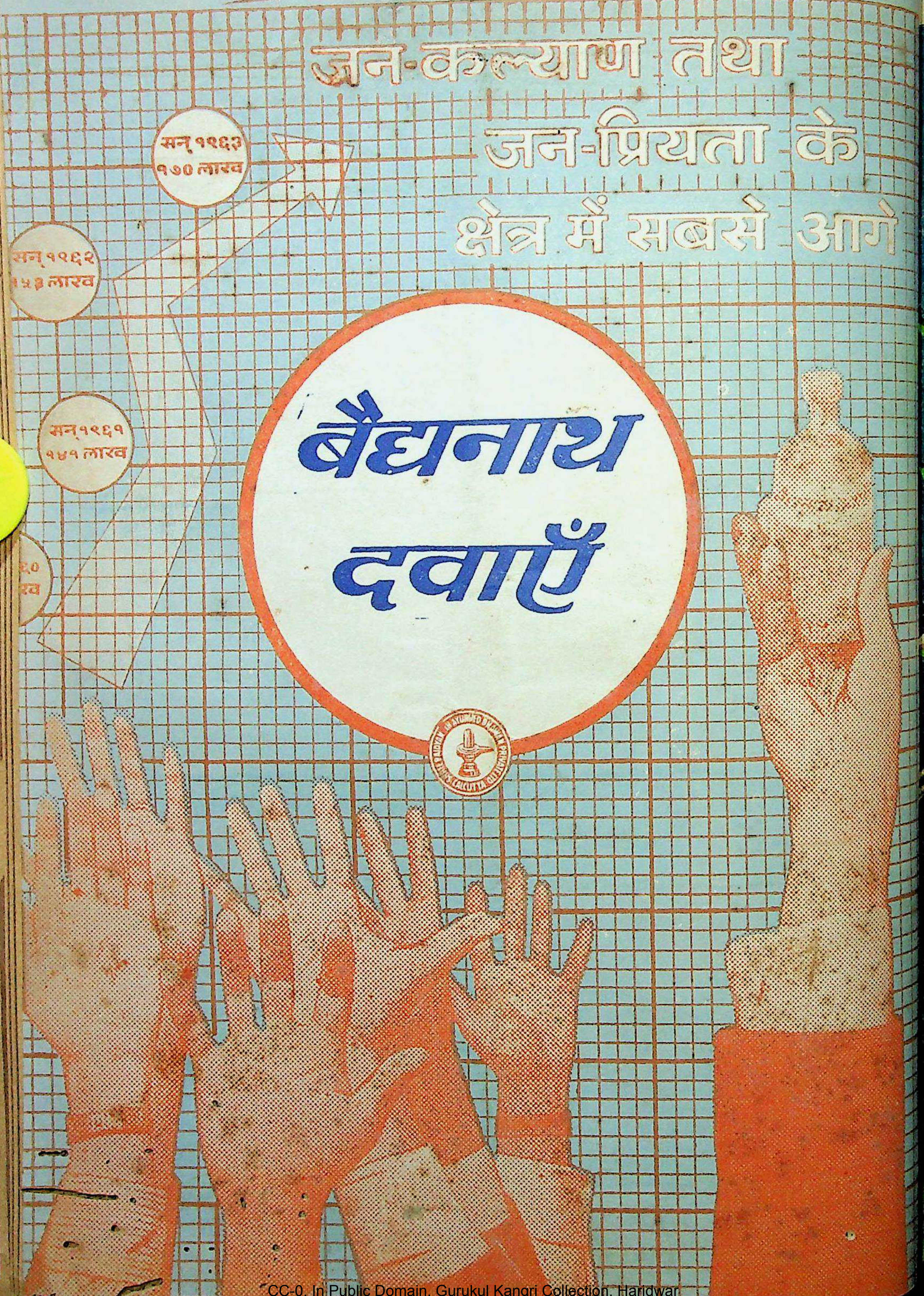
जन-कल्याण तथा
जन-प्रियता के
क्षेत्र में सबसे आगे
सन् १९६३
१७० लाख
सन् १९६२
१५३ लाख
सन् १९६१
१४१ लाख
६०
बैद्यनाथ
दवाएँ

सचित्र आयुर्वेद

अगस्त, १९७३

कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम् ।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते ॥

अर्थात् जो पुरुष आजीविका के लिए चिकित्सा को बाजार में बेचते हैं, वे मानों स्वर्ण के ढेर को छोड़ कर धूलि के ढेर को पाते हैं ।

—चरक

प्रकाशक : श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

स्त्रियों के स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं
सुखी जीवन के
लिए ....

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता पटनी · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

आयुर्वेद
सार संग्रह

संशोधित-परिवर्द्धित पंचम संस्करण

आयुर्वेद-शास्त्रों के मंथन के बाद इस महान ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। इसमें रोगानुसार औषधों का गुण-धर्म, शोधन-मारण, औषध-अनुपात, पथ्यापथ्य आदि का विवरण सरल भाषा में लिखा गया है। इसमें उन सभी प्रयोगों का संकलन किया गया है, जिनकी परीक्षा असंख्य बार सफल चिकित्सकों द्वारा की जा चुकी है। इसके साथ ही औषध-निर्माण के उपाय सरल भाषा में लिखे गए हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सकों, छात्रों तथा प्रत्येक परिवार के लिए यह ग्रंथ विशेष उपयोगी है। हिन्दी में यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रन्थ है।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

संरक्षक :
आयुर्वेद-चक्रवर्ती आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक

संपादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	लेखक
चञ्चलं हि मनः कृष्ण	६७	
आपश्च विश्वभेषजीः	६८	
सम्पादकीय	६९	आचार्य विनोबा
बाहर सम्मानित, किन्तु अपने घर में ही उपेक्षित	७६	श्री शिव शर्मा
उदर—२	७३	वैद्य रणजित राय देसाई
आयुर्वेद की प्रगति और राजनैतिक पहल	७९	श्री दीन नाथ सिंह
सिद्ध भैषज्यमंजूषा	८५	श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
Necessity of Search & Research in Rasasastra	८८	Dr. N. Ganga Satyam
श्योनाक और शुकनासा	९२	वैद्य मायाराम उनियाल
व्यवस्था-पत्र लेखन की कुछ भ्रान्तियाँ	९८	डॉ० जेड अंसारी, डा० गुरमोहन सिंह
हृदय रोग के कारण और निदान	१०३	(संकलित)
डा० अमरनाथ शास्त्री	१०५	डा० केवल धीर
निसर्गोपचार तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति में समत्व	१०७	आचार्य कविराज श्री हरदयाल
आयुर्वेदीय शल्यतंत्र का अतीत और वर्तमान	११५	श्री शिशिर पाठक
आनुवंशिक व्याधियां क्या घातक होती हैं ?	१२१	अकादमिशियन व्लीदीमीर तिमाकोव
बच्चों का दन्त स्वास्थ्य	१२४	डा० नरसिंह रंगानी
सामयिक चर्चाएँ	१२५	
आलोचक की दृष्टि में	१२६	
आयुर्वेद जगत	१३१	

वार्षिक मूल्य ५ रु०] [एक प्रति ५०

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामायमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष २६ | पटना, अगस्त, १९७३ | अंक—२

चञ्चलं हि मनः कृष्ण

चंचलं हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥—ऐसा कहकर गीताकार ने मन को अत्यन्त चंचल बताया है, साथ ही बलवान् भी। वायु की भांति मन को वश में करना भी कठिन कहा गया है। अन्य अनेक स्थलों पर भी मन के सम्बन्ध में इसी प्रकार के वचन प्राप्त होते हैं कि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः—सामाजिक व्यवहार में जिसे हम पाप-पुण्य मानते हैं, उन सबका आधार भी मन ही माना गया है क्योंकि पाप या पुण्य जो कुछ करता है, मन ही करता है, शरीर नहीं।

अन्य देशों में भी जहाँ-जहाँ मन के विषय में जिज्ञासा की गयी है, वहाँ-वहाँ उसे चंचल ही बताया गया है। किन्तु शरीर के भीतर मन कहां है, इस सम्बन्ध में विदेशी शरीरशास्त्रियों या मनोवैज्ञानिकों ने आज तक कोई समाधान नहीं किया। वे मन को एक शक्ति स्रोत (फेकल्टी) मानते हैं। किन्तु यह शक्ति-स्रोत शरीर के किस अंग या संस्थान में अवस्थित है, इस सम्बन्ध में न तो मनोवैज्ञानिकों ने ही कोई खोज की है और न विदेशी शारीर-शास्त्रियों ने ही विचार किया। यद्यपि आजकल मानसिक योग्यता, मानसिक प्रक्रिया, मानसिक शक्ति आदि अनेक विषयों पर विस्तार से विचार किया जा रहा है परीक्षण भी होते जा रहे हैं; किन्तु मन क्या और कहाँ है, यह आज तक कोई नहीं बता पाया है।

('श्री कृष्ण सन्देश' से)

चिन्तन के क्षणों में

आपश्च विश्वभेषजीः

इस देश में हमलोग नदियों को "माता" मानते हैं। अपनी कन्याओं के नाम भी गंगा, कृष्णा, गोदावरी आ नदियों के नाम पर रखते हैं। हमारे देश में पानी के प्रति इतनी विलक्षण श्रद्धा है कि जहाँ-जहाँ नदियां हैं, व हमने तीर्थ-क्षेत्र बना लिए हैं। ग्रहण और अन्य पर्वों के अवसरों पर लाखों लोग वहां अपने-अपने घर-द्वार छोड़क नहाने जाते हैं। विगत कुम्भ-मेले के समय ४० लाख लोगों ने गंगा-स्नान किया।

कुछ लोग समझते हैं कि "यह सारी मूर्खों की जमात है। गंगा नहाने से हमें कुछ भी हाथ नहीं लगता, बेका पैसे खर्च होते हैं। पुराने जमाने से ऐसी कितनी ही अन्ध-श्रद्धाएं चल पड़ी हैं।" लेकिन सोचने की बात है कि कुम्भ मेले में जुटने वाले लोग मामूली नहीं होते। यूरोप के किसी छोटे राष्ट्र की जनसंख्या-जितने लोग उस अवसर पर नहाने पहुँचते हैं। क्या उन सभी घर-द्वार छोड़ नदी नहाने जाने वालों को मूर्ख माना जायगा? सच तो यह है कि हिन्दुस्तान में दस हजार वर्षों से यह परम्परा चली आ रही है। इसलिए हिन्दुस्तानियों की यह कथित सनक कभी मिट नहीं सकती।

× × ×

विधान कितना ही सिखलाए कि पानी मात्र हाइड्रोजन आक्सीजन का योग है। फिर भी हमलोग यही समझते रहेंगे कि वह राम-लक्ष्मण का योग है। वेद में एक मंत्र आता है—

यांसा राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।

अर्थात् लोगों के सत्य और झूठ की परीक्षा करने वाला परमात्मा जल में निवास करता है। हमारे यहां कहते हैं कि "जल हाथ में लेकर सच बोलो", यानी माना जाता है कि जल हाथ में लेने वाला मनुष्य कभी झूठ नहीं बोल सकता। जल की इतनी अधिक प्रतिष्ठा होने का कारण यही है कि वह सत्या की परीक्षा करता है। इस भोलेपन को आप कितना ही धो डालें, फिर भी यह भोलापन कभी नहीं मिट सकत

भारत में पानी के सम्बन्ध में इतनी श्रद्धा होने का कारण यह है कि नदियों में परमात्मा की करुणा के होते हैं। भारत ने इस तत्व का दर्शन किया है कि नदी का अर्थ है—परमात्मा की बहती हुई करुणा।

—आचार्य विनो

सम्पादकीय

ग्रामीण स्वास्थ्य योजना खटाई में

"दी टाइम्स आफ इंडिया न्यूज सर्विस" द्वारा प्रकाशित एक संवाद-लेख में भारत सरकार द्वारा बहु विज्ञापित ग्रामीण स्वास्थ्य योजना, (जो इसी वर्ष अप्रेल माह से प्रारंभ होने वाली थी) के प्रारम्भ न किए जाने के सम्बन्ध में जो विवेचना प्रस्तुत की गयी है, वह सरकारी तंत्र इस देश में कितना हवाई महल बनाता है, उस पर सम्यकरूपेण प्रकाश डालती है। अनेक संशोधन-परिवर्द्धन के पश्चात् फिलहाल उक्त योजना खटाई में पड़ गयी है, इससे तो इन्कार नहीं किया जाना चाहिए।

जैसा कि इन्हीं कालमों में पहले बताया जा चुका है कि उक्त ग्रामीण स्वास्थ्य योजना पर डेढ़ अरब (१५० करोड़) रुपये व्यय होने को थे, और इस योजना के अन्तर्गत सर्वत्र देश भर में ५ हजार की आबादी पर (कम से कम एक) देशी चिकित्सा-पद्धति के चिकित्सकों की चीन के ढांचे पर नियुक्तियां होनेवाली थीं। यहां स्मरणीय है कि चीन में कम्युनिस्ट शासन प्रारंभ होने के कुछ ही वर्षों के अन्दर प्राचीन चीनी चिकित्सा-पद्धति के चिकित्सकों को ग्रामीण स्वास्थ्य-योजना के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया और राष्ट्रीय स्वास्थ्योन्नति में चीन के प्राचीन वैद्य अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए।

यहां यह उल्लेख करना भी समीचीन प्रतीत होता है कि गत वर्ष दिल्ली में दो बार विभिन्न राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों एवं अन्यान्य उच्च स्वास्थ्याधिकारियों के सम्मेलन आहूत हुए और ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के बारे में गंभीर चिन्तन तथा विचार विमर्श भी हुआ। इन सम्मेलनों के बाद जिस एक बात पर सभी लोग सहमत हुए, वह यह कि राज्य सरकारें पृथक्-पृथक् ग्रामीण स्वास्थ्य के सम्बन्ध में योजनाएं बनायें, उससे कहीं अच्छा और व्यावहारिक कदम यह होगा कि केन्द्र ही योजना बनाए और उसमें राज्यों की आवश्यकतानुसार जोड़-तोड़ करने की गुंजाइश भी रखी जाए।

स्वास्थ्य मंत्रियों के सम्मेलन के पश्चात् समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों तथा अन्य लोगों के साथ भी विचार-विमर्श किया गया—इसमें और भी संशोधन-परिवर्द्धन किये गये। और अन्ततः योजना आयोग को विचारार्थ दे दिया गया, जिसने योजना पर कार्यान्वयन के लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी। तथापि मूल वृहत् योजना के बदले एक लघु पैमाने पर प्रारंभिक योजना के बतौर एक नयी योजना रखी गयी है, जिसके अन्तर्गत ११ लाख २१ हजार रुपये व्यय किये जाने का प्रावधान है, और इस योजना पर योजना आयोग द्वारा दिए गए सुझावों की रोशनी में पुनर्विचार किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत देश के २१ राज्यों में १० हजार की आबादी पर एक केन्द्र स्थापित किए जाने का सुझाव दिया गया है, और प्रत्येक केंद्र में विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों के तीन चिकित्सक नियुक्त किये जायेंगे। जहां तक ग्रामीण स्वास्थ्य-केंद्र का सम्बन्ध है, सम्प्रति कम-से-कम प्रत्येक विकास प्रखण्ड में एक केंद्र की स्थापना, १५०० प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्रों का, ३० शय्यायुक्त स्तरोनान्तर (अपग्रेडेशन), १० हजार की आबादी पर एक उप-स्वास्थ्य-केन्द्र की स्थापना एवं प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्र को प्रतिवर्ष १२,००० रु० की औषधियाँ उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

किन्तु स्वीकार करना होगा कि ऊपर ग्रामीण क्षेत्र के लिए चिकित्सा-विषयक जिन सुविधाओं का उल्लेख हुआ है, वे सुविधाएं १९४५ ई० में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त भोर कमिटी द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन की तुलना में सर्वथा हास्यास्पद ही कही जायँगी। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि भोर कमिटी ने प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के लिए ७५ शय्यायुक्त अस्पताल की सिफारिश की थी। वस्तुतः भोर कमिटी ने ही पहले-पहले सामाजिक-आर्थिक विकास के अंगीभूत ग्रामीण स्वास्थ्य-सेवा-सम्बन्धी विचारों को मूर्त्तरूप देने की दिशा में प्रतिवेदन दिया था और प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना के लिए जोरदार समर्थन किया था।

भारत की जनतंत्री सरकार का ढंग कुछ अजीबोगरीब है। प्रारंभ में प्रायः ही किसी काम को प्रारम्भ करने के पूर्व पर्याप्त डिमडिमघोष किया जाता है, और जब व्याव-

हारिक रूप देने का प्रश्न आता है, तब सरकार बगलें झांकने लग जाती है—और योजनाएं खटाई में पड़ जाती हैं। ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का भी कहीं वही हश्र न हो। क्या हम आशा करें कि देर से ही सही, ग्रामीण स्वास्थ्य योजना को अमली रूप देने में सरकार पश्चात्पद न होगी और उसे कार्यान्वित करने में दृढ़ता दिखायेगी ?

गाँधीनिष्ठ समाजसेवी का तिरोधान

निश्चय ही यह बड़े परिताप की बात हुई कि भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी, सुप्रसिद्ध गाँधीभक्त एवं अखिल भारतीय स्तर के रचनात्मक कार्यकर्त्ता पं० रमावल्लभ चतुर्वेदी का गत ७ जुलाई की रात्रि में लम्बी बीमारी के पश्चात् उनके गाँव मलयपुर (मुंगेर) में निधन हो गया। चतुर्वेदी जी गांधी जी के उन थोड़े-से अनुयायियों में थे, जो सही अर्थ में गाँधीजी के सिद्धांतों को स्वराज्योत्तर काल में अमली रूप देने के लिए कृत-संकल्प रहे हैं। असहयोग-आन्दोलन से ही आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हुआ—सभी आन्दोलनों में आपने कठोर कारा-दण्ड के साथ-साथ अनेक शारीरिक यातनाएं सहीं। स्वराज्य के बाद आप सत्ता के लिए कुर्सियों की ओर न जाकर चरखा, ग्राम-सुधार, नशाबन्दी, खादी-उद्योग तथा अन्यान्य रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगे रहे। आपका संबन्ध गाँधी स्मारक निधि, कस्तूरबा ट्रस्ट, तालीमी संघ, सर्व-सेवा-संघ आदि संस्थाओं से था—और गत ४-५ वर्षों से आपने अपना कार्यक्षेत्र बिहार के सिंहभूम जिले के मुख्यालय चायबासा को बनाया था, जहाँ रह कर आप आदिवासियों की सेवा कर रहे थे और नशाबन्दी के कार्यक्रम को अकेले ही चला रहे थे। आप धुन के पक्के एवं सिद्धांत पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति थे। आपके निधन से अखिल भारतीय स्तर का एक गाँधीनिष्ठ, सुसंस्कृत व्यक्ति उठ गया। आप सुरसिक, सुकवि एवं सुलेखक भी थे—और अपने स्व० पिता हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ प्र० चतुर्वेदी से साहित्यिक उत्तराधिकार आपको मिला था। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ६२ वर्ष थी।

कहना न होगा कि चतुर्वेदी जी का वियोग हमारा निजी वियोग है। बैद्यनाथ परिवार से आपका इसके उद्भव काल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। आयुर्वेद-प्रेमी होने के नाते आप बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित प्रमुख मासिक पत्र 'सचित्र आयुर्वेद' के प्रकाशन में भी अभिरुचि लेते थे और वनस्पति-विषयक लेख भी प्रायः लिखा करते थे। बैद्यनाथ द्वारा प्रकाशित 'बिहार की वनस्पतियाँ' नाम्नी पुस्तक के लेखक प्रो० बलवन्त सिंह, जब उक्त पुस्तक के लिए वनौषधि परिचयार्थ बिहार के वनों की पैदल यात्रा कर रहे थे, तब चतुर्वेदी जी ने पुष्कल सहायता उन्हें पहुँचायी थी और उनके वनस्पति-विषयक ज्ञान से आप आश्चर्य-चकित हो उठे थे। चतुर्वेदी जी की प्रवृत्ति एवं रूझान अनेक विषयों में था और वे निःसन्देह बहुज्ञ थे—मेरी तो धारणा है कि यदि वे अपनी शक्ति एवं समय का उपयोग शास्त्र-चिन्तन में ही कर पाते तो कुछ ठोस साहित्य हमें दे जाते। किन्तु समाज-सेवा का ही मार्ग उन्होंने पकड़ा और आजीवन उसी में लगे रहे। उनके उठ जाने से एक ऊँचे पाए का समाजसेवी चल बसा—इसमें सन्देह नहीं।

हम बैद्यनाथ एवं 'सचित्र आयुर्वेद' परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। साथ ही जगदीश्वर से प्रार्थी हैं कि शोकसन्तप्त परिवार को यह दारूण वियोग सहन करने की शक्ति दें।

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली की विडम्बना

बाहर सम्मानित, किन्तु अपने घर में ही उपेक्षित

★ श्रीशिव शर्मा

[अखिल भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-परिषद् के अध्यक्ष तथा अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के आयुर्वेद-विद्वान एवं व्याख्याता वैद्यरत्न पं० शिव शर्मा जी ने, जो अभी हाल ही मासव्यापी विदेश यात्रा से भारत लौटे हैं आयुर्वेद के सम्बन्ध में, अत्यन्त महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया है, जिसे हम यहां "सचित्र आयुर्वेद" के कृपालु पाठकों की जानकारी के लिए उद्धृत कर रहे हैं, आशा है, श्रीशिवशर्मा जी के वक्तव्य से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। संपादक —]

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को यदि देश की राजकीय जन-स्वास्थ्य सेवा की प्रमुख चिकित्सा-विधि बना दिया जाय, तो इस समय एलोपैथिक चिकित्सा-व्यवस्था पर खर्च किए जा रहे धन की तुलना में काफी कम धन से सम्पूर्ण देशवासियों की चिकित्सा-व्यवस्था बहुत प्रभावशाली ढंग से की जा सकती है। मैं स्वयं पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली के विरुद्ध नहीं हूं। वह व्यवस्था भी वैकल्पिक रुप में बनी रहनी चाहिए, जैसे अभी एलोपैथी के साथ आयुर्वेदिक इलाज की व्यवस्था है। देश में आज भी एलोपैथी की बनिस्पत आयुर्वेद से अधिक लोग लाभ उठाते हैं, क्योंकि वह इलाज गांव-गांव और घर-घर में सुलभ है। परन्तु प्रमुख राजकीय-चिकित्सा, प्रणाली भारतीय पद्धति नहीं, पाश्चात्य एलोपैथी है।

जापान में वहां के एक प्रसिद्ध चिकित्सक प्रो० हिरोशी मारुयामा आयुर्वेद की कक्षाएं चला रहे हैं। वहां चीनी चिकित्सा-पद्धति एक्युपंक्चर भी प्रचलित हैं। थाईलैण्ड में आयुर्वेद की शिक्षा के लिए वहां के प्रधानमंत्री की बहन के नेतृत्व में, जो बहुत प्रभावशाली महिला है, थाईलैण्ड आयुर्वेद एसोसिएशन की स्थापना हो चुकी है। आस्ट्रेलिया में मैं चिकित्सा-विज्ञान पर वैज्ञानिक भाषणों के लिए आमंत्रित किया जाने वाला पहला व्यक्ति था। मेरे भाषणों से आयुर्वेद के सम्बन्ध में वहां बहुत दिलचस्पी और जागृति पैदा हुई है। श्रीलंका में तो मुख्य राजकीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद ही है हालांकि एलोपैथिक अस्पताल भी हैं। (पं० शिव शर्मा वर्षों तक श्रीलंका सरकार के आयुर्वेद सलाहकार रहे हैं)।

असल में संसार में आदि भारतीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का स्पष्ट निराण नहीं हुआ। इसका बहुत कुछ कारण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत सरकार की एलोपैथी को ही अत्यधिक महत्व देने की नीति है। संसार का आयुर्वेद से परिचय काफी देर से आरम्भ हुआ है। अभी मैंने अपने भ्रमण और भाषणों का उल्लेख किया। जापान में वहां की नौ चिकित्सा सोसायटियों ने मुझे आयुर्वेद सेमिनार (गोष्ठी) में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था। गोष्ठी में मेरा निबंध जापानी भाषा में छाप कर बांटा गया, समाचारपत्रों में सचित्र समाचार छपे। यहां तक कि जापान सरकार ने भी अपना प्रतिनिधि गोष्ठी में भेजा। मुझे दुख यही है कि भारत के लोगों ने ही आयुर्वेद की प्रतिष्ठा और नाम को खराब किया है।

विदेशों में मेरा सम्मान नहीं, आयुर्वेद का सम्मान हुआ। सशरीर मैं प्रतीक था। विदेशों में आयुर्वेद का यश और उसमें दिलचस्पी बढ़ रही है। स्विटजरलैंड के एक प्रसिद्ध मेडिकल जर्नल 'प्रोग्रेस इन डग रिसर्च' के अंक १५ में प्रथम लेख आयुर्वेद पर मेरा ही है। अमरीका की प्रसिद्ध चिकित्सा-सम्बन्धी संस्था नेशनल हेल्थ इंस्टिट्यूट (मेरीलैण्ड) ने लेख की प्रतिलिपि मांगकर उसे अपने विशेष पत्रक के साथ प्रकाशित किया है।

अपनी विदेश यात्रा में मैंने आयुर्वेद से एलोपैथी या अन्य चिकित्सा-प्रणालियों की तुलना करते हुए उनकी बुराई नहीं की बल्कि यह बताया कि आयुर्वेद में क्या है। विशेष रूप से मैंने उन चीजों की चर्चा की, जो आयुर्वेद ने पश्चिमी चिकित्सा-प्रणालियों को दी है और दे सकता है। इसके अतिरिक्त मैंने उन रोगों के निदान, उपचार की समस्याओं का आयुर्वेदिक समाधान प्रस्तुत किया जिनमें एलोपैथी, शल्य-विज्ञान तथा अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ असफल हो गई हैं। इससे वहां के लोग चमत्कृत हो गये।

जल्दी ही भारत में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन होने वाला है, जिसमें विभिन्न देशों की स्वदेशी चिकित्सा-पद्धति और प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के प्रतिनिधि भाग लेंगे। उस सम्मेलन को विश्व स्वास्थ्य-संगठन का सहयोग प्राप्त है। सम्मेलन में जिन चिकित्सा-प्रणालियों का प्रतिनिधित्व होगा, उनमें आयुर्वेद निश्चय ही प्रधान है। आयुर्वेद के भविष्य के बारे में मैं बहुत आशावादी हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर आयुर्वेद मुगल काल में जीवित रह सका, अंग्रेजी काल में पनपता रहा, स्वतन्त्र भारत में स्वास्थ्य मन्त्री राजकुमारी अमृत कौर के कट्टर विरोध से नहीं मरा, तो अब क्या नष्ट होगा। दुर्भाग्य से एक से अधिक स्वास्थ्य मन्त्रियों ने यह मान लिया कि आयुर्वेद का युग समाप्त हो चुका है और राष्ट्रीय चिकित्सा योजनाएं इस आधार और दुराशा पर बनाई गईं कि आयुर्वेद निकट भविष्य में समाप्त होने वाला है। वह अवधि समाप्त हो चली है और आयुर्वेद का शासन-क्षेत्र में भी मान्य स्वरूप बदला है। आज परिस्थिति यह है :

(१) मेडिकल कौंसिल के बराबर और समान सेंट्रल कौंसिल आफ इंडियन मेडिसिन संसद के कानून के अ सार स्थापित होकर काम कर रही है।

(२) इंडियन कौंसिल आफ मेडिकल रिसर्च के जो पर भारतीय चिकित्सा विज्ञान व होम्योपैथी की अ संधान परिषद् भी काम कर रही है।

(३) वेतन व अधिकारों में सरकारी डाक्टरों औ वैद्यों के बीच कोई अन्तर नहीं है। एक समय था स्वास्थ्यमन्त्री राजकुमारी अमृतकौर ने सरकारी क चारियों को आयुर्वेदिक चिकित्सा कराने का व्यय दे से इंकार कर दिया था। अब सरकारी कर्मचारी आ वेंदिक या एलोपैथिक मनचाहा इलाज करा सकते हैं।

(४) देश भर में आयुर्वेद के अध्ययन-अध्याप का नया दौर आरम्भ हुआ है। आयुर्वेदिक औषधि के मानवीकरण और अनुसंधान का काम चल रहा है।

एलोपैथी विदेशी पद्धति होने के कारण उसकी विदेशों में ही हैं। सब अनुसंधान और नई खोजें विदे में ही होती हैं। इसलिए वह खर्चीली और स्वदेशी साध पर अधिक भार रहती है। इसके विपरीत वैद्य विदे मुद्रा का अर्जन करते हैं। वे डाक्टरों की तरह अ मरीजों को इलाज के लिए विदेश नहीं भेजते और उन साथ स्वयं भी नहीं जाते।

आयुर्वेद की जड़ें भारत की भूमि में है। उसने बाधाओं को निरस्त कर सदियों लम्बे असहानुभूति वातावरण में भी फिर से अपनी नींव पक्की की हैं। भारतवासियों के लिए सदा अत्यन्त उपयोगी रही है भविष्य में अधिकाधिक उपयोगी रहेगी, यह मेरी आ ही नहीं, दृढ़ विश्वास है।

देश में आयुर्वेद के अध्ययन और अध्यापन जहाँ तक प्रश्न है, आयुर्वेद महासम्मेलन ने साठ वर्षों में आयुर्वेद-विरोधी शक्तियों का सा करके उसे जीवित रखा है और इस स्तर पर दिया है कि अब हम वैद्यों को कोई आशंका है। हम उसके भविष्य के बारे में आशावान हैं। देश में सौ से अधिक आयुर्वेदिक कालेज हैं। उसी लन ने (पंडित जी भी उसके कई बार अध्यक्ष रह हैं) राजधानी में धन्वन्तरि भवन की योजना आरम् है। यह आयुर्वेदिक कांग्रेस का सुस्वप्न है।

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

(छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

उदर—२

वैद्य रणजित राय देसाई

उदरों के पूर्व रूप :—

> तत्पूर्वरूपं बलवर्ण काङ्क्षावलीविनाशो जठरे च राज्यः ।
> जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥
>
> सु० नि० ७।७।[1]

उदर रोग एक बार हो जाने पर अत्यन्त दुःसाध्य, बहुधा असाध्य एवं पुनरावर्तन-शील होते हैं। अतः पूर्वरूपावस्था में ही इनका निदान कर योग्य उपचार द्वारा इन्हें निर्मूल करना अत्यन्त आवश्यक ठहरता है। उदरों के सामान्य पूर्वरूप ये हैं—

अनन्नाभिलाष (अन्न-सेवन की इच्छा ही न होना), क्षुधानाश; लघु तथा अल्प भी भोजन करने पर उदर की विस्तीर्णता (आध्मान, फुलावा एवं उदर में फटने या तनने की - सी प्रतीति), सौहित्यासहिष्णुता;[2] मधुर, स्निग्ध तथा गुरु अन्नपान का पचन चिरकाल में होना;[1] मुक्त अन्नपान का विदाह (अम्लपाक, एसिड फर्मेंटेशन); वात के प्रकोपवश मुक्त अन्न का जरण (पचन) हो गया है वा नहीं इसका ज्ञान न होना; रूक्ष द्रव्यों के सेवन के कारण हुए उदावर्त्त के समान महास्रोत में पुरीष की संचयपूर्वक वृद्धि (अतिसार)[2] अथवा अप्रवृत्ति (संग); बस्ति संधि में[3] वेदना, आध्मान, वृद्धि तथा पाटन-वत् (फाड़े जाने की-सी) रुजा; (अग्निमांद्य आदि के कारण रस-रक्त की यथावत् पुष्टि न होने के परिणामस्वरूप) प्राकृत वर्ण को क्षय (वैवर्ण्य); उत्तरोत्तर बलक्षय (क्रमशः सर्वधातुओं की क्षीणता होने से ।); अल्पमात्र चेष्टा करने से श्वास का वेग हो आना; उदर की त्वचा पर स्थित वस्तियों (झुर्रियों) का लोप, उदर पर राजियां[4]; उभय पादों पर किंचित् शोफ।

स्पष्ट है कि, इन पूर्वरूपों में प्रायः सभी उदरों के कारणभूत अग्निमान्द्य के फलस्वरूप हुआ करते हैं।

---

१. च० चि० १३।१६-१९; अ० हृ० नि० १२।५-८ भी देखें। माधवनिदान तथा भावप्रकाश में उदरों के पूर्वरूप दिए नहीं गए हैं।

२. क्षुधा का वेग जितना हो उतनी मात्रा में भोजन न कर पाना। इसमें कारण यह होता है कि जैसा कि ऊपर कहा, पुरुष अल्प तथा लघु भी भोजन करे तो उसका पेट फूल जाता है, फटता तथा बनता है। अतः स्वभावतः वह अधिक भोजन कर नहीं पाता। सौहित्य= आकण्ठ—पेट भर कर—खाना।

स्मरण रहे, कफ पित्तात्मक शूल (आमाशय में पाक, गेस्ट्राइटिस) हो तो भी स्वल्पमात्र भोजन उदर में गया कि पाकवश आमाशय भोजन का अधिक भार सहन नहीं कर पाता। जैसे बाह्य व्रण-शोथों के लक्षणों में एक स्पर्शाक्षमता (टेन्डरनेस) होती है वैसी ही अन्तरायवों के पाक-में भी होती है। विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के प्रसंग में वह लक्षित हुआ करती है, यथा उक्त विकृति में भोजनोत्तर इस विकृति में प्रत्येक भोजन के पन्द्रह मिनट पूर्व $\frac{३}{४}$ कर्ष सर्वक्षार (सोडा बाई कार्ब) थोड़े जल के साथ देने से चमत्कृत लाभ होता है।

१. यों तो स्वस्थावस्था में भी कटु, तिक्त, रूक्ष तथा लघु द्रव्यों की तुलना में मधुर, स्निग्ध अथच गुरु द्रव्यों का पचन चिरकाल से होता है तथापि यहां इनका परिपाक चिरकाल से होने का जो उल्लेख किया गया है उसका तात्पर्य यह है कि स्वस्थ अवस्था में इनका पचन जितने समय में होता है उसकी अपेक्षया अधिक समय उदरों में पूर्वरूपावस्था से ही लगता है।

२. पुरीष की वृद्धि का अतिसार यह अर्थ निर्णयसागरी अष्टांग हृदय की पाद-टिप्पणी में तोडर के शब्दों में दिया गया है।

३. बस्ति का अन्य अवयवों से जहाँ संसर्ग होता है वहाँ तक के प्रदेश में—बस्ति प्रदेश या हायपोगेस्ट्रिक रीज्यन में।

४. अणुतम केशवाहिनियों तथा सिराओं में रक्त का संचय हो जाने से उनका उभर कर दृश्यमान होना।

उदरों के सामान्य रूप (लक्षण तथा वेदना)—

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोफः सदनमङ्गानां संगो वातपुरीषयोः ॥
दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवन्तिहिं ॥[1]
—सु० नि० ७।२३-२४

(माधव तथा भाव मिश्र ने 'तृष्णा' के स्थान पर 'तन्द्रा' लक्षण दिया है।)

उदरमात्र से पीड़ित पुरुषों में सामान्य रूप से हुआ करते हैं—कुक्षि (उदर) का आध्मान; उदर का शोथ (उत्सेध); आटोप (अन्त्रकूजन-सहित कुक्षि शूल; अग्नि की अतिशय मन्दता; क्षुधानाश; आहार की मात्रा में ह्रास, पुरीष एवं (अर्ध्व-अधो) वातों का संग (अप्रवृत्ति); कृशता, दौर्बल्य, चेष्टाहानि, गमन की असमर्थता, अङ्ग-साद, तन्द्रा, तृष्णा, तालु तथा ओष्ठों की शुष्कता, दाह, गुण्डों (कपोलों, गालों) की श्लक्ष्णता (मसृणता; ताजे पालिश किए फर्नीचर के समान देखाव तथा स्पर्श में चिकने और चमकीले); हस्तपाद-शोथ कि बहुना, इन लक्षणों के परिणामस्वरूप उदर रोगी प्रेततुल्य (मृतप्राय) ही प्रतीत हुआ करते हैं।

मधुकोशकार कहते है कि, यों तो उदरों के निदान में अग्नि की मन्दता होती है, तथापि यहाँ एक लक्षण के रूप में जो अग्नि के मन्द होने का उल्लेख किया गया है उससे यह अभिप्रेत है कि, उदरों की व्यक्तावस्था अर्थात् लक्षणों का आविर्भाव हो जाने पर अग्नि सुतरां मन्द हो जाता है।

अन्ते सलिलभावं हि भजन्ते जठराणि तु ।
सर्वाण्येव परीपाकात् तदा तानि विवर्जयेत् ॥
—सु० नि० ७।२५

('विवर्जयेत्' के स्थान पर 'विघ्येत्यजेत वा' यह पाठान्तर है)।

उदरमात्र की उपेक्षा की जाए अथवा उसका मिथ्योपचार हो तो सभी परिपाकवश—दोषों के द्रवीभाववश—जलोदर में परिणत हो जाते हैं। यह स्थिति उपस्थित होने पर उनका उपचार छोड़ दे अथवा उनका वेधन करे।

इस प्रकार जलोदर के दो प्रकार होते हैं १. स जलोदर, जिसमें आरम्भ से ही उदर में द्रव-संचय है तथा २. परतन्त्र जलोदर, अर्थात् अन्य उदरों जल-संचय हो जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न जलोदर।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि स्वतन्त्र जलोद भिन्न उदरों की दो अवस्थाएं हुआ करती हैं— १. में उदक-संचय होने के पूर्व की अवस्था, तथा २. में उदक-संचय हो जाने की अवस्था। प्रथम अव को **अजातोदकावस्था** तथा द्वितीय को **जातोदकाव** कहा जाता है।

उदरों के भेद—

उदरों के प्राथमिक वर्ग दो हैं- **निज** तथा आग आगन्तु में बद्धगुदोदर तथा क्षतोदर इन दो की ग होती है। रोष का समावेश निज उदरों में होता

इन दो वर्गों में सब मिलाकर उदरों के आठ हुआ करते हैं—वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, संनिपात प्लीहोदर (इसी में यकृदुदर या यकृच्छाल्युदर का अन्तर्भाव है) बद्धगुदोदर, क्षतोदर या छिद्रोदर (क्ष परिस्राव्युदर) तथा दकोदर (उदकोदर या जलोदर)

प्लीहोदर आदि भी यद्यपि रोष-वैषम्य से ही हैं तथापि इनमें प्लीहा आदि भी हेतुभूत होने से तत्-तत् संज्ञा दी गयी है। यकृदुदर का कण्ठ अभिधान नहीं है, तथापि निदान, लक्षण अथच त्सा का सादृश्य होने से प्लीहोदर पद से यकृदु भी ग्रहण हो जाता है।

अब प्रत्येक उदर के पृथक्-पृथक् निदानों तथा का उल्लेख किया जाता है। चरक तथा हृदय इन उदरों का पृथक्-पृथक लक्षण देने के पूर्व सभी की अजातोदकावस्था के लक्षण दिये हैं। ये निम्न हैं—

उदरों की अजातोदकावस्था के लक्षण[1] :

उदरों में अभी जल-संचय न हुआ हो तो अशोथ (ईषत् शोथयुक्त)[2], अरुण त्वचावाला, गुरुता विशेष न हो ऐसा, नित्य मेध-सदृश गुड़गु

---

[1] देखिए—च० चि० १३।२१; सु० नि० ७।२३-२४; आ० हृ० नि० १२।४; माधवनिदान; भावप्रकाश म० खे०, चि० ८।३ ।

[1] च० चि० १३।५५-५८; अ० हृ० नि० १२।६-१

[2] 'अ' (नञ्) इस शब्द में अल्प के अर्थ में प्रयु

अव्यक्त शब्द से युक्त, सिरा-जाल से निरन्तर आवृत; वायु के कारण जिसमें नाभि तथा अन्त्र में स्तब्धता एवं हृदय (छाती), कटि, नाभि, पायु (मलद्वार) तथा वंक्षण में वेदना के रूप में आत्मीय लक्षण प्रकट करे, और पुरीष तथा वायु का वेग एवं विसर्जन होने के पश्चात् ये लक्षण शान्ति को प्राप्त हो जाएँ ऐसा; जिसमें कर्कश (बेलून फटे उसके समान अथवा कपड़े का थान फाड़ा जाय उसके तुल्य दीर्घकालिक, कर्ण-कटु) अधोवायु की प्रवृत्तिवाला; पुरीष का जिसमें बन्ध हो एवं मूत्र अतिमात्र अल्प तथा घन हो ऐसा; अग्नि की जिसमें किंचित् मन्दता हो इस प्रकार का, मुख-वैरस्यरहित एवं जिह्वा-लौल्य (लोलुपता-सहित) हुआ करता है।

इन लक्षणों में आए 'सिरा-जाल से आवृत' का अर्थ यह है। यकृत की दिशा में जानेवाले रस-रक्त का वहन करनेवाली समग्र उदर की स्थूल सिराओं में अवरोध-वश नील (कार्बनडाईआक्साइड-युक्त) रक्त का संचय हो जाता है। परिणामतया वे फूल जाती हैं। समग्र उदर फूली हुई इन सिराओं से व्याप्त होता है।

जैसा कि ऊपर कह आए हैं, अवरोध सूक्ष्मतम शिराओं में होने से वे फूल गई हों तो उनकी आकृति को दृष्टि में रखते हुए उन्हें 'राजि' या 'रेखा' कहा जाता है।

अजातोदकावस्था से जातोदकावस्था आने पर उदर में प्रसिद्ध रूपवाला द्रव संचित हो उसके पूर्व यह द्रव पिच्छा-रूप होता है। पिच्छा का अर्थ है—पिच्छिल-लाला, अथवा शाल्मली-निर्यास अथवा चावल का माड। इस पिच्छावस्था के लक्षणों का निर्देश आगे जातोदकावस्था के लक्षणों के साथ किया जायगा। प्रथम वातोदर आदि की अजातोदकावस्था के लक्षण देख लें।

वातोदर के लक्षण[1]—

रूक्ष तथा अल्प भोजन श्रम, वेगधारण तथा लंघनादि कर्शन (कृशत्व उत्पन्न करने वाले कारण)—इनके योग से वायु प्रकोप को प्राप्त हो कुक्षि (उदर), हृदय, वस्ति तथा गुद-मार्ग में (उत्तर तथा अधर गुद में) स्थान-संश्रय कर अग्नि को मन्द एवं कफ को स्थानच्युत कर तथा स्वयं इस कफ से रूद्ध मार्ग हो त्वचा और मांस के मध्य स्थान—संश्रय कर उदर को आध्मात कर देता है। इसे वातोदर कहा जाता है। इसमें निम्न लक्षण होते हैं—

कुक्षि, नाभि, पाणि, पाद तथा वृषणपर श्वयथु; उदर का विपाटन (वह फटा जाता हो ऐसी व्यथा); उदर के उत्सेध का अकस्मात् (अनिश्चित काल तथा कारण से) वृद्धि तथा ह्रास को प्राप्त होना; कुक्षि(उदर) के वाम और दक्षिण पार्श्व, उदर, नाभि, पृष्ठ एवं कटि में ग्रह (जकड़ाहट) और शूल; पर्वों में—अस्थिसन्धियों में—भेद; पुरीष, मूत्र तथा अधोवायु का संग; उदावर्त्त (इस रोग के प्रकरण में निर्दिष्ट प्रकार से वायु की विलोम गति एवं उनके परिणाम-स्वरूप अधोवाही स्रोतों का ऊर्ध्ववाही हो जाना); उदर में तोद तथा भेद, रोग जैसे जैसे वृद्धि को प्राप्त होता जाए वैसे-वैसे उदर का तनुत्कृश, पतली तथा असित (कृष्ण वर्ण) राजियों और सिराओं से व्याप्त हो जाना; उदर पर आहनन (आस्फोटन, अंगुलियों से आघात, पर्कशन) किया जाए तो आध्मात-वातपूर्ण-दृति-(मशक अथवा अन्य कोई चर्मपुटक) पर किये आघात के सदृश शब्द (रेजोनेंट साउण्ड) होना, आनाह, उदर में वायु का सर्वत्र—ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक्—शूल और उग्र शब्द-सहित संचरण; नख, नयन, वदन, त्वक् मूत्र एवं पुरीष का वर्ण श्याव (धूसर) तथा अरुण होना; गुरुता विशेषतः अधःकाय में, अरुचि, अविपाक (अजीर्ण), शुष्क कास, कार्श्य, दौर्बल्य और अंगमर्द—ये लक्षण वातोदर की अजातोदकावस्था में हुआ करते हैं।

उदर का उत्सेध आदि कतिपय लक्षण आध्मान में भी हुआ करते हैं। परन्तु उसमें राजियां और सिराएं दृष्टिगोचर नहीं होतीं। लक्षणों की उग्रता भी उतनी होती नहीं। विशेष भिन्नता तो यह होती है कि आध्मान एक आशुकारी रोग है। स्व-कारणों से उत्पन्न होकर यथोचित उपचार से देखते देखते शांति को प्राप्त हो जाता है। उदर, इसके विपरीत, एक चिरकारी रोग है। इस दृष्टि से इन दोनों रोगों में यह अन्तिम भिन्नता अतिसार और ग्रहणी के सदृश हुआ करती है।

---

[1] देखिए: च० चि० १३।२३-२५, सु० नि० ७।८-९, अ० हृ० नि० १२।१२-१५, भाव प्रकाश मध्यम खंड चि० ८।५-८; माधव निदान। शेष उदरों के लक्षण इन स्थलों के आगे के स्थलों में द्रष्टव्य।

पित्तोदर के लक्षण

कटु, अम्ल (अम्ल रस, विपाक तथा अम्ल पाकवाले द्रव्य, लक्षण, अति उष्ण, तीक्ष्ण, विदाही द्रव्यों का सेवन, अग्नि तथा आतप (धूप) का सेवन, अध्यशन एवं अजीर्ण (विदग्धाजीर्ण)—इन हेतुओं के योग से पित्त शीघ्र ही संचयपूर्वक प्रकोप को प्राप्त हो वात तथा कफ के साथ संयुक्त हो, विमार्गगामी (अपनी नित्य प्रवृत्ति के मार्ग—मलद्वार—की दिशा में न जाता हुआ वायु के चलगुणाधीन आशयापकर्ष के स्वभाववश विपरीत दिशाओं में प्रसृत होता हुआ सर्व शरीरगामी) हो शरीर के स्रोतों को अवरुद्ध करता हुआ तथा आमाशय (आमपच्यमानाशय) में जठराग्नि को, साथ ही स्थानान्तरों में स्थित धात्वग्नियों को भी मन्द करता हुआ पित्तोदर को उत्पन्न करता है।

इस पित्तोदर में उदर नील, पीत, हरित, हारिद्र और ताम्र वर्ण की रेखाओं तथा सिराओं से व्याप्त, उदर स्पर्श में मृदु एवं उष्ण तथा उनमें से मानो धूम की प्रवृत्ति होती हो ऐसा, सदाह तथा ऊष्मायुक्त (क्रमशः बाह्य तथा आभ्यन्तर तापयुक्त)[1], ऊष्मायण (निकट में अग्नि हो तो जैसी व्यथा होती है उस) से युक्त, व्यथा वाला एवं स्वेद और क्लेद (त्वचा पर भीनापन) सहित हुआ करता है।

विशेष तो यह उदर शीघ्र वृद्धि-शील एवं शीघ्र-पाकी (शीघ्र—दस-बारह दिनों में ही--देखते-देखते--जलोदर के रूप में परिणत हो जानेवाला) होता है। नख, नयन, वदन, त्वचा, पुरीष तथा मूत्र हरित (शाकवर्ण), पीत और हारिद्रवर्ण होते हैं। अन्म सार्वदेहिक लक्षण इस पित्तोदर में निम्न हुआ करते हैं—ज्वर, अतिसार, भ्रम[2] मूर्छा, दाह, तृषा, चोष और मुख का रस कटु होना।

पित्तोदर—नवीनों का टयुक्युर्लेस एसाइटिस—यह पित्तोदर आधुनिक प्रत्यक्षानुसार राजयक्ष्मा के जीवाणुओं (वेसील्लेस टयुबक्युर्लोसस) का उदरधरा कला (पेरीटोनियम) में स्थानसंश्रय होने से उत्पन्न हुआ जलोद (टयुबक्युर्लस एसाइटिस) है। इसके समर्थन में निम्न हेतु उपस्थित किए जा सकते हैं।—

राजयक्ष्मा में पुरीष की रक्षा का विधान पूर्वाचार्यों ने किया है। पुरीष की रक्षा का अर्थ है—यथासंभव विरेचन न देना अथवा सावधानी से देना; एवं अतिसार हुआ हो तो उसका सत्वर उपचार करना। संहिताओं में इस वस्तु का कारण दर्शाते हुए कहा गया है कि: अग्नियों की मन्दता एवं धातुक्षय से पीड़ित राजयक्ष्मी पुरुष का शरीर पुरीष पर ही टिका होता है—**सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम्—चरक।**

पक्वाशय में जीवाणुओं द्वारा पचन—वर्तमान क्रिया-शारीर से आयुर्वेद के उपर्युक्त विधान की समर्थक व्याख्या उपलब्ध हो सकती है। सुविदित है कि, आम-पच्यमानाशय में प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट तथा स्नेह (फेट) का पचन करनेवाले पृथक्-पृथक् पाचक रस हुआ करते हैं। पक्वाशय में अक्षरशः यही क्रिया करनेवाले विविध जीवाणु (इन्टेस्टाइनल फ्लोरा) हुआ करते हैं।

(जीवाणु) मानवादि प्राणियों अथवा वनस्पतियों को रोगोत्पादन द्वारा क्षति पहुँचाने की क्रिया ही करते हैं यह भ्रमणा मिथ्या है। यत्सत्यं, जीवाणु दो प्रकार के हुआ करते हैं—प्राणियों तथा वनस्पतियों के उपकारक तथा इनके अपकारक। उपकारक जीवाणुओं का उत्तम निर्दशन शिम्बीधान्यों के मूल में रहनेवाले 'नाइट्रिफाइंग बेक्टीरिया' हैं। जैसा कि इनके नाम से सूचित है, वनस्पतियाँ वातावरण में से जिस वायु का ग्रहण किया करती हैं उसमें अन्य वायुओं (गैसों) के अतिरिक्त नाइट्रोजन भी होती है। उपर्युक्त नाइट्रिफाइंग बेक्टीरिया इस नाइट्रोजन को खाद के रूप में उपयुक्त योगों के रूप में परिणत कर देते हैं। ये जीवाणु इन शिम्बीधान्यों के मूलों में स्थित अति अणु कन्दों (ट्यूबर्कल्स) में रहते हैं। स्थिति यह होने से ही कृषक जन सन आदि शिम्बीधान्य मुख्य कृषि के साथ अपने खेतों में बोते हैं। इनके क्षुप अमुक ऊँचाई तक आएँ कि उन्हें उखाड़ कर धरती पर ही बिछा देते हैं, जिससे ये क्षुप स्वयं भी खाद के काम में आ जाते हैं। इस काल में उल्लिखित कन्द तथा बेक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं।

द्विविध फफूँद—जीवाणुओं के सदृश ही फफूँद (फंगस) की भी दो श्रेणियाँ हैं—कई फफूंद खाद्य द्रव्यों

---

[1] दाह तथा ऊष्मा के इन अर्थों के लिए देखिए--भावप्रकाश।

[2] पित्त के प्रकोपवश हुआ यह भ्रम चेष्टा बिना भी होता है। तात्पर्य, पुरुष विश्राम कर रहा हो या चेष्टापरायण हो-दोनों अवस्थाओं में भ्रम के वेगों की मात्रा एक समान ही रहती है।

अवलेह आदि औषध-द्रव्यों तथा वनस्पतियों का विनाश सर्जती हैं तो कई फफूंद रोगारम्भक जीवाणुओं का हनन कर रोगों को दूर भी करती हैं - पेनिसिलिन, क्लोरोमायसिटिन आदि प्रसिद्ध नवाविष्कृत एंटिबायोटिक औषध विविध फफूंदों में से ही उत्पन्न होती हैं।

अस्तु। नाइट्रिफाइंग बेक्टीरिया के सदृश पक्वाशयगत जीवाणु भी शरीर-तंत्र के उपकारक जीवाणुओं के वर्ग के उदाहरण हैं। ये जीवाणु भी अपने-अपने पाचक रस उत्पन्न कर उन्हें पुरीषाशय में छोड़ते रहते हैं। इन रसों में कोई प्रोटीनों का पचन करते हैं, कोई कार्बोहाइड्रेट का तथा कोई स्नेहों का। पक्वाशय में पाक की इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्राकृत स्थिति में भी पच्यमानाशय से अपक्वावस्था में पक्वाशय में उतर आए प्रोटीन आदि का पचन होकर उसी प्रकार अन्नरस उत्पन्न होता है जिस प्रकार आमपच्यमानाशय में स्थित विभिन्न पाचक रसोत्पादक ग्रंथियों द्वारा उत्पादित रसों की क्रिया द्वारा होता है। अन्य शब्दों में ये जीवाणु जाठराग्नि के अङ्गभूत पाचक रसों की सहायता करते हैं। इस क्रिया के अतिरिक्त ये जीवाणु अन्य कतिपय नवीन द्रव्य भी उत्पन्न करते हैं। इन द्रव्यों में विटामीन 'के' स्मरणीय है। यह विटामीन 'के' रक्त का स्कन्दन करनेवाले कारणों में एक है। बाह्य अथवा आभ्यन्तर रक्त-स्राव में आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में आर० सी० के० नामक टिक्कियों का सुबहु व्यवहार होता है। उसका अङ्गभूत 'के' यह विटामीन 'के' ही है।

राजयक्ष्मा में पुरीष की रक्षा – किंबहुना, पक्वाशय में रह कर पचनात्मक व्यापार करनेवाले इन जीवाणुओं का विशेष लाभ राजयक्ष्मा-पीड़ित पुरुषों एवं अन्य कृश व्यक्तियों को होता है। राजयक्ष्मी पुरुषों को अतिसार हो जाए अथवा उन्हें विरेचन दिया जाए तो पुरीषान्तर्गत अपक्व प्रोटीन इत्यादि द्रव्य, जिन पर इन जीवाणुओं की पाचक क्रिया होने से अन्नरस बनता है वे द्रव्य तथा स्वयं ये जीवाणु भी बड़ी संख्या में मलद्वार से बाहर निकल जाते हैं। परिणामतया, पुरुष इनके लाभों से वञ्चित रह जाते हैं। अतएव, राजयक्ष्मा-पीड़ित पुरुष के सिवा अन्य किसी भी कृश पुरुष के पुरीष की पूर्वोक्तरीत्या रक्षा का जो विधान पूर्वाचार्यों ने किया है उसे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति का भी उत्तम समर्थन प्राप्त है।

स्मरण रहे टायफायड में व्यवहार में आनेवाले उग्रवीर्य एंटिबायोटिक्स—क्लोरोमायसिटीन आदि—रोगारम्भक जीवाणुओं का तो संहार करते ही हैं, साथ ही इन पाचक-रसोत्पादक जीवाणुओं को भी नष्ट कर देते हैं। इसी से इनका उपयोग करने के अनन्तर टायफायड तो मिटता है (प्रायः उसका सकारण पुनरावर्तन तो होता ही है), परन्तु दुःसाध्य अग्निमान्द्य भी हो जाता है, यह एक सुविदित सत्य है।

इस विवेचन के आधार पर अब हम पित्तोदर 'टयुबर्क्युलस एसाइटिस है' इस विषय के निरूपण पर आते हैं। जैसा कि आगे चिकित्सा के प्रकरण में देखेंगे, उदरमात्र में तत्तत्कारणवश नित्य विरेचन का विधान है। परन्तु यह पित्तोदर इसका अंशतः अपवाद है। इस पित्तोदर में रुग्ण को प्रथम उपचार द्वारा बलवान् बना कर पश्चात् विरेचन देना विहित है। प्रारंभ से ही विरेचन देने से गुण तो होता नहीं, अनिष्ट परिणाम ही हाथ आता है। आधुनिक यक्ष्म-विपरीत उपचार करने से रोग देखते-देखते शांत हो जाता है।

पित्तोदर के राजयक्ष्मा के जीवाणुओं से उत्थित मानने का अन्य कारण इसकी शीघ्रपाकिता (शीघ्र जलोदर में परिणमन) है। होता यह है कि, उदरधरा कला के अन्दर के पृष्ठों में जीवाणुओं का संक्रमण होने के कारण पाक (इन्फलेमेशन) होने के परिणामस्वरूप प्रबल वेग से इन पृष्ठों में से लसीका का स्राव होता है, जिससे इस उदर में द्रव-संचय इतर उदरों की तुलना में अति द्रुत गति से हुआ करता है।

इस रोग में उदर को मृदु कहा है। टयुबर्क्युलस एसाइटिस तथा इन्टेस्टाइनल टयुबर्क्युलोसिस में उदर को अङ्गुलियों के मध्य लेकर किंचित् दबाने से जिस मृदुता का अनुभव होता है उसकी उपमा आधुनिकों ने गूंदे हुए आटे के साथ दी है। ऐसे आटे को अंग्रेजी में 'डो'[1] तथा तत्सदृश स्पर्श को 'डोई'[2] कहा जाता है। यह सादृश्य भी पित्तोदर के नव्यमतानुसार नामाभिधान का समर्थक है।

अन्त में ज्वर, जो एकमात्र पित्तोदर का लक्षण है वह, भी उपर्युक्त विधान का समर्थन करता है।

---

1. Dough 2. Doughy

कफोदर के लक्षण —

व्यायामाभाव (चेष्टा अथवा श्रम का अभाव), दिवास्वाप; मधुर, अतिस्निग्ध तथा पिच्छिल द्रव्यों का सेवन एवं दधि, दुग्ध, औदक (जलचरों का) तथा आनूप मांसों का अतियोग—इन कारणों से क्रुद्ध हुआ कफ स्रोतों को आवृत करता हुआ वायु का भी आवरण (आवरण-पूर्वक प्रकोप; क्षोभ) करता है। प्रकुपित यह वायु कफ को पीड़ित करता हुआ—उदर के संमुखीन अवयवों में जाता हुआ —तथा स्वयं अंगों के बाहर जाकर उदर को उत्पन्न करता है।

कफकृत स्रोतोरोध का स्वरूप—कफ से स्रोतों के अवरोध का कोई बुद्धिगम्य अर्थ हो तो वह यह है कि रसवह प्रभृति अन्तर्मुख स्रोत अथवा पुरीषवह आदि बहिर्मुख स्रोत इनमें किसी भी श्रेणी के किसी भी स्रोत में स्वस्थ अवस्था में तदन्तर्गत द्रव्य जिस वेग और जिस बल से भ्रमण करता है उसमें कफ के मन्द गुणवश न्यूनता आ जाना कफकृत स्रोतोरोध कहा जाता है। शाखाश्रित कामला में कफ द्वारा पित्त के वाहक स्रोतों के अवरोध का यही स्वरूप हुआ करता है, यह अनुमान करने का आधार है। इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में रसरक्तवह स्रोतों में रक्त का दबाव न्यून हो जाता है। इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि यकृत् में स्थित पित्तवाहिनियों (बाइल केपीलरीज) में भी पित्त के वहन का दबाव अल्प हो गया होता है। अल्प वेग से बहते इस पित्त के अब्धातु का शोषण होकर वह घनत्व को प्राप्त होता है। परिणामतया पच्यमानाशय की दिशा में उसकी गति और भी मन्द हो जाती है।

कोई भी दोष प्राकृत, वृद्ध या क्षीण किसी भी अवस्था में हो उसका संचार तथा क्रिया सर्व देह में लक्षित होते हैं, किसी अवयव में कम किसी में अधिक। जिस अवयव में इनकी क्रिया लक्षित हो उसके आधार पर उन अवयवों में उस दोष की क्रिया का अनुमान करना समीचीन होता है, जिसमें दोषकृत क्रिया प्रत्यक्ष-गोचर न हो। इस वस्तु-स्थिति को दृष्टि में रखकर रक्त का दबाव मापने के यन्त्र (स्फिग्मोमेनोमीटर, ब्लडप्रेशर इन्स्ट्रुमेण्ट) से सहृदय तथा रस-रक्तवह स्रोतो में रक्त के घट गये दबाव के ज्ञान के आधार पर यकृत में स्थित पित्तवाहिनियों में पित्त के वहन की मन्दता का अनुमान किया जा सकता है। स्मरण रहे, कफ द्वारा स्रोतोरोध का यह एक प्रकार है। इसके अन्य भी प्रकार हैं ही।

इस कफोदर में लक्षण निम्न होते हैं—उदर का शुक्ल वर्ण राजियों तथा सिराओं से व्याप्त होना, उदर में गौरव, स्तैमित्य (निश्चलत्व या क्लेद), स्निग्धता काठिन्य, श्लक्ष्णता, शीत स्पर्श, स्थिरता (उपचार का परिणाम शीघ्र न होना); अन्य उदरों की तुलना में उदर की अधिक विशालता, उदर का पाक (जलोदर-रूप में परिणमन) चिरकाल से होना (उदर का उत्सेध मन्द गति से वृद्धि को प्राप्त होना ?), पाणि, पाद, ऊरू तथा वृषणों पर शोथ; इतर अवयवों में शोफ, नख, नयन, वदन, त्वचा, मूत्र तथा पुरीष की शुक्ल-वर्णता, अङ्गसाद, सुप्ति (अवयवों में स्पर्शनाश अथवा आसीन प्रचलायित, जिसमें रूग्ण बैठा-बैठा निद्रावश हो जाता है), तन्द्रा, निद्रा, उत्क्लेश (हृल्लास, लालास्राव), अरूचि; अजीर्ण, कास और श्वास।

(सावशेष)

वैद्यनाथ
लवनभास्कर चूर्ण
कब्जियत-नाशक और अग्नि-वर्धक सुस्वादु चूर्ण

आयुर्वेद की प्रगति और राजनैतिक पहल

श्री दीनानाथ सिंह
एम० ए०, शोध छात्र,
राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

आयुर्वेद एक प्राचीन तथा प्रगतिशील चिकित्सा पद्धति रही है जो कि आज भी जीवित है। यह केवल व्याधिग्रस्त के रोग - शमन की ही नहीं वरन् मनुष्य के स्वास्थ्य-रक्षा की पद्धति है।

"हिताहितं सुखं दुखं आयुस्तस्य हिताहित्म।
स्वस्थ्यस्य स्वास्थ्य रक्षणं आतुरस्य विकार प्रशमनम्॥',

यद्यपि इस निबंध का उद्देश्य आयुर्वेद की उत्पत्ति का पता लगाना नहीं है तथापि इसके प्राचीनतम होने में कोई संदेह नहीं। नागार्जुन द्वारा तीसरी शताब्दी में औषधि-निर्माण के संदर्भ में की गयी खोजों से यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है। छठवीं तथा सातवीं शताब्दी में नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा आयुर्वेद के सन्दर्भ में की गयी शिक्षा-व्यवस्था भी इसका प्रमाण है। नालन्दा विश्वविद्यालय में चीन, जापान तथा एशिया के कोने-कोने से विद्यार्थी भारतीय चिकित्सा-पद्धति के अध्ययनार्थ आते थे। भारत आये चीनी यात्री ह्यूनसांग द्वारा इस चिकित्सा-पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। ये सब आयुर्वेद के प्रसिद्ध होने के पर्याप्त प्रमाण हैं।

लेकिन यदि हम इसकी वर्त्तमान स्थिति को देखें तो यह अतीत जैसी नहीं है। सिद्धांत रूप में आयुर्वेद का आज अस्तित्व अवश्य है, परन्तु व्यवहार जगत् में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति का प्रभाव व्यापक होता जा रहा है। यद्यपि शल्य-विद्या के जनक सुश्रुत माने जाते हैं तथापि शल्य विद्या में आयुर्वेद जगत की अरुचि प्रारंभ से ही रही और शल्य-विद्या कि विशिष्टता के कारण ही पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति प्रगति कर रही है। बुद्ध तथा अहिंसा की विचारधारा का प्रभाव ज्यों ज्यों व्यापक होता गया त्यों-त्यों शल्यविद्या का ह्रास होता गया तथा इसके विकास की गति भी धीमी पड़ती गयी। 'लेकिन आयुर्वेद समृद्धि के ह्रास में यह कारण यथोचित प्रतीत नहीं होता। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि शल्य-विद्या के प्रति आयुर्वेद पद्धति का अनुराग पहले ही से कम था, फिर भी यह एक समृद्ध चिकित्सा-पद्धति थी और सुश्रुत को शल्य के जनक के रूप में स्वीकार किया गया। ये सब आयुर्वेद की समृद्धि के प्रमाण हैं।

आयुर्वेद की प्रगति की गति मन्द होने का सबसे महत्वपूर्ण कारण था भारत में विदेशी-शासन का होना। ये विदेशी शासक भारतीय वेशभूषा, भाषा तथा जीवन-पद्धति इत्यादि को अपनी रूचि एवं हित के अनुसार परिवर्तित करते रहे। भारतीय चिकित्सा-पद्धति भी इस प्रभाव से वंचित न रह सकी। मुगल शासन काल में चिकित्सा-पद्धति का स्थान तंत्र विद्या ने लिया और इस काल में विलासिता की प्रधानता होने के कारण जनहित का कोई भी ख्याल नहीं रखा गया। आयुर्वेदिक ग्रंथों को इस काल में नष्ट किया गया तथा आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के प्रति सौतेला व्यवहार किया गया। ब्रिटिश शासन में तो आयुर्वेद का अवशेष भी समाप्त हो गया। इनकी व्यवहार नीति का लक्ष्य भारतीत वेशभूषा, शिक्षा, संस्कृति तथा जीवन-पद्धति में परिवर्तन लाना ही नहीं रहा वरन् उन्हें आंग्ल स्वरूप प्रदान करना भी था। लम्बे काल के प्रशासन में ये ऐसा कर सकने में सफल भी रहे। फलतः आयुर्वेद का स्थान एलोपैथिक पद्धति ने ले लिया।

आयुर्वेद पद्धति के अधोन्मुख होने के दो प्रमुख कारण हमें दिखायी पड़ते हैं :- पहला कारण तो आयुर्वेद पद्धति के चिकित्सक स्वयं ही हैं और दूसरी सरकारी नीति तथा योजनायें। इन्हीं दो कारणों को हम राजनीतिक चालें कह सकते हैं। इन्हें ठीक से समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को समझना आवश्यक है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आयुर्वेद के पतन का

प्रथम कारण स्वयं वैद्य लोग ही हैं। वैद्य लोग इस संदर्भ में आलोचना के पात्र इसलिए हैं कि इन लोगों ने आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के विकास के लिए कोई आवश्यक कदम नहीं उठाया। स्वतंत्रता के पूर्व भारत में आयुर्वेद के महाविद्यालय नगण्यप्राय थे। प्राचीन पद्धति के आचार्य दो चार शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते थे। ये लोग अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान करने में पूण सतर्कता रखते थे। उनका ध्येय अपने शिष्यों को अपने बराबर बनाना भी नहीं था। अपने ज्ञान से ज्यादा की बात तो वे सोच भी नहीं सकते थे। शिष्यों से ज्ञान की चोरी यहां तक की जाती थी कि यदि पिता किसी वैद्य विद्या का विशिष्ट ज्ञाता होता था और उसका पुत्र भी उसी के अधीन शिक्षा प्राप्त करता था ओ वह भी अपने पिता के समग्र गुणों को जानने में सफल नहीं हो पाता था। इसके साथ ही आयुर्वेद हमेशा से खानदानी व्यवसाय के रूप में रहा है और वह भी प्रायः विशिष्ट वर्ग जैसे ब्राह्मणों के हाथों में[3]। फलस्वरूप पुत्र पिता के व्यवसाय को कायम तो अवश्य रखता था, परन्तु उसकी विशिष्टता को नहीं। परिणामस्वरूप आयुर्वेद का ह्रास अवश्यम्भावी था। वैद्य लोग नाड़ी विज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता रहे हैं, परन्तु १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी में छूत तथा अछूत के भेद व्याप्ति के कारण इसके विकास में अवरोध उत्पन्न हो गया। इस काल में आयुर्वेद में शोधकार्य भी अत्यन्त शिथिल पड़ गये। इस तरह से आयुर्वेद पद्धति निर्जीव सी हो गयी।

जब प्रथा, परम्परा, वातावरण और समय में परिवर्तन आता है तो उसके अनुसार अन्य क्षेत्रों में भी परिवर्तन आवश्यक होता है। लेकिन आयुर्वेदिक क्षेत्र में परिवर्तन के नाम पर कुछ भी नहीं स्वीकार किया जाता। यदि आयुर्वेदिक पद्धति में एलोपैथी से कुछ लेने की बात सोची जाती है तो यह उसके भक्तों को मान्य नहीं है। यदि इस पद्धति खे दूसरी पद्धति कुछ ग्रहण भी करना चाहती है तो वह भी आलोचना से मुक्त नहीं है। यदि सरकार द्वारा इसमें कुछ परिवर्तन की बात चलायी जाती है तो आयुर्वेद जगत् के लोग सरकारी नीतियों को प्रभावित करके उसे परिवर्तन लाने से रोकते हैं। ऐसा लगता है कि इस प्राचीनतम पद्धति में किसी भी प्रकार की नयी देन को स्वीकार करगे से लोगों को घबड़ाहट उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् आयुर्वेद के शोध कार्य में कुछ वृद्धि अवश्य हुई है तथापि व्यवहारिक जगत् में यह पर्याप्त लोकप्रिय नहीं हुआ है। अतः एक संसद सदस्य श्री विश्वनाथ राय की दृष्टि में आयुर्वेद यद्यपि हजारों वर्षों से स्वीकृत एक चिकित्सा पद्धति है, तथापि १९६० में भी इस प्राचीन पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं आया। उन्होंने आयुर्वेद के आचरण की तुलना करते हुए आगे कहा है कि आयुर्वेद को किसी भी विज्ञान से कुछ ग्रहण करना तथा किसी चिकित्सा पद्धति को कुछ प्रदान करना ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्राचीन काल में ब्राह्मण अछूत जातियों को छूने से घृणा करते हैं। नं० ३ एलोपेथिक पद्धति के अग्रसर होने का प्रमुख कारण यह भी है कि जितने भी वैज्ञानिक विषय हैं उनसे अनुकरणीय गुणों को वह तुरन्त स्वीकार करती है। यह गुण आयुर्वेद में नहीं है।

आज का युग पूर्णरूपेण पुरातन-तथ्यों के अनुकरण करने का नहीं है। यदि परिवर्तन लाने से जनहित की वृद्धि हो तो उसे निःसंकोच स्वीकार कर लेना चाहिए। वास्तव में एलोपैथी अंग्रेजों की कोई निजी धरोहर नहीं है। एलोपैथी शब्द का प्रथम आविष्कार डा० हेनिमन ने १८४० में किया था जो होमियोपैथी पद्धति का जन्मदाता था। डा० हेनिमन का कहना था कि समान लक्षण पैदा करने वाली दवा से समान लक्षण वाले रोग का निराकरण होता है उसे होमियोपैथिक प्रिंसिपुल कहते हैं और विरोधी असर पैदा करनेवाली दवा से जिस रोग का निराकरण होता है उसे एलोपैथिक प्रिंसिपल कहते हैं[4]। अतः एलोपैथी को अंग्रेजों द्वारा भारत में लाये जाने के कारण उनकी चिकित्सा पद्धति मान लेना उचित नहीं है। अतः आयुर्वेद पद्धति की प्रगति यदि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति से कुछ ग्रहण करने से हो सके तो उ अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

आयुर्वेद पद्धति के अधोन्मुख होने का एक महत्वपू कारण इसके अध्ययन के प्रति लोगों की अनिच्छा है। इसके अनुयायी भी इस पद्धति को आगे बढ़ाने अवरोधक हैं। उदाहरणार्थ यदि एक वैद्य का लड़ चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान अर्जित करना चाहता है तो व हमेशा इस बात की कोशिश करेगा कि वह एलोपैथि पद्धति की शिक्षा ग्रहण करे। यदि आयुर्वेद की दिशा वह अपने लड़के को अग्रसर भी करता है तो के छात्रवृत्ति के लालच में ही। इस प्रकार वैद्य लोग दु

के लड़कों को तो आयुर्वेद पद्धति की शिक्षा ग्रहण करने की सलाह देते हैं परन्तु स्वयं अपने पुत्र को नहीं । यदि उनके लिए अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता तो ही वे अपने पुत्रों को इस पद्धति में दाखिल कराते हैं । इस संदर्भ में एक बात यह भो ज्ञातव्य है कि इस पद्धति के पढ़ने वालों की प्रतिभा एलोपैथी वालों की अपेक्षा कम होती है । ऐसी स्थिति में हम तुलनात्मक प्रगति की आशा कैसे कर सकते हैं । इसका केवल एकही उपचार है कि इसकी वास्तविक स्थिति में सुधार किया जाय ।

इसके विकासोन्मुख न होने का एक महत्वपूर्ण कारण लोकमत (Public opinion) भी है । आज एलोपैथी की प्रगति इतनी क्यों है ? क्योंकि जनमत उसके साथ है । साधारणता समाज को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है, गरीब, मध्यवर्गीय तथा पूंजीपति । गरीब तथा पूंजीपति वर्गों में आयुर्वेदिक दवाओं की कद्र अवश्य है । गरीब लोग देहाती तथा स्व निर्मित औषधियों का निर्माण करके अपने रोग को दूर कर लेते हैं और पूंजीपति लोग कीमती रस, भस्म इत्यादि का प्रयोग केवल रोग को समाप्त करने के लिए नहीं वरन् अपने स्वास्थ्य को संरक्षण प्रदान करने के लिए भी करते हैं । मध्यवर्गीय लोगों के जो कि सँख्या में सबसे अधिक होते हैं और जिनके स्वास्थ्य-सुधार तथा रोग-निवारण की समस्याओं का सर्वाधिक सामना करना पड़ता है, कष्ट निवारण में आयुर्वेद सक्षम नहीं हो पाया है । वे उन एलोपैथिक दवाओं के प्रति ज्यादे आकर्षित होते हैं जो उनके दुख को शीघ्र दूर करने में सक्षम होती हैं । इस प्रकार आयुर्वेद के प्रति अतीत की जितनी श्रद्धा थी उतनी आज के बहुलांश समाज में नहीं है । इसका एक कारण यह भी है कि आयुर्वेदिक चिकित्सक आयुर्वेदीय औषधियों को सस्ता (कम मूल्य में प्राप्य) बतलाते हैं जब कि वास्तविकता ऐसी नहीं है । यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो रस, भस्म आदि अपेक्षाकृत अधिक महंगी औषधियां हैं तथा इनका असर भी अपेक्षाकृत देर से होता है । कुछ औषधियां सस्ती अवश्य होती हैं किन्तु एलोपैथी की भी तो कुछ दवायें बहुत सस्ती होती हैं । और फिर आयुर्वेद में कुछ रोगों की दवायें तो बिल्कुल नहीं के बराबर हैं । उदाहरणार्थ यदि किसी को सिरदर्द हुआ तो ऐस्पीरिन की एक गोली ले लेता है और १५ मिनट में ठीक हो जाता है किन्तु आयुर्वेद में ऐसी कोई औषधि नहीं है । फलस्वरूप आयुर्वेद के अनुकूल जनमत न रहा ।

एक महत्वपूर्ण कारण शिक्षा-सम्बन्धी भी है । आज तक भी विभिन्न सस्थाओं के पाठ्य-क्रम में एकरूपता नहीं है । प्राचीन तथा मध्यकाल में तो पाठ्यक्रम के लिए कोई मानदण्ड बिल्कुल नहीं था । विद्वान् वैद्य अपने घर आये शिष्यों को अपनी जानकारी के अनुसार शिक्षा दिया करते थे । आज भी अध्ययन-क्रम में सिद्धान्त का बाहुल्य तथा क्रियात्मक शिक्षण का अभाव-सा है । कक्षा में तो अध्यापक चरक की चिकित्सा पढ़ाते थे, किन्तु व्यवहार में कुछ और ही पद्धति अपनाये जाने का उल्लेख मिलता है । जहां तक वेदों में उल्लिखित आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति का सम्बन्ध है, वह केवल पुस्तकीय ही रहा है, क्रियात्मक नहीं के बराबर । क्रियात्मक न होने का एक कारण यह भी है कि जिन संस्थाओं में आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती है, वहां पर आयुर्वेदिक पद्धति से सम्बन्धित अस्पतालों की व्यवस्था नहीं के बराबर है । यदि है भी तो बहुत ही कम शय्या वाले अस्पतालों की व्यवस्था है । इसके साथ ही इस चिकित्सा-पद्धति के चिकित्सकों में मनोबल एवं उत्साह की भी कमी दिखाई पड़ती है । इसका कारण यह है कि उनको एलोपैथी की भांति वेतन-मान, आवास तथा अन्य सुविधायें प्राप्त नहीं हैं ।

वैद्यों के उत्तरदायित्व से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण तथा अन्तिम कारण है—औषधि-निर्माण के मानदण्ड का सर्वथा अभाव । जहां आधुनिक चिकित्सा-पद्धति की दवायें, चाहें वे किसी भी कम्पनी द्वारा निर्मित क्यों न हो, उनका रूप, रंग, स्वाद तथा मूल्य एक जैसा होता है । लेकिन दूसरी तरफ आयुर्वेद-पद्धति से निर्मित औषधियों का रूप, रंग, स्वाद तथा मूल्य एक जैसा नहीं होता । अर्थात् भिन्न-भिन्न है । इसका एक प्रमुख कारण यह है कि बहुत कम ऐसी औषधि - निर्माण प्रयोगशालायें हैं जो कि औषधि के मानदण्ड का ख्याल रखती हो । डा० एल० वी० गुरुछ (आयुर्वेदिक फार्मेसी की वर्तमान में भूमिका नामक व्याख्यान—जिसे कि उन्होंने दिसम्बर १९७२ में कटक में दिया था) अनुसार आयुर्वेदिक औषधि विज्ञान न तो निजी उद्योग-धन्धों का ही निर्माण कर सका है और न तो विस्तृत रूप में औषधि - निर्माण के मानदण्ड को ही । "उन्होंने आगे यह भी कहा है कि औषधि निर्माण करने वाले चिकित्सक हमेशा से धनी लोगों के समर्थन तथा निर्देशन में औषधि निर्माण करते

हैं। अपेक्षाकृत दवायें अधिक महंगी पड़ती हैं। ये एक खानदानी व्यवस्था के रूप में अंगीकृत कर ली जाती हैं।'' इस प्रकार की औषधि-निर्माण की स्थिति को देखकर हम कह सकते हैं कि इस पद्धति की दवायें महंगी होने के अलावे जनहित का ध्यान कम तथा औषधि-निर्माण करने वाले पूंजीपतियों का ख्याल ज्यादा रखती है। संक्षेप में, आयुर्वेदिक औषधियों का न तो एलोपैथिक जैसा मान-दण्ड ही है और न ही इनका निर्माण गरीब जनता हित को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

अब हम आयुर्वेद के अधोन्मुख करने में सहायक दूसरे पक्ष को लेते हैं। मुगल तथा ब्रिटिश काल में इस पद्धति का पतन होना स्वाभाविक था। इसका उल्लेख ऊपर कर चुके हैं। यद्यपि ब्रिटिश शासन-काल में इस पद्धति को कायम रखने के लिए, प्रान्तीय सरकारों द्वारा आयोगों की नियुक्तियां की गयीं और कुछ प्रान्तों द्वारा उनके प्रतिवेदनों को स्वीकार भी किया गया, उदाहरणार्थ इस दिशा में मद्रास तथा बंगाल में १९२१, संयुक्त प्रांत में १९२६, पंजाब में १९३८, मैसूर में १९४२, उड़ीसा में १९४६ तथा आसाम एवं बम्बई में १९४७ में आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न कमेटियों की नियुक्तियां की गईं तथापि जब कभी आयुर्वेद-पद्धति के क्रियान्वयन की बात आई तो उसमें एलोपैथी व्यवस्था का भी समावेश किया गया। केन्द्रीय सरकार ने १९४३ में भोर कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी के सामने जब भारतीय चिकित्सा-पद्धति की बात आयी, तो उसने यह कहकर इसे ठुकरा दिया कि इस चिकित्सा-पद्धति पर विचार करने का उसके पास वक्त नहीं हैं। ज्ञातव्य है कि इस कमेटी के तीन सदस्यों ने बहुमत के प्रतिवेदन से अलग रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस कमेटी के प्रतिवेदन की केवल आयुर्वेदिक जगत् में ही नहीं वरन् आधुनिक चिकित्सा पद्धति के समर्थकों द्वारा भी सामान्य रूप से आलोचना की गयी।

भारत में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के विकास की कुछ दिशाओं पर भी विचार यहां अपेक्षित है। १९३२ में (ब्रिटिश) भारत सरकार द्वारा लेजिस्लेटिव असेम्बली में एलोपैथी सम्बन्धी एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। १९३३ में इस पर विचार किया गया। इस बिल पर

के सचिव भि० जी० एस० बाजपेयी ने असेम्बली में अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् को अपनाये जाने की दलील पेश की। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इस परिषद् की रूपरेखा ब्रिटिश जनरल मेडिकल कौंसिल के सदृश्य होगी और कहा कि यदि अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना नहीं की जाती तो भारत स्थित पाश्चात्य चिकित्सा में उत्तीर्ण स्नातकों को विदेशों में स्नातकोत्तरीय शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई होगी अर्थात् वे स्नातकोत्तर शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकेंगे। उनको नौकरी पाने में कठिनाई होगी, उनकी योग्यताओं का प्रमाणीकरण नहीं हो सकेगा अर्थात् उनका पंजीकरण नहीं हो सकेगा-इत्यादि-इत्यादि। गलत रूप से दबाव डालकर राजाओं, स्थानीय तथा प्रान्तीय सरकारों का समर्थन लिया गया तथा अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना की गयी[6]। पाश्चात्य-चिकित्सा पद्धति को भारत के जलवायु, वेश-भूषा, संस्कृति इत्यादि का ध्यान किये बगैर ही लागू कर दिया गया। दूसरी ओर आयुर्वेद, जो भारत की प्राचीनतम चिकित्सा-व्यवस्था थी, पर ध्यान नही दिया गया।

ज्ञातव्य है कि १९२१ के नागपुर के अधिवेशन में कांग्रेस ने सभी स्वदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल करने का संकल्प लिया था। उस सम्मेलन में अपने देश की ही चिकित्सा-पद्धति को अपनाने का संकल्प लिया था, कि स्वातंत्र्योतर काल में आयुर्वेद-पद्धति को अपनाया जा या नहीं यह जनहित के अनुकूल है या नहीं, इत्यादि पर विचार के लिए विभिन्न आयोगों का नियुक्त किया जा आयुर्वेद के प्रति सबसे अधिक उदासीनता का प्रमाण है

इन आयोगों की एक विशेषता यह भी है कि यद्य उनको जांच करनी थी आयुर्वेद की स्थिति और अस्ति तथापि अधिकांश परीक्षण-कर्त्ता थे, आधुनिक चिकित् पद्धति के डाक्टर। उदाहरणार्थ हम १९४६ में केन्द्री सरकार द्वारा श्री आर० एन० चोपड़ा की अध्यक्षता गठित कमेटी के प्रतिवेदन का कुछ अंश देखें। इन्टी पद्धति का स्वरूप यद्यपि पहले से ही मिलता है लेकि इस शब्द तथा पद्धति के प्रयोग की सिफारिश इस क ने की। प्राचीन तथा अर्वाचीन पद्धति का समन्वय कमेटी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया। इसके सुझावों सरकार ने स्वीकार भी किया, लगभग चौदह वर्ष

इस पद्धति के द्वारा विभिन्न महाविद्यालयों में व्यवस्था भी की गयी। यद्यपि यह व्यवस्था अब भी प्रचलित है और दिन पर दिन मजबूत होती जा रही है। तथापि इसके परिणाम और भी पेचीदा हुए। इस पद्धति से उत्तीर्ण छात्र अपने को आधुनिक डाक्टर मानने लगे हैं। सरकार के सामने उनकी मांगें प्रस्तुत होने लगीं कि उन्होंने तो आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली के पाठ्यक्रम को ८० प्रतिशत पढ़ा है और आयुर्वेद का २० ही प्रतिशत। अतः उन्हें कन्डेंस्ड कोर्स वगैरह करवाकर एम० बी० बी० एस० करवा दिया जाय। इसे भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री डा० सुशीला नायर ने भी स्वीकार किया है। स्वयं उनके शब्दों में 'सोचा' तो यह गया कि एनाटामी और कुछ को जियालाजी शिक्षा का ज्ञान कराके आयुर्वेद में छुपे रत्नों का विकास कराया जाय लेकिन परिणाम उलटा हुआ[७]।

चोपड़ा कमेटी के प्रतिवेदन प्रस्तुत होने के बाद उसके परिणाम आयुर्वेद के अनुकूल न होने के कारण इस कमेटी के सचिव श्री द्वारकानाथ ने घोर पश्चाताप किया। उन्हीं के शब्दों में "हमारा अनुमान तो यह था कि आयुर्वेद को अधिष्ठान मानकर चला जायगा और जो नवीन प्रणाली इस देश में चली है उसका संकेत एलोपैथी प्रणाली की ओर था उसको यह आयुर्वेद कैसे आत्मसात कर सकता है, इस बात पर विशेष बल दिया जायेगा। लेकिन आयुर्वेद की सर्वथा उपेक्षा हो जायेगी और एक दूसरी चिकित्सा-प्रणाली उसके ऊपर अधिकार कर लेगी, इस प्रकार का अनुमान समन्वयात्मक प्रणाली को जारी करते समय या उस प्रकार का प्रतिवेदन देते समय हमारा अपना नहीं था। अब तो स्थिति यहां तक बढ़ती जा रही है कि आयुर्वेद और एलोपैथी का जो सम्मिलित कोर्स जारी किया है उसके दुष्परिणाम इतने हो रहे हैं कि आयुर्वेद का रहा सहा क्रम भी देश में समाप्त हो जा रहा है[८]।

इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों के सदस्य लोग चुनाव का सहारा लेकर विधान मण्डलों तथा संसद में जाने लगे। वे अपने हितों के रक्षार्थ प्रतिनिधियों तथा सरकार पर गलत दबाव डालने लगे। बड़े-बड़े दिग्गज वैद्य चिकित्सकों ने इन्टीग्रेटेड चिकित्सा को भी एलोपैथिक के सदृश खतरनाक माना तथा उसके विरूद्ध आवाज उठायी।

१९४९ में डा० पण्डित की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन हुआ। उसके सुझाव पर आयुर्वेद जगत् के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य १९५३ में जामनगर संस्थान, की स्थापना द्वारा हुआ।

१९५५ में श्री दयाशंकर त्रीकमजी दवे की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन हुआ। इस कमेटी का गठन, आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक प्रणाली की शिक्षा-पद्धति के मानदण्ड को जानने, उनकी उन्नति करने तथा उनके कार्यक्रम से सम्बन्धित नियम बनाने के सन्दर्भ में किया गया। लेकिन दुर्भाग्यवश इनके प्रतिवेदन को लागू नहीं किया जा सका।

१९५८ में डा० के० एन० उडुप्पा की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन हुआ। यद्यपि इसका सुझाव इन्टीग्रेटेड पद्धति की तरफ था तथापि आयुर्वेद की प्रगति के लिए इस कमेटी ने, केरल, पूना तथा बनारस में आयुर्वेद संस्थानों की स्थापना का सुझाव दिया। इस कमेटी के प्रतिवेदन के फलस्वरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान की स्थापना की गयी। परन्तु उक्त संस्थान के भूतपूर्व निदेशक डा० प्रियव्रत शर्मा, का० हि० वि० वि० के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निर्देशन में आयुर्वेद की प्रगति होना असम्भव मानते हैं। उनका मत है कि जब से चिकित्सा विज्ञान संस्थान में आयुर्वेदीय संस्थान का विलय हुआ है तब से आयुर्वेदीय विभागों का कार्य ठप्प हो गया है। साधारण-सा भी विकास नहीं हुआ। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में सात नये विभाग खुले हैं। सारा धन उन्हीं के विकास में व्यय हो रहा है। नये-नये प्रोफेसर तथा रीडर और सामान लाया जा रहा है। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति में स्नातकोत्तर के साथ स्नातक पाठ्यक्रम भी चल रहा है किन्तु यह सुविधा आयुर्वेदीय विभागों को नहीं प्राप्त है[९]।

परन्तु इन कमेटियों की नियुक्ति से आयुर्वेद आन्दोलन शान्त नहीं हुआ, क्योंकि हजारों वर्ष से चली आ रही भारतीय चिकित्सा-पद्धति को न तो पूर्णरूपेण यथोचित सरकारी संरक्षण ही प्राप्त हुआ और न मान्यता ही मिली। राजनैतिक वैद्य नेताओं और अन्य नेताओं ने भी डटकर एलोपैथी और इन्टीग्रेटेड पद्धति का विरोध किया। सरकार पर भारतीय चिकित्सा को मान्यता, संरक्षण तथा भारतीय चिकित्सा परिषद की स्थापना के लिए दबाव डाला गया। परिणामस्वरूप १९५९ में हेल्थ

सर्वे एण्ड प्लानिंग कमेटी का डा० लक्ष्मीस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठन हुआ । कमेटी के सामने बहुत-से लोग पेश हुए और लोगों ने कहा कि आपने जो तरीका अख्तियार किया है उससे आयुर्वेद समाप्त हो जायगा । हेल्थ सर्वे कमेटी ने उनके मत को स्वीकार किया । इस कमेटी ने आयुर्वेद के प्रति निष्ठा व्यक्त की है ।

१९६७ में श्री वी० टी० ठक्कर की अध्यक्षता में आयुर्वेद के मूल्यांकन के लिए एक कमेटी की नियुक्ति हुई । बाद में जब श्री ठक्कर ने इस्तीफा दे दिया तो १९६८ में गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति श्री मोहनलाल व्यास की अध्यक्षता में इस कमेटी ने कार्य किया, फलतः इसे व्यास-कमेटी के नाम से जाना जाता है । इस कमेटी ने विभिन्न प्रान्तों की गठित कमेटियों तथ केन्द्र द्वारा गठित विभिन्न कमेटियों के प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया । यद्यपि आयुर्वेद के संदर्भ में गठित अधिकांश कमेटियों ने आयुर्वेद के अपनाये जाने के पक्ष में ही प्रतिवेदन पेश किया और सितम्बर १९७१ में केंद्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना हो जाने से अब आयुर्वेद एक मान्यता प्राप्त चिकित्सा-पद्धति है, इस पर अब कोई भी सन्देह नहीं है । परन्तु नेशनल हेल्थ सर्विस के लिए आज भी एलोपैथी को सरकारी प्रश्रय प्राप्त है, यद्यपि अब तक किसी भी प्रकार की चिकित्सा-पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है तथापि बजट की बहुत ही मामूली रकम आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति पर खर्च की जाती है । उदाहरणार्थ, प्रथम पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद की उन्नति तथा सुधार के लिए कोई भी अनुदान नहीं दिया गया । आयुर्वेद में रिसर्च के लिए ८३,३६१ रुपया, आयुर्वेद में उच्च स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए १००,०० रुपया खर्च किया गया । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जहां एलोपैथी पद्धति के लिए २२५ करोड़ रुपया खर्च किया गया वहाँ मात्र ४ करोड़ रुपया प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों के लिए दिया गया । तृतीय पंचवर्षीय योजना में ३४१-०८ करोड़ रुपया एलोपैथी पर व्यय किया गया । इसकी तुलना में मात्र ९-०२ करोड़ रुपया देशी पद्धति की चिकित्सा-प्रणालियों पर व्यय किया गया । चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ४३३,५३ करोड़ रुपया आधुनिक चिकित्सा-पद्धति पर व्यय किया गया और मात्र १५,८३ करोड़ रुपया भारतीय चिकित्सा तथा अन्य प्राचीन पद्धतियों के लिए स्वीकार किया गया ।

कहने का अर्थ यह है कि सरकारी नीतियाँ अब तक भी आधुनिक पद्धति द्वारा प्रभावित हैं और आयुर्वेद के अनुकूल नहीं है परन्तु आयुर्वेद फिर भी अग्रसर हो रहा है ।

❀ भारत में दबाव समूह एवं आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की मान्यता विषय पर शोध कर रहे हैं ।

१. देखें उडुप्पा समिति रिपोर्ट, पृष्ठ १

२. अत्रिदेव विद्यालंकार आयुर्वेद का वृहत् इतिहास १९६० पृ० ५९४

३. न० ३ के लिए देखे पृ० ४

३. लोकसभा वाद विवाद सिरीज २ अंक ४२, १९६०, पृ० ९९६४ से उद्धृत

४. सि० ३ अंक २, १९६२, पृ० ४८७५

५—दैनिक समाचार पत्र 'आज' ९ सितम्बर, १९७२ पृ० ५ के श्री अग्निवेश के निबन्ध से ।

❀—दी रौल आफ आयुर्वेदिक फार्मेसी इन प्रेजेन्टडेज कटक दिसम्बर, १९७२, पृ० ३

६- उपर्युक्त पैरा के लिए चतुर्थ (सेन्ट्रल) लेजिस्लेटिव असेम्बली डिवेट्स देखें :- पृष्ठ संख्या ५४२

७. लोकसभा डिवेट्स तृ० स० अंक २, १९६२, पृष्ठ ४८७७

८. उक्त पंक्ति दिल्ली आयुर्वेद महासम्मेलन विद्यापीठ के महाविद्यालय में श्री द्वारकानाथ ने दिया जिसका उल्लेख श्री प्रकाशवीर शास्त्री के लोकसभा में दिये गये भाषण से प्राप्त है ।

९. आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ६, पृ० ३६

१०. इसे तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृतकौर ने आयुर्वेदिक संस्थान के लिए माँगे गये अनुदान के सदृश उत्तर देते समय स्वीकार किया । देखें लोकसभा डिवेट्स, १९५५, अंक ५, भाग २, पृ० ४७६

सरस आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्न—

सिद्ध भैषज्यमंजूषा

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

सिद्ध भैषज्यमञ्जूषा राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्रस्थ रामगढ़ नगर निवासी वैद्यराज कविराज श्री जयदेव शास्त्री की साहित्य परक सरस आयुर्वेदिक उत्कृष्ट कृति है। इसका प्रथम प्रकाशन काल सन् १९३२ है।

वैद्यजीवन में जहाँ अश्लीलता, सिद्धभेषज-मणिमाला में जहां क्लिष्टता है वहां सिद्धभैषज्यमञ्जूषा में सरलता व माधुर्य के साथ-साथ प्रसाद गुण की अभीष्ट व्यंजना विद्यमान है। तब ही तो कविराज श्री प्रताप सिंह जी ने कहा था—

ये मोदा जयदेवगीतिषु मता लोलिम्बराजोक्तिषु
श्रीकृष्णाख्यकवेः सदुक्तिषु च ये काव्यामृतोत्था रसाः।
रोचन्ते खलु ते समेऽत्र सरला योगाश्च शैली नवा
तत्केषां न मनो विनोदयति भो भैषज्यमञ्जूषिका॥

संस्कृत साहित्य में जो स्थान गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव को प्राप्त है वही स्थान आयुर्वेद में सिद्धभैषज्यमञ्जूषा के रचयिता जयदेव शास्त्री ने प्राप्त किया है—इसमें तनिक सन्देह नहीं है। श्री सत्यनारायण शास्त्री के शब्द देखिये—

वैद्य श्री जयदेव शास्त्रिकविता प्रोद्वीक्षणेन क्षणात्
स्मर्तव्यैकपथानिरेति जयदेवो गीतगोविन्दकृत्।

यहाँ तक कि श्री राजेश्वर दत्त मिश्र ने तो इन जयदेव जी की कवित्व शक्ति एवं इसी ग्रंथ के टीकाकार श्री हनुमत्प्रसाद शास्त्री के पांडित्य को देखकर इन्हें कालिदास व मल्लिनाथ की योग्यता से अलङ्कृत किया है—

अत्रोभयोः पांडित्यं कालिदास-मल्लिनाथ योर्योग्यतामनुकरोति'

आयुर्वेदोक्त पंचकषाय कल्पना को कवि ने किस प्रकार एक श्लोक में ही व्यक्त कर दिया है—

गुडूचीस्वरसो निम्बकल्को धान्यकजो हिमः।
तिक्ताफाण्टः पर्पटस्य क्वाथः पित्तज्वरापहः॥

भगवान् चरक के इस उपदेश को—

भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् धर्ममनुत्तमम्॥
चरक० चि० १।४।५६

ध्यान में रखते हुए आतुर के प्रति कितनी आत्मीयता से वैद्यराज नजर आते हैं—

सखे! दुर्नामदुःखानि दूरीकर्तुं यदिच्छति।
तदा वृष्यं विबन्धघ्नं मृद्वीकापायसं पिब॥

दुर्वादाडिमकुसुमस्वरसो नासासु योजितः पुंसाम्।
शमयति शोणितसरणं पुनरूपकरणं किमिच्छसि भ्रातः
रसय कुसुमसारैर्दग्ध्रम यूरपक्षं
प्रियवर! गुरुहिक्काछर्दि विच्छेददक्षम्॥

प्रसिद्ध कनक सुन्दर रस की प्रमुख कर्त्तव्यता देखते ही बनती है—

नित्यमश्नाति यो मासं रसं कनकसुन्दरम्।
कासो दासो भवेत्तस्य ग्रहणी गृहणी भवेत्॥

एक श्लोक में ही सम्पूर्ण औषध व्यवस्था की शैली कितनी लुभावनी है—

कल्ये काञ्चनपर्पटी कवलयन्कृष्णानुगामाक्षिकं—
मध्याह्ने मधुना प्रवालमसितं सायं त्वयः पर्पटीम्।
आज क्षीरकलाशनो विजयते स्नेहाक्तदेहो जनः
पाण्डुश्वासचिर ज्वरग्रहनिकायक्ष्मप्रमेहामयान्॥

प्राणवह स्रोतोदुष्टि चिकित्सा में भगवान् चरक का निर्देश है—

प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टानां श्वासिकी क्रिया।
कार्या तृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी॥
चरक० वि० ५।२६

एतावता यक्ष्माधिकार में द्राक्षासव एवं क्षार की उपयोगिता प्रकट करते हुए कवि कहता है—

यथा द्राक्षासवः सद्यः प्राणमार्गं विशोधयेत्।
तथाऽटरूषकक्षारो वक्षः स्रोतो विशोधनः॥

अनागतबाधाप्रतिषेध के लिए भी कवि कहे बिना नहीं रहता है—

विष्णोर्नामसहस्रं जपतः शंका कुतो ज्वरातङ्कात् ।
तस्य कथं ज्वरभीतिर्यस्य च शम्भोः पदे प्रीतिः ॥

शुचिः सत्यवाक् सत्ववान्स प्रयत्नो
निवृत्तामिषो वीतमद्यो जितात्मा ।
हितं योऽश्नुते हृद्यमन्नं च मेध्यं
स ना युज्यते नैव मस्तिष्करोगैः ॥

यहाँ तक कि सामान्य जनता में प्रचलित सोडा-वाटर, सिकञ्जी, चाय आदि को भी ग्रंथ में समुचित स्थान दिया गया है। छर्दिरोगोपचार में कहा गया है—

पोदीनार्को देवपुष्पस्य वाऽर्को
मिश्रेयार्कः श्वेत जीरोद्भवार्कः ।
एला क्षोद श्चेतसो वा प्रमोदः
सोडावारिच्छर्दि रोगापहारि ॥

कई 'मुष्टियोग' 'सिद्ध योग' 'अनुभूतयोग' 'मौलिक योग' आदि का इस प्रकार समावेश किया गया है कि मानो गागर में सागर भर दिया हो। 'ब्राह्मी वटी' 'विषूचीमञ्जन' 'ज्वरसंहार रस' 'शान्तिवर्धक चूर्ण' व 'चेतः प्रसाद चूर्ण' आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जिनसे स्वतः यह ग्रंथ आयुर्वेद के उत्कृष्ट ग्रंथों में प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेता है। कवि का निवेदन वस्तुतः ग्राह्य है—

अल्पिष्ठाप्यर्थभूयिष्ठा गरिष्ठा योगतल्लजैः ।
श्लोकैः श्रेष्ठाः गुनैः प्रेष्ठा तत्प्रतिष्ठाप्यतां बुधैः ॥

साहित्यपूरित होने से यह ग्रन्थ ललित काव्यकला की रमणीयता से ओतप्रोत हो गया है। एक बार पढ़ लेने के बाद भी बारम्बार पढ़ने को जी करता है। हर बार नूतनता का स्फुरण होता है। नवीनता की यह अनुभूति उसकी रमणीयता का महत्तम प्रमाण है—

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥
—शिशुपाल बध ४।१७

टीकाकार श्री हनुमत्प्रसाद शास्त्री ने कवि की अनुप्रासप्रियता के सम्बन्ध में बार-बार लिखा है—'अनुप्रासस्तु कवेरस्य दास एवं कवेरस्य कृतावनुप्रासं विना पदविन्यास एव न' इत्यादि। प्रभावित होकर आयुर्वेद-मार्तण्ड श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी ने कहा—

'पद्यरचनाचातुरी समाख्याति प्रणेतुः कवित्त्वशक्ति
प्रायोऽनुप्रासवती पद्यपङ्क्तिश्चमत्करोति चित्तम् ।'

वृत्यानुप्रास की छटा देखिए तो—

केवला कटुका शल्ये कीलालैः कवलीकृता ।
कामलायाः कदम्बस्य कोटिकष्टानि कालयेत् ॥

और—

कुलमिव कलादृग्निः कद्रुवपत्यानि केकी
कलिमलमिव कृष्णः कक्षकूटं कृशानुः ।
क्रिमिकुलमिव काकः कम्बलानीव कीटः
कवलयति कुबेरः कौतुकात्कीटकोटिम् ॥
(कुबेरः—खुरासानी अजवाइन)

यमक—

षड्ग्रन्था यत्नतोऽभ्यस्ता ददते बुद्धिमुत्तमाम् ।
षड्ग्रन्था यत्नतोऽभ्यस्ता ददते बुद्धिमुत्तमाम् ॥

(१ षड्ग्रन्था— सांख्य-न्याय-वैशेषिक— योग पू
मीमांसा-उत्तरमीमांसा ये छ दर्शन ग्रन्थ २. ष
ग्रन्था—वचा)

वक्रोक्ति अलङ्कार की परिभाषा में विश्वना
लिखते हैं—

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यति ।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा
—साहित्यदर्पण १०।९

श्लेष वक्रोक्ति का उदाहरण यहाँ रोगिपुत्र औ
वैद्य के सम्भाषण द्वारा देखने योग्य है—

हे प्राणेश्वरः ! वैद्य । मेऽद्य जनको दुर्नामदुःखाकुलो द
पायय हे सखे ! शिखरिणं शैलोऽपि किं पीयते ।
रे रे मित्र ! मयूरकं प्रकथये, बर्हीं न भक्ष्यो नृणां
रे रे मर्कटिकां ब्रवीमि, विदितः सम्प्रत्ययपामार्गकः

सभी छन्द ललित भाषाबद्ध होने से गेय हैं। गज
गीतिका, रसिकजनमनोहारिणी गीतिका आदि प
को वैद्यसभाओं में यदि गाया जाय तो परमानन्द
प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि साहित्य व संगीत
अन्योन्याश्रिता के लिए कहा गया है—

'संगीत और साहित्य दोनों ही एक-दूसरे के नि
अधूरे हैं। साहित्य साकार ब्रह्म है और संगीत नि
कार। दोनों का समन्वय ही परमानन्द देनेवाला है।
—देवी सिद्धेश्वरी

राजशेखर ने लौकिक और अलौकिक (चिन्तामणि) कवियों के दो भेद किये हैं। स्थान - स्थान पर विचित्र योजनाओं के द्वारा शुष्कविषय को भी रस से परिपूर्ण कर दिया है और वाचक कह उठता है—

'अब न आँखितर आवत कोऊ।'

अतः कवि ने चिन्तामणि का भी पद प्राप्त किया है—यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। लौकिक कवियों के चार भेद कहे हैं—

भ्रामकश्चुम्बकः किञ्च कर्षको द्रावकश्च सः।
स कवि लौकिकोऽन्यस्तु चिन्तामणिर लौकिकः॥
—काव्यमीमांसा पृ० ६४

यद्यपि अन्यकृत रचनाओं को भी कवि ने ज्यों का त्यों स्थान देकर भ्रामक लौकिक कवि का भी संदेह उपस्थित कर दिया है। किन्तु यह संदेह कवि के इस वाक्य से दूर हो जाता है, क्योंकि वह मौलिकता का ढोंग नहीं रचता है—

सिद्धा योगाः कीर्तिता ये प्रत्नतूत्नचिकित्सकैः।
तेषां संग्रहणायैव मञ्जूषेयं विरच्यते॥

अतः पढ़ने वाला वस्तुतः कह उठता है—

'अन्यास्ता गृहभूषा मञ्जूषा कण्ठभूषासौ।'

और कवि के ही शब्दों में अपनी भी सम्मति दिये बिना नहीं रह सकता—

'कटुकषायरसा अपि माधुरी
मुपगताः खलु यत्र विभान्ति ताम्।
सुरसिका रसयन्तु सुधास्रुति
रसवतीं जयदेवसरस्वतीम्॥'

बैद्यनाथ
दन्तमंजन
लाल, काला और सफेद
इन मंजनों के रोजाना
व्यवहार से दाँत चमकीले
मुँह दुर्गन्ध-रहित और
मसूढ़े मजबूत रहते हैं
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता-६

NECESSITY OF SEARCH AND RESEARCH IN RASASASTRA

Dr. N. Ganga Satyam
Lecturer, Department of Rastantra,
Government Ayurvedic College,
Hyderabad (A. P.)

As mercury causes acute and Chronic poisoning in the human being, it found its place more in toxicology than in medicine in modern system of medicine. The situation is entirely defferent with Ayurvedic system of medicine wherein the number of mercurial preparations is in thousands. There may be hardly few Ayurvedic Physicians who do not use these 'Rasaushadhis' (mercurial preparations) safely (except few quacks).

The bulky dose, the slow effect and the distaste of herbal medicines necessitated to find-out some drugs which act rapidly even if they are administered in smaller dose. This search was fulfilled after the Rasa (mercury) was found with its multiple uses.

Rasasastra consists of not only Rasa but also maharasas, Sadharanrasas, Uparasas, Dhatus, Ratnas, and Vishas etc. Rasasastra was developed to its greater heights by many of the Siddhas of whom Govindabhagavatpadacharya (the Guru of Adishankaracharya) and Acharya Nagarjuna etc. are important.

Though Rasasastragyas developed Rasasastra systematically, today we are not aware of the methods and principles based upon which they could develope this science to this extent. Therefore the present state is so peculiar that the Ayurvedic physicians are using the Rasaushadhis (mercurial preparations), say knowing only partly, the scientific base behind them. The gyana of Siddhas and Rishis was so pure that they could present the Rasasastra in such a simple manner that even with a simple effort one canuse them very safely. But as the scintific base is not understood thoroughly, the science of Rasasatra is not progressing at present and almost stagnated completely. We can say that newly invented Rasaushadhis are almost very few and the whole treatment by Rasaushdhis is depended upon the remedies only mentioned in the old text books. This state of affair gives rise to the necessity of searching valuable scientific principles already mentioned in the Rasagranthas and research for the future progress of Rasasastra.

This task can be undetaken by following a few methods Montioned below :—

The search and research in Rasasastra can be divided into three main headings :—

1. Literature
2. Laboratory or Rasashala work,
3. Animal experiments and clinical trials.

1. Literature

This again can be classified into two—
(1) Text book and (2) Referene work

1. Text Book :

To be very frank even though there is a good number of books available in Rasasastra, we cannot find any single book covering the whole portion which a student is expected to study at an undergraduate level. The subject matter dealing with many points is scattered in various texts written in the past. The student cannot extract the necessary matter from those voluminous works. Even for an intelligent and hardworking student tt will be a waste of time to go through all the books to extract the necessary matter. The second difficulty in this is (which is with Ayurveda itself now) that some books of Rasasastra are not available even in the Libraries for the use of Lecturers and Professors in the institutions, and many of the books even out of print.

Therefore it will be better if a text-book can be written covering all the points in the syllabus at an undergraduate level. This can be effectively done at the Central level. The matter of the text-book will be originally in Sanskrit and the translations can be made into the languages, of the different states. Care should be taken in selecting the mater in such a way that it should not only have informative or theoritical value, but also it should be quite practical, simple and within the reach of a student and the common physician in his practice.

In literary work the second half which deals with the reference work can be divided into two main groups again—

(a) The first one pertaining to the whole knowledge about Dravyas, Paribhasha, Putas, Yantras, Parada and its samskaras etc.

(b) The second one deals with the Ocean of Rasayogas (mercurial Preparations). We are fortunate that this part of work has been successfully completed and published by Shri Hariprapannaji in the form of a book, "Rasayogasagara." Therefore excluding this work collective efforts should be put (as individual effort will cause too much delay to complete the whole matter which is scattered in different Rasagranthas), in an orderly manner, avoiding the repetitions. In the post-graduate institution of Jamnagar this kind of work has been going on since about two decades. It would be better if such kind of work is completed as early as possible and the whole matter should be published in some volumes so as to become a thorough reference work almost in the form of an encyclopaedia.

(2) Rasashala and Laboratory Work :

The toughest job beginswith this part of work, the first one being somewhat easier to some extent. The difficulty starts immediately as the whole methodology upon which the Rasasastra was developed, is almost lost. Therefore we have to depend upon the Aaptavachana that is the statements & findings of Rishis and Siddhas-Nodoubt the knowledge discovered by the Rishis and Siddhas is unquestionable (therefore even in this space age Ayurveda is able to withstand to the tunes of the time) but we cannot find the Saints and sages of olden spirit in the present society. Therefore the only way left at the disposal is to adopt some methods to enable us to know the scientific principles of Rasasastra (even Ayurveda as whole), so that the scientific progress will become alive once again. For this, different branches of modern science will certainly be helpful. Same way in the third part of the research also,, that is the clinical trails, along with Ayurvedic investigations, modern clinical investigations also should be undertaken to ascertain the matters. Therefore it is aptly said by a famous Rasasastri Dr. D A, Kulkarni, that for the research of Rasasastra a unit containing the Vaidyas, Doctors and Scientists is absolutely necessary. With the above set-up in the Rasashala (or Laboratory) the following details should be worked out ;

(1) Dravyanishchaya : (2) Dravya Shodhana, (3) Dravyamarana (4) Satvapatana, (5) Rasa and its Samskaras etc.

(1) Dravyanischaya :

Based upon ancient and modern knowledge the superior variety of each dravya of Rasasastra should be ascertained. The specimens of different varieties of each dravya should be secured and preserved to avoid the doubtful knowledge. The methods of ascertaining Sreshthadravya should be confirmed. The doubtful and impracticable methods should be omitted, With what name the dravya is recognised in modern science and the source of availability also should be known as it is not clearly known about some of the Rasadravyas to-day.

(2, Dravyasodhana :

Different methods of dravyasodhana are available in the texts. The Ayurvedic Physicians now are simply following some of the traditional methods. Ashodhita dravya is prohibited from use in the texts. Therefore it should be known that what are the impurities that cause the poisonous symptoms in a dravya? How their quantity in a dravya can be determined? Which method of purification removes what dosha? Which method can remove all the doshas of a dravya? After a dravya is purified how can it be ascertained that it is purified? What are t dravyasodhana methods which add som more qualities of theraputic value to t dravyas? How many times it should b purified for complete purification? Whic methods are most reliable and which can b discarded?

(3) Dravyamarana :

Though there are putas for the maran of each dravya it should be correctly esti mated that at how much heat a dravya be comes mritha. How many putas are requi red for marana of a dravya? Whether th change of fuel like cowdung cakes t firewood, Coal, Electricity etc., will effec the genuinity of the bhasma or not? I effects in what way? What will be the diffe rence in using different dravyas and drava in marana? According to the modern scienc whether the mritha dravya contains any qua lities of muladravya or nct? The easier and effective methods should find their places especially in the text books.

(4) Satvapatana :

So also different methods of Satvapa tana should be tried and it should be exami ned whether the Suddha Dhatu only wi come out or anything also will be there along with the main dhatu? At how muc heat the Satvapatana takes place in diffe rent dhatus.

(5) Rasa and Its Samskaras :

Rasa (Mercury) contains doshas lik Naisargika and Kanchuka. In Somany Sodhana of Rasa whether these doshas wi be removed or not? If removed to what ext ent? What is the difference between th removal of doshas by somanyasodhana an Samskaras? What is the role of each drav used in Sodhana?

In Samskaras what changes take place after each Samskara? How? How the GUNOTKARSHA takes place in Rasa? What is the mechanism of Jarana? Is it possible to explain it by modern Chemistry?

In still advanced research of samskaras it should be ascertained what are the ashtadasa samskaras ? Is it possible to change the Rasa into Gold ? If so does it stand to the tests of modern science ? How the dhatus like Rajatha Tamra, etc., will become Uttamalohas ? What are the Rasayanaguanas of Rasa to which ashtadasa Samskaras are done ? What is the change that takes place after each samskara and what is the role of each dravya used in different samskaras ? and so on.

3. Animal Experiments and Clinical Trials :

In animal experiments the poisonous effects of Ashodhita dravyas should be studied in relation to tridosha siddhanta and biochemical changes, as it is difficult to study upon human beings. So also the different changes in dravyas while doing sodhana and marana also can be studied upon animals.

In clincial trials of different prepared bhasmas etc., the resluts should be noted carefully. Generally in some places in the texts it seems there is some exaggeration in the description of the uses. Effects which are seen practically can be recorded and the remaining can be put to further research. This saves a student or practitioner from constant observation of each clinical effect of a dravya which causes unnecessary wastage of time and energy. This will also infuse the confidence and belief in a practitioner or a new graduate.

Rasa-Yogas and Proportion of three contents

Rasayogas generally used contain different dravyas in different proportions. Though the role of some of the dravyas in a Yoga can be explained partly, the purpose of all the dravyas is a yoga is not so easy to understand. In this connection it can be said that it is beyond the thinking capacity, why certain dravyas are included in a yoga and why they are put to bhavana and mardana by different specific swarasas and kashayas etc. Therefore a major problem will arise as how to explain this. So it should be studied deeply what is the relation in between the different proportoins of dravyas and their bhavanas and mardanas. The condition of Dosha-dushya sombandha in each disease and the proportions of the dravyas of a yoga have to be carefully studied in this regard. The usage of yogas according to desa, kala, prakrithi, etc., also will help in studying the proportions. If this can be understood thoroughly it will become easier to prepare the new formulae. All this will be better if it can be established by clinical trials.

Lastly, many yantras and instruments are being prepared in quite old fashion. Efforts should be put to prepare new and attractive instruments without disturbing their scientific values.

As the Rasasastra is the ocean of medicine the search and research becomes endless. But at the same time, countless valuable things will come out time to time, and the famous saying.

'Siddhe Rase Karishyami Nirdaridryamidam Jagat' will become true.in its sense.

वनस्पति विवेचन

श्योनाक और शुकनासा

वैद्य मायाराम उनियाल

रिसर्च अफसर, रिजनल रिसर्च सेन्टर,
जोगिन्दर नगर (हि० प्र०)

श्योनाक और शुकनासा पर्यायवाची शब्द हैं या भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं, इसमें विद्वानों का मतभेद है, कुछ लोग श्योनाक का पर्यायवाची शब्द शुकनासा को मानते हैं, लेकिन ठा० बलवन्त सिंह जी ने श्योनाक से भिन्न द्रव्य शुकनासा को स्वीकार किया है।

मध्यकालीन निघण्टु ग्रंथों में भी शुकनासा को श्योनाक का पर्यायवाची माना है। श्योनाक से भिन्न द्रव्य शुकनासा है शीर्षक लेख में। इस विषय पर प्रकाश डाला गया है जिसका कि विवेचन वनस्पति-विशेषज्ञ ठा० बलवन्त सिंह जी ने 'ग्लासरी आफ भेजिटेबुल ड्रग इन वृद्धत्रयी' में स्पष्ट किया है।

चरक संहिता में यद्यपि श्योनाक, टुण्डुक, कटंवंग आदि शब्द संदर्भ-स्थलों में आयें हैं। परन्तु शुकनासा शब्द का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं आया है। सुश्रुत-संहिता, अष्टांङ्ग-हृदय, अष्टांङ्ग संग्रह आदि ग्रंथों में शुकनासा, शुकाख्या, शुकाह्वाया, नटिका आदि पर्यायवाची शब्द आयें हैं जो कि शुकनासा के ही बोधक हैं। शुकनासा के शाब्दिक अर्थ के आधार पर 'शुकस्य मासेव फलं अस्य' के अर्थ विशेष से शुकनासा नामक द्रव्य का फल तोते के नासा सदृश अग्रभाग नुकीला एवं वर्ण में रक्ताभ हरित होना चाहिए जो कि श्योनाक की फली में नहीं हैं। इसके अतिरिक्त शुकनासा के आमयिक प्रयोगों के स्थलों का अध्ययन करने से मालूम होता है कि यह तीव्र वामक, विरेचक, विषघ्न एवं व्रणशोधक द्रव्य होना चाहिए। जबकि श्योनाक शीत प्रशमन, दीपनीय, एवं वातशामक, संग्राहिक गुणों वाला है, अतः यह सन्देह स्वाभाविक है कि शुकनासा श्योनाक से भिन्न द्रव्य हैं?' दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि श्योनाक से भिन्न द्रव्य शुकनासा है तो शास्त्रीय शुकनासा क्या हो सकता है जिसका कि गहन-विवेचन, आमयिक प्रयोग, वानस्पतिक विवरण इस लेख में दिया गया है।

अष्टाङ्ग हृदय[1] के उत्तर तन्त्र, अध्याय ३० में शुकनासा के लिये नहिका शब्द आया है जिसका कि शिवदास सेन आदि टीकाकारों ने 'नहिका शुकनासा इति' यह अर्थ किया है एवं ग्रंथीअर्बुद चिकित्सा में नहिका शब्द से शुकनासा फल के उपयोग का संकेत किया है, शोढल निघण्टुकार ने भी नादी शब्द से शुकनासा अर्थ किया है. एवं इस द्रव्य को शाकीय जाति का तिक्त गुण प्रधान द्रव्य स्वीकार किया है, अतः स्थानिक नामों एवं प्रयोगों के आधार पर शास्त्रीय शुकनासा कुक्कर—विटेसी कुल Corallocarpus epigaeus Benth. Hook. f. नामक शाक है जिसे कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कीरकन्द (मध्य प्रदेश), मिरचाकन्द (ग्वालियर), मिरचिड़ी-कागड़ा (हिमाचल प्रदेश), बम्बई में कटुनाही, मराठी में नरकीचा, एवं हिन्दी में नाहीकन्द कहते हैं।

शालिग्रामनिघण्टुकार[3] ने भी शुकनासा के लिये कीरनाशन नामक शब्द का उल्लेख किया है। स्थानिक प्रयोगों के आधार पर विशेषकर हिमाचल प्रदेश में (काँगड़ा) मध्यप्रदेश पंचमढी, शिवपुरी, ग्वालियर, गुजरात, आदि स्थानों के ग्रामीण लोग मूल एवं फलों का उपयोग सर्पविष, में विशेष रूप से करते हैं। इन लोगों को कहना है कि इसका मूल तीव्रविषघ्न एवं व्रणरोपक है, शास्त्रीय शुकनासा का आकृतिकवर्णन[४] निम्न प्रकार से है।

द्रव्यनामः संस्कृत … शुकनासा, शुकाख्या, नहिका,
स्थानिक ‥ हिमाचलप्रदेश---काँगड़ा मरचिड़ी
मध्यप्रदेश…ग्वालियर, पंचमढी, शिवपुरी,
मिरचियाकन्द, कीरकन्द,
गुजराती —नाढ्ढीकन्द,

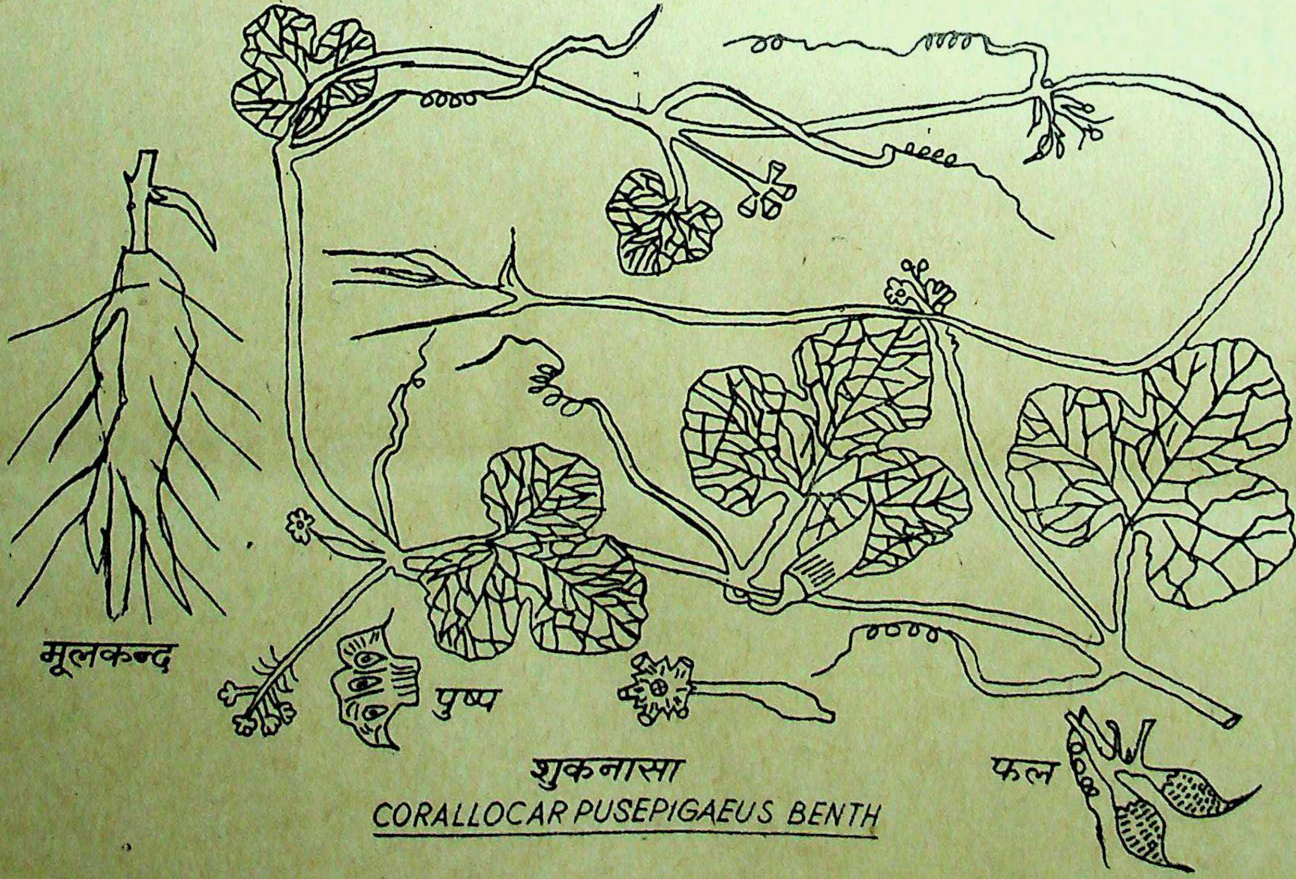
मूलकन्द
पुष्प
फल

शुकनासा

CORALLOCAR PUSEPIGAEUS BENTH

राजस्थानी—कटुनाही,

हिन्दीनाम—नाहीकन्द कटुनाही,

लैटिन नाम—Corallocarpus epigous Benth, Hook, Natural order (No) Cucurbitaceae. कुल

आकृतिकवर्णन :—यह परिसृत या आरोही शाकीय पौधा है, मूलकन्द-मूली के सदृश मोटा एवं धीरे-धीरे नीचे की ओर पतला तथा आभ्यन्तर से चिपचिपा एवं स्वाद में तिक्त होता है। पत्र ३/४" ३" तक लम्बे गहरे तीन चार खण्डों में विभक्त नोकदार, पत्र सतह खुरदरा, मृदुरोमिल एवं सवृन्त होते हैं।

पुष्प—हरित पीताभ वर्ण के, फल-पकने पर तोते की नासा सदृश (stalked) पकने पर नारंगी या लालरंग का एवं फल का अग्रभाग तीक्ष्णाग्र होता है। बीज संख्या में ६ चिकने अनार सदृश एवं स्वाद में ये फल कटु होते हैं इसीलिये इसे कटुनाही कहते हैं। रस भेद से इसकी दो जातियाँ मानी जाती हैं। मधुर रसवाली तथा कटुतिक्त रसवाली। कटु रसवाली को ही ग्रामीण लोग कटुनाही कहते हैं एवं यह मिर्च के समान फल रक्तवर्ण होने से इसे मिरचिड़ी या मिरचियाकन्द कहते हैं। जो कि गुणों के आधार पर वामक, विरेचक व विषघ्न हैं।

पुष्पकाल—जून, जुलाई

फलकाल—अगस्त,

प्रयोज्य अंग—मूलकन्द, फल, पत्र।

प्राप्तिस्थान—यह पंजाब, सिन्धु, राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश, सहारनपुर, देहरादून, मध्यप्रदेश (ग्वालियर), पंचमढी, शिवपुरी, हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा, नूरपुर, मुबारकपुर आदि स्थानों के उष्णभागों में कहीं-कहीं वर्षाकाल में उपलब्ध है एवं अन्य प्रदेशों में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं।

ग्रामीणप्रयोग (किम्बदन्ती)—स्थानीय ग्रामीण लोग मूलकन्द एवं फल को २ तोले की मात्रा में जल के साथ सर्पदंश में देते हैं, एवं लालमिर्च के साथ घिसकर सर्पदंश वाले स्थान पर लेप करते हैं, कांगड़ा निवासी वैद्यों का कहना है कि शुकनासा (मरिचिड़ी) के मूल व फल चूर्ण को जल के साथ देने पर तीव्र रेचन व वमन होता है अतः सर्प-विष पर इस बूटी का उपयोग हितकर है।

[५]श्रीयुत् डा० सत्यपाल वर्मा का कहना है कि शिवपुरी, पंचमढ़ी (मध्यप्रदेश) के लोग बड़े साहस के साथ मिरचीकन्द (शुकनासा) द्वारा सर्पदंश की चिकित्सा करते हैं। श्रीयुत् वैद्य बापालालजी शाह ने नाहीकन्द (शुकनासा) के मूल को सर्पविष एवं जाङ्गमविषों की चिकित्सा में विशेष उपयोगी माना है, श्री [६]बापालाल जी का अपना अनुभव है कि कड़वी नहीं को बड़ी मात्रा में जल के साथ घिस कर पिला देने से वमन एवं विरेचन होकर विष निकल जाता है, इसके अतिरिक्त नाहीकन्द का उपयोग जीर्णश्वास, पाण्डु, अर्बुद एवं व्रणशोथ में प्रयोग करने से लाभ होता है।

श्योनाक एवं शुकनासा के गुणधर्मों की पृथक्-पृथक् विभेदक तालिका इस प्रकार है—

	श्योनाक	शुकनासा,
१. रस—	ईषत्कषाय	कटु, तिक्त,
२. वीर्य—	शीत	उष्ण,
३. प्रभाव—	शोथघ्न	वामक, रेचक, विषघ्न,
४. कर्म—	श्लेष्महर, पुरीषसंग्रहणीय, दीपन पाचनीय	शोथहर, विषघ्न, कुष्ठघ्न
५. प्रयोग—	अतिसार ग्रहणी, वात व्याधि एवं आमवात नाशक,	सर्पदंश विषनाशक लूतामूषिक विषनाशक, व्रणशोधक, शोथहर, एवं जीर्ण श्वास नाशक

संहिता ग्रन्थों में शुकनासा के आमयिक प्रयोग के सन्दर्भस्थल

[७] सुश्रुत संहिता में शुकनासा का पाठ कटुकादि वर्ग में आया है। इस स्थल पर डल्हणाचार्य ने शुकनासा से श्योनाक अर्थ किया है। [८]व्रण चिकित्सा में शुकनासा के पत्रों का उपयोग डल्हणाचार्य ने इस स्थल पर शुकनासा से 'चर्मकारवटः' यह अर्थ किया है। सम्भवतः टीकाकार का अभिप्राय Ficuskrishnae Dc. के उपयोग करने के लिए हो, जिसका वृक्ष बगीचों में लगाया हुआ पाया जाता है। [९]विसर्प एवं नाड़ीव्रण चिकित्सा में शुकनासा का प्रयोग। [१०]उपदंश एवं श्लीपद चिकित्सा में शुकनासा का उपयोग।

[११]पाण्डुरोग चिकित्सा में शुकाख्या नामक द्रव्य का उपयोग, डल्हणाचार्य ने इस स्थल पर शुकाख्या शब्द से चर्मकारवटः यह अर्थ किया है।

[12]श्वासहर योग के सुवहादिघृत में शुकाख्या नामक द्रव्य का उपयोग । इस स्थल पर शुकाख्या शब्द से 'शुकशिम्बा' यह अर्थ डल्हणाचार्य ने किया है ।

[13]ग्रन्थिअर्बुद चिकित्सा में शुकाह्वा नामक द्रव्य का उपयोग ।

[14]सद्योव्रण चिकित्सा में शुकाख्या नामक द्रव्य का उपयोग ।

[15]मूषिक विष चिकित्सा में वमन हेतु शुकाख्या नामक द्रव्य का उपयोग ।

[16]पाण्डुरोग चिकित्सा में शुकाख्या (शुकनासा) नामक द्रव्य का उपयोग ।

[17]अष्टांहृदयकार ने भी कतिपय स्थलों पर शुकनासा, शुकाख्या आदि शब्दों का प्रयोग किया है । यथा—कफज गलगण्ड चिकित्सा में शुकाह्वा शब्द का प्रयोग किया है । शिवदास सेन ने इस स्थल पर शुकाह्वा शब्द से चर्मकारवटः या कैवर्त मुस्ता यह अर्थ किया है ।

[18]गण्डमाला नाशक गुञ्जाद्ययतैल योग में नहिका (शुकनासा) नामक द्रव्य का उपयोग ।

[19]मूषिक विष चिकित्सा में शुकाख्या (शुकनासा) फल के द्वारा वमन कराना ।

[20]कीटदंश चिकित्सा में शुकनासा नामक द्रव्य का उपयोग ।

[21]मूषिक एवं अलर्क विष चिकित्सा में शुकाख्या नामक द्रव्य का उपयोग ।

[22]पाण्डुचिकित्सा में गुडूची, अभीरु एवं शुकनासा आदि द्रव्यों का उपयोग ।

[23]अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी कई स्थलों पर शुकनासा, शुकाख्या, शुकाह्वाया आदि शब्दों का उल्लेख किया है, यथा—कफ प्रधान कुष्ठ चिकित्सा में बृहत्तीहय, काकमाची, शुकनासा आदि द्रव्यों के क्वाथ से साधित घृत का उपयोग ।

[24]कुष्ठ चिकित्सा के योगराज रसायन में शुकनासा का उपयोग ।

[25]श्वित्र चिकित्सा के मूत्रिका रसक्रिया के योग में शुकनासा आदि द्रव्यों का लेप ।

[26]वातव्याधि चिकित्सा में सोंठ, चित्रक भार्गी, शुकनासा, आदि से साधित घृत का उपयोग ।

[illegible] चिकित्सा में शुकनासा अज-

गन्धा, गुंजाफल कटुका, अलावु आदि द्रव्यों का ले

उपयोगी है ।

[28]श्लीपद, अपची चिकित्सा में काकजंधा, काकादन्ती, शुकनासा, कदम्बपुष्प आदि द्रव्यों द्वारा उपयोग।

[29]नाड़ीव्रण-चिकित्सा में धत्तूरादि चूर्ण को तैल के साथ मिलाकर लेप करने से लाभ होता है ।

[30]वातजन्य व्यङ्गों में देवदारू, धमासा, मञ्जीष्ठा, मूर्वा शुकनासा आदि द्रव्यों का उपयोग हितकारी है।

[31]योनिरोग चिकित्सा में शतावरी, त्रिफला, हरिद्रा, शुकनासा आदि द्रव्यों से साधित घृत का उपयोग।

[32]विषनाशक योग में दंश आदि स्थानों पर शुकनासा का लेप ।

[33]हरताल विष के रोगी को शुकनासा अतिविषा, व्याघ्री, जालिनी आदि द्रव्यों द्वारा वमन, विरेचन करना।

[34]बहुविष वाले रोगी को इन्द्रयव, पटोलफल मदनफल एवं शुकनासा आदि द्रव्यों द्वारा वमन करान लाभदायक है ।

[35]राजयक्ष्मा की चिकित्सा में चित्रक' भल्लातक, शुकाख्या आदि द्रव्यों द्वारा साधित घृत का उपयोग ।

[36]सर्पविष चिकित्सा में शुकाह्वा, जालिनी, दन्ती, मदनफल, आदि द्रव्यों को चावल के पानी के साथ देकर वमन करावे ।

[37]लूताविष में शुकाख्या, कुष्ठ, इन्द्रयव आदि द्रव्यों का लेप हितकारी हैं ।

[38]जंगमविषों की चिकित्सा में जालिनी, शुकाख्या, अंकोल आदि द्रव्यों के क्वाथ से वमन करावे या कोशात्तकी, मदनफल, शुकाख्या आदि द्रव्यों को दही के साथ देकर वमन करावे ।

मध्यकालीन निघण्टु ग्रन्थों में श्योनाक, अरलु ए शुकनासा आदि पर्यायवाची शब्द एक साथ दिये है कुछ निघण्टुकारों ने अरलू एवं श्योनाक को पृथक् पृ निर्देश किया है ।

[39]शोढल निघण्टुकार ने नहिका (शुकनासा) पाठ देकर संदिग्धता को दूर करने में विशेष सहायता की भावमिश्र ने भी नाकुजी शब्द से नाही अर्थ कि जो कि शुकनासा का ही द्योतक है ।

[40]धन्वन्तरि निघण्टु में श्योनाक के पर्यायवाची के साथ शुकनासा पाठ आया है एवं इसे शीतल,

अतिसार कास एवं आमवातनाशक माना है।

[४१]राजनिघण्टुकार ने भी श्योनाक के पर्यायवाची शब्द के साथ शुकनासा का पाठ दिया है। सम्भवतः यह शब्द अरलु या शुकनासा के लिए आया हो।

[४२]भावप्रकाश निघण्टु में भी श्योनाक का ही पर्यायवाची शब्द शुकनासा दिया है। वास्तव मे शोढल निघण्टु को छोड़कर अन्य निघण्टुओं में शुकनासा श्योनाक से भिन्न द्रव्य है ऐसा कोई विशेष संकेत नहीं मिलता है।

आधुनिक काल के विद्वानों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया है। जिसमें इसके स्वरूप का पता चला है कि श्योनाक[४३] एवं अरलु दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं जिसे ठा॰ बलवन्त सिंह एवं श्री वैद्य बापालाल जी शाह ने स्वीकार किया है। ठा॰ बलवन्त सिंह[४४] श्योनाक, अरलु, एवं शुकनासा तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्य स्वीकार करते है जिसकी पुष्टि शीर्षक लेख में स्थानिक नामों, गुणधर्मो एवं स्थानिक प्रयोग के आधार पर की गई है।

[४५]श्री आर॰ एन॰ बधवार ने प्वाइजिनस प्लान्ट आफ इण्डिया (Poisonous Plants of India) के प्रथम भाग में इस पौधे को विषैला माना है। इसके मूल Bryonia (ब्रायोनियां) नामक तत्व पाया जाता है। जो कि बहुत कटु होता है एवं सर्प दंश में विशेष उपयोगी है।

[४६]नादकर्णी ने भी फल को रेचक एवं विषघ्न माना है।

[४७]आर॰ एन॰ चोपड़ा ने भी मूल फवं फल का उपयोग वामक, रेचक, कुष्ठघ्न एवं सर्पविष में उपयोगी माना है।

अधिक मात्रा में उपयोग करने से यह विषैला प्रभाव डालता है। घातक मात्रा-५ तोला, घातक समय ४ से ५ घंटे। प्रतिविष घृत सेवन।

निष्कर्ष—यद्यपि चरक संहिता में शुकनासा का कोई स्पष्ट सकेत उपलब्ध नहीं है परन्तु सुश्रुत संहिता, अष्टांग संग्रह एवं हृदय में प्राचीन काल से ही अरलु, श्योनाक एवं शुकनासा तीनों भिन्न-भिन्न द्रव्य थे, किन्तु निघण्टु ग्रंथों ने इस द्रव्य को अभिन्न बना दिया है। केवल शोढल निघण्टु में शुकनासा (नहिका) श्योनाक से भिन्न द्रव्य है, यह संकेत मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने अरलु के पर्यायवाची दीर्घवृन्त, कटंवग है एवं श्योनाक के टुण्टुक, मल्लूक, कुटन्नट पर्याय हैं। शुकनासा के शुकाह्वा, शुकाह्वागु, काख्या एवं नहिका ये पर्याय हैं जिसके निम्न लैटिन नाम हैं।

(१) श्योनाक—Oroxylum indicum Vent.

(२) अरलु—Ailanthus excelsa Roxb.

(३) शुकनासा—Gorallacarpus epigeous Benth. Hook. f.

अतः विद्वानों को शुनासा के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए।

कृताज्ञताभिव्यक्ति—उपयोगी सुझावों के लिए लेखक ठा॰ बलवन्त सिंह, वनस्पति-विशेषज्ञ का हृदय से आभारी है जिनके निर्देशन में यह लेख लिखा गया है। प्रकाशन एवं उचित निर्देशन हेतु लेखक निदेशक केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद् (सी॰ सी॰ आर॰ आई॰ एम॰एच॰) नई दिल्ली का हृदय से आभारी हैं।

---

१. काकदनी लाङ्गलिका नहिकोत्तुण्टुकी फलैः।
जीमूत बीज कर्कोटी, विशालाकृतवेधनैः ॥
अ॰ स॰ उ॰ अ॰ अ॰ १८

नाहि तु नागजिह्वाख्या, त्तिक्तपत्रा क्षितीक्षपुः।
कृमिहृत् क्षारकर्मा च तथा मामेञ्जकस्मृतः ॥
(शोढल निघन्टु लक्ष्मणादि वर्ग)

३. श्योनाक शुकनासाश्च, कट्वंगोऽथ कटम्भरः।
टुन्डुको दीर्घवृन्तश्च, विषनुत् करिनाशनः ॥
(शालिग्रामनिघण्टु)

४. Poisonous plant of India. vol. I
(By Badhwar P.P. 484)

५ सचित्र आयुर्वेद, मार्च १९७१ पृ॰ सं॰ ३७२

६. निघण्टु आदर्श, भाग १ हिन्दी १९६८

७. 'पिप्पल्यादि सुरसादि शिग्रु मधु शिग्रु मूलक लशुनः
पीलूचण्डा गुग्गुलु मुरत लाङ्गली शुकनासा प्रभृतीनी
सालसारादिश्च प्रायशः कटुकोव ः'
सु॰ सू॰ अ॰ ४२-१८

८. 'पत्रंच शुकनासायां योजयेत्कफजे व्रो।'
सु॰ चि॰ अ॰ १-९८

९. 'धुत्तूरजं मदनको द्रवञ्च, बीजं कोशातकी शुकनसा।
[illegible]' सु॰ चि॰ अ॰ १७-२०

१०. 'कदम्ब्रपुष्पीं मन्दारी स्नम्बा शुकनासां तथा'
सु० चि० अ० १९-२६

११. 'उभे वृहत्यौ रजनीं शुकाख्याम्' सु०उ०अ० ४४-२२

१२. 'सुषहा कलिका भार्गी शुकाख्या नैचुलं फलम्'।
सु० उ० अ० १५-२३

१३. ततोऽजगन्धाति विषा विशल्याविषाणिका—(कुष्ठ शुकाह्वयाभिः)'।
सु० चि० अ० २८-३७

१४. 'भूमिकदम्ब: सुवहा शुकाह्वा लाङ्गलाह्वया।'
सु० चि० अ० २-६६

१५. 'घर्दनं जालिनी क्वाथैः शुकाख्याऽङ्गोढ्योरपि'
शुकाख्या कोषवत्योश्च, मूलं मदन एव च।'
सु० क० अ० ७-३४

१६. 'उभे वृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां, काकादनी चापि स काकमाचीम्।'
सु० उ० अ० ४४-१९

१७. 'गुञ्जालावु शुकाह्वाश्च, पलाश: क्षार कल्किता।'
अ० हृ० उ० अ० २०-७०

१८. काकादनी लाङ्गलिका नाहिको तुण्डकी फलै,
जीमूत बीज कार्कोटी, विशालाकृतवेद्यनैः
अ० हृ० उ० ३०-१८

१९. कोशातक्या शुकाख्या फलं जीमूतकस्य च,
अ० हृ० उ० ३८-२१

२०. शुकनासां प्रतिविषा, व्याघ्रीमूलैश्च लेपयेत्,
कीटदंश चिकित्सायां च कुर्यात्तस्य यथार्हत:
अ० हृ० उ० ३५-४७,

२१. कोशतक्या शुकाख्याफलं, जीमूतकस्य च,
मदनस्य च संचूर्ण दघ्नापीत्वा विषंवभेत्,
अ० हृ० उ० ३८-२१

२२. गुडूची सैर्यकाभीरू शुकनासां पुनर्नवे,,
अ० हृ० उ० ३४-३८

२३. बृहतीद्वय काकमाची शुकनासा····क्वाथे सिद्धंसर्पि,
अ० सं० चि० २१-२७

२४. शुकनासा देवदाली त्रिफला लाङ्गली विशाला,
अ० सं० चि० २१-२४

२५. शुकनासा, सगवाक्षी स्वर्णक्षीरानिकुम्भश्च,
अ० सं० चि० २२-२०

२६. शुण्ठी चित्रक भार्ङ्गी शुकनासा निचुल महावल्ली
घृत प्रस्थं साधयेत्॥ अ० सं० चि० अ० २३ २२

२७. विशल्याऽति विषा विषाणिका शुकनासा जगन्धा
पलाशक्षाराम्बु पिष्ठैः सुखोष्णो लेप:॥
अ० सं० उ० २६-४१

२८. आदारी काकजंघा काकादनी, शुकनासा कदम्बपुष्प···
क्षारोदक क्षारकल्पेन विपचेत्॥ अ० स० उ० ३५-२१

२९. कोशातकी शुकनासा मृगभोजनी च॥
अ० स० उ० ३५-३३

३०. तत्रापि वातले दुरालभा वृहती द्वय मञ्जीष्ठामूर्वा
शुकनासा···वला विदारी ······अ० स० उ० ३७-२५;

३१. परुषक हरिद्राद्वय सहचर शुकनासा पुनर्नवै॥
अ० स० उ० ३९-३१;

३२. शुकनासा प्रतिविषा व्राध्रीमूलैश्च लेपयेत्॥
अ० स० उ० ४०-८१,

३३. अङ्कोल जालिनी बीज, शुकनासा प्रियंगुका॥
अ० स० उ० ४०-१०२

३४. उदीर्ण दोषान् वलिनों विषे महत्ती वामयेत्।
कृष्ण शुकनासा नीप निम्ब सप्ताह्व यष्टिभि॥
अ० स० चि० ४४-३६;

३५. गर्भ दत्वा स्नुही क्षीरं शुकाख्या चव्यसैन्धवं॥
अ० स० चि० ७-४४;

३६. शुकाह्वा जालिनी दन्ती, मदनेक्ष्वाकुकौटजम्।
काला लांगलिका तिक्ता, वमनं तण्डुलाम्बुना॥
अ० स० उ० ४२-४७;

३७. शुकाख्या मद्विषाकान्ता, कुष्टेन्द्रयव कुंकुमम्।
आस्फोत गुन्द्रा च हिता, प्रलेप श्लैष्मिकेविषे॥
अ० स० उ० ४६--२७;

३८. छर्दनं जालिनी क्वाथैः शुकाख्याङ्कोलयोरपि।
कोशावत्या शुकाख्यायाः फलं जीमूतकस्य च॥
मदनस्य च सञ्चूर्ण दध्ना पीत्वा विषंवमेत्॥
अ० स० उ० ४६-२३

३९. नाही नाहाति सम्प्रोक्ता, द्विविधा सा न कन्दिनी,
तिक्ता च मधुराचैव, मधुराशाक शोभना॥

तिक्तकन्दो विरेकी च, शोथघ्नो वामकस्मृतः ।
विषघ्नः पानलेपाभ्यां, शिम्बी तिक्ता च तूवरा ॥
(शोढल)

शुकनासा सरा तिक्ता, वातिकृत् श्वासकासजित् ।
वद्धविट् काल्प शीता च, लघ्वी सर्प विषामहा ॥
(शोढल)

४०. श्योनाक शुकनासश्च, कट्वङ्गोथ कटंभर ।
टिण्टुक, पृथुशिम्ब, दीर्घवृन्तकः भल्लकः आदि ॥
धन्वन्तरिनिघण्टु २८,

४१. श्योनाक शुकनासश्च, कट्वङ्गोथ कटंभर ।
कुटंनट, प्रियजीव, दीर्घवृन्तक, आदि ॥ (राजनिघण्टु)
श्योनाक युगलं तिक्तं शीतलं च त्रिदोषनित्
(राजनिघण्टु)

४२. श्योनाक शोषणश्च, स्यान्नट कट्वङ्गटुण्डुकाः ।
मण्डूकपर्ण पत्रोर्ण, शुकनासा कुटन्नताः ॥
'भावप्रकाश निघण्टु'

४३. श्योनाक और अरलू 'सचित्र आयुर्वेद' पत्रिका जुलाई १९७२, श्री अनिरुद्ध मिश्र एवं प्रियव्रत शर्मा ।

४४. ग्लौसरी आफ भेजिटेवुल ड्रग इन वृद्धत्रयी,
श्री बलवन्त सिंह पृ० ४०२.

४५. Poisonous Plants of India, By-R. L. Bhadhawar.

४६. Indian Materia Medica. By-Nadkarni.

४७. Glossary of Indian Medicinal Plants. By R. N. chopra.

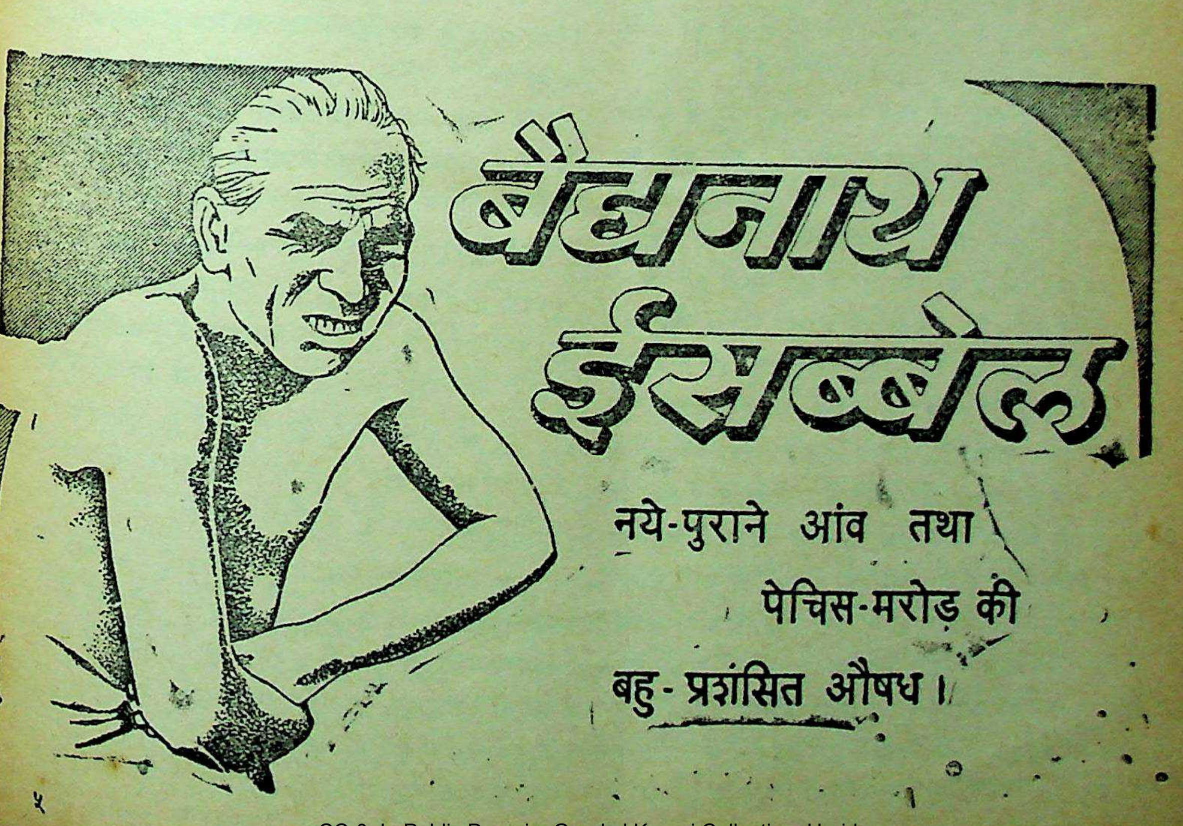

व्यवस्था-पत्र लेखन की कुछ भ्रान्तियाँ

डॉ० जेड अंसारी
रिसर्च फेलो
एवं
डा० गुरमोहन सिंह
रीडर,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
वाराणसी-५

अति प्राचीन काल से ही चिकित्सा का कार्य सबसे पुनीत कार्य माना गया है (चिकित्सतात् पुण्यतंनम् न किंचित)। शास्त्रों में चिकित्सा, रोगोपचार इत्यादि की महानता का विशद् रूप से वर्णन मिलता है। चिकित्सक के गुण और कर्त्तव्य, रोगी के गुणं, औषध के गुण एवं उपचारिका के गुणों का उल्लेख किया गया है। चिकित्सक की महिमा के गुणगान में चिकित्सक को प्राणाभिसर संज्ञा से विभूषित किया गया है। क्योंकि चिकित्सक के ऊपर भारी जिम्मेवारी होती है। रोगी के जीवन एवं मृत्यु की बागडोर भगवान के बाद चिकित्सक के हाथों में होता है। इसलिए एक चिकित्सक को भगवान का दूसरा अवतार भी माना जाता है।

विश्व का कोई भी रोगी अपने भाई, बन्धु से अधिक अपने चिकित्सक पर विश्वास करता है और उसे वह अपना अति हितैषी, शुभचिंतक एवं विश्वास का पात्र मानता है। अपने रोग निवारणार्थ चिकित्सक की आज्ञाओं को भगवान की आज्ञा मानता है और उन्हीं सब बातों का पालन करता है, एवं अपना आहार-विहार निश्चित करता है जो कि उसे चिकित्सक बतलाता है।

अधिकांशतः रोगी चिकित्सक से कुरेद-कुरेद कर सैकड़ों प्रश्न पूछता है, जिनमें आहार एवं औषध के सम्बन्ध में अधिकतर प्रश्न होते हैं। जलपान में क्या लें, दोपहर के भोजन में क्या लें, रात के भोजन में क्या लें, और किस मात्रा में लें, जल का सेवन ठंडा या गर्म करें, स्नान एवं व्यायाम करें या न करें, इसी प्रकार औषधि जो कि चिकित्सक उसे लिखता है या देता है उसके सम्बन्ध में प्रश्न करता है कि अमुक औवध कब लें, जलपान या भोजन के बाद पहले या मध्य में लें, दूध, गर्म पानी ठंडा पानी या शहद से लें, इत्यादि बातों का उचित रूप से समाधान चाहता है, जिसका कि समाधान करना प्रत्येक चिकित्सक का परम कर्त्तव्य होता है।

अतएव चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले हर चिकित्सक को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दे चाहिए :—

१. जिस औषध की व्यवस्था की गई है उसका समुचित रूप से शरीर में अवशोषण (Absorption) हो रहा है या नहीं।

२. यदि हो रहा है तो वह किस क्रम से हो रहा है अर्थात् उसका वेग (Speed) क्या है।

३. अवशोषण (Absorption) के पश्चात् रक्त में कितने समय के बाद उच्चतम मर्यादा (Peak Level आता है।

४. औषध अवशोषण होने के बाद शरीर से बाह कितनी देर के बाद निकल जाता है एवं बाहर निकलने मार्ग क्या हैं।

५. जो औषध रोगी को दी गई है, क्या वह को अनुषगी अभिक्रिया (Side reaction) को उत्पन्न करत है। यदि करता है, तो उसकी क्रियाविधि (Mechanism क्या है, और उसे किस तरह से बचाया जा सकता है।

६. जो औषध रोगी को दी गयी है, उसे क्या कि खास समय अर्थात् खाने के पूर्व और पश्चात् दे चाहिए, और यदि दें, तो फिर क्यों ?।

७. आयुर्वेदीय ग्रंथों में दूध, मलाई, मक्खन, शह गर्मपानी इत्यादि के अनुपान के साथ औषध लेने विधान बतलाया गया है। साथ ही औषध लेने के सम का भी विशद् रूप से वर्णन किया गया है यथा :- भो के पूर्व में, भोजन के मध्य में तथा भोजन के पश्च बार-बार, सामुद् अर्थात् दो आहार काल के मध्य भोजन के साथ मिलाकर, भोजन के ग्रास में, ग्रा

बीच-बीच में अर्थात् एक ग्रास भोजन के बाद औषध सेवन किया जाये और पुनः दूसरा ग्रास खाया जाये, इस तरह दो ग्रासों के बीच में, प्रातःकाल में, सायं काल में, एवं रात में सोते समय औषध प्रयोग के नियम बतलाये गये हैं, परन्तु आधुनिक चिकित्सक इन सब बातों पर कम ही ध्यान देते हैं। प्रत्येक चिकित्सक को देखना चाहिए कि क्या इसका कोई महत्व (Role) चिकित्सा काल में है, और यदि है तो कहां तक है।

८. प्रायः एक से अधिक औषध आजकल दी जाती है, और २४ घंटे में कई किस्म के औषध का सेवन रोगी को करना पड़ता है। इसलिए चिकित्सक को देखना चाहिए कि दो औषध मिलकर रोगी को कितना लाभ एवं हानि करता है। यह औषध उत्सर्ग (Excreate) होने के बाद आपस में कोई और कार्य (Action) तो नहीं करता।

अतएव चिकित्सा विभाग में उपरोक्त बातों पर विचार करना एवं जानकारी रखना प्रत्येक चिकित्सक के लिए परम आवश्यक है। नीचे दिए गए कुछ उदाहरणों से हमने उपरोक्त बातों की व्याख्या एवं समाधान की है जो कि सर्वमान्य एवं विज्ञान-सम्मत है।

औषध प्रयोग से पूर्व उसका शरीर में अवशोषण हो रहा है या नहीं, इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कौन-सी औषध मुख द्वारा दी जाये ओर कौन-सी सूचिवेध (Injection) द्वारा। इसका ख्याल करना जरूरी है। एक ही प्रकार की औषधियाँ मुख द्वारा देने से कम लाभ करती हैं, अपेक्षा सूचिवेध के। अतएव किस औषध को मुख द्वारा प्रयोग कराये एवं किसको सूचिवेध द्वारा, यह चिकित्सक के ज्ञान पर निर्भर करता है। उदाहरणस्वरूप यदि हम पेनिसीलीन (Penicilline) को चार लाख इकाई (400000 Unit) मात्रा में मुख द्वारा प्रयोग कराते हैं, तो वह आमाशय में अम्ल (Acid) के कारण पूर्णरूप से कार्य नहीं करता, क्योंकि अम्ल पेनिसीलीन को अवशोषण कर उसकी कार्य-शक्ति कम कर देता है, परंतु यही चार लाख इकाई पेनिसीलीन को यदि हम सूचिवेध द्वारा प्रयोग करायें तो विशेष कार्यकारी एवं प्रभावयुक्त सिद्ध होता है। इसलिए पेनिसीलीन का प्रयोग मुख की अपेक्षा सूचिवेध से कराना उत्तम है। यदि मुख द्वारा प्रयोग कराना ही हो तो इसकी मात्रा बढ़ाकर प्रयोग कराना चाहिए।

शरीर के अन्तर्गत औषधियों का अवशोषण उसकी घुलनशीलता इत्यादि बातों पर निर्भर करता है। अधिकतर विलेय (Soluble) औषधियाँ शरीर के अन्दर शीघ्र अवशोषित (Absorbed) हो जाती हैं बनिस्पत अविलेय (Insoluble) औषधियों के। कारण कि आमाशयिक रस (Gastric Juice) से औषधियों का संघटन में परिवर्तन हो जाता है, और तब फिर अवशोषण होता है। कुछ औषधि ऐसी है जिन पर विलेपन (Coating) किया जाता है, जिसे इन्टेरीक कोटिंग कहते हैं। यह प्रायः उन औषधियों में की जाती है जिनमें निम्नलिखित गुण हों:—

कः या तो आमाशय में क्षोभ उत्पन्न करता हो।

खः या फिर आमाशय रस से इसके कार्य में कुछ व्यवधान उपस्थित हो जाता हो। यदि यह औषध आमाशय में पूर्णतः विलीन (Disolve) नहीं होता है, तो इसका प्रभाव २-४ घंटा बाद शरीर में होता है।

कुछ औषधियों का प्रक्रम विधि द्वारा ऐसा निर्माण किया जाता है, कि उसका अवशोषण शरीर में धीरे-धीरे हो, एवं अधिक देर तक प्रभावकारी रहे। उदाहरण के लिए कई Anti histamine (एन्टी हिस्टामीन) दवायें ऐसी हैं, जो कि केवल ४-६ घंटा तक असर करती है, परन्तु यदि इसी दवा को प्रोसेस करने के पश्चात् दी जाती है तो इसका असर बढ़कर ८-१२ घंटा हो जाता है। जैसे पीरीटोन (Piritone), फोरीसटल (Foristal), फोरीसटल लौंग (Foristal Long) इत्यादि।

औषधियों के प्रयोग के साथ-साथ उस औषधि का रक्त में कितनी देर तक प्रभाव रहता है, इस पर भी विचार करना चिकित्सक को अति आवश्यक है। किसी भी औषध के एक मात्रा लेने के बाद पुनः दूसरी मात्रा उसी समय दी जा सकती है, जबकि पूर्व में दी हुई औषध का प्रभाव समाप्त होने पर है, या फिर समाप्त हो जाता है। अन्यथा बीच ही में देने या विलम्ब से देने पर प्रभावकारी परिणाम नहीं होता। मिसाल के तौर पर क्रीस्टेलाइन पेनीसीलीन किसी भी मार्ग से दी जाये, इसका प्रभाव शरीर में केवल ४-६ घंटा ही रहता है। इसलिए पेनीसीलीन को प्रत्येक ६ घंटे पर देने का विधान है।

इसी प्रकार एन्टी हिस्टामिन औषधि का भी अलग-

अलग प्रभाव का समय होता है। जैसा कि क्लोरफेनारमीन मैलियेट (Chlorphenarmine Maliate) का प्रभाव शरीर में केवल ४-६ घंटा ही रहता है। अतएव किसी भी रोग में पूर्ण प्रभाव के लिए हर छः छः घंटे पर क्लोरफेनारमीन देने का विधान है। इसी तरह दूसरी एन्टी हिस्टामीन यथा फ़ेनारगन (Phenargan) का प्रभाव १०-१२ घंटा ही रहता है। इसलिए इसको भी २४ घंटा में दो बार देने का विधान बतलाया गया है।

कई औषधियों की बनावट यानी कि योग (Formula) ही ऐसा है कि शरीर में प्रवेश के पश्चात् परिवर्तन हो जाता है। जैसे मेन्डला मीन। यह औषध मूत्र जन्य विकार (Urinary tract infections) में दिया जाता है। यही मेन्डलामीन शरीर में फौरमेलडी हाइड एवं मेन्डेलिक एसीड में परिवर्तन हो जाता है, और यदि मूत्र एसीडीक होता है तो यह फौरमलडे हाइड कीटाणुनाशक होता है।

किसी भी औषधि का अत्यधिक प्रयोग एवं गलत प्रयोग से उसकी प्रतिक्रिया स्पष्टतः शरीर पर देखने को मिलती है। अतएव हर चिकित्सक को इस बात पर भली-भांति विचार करना चाहिए कि यह प्रतिकिया क्यों उत्पन्न होती है, एवं इसकी क्रियाविधि (Mechanism) क्या है। साथ ही साथ औषधि की प्रतिक्रिया की समुचित चिकित्सा या व्यवस्था क्या है। जब तक हम इन बातों की जानकारी नहीं रखते तब तक हम प्रतिक्रिया को रोक नहीं सकते।

उपरोक्त बातों के उदाहरण कारटीकोस्टेरॉयड (Corticosteraid) के विष प्रभाव से अच्छी तरह से दी जा सकती है: दीर्घकाल तक कारटीकोस्टेरायड के प्रयोग के पश्चात् उसकी अनुषंगी अभिक्रिया की अधिक संभावना रहती है, एवं इसके प्रयोग के पश्चात् निम्नलिखित प्रतिक्रिया देखने को मिलती है :—

क: कारटीकोस्टेरॉयड प्रयोग के पश्चात् औस्टीओप्रोसीस (Osteoprosis) उत्पन्न होता है जिनमें न केवल कैलसियम की क्षीणता होती है बल्कि प्रोटीन का भी ह्रास होना शुरू हो जाता है। अर्थात् इसके कैलसियम तो अन्यत्र हो ही जाता है साथ ही साथ प्रोटीन के टूटने से शरीर भी क्षीण होने लगता है। अस्थि की मूल बनावट प्रोटीन पर कैलसियम का जमाव पर होता है, जो कि हाइपोकौरटीसीज्म (Hypercorticism) के रोगियों में अलग हो जाता है। इसमें कैलसियम समान रूप से रहते हुए भी अस्थि की मूल बनावट समाप्त हो जाती है।

ऑस्टीओप्रोसीस को केवल प्रोटीन तथा एनाबोली (Anabolic) हार्मोन्स (Hcrmcnes) के द्वारा चिकित्सा कर रोका जा सकता है, एवं इसकी कमी की पूर्ति की जा सकती है।

ख: कभी-कभी स्टेर्रायड चिकित्सा से रक्ताभाराधिक्य (Hypertension) उत्पन्न हो जाता है यह शायद सोडियम के अवरोध से होता है।

ग: अधिकांशतः रोगी स्टेरायड के सेवन के बाद उदर का फूलना (Distension of Abdomen) एवं मांसपेशियों की दुर्बलता (Weakness of the muscles) की शिकायत करते हैं। यह अधिक पोटासियम की क्षीणता से उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार चर्मगत विकारों में प्रयोग होने वाले वाह्य औषधि भी चर्म पर प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, परन्तु इसमें चिकित्सक को विचार करना चाहिए कि यह प्रतिक्रिया क्षोभ जन्य उत्पन्न हुआ है या अनूर्जता जन्य। यदि यह प्रतिक्रिया क्षोभ जन्य है तो औषध की मात्रा कम कर देने से प्रतिक्रिया अपने-आप कम हो जाती है, परन्तु अनूर्जता में मात्रा कम कर देने से भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि देखा गया है।

कुछ औषधियां ऐसी भी हैं जिनका कि सम्बन्ध भोजन के साथ जुड़ा हुआ है अर्थात औषधियों के अवशोषण काल में भोजन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है, क्योंकि भोजन के पूर्व दी गई गोलियां शीघ्र अवशोषित हो जाती है, अपेक्षा भोजन के पश्चात देने से।

कुछ ऐसे और भी उदाहरण हैं जो कि खास कर रोगियों के व्यवस्था-पत्र में शामिल किये जाते हैं, जिनमें से यहां पर कुछ दिया जा रहा है :—

कैलसियमः —कैलसियम लवण के प्रयोग में सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब आमाशय रिक्त हो तब दें। भोजन के बाद या किसी भी प्रकार के अन्न ग्रहण के पश्चात इसका प्रयोग हानिकर होता है। क्योंकि आमाशय में फैटिक एसीड रहता है, और खाये हुए आहार के साथ मिल कर कैलसियम फाईटेड बनाता है, जो कि अवशोषण नहीं करता।

एस्प्रीन:— एस्प्रीन (Aspirin) एवं बुटाजोलाडीन (Butazoladine) वर्ग की औषधियों को हमेशा भोजनोपरान्त देना चाहिए, क्योंकि खाली पेट देने से यह आमाशय में क्षोभ उत्पन्न करता है ।

नेटोफ्यूराटीन (Nitofuratin) बहुत सी ऐसी भी औषधियां है कि जो कि प्रयोग के पश्चात् शरीर में हृल्लास एवं वमन (Nauseas, Vomiting) उत्पन्न करता है जैसे कि नेटोफ्यूराटीन । इसलिए इस तरह के औषध को भोजनोपरान्त ही देना चाहिए ।

माईकोस्टेटीन (Mycostatin) बहुत - से चिकित्सक इस औषध को त्वचागत विकारों मे प्रयोग करते हैं, परन्तु इसका त्वक्गत विकारों में कोई प्रभाव नहीं होता, ऐसा अनुभव कर देखा गया है ।

टेरासाईक्लीन (Tetracycline) जब टेटरा साईक्लीन को अकेले दूध के साथ दिया जाये तब इसका अवशोषण कम हो जाता है ।

अनुपान का आधुनिक चिकित्सा में कोई महत्व नही है । किसी भी औषध को गर्म पानी, ठंडा पानी, ताजा पानी, शहद, मक्खन, इत्यादि के साथ लेने का कहीं पर कोई विधान नहीं बतलाया गया है परन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति में अनुपान का महत्व सर्वाधिक दिखलाया गया है । कोई भी औषधि अनुपान के साथ लेने से अधिक लाभदायक सिद्ध होती है ऐसा वर्णन आयुर्वेद में मिलता है । शहद, मक्खन, गोमूत्र, पान स्वरस, अदरक स्वरस, तुलसी पत्र स्वरस, गुड़ूची स्वरस, और उष्ण जल इत्यादि अनुपान के रूप में काफी व्यवहृत होता है । इसकी सार्थकता एवं निरर्थकता पर चिकित्सक को विशेष ध्यान देना चाहिए ।

बहुधा चिकित्सक रोगी को कई प्रकार की दवाइयां एक साथ प्रयोग कराते हैं, जो कि कभी - कभी लाभकी अपेक्षा हानिकर या प्रभावहीन साबित होता है । अतः सर्वदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि दो दवाओं का एक साथ प्रयोग करने से पूर्व अच्छी तरह विचार कर लें कि ये दोनों शरीर अन्तर्गत आपस में उत्सर्ग होने तक कोई हानि तो नहीं करती क्योंकि कुछ ऐसी दवाइयां हैं जो कि एक साथ नहीं देनी चाहिए जैसे—

टेटरासाईक्लीन एवं फेरस सल्फेट को मुख के द्वारा यदि एक साथ दिया जाये तब यह एक दूसरे से मिल कर न अवशोषण होने वाला योग (Composition) बनाता है । ऐसा बतलाया गया है कि दोनों औषध को साथ देने से टेटरा साईक्लीन के रक्त में रक्त मात्रा (Blood-evels) 10 50% ही पहुँचती है, बनिस्पत की टेटरा साईक्लीन अलग दी जाये । इसलिए टेटरा साईक्लीन का थेराप्यूटिक लेवल (Therapeutic level) नहीं पहुँच पाता । अतः जिन मरीजों को टेटरा साईक्लीन दिया जा रहा हो, उन्हें कोई भी लौह का योग उस बीच नहीं देना चाहिए ।

इसी प्रकार एन्टासीड (Antacid) के साथ भी टेटरा साईक्लीन का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके साथ प्रयोग से टेटरा साईक्लीन का अवशोषण उचित रूप से नहीं हो पाता है ।

अनूर्जता (Allergy) जन्य विकार में चिकित्सकगण कैलसियम का इन्जेक्शन और गोलियाँ बहुतायत से प्रयोग करते हैं, और यह प्रयोग लम्बे समय से होता चला आ रहा है । परन्तु क्या किसी ने इसका लाभ देखा ? हमलोगों की समझ से अनूर्जताजन्य विकार में कैलसियम का प्रयोग निरर्थक किया जाता है ।

अधिकतर ज्वरघ्न (Antipyretc) औषधियाँ आमाशय की श्लेष्मल कला (Gastric mucosa) में क्षोभ उत्पन्न करता है । इसलिए एस्प्रीन एवं बुटाजोलाडीन वर्ग की औषधियों को किसी ज्वर में धड़ल्ले से नहीं चलाना चाहिए । यदि किसी भी रोगी में टाईफाइड (Typhoid) ज्वर की शंका हो जाये तो जब तक पूर्णरूपेण निदान न हो जाये, तब तक रोगी को कोई दूसरा ज्वरघ्न औषधि यथा पैरासेटामोल (Paracetamol) इत्यादि से उपचार करना चाहिए ।

कभी-कभी किसी खास औषध के अनुषंगी प्रभाव रोगी के पक्ष में हानि की अपेक्षा लाभकारी सिद्ध होता है । प्रायः अधिकांशतः एन्टी हिस्टामीन वर्ग की औषधियाँ शामक कार्य करनेवाली होती हैं, परन्तु कुछ नये अनुसंधानकारक इसे अनुषंगी प्रभाव से रहित मानते हैं ।

उनका कहना है कि यह कोई शरीर में अनुषंगी प्रभाव नहीं करता । यदि हिस्टामीन का कोई अनुषंगी प्रभाव होता है, तो त्वक्गत विकारजन्य रोगियों के पक्ष में यह लाभदायक ही सिद्ध होता है, क्योंकि शामक औषधियां कण्डू कम करने में सहायक होती है । इसलिए जहां हम रोगी की खुजली अधिक से अधिक कम करना चाहते हैं, वहां पर इस प्रकार की औषध को प्रधानता देते हैं । यह खास कर उन रोगों में करते हैं, जहाँ पर खुजली का कारण अज्ञात होता है ।

बहुत सी औषध रोग के आक्रमण के समय में ही देने से अधिक लाभकारी सिद्ध होती है अपेक्षा दूसरे समय के । उदाहरण के लिए शीतपित (Urficaria) मे आक्रमण के समय ही औषध देने से रोगी लाभान्वित होता है. न कि अन्य समय में । इसी प्रकार हेफीवर (Hay fever) के रोगियों को रात में सोते समय लौङ्ग एक्टींग हिस्टामीन (Long acting anti histamin) देने से रोगी को अधिक लाभ करता है, ऐसा देखने को मिलता है ।

अतएव एक कुशल चिकित्सक को व्यवस्था-पत्र लिखने से पूर्व प्रत्येक बातों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार करना चाहिए ताकि कहीं कोई भ्रांति न उत्पन्न हो जाये ।

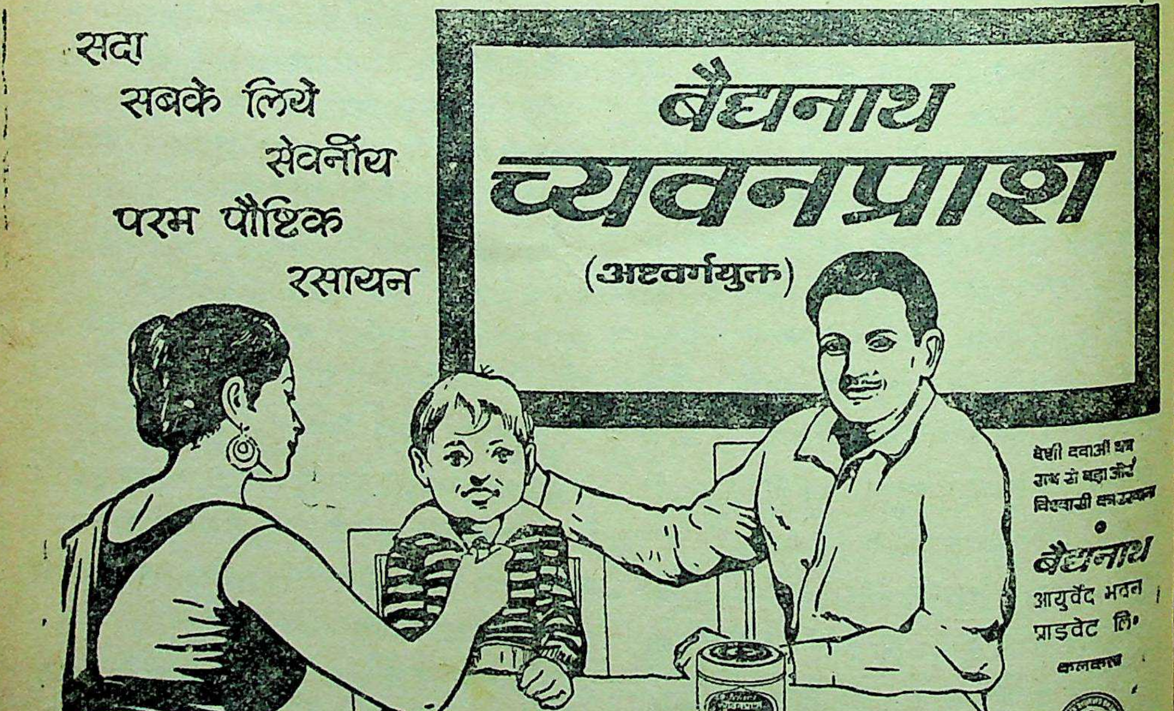
सदा
सबके लिये
सेवनीय
परम पौष्टिक
रसायन
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
(अष्टवर्गयुक्त)
देशी दवाओं का
सब से बड़ा और
विश्वासी उत्पादक
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन
प्राइवेट लि॰
कलकत्ता

जन स्वास्थ्य की समस्याएँ

हृदय रोग के कारण और निदान

(संकलित)

आज विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन हृदय रोगों के ऊपर विशेष ध्यान दे रहा है तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके ऊपर विचार करना आवश्यक है।

दिल के रोग के बारे में जिन स्रोतों से आंकड़े एकत्र किए गए हैं, वे हैं बीमा कम्पनियाँ, अस्पताल, महामारी सर्वे और शव-परीक्षायें। देश के कुल हृदय रोगियों में से ११.२० प्रतिशत रोगी (कारोनरी), ११ से २० प्रतिशत उच्च-रक्तचाप (हाइपरटेनशन); २२ से ४० प्रतिशत सन्धि-वातीय (रीमैटिक); १३ से १८ प्रतिशत दिल के दाहिनी निलय (वेन्ट्रिकल) के बढ़ने या खराब होने से तथा १ से २ प्रतिशत लोग वंशानुगत हृदय-रोग से पीड़ित रहते हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो द्वारा किए गये एक अध्ययन से पता चलता है कि हृदय रोग से मरनेवालों की संख्या एक लाख आबादी के ऊपर १३७.३ है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद भारत में मृत्यु-दर तो घट गई है, किन्तु रक्तवहतंत्र की बीमारियों से मरनेवालों की संख्या में २२० प्रतिशत वृद्धि हुई है।

कारोनरी हृदय की बीमारी

यदि आप उत्तेजित और चिड़चिड़े रहते हैं तथा कुर्सी पर बैठकर काम करते हैं और सिगरेट पीते हों तो आपको कारोनरी हृदय की बीमारी होने की संभावना है। यदि आप वकील, इंजीनियर या व्यावसायिक संगठनों के प्रधान हैं तो यह खतरा और भी अधिक है।

इस बीमारी में मुख्य धमनियों में चरबी जम जाती हैं जिसके कारण रक्त-प्रवाह में बाधा आती है। परिणामस्वरूप, धमनियां कड़ी हो जाती हैं। ऐसी हालत को 'इस्कायमिक' हृदय रोग कहते हैं और इसी से दिल का दौरा पड़ता है। इस परिस्थिति से बचने के लिए व्यायाम करना, शरीर के वजन को सामान्य रखना तथा धूम्रपान छोड़ना आवश्यक है। ऐसा देखा गया है कि वंशानुक्रम इसके लिए मुख्य है। यदि आपके माता-पिता या दादा-दादी कभी इस बीमारी से पीड़ित रहे हों तो अन्य के मुकाबले आपको और अधिक सावधान रहने की जरूरत है।

उच्च-रक्तचाप

धमनियों के सिकुड़ने से धमनियों के रक्तचाप का असामान्य ढंग से बढ़ जाने को उच्च रक्तचाप कहा गया है।

सामान्य व्यक्ति को भी भावावेश, मानसिक तनाव, सदमे या कठोर शारीरिक श्रम की स्थिति में कुछ समय के लिए उच्च रक्तचाप हो सकता है। लेकिन जब वह दबाव बराबर बना रहे तभी उसे रक्तचाप की बीमारी की संज्ञा दी जाती है।

शरीर के वजन का अधिक बढ़ना और बैठे बैठे काम से भी यह बीमारी हो सकती है। इससे कभी-कभी गुर्दे की बीमारी भी हो जाती है। यदि आपको चक्कर आता है, घबराहट होती है, सीढ़ी पर चढ़ने में या व्यायाम करने में तकलीफ का अनुभव करते हैं तो आप उच्च रक्तचाप के लिए अपनी जांच अवश्य करायें। आधुनिक दवाओं के प्रयोग से इसे रोका जा सकता है। कुछ लोगों द्वारा भारतीय जड़ी 'सर्पगंधा' का भी प्रयोग इसके लिए सफलतापूर्वक किया गया है। बीमार को अपने भोजन में नमक, चरबी (तेल-घी) और अनाज (चावल-आटा) में कमी करने से भी लाभ मिल सकता है।

सन्धि-वातीय (रिमैटिक) हृदय रोग

इसका यह मतलब नहीं कि यदि आप गरीब हैं तो आपको दिल की बीमारी नहीं हो सकती है। गरीबों को जिन्हें ठीक भोजन नहीं मिलता है और गन्दी बस्तियों में रहते हैं उसे सन्धि-वातीय हृदय रोग से पीड़ित होने का खतरा है। तीव्र सन्धि-वातीय (रीमैटिक) ज्वर से हृदय की मांस-पेशियाँ कमजोर हो जाती हैं और उसे ही सन्धि-वातीय हृदय रोग कहते हैं। आम तौर पर यह बचपन

या किशोरावस्था में होता है। एक बार के सन्धि-वातीय ज्वर से हृदय पर कोई विशेष असर नहीं होता किन्तु यह बार-बार होने से दिल की. मांस-पेशियों को नुकसान पहुँच सकता है, खासकर बायें तरफ के हृदय की मांस-पेशी को नुकसान पहुँचता है जिससे या तो आदमी जीवन भर के लिए पंगु हो जाता है और कभी-कभी इससे मृत्यु भी हो जाती है। यदि कोई बच्चा बार-बार गले की खराबी से बीमार पड़ता है तो उसका इलाज करवाना आवश्यक है। इस स्थिति में पेनसिलिन आदि के इन्जेक्शन काफी दिनों तक लेना आवश्यक है। दिल की जिस मांसपेशी में खराबी आई है उसको शल्य क्रिया द्वारा भी ठीक किया जा सकता है।

दाहिने निलय (वेन्ट्रिकल) की बीमारी

फेफड़ा की बीमारी के कारण हृदय के दाहिने निलय का बढ़ जाना या खराब हो जाने को 'कोर पुलमानोल' कहते हैं। छाती में किसी प्रकार छूत की बीमारी होने से या पुरानी श्वास नली शोथ (ब्रोंकाइटिस) या दमे के बहुत दिनों तक बने रहने से हृदय पर जोर पड़ता है। उत्तर भारत में कोहरे और गोबर के उपलें से निकलने वाले धुएं से भी ब्रोंकाइटिस होने की सम्भावना है। छाती में छूत की बीमारी होते ही यथाशीघ्र इसका प्राथमिक उपचार कराना आवश्यक है। यदि दूषित वायु, चिमनी के धुएं, मोटरगाड़ियों के धुएं आदि से बचा जाय तो इस बीमारी से बहुत हद तक बचा जा सकता है।

वंशानुगत हृदय रोग

गर्भावस्था में ही शिशु के दिल का विकास ठीक से न होने से वंशानुगत हृदय रोग उत्पन्न होता है। यह खराबी तीव्र रूप धारण कर सकती है और तीव्र से सामान्य हो सकती है जिसके कारण बच्चा पंगु हो सकता है। गर्भावस्था के प्रारम्भ में ही जर्मन खसरा के लिए रोग - निरोधक और अन्य हानिकारक दवाइयां नहीं लेनी चाहिए।

हृदय रोग से पीड़ित लोगों का पुनर्वास एक समस्या है। खासकर उनका जो ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। फिर भी देश के सभी प्रमुख शहरी क्षेत्रों में हृदय रोगियों के इलाज के लिए सन्तोषजनक सुविधायें उपलब्ध हैं। देश के २७ मेडिकल कालेजों में जो अस्पतालों से सम्बद्ध हैं उनमें हृदय रोग विभाग भी हैं। देश के ऐसे १७ केन्द्रों में हृदय की शल्य चिकित्सा की सुविधा भी उपलब्ध है।

(भारत सरकार के सूचना विभाग के सौजन्य से)

बैद्यनाथ
बसन्त
कुसुमाकर रस
इसके सेवन से मस्तिष्क व
हृदय स्वस्थ एवं बलवान होते हैं.

विद्वान आयुर्वेदज्ञ

डा० अमरनाथ शास्त्री !

★डा० केवल धीर

आयुर्वेद-जगत के सामान्य व्यक्तित्व एवं ख्याति-प्राप्त विद्वान और लेखक डा० अमरनाथ शास्त्री किसी लम्बे-चौड़े परिचय के मुहताज नहीं हैं। उनके बारे में कुछ अधिक कहने से पूर्व मैं अपनी ओर से तथा समस्त आयुर्वेद जगत् की ओर से पंजाब के स्वास्थ्य एवं वित्त मन्त्री श्री हंसराज शर्मा के प्रति आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने पंजाब के स्वास्थ्य निदेशालय में आयुर्वेद विभाग के मुखिया के रूप में डा० अमरनाथ शास्त्री को डिप्टी डायरेक्टर आफ आयुर्वेद नियुक्त किया है। साथ ही डा० शास्त्री को बधाई एवं शुभकामनायें भी भेंट करना चाहूंगा कि उन्होंने इस पद को ग्रहण करना स्वीकार किया।

डा० अमरनाथ शास्त्री पटियाला (पंजाब) के निवासी हैं। आपका जन्म १० अगस्त, सन् १९२६ में हुआ तथा लगभग तैंतालीस वर्ष की अल्पायु में ही आपने आयुर्वेद जगत् में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। पोस्ट ग्रेज्युयेट ट्रेनिंग एवं रिसर्च संस्थान में द्रव्यादि विज्ञान—रस शास्त्र—भैषज्य कल्पना आदि विभागों के प्रोफेसर इंचार्ज तथा राजकीय आयु० डिग्री कालेज, पटियाला के प्रिंसिपल रहने के बाद आपने कुछ दिन पूर्व ही पंजाब सरकार के आयुर्वेद विभाग में डिप्टी डायरेक्टर आफ आयुर्वेद का कार्यभार सम्भाला है। आपको सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ स्वर्गीय पण्डित राम प्रसाद का शिष्य होने का गौरव प्राप्त है। हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी एवं आयुर्वेद की उच्च शिक्षा आपने विभिन्न राजकीय विद्यालयों, एवं विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से प्राप्त की तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से आयुर्वेद में पोस्ट-ग्रेज्युयेट किया। राजकीय आयु० डिग्री कालेज पटियाला के प्रिंसिपल के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान आपने 'आयुर्वेद-समन्वयवाद' की लहर चलाई तथा आयु० चिकित्सा प्रणाली को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इससे आयुर्वेद की शिक्षा, अध्ययन, रिसर्च, औषधि-निर्माण, चिकित्सा आदि के समुचित विकास में बहुत सहायता मिली। अपने जीवन में आपने आयुर्वेद के प्रायः सभी क्षेत्रों में अनेक सफल एवं क्रांतिकारी प्रयोग किये हैं। एक चिकित्सक के रूप में आपकी सफलता एवं लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि भारत के प्रत्येक कोने एवं विदेशों से रोगी परामर्श प्राप्त करने आपके पास आते हैं।

आयुर्वेद के विभिन्न क्षेत्रों में आपके अनुभव का इतिहास लगभग छब्बीस वर्ष पुराना है अर्थात् पिछले २६ वर्षों से आप प्रोफेसर, प्रिंसिपल, चिकित्सक एवं लेखक के रूप में आयुर्वेद की सेवा करते चले आ रहे हैं। राजकीय आयु० कालेज पटियाला में आपने तीन वर्ष सीनियर-लेक्चरर और पंद्रह वर्ष तक प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। तत्पश्चात् आप इसी कालेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुये। पांच वर्ष तक आप राजकीय आयु० केन्द्रीय फार्मेसी एवं स्टोर के सुप्रिन्टेन्डेन्ट रहे। एक वर्ष तक आपने बुंदेलखण्ड आयु० कालेज झांसी में प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। वर्ष १९६७ में 'अश्वगंधा' पर रिसर्च के लिये पटियाला में स्थापित यूनिट के आप इन्चार्ज बनाये गये। इस यूनिट की स्थापना इण्डियन कौंसि

आफ मेडिकल रिसर्च, भारत सरकार द्वारा की गई थी। वर्ष १९७० में पंजाब विश्वविद्यालय के अध्ययन कक्ष (बोर्ड आफ स्टडीज) की द्रव्यादि विज्ञान शाखा के अध्यक्ष बने। इसी वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित आयु० एवं यूनानी चिकित्सा परिषद् के सदस्य मनोनीत हुये। वर्ष १९७२ में पुनः आपको अध्ययन कक्ष का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। इसी वर्ष चिकित्सा-परिषद् के 'डीन' के रूप में आपकी नियुक्ति हुई तथा इन दोनों पदों पर अब भी आप कार्य कर रहे हैं। लगातार चार वर्ष आप अमर-कृष्ण आयु० महाविद्यालय के प्रिंसिपल रहे तथा आठ वर्ष तक इसी संस्थान से संबंधित औषधालय के प्रधान चिकित्सक भी रहे। लगभग आठ वर्ष तक आप ने अमर शक्ति फार्मेसी के संचालक-निर्देशक के रूप में कार्य किया। इन सब के अतिरिक्त कुछ समय तक आपने राजकीय आयु० अस्पताल पटियाला के सुप्रिन्टेन्डेन्ट के रूप में भी कार्य किया।

डा० अमरनाथ शास्त्री उच्च कोटि के एक विद्वान लेखक भी हैं। 'त्वचा रोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा' और 'क्षय रोग की वैज्ञानिक चिकित्सा' नामक उनकी दो पुस्तकों पर पंजाब सरकार ने पुरस्कार प्रदान किया। उनकी साहित्य सेवाओं के लिए हरियाणा सरकार ने भी आपको सम्मानित किया। आपकी एक अन्य बहुचर्चित पुस्तक 'देवी गीता एवं रिष्ट साधना' के प्रकाशन पर पंजाब सरकार ने पुरस्कार प्रदान किया। प्रथम एवं द्वितीय वैद्य सम्मेलन पंजाब एवं हरियाणा के अवसर पर दो बार 'राजयक्ष्मा' पर रिसर्च और उच्चस्तरीय औषधि निर्माण के सिलसिले में आपको स्वर्णपदक प्रदान किये गये। आयुर्वेद-सम्बन्धी अनेक विषयों पर आपके बहुत से लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० अमरनाथ शास्त्री एक प्रभावशाली वक्ता, विद्वान चिकित्सक, रिसर्च स्कालर, प्रसिद्ध लेखक, अनुभवी प्रबन्धक और एक अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। मुझे विश्वास है कि पंजाब सरकार के आयुर्वेद विभाग में डिप्टी डायरेक्टर आफ आयुर्वेद के रूप में उनकी नियुक्ति से जहां आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा-प्रणाली का समुचित विकास होगा वहां विभागीय शासन-प्रबन्ध में भी और अधिक सुधार सम्भव हो सकेगा।

ताकत
ताजगी
एवं
स्फूर्ति
के
बैद्यनाथ
द्राक्षासव
व्यवहार करें

निसर्गोपचार तथा आयुर्वेदीय ••••• चिकित्सा-पद्धति में समत्व

आचार्य, कविराज श्री हरदयाल,

वैद्यवाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य

ई—२१, आनन्द निकेतन (मोतीबाग II)

न्यू दिल्ली, २३

निसर्गोपचार पद्धति को आज बहुसंख्यक आबालवृद्ध नर-नारी एवं योग्य तथा व्यस्त-जीवन-यापक सज्जन अपना रहे हैं। कुछ संक्षिप्त वर्ण-भेद से इसे अनेक नामों से स्मरण किया जा रहा है, यथा—प्राकृतिक-चिकित्सा, नैसर्गिक चिकित्सा, Nature cure, Naturopathy, Naturotherapy। 'सर्वदेव नमस्कार केशवं प्रतिगच्छति' के सिद्धांतानुसार सबका लक्ष्य यही है कि मनुष्य अपने जीवन को स्वस्थता के साथ पूर्ण करे, एवं रुग्णावस्था में रोग दूर करने के लिए प्रकृति प्रदत्त साधनों को उपयोग में लाए। इसमें शरीरस्थ रोगों को नष्ट करने के लिए उग्रवीर्य, विषैली और बहुरोगोत्पादक औषधों के आश्रय पर रहना सर्वथा निषिद्ध है।

सर्वथा स्वस्थ रहने, रोगों से बचने और रोग उत्पन्न होने पर प्राकृतिक साधन-आहार-विहार पर पूर्णाधिकार, संयम, इन्द्रियों का सदुपयोग एवं मानसिक शांति तथा मनोबल आदि के उचित प्रयोग पर बल दिया गया है। निःसंदेह उपर्युक्त सदाचारमय जीवन-यापन करने वाले को कायिक और मानसिक क्लेशों से सामना नहीं करना पड़ेगा।

प्रशासन में तो एकाधिक ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जहां अपराधी को क्षमादान मिलता है, किन्तु प्रकृति अपने अपराधी को क्षमादान नहीं देती। प्रकृति का क्षमादान भी अपने ढंग का निराला ही है अर्थात् नियमोल्लंघन कर्त्ता को उसका दण्ड तो भोगकर ही समाप्त होता है परन्तु शर्त पुनरपि नियम पालन की अनिवार्य रहती है। अतः निसर्गोपचारावलम्बन से शारीरिक और मानसिक संशोधन भली प्रकार हो जाता है जब देह और मन स्वस्थ और सुन्दर है। इस लक्ष्य की पूर्ति के जो साधन अपनाए गए हैं, समष्टि रूप से उसी पद्धति का नाम निसर्गोपचार अथच जीवन-विज्ञान है।

निसर्गोपचार चिकित्सा 'एकमेवब्रह्म द्वितीयोनास्ति' पर पूर्णरूपेण अवलम्बित है। अर्थात् रोग एक है, निदान एक है, चिकित्सा भी एक ही है। यहां अनेकता में एकता स्वीकार करने का उद्देश्य यही है कि रोग दुःखदायक होने से प्रत्येक रोग में उसका दुःखप्रद गुण एक ही है। भिन्न-भिन्न रोगज लक्षणों के स्थान-भेद को न मानकर यह मान लिया गया है कि रोग तब ही शरीर पर आक्रमण करता है, जब शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य संचित होते हैं, जब शरीर के किसी भी भाग में दुःख अथच पीड़ाएं उत्पन्न होती हैं। इसी अवस्था को रोग कहते हैं।

कारण एक है—प्रत्येक रोग आहार-विहार के अनुचित तथा मानसिक वैषम्य के कारण उत्पन्न होता है। इस दृष्टिकोण से तो यह ठीक है, परन्तु अनेक स्थानों पर लक्षण शान्त्यर्थ जो चिकित्सा की जाती है, वह बहुविधता लिए हुए है। एवंविध चिकित्सा भी एक ही है। यह इस दृष्टिकोण से कि संचित विकारी द्रव्य या विजातीय विष प्रशमनार्थ शीतोपचार, उष्णोपचार वस्ति आदि के अनेक प्रयोगात्मक विधान अपनाने से इसमें एकत्व टूट जाता है। यहां स्पष्ट लाक्षणिक चिकित्सा के दर्शन होते हैं। तदपि प्राकृतिक चिकित्सा के पण्डितों द्वारा कारण, कार्य और चिकित्सा को एक ही श्रेणी में रखा गया है।

चिकित्सा के मौलिक तत्व पंचमहाभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, समग्र चराचर जगत इन्हीं से पैदा हुआ है। इन्हीं में वैषम्य उत्पन्न होने से रोग होता है। इन्हीं को साम्यावस्था में लाने का नाम प्राकृतिक चिकित्सा है।

निसर्गोपचार पद्धति बीज रहस्य उपर्युक्त पंक्तियों में अति संक्षेप रूप से वर्णित है। अब उनमें आयुर्वेदीय सिद्धांतों के साथ इसका तुलनात्मक समन्वय पढिए।

निसर्गोपचार और आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति में समानत्व— तो सर्वमान्य सिद्धांत है कि प्रकृति ने न केवल मनुष्यों को प्रत्युत् प्राणिमात्र को सहज रूप से ही ऐसी बुद्धि या ज्ञान दिया है जिसका अवलम्बन आवश्यकता पर स्वतः ही उद्‌भूत होता है और तुरंत उसका उपयोग भी किया जाता है। जैसे शीतनिवारणार्थ अग्निताप या आतप सेवन। तापनिवारणार्थ शीतलता का उपयोग। भूख न होने पर अन्न का परित्याग। पीड़ा आदि पर प्रशमनोपाय। ज्वरावस्था में उपवास। तीव्र पीड़ा में बंधन, वेष्टन तथा शुद्धि कार्य के लिए जल का उपयोग आदि।

यह स्वाभाविक उपचार सरणि प्रारम्भिककाल की थी। समय के अनुसार बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति भी आवश्यक थी। प्राणि-वर्ग में मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है। इसने उपर्युक्त अवस्थाओं में और सुविधाएं उपस्थित करने के लिए जो प्रगाढ़ परिश्रम किया उसी के फलस्वरूप रोग कारण, सम्प्राप्ति, पूर्वरूप, रूप, लक्षण तथा उपशय, अनुपशय एवं चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान का संचय हुआ। इसका परिपूर्ण और एकमात्र श्रेय आयुर्वेद को है।

आयुर्वेद भी सृष्टि को पंचभौतिक मानता है। दर्शन-शास्त्र भी यही निर्देश करते हैं एवं प्रकृति उपासक भी पंचमहाभूतों को अपनी पद्धति का आधारस्तम्भ मानते हैं। यह भी एक स्वर से माना जाता है कि पंचमहाभूतों की विषमता से ही शरीर और विश्व में संतुलन बिगड़ जाता है और इस वैषम्य को समता में परिणत करने से शरीर और विश्व में सुख शांति तथा स्वास्थ्य की प्राप्ति हो सकती है।

प्रकृति स्वतः भी इस कार्य में पूर्ण जागरूक है—

'विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयंति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥

शरीरस्थ वातपित्तकफ संसार के उक्त परिवर्तन से प्रभावित होकर अपना-अपना कार्य सम्पन्न करते हैं।

चूंकि प्रकृतोपचार के मनीषियों ने इस ओर अधि ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। अतः उन्होंने रोगोत्पादकत्व में केवल विजातीय विष को ग्रहण करके सरलता उत्पन्न करने का यत्न किया है। परन्तु यह विजातीय द्रव्य या विष शरीरस्थ किस क्रिया वैषम् से उद्‌भूत होता है, इसकी अंशांश कल्पना छोड़ दी गई है। निकट भविष्य में सम्भावतः मनीषिजन इस त्रुटि को दूर करने का अवश्य यत्न करेंगे।

रोग एक, कारण एक और चिकित्सा एक—यह सिद्धान्त आयुर्वेद का है। कोई भी रोग हो दुःखद होने से वह एक ही है। कारण उसका 'रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्यमरोगता।'

'काल बुद्धि इन्द्रियार्थानां योगोमिथ्यान्नचाति च।
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः ॥ चर. सू

अर्थात् काल, बुद्धि एवं इन्द्रियों के विषयों का मिथ्यायोग, अयोग और अतियोग—ये तीनों कायि और मानसिक व्याधियों के कारण हैं। इन्हीं से वातादि दोष कुपित होकर शारीरिक और मानसिक रोगों का जन्म होता है। इनसे शरीर को और मन को दुःख होता है, यही रोग है।

'दोषाएवहि सर्वेषां रोगाणामेक कारणं'।
'सर्वेषामेवरोगाणां निदानं कुपितामलाः ॥
तत्प्रकोपस्यतु प्रोक्तं विविधाऽहित सेवनम्' माधव

प्राकृत चिकित्सा-शास्त्रियों ने उपर्युक्त सिद्धा आयुर्वेद से लिया है, परन्तु अपनी सुविधार्थ गन्ध ग्रह पर ही संतोष किया गया है।

चिकित्सा के सम्बन्ध में आयुर्वेद का स्पष्ट निदा है कि—

'औषधान्न व्यवहाराणामुपयोगं सुखावहम्' सुखदा प्रक्रिया या मार्गावलम्बन का नाम चिकित्सा है। निसर्गो चार में औषधों से सीधा सम्पर्क नहीं, भोजन औ विहार इन दोनों को विशेष रूप से अपनाया गया है आयुर्वेद के इस सिद्धांत से यह पूर्ण रूपेण मेल खाता है

'पथ्येसतिगदार्तस्य किमौषध निषेवणम्।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणम्।'

अतः पथ्य भोजन को सीधा अपना लिया है। व्यवहार में तो चिकित्सा का उज्ज्वल प्रकाश दीखता ही है।

आयुर्वेद के इस त्रिसूत्रीय-आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य—को मूर्तरूप से जन कल्याणार्थ ग्रहण किया गया है। आकाश तत्व चिकित्सा में निसर्गोपचार के अंतर्गत सुन्दर व्याख्या जनता को दी गई है। इसी प्रकरण में सदाचार, सद्वृत, रसायनाचार की समस्त बातों को आवश्यकतानुसार लिया गया है। 'अथातो दीर्घजीवनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः' अर्थात् स्वास्थ्यपूर्ण दीर्घजीवन प्राप्त्यर्थ आयुर्वेद प्रदर्शित स्वर्ण सूत्रों का समावेश हुआ है। आकाशतत्व चिकित्सा में लंघन या उपवास का प्रधानता से उपयोग हुआ है। इसे आगे उपवास प्रकरण में देखें।

अग्नितत्व—चिकित्सा में विश्ववन्द्य सूर्य भगवान को प्रथम स्थान निसर्गोपचारक देते हैं। दूसरे स्थान पर अनेक प्रकार से अग्नितत्व की सहायता ली गयी है। जो बिलकुल भारतीय परम्परा और आयुर्वेदीय सिद्धांतों के प्रचलित रूपों को ही कुछ तारतम्य से ग्रहण किया गया है। यथा—

नमः सूर्याय शांताप सर्वरोगविनाशिने।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देव नमोस्तुते ॥ अ० संग्र०।

भारत ही नहीं, अन्य देशों में आज भी बहुसंख्यक जन समुदाय सूर्य और अग्निदेव की उपासना में संलग्न है। इसकी पुष्टि नये ढंग से अवश्य हुई है। आदिकालीन श्रुति भी कहती है—

'स्वस्ति श्रद्धां यशः प्रज्ञान् विद्यां बुद्धिश्रियंबलम्।
आयुष्यं तेजमारोग्यं देहि मे हव्य वाहन।'

एवंविध श्रद्धा और धर्म प्रियजन सूर्यस्तवन को मुख्यता देते हैं। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।' जन समुदाय और नव विज्ञान डंके की चोट से कहते हैं कि जिस घर में सूर्य-प्रकाश नहीं पहुँचता वहां रोग समूह का राज्य होता है। रोग निवृत्यार्थ भी सूर्यातप सेवन के पुराने अनुभव स्पष्ट हैं—यथा—

'सूर्यातपः स्वेदकृत् सर्वरोग विनाशनः।
मेदच्छेद करश्चैव बलोत्साह विवर्धनः॥'
'दद्रु विस्फोट कुष्ठघ्नः कामला शोथ नाशकः।
ज्वरातिसार शूलानां हारको नात्र संशयः॥'
'कफपित्तोद्भवा रोगाः वातरोगा स्तथैव च।
तत्सेवना नरो जित्वा जीवेच्च शरदांशतम्॥'

निःसन्देह उपर्युक्त रोगों को दूर करने के लिए निसर्गोपचार जीवियों ने सरल और सुबोध भाषा और शैली के साथ वर्णन किया है।

प्रत्यक्ष अग्नितत्व सहायता द्वारा ठीक आयुर्वेदोक्त स्वेदविधि को पूर्णतः कुछ परिष्कृत विधियों द्वारा अपनाया गया है—स्वेदोत्पादक सबप्रकार, इष्टिका पाषाणोत्ताप आर्द्र वस्त्रावगुंठन, वस्ति उष्णोदक पान, स्नान, अवगाहन, आंगिक जलावसेचन आदि का पूर्ण वर्णन आयुर्वेद सम्मत है। आयुर्वेद में स्वेद विधि के १३ प्रकार हैं। उन सबका समावेश निसर्गोपचार-पद्धति में उपलब्ध है।

वायुतत्व चिकित्सा—प्राकृतिक चिकित्सा विधान में वायुतत्व का प्रयोग भ्रमण, व्यायाम, प्राणायाम, वातस्नान, आसन आदि संज्ञाओं द्वारा स्वीकार किया गया है। प्रायः यह समग्र प्रकरण आयुर्वेदोक्त दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या में सन्निविष्ट है। इनके सम्बन्ध में आगे वर्णन हुआ है।

पृथ्वी तत्व चि०—पृथ्वी के निर्माण में दार्शनिक निश्चयानुसार आकाश, वायु, अग्नि और जल। इन महाभूतों ने भाग लिया है अथवा भूत चतुष्टय के संहित रूप को पृथ्वी कहा जाता है। शरीर में इन्हीं के तारतम्योद्भव विचारों की शांति के लिए एवं आयुर्वेदोक्त षड्विध लक्षणोपपन्न पृथ्वी को लेपन, मर्दन आदि विधियों द्वारा नैसर्गिक चिकित्सा में व्यवहार हुआ है। अतएव पृथ्वीतत्व-सम्बन्धी समस्त वर्णन आयुर्वेद प्रणीत है।

प्राकृतिक चिकित्सा को नवरूप देने के लिए नैसर्गिक आयुर्विज्ञानाचार्यों ने आयुर्वेद से अपने पक्ष के वे सिद्धांत ग्रहण किए हैं जो उनके मंतव्यानुसार एक रोग, एक निदान और एक चिकित्सा से सम्बद्ध थे। परन्तु आयुर्वेद की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। आयुर्वेद मनीषियों ने रोग, रोगोत्पादक कारण और उनकी चिकित्सा को बड़े वैज्ञानिक ढंग से गुम्फित किया है। इसी आधार पर यह आयुर्विज्ञान आयु को बाधा पहुँचाने वाले रोगों और चिकित्सा को अनेकधा विभक्त किया है। इससे चिकित्सक को निःशंक होकर मनुष्य को स्वस्थ रखने और रुग्णावस्था में व्याधि मोक्षण में स्वतंत्र आचरण का अधिकार दिया है।

यह बात निश्चय ही आश्चर्योत्पादक है कि जब प्रकृति

चिकित्सक रोगोत्पादन में तथा रोग-निवारण-विधि में पंचतत्व को आधारभूत मानते हैं तब औषधीय चिकित्सा के प्रति अतिघृणा भाव क्यों अपनाते हैं ? औषधें, जड़ी-बूटियां और इन्हीं से निर्मित योगों में भी तो अनुसंधाताओं ने पंचतत्वों को ही ग्रहण किया है। इनसे लाभ भी होता है। प्रत्यक्ष ऐसी दशाएं भी सबके अनुभव में आती हैं कि जब रोग चरम सीमा पर हो, रोगी मृत्यु से संघर्ष कर रहा हो, तब यही औषधीय चिकित्सा ही रोगी की प्राणरक्षक बनती है। उस समय प्राकृतिक चिकित्सा से काम नहीं चलता। ऐसी आपत्काल निवारक चिकित्सा से विशेष स्वास्थ्य दान करने वाली चिकित्सा की निन्दा युक्ति-संगत नहीं कही जा सकती। कोई भी चिकित्सा-पद्धति का हार्दिक उद्देश्य यही होता है कि मनुष्य को स्वस्थ रखा जाय एवं उपद्रव या अरिष्ट सूचक लक्षण (आपत्कालीन) उत्पन्न होने पर उन्हें दूर किया जाए। इस उद्देश्य-प्राप्ति में कोई भी प्रतिबंध विधि को अपूर्ण सिद्ध करने के लिऐ पर्याप्त हो सकता है।

उदाहरणार्थ—धार्मिक प्रवचनों के अनुसार मनुष्य का अन्तिम ध्येय ईश्वर-प्राप्ति है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक मार्ग होने पर भी गन्तव्य स्थान एक ही है। ऐसी दशा में एक ही साधन की पूजा और अन्य साधनों के प्रति उदासीनता समान साध्य में शोभा नहीं देती।

आयुर्वेद के सारभूत इस सूत्र 'इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं—व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्या-स्वास्थ्य रक्षणं च' सु०। 'धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्' चर० को सुखबोधार्थ निम्न दो भागों में बाँट दिया जाय तो स्वास्थ्य संरक्षण तथा व्याधि परिमोक्षण दोनों उद्देश्यों की पूर्ति सरल हो जाती है।

१. अनागत रोग प्रतिषेधाचरण	व्याधि विमोचन
ब्राह्ममुहूर्त में जागरण (शय्यापरित्याग)	औषध, अन्न, विहार
उषःपान	लंघन
पुरुष व्यायाम, महिला व्यायाम	रोगप्रशमनार्थ औषध सेवन
स्नान	रोगकालिक भोजन
सूर्यार्चन	रोगाक्रांतावस्था में विचरण
दिन-रात्रि-ऋतुचर्या	
आसन	
प्राणायाम	

हवन, ब्रह्मचर्य, स्वर्ण, रत्नधारण, सद्वृत, भोजन, शयन, उपवास, सदाचार, रसायन आदि २ | इन दोनों विभागों के कुछ ही शीर्षकों पर आगे विचार होगा।

किसी भी दिव्यगुण की प्राप्ति के लिए प्रगाढ़ परिश्रम और कुछ परित्याग की अनिवार्य आवश्यकता हुआ करती है। दीर्घ और स्वस्थ जीवन के लिए मनुष्य को अहर्निश ससंयम प्रयत्न करना अवश्यम्भावी है। आयुर्वेद ने स्वास्थ्य के ऐसे लक्षण स्थिर किए हैं जो अद्वितीय हैं। अन्य पैथियों में ऐसा सर्वांगपूर्ण स्वास लक्षण उपलब्ध नहीं।

यदुक्तम्—समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थइत्यभिधीयते ॥ सु०

इस महत्वपूर्ण वस्तु की प्राप्ति के लिए कितने बलिदान की ओर संकेत है—यथा

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावेहि भावानां सर्वाऽभावः शरीरिणाम् ॥,
चरक०।

सानन्द दीर्घ जीवन पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए आयुर्वेद आद्यारम्भ इस प्रकार करता है—

ब्राह्ममुहूर्त जागरण

'ब्राह्ममुहूर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थोरक्षार्थमायुषः।
शरीरचिंतां निर्वर्त्यकृतशौच विधिस्ततः ॥'

ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय से १॥ घंटा पूर्व का समय है। इस प्रभात वेला में शय्या का परित्याग करके शौच स्नानादि से निवृत होते हुए सूर्योदय का समय आ जाता है। सूर्यार्चन से ही स्वास्थ्य लाभ का मांगलिक श्रीगणेश होता है। आजकल के प्रतीच्य रहन-सहन या सभ्यता के अभ्यस्त ब्राह्ममुहूर्त जागरण के लिए उद्यत न हों शायद अपनाएं भी न परंतु प्रकृति भी इनके लिए वरदान सिद्ध नहीं हो सकती। परिणामतः वे लोग लाभ से वंचित रहेंगे ही।

उषःपान—उषःपानार्थ स्वच्छ जल को एक स्वच्छ गिलास में पात्र से ढक कर रखा जाता है और प्रातः उठते ही इसे पी लेना चाहिए। आज इसका स्थान विस्तर की चाय ले रही है। जो अनेक रोगोत्पादक बन गई है।

नित्य उष:पान के अभ्यासी को १ गिलास पर्याप्त है। नवारम्भ में चौथाई गिलास से प्रारम्भ करना चाहिए। कोई विशेष कष्ट शरीर में हो अथवा नवाभ्यासी को कोई रोग हो तो इसके आरम्भ करने से प्रथम चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार शीत और उष्ण जल प्रयोग में लाए जाते हैं।

उष:पान के शास्त्रीयगुण

> 'अर्श:शोथग्रहण्योज्वर जठरजरा कोष्ठमेदो विकारा
> मूत्रघातासृपित्त श्रवणगलशिर: श्रोणि शूल क्षिरोगा:।
> येचान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधय: सन्तिजन्तो:
> तान्स्ताभ्यासयोगा दप हरतिपय: पीतमंते निशाया।'
>
> यो० र०

वैज्ञानिकता से पूर्ण इस निसर्गोपचार द्वारा उपस्थित तथा भाविरोग स्वत: ही प्रशमित रहते हैं। पुरान पीनस तथा दृष्टि दौर्बल्य शांत्यर्थ अगला श्लोक देखें—'विगत घननिशीथे प्रातरूत्थायनित्यं पिवति खलुनरोयो घ्राणरन्ध्रेण वारि। स भवति मत्ति पूर्णश्चाक्षुषातक्ष्यंतुल्यो वलिपालित विहीन: सर्वरोगैर्विमुक्त:।' इस आचरण द्वारा ऊर्ध्वजत्रुज रोगों का प्रशमन होता है। मस्तिष्कस्थ सब विभाग शुद्ध होकर अबाधगति से स्वकार्य सम्पादन में सक्षम रहते हैं। यह अद्भुत् निसर्गोपचार आयुर्वेद की देन है।

सूर्यार्चन—सूर्यनमस्कार 'अथ युतदयांप्रति' को स्वर्णिम सिद्धांत रूप देने और दिनानुदिन स्वास्थ्य-संरक्षण, प्रतिमा, मेधा, स्फूर्ति एवं अनागतरोग प्रतिषेधार्थ मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने जिस अनुभूति का साक्षात्कार किया उसे बड़ी सरल विधि से कृतिसाध्य सूर्यनमस्कार को एक नित्यकृत्य वा धार्मिक रूप में गुम्फित किया है। सूर्यस्तवन-सम्बन्धी सूक्त और ऋचाएं वैदिक वाङ्मय से उपलब्ध हैं। सूर्य ही चराचर विश्व की आत्मा है।

प्रात: स्नानोत्तर सकटिवस्त्र नग्न शरीर से सूर्योदय के उष काल में जब सूर्यरश्मियां पृथ्वीतक पहुँचनी आरंभ होती हैं; सूर्यपिण्ड द्वारा अनेक वर्णात्मक रश्मियां प्रसारित होती हैं। इनमें सरक्तनीलाभ किरणें विशेष महत्व की हैं।

सूर्य के समक्ष खड़े होकर ऊपर से धाराबद्ध जल प्रपात करने से जल बिन्दु के साथ ये किरणें स्पर्शित होकर सीधे शरीर में प्रवेश कर के बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। इनके प्रभाव से उपर्युक्त गुण तथा त्वचा के उपस्थित रोग एवं भविष्य में होने वाले त्वग्विकार उत्पन्न नहीं होते। ऐसे उदाहरण भी उपलब्ध हैं जब विधिवत् सूर्योपासना से महा व्याधि कुष्ठ भी नष्ट किया गया है।

इसी गूढ तथ्य को वैज्ञानिक अनुसंधान कर्त्ता इस प्रकार वर्णन करते हैं। "प्रात:कालीन सूर्यकिरणों में नीलोत्तर रश्मियाँ Ultra Violet rays प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। ये स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होती हैं। अलट्रा वायलेट या नीलोतर रश्मियाँ अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य सी रहती हैं। ये किरणें केवल सूर्योदय के समय ही थोड़ी मात्रा में प्राप्त की जा सकती हैं।" भारत की यह वैदिककालीन खोज है जिसे यथावत् खगोल शास्त्रियों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। वस्तुत: यह एक उच्च प्राकृतिक चिकित्सा है जिसे सर्वत्र स्वीकार कर लिया गया है।

स्वर्णादिधातु रत्नधारण—इस क्रिया से स्वास्थ्य संरक्षण में बड़ी सहायता मिलती है। उत्पन्न होने वाले रोग स्वत: ही प्रशमित रहते हैं। ज्योतिष-शास्त्र प्रतिपादित तथा आयुर्वेद-समर्थित यह प्रक्रिया निश्चित ही अपना प्रभाव दिखाती है।

प्राचीन ऋषियों (अनुसंधाताओं) ने चराचर जगत् का घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्य एवं सौरमण्डल के मुख्य-मुख्य ग्रहों और उपग्रहों से निर्धारित किया था। आज वैज्ञानिक अन्वेषकों और सौरमण्डल के विशेषज्ञों ने पुरानी स्थिरताओं को स्वीकार किया है। मानव स्वभाव से ही बुद्धिजीवी होने के कारण वह सर्वदा ही अपने सुख, स्वस्थपूर्ण दीर्घ जीवन, शांत रहने की सतत् चेष्टा करता है। अतः ज्योतिष-शास्त्रियों के प्रत्यक्षीकृत सिद्धांतों को अपनाकर सूर्यादि नवग्रहों से निरंतर प्रवाहित किरणें जिनसे विशेष रोगों और अवस्थाओं से अनिष्ट होने की सम्भावना हो सकती थी उन्हें दूर करने के लिए स्वर्ण, रक्त वा पाषाणादि के धारण करने की पद्धति का जन्म हुआ।

सिद्धांत यह है कि प्रत्येक धातु वा रत्नादि को ग्रह गणना एवं उनकी रश्मियों द्वारा होनेवाले कुप्रभावरोधनार्थ विशेष नामानुरूप व्यवस्था उपलब्ध है। ज्योतिषशास्त्र निर्दिष्ट रत्नों को अंगुष्ठिका में यथाविधि स्थिर करके धारण किया जाता है। मुद्रिकास्थ रत्न पर पड़ने वाली किरणें वैद्युतिक विधि से शरीर में प्रवेश

पाती हैं। परिणामतः आवस्थिक अनिष्ट सम्भावना उत्पन्न ही नहीं होती। प्रकृति की आरोग्यदायिनी शक्ति का कैसा अद्भुत उपयोग है।

संक्षेप में ग्रहानुमैत्र्यवात् नवग्रहों की स्थिति इस प्रकार है—सूर्य का माणिक्य, चन्द्रमा का मोती, मंगल का मूंगा बुध का पन्ना, वृहस्पति का पुखराज, शुक्र का हीरक, शनि का नीलम, राहु का गोमेद, केतु का वैदूर्य। इन ग्रहों से प्रसारित होनेवाली रश्मियाँ रत्नों द्वारा प्रविष्ट होकर रश्मियों के दूषण को प्रभावित नहीं होने देतीं।

ज्योतिष-शास्त्र ने रत्नमणियों आदि के बाह्य प्रयोग का ही उपयोग किया है किन्तु आयुर्वेद इससे एक पग और आगे है।

यदुक्तम्—मणयोऽपि च विज्ञेया सूत बंधन कारकाः।
देहस्य धारका नृणां जरा व्याधि विनाशकाः॥
रसर० समु०

इनका यथाविधि शोधन-मारण और विस्तृत प्रयोग-विधि रसशास्त्र में देखनी चाहिए। मणियाँ और रत्न धारण, मारण और देवार्चनार्थ उत्तम कोटि के लेनी चाहिए। कारण कि सब रत्नों में कुछ स्वाभाविक विकृतियां होती हैं। विकृत और त्याज्य प्रकार के रत्नादि कहीं भी प्रयुक्त हुए लाभदायक नहीं होते।

यदुक्तम्—'रत्नानां दोषाः'—ग्रासस्त्रासश्च विन्दुश्च
रेखा च जल गर्भता।
सर्व रत्नेष्वभी पंचदोषा साधारणा मताः॥
क्षेत्रतोयभवा दोषा रत्नेषु न लभन्ति ते,
र० समु०

साधारणतः—ग्रास, त्रास, बिंदु, रेखा और जल-गर्भता ये पाँच दोष उस समय इनमें सहज रूप से ही निर्मित काल में प्रविष्ट होते हैं जब प्रकृति इनका निर्माण भूगर्भ में करती है कारण कि इनकी द्रुतावस्था में अनेक भिन्न जातीय द्रव्यों के सम्मिलित हो जाने से अपद्रव्य या विजातीय पदार्थ के बीच में आ जाने से इनकी विशुद्धता में अन्तर हो जाता है और ठीक-ठीक अनुकूल रश्मियों के ग्रहण और त्याग में बाधा उपस्थित होने से इष्ट फल न देकर अनिष्ट फल देते हैं। अतः ऐसे दोषल रक्त परिहेय होते हैं सब ही कार्यों में।

प्राणायाम—प्राणायाम की आदिकालीन प्राकृतिक चिकित्सा है। इसके विधिवत् सेवन से हृदय को बल मिलता है। फेफड़ों के रोग एवं राजयक्ष्मादि भयंकर रोगोत्पत्ति का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। कारण कि इस प्रक्रिया से अम्बर पीयूष (आक्सीजन) अधिक मात्रा में ग्रहण की जाती है जो रक्त में मिलकर शरीरस्थ रक्त को शुद्ध करती है। लौटती बार दूषितांश को बाहर ले जाती है।

प्राणायाम विधि में तीन मार्ग अवलम्बन किए जाते हैं प्रथम—पूरक इसमें अत्यंत शुद्ध स्थान एवं विशुद्ध वायु में बैठकर (पद्मासन या सिद्धासन में) नासिका के रन्ध्रों से वायु को भीतर खैंचा जाता है। तदनु कुम्भक होता है। इसमें भीतर खैंची वायु को यथाशक्ति रोका जाता है। इसकी तीसरी अवस्था रेचक कहलाती है। इसमें खैंची हुई वायु को नासिका मार्ग से ही शनैः २ निकाला जाता है। इस विधान से प्रति क्षण चलने वाली श्वास-प्रश्वास क्रम की संख्या कम होती है। परिणामतः आयु बढ़ती है। नित्य प्राणायाम के जो अभ्यस्त हैं वह तो लाभान्वित होते ही हैं। नवाभ्यासी को प्राणायाम की विधि को किसी अच्छे अभ्यस्त मनुष्य या गुरु से सीखना चाहिए। देखादेखी या अनुमान से किया गया आरम्भ हानिकर भी हो सकता है। यह तो नित्य कृत्यों में आता है परन्तु धर्म निरपेक्षता का जाप करने वालों ने—छिन्नेमूले नैव शाखा न पत्रम्—पर बड़ी तेजी से अमल करने का संकल्प लिया हुआ है। परिणामतः दिव्यगुण दायक प्रक्रियाएं लोप हो रही हैं।

व्यायाम—अभ्यंग-आदि भी प्राकृतिक चिकित्साएं हैं। इनको आरम्भ से ही जनता का पूर्ण सहयोग और समर्थन प्राप्त है। माता के उदर से शिशु बाहर आते ही यथासमय रूदन-रूपी अपना प्रथमव्यायाम आरम्भ करता है। तदनु शैय्या या झूला में पड़ा २ अपने अं के संचालन से प्राकृतिक व्यायाम को अपनाता है उचित आयु पर खेल-कूद एवं विद्यालयों में व्यायाम की घंटियों का उपयोग होता है। व्यायामशाला या अखाड़े में निरन्तर व्यायाम करने वालों को देखकर कौन हर्षि नहीं होता और किस के मन में उनका अनुकरण कर की बलवती इच्छा जागृत नहीं होती। भारतीय परम के अनुसार यह नित्यकृत्य है। ऋतुभेद से इसकी प्र व्यवस्था है। महिलाओं के लिए भी यह उतना ही उ देय और सेवनीय है जितना बालकों और प्रौढ़ों के

है। वृद्धावस्था में इसका परित्याग नहीं। झूलाझूलनामी हमारा एक विशेष व्यायाम है। प्राय: वर्षाऋतु में विशेषकर यह बड़ा लाभप्रद है। यदुक्तम्—

भूवाष्पानम्भेव निष्यन्दात् पाकादम्ला:ज्जलस्य च।
वर्षाष्वग्निवले क्षीणे तत्र दोल्यं निरूह्यते ॥
दोलारोहेण सन्नोऽपि झटत्यग्नि प्रदीप्यते।
मनसश्च प्रफुल्लत्वं पंचवाणस्थ दाढ्र्यताम् ॥
करोति दोलसततं सेव्यमाना हिताशिनाम्।

एवं विध अभ्यंग भी अतिशय हितकर है यथा—

'अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सजराश्रमवातहा।
दृष्टिप्रसाद पुष्ट्यायु त्वप्नसुत्वक् दाढर्यकृत् ॥
शिरः श्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। वाग्भ०

दैनिक हवन—व्यष्टि और समष्टिगत स्वास्थ्य वर्धनार्थं प्रतिदिन किया जाने वाला हवन—सर्वेसन्तु-निरामया:—की नि:स्वार्थ भावना का उज्ज्वल प्रतीक है। इस प्रक्रिया को आज विज्ञान भी अपनी श्रद्धा के पुष्प प्रदान कर रहा है। हव्य द्रव्य अग्नि के द्वारा जलकर धूम्र रूप में समस्त विश्व में प्रसारित होकर प्राणिमात्र का कल्याण करता है। विश्वबन्धुत्व की कितनी मार्मिक कामना है।

उपवास (लंघन) यह एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक उपाय है। आवश्यकता पर प्रकृति स्वयं इसका उपदेश देती है। उदर के तथा अन्य विकारों पर स्वयं ही कुछ न खाने की धारणा उत्पन्न हो जाती है। प्रकृति के इस संकेत पर अमल करने से रुग्ण मनुष्य शीघ्र स्वस्थ हो जाता है। अवज्ञा या उपेक्षा करने से तीव्र दण्ड भी भोगना पड़ता है। प्रकृति ने यह सहज ज्ञान पशुपक्षियों को भी वितरित किया है और ये प्राणी दृढ़तापूर्वक इसका पालन करते हैं।

उपवास की महत्ता इसी से प्रकट है कि प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने दैनिक कार्य-कलाप में स्थान दिया है। उनका दृष्टिकोण यह है कि 'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यंमूल कारणम्' प्राय: यही उद्देश्य सबका है। उपवास के सम्बन्ध में आयुर्वेद ने विस्तार से इसे अपनाया है। उपवास के प्रकार-भेद, आवस्थिक उपवास, उपवास सदुपयोग के लाभ असद् की हानियाँ और लंघन किनको विधेय है, किनको त्याज्य है, सम्यक् लंघन के लक्षणादि पर पूर्ण विचार किया गया है कि 'अभूमिजं निराकारं पथ्यं पड्रस वर्जितम् चरकस्य प्रमाणेन वद वैद्य किमौषधम् ? (लंघनम् इति)। प्राचीन सम्भाषा परिषदों में ऐसे बौद्धिक प्रश्नों की परिपाटी सूचक उपर्युक्त प्रश्न है।

यावतीय रोगों का मूल कारण—'अनात्मबंत: पशु बद्भुजते येऽप्रमाणत: रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्रापुवन्ति हि।' 'सर्वेषामेवरोगाणांनिदानं कुपितामला:। तत्प्रकोपस्यनुप्रोक्तं विविधाहित सेवनम् ॥' अत: उपवास सीधे रोग कारण को दूर करने में सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक उपाय माना गया है। उचित उपवास से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। उपवास को भूखों मरना मानने वालों को यह भ्रम दूर कर देना चाहिए। उपवास का साधारण अभिप्राय बिना सच्ची भूख के अन्नादि का परित्याग है। स्वास्थ्य को चिरस्थायी रखने की दृष्टि से धर्माचार्यों और आयुर्वेदज्ञों ने साप्ताहिक अथवा रवि, शनि, मंगलवार अथच अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्यादि तिथियों पर नियमित रूप से अपनाने का परामर्श दिया है। इस आचरण से स्वत: ही कायिक संशोधन के साथ-साथ पाचन यन्त्रों को बल प्राप्ति होती रहती है।

उपवास का एक अभूतपूर्व, सारगर्भित एवं आदरणीय महत्व हमें बाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में प्राप्त होता है। महाराज दशरथ रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक करने की पूर्व-सन्ध्या में अपने कुलगुरु वशिष्ठ के द्वारा एक संदेश भेज रहे हैं, यथा—

'गच्छेपवासं काकुस्थं कारपाद्य तपोधन।
श्रेयसे राज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रतम् ॥
प्रसन्नस्ते पिताराम यत् त्वम् राज्यमवाप्स्यसि।
उपवासं भवानद्य करोतु सीतया सह ॥
इत्युक्त्वाच तदा रामपपुवासं दृढ़ व्रत:
मंत्रवत् कारयामास वैदेह्या सहित मुनि: ॥
वा० अयो०

श्री वशिष्ठ जी के द्वारा श्री रामचन्द्र को यह संदेश दिया है कि आपका कल राज्याभिषेक होगा और आज राम और सीता दोनों उपवास व्रत का आचरण करें।

देखना यह है कि आज की प्रथा के अनुसार जहां राज्याभिषेक हो अथवा अन्य कोई मांगलीय समारोह हो वहां उपवास का क्या प्रश्न हो सकता है ? वहां तो पार्टियां, महफिलें, दावतें और आमोद-प्रमोद के अम्बार जुट जाते हैं।

इस उपवासादेश का कोई अर्थ हो सकता है तो केवल यही कि उपवास के द्वारा उदर निर्विकार रहता है। उदर के निर्विकार होने से आत्मा-मन और इन्द्रियां प्रसन्न और स्वस्थ रहकर भविष्य में आने वाले उत्तरदायित्व के प्रति चतुर्दिक से मनुष्य सावधान रहे। हमारे बड़े-बड़े महान पुरुषों के स्मृति दिवसों पर व्रत रखने की प्रथा सम्भवतः इसी हेतु प्रारम्भ की गयी थी कि उस दिन निराहार रहकर भगवद् पूजन के द्वारा मन को शांत करके भविष्य के प्रति शांत आत्मा और वातावरण में चिन्तन किया जाय और अन्तरात्मा के निर्देशानुसार आचरण स्थिर किया जाय। महात्मा गांधी इसके ज्वलत उदाहरण हैं।

आज उपवास के महत्व और इस प्रथा से लाभान्वित होने के लिए पश्चिमी देशों के डाक्टर, बुद्धिजीवी, स्वास्थ्य-प्रचारक संस्थाएं अपने देशों के नष्टप्राय स्वास्थ्य के रक्षार्थ प्रचार, प्रसार और उपवासालय खोलने में दत्तचित्त हैं। नये-नये अनुभव बड़ी लगन से प्राप्त करके श्रेष्ठ मुद्रणो द्वारा जनता तक पहुँचाए जा रहे हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के आयुर्वेद प्रदर्शित अन्य दिन-चर्या, रात्रि चर्या और ऋतु चर्या को अपनाने का समय भी समीप आ रहा है।

हम प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसंधाओं के हृदय से कृतज्ञ हैं कि उन्होंने आयुर्वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों को मूलतः अपनाते हुए उन्हें नए रूप में युग की आवश्यकतानुसार प्रदर्शित करके प्राचीन ऋषियों की दूरदर्शिता को स्वीकार किया है। अतः निसर्गोपचार आयुर्वेदीय मान्यताओं और सिद्धांतों की ही व्याख्या है।

आयुर्वेदीय
क्रिया·शारीर

आयुर्वेदीय शल्यतंत्र का अतीत और वर्तमान

श्री शिशिर पाठक
भारतीय चिकित्सा भवन, तेलीवाड़ा बाजार, दिल्ली

शल्य तंत्र का अतीत ज्ञात करने के लिए हमें भारत का प्राचीन इतिहास देखना पड़ेगा। भारतीय अतीत का अवलोकन प्राचीन धार्मिक, ऐतिहासिक व दार्शनिक ग्रंथों से ही हो सकता है। किसी भी देश की अमूल्य निधि उस देश के प्राचीनतम ग्रंथ ही होते हैं। इस दृष्टिकोण से 'पुराण' ही सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। इन प्राचीन ग्रंथों में 'वेदों' को सबसे प्राचीन और प्रामाणिक महत्व दिया जाता है। वेदों के अध्ययन से ही ज्ञात होता है कि *आयुर्वेद अथर्ववेद का एक अंग है।

मानव सृष्टि के साथ रोग-विकार का सम्बन्ध रहा है। इसीलिए विद्वानों ने 'शरीर व्याधि मंदिरम्' काव्य की रचना कर डाली। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन परिवर्तित होता चला गया। इस परिवर्तन का उसके स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पड़ने लगा। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य प्रकृति से दूरस्थ होता गया और विभिन्न प्रकार के रोग-विकार उसे घेरते चले गए। आधुनिक युग में मनुष्य प्रकृति के सम्पर्क से बिलकुल कट-सा गया है। इससे उसका जीवन (स्वास्थ्य) कष्ट दायक, भयंकर रोगों से त्रस्त रहने लगा है। प्राचीन काल में हृदय व केंसर रोगों का सकेत तक कठिनता से मिलता था। आधुनिक युग में इन घातक रोगों के कारण विकसित देशों में सर्वाधिक मृत्यु हो रही है।

औद्योगीकरण और वैज्ञानिक प्रगति के साथ जीवन में मशीनीकरण का अत्यधिक विकास हुआ है। लोगों में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, अस्पर्शयता का भी विकास हुआ है। प्रत्येक जाति, धर्म, राष्ट्र एक दूसरे से उन्नत और आधिपत्य के लिए युद्धोन्नत रहा है जिसके परिणामस्वरूप संक्रामक और जघन्य रोगों की भांति शल्यांक रोगों का भी तीव्र विकास हो रहा है। प्राचीन काल में भारत में भी ऐसे युद्ध अक्सर होते रहते थे। इन युद्धों में जन-जीवन को भारी क्षति उठानी पड़ती थी। इन युद्धों में क्षत-विक्षत लोगों के लिए शल्य-तंत्र का प्रारम्भ किया गया।

विश्व में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति ही सबसे प्राचीन है। इसकी प्राचीनता के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वेद, पुराणों के माध्यम से ज्ञात होता है कि मानव जाति को रोगों से सुरक्षा व दीर्घ आयु के लिए ब्रह्मा ने 'आयुर्वेद' की रचना की। शल्य तंत्र (सर्जरी) भी आयुर्वेद का एक विशिष्ट अंग है। प्राचीन काल में सुर और असुर (राक्षसों) में परस्पर अधिकतर युद्ध हुआ करते थे। युद्ध में शरीर को अधिक क्षति पहुँचती थी। सैनिकों के अंग कट जाते थे। ऐसी स्थिति में शल्य चिकित्सा की अत्यंत आवश्यकता होती थी।

सुर और असुर युद्ध में सुर (देवों) को अधिक हानि उठानी पड़ती थी क्योंकि सुरों की अपेक्षा असुर अधिक शक्तिशाली और क्रूर थे। ऐसी स्थिति में सुरों ने विष्णु से सुरक्षा की प्रार्थना की। विष्णु ने सुरों को आश्वासन दिया कि वह पृथ्वी पर जन्म लेकर सुरों को रोग मुक्त करेंगे। विष्णु पुराण से ज्ञात होता है कि *विष्ण ने धन्वन्तरि के रूप में जन्म लेकर सुरों को रोग, भय से मुक्त किया। धन्वन्तरि ने ही देवोपयोगी आयुर्वेद को जनसाधारण के उपयोगी बनाया। इससे पूर्व आयुर्वेद

---

* 'अथर्ववेदस्थ आयुर्वेद उपर्वेद:' (चरण व्यूह)

*"अहं हि धन्वन्तरिरादि देवो
जरारुजा मृत्युहरोऽमराणाम ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतः प्राप्तोऽस्मिगां
भूम इहोपदेष्टम् ॥" —विष्णु पुराण

केवल देवताओं के लिए प्रयुक्त होता था।

शल्य-तंत्र को आयुर्वेद में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। शल्य-तंत्र, शालाक्य-तंत्र, वाजीकरण, रसायन शास्त्र, काय चिकित्सा, अगद तंत्र, कौमार भृत्य और भूत-प्रेत विद्या अष्ठ भागों में शल्य-तंत्र ने अधिक उन्नति की।

प्राचीन काल में चिकित्सा-पद्धति को तीन वर्गों में विभक्त किया गया था। *दैवी या रस चिकित्सा, वनौषधि, या मानवी चिकित्सा और आसुरी या शस्त्र चिकित्सा। लेकिन मनुष्य के अधिक संघर्षरत रहने व ईर्ष्या-द्वेष के कारण परस्पर अधिक युद्ध होते थे। युद्ध में क्षत-विक्षत होने पर आसुरी अर्थात् शल्य (सर्जरी) की अधिक आवश्यकता पड़ती थी। चिकित्सकों ने भी शल्य-तंत्र को तीव्र गति से विकसित किया।

शल्य तंत्र की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न ग्रंथों व पुराणों में वर्णन मिलता है। आयुर्वेद की रचना ब्रह्मा ने की। ब्रह्मा ने सबसे पहले आयुर्वेद की शिक्षा दक्ष को दी। दक्ष से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इंद्र को यह ज्ञान प्राप्त हुआ। ऋषि भरद्वाज को इंद्र से यह ज्ञान मिला था। आत्रेय मुनि ने भरद्वाज से ज्ञान प्राप्त करके ईसा से छः शताब्दी पूर्व तक्षशिला में अपने शिष्य अग्निवेश, पराशर, भेल, हारीत, जतूकरण और क्षारपाणि को दिया। कुछ शास्त्रों के अनुसार शल्य-तंत्र (सर्जरी) का ज्ञान इंद्र से धन्वन्तरि को प्राप्त हुआ था जबकि कुछ अन्य शास्त्रों में सूर्य द्वारा धन्वन्तरि को ज्ञान प्राप्त होने की बात कहते हैं। धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत ने अनेक आदेशों को ग्रन्थबद्ध किया था। बाद में वह ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' के नाम से लोकप्रिय हुआ।

सुश्रुत संहिता के विषय में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। सुश्रुत तो अग्निवेश के समकालीन प्रतीत होते हैं। प्रारम्भ में सुश्रुत संहिता शल्यतन्त्र का विशिष्ट ग्रंथ था लेकिन द्वितीय शताब्दी में कुछ अन्य लेखकों द्वारा इसमें कुछ अन्य लेख भी सम्मिलत कर दिये गये। वर्तमान में प्राप्त ग्रन्थों में सुश्रुत संहिता ही शल्यतन्त्र का एक मात्र ग्रन्थ है। यह लगभग २५०० वर्ष पुराना है। सुश्रुत संहिता में अनेक ऐसे ग्रन्थों का वर्णन मिलता है जिनका आज तक कुछ पता नहीं चल सका है। * इसमें वर्णित औषधेनव, औरभ्र, वृद्ध, सुश्रुत-तन्त्र, पौष्कलावततन्त्र वैतरणतन्त्र, भोजतन्त्र आदि भी शल्यतन्त्र के विशेष ग्रंथ थे।

शल्य चिकित्सा का उत्कर्ष

शल्य तन्त्र तथा शालक्य तन्त्र आयुर्वेद के मुख्य अंग हैं। इससे स्पष्ट होता है कि शल्य तन्त्र भी आयुर्वेद के समान ही प्राचीन है। शल्य तन्त्र के ग्रन्थों से पता चलता है कि प्राचीन काल में इस चिकित्सा-पद्धति ने बहुत अधिक उन्नत थी। ** युद्ध के समय शल्य चिकित्सक (सर्जन) सैनिकों के साथ जाते थे। वे कृत्रिम अंग लगाने के साथ, विभिन्न शल्य कर्म (सर्जरी) किया करते थे। महाभारत-युद्ध में भीष्मपितामह के क्षत-विक्षत हो जाने पर शल्य चिकित्सकों ने कई मास तक उन्हें जीवित रखा था।

ग्रंथों में शल्य कर्म (आपरेशन) के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन काल में अश्विनी कुमारौ नामक प्रसिद्ध चिकित्सक थे। एक बार उनलोगों ने सुर-असुर युद्ध में यज्ञ का सिर कट जाने पर शल्य चिकित्सा द्वारा जोड़ दिया था। इस घटना का वर्णन शतपथ ब्राह्मण, तै ब्राह्मण तथा***तैत्तिरीय संहिता में भी मिलता है।

---

* सा दैवि प्रथमा सुसंस्कृतसैर्या निर्मिता सद्रसै,
च्चूर्ण स्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदन लास्यलक्ष्मणं कृताचाराधमा साऽसुरी
त्यायुर्वेद रहस्य मेतदखिलं तिस्त्रश्चिकित्सा मताः॥

—रसपद्धति

* 'औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेष्मणां शल्यतंत्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्॥

—सुश्रु

** 'उपतिष्टन्नथो वैद्या शल्योद्धरणकोविदाः।
सर्वोपकरणैयुक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः॥'

—महाभारत, भीष्मपर्व

***'यज्ञस्य शिरोच्छित ते देवा अश्विनावब्रुवन् भिष
वै स्थ इंद्र यज्ञस्य शिरः प्रतिधतमिति तावब्रूतां
वृणा वहे ग्रह एवं नावत्रापि गृह्यतामिति ताभ्यामे
माश्विन मगृहणन्ततो वै तो यज्ञस्य शिरः प्रत्यघताम्

—तैत्तिरीय संहिता ६.४।६

*अश्विनी कुमारों ने खेल राजा की संबंधी स्त्री विशपला के युद्ध में घायल हो जाने पर कृत्रिम अंग लगाकर स्वस्थ बनाया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है,कि प्राचीन काल में शल्य चिकित्सक कृत्रिम अंग लगाने में कुशल थे।

शल्य तंत्र के अन्य ग्रंथों के न मिलने से दूसरे ग्रंथों से पता चलता है कि आर्य संस्कृति के अति प्राचीन काल में शल्य तंत्र के चिकित्सकों हेय दृष्टि से देखा जाता था। (तैत्तरीय संहिता ६-४-९-१, ऐतरेय ब्राह्मण १-१८) उस समय दूसरे चिकित्सकों को जितना भी सम्मान नहीं दिया जाता था। शल्य चिकित्सकों को यज्ञ में भाग नहीं लेने दिया जाता था। **अश्विनी कुमारों के अनुसार इस बात का पता चलता है। अश्विनी कुमारों ने लिखा है: 'प्रारंभ में शल्य चिकित्सकों को उचित सम्मान और यज्ञ में भाग नहीं लेने दिया जाता था लेकिन यक्ष का सिर जोड़ने के बाद उन्हें भी सम्मान दिया जाने लगा।' सुश्रुत संहिता में उक्त घटना इस प्रकार वर्णित है।

बुद्ध काल में जीवक द्वारा एक श्रेष्ठी के पुत्र के कपाल शल्य कर्म (आपरेशन) का वर्णन मिलता है। जीवक ने कपाल की शल्य-क्रिया द्वारा एक कीटाणु निकाल कर स्वस्थ बनाया था। इस प्रकार शल्य-तंत्र के उत्कर्ष के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

*महर्षि चरक ने चरक संहिता में रोग विज्ञान तथा निदान के विषय में विस्तृत संकलन किया है। चरक ने भी आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र-चिकित्सा (सर्जरी) का वर्णन किया है।

प्राचीन काल में राजकीय शल्य चिकित्सकों के अतिरिक्त रूप में भी शल्य चिकित्सक स्वतंत्र रूप में व्यवसाय किया करते थे।

प्राचीन काल में शल्य तंत्र की शिक्षा का विशेष प्रवन्ध था। इन शिक्षा-केन्द्रों को राजकीय अनुदान और संरक्षण मिलता था। शल्य तंत्र के विद्यार्थियों को शरीर शास्त्र का विशेष ज्ञान कराया जाता था। पहले चूहे, विल्ली, कुत्ते आदि पर शल्य कर्म का अभ्यास कराया जाता था। उसमें सफल होने पर मृत शरीर पर शल्य-परीक्षण कराये जाते थे। *सुश्रुत के अनुसार आयुर्वेद के प्रत्येक विद्यार्थी के शवच्छेद का पूरा ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य था।

शवच्छेद परीक्षण द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों का ज्ञान प्राप्त करने पर ही विद्यार्थी को फल, मृत शरीर, पुस्तमय पुरुष, हरिण अथवा अन्य जन्तुओं पर शस्त्र कर्म का अभ्यास कराया जाता था। अनेक परीक्षाओं में सफल होने पर विद्यार्थी को शल्य कर्म की अनुमति मिलती थी।

प्राचीन काल में बहुत ही अच्छे धातु के यन्त्र, शस्त्र बनाये जाते थे। आर्य लोग यंत्र शस्त्र बनाने में बहुत निपुण थे। उन्हें स्टील के विषक्रमण से सुरक्षित (एंटी-सेप्टिक) धातु के यंत्र-शस्त्र बनाने की विधि का ज्ञान था। लौह और इस्पात (स्टील) के यंत्र-शस्त्रों के विषय में नागार्जुन ने वर्णन किया है। चक्रपाणि की टीका करते हुए शिवदास ने पतंजलि को लौह = विशेषज्ञ बताया है। भारत में बने यंत्र-शस्त्र विदेशों में विशेष कर अरब देशों में प्रसिद्ध थे।

---

*चरित्रम् हिं वेरिव्र च्छेदि पर्णम्।
आजा खेलस्य परितक्म्यायायाम् ॥
सद्यो जंघयामायसीं विशपलायै।
धनेहिते सर्त्तवे प्रत्यत्तम् ॥

— ऋग्वेद ऋचा १५-मंडल १

—सूक्त ११६॥

**'एतद्धि अंग प्रथमम्, प्रागभिघात व्रण सरोहात् यक्षशिरः सन्धानाच्च श्रूयते हि, यथा रुद्रेण शिरश्छिन्नमिति। ततो देवा अश्विनावभिगम्योचुः 'भगवन्तौ ! नः श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः भवद्भ्यां यज्ञस्य शिरः सन्धातव्यमिति।'

तावू चतुरेवमस्तु। अथ तयोरर्थे देवा इंद्रं यज्ञ भागेन प्रासादयन्। 'ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितमिति।'

—सुश्रुत संहिता

*दाहे धान्वंतरीयाणामत्रापि भिषजां वलम्।
क्षार प्रयोगे भिषजां क्षारतंत्रविदां वलम् ॥

—चरक संहिता

**'तस्मान्नि संशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता।
शोधायित्वा मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्ग विनिश्चयः ॥
तस्मात् समस्त गात्रं....देहं...... लक्षेच्चक्षुषा।

—सुश्रुत, शारीर स्थानम्।

इन शास्त्रों का विभिन्न प्रकार के शल्य कर्मों में उपयोग किया जाता था। प्राचीनशल्य-चिकित्सक (सर्जन) इन शस्त्रों द्वारा [१]विद्रधि भेदन, अस्थिभङ्ग तथा सन्धि विश्लेष को लक्षणों द्वारा ज्ञात करके आंछन, पीड़न और ऋजूकरण द्वारा चिकित्सा करते थे। जलोदर, मूत्रज वृद्धि का मूत्र निकालना, अर्श, भगंदर, अश्मरी की शस्त्र क्रिया, मूढ़ गर्भ में उत्कर्षण, ऋजूकरण आदि क्रियाओं द्वारा स्वाभाविक मार्ग से प्रसूति कराने में अति निपुण थे।

आधुनिक युग की भांति प्राचीन चिकित्सक भी मूढ़गर्भ (गर्भ में शिशु की मृत्यु हो जाने पर) शास्त्रों द्वारा उदर का छेदन (आपरेशन) करके गर्भ से बाहर निकालते थे। मोतियाबिन्द के सफल शल्य कर्म द्वारा रोगी को स्वस्थ बनाते थे। अनेक ग्रंथों में* शिरावेध का भी वर्णन मिलता है।

इसके अतिरिक्त शल्य चिकित्सक चर्मारोपण (प्लास्टिक सर्जरी) में अत्यन्त निपुण थे। नासिका और कर्ण के कट जाने पर चर्मारोपण द्वारा ठीक किया जाता था।** श्लीपद से वंक्षण त्वचा के विकृत हो जाने पर शुष्क ग्रंथि के प्रयोग करने की विधि सुश्रुत ने प्रारंभ की।

प्राचीन काल में कपाल शल्य क्रिया का भी वर्णन मिलता है। बौद्धकालीन मोहा बाग तथा बल्लमकृत*** भोज प्रबन्ध में जीवक द्वारा कपाल शल्य क्रिया का वर्णन किया गया है।

आधुनिक युग में शल्य तंत्र (सर्जरी) ने पर्याप्त विकास किया है। आधुनिक शल्य तंत्र की उन्नति का मुख्य कारण है आधुनिक चेतना शून्य करने वाली संज्ञाहारी औषधियां। क्लोरोफार्म ने शल्य कर्म (आपरेशन) में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। कुछ विशेषज्ञों का विचार है कि प्राचीन काल में शल्य चिकित्सकों के जीवाणु तथा संज्ञाहारी औषधियों का ज्ञान नहीं था। पर विशेषज्ञों का ऐसा सोचना गलत है। अनेक प्राचीन ग्रंथों में संज्ञाहारी औषधियों का वर्णन मिलता है।

भोज प्रबन्ध में शस्त्र कर्मों में मोहनीचूर्ण के प्रयोग करने का वर्णन मिलता है। उस समय के चिकित्सक शस्त्र कर्म से पूर्व धतूरे और मद्य का सेवन कराते थे। इससे रोगी चेतन शून्य हो जाता था। प्राचीन शल्य-चिकित्सक व्रण सीने के लिए* आंत का उपयोग करते थे।

आधुनिक विशेषज्ञों का भी यह भी अनुमान गलत है कि प्राचीन चिकित्सकों को जीवाणुओं का नहीं ज्ञान था। वे इन जीवाणुओं से सुरक्षा के लिए भी पूरा पूरा ध्यान रखते थे। शल्य क्रिया से पहले शल्य चिकित्सक आसपास के वातावरण को हवन-सामग्री द्वारा 'शुद्ध' कर लिया करते थे। जीवाणुओं द्वारा व्रणों को विकृत बनाने के विषय में भी चिकित्सक जानते थे। भूत-प्रेत चिकित्सा के अन्तर्गत वे जीवाणुओं की ही परिकल्पना करते थे।** व्रणों का विषहारी औषधियों द्वारा प्रक्षालन करते थे। व्रणों रोगी के बिस्तर, वस्त्र तथा अन्य उपयोग में आने वाली वस्तुओं को धूपन द्वारा 'शुद्ध' करते थे।

आयुर्वेद के आधुनिक शल्य ग्रंथों में सुश्रुत संहिता ही एकमात्र विशिष्ट ग्रंथ उपलब्ध है। सुश्रुत ने शल्य-चिकित्सा के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त शल्य-कर्मों में उपयोगी यंत्र-शस्त्रों का वर्णन किया है। सुश्रुत ने प्राचीनकाल में शल्य-चिकित्सा के यन्त्रों के निर्माण और उपयोग के विषय में लिखा है।

सुश्रुत ने शल्यतन्त्र में उपयोगी यन्त्रों को मुख्य आहरणोपाय:, क्रिया सौकर्य तथा विशोधन आदि तीन वर्गों

---

* Stone in Bladder

** 'पादो निरस्तमुष्कस्य जलेन प्रोक्ष्य चाक्षिणी।
प्रवेश्यौ तुन्न सेवन्यां मुष्कौ सीव्येत्ततःपरम् ॥'
—सुश्रुत संहिता

*** 'ततस्ताव परिजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरः कपालमादाय तत्करोटिका पुटे स्थितं शफरकलं गृहीत्वा कस्मिंश्चिद्भाजने निक्षिप्य सन्धानं कृत्वा कपालं यथावद्... संजीवन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तददर्शयताम्।'
—भोज प्रबन्ध

* 'अजमेषादीनां शुष्कान्त्रं तात इति ख्यातं शस्त्रछेदनानन्तरं सूक्ष्मशिरादि बन्धादिषु युज्यते।'
—वाग्भट्टार्थ कौमुदी

** 'सुरसादिर्हितस्तत्र धावने पूरणे तथा।
सप्तपर्ण करंजार्कनिंबं राजादनस्य च ॥
हिता गोमूत्रपिष्टाश्च सेकः क्षारोदकेन च।
व्रणे निंबवचाद्यं च धूपनं संप्रयुज्यते।
सक्षौमार्ण सर्पिभि धूपन नांगैश्च धूपयेत् ॥
सर्षपारिष्ट पत्राभ्यां सर्पिसा लवणेन च।
द्विरह्नः कारयेत् धूपं दशरात्रमतंद्रितः ॥'
—सुश्रुत संहिता

में विभक्त किया है। इनमें आहरणोपाय: के अंतर्गत स्वस्तिक, संदंश और ताल-यन्त्रों का वर्णन किया है। क्रिया सौकर्स यन्त्रों में अर्शीयंत्र और अंगुलित्रापाक यन्त्र तथा विशोधन यन्त्रों में मूत्रमार्ग विशोधक, तालयन्त्र आदि होते हैं।

शल्य चिकित्सा में उपयोगी शास्त्रों के अतर्गत सुश्रुत ने २४ तीव्र धारवाले छेदन और १०१ साधारण शास्त्रों का वर्णन किया है। प्राचीन शस्त्रों की आकृति आधुनिक शस्त्रों से वहुत अधिक मिलती है। विना धारवाले शास्त्रों को छः वर्गों में विभक्त किया है। * स्वस्तिक संदंश नाड़ी, ताल शलाका और उपयन्त्र। इनके भी अनेक भेदों का वर्णन किया है। इनमें स्वस्तिक यन्त्र २४, संदंश २, ताल २, नाड़ी यन्त्र ८, और शलाका यन्त्र २४ तथा उपयन्त्र २५होते हैं।

शस्त्र शब्द तीव्र धारवाले उपकरणों के लिए ही प्रयोग किया जाता है। शल्य कर्म में उपयुक्त काटने वाले शस्त्र २० प्रकार के होते हैं। ** इनमें मंडलाग्र, करपत्र, वृद्धि पत्र, नख शस्त्र, मुद्रिका, उत्पल पत्र, अर्धधार, सूची, कुशपत्र, आरीपत्र, शरारिमुख, अन्तर्मुख, कुठरिका व्रीहिमुख, आरा, वडिश, त्रिकूर्चक, वेतस पत्रक, दंतशकु और एषणी।

प्राचीनकाल में सभी शस्त्र पशु पक्षियों की मुखाकृति के अनुरूप बनाए जाते थे। इससे शल्य कर्म में विशेष सहायता मिलती थी। 'अष्टाँग संग्रह' में वाग्भट ने स्वस्तिक यन्त्रों के विषय में लिखा है। ***'स्वस्तिक यन्त्र अठारह अंगुल के बराबर होते हैं। इनमें सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, तरक्षु (चरख), रीछ, चित्रक, गीदड़, मृग, व.संक काक, कंक, (बगुला), कुरर (टिटिहरी), चास (बहरी) शराघाती (बाज), उलूक, चिल्ली (चील), श्येन, गृध्र (गिद्ध), क्रौंच, भृंगराज, अंजलिकर्ण, अवभञ्जन, नन्दि मुख वाले और अंकुश के समान वक्र आकृति के होते थे।

सुश्रुत ने शस्त्रों के विषय में भी अपनी संहिता में वर्णन किया है। शस्त्रों में आठ प्रकार के दोष होते हैं। अशुद्धधातु के बने शस्त्रों के उपयोग के लिए सुश्रुत ने पहले ही मना कर दिया था। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन शल्य चिकित्सक धातुओं से होने वाले विषक्रमण (सेप्टिक) के विषय में पहले से ही जानते थे। इसीलिए वे विषहारि (एंटीसेप्टिक) के शस्त्र बनाते थे। *शस्त्रों में निम्न दोष होते हैं। टेढ़ा होना, धारा कुण्ठित, खंडित हो जाना, धारा खुरदरी, बहुत स्थूल या अधिक पतले, अधिक लम्बे और छोटे होना।

प्राचीन काल में शस्त्रों पर तीन प्रकार से धार (पानी) चढ़ाते थे। क्षार से, जल से और तैल से। इन धार लगे शस्त्रों का उपयोग अलग-अलग शल्य कर्मों में किया जाता था।

शल्य तंत्र का ह्रास : शल्य तंत्र के ह्रास के अनेक कारण हैं। ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शल्य तंत्र ने जिस तीव्र गति से पर्याप्त उन्नति की उसका ह्रास भी उस गति से हुआ। इस अवनति में मनुस्मृति का विशेष हाथ रहा है। मनु के समय से लोगों ने शवच्छेद को घृणित कार्य मान कर छोड़ दिया। शवच्छेद का ज्ञान न होने के कारण शल्य चिकित्सा-विकृत होने लगी।

*मनु के विचारों के प्रसार से समाज में शल्य-चिकि-

---

* तानि षट्प्रकाराणि; तद्यथा—स्वस्तिक यंत्राणि, संदंशयन्त्राणि, ताल यंत्राणि, नाडीयन्त्राणि, शलाकायन्त्राणि, उपयन्त्राणि चेति ॥ —सुश्रुत संहिता अ० ७

** 'विंशतिः शस्त्राणि। तद्यथा—मण्डलाग्रकर पत्र पत्र वृद्धिपत्र-नखशस्त्र मुद्रिका कोत्पलपत्र अर्धधार सूची कुश पत्राटी मुशरारिमुखांतर्मुखत्रिकूर्चक कुठारिका व्रीहिमुखारावेतसपत्र कवडिशदन्त शङ्केषण्य इति।'

***'तत्र स्वस्तिक यंत्राणि—अष्टादशांगुल प्रमानि, सिंहव्याघ्रवृकतरक्षवृक्षद्वीपिमार्जारश्रृगाल मृगैर्वारुक काककंक कुररचासभास शशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रक्रौंचभृंग राजाञ्चलि कर्णवभञ्जननंदि मुखमुखानि, मसूराकृतिभिः कीलैर्बद्धानि, मूलेऽङ्कुश वदावृतवाराङ्गणि अस्थिविदष्ट शल्योद्धरणार्थमुपदिश्यन्ते।'

—सुश्रुत संहिता सू० ६, अ०७

* 'तत्र वक्रं कुण्ठं खण्डं, खर धारम्, अतिस्थूलम्, अति तुच्छम्, अतिदीर्घम्, अतिह्रस्वम् इत्यष्टौ शस्त्र दोषाः। अतो विपरीत गुणमाददी अन्यत्र करपत्रात्; तद्धि खरधारमस्थिच्छेदनार्थम्।' —सुश्रुत संहिता

* 'चिकित्सकान् देवलकान् मांसविक्रयिणस्तथा।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥
मनु० ३·१५२

“चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्ट भोजनः।
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्यायान्त मनिर्दिशम् ॥”
—मनु०४।११२

त्सकों का सम्मान कम होता गया। 'शल्य चिकित्सकों का स्पर्श किया आहार अग्राह्य है' मनु स्मृति के इस वाक्य ने शल्य तंत्र पर गहरा प्रहार किया। उच्चकुल के लोगों ने चिकित्सा का कार्य छोड़ दिया। धीरे-धीरे यह कार्य कुछ छोटे और अशिक्षित लोगों ने अपना लिया। लोगों में भक्ति-भाव अधिक बढ़ने से अंधविश्वास बढ़ने लगे। लोग पंडे पुजारियों से मंत्र, झाड़-फूंक करवाने लगे।

नाई लोगों ने जराह, शल्य कर्म करने प्रारम्भ कर दिए। बौद्ध धर्म के प्रसार ने शल्य तंत्र को बिलकुल नष्ट कर दिया। 'अहिंसा परमो धर्मः' के वाक्य ने लोगों में शल्य-कर्म के प्रति घृणा का व्यापक प्रसार किया। राज्य की ओर से भी शल्य-कर्मों को निषेध किया गया। स्वयं महात्मा बुद्ध ने गुदा के समीप शल्य-कर्मों का निषेध किया। ऐसा होने से धीरे-धीरे शल्य-तंत्र मृतप्राय हो गया।

शल्य तंत्र का वर्तमान

बीसवीं शताब्दी में एलोपैथी, होम्योपैथी व प्राकृतिक चिकित्सा ने पर्याप्त उन्नति की। भारत में आयुर्वेद उतना ही पिछड़ा है। देश की परतंत्रता ने आयुर्वेद को बहुत हानि पहुँचाई है। प्रत्येक शासक अपनी शिक्षा, संस्कृति व विचारों को मान्यता देता है। मुस्लिम प्रशासन में यूनानी तिब्बी, हकीमी पद्धति को राजकीय सहयोग मिलने तथा आयुर्वेद की अवहेलना होने से शल्य तंत्र का ह्रास होता गया।

भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान भी आयुर्वेद को उपेक्षित रखा गया। देश में एलोपैथी का तीव्र गति से प्रसार हुआ। एलोपैथी के अंतर्गत शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) तो तीव्र गति से विकसित हुई पर आयुर्वेद का प्रमुख शल्य-तंत्र उपेक्षित ही रहा।

देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई लेकिन आयुर्वेद के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हुआ। आयुर्वेद की उपेक्षा से शल्य-तंत्र में कोई प्रगति नहीं हुई। एलोपैथी चिकित्सा की भांति आयुर्वेद को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। आयुर्वेदाचार्यों को डाक्टर की भांति उचित वृत्ति और सम्मान नहीं दिया गया। आयुर्वेद महाविद्यालयों के अभाव के कारण आयुर्वेद की शिक्षा का उचित प्रबंध न होने के कारण शल्य तंत्र निर्जीव ही बना रहा।

पाश्चात्य देशों में जबकि शल्य कर्म (सर्जरी) के नित्य नये व अद्भुत प्रयोग किए जा रहे हैं, आयुर्वेद की प्रमुख शाखा शल्य-तंत्र असहाय पड़ा है। इस अवनति के पीछे हमारी अधिक ईश्वर भक्ति, आस्था भी सहायक बन रही है। अपने अंधविश्वास के कारण प्राचीन ग्रंथों में कुछ परिवर्तन करना सम्भव नहीं। इसलिए शल्य-कर्म के नए परीक्षण नहीं किए गए।

आयुर्वेद चिकित्सा को अब इस दिशा में पर्याप्त रूचि लेनी चाहिए। प्रारम्भ में बड़े-बड़े शल्य कर्म करने सम्भव नहीं हो सकते लेकिन चिकित्सक व्रणोपचार, विद्रधि-भेदन, जख्म सीने, रक्तस्राव आदि रोकने के शल्य कर्म प्रारम्भ करने चाहिए। आयुर्वेद महाविद्यालयों में शल्य-चिकित्सा की शिक्षा आयुर्वेद व पाश्चात्य ढंग से दी जाए। प्राचीन आयुर्वेद व शल्य ग्रंथों का पुनर्लेखन कराना भी अनिवार्य है।

सरकार को भी इस दिशा में विशेष सहायता करनी पड़ेगी। अपने देश की प्राचीन, संस्कृति व सर्वोत्तम चिकित्सा-पद्धति को पुनर्जीवित करके पर्याप्त उन्नति करके हम जनसाधारण का उपकार ही नहीं करेंगे बल्कि विश्व में अपनी चिकित्सा-पद्धति की शक्ति के आधार पर सम्मान भी प्राप्त करेंगे।

बैद्यनाथ
लवनभास्कर चूर्ण
कब्जियत-नाशक और अग्नि-वर्धक सुस्वादु चूर्ण

चिकित्सा जगत की प्रगति

आनुवंशिक व्याधियां क्या घातक होती हैं ?

अकादमिशियन व्लीदीमीर तिमाकोव

(सोवियत चिकित्सा विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष)

चिकित्सीय जनन विज्ञान ने—जो पिछले कुछ दशकों में ही प्रभावकारी हुआ है—यह पता लगाया है कि बहुत-सी व्यापक व्याधियां या उनकी ओर प्रवृत्ति "वंश परम्परा से मिलती हैं। हाइपरटोनिया और धमनीकाठिन्य की ओर पहले से ही प्रवृत्ति रहने से, इन व्याधियों की संभावना ३ या ५ गुनी बढ़ जाती है, यह बात सिद्ध हो चुकी है। और इसका असर जन्म-मृत्यु और स्वास्थ के आंकड़ों पर भी पड़े बिना नहीं रहता। चिकित्सा-विज्ञान को मनुष्य की कोई पन्द्रह सौ आनुवंशिक व्याधियों की जानकारी है। उनकी रोकथाम और चिकित्सा अब एक सैद्धान्तिक समस्या नहीं रही है, बल्कि एक महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक कार्य हो गया है।

ममुष्य के पूरे जीवन में मानव शरीर यंत्र के आनुवंशिक उपकरण में कई परिवर्तन-विकार—होते हैं। ये परिवर्तन किस आन्तरिक "भौतिकी और रसायन" से प्रभावित होते हैं ? यह बात आज एक पहेली है। इन विकारों का स्वरूप कई पहलुओं से अभी समझा नहीं जा सका है, इसलिए इस तरह के विकार स्वतः स्फूर्त विकार कहे जाते हैं। उनका अनुपात बहुत नहीं है। परन्तु कठिनाई यह है कि गुप्त विकृत 'जीन', जो हमारे लिए हानिकारक नहीं है, हमारे बाद बेटा-बेटियों और पोता-पोतियों में जीवित रहते हैं, और इस तरह निर्बाध फैलते हैं। आनुवंशिक व्याधि के अनुपात में यह सदा एक मुख्य और निर्णायक हेतु रहा है।

छोटे जन-समुदायों में, जहां चचेरे भाई-बहनों तक का आपस में विवाह हो जाता है, यह सम्भावना रहती है कि विकृत 'जीन' कई पीढ़ियों में घूमने के बाद अपने ही वर्ग के 'जीन' से मिल जाए। परन्तु बड़े समुदायों में इस तरह का मिलन होने से पहले ही वह नष्ट हो जाता है, और इस तरह उसका घूमना बंद हो जाता है। आधुनिक समाज की सामाजिक प्रक्रियाएं इस दूसरे स्थान की ही ओर संकेत करती हैं। विवाह पर कभी जो धार्मिक, राष्ट्रीय और भौगोलिक प्रतिबन्ध हुआ करते थे, वे अब मिटते जा रहे हैं। 'जीनों' का रोज ज्यादा "छितराव" हो रहा है, और मानव जाति में जो "जीनगत भार" संचित हो गया था वह स्वभावतः "हल्का" हो गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आनुवंशिक व्याधियां अंत में स्वाभाविक रूप से अपने आप लुप्त हो जायेंगी। परन्तु मां-बाप में रोगाक्रांत 'जीनों' के आकस्मिक मिलन और, उसके परिणास्वरूप, आनुवंशिक विकृतियों वाले बच्चों के जन्म की संभावना बहुत घट जायेगी।

रोग-निरोध की समस्याओं का समाधान

इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय जनन विज्ञान का तेजी से विकास हो रहा है, और इससे रोग - निरोध की समस्याओं का एक मौलिक समाधान निकलने की आशा बंधती है। इस विज्ञान की सफलताएँ और विषय-वस्तु ही, सिस्संदेह, सामाजिक आकांक्षाओं और आदर्शों द्वारा निर्धारित हैं। रोग-निरोध और मानव जाति की आनुवंशिकता की चिंता के बहाने, कुछ लोगों ने बार-बार इस विचार का प्रचार किया है कि जो व्यक्ति जन्तु-

विज्ञान की दृष्टि से "हीन" हैं उनका निर्वीजीकरण कर देना चाहिए। एक "विशुद्ध" नस्ल के अभियान में नाजी जर्मनी ने जो उन्मत्त बर्बरता दिखाई थी उसे हम कभी भूल नहीं सकेंगे।

निस्संदेह, हम इस तरह के रोग-निरोध की चर्चा नहीं कर रहे हैं। गुप्त विकृत 'जीनों' का जल्दी ही पता लग जाने और उनकी पहचान हो जाने से, चिकित्सक बच्चे के जन्म से पहले उनका इलाज कर सकेंगे या उन्हें अहानिकारक बना सकेंगे, और हानिकारक बिकारों की उत्पत्ति रोक सकेंगे। यह कोई कपोल-कल्पना नहीं हैं—सैद्धान्तिक और व्यवहारिक जनन विज्ञान ने हमें वास्तविक मार्ग दिखाये हैं। सांस्कृतिक स्तर जैसे जैसे उन्नत होता जायेगा, लोग वैसे-वैसे परामर्श के लिए और अपनी सन्तान के बारे में पहले से जानने के लिए अधिकाधिक चिकित्सीय जननविज्ञान-केन्द्रों में जाया करेंगे। आनुवंशिक व्याधियों को रोकने का यह एक सबसे कारगर तरीका है।

सोवियत संघ में हर ऐसी महिला का, जो माँ बनने जा रही हो, डाक्टर नियमित रूप से निरीक्षण करते हैं और उसे बिल्कुल निःशुल्क परामर्श और आवश्यक सहायता देते हैं। सोवियत संघ में २०,००० जच्चा-बच्चा परामर्श-केन्द्र हैं। इनके साथ-साथ अब चिकित्सीय जनन विज्ञान परामर्श-केन्द्र भी खुल गये हैं। पिछले कुछ सालों में सोवियत संघ के बड़े-बड़े शहरों में उनकी स्थापना हो गई है। इस तरह के केन्द्र सोवियत संघ में सर्वत्र खोलने के लिए आवश्यक कदम उठाये जा रहे हैं।

आनुवंशिक व्याधियों का गर्भाशय के अन्दर ही निदान कर लेने की पद्धतियां विकसित की जा रही हैं। भ्रूण-कोशिकाओं के जीव-रासायनिक और कोशिकाजनन-विज्ञानी अन्वेषणों से, आनुवंशिक आधार-सामग्री के आधार पर की गई किसी व्याधिक कीं पूर्व कल्पना की पुष्टि या उसके खण्डन में मदद मिलती है। और आरंभ में ही निदान हो जाने से चिकित्सा के लिए उपयुक्त कदम उठाये जा सकते हैं, और यदि ऐसा संभव न हो तो मां-बाप को सावधान किया जा सकता है कि उनके एक शिशु होने को संभावना है।

आनुवंशिक व्याधियों का उपचार बहुत समय तक एक असाध्य समस्या मानी [illegible] बिल्कुल बदल गई है। चिकित्सकों के पास अब उपचार की ऐसी कारगार पद्धतियां हैं, जिनसे चयापचय की कोई ५० आनुवंशिक व्याधियों की चिकित्सा में सफलता मिल सकती है। शल्यक्रिया से भी सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए जांघ के जन्म जात विस्थापन का पहले से निदान हो जाने पर, प्रसव के समय एक विशेष विकलांगशल्य चिकित्सक—उपस्थित रहता है। मूत्राशय की आनुवंशिक विकृति में गुर्दों पर सफल आपरेशन किये गये हैं। जन्म-जात दोषों को सर्जन आपरेशनों से किस तरह कामयाबी के साथ दूर कर देते है, यह बात सभी को मालूम है।

जनन विज्ञान की समृद्धि

पिछले कुछ दशकों में जनन विज्ञान अनेक बड़े आविष्कारों से और समृद्ध हुआ है। उदाहरण के लिए यह पता चला है कि कौशिका कई आनुवंशिक क्षतियों को खुद ठीक कर लेने की क्षमता रखती है। इस बेहद नाजुक स्वाभाविक यंत्र क्रियाविधि पर नियंत्रण हो सकने से कितनी महान संभावनाएं पैदा हो जायंगी, यह बात साफ समझी जा सकती है। बहुत-से सोवियत वैज्ञानिक आजकल उनका अन्वेषण कर रहे हैं। एक दूसरी दिशा यह है कि 'वायरसों' का वुद्धिमत्ता से उपयोग करने के उपाय और साधन मालूम किये जाएं, क्योंकि आनुवंशिक संरचनाओं तक 'वायरसों' की असीमित 'पहुँच' है। इन्सुलिन प्रोटीन की संरचना का और जो 'जीन' उसके संश्लेषण को योजनाबद्ध करता है उसका अब पता चल गया है। इस 'जीन' में विकार होने से मधुमेह होता है। मधुमेह और इसी तरह की अन्य व्याधियों से पीड़ित सभी लोगों के स्वाभाविक जीन के वायरसों का टीका लगाने से इस तरह की व्याधियां सदा के लिए समाप्त हो जायेंगी।

ऐसे विकार-विरोधी तत्वों की खोज भी, जो वंशपरम्परा को विकारों से बचा सकें, बड़ी संभावनाएं रखती है। यह शोध विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है कि मानव जाति के परमाणु युग में प्रवेश का अर्थ यह है कि उसे नये विकारकारी तत्वों का सामना करना है जैसे कि अयनकारी विकीरण और रसायन। जनन वैज्ञानिकों की गणनाओं ने दिखाया है कि अयनकारी विकिरण की पृष्ठभूमि में बहुत थोड़ी वृद्धि से ही आनुवंशिक रोगियों की संख्या दुगुनी हो सकती है। परन्तु रेडि

सक्रिय पृष्ठभूमि के अनियंत्रित प्रकोप को मास्को में हुई परमाणु-अस्त्र परीक्षण-विरोधी संधि जैसे अंतर्राष्ट्रीय करारों से रोका जा सकता है ।

अल्प विकिरण-मात्राएं और रसायन

सोवियत संघ में परमाणु प्रतिष्ठानों पर कड़ा नियंत्रण रखा गया है । सभी भेषज द्रव्यों की जनन-विज्ञान की दृष्टि से खूब अच्छी तरह परीक्षा की जाती है । विभिन्न रासायनिक पदार्थों का आनुवंशिकता पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है, इसका गहन और व्यापक अध्ययन हो रहा है । विश्व स्वास्थ्य संगठन की प्रार्थना पर, सोवियत चिकित्सा विज्ञान अकादमी की चिकित्सीय जनन विज्ञान-संस्था विकारकारी तत्वों से होने वाली कुछ आनुवंशिक क्षतियों की यंत्रक्रियाविधि की छानबीन कर रही है । इस सिलसिले में हाल ही में नई महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है । कोशिकाएं जैसे-जैसे पुरानी होती जाती हैं, वैसे-वैसे भेषज की मात्रा से क्षतियों का अनुपात बढ़ता है—यह बात सिद्ध हो गई है । इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति की आयु जितनी अधिक होगी, विकारकारी तत्वों से उसकी आनुवंशिकता में विकार होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी । बहुत-से भेषज-द्रव्यों के मूल्यांकन में इस खोज से एक बहुत ही महत्वपूर्ण संशोधन हुआ है ।

विकिरण और विकारकारी रासायनिक पदार्थ, दोनों आनुवंशिक संरचनाओं को क्षति पहुँचाते ही हैं—चाहे उनकी मात्रा और घनता कुछ भी क्यों न हो । परन्तु क्षति का परिमाण (नये विकारों की संख्या) मात्रा पर निर्भर करता है । वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति की प्रगति के साथ-साथ अयनकारी विकिरण का उपयोग और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का रसायनीकरण उत्तरोत्तर—बढ़ना ही है, इसलिए मानव जाति में चलने वाली विकार की प्रक्रिया जननविज्ञान के लिए भविष्य में एक महत्वपूर्ण समस्या पेश करेगी । लेकिन फिर भी यदि पूछा जाए कि क्या इससे प्रगति रुक सकती है, तो हमारा उत्तर यही होगा कि 'नहीं' ।

मनुष्य के वातावरण में से विकारकारी तत्वों को दूर करना, ज्यादातर केसों में एक पूर्णतया तकनीकी समस्या है । उनकी जगह ऐसे रासायनिक पदार्थ ले सकते हैं जो आनुवंशिकता के लिए हानिकारक नहीं हैं । इस दिशा में रसायन विज्ञान की सम्भावनाएं असीमित हैं, और जनन-विज्ञान आवश्यक तरीकों को बढ़ावा देगा । फसलों के रोगों को रोकने के लिए रासायनिक कीटाणुनाशकों का प्रयोग समाप्त हो जायेगा और उनकी जगह जैविकीय पद्धतियों का प्रयोग होगा तथा फसलों की अधिक सशक्त किस्में विकसित की जायेंगी । इस दिशा में बहुत कुछ किया भी गया है ।

लेकिन जहां विकारकारी तत्वों से सम्पर्क आवश्यक होगा, वहां क्या होगा ? वहां विकार-विरोधी तत्वों की सहायता से उनके प्रभावों को घटाया जायेगा । ऐसे कुछ तत्व तो हमें अभी भी ज्ञात हैं ।

हम यह बात दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति के परिणामों का यदि सही ढंग से उपयोग किया जाए, तो यह प्रगति मानव जाति की आनुवंशिकता को क्षति नहीं पहुँचायेगी । इसके विपरीत, यह मानव जाति के नये विकारों से बचाने के नये अवसर प्रदान करेगी और सदियों के क्रमिक विकास में जो विकार संचित हो गये हैं उनके भार को हलका करेगी ।

(सोवियत दूतावास के सूचना विभाग द्वारा सम्प्रेषित)

बैद्यनाथ जन्मघुँटी
बच्चों को नीरोग रखनेवाली गुणकारी दवा

शिशु स्वास्थ्य

बच्चों का दन्त-स्वास्थ्य

डा० नरसिंह रंगानी

पश्चिमी देशों में लगभग ५० वर्ष पहले से ही यह अच्छी तरह से अनुभव किया गया है कि बच्चों का स्वास्थ्य सम्पन्न राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दिशा में पश्चिमी देशों के प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय हैं। भारत में केवल थोड़े समय से ही यह अनुभव किया जा रहा है कि बालक राष्ट्र की एक अमूल्य निधि हैं। भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने देश का ध्यान बच्चों की भलाई की तरफ आकर्षित करने में महत्वपूर्ण योग दिया।

स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से ही आज देश में सैकड़ों की संख्या में शिशु कल्याण-केन्द्र कार्यरत हैं। आजकल कुछ शिक्षित परिवारों में बच्चों की पूर्वापेक्षा ज्यादा अच्छी देखभाल होने लगती है। ऐसे बच्चे ऊपर से तो काफी स्वस्थ नजर आते हैं पर जहाँ तक उनके दाँतों का प्रश्न है, उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। भारत में ६० प्र० श० बच्चे दाँतों की किसी न किसी बीमारी से पीड़ित हैं। ऐसा कोई ही भाग्यशाली बच्चा मिलेगा जिसके दाँत कीड़ों से मुक्त हों।

जून १९७२ के इण्डियन डैंटल जर्नल में प्रकाशित रिपोर्ट को पढ़ कर किसी का भी हृदय गहरे दुःख से भर जाता है। लेखक डा० मोहनदास भट्ट का यह कहना है कि भारत में बच्चों के दांतों में रोग बहुत गहरा फैला हुआ है। सरकार को अगर योग्य डाक्टरों और साधनों का अभाव है तो बड़ों की दाँतों की चिकित्सा रोक कर भी बच्चों का उपचार करना आवश्यक है। अक्सर बच्चों के दांत कीड़े लगने से सड़ जाते हैं और उसमें खड्डे पड़ जाते हैं। जिसके फलस्वरूप दर्द से बच्चे पूरी तरह से भोजन को चवा नहीं पाते और ऐसे ही निगल जाते हैं। कई बच्चे तो २-४ ग्रास लेने के बाद अधिक खाना बन्द कर देते हैं। जब बच्चों की आयु बढ़ने और फलने-फूलने की है, उस समय पूरी खुराक न मिलने के कारण वे कमजोर-दुबले और रक्तहीन होते जाते हैं, यह माता-पिता को बच्चों के दंत रोग का पता तक नहीं लग पाता और बच्चों को जब माता-पिता उपचार के लिए अस्पताल ले जाते हैं तो डाक्टर के पास दांत निकाल देने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता।

दन्त चिकित्सक का डर भी इतना गहरा फैला हुआ है कि बच्चे अस्पताल में घुसने से ही कांपने लगते है। डाक्टर के पास जाने में इतना डरने और हिचकिचाने में बच्चों की गलती नहीं है। क्योंकि अब तक डाक्टरों ने बच्चों के दांतों का इलाज बिलकुल बेसमझी और बेदर्दी से किया है। लेकिन केवल डाक्टरों पर दोषारोपण करना उचित नहीं होगा। इसका मूल कारण यह है कि कि डैन्टल कालेजों की शिक्षा-पद्धति में बाल दन्त चिकित्सा को समुचित महत्व नहीं दिया गया है।

अपने ४० वर्ष की प्रेक्टिस में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अगर बच्चों के दांतों का इलाज रोग के आरम्भ में और सही तरीके से किया जाय तो उनके दांत जीवन भर आसानी से स्वस्थ और सुन्दर रह सकते हैं।

अभी हाल ही में अपनी चार माह की विदेश यात्रा में अमरीका से कनाडा गया था, वहां यह बात देखी कि बच्चों के दांतों की देख-भाल जन दन्त स्वास्थ्य का एक मुख्य अंग है। वे लोग अपने देशवासियों के सामने यह बात रखते हैं कि दांतों को आजीवन सुरक्षित रखा जा सकता है। वहां के चिकित्सकों में देश-भक्ति की प्रबल भावना है। उनके सम्मुख कमाई गौण है। वे डाक्टरी की सेवा को पेशा ही समझते हैं। वे इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि रोग न फैले। अमरीका व कनाडा के प्रत्येक स्कूल में दांतों का अस्पताल होता है। बच्चों के दांतों की अनिवार्य जांच की जाती है।

एक सबसे उल्लेखनीय बात अमरीका में मैंने यह देखी कि सरकार की तरफ से पानी में अन्य कीटाणुनाशक दवाओं के अलावा क्लोराइड भी मिलाया जाता है जिससे दांतों में मजबूती आती है तथा कीड़ा नहीं लगता।

इन सबके विपरीत भारत में दन्त स्वास्थ्य की स्थिति अत्यधिक दयनीय है। हमारे यहां भाग्यशाली के ही दांत सुन्दर वर्णमुक्त मिलेंगे। हमारा उद्देश्य दन्त रोगों का उन्मूलन होना चाहिए तथा इस दिशा में कदम उठाने चाहिए। यह कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं।

उ० प्र० के वैद्य-हकीमों का सम्मेलन हर्दोई में सम्पन्न

दिनांक ३० जून को आर्य कन्या महाविद्यालय हर्दोई में उ० प्र० इंडियन मेडिसिन बोर्ड के चेयरमैन आयुर्वेदाचार्य पं० जगदीश्वरदयालु अग्निहोत्री की अध्यक्षता में उ० प्र० वैद्य-हकीम सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसका उद्घाटन अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष, उ० प्र० के भू० पू० स्वास्थ्य मन्त्री वैद्य धर्मदत्त जी ने किया। अम्मेलन के आरम्भ में धन्वन्तरि वन्दना वैद्य जगन्नाथ प्रसाद मिश्र हर्दोई, वैदिक मंगलाचरण श्री यशवन्त सिंह जी व्याकरणाचार्य, प्रधानाध्यापक, संस्कृत पाठशाला सकाहा हर्दोई के द्वारा सुनाये जाने के उपरान्त श्री सुरेन्द्र नाथ दीक्षित ने सम्मेलन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए समस्त वैद्य—हकीमों को संघर्ष समिति के कार्यों में सहयोग देने का अनुरोध किया। तद्पश्चात् आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक वैद्य ताराशंकर मिश्र, वाराणसी, उ०प्र० आयुर्वेद पत्रकार संघ के अध्यक्ष वैद्य वासुदेव मिश्र, खेतासराय, जिला वैद्य सभा के प्रधान मन्त्री वैद्य ब्रह्मदत्त द्विवेदी, संघर्ष समिति अ० भा० वैद्य हकीम सम्मेलन के संयोजक श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के उपमन्त्री वैद्य बदलूराम रसिक, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के भू० पू० उपमंत्री वैद्य दयाराम अवस्थी, धन्वन्तरि महाविद्यालय के प्रधानाचार्य वैद्य श्रीपति शर्मा गोरखपुर, वैद्य वृजविहारी मिश्र विन्दकी जि० फतेहपुर, वैद्य राधेश्याम द्विवेदी, उरई जि० जालीन, वैद्य मंगलसेन गुप्ता पटियाली जि० एटा, वैद्य मोहनलाल चतुर्वेदी, पोड़ी गढ़वाल, वैद्य इन्द्रदत्त गर्ग शिकोहाबाद जि० मैनपुरी, श्री ऋषिशंकर दीक्षित, पब्लिसिटी मैनेजर डाबर डा०. एस० के० बर्मन्, फरीदाबाद आदि के भाषण हुए।

सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गये, जिनका सारांश इस प्रकार है :—

१. राज्य सरकार से मांग की गई कि उ० प्र० में शीघ्र ही एक साधन-सम्पन्न आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की जाये।

२. पंजाब, राजस्थान, म० प्र० तथा विहार की तरह हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आयुर्वेदरत्न की उपाधि को रजिस्ट्रेशन हेतु पूर्ववत् उ० प्र० में मान्यता प्रदान की जाये।

३. उ० प्र० इंडियन मेडिसिन बोर्ड से सम्बद्ध आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पौंडर्स पाठ्यक्रम चलाने वाले विद्यालयों को शीघ्र राजकीय सहायता प्रदान की जाये।

४. उ० प्र० इंडियन मेडिसिन एक्ट १९३९ की धारा ५० को कम से कम ६ मास के लिए अविलम्ब खोल देने की व्यवस्था की जाये।

५. उ० प्र० इंडियन मेडिसिन बोर्ड को राज्य सरकार द्वारा ४ वर्ष का एक डिप्लोमा कोर्स चलाने की अनुमति सरकार द्वारा प्रदान की जाये जिसकी प्रवेश-योग्यता हाई स्कूल हो।

६. उ० प्र० के राजकीय वैद्य-हकीम-कम्पाउन्डरों के वेतनग्रेड एलोपैथी के डाक्टरों एवं कम्पाउन्डरों के समान ही रखे जायें।

७. ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार तथा ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत को राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय घोषित किया जाये।

८. उ० प्र० के रजिस्टर्ड वैद्य-हकीमों को औषधि निर्माण के लिए अफीम तथा सोना आदि आबकारी वस्तुओं को उचित मूल्य पर सरल तरीके से दिलाने की व्यवस्था की जाये।

९. आयुर्वेद - यूनानी की औषधि निर्माण हेतु काम आने वाले लौंग-जायफल-जावित्री-पारद-कस्तूरी, आदि के मूल्यों में बेतहाशा होने वाली वृद्धि पर चिन्ता प्रकट करते हुए शासन से अनुरोध किया गया कि आयुर्वेदीय

बहुमूल्य द्रव्यों को उचित मूल्य पर वैद्य-हकीमों को दिलाने की व्यवस्था की जाय ।

१०. केन्द्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत पैरा ३-४ के रजिस्टर्ड तथा सूचीबद्ध वैद्य-हकीमों को भी सेवा का सुअवसर प्रदान किया जाय ।

११. उ० प्र० के प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा-केन्द्रों में आयुर्वेद तथा यूनानी के स्नातकों की भी नियुक्ति की जाय ।

१२. सरकार से मांग की गई कि देश के जनस्वास्थ्य का संरक्षण आयुर्वेद पद्धति से किया जाय क्योंकि आयुर्वेद में स्वास्थ्य, रक्षा पर विशेष प्रकाश डाला गया है ।

उक्त प्रस्तावों की स्वीकृति के पश्चात् संघर्ष समिति उ० प्र० वैद्य-हकीम सम्मेलन की स्थापना करते हुए पदाधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार से किया गया ।

अध्यक्ष—वैद्य वासुदेव मिश्र, खेतासराँय जि० जौनपुर, वरिष्ठ उपाध्यक्ष वैद्य बदलूराम रसिक, दुगावाँ लखनऊ, उपसभापति—हकीम वाजिद अली जन्नती चन्दौसी जि० मुरादाबाद, वैद्य मोहनलाल चतुर्वेदी, बिलकोट जि० पौढ़ीगढवाल, प्रधानमंत्री वैद्य श्यामसुन्दर वाजपेयी हर्दोई, प्रचारमंत्री वैद्य गंगाधर द्विवेदी मुंगराबादशाहपुर जि० जौनपुर, संगठन मंत्री वैद्य अताउल्ला कुरेशी हर्दोई, सहायक मंत्री वैद्य नगेन्द्रनाथ दीक्षित लखनऊ, कोषाध्यक्ष रामकृष्ण गुप्ता हर्दोई, आयव्यय, निरीक्षक रोहिणीकांत शास्त्री लखनऊ के अतिरिक्त २१ व्यक्ति कार्य कारिणी के सदस्य चुने गये । इसके बाद अध्यक्ष महोदय ने अपना भाषण पढ़कर सुनाया । वैद्य श्यामसुन्दर वाजपेयी ने आगन्तुक महानुभावों को धन्यवाद दिया ।

अनुभूतसिद्ध प्रयोग संभाषा परिषद्

उ० प्र० वैद्य-हकीम सम्मेलन के अवसर पर वैद्य वासुदेव मिश्र खेतासराँय जौनपुर की अध्यक्षता में एक अनुभूत सिद्ध प्रयोग संभाषा परिषद् की भी बैठक हुई, जिसका उद्घाटन वैद्य श्रीपति शर्मा, गोरखपुर ने किया । वैद्य ताराशंकर मिश्र, वाराणसी, वैद्य राधेश्याम द्विवेदी उरई, वैद्य इंद्रदत्त गर्ग शिकोहाबाद, वैद्य वृज विहारी मिश्र विन्दकी, वैद्य दयाराम अवस्थी, लखनऊ, वैद्य सुरेन्द्रनाथ दीक्षित लखनऊ, वैद्य रघुवीर सहाय मिश्र माधोगंज, वैद्य ब्रह्मदत्त द्विवेदी जौनपुर, वैद्य मोहनलाल चतुर्वेदी पौढी गढ़वाल, वैद्य जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, हर्दोई आदि ने वैद्यों को अपने अनुभूत सिद्ध प्रयोग लिखाये ।

अ० भा० धन्वन्तरि सेवा मंडल का वार्षिक अधिवेशन

दिनांक ३० जून को पं० ऋषिशंकर दीक्षित, पब्लिसिटी मैनेजर डाबर डा० एस० के बर्मन, फरीदाबाद (हरियाणा) की अध्यक्षता में धन्वन्तरि सेवा मंडल का वार्षिक अधिवेशन हर्दोई में सम्पन्न हुआ । आरंभ में सेवा मंडल के संचालक पं० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित ने मंडल द्वारा किये जा रहे कार्यों पर प्रकाश डाला उसके पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किये गये :—

१. केन्द्रीय संघर्ष समिति अ० भा० वैद्य-हकीम सम्मेलन द्वारा किये जा रहे कार्यों की प्रशंसा करते हुए उसके कार्यों में सभी प्रकार का सहयोग देने का निश्चय किया गया ।

२. म० प्र० आयुर्वेद यूनानी एवं प्राकृतिक चिकित्सा अधिनियम सन् १९७० की धारा ४४ के अधीन निरस्त किये गये अधिनियमों के अन्तर्गत रजिस्टर्ड किये गये अनुभवी वैद्य-हकीमों का नये बोर्ड द्वारा रजिस्ट्रेशन न किये जाने पर अत्यंत खेद प्रकट करते हुए केन्द्रीय संघर्ष समिति अ० भा० वैद्य-हकीम सम्मेलन से अनुरोध किया गया कि वह इस दिशा में वैधानिक कार्यवाही करने का प्रयास करे साथ ही सेवा मंडल के संचालक को अधिकार दिया गया कि वह इस सम्बन्ध में म० प्र० के अनुभवी वैद्य-हकीमों की सब प्रकार से सहायता करें और यदि आवश्यकता हो तो इस हेतु अतिरिक्त धन-संग्रह भी करें ।

३. हरियाणा के आयुर्वेदिक-यूनानी चिकित्सा प्रणाली बोर्ड चंडीगढ़ द्वारा अनुभव के आधार पर भाग २ के अन्तर्गत रजिस्टर्ड कराने हेतु जिन अनुभवी वैद्य-हकीमों ने आवेदन-पत्र भेजे हैं उन्हें चंडीगढ़ बुलाकर साक्षात्कार करने की प्रक्रिया को अवैधानिक करार देते हुए संचालक महोदय को अधिकार दिया गया कि सेवा मंडल के सदस्यों के हित में जो भी वैधानिक कार्यवाही करना आवश्यक समझें, करने का प्रयत्न करें जिससे कि सेवा मंडल के सदस्यों का रजिस्ट्रेशन संभव हो सके ।

४. उ० प्र० सरकार से पुनः अनुरोध किया गया कि उ० प्र० इंडियन मेडिसिन एक्ट की धारा ५० को कम से कम ६ मास के लिए खोल दिया जाये जिससे अन्य प्रान्तों से रजिस्टर्ड हुए वैद्य-हकीम उत्तर प्रदेश में

मित रूप से चिकित्सा करने के अधिकारी बन सकें।

५. उ० प्र० इंडियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा आयुर्वेदिक कम्पाउन्डर्स ट्रेनिंग के लिए सम्बद्ध आयुर्वेद-यूनानी के महाविद्यालयों को राजकीय सहायता देने की कृपा की जाये।

उपर्युक्त प्रस्तावों की स्वीकृति के पश्चात् सेवामंडल के पदाधिकारी एवं शासक-समिति के सदस्यों का चुनाव निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ।

संरक्षक आर० वी० धुलेकर, एडवोकेट, झाँसी, श्री लक्ष्मीरमण आचार्य, एडवोकेट एम० एल० ए० मथुरा, अध्यक्ष ऋषिशंकर दीक्षित फरीदाबाद, उपाध्यक्ष महीपाल पाँडे हर्दोई, संचालक सुरेन्द्रनाथ दीक्षित वैद्य लखनऊ, मंत्री, वैद्य चन्द्रभाल मौर्य बौनाभारी जि० सीतापुर, कोषाध्यक्ष रोहणीकान्त शास्त्री लखनऊ, आयव्यय निरीक्षक वैद्य बदलूराम रसिक लखनऊ, सदस्य वैद्य दयाराम अवस्थी, वैद्य तेजनारायण त्रिपाठी, डा० गुरू प्रसाद श्रीवास्तव, वैद्य रामकुमार मेहरा, बाबूराम गिरि एडवोकेट लखनऊ, शिवराम शुक्ल सीतापुर, राजवैद्य यदुवंश शर्मा कच्छ, महेन्द्र बहादुर अस्थाना हर्दोई, गंगाधर द्विवेदी मुंगराबादशाहपुर, वैद्य रामकृष्ण सिंह जमराव जि० फतेहपुर, जगदीश प्रसाद वर्मा बाराबंकी, देवीदीन वर्मा रसूलाबाद जि० उन्नाव, रामाश्रय त्रिवेदी लखनऊ, श्याम सुन्दर बाजपेयी हर्दोई।

जिला आयुर्वेद-यूनानी मंडल हर्दोई का चुनाव

उ० प्र० वैद्य-हकीम सम्मेलन के अवसर पर जिला आयुर्वेद-यूनानी मंडल हर्दोई के पदाधिकारियों का चुनाव सर्वसम्मति से निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ :—

अध्यक्ष, वैद्य श्यामसुंदर बाजपेयी हर्दोई, उपाध्यक्ष, वैद्य गिरीशचन्द्र शहाबाद, वैद्य रघुवीर सहाय मिश्र माधौगंज, वैद्य रामपाल सिंह अहिरोरी, वैद्य शिव प्रसाद त्रिपाठी सन्डीला, प्रधान मंत्री वैद्य ब्रह्मदत्त त्रिवेदी सांडी जि० हर्दोई, उपमंत्री वैद्य रामशंकर हर्दोई, वैद्य श्रीराम किछोछा, वैद्य रामप्रसाद जोशी सन्डीला, वैद्य रामदयाल जी कोषाध्यक्ष, वैद्य अताउल्ला कुरेशी, आयव्यय निरीक्षक कालीभरण मिश्र सर्रा चुने गये।

सुरेन्द्रनाथ दीक्षित
संयोजक

(२)

पण्डित रामदयाल जोशी-स्मृति ग्रन्थ

दिवंगत श्री जोशी जी की पावन-स्मृति में प्रकाशित स्मृति-ग्रंथ का अवलोकन करते समय स्व० जोशी जी के सान्निध्य में बीते कुछ क्षणों की स्मृति ताजा हो आयी। जोशी जी से प्रथम और अन्तिम भेंट विगत ३१ अक्टूबर १९६३ तक पटना में हुई थी। उस समय गुरुकुल फार्मेसी की जांच के लिए आया था। एक वैद्य-हकीमों की बैठक में व्यवस्थापक गुरुकुल के साथ जाने का अवसर मिला। वहीं पर जोशी जी कुर्त्ता-धोती में पधारे थे। सब को अभिवादन करने के पश्चात् उन्होंने सहज स्वभाव से मैनेजर से गुरुकुल फार्मेसी के बारे में पूछा तो उसने मेरी ओर इशारा करके बताया कि दिल्ली से जांच के लिए आए हैं। तब उन्होंने मुझे देखकर कहा कि इन्हें लेकर कारखाने में कल आओ। अगले दिन सायंकाल जब हम दोनों पहुँचे तो उनका वात्सल्यमय हृदय उमड़ पड़ा, जैसे बच्चों को कहते हैं उसी प्रकार से व्यवस्थापक महोदय से कह दिया कि तुम इनकी ओर से किसी प्रकार की आशङ्का मत करो-मुझे कहा कि यह बिल्कुल निर्दोष है। मुजफ्फरपुर के कुछ व्यापारियों ने गुरुकुल को गलत लिख दिया है।

२० अक्तूबर, १९६३ को दोपहर के समय पुनः मिलने के लिये कहा। व्यवस्थापक महोदय से कारखाने में लाने का आदेश-सा दिया। जोशी जी गंजी और धोती में बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका उस दिन भी बड़ा व्यस्त कार्य-क्रम था। जलपान के पश्चात् मुझे अपने साथ गाड़ी में बिठा कर वैद्यों की स्थिति, महासम्मेलन,

पण्डित शिव शर्मा जी, संस्कृत परिषद, औषधि-निर्माण-कला, पत्रकारिता, छोटे भाई रामनारायण जी, अन्त में सुशीला नय्यर, स्वास्थ्य मंत्री के चुनाव में बैद्यनाथ का सक्रिय भाग प्रभृति विषयों पर उनके साथ भरपूर चर्चा सांयकाल लौट कर आये, तो हुई।

फोटो की अलबम दिखाई। मुझे एक फोटो की ओर विशेष रूप से दिखाते हुए बताया देखो, परिवार के बीच में बैठ कर भारत की स्वास्थ्य मंत्री भोजन कर रही हैं, उनका स्मृति-ग्रंथ प्राप्त करके पुनः उनकी स्मृति ताजा हो आयी।

भविष्य वक्ता—१९६३ में ही उन्होंने मुझे बताया था कि मैं महासम्मेलन में अधिक दिनों तक सदस्य नहीं रह सकूंगा। पत्रकार संघ की स्थापना उसे सहन नहीं रह होगी। बिहार में महासम्मेलन नाम-मात्र संस्था है और ऐसी ही रहेगी। सरकार को जब तक लोक सभा में नहीं पूछा जायेगा तब तक आयुर्वेद का कुछ नहीं होगा। बिहार में भी विधान सभा में जब तक शोर नहीं मचता तब तक कुछ नहीं होगा। बैठकों और प्रस्तावों का काल समाप्त हो गया।

वैद्य परिवार का सदस्य होता है

काफी देर हो गई। जोशी जी को प्रतिज्ञा-दिवस में जाना था। मैंने उनके कार्यक्रम के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि पारिवारिक कार्यक्रम पहले-सामाजिक पीछे। वह सब विषयों पर बातें करते रहे। समय पर मुझे पुनः बिहार के तत्कालीन राज्यपाल आयङ्गर, जो संस्कृत के प्रेमी और आयुर्वेद के श्रद्धालु थे से भेंट करवाने ले गए। उनसे एक परिवार के सदस्य के रूप में मिलाया। उसके पश्चात् प्रतिज्ञा दिवस-स्थल पर पहुँचे। मैं वहीं से खिसक जाना चाहता था, परन्तु उन्होंने पिता के समान डांट कर कहा कि अब कहां जाना है। गाड़ी छोड़ आयेगी, अभी मेरे साथ यहीं बैठो। आश्चर्य हुआ कि कुछ ही क्षणों में इतना परिवर्त्तन। पूछ ही बैठा कि आप मेरे साथ अपना मूल्यवान समय क्यों नष्ट कर रहे हैं, तो उन का उत्तर था कि वैद्य हमारे परिवार का एक सदस्य होता है। तुम वैद्य भी हो इसलिए परिवार के अंग हो। प्रतिज्ञा के पश्चात् संस्कृत संजीवन समाज के कार्यालय में ले गये। उन्होंने बताया कि इस कार्यालय का व्यय संस्कृत प्रचार और प्रसार के लिए बैद्यनाथ करता हैं। रात काफी हो जाने के कारण मैं वहां से जाना चाहता था तो उन्होंने पुनः मिलने का आग्रह किया। मैंने अपनी विवशता प्रकट करते हुए दिल्ली वापस लौट जाने का निश्चय सुनाया तो आदेश किया कि जाने से पूर्व एक बार जरूर मिल लो।

२२ अक्तूबर को जब मैं मिलने गया तो जोशी जी बैठे अखबार पढ़ रहे थे। तुरत बातें शुरू हो गई। नैनी टेलीफोन पर श्री रमावतार जी को कहा कि दिल्ली के वैद्य-पत्रकार जा रहे हैं इन्हें फैक्टरी दिखाना, निवास इत्यादि का भी प्रबन्ध कर देना। मैंने विवशता प्रकट की कि समय का अभाव है, फिर कभी नैनी की फैक्टरी देख लूंगा, परन्तु उन्होंने विवश करके मुझ से वचन ले लिया। उनके विवश करने वाले शब्द थे—फैक्टरी देख लो हम दोनों को पुनः भेंट करने का अवसर मिलता भी है या नहीं क्या भरोसा। जो कुछ करना है उसे कर डालो, पेंडिग में कोई कार्य मत छोड़ो।

भविष्यवाणी सत्य निकली

नैनी की फैक्टरी देखी। उसी रात को दिल्ली चला गया। जून १९६५ में कानपुर के महासम्मेलन का अधिवेशन हुआ तो पत्रकार-संघ का भी अधिवेशन ऐसे अवसर पर किया गया। आदरणीय जोशी जी की भविष्यवाणी सत्य हुई। पत्रकार-संध का पुनर्गठन महासम्मेलन को सहन नहीं हुआ।

मोजरी में संघ के चुनाव की घोषणा कर दी, मुझे प्रधान मन्त्री बनाया, मेरे स्वीकार न करने पर दबाव डाला गया। दबाव में न आने पर महासम्मेलन से त्याग-पत्र देना पड़ा। पुनः इस वर्ष संरक्षक सदस्य उन्हीं के कर्मयोगी पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद जी के प्रधान मंत्री-प में बना हूं।

पत्रकार संघ से महासम्मेलन का संघर्ष चला औ वर्त्तमान प्रधान मंत्रीजी के काल में समाप्त हुआ। बिहार में वैद्यों का संगठन नहीं है, वैद्य भी अंगुलियों प गिने जाते हैं। आयुर्वेद कालेज की स्थिति भी चिन्ताजनक है। लोक सभा में जब सुशीला नायर के समय बार-बा प्रश्न आयुर्वेद के बारे में पूछे जाते थे, तब आज आयुर्वे की अनुसन्धान परिषद-केन्द्रीय परिषद बनी हैं।

आज ऐसे परिश्रमी, वैद्य - वात्सल्य, भविष्यव

(शेष पृष्ठ १३० पर)

आलोचक की दृष्टि में

पंडित रामदयाल जोशी स्मृति ग्रंथ : सम्पादक—डा० रामधारी सिंह दिनकर, रामदयाल पांडेय ; प्रकाशक—जोशी-स्मृति ग्रंथ-समिति, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१, मुद्रक-जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा० लि०, १७८, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-३, मूल्यः रु० २१.०० ।

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, प्रस्तुत आलोच्य ग्रंथ में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के यशस्वी संस्थापक-संचालक स्व० पं० रामदयाल जोशी जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर जोशी जी के मित्रों, प्रेमीजनों एवं स्वजनों द्वारा संस्मरणात्मक लेखों तथा भावोद्गारों के माध्यम से प्रकाश डाला गया है, जो सर्वथा युक्तियुक्त एवं संगत प्रतीत होता है। ग्रंथ के तीन विभाग हैं—संस्मरण, जीवन और व्यक्तित्व—और इन तीनों ही विभागों में प्रचुर सुसंपादित पाठ्य-सामग्री संकलित की गयी है। जैसा कि ग्रंथ के मान्य संपादक कविवर श्री दिनकर जी ने अपनी भूमिका में लिखा है, उन्नीसवीं सदी में उत्पन्न सभी भारतीय महापुरुष वर्तमान और भविष्य के लिए उपयोगी प्राचीन भारत के मूल्यों को जीवित बनाए रखने की उद्दाम लालसा से प्रेरित होकर ही जन-सेवा के क्षेत्र में प्रवृत्त होते रहे। स्व० जोशी जी भी प्राचीन भारत की अमूल्य धरोहर—आयुर्वेद-को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में प्रवृत्त हुए और अपने अध्यवसाय तथा उद्योग से उन्होंने आयुर्वेद-औषधियां जन-जन तक पहुँचा कर आयुर्वेद के साथ-साथ प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने की दिशा में जो महनीय प्रयास किए, उन्हें भावी पीढ़ी ससम्मान स्मरण करेगी। इस अर्थ में सचमुच जोशी जी महान् लोकोपकारी कहे जा सकते हैं और ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति की स्मृति में ग्रंथ का प्रकाशन सर्वथा समीचीन ही कहा जायगा। स्मृति-ग्रंथ में जोशी जी एवं उनके विविध कार्य-कलाप के सम्बन्ध में जहां विपुल पठनीय सामग्री इकट्ठी की गयी है, वहां जन्म और मृत्यु-विषयक भारतीय दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए भारतीय वाङ्मय विशेषतया गीता, उपनिषद्, रामचरित मानस, भोज प्रबन्ध आदि से सामग्री ग्रंथ के प्रारम्भ में संग्रह की गयी है, जिससे ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गयी है।

ग्रंथ में प्रकाशित संस्मरणात्मक लेखों में आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, पं० मौलिचन्द्र शर्मा, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, आयुर्वेद-बृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक, कविराज श्रीनारायण शर्मा, श्री रमावल्लभ चतुर्वेदी, वैद्य पं० रामनारायण शर्मा, प्रमृति के संस्मरण अत्यन्त हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी एवं आत्मीयता से ओतप्रोत हैं।

जीवनी-खण्ड पं० देवदत्त शास्त्री द्वारा लिखा गया है, जो अत्यन्त विस्तृत, तथ्यपूर्ण एवं जोशी जी के साथ-साथ जोशी-परिवार तथा श्री बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के उत्थान का भी इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। इस तरह जीवनी-खंड भी अपने-आप में पूर्ण कहा जा सकता है। ग्रंथ में जोशी जी से सम्बन्धित अनेक चित्र भी हैं, जो ग्रंथ को आकर्षक एवं नयनाभिराम बनाने में सहायक हुए हैं।

ग्रंथ की छपाई-सफाई जनवाणी प्रिंटर्स की परम्परा के अनुरुप शानदार कही जा सकती है। हां, प्रमादवश एक ही लेखक के कई लेख तथा एक ही लेख दो बार ग्रंथ में छप गए हैं। प्रूफ-सम्बन्धी भूलें भी यत्र-तत्र हैं जो ग्रंथ के विशाल आकार-प्रकार को देखते हुए अपरिहार्य भी कहा जा सकती हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में यदि आयुर्वेद शास्त्र-विषयक कुछ मूर्धन्य विद्वानों के लेख देकर आयुर्वेद-खण्ड भी दे दिया गया होता, तो ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ गया होता। अवश्य यह अभाव खटकता है। फिर भी ग्रंथ का प्रकाशन सुन्दर हुआ है।

—श्री शाण्डिल्य

सुधानिधि (महिला रोग चिकित्साङ्क)—संपादकः देवीशरण गर्ग वैद्योपाध्याय, विशेषांक के सम्पादक-आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, प्रकाशक: धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ), मूल्यः रु० १० ००

'सुधानिधि' के प्रकाशन के प्रथम वर्ष में मार्च अप्रेल का अंक—**महिला रोग चिकित्साङ्क** के रूप में प्रकाशित किया गया है। विशेषांक, आर्षखण्ड, शारीर खण्ड, निदान चिकित्साखण्ड, स्तन स्तन्यखण्ड, अनुभवखण्ड, तथा योग खण्ड में विभक्त किया गया है और प्रत्येक खण्ड के अन्तर्गत नारी-रोग एवं उपचार-विषयक लेख अधिकारी चिकित्सकों एवं विद्वानों द्वारा लिखे प्रकाशित किये गये

हैं। विशेषांक में प्रकाशित कुछ लेख जैसे स्त्री रोगों में उपयोगी औषध द्रव्य, स्त्री प्रजनन-अंगों का विकास एवं उनकी विकृतियाँ, महिला प्रज़ननांग और उनका रचना शारीर, गर्भशूल, गर्भस्राव और गर्भपातहर कुछ वनौषध कल्प, प्रदर रोग पर कुछ प्रयोग, नारी देह स्थौल्य और उसकी सफल चिकित्सा, प्रभृति विशेष उल्लेखनीय हैं। कतिपय लेखों की विषय-वस्तु की स्पष्टता-हेतु कई ब्लाक भी दिये गये हैं, जो सम्पादन-कुशलता का परिचायक है। विशेषांक सभी दृष्टि से संग्रह-योग्य है और इसके लिए विशेषांक के विशेष संपादक आचार्य त्रिवेदी धन्यवादार्ह हैं। आशा है सुधी समाज में इस उपयोगी विशेषांक का समादर होगा। जहां तक मुद्रण, प्रूफ-संशोधन एवं स्वच्छता का सम्बन्ध है, विशेषांक अपना सानी नहीं रखता। लगभग ५०० पृष्ठों में प्रकाशित विशेषांक के प्रकाशन-हेतु सम्पादक एवं प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

आशा है, विशेषांक का अच्छा स्वागत होगा।

—श्री शाण्डिल्य

सविता (सुपर्णाङ्क) : सम्पादक—विश्वदेव, प्रकाशक: वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर, मूल्य रु० ३.००।

वेद संस्थान, अजमेर द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र **सविता** का मार्च, ७३ का अंक सुपर्णाङ्क सभी दृष्टियों से संग्रह एवं स्वागत के योग्य है। 'सविता' प्रतिम वैदिक साहित्य-विषयक गंभीर सामग्री पाठकों त पहुँचाने में अद्वितीय है। प्रस्तुत विशेषांक में सुपर्ण के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों के लेख प्रस्तुत किये गए हैं सुपर्ण शब्द वैदिक वाङ्मय में विशेष अर्थ में प्रयु होता है—वह अर्थ है, जो सम्यक् रुपेण प्रजा का पाल एवं पूरण करे अर्थात् प्रजापति या पालन कर्त्ता परमा-त्मा या विभु के पर्याय रूप में ही यह शब्द प्रयुक्त होता है सुपर्ण की व्याख्या करते हुए सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान स्व डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसी अंक में एक स्था पर लिखा है—'जहाँ-जहाँ जीवन या प्राण की अभिव्य है, वहाँ-वहाँ समस्त जीवन या कोश सुपर्ण चित्र के रू में हैं। प्रत्येक शरीर सुपर्णचिति का रूप है जिसमें प्रजा-पति रूप अग्नि निवास करता है।' सुपर्ण-रूपी पु का स्पष्टीकरण अनेक लेखों में अधिकारी विद्वानों द्वारा किया गया है और वैदिक वाङ्मय के इस विशे अंग को उजागर किया गया है। यह विषय सर्वसाधार पाठकों के लिए बोधगम्य नहीं है, हो भी नहीं सकता किन्तु जिन पाठकों का प्रवेश एवं रुचि वैदिक साहि में है, वे अवश्य ही विशेषांक से लाभान्वित हो सकेंगे-ऐसा विश्वास है। आशा है, इस विशेषांक का समुचि समादर होगा। छपाई-सफाई एवं शुद्धता की दृष्टि भी सुपर्णाङ्क का प्रकाशन उत्तम कहा जायगा।

—श्री शाण्डि

(पृष्ठ १२८ का शेषांक)

आयुर्वेद-उद्धारक के जीवनवृत्त एवं संस्मरण पढ़ने का अवसर मिला। वस्तुतः ज्ञान का भंडार यह ग्रंथ है। सारंग शास्त्री का भावात्मक उद्गार (कविता) अनेक पत्रों के सम्पादकों के उद्गार और अन्त में परिवार के सदस्यों द्वारा लिखे गये हृदय विदारक, करुणाजनक संस्मरण पढ़कर जोशी जी की स्मृति रुलाती है।

प्रथम भाग में उपनिषदों एवं गीता के उपदेश संग्रहीत हैं, जो मनुष्य जीवन की अमरता पर प्रका डालते हैं। जोशीजी ने गीता के उपदेशों के अनु कार्य करके कर्मयोगी बनकर दिखाया और अनेक व्यक्ति का जीवन सुधारा। ऐसी पुण्यात्मा की स्मृति में प्रकाशि स्मृति ग्रंथ तथा अन्य स्मृति ग्रंथों में एक विशेषता है इसमें अभिनन्दन-पत्र नहीं बल्कि कसौटी पर कसे लेखकों के शब्द मोतियों की माला जैसे पिरोये गए हैं।

—कविराज वेदप्रकाश गु

सीतामढ़ी-मुजफ्फरपुर में वैद्यों की सभा

गत दिनांक २९-६-७३ एवं ८-७-७३ को क्रमशः सीतामढ़ी एवं मुजफ्फरपुर में क्रमशः श्री पारसनाथ पांडेय एवं श्री भैरव गिरि की अध्यक्षता में स्थानीय वैद्यों की सभा हुई। इस सामयिक आयुर्वेद-विषयक विचार-गोष्ठी में श्री वेदप्रकाश गुप्तजी वैद्य, (दिल्ली) भी उपस्थित थे।

केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा-परिषद्, अनुसंधान परिषद्, भैषज्य संहिता और अन्य आयुर्वेद विकास - संबंधी विषयों पर विचार-विमर्श किया गया।

(१) पहला प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि बिहार सरकार अनाधिकारी व्यक्तियों का वैद्यों की पंक्ति में रजिस्ट्रेशन अविलम्ब बन्द करे। सर्वसम्मतिसे वैद्यों ने प्रां० वै० सम्मेलन से अनुरोध किया कि इस ओर उचित कार्रवाई करे।

(२) वैद्य संगठन को पूर्ण बल देने के लिए प्रान्त भर के प्रत्येक वैद्य सप्ताह में एक दिन अपनी-अपनी जगह मिलें और सन्धाय संभाषा गोष्ठी करें। इसकी प्रतिलिपि बिहार प्रां० वै० सम्मेलन कार्यालय में भेज दें।

(३) सर्वसम्मति से यह माँग की गयी कि बिहार राज्य के निर्देशक देशी चिकित्सा-पद्धति के साक्षात्कार में उत्तीर्ण व्यक्ति को कार्यभार संभालने का अवसर यथाशीघ्र दिया जाय। यह सभा आज तक के विलम्ब के कारणों पर खेद प्रकट करती है।

आयुर्वेद अध्ययन की विशेष सुविधा

उ० प्र० का सबसे प्राचीनतम श्री आयुर्वेद विद्यालय, किदवई नगर, कानपुर, ग्रीष्मावकाश के बाद १० जू० १९७३ ई० सोमवार से खुल गया है। इस विद्यालय की स्थापना उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर कानपुर नगर के सभी वैद्यों ने संगठित होकर १९१८ ई० में की थी। तबसे बराबर अबाध गति से अपने उद्देश्यों पर स्थिर होकर आयुर्वेद की सेवा में संलग्न है। प्रारम्भ से अब तक नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से ही सम्बन्धित है तथा वहीं का पाठ्यक्रम प्रचलित है। विद्यालय के नगर महापालिका कानपुर से ६ एकड़ भूमि विद्यालय निर्माण हेतु प्राप्त है। अभी केवल ४-५ विशाल कमरे बने हैं। शेष स्थल में विद्यालय के सभी विभाग बनने हैं। उ० प्र० सरकार ने भी आयुर्वेद अन्तरङ्ग चिकित्सालय १०० शैय्याओं का विचार किया है। स्थान स्वच्छ वातावरण में रोड पर है। विद्यालय में छात्रों के निवास का भी प्रबन्ध है। कर्माभ्यास के लिए विद्यालय का विशाल वनौषधि उद्यान है तथा नगर महापालिका कानपुर ने अपने आयुर्वेद अन्तर्गत चिकित्सालय दर्शनपुरवा में छात्रों के प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की स्वीकृति दी है। पुस्तकालय तथा धर्मार्थ औष० का भी प्रबन्ध है। रसायनशाला की योजना भी विचाराधीन है। विद्यालय का प्रबन्ध कार्यकारिणी समिति द्वारा होता है। यह विद्यालय उ० प्र० सरकार से पंजीकृत भी है। शिक्षा के लिए सुयोग्य अध्यापकों का प्रबन्ध है। नूतन छात्रों के प्रवेश की १५ अगस्त अन्तिम अवधि है। निवेदक— शंभुनाथ पांडेय शास्त्री, प्राचार्य —श्री आयुर्वेद विद्यालय, कानपुर।

स्नातक वैद्यों को तीन सौ का वेतन मिले

आयुर्वेद विभागीय चिकित्सा संघ की

श्री गंगानगर (डाक से)। आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ ने महामन्त्री मांग दिवस मनाया।

मांग दिवस के अवसर पर चिकित्सक-संघ के सभापति वैद्य कृष्णदत्त शर्मा ने एक वक्तव्य द्वारा राज्य सरकार से अपील की है कि वैद्यों की न्यायोचित मांगें स्वीकार की जायं।

श्री शर्मा ने कहा कि एक वैद्य को जो ६ वर्ष पढ़ने के बाद स्नातक बनता है, अल्प वेतन मिलता है। स्नातक वैद्य को कम से कम ३०० रुपये से ८०० रुपये का वेतनमान दिया जाना चाहिए। स्नातकोत्तर वैद्य को भी वही वेतन-श्रृंखला तथा तीन अतिरिक्त वेतन-वृद्धि व वरिष्ठता का लाभ दिया जाय।

आयुर्वेद में स्नातक तथा स्नातकोत्तर का पाठ्यक्रम ९ वर्ष का है लेकिन इसके बाद मिलता है १८० रुपये से ४२५ रुपये का ग्रेड जो अत्यन्त हास्यास्पद है।

चिकित्सक-संघ की मांग है कि गुप्ता कमिटी की सिफारिशों को लागू किया जाय। वैद्यों को एक रनिंग ग्रेड दी जाय, शिक्षा विभाग तथा मेडिकल विभाग की भांति आयुर्वेद विभाग में भी स्नातक, स्नातकोत्तर वैद्यों के लिए नियम बनाये जाने चाहिए।

श्री शर्मा ने मांग की कि गत दिसम्बर में आयुर्वेद मन्त्री एवं निदेशक आयुर्वेद ने वैद्यों को एक रनिंग ग्रेड देने की बात को स्वीकार किया था इसे पूरा किया जाय।

श्री धन्वन्तरि आयुर्वेदिक चिकित्सालय भवन का उद्‌घाटन

श्री धन्वन्तरि आयुर्वेदिक चिकित्सालय, कोटकासिम (अलवर-राज०) नव भवन का भव्योद्‌घाटन दिनांक ११, जून १९७३ को प्रातःकाल आचार्य श्री नित्यानन्द जी सारस्वत पिलानी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन वैद्यराज पं० ताराचन्द्र जी जोशी ने किया मंगलाचरण सरपंच महोदय श्री ओमकारदत्त जोशी के द्वारा होने के उपरांत वैद्यराज जी का महत्वपूर्ण अभिभाषण हुआ। इस चिकित्सालय में नेत्रों की हर प्रकार की बीमारियों का इलाज सिद्धहस्त डा० खेमचंद शर्मा नेत्र-विशेषज्ञ द्वारा किया जायेगा। अध्यक्षीय भाषण में आचार्य जी ने कहा कि आज हिन्दुस्तान में आयुर्वेदोन्नति के लिए अनुसन्धान की परमावश्यकता है। प्राचीन चिकित्सा प्रणाली का नवीनीकरण द्वारा प्रयोग किया जाए तो आज के युग में श्रेष्ठतम सिद्ध होगा। अन्त में वैद्य विमला देवी शर्मा द्वारा आगत अतिथियों को धन्यवाद देकर अल्पाहार के साथ सभा का विसर्जन हुआ।

राजस्थान के वैद्यों के वेतनमान निर्धारण हेतु समिति

जयपुर ५ जुलाई। राज्य सरकार ने आयुर्वेदाचार्यों एवं भिषगचार्यों के राजकीय सेवाओं में स्तर - निर्धारण के लिए सुझाव देने हेतु एक समिति का गठन किया है। आयुर्वेद मंत्री श्री नारायण सिंह मसूदा ने इसकी जानकारी देते हुए पत्रकारों को बताया कि यह समिति भिषगाचार्यों एवं आयुर्वेदाचार्यों के वेतनमानों के निर्धारण एवं उन्हें सेवाओं में लिये जाने के सम्बन्ध में अपने सुझाव देगी।

ज्ञातव्य है कि गत दिनों भिषगाचार्यों के एक शिष्ट-मण्डल ने श्री मसूदा से भेंट कर उनसे मांग की थी कि भिषगाचार्य वैद्यों को भी आयुर्वेदाचार्यों के समान राजकीय सेवाओं में स्थान दिया जाये।

राजस्थान के प्रसिद्ध वैद्य नागरमल शर्मा का स्वर्गवास

चिड़ावा (डाक से)। राजस्थान के प्रसिद्ध चिकित्सक आयुर्वेदकेशरी नागरमल शर्मा का दिनांक ११ जुलाई ७३ को हृदयगति रूक जाने से ओजटू में देहावसान हो गया। आप अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के उपमंत्री एवं राजस्थान प्रदेश वैद्य-सम्मेलन के कार्यवाहक अध्यक्ष वैद्य विरंचीलाल शर्मा के अनुज थे। आयुर्वेदकेशरी ने १९४७ में आयुर्वेद श्रम प्रगति संघ की स्थापना की और वर्षों तक उसके प्रधानमंत्री रह कर वैद्य समाज में जागृति की लहर फैलाई। आप श्री माहेश्वरी धर्मार्थ औषधालय, इस्लामपुर के सफल चिकित्सक थे। मृत्यु के समय आपकी आयु ५५ वर्ष थी। आप अपने पीछे ३ पुत्र, २ पुत्रियां, धर्मपत्नी और ममतामयी माताजी को छोड़ गए हैं।

स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी का जन्म शताब्दी समारोह

जयपुर, १६ जुलाई। श्री स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय में स्थानीय प्रमुख वैद्यों, लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों एवं संभ्रांत नागरिकों की एक समिति में निर्णय लिया गया कि इस वर्ष स्वामी लक्ष्मीराम जन्म शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जाये जिसका आरम्भ २१ जुलाई से किया जाये जो कि श्रद्धेय स्वामी जी महाराज का १०० वां जन्म दिवस है।

यह भी निर्णय लिया गया कि वर्ष भर में समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भजन, कीर्तन, प्रवचन तथा वैज्ञानिक गोष्ठियां आयोजित की जाये। इन आयोजनों में विभिन्न स्थानीय तथा बाहर के प्रमुख विद्वानों को आमंत्रित कर आयुर्वेद की शिक्षा, चिकित्सा तथा निर्माण-व्यवस्था आदि पर विस्तार से विचार कर आयुर्वेद विज्ञान के प्रचार - प्रसार हेतु नये रचनात्मक कदम उठाए जायें और आयुर्वेद - अनुसंधान को मूर्त दिया जाये।

शिष्य प्रशिष्यों द्वारा सेवा

आज भी स्वामीजी महाराज के शिष्य-प्रशिष्य जयपुर या राजस्थान में ही नहीं अपितु सर्वत्र भारतवर्ष में फैल कर आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा जनता जनार्दन की सेवा कर रहे हैं। जयपुर में भी धन्वन्तरि औषधालय, दादू महाविद्यालय आदि महत्वपूर्ण निःशुल्क संस्थानों की स्थापना की है जिनसे आज भी जयपुरीय जनता की निःशुल्क सेवा की जा रही है।

त्रिदिवसीय कार्यक्रम

इस उपलक्ष्य में त्रि-दिवसीय कार्यक्रम रखा गया है जिसमें भक्ति संगीत, आध्यात्मिक प्रवचन होंगे और दिनांक २३ जुलाई, १९७३ को उक्त कार्यक्रमों के साथ स्वामी जी महाराज का निर्वाण दिवस भी सदा की भांति मनाया जायेगा।

Role of Government to Develop Indian Medicine

Vijayawada (A. P.)

Kaviraj Purushottam Dev, Deputy Director(Ayurveda), Indian Medicine and Homeopathy Department, Govt. of Andhra Pradesh, stressed the need for manufacturing standard and quality medicines for increased popular patronage and further development and progress of Indian Medicine.

Kaviraj Purushottam Dev, who was speaking at a meeting organised under the auspices of the citizens information forum on the subject measures taken by Government for the development of Indian Medicines briefly reviewed the progress made in the expansion and development of Indian Medicine since independence culminating in the constitution of Central Council of Indian Medicine and Central Council for Research in Indian Medicine. He also mentioned the opening of Post Graduates Departments in Govt. Ayurvedic Colleges in different States and added that proposals have been made in the Fifth Plan for establishment of 4 Dispensaries of Indian Medicine in each of the 400 and odd Panchayat Samitis in the State and up-grading of all the Goverament Ayurvedic, Unani and Homeopathic Colleges and teaching Hospitals in the State.

Dr. P. V. Sharma, Professor of Dravyaguna, Institute of Medical Sciences. Varanasi, who has been appointed as one-man commission to investigate the working of the Govt. Ayurvedic College, Vijayawada, said the Govt. should provide proper equipment and laboratory facilities in the colleges which were neglected for long.

Mr. A. Venkateswara Rao, president of the forum, welcomed the gathering. Dr I. Sanjiva Rao, Principal, Govt. Ayurvedic College, Hyderabad, presided.

Mr. R. Parvatala Rao, Assistant Director of the State Information Centre, proposed a Vote of Thanks.

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० नागपुर

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह मई सन् १९७३ में ५२४५ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ५३१ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है :—

ज्वर ८६, कास ३३, उदावर्त २३, श्वास ८, अतिसार ७, प्रतिश्याय १९, उदर शूल ११, शिरःशूल ८, दन्त रोग ६, कर्ण रोग १४, नेत्र रोग २, वातव्याधि ५१, रक्ताल्पता २, आमविकार २७, कृमि ५, शोथ २, शीतपित्त १, क्षुद्र कुष्ठ १, व्रण ५, दौर्बल्य ९६, मूत्राघात ३, दाह ५, मुखपाक १, गलग्रन्थि शोथ ३, छर्दि (वमन) १, मूत्रकृच्छ्र १३, अर्श ९, अम्लपित्त ८ पित्त विकार १, रक्त विकार ३५, पाण्डु १, रक्त प्रदर १४, विसर्प ६, अपबाहुक १, यकृतोदर १, प्रमेह ७, अजीर्ण ५, प्रसूतिका विकार २, कामला १, पक्षाघात १, तृष्णा १, अंडवृद्धि १, अपस्मार २ विविध १ जोड़ नं० ४-७ कुल जोड़ ५३१

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ग्रेट नाग रोड, द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह जून सन् १९७३ में ६५८८ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ६२८ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है :—

ज्वर ९५, कास ३०, उदावर्त ६५, श्वास १५, अतिसार १, प्रतिश्याय २३, दन्त रोग ५, कर्ण रोग १३, नेत्र रोग १, वातव्याधि ७७, आमविकार २६, कृमि ३, शोथ ५, वृण ५, दौर्बल्य १३४, दाह १, मुखपाक २, गलग्रंथि शोथ १, मूत्र कृच्छ्र १८, अर्श ६, अम्लपित्त ४, रक्त विकार ६०, मन्दाग्नि १, रक्त प्रदर १७, यकृतोदर संग्रहणी ५, गुदभ्रंश १, सगर्भा ४, हिस्टरीया १, अनेक १, विचर्चिका १, रजोवरोध ३, जोड़ नं० ४-६ कुल जोड़ ६२८

श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, झांसी

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भ० प्रा० लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र झाँसी में माह जून सन् १९७३ में कुल २७२८ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई, जिसमें नवीन रोगियों की संख्या ६३९ है। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है।

पित्तज ज्वर ३५, कफज कास १४, सोम रोग १, अंशुधात् ८, विवंध ९, रक्त प्रदर १२, वातोदर शूल २३, वात व्याधि २७, मुख पाक १३, रक्तात्पता १०, अतिसार ३६, दाह ३, जीर्ण ज्वर ६, गृध्रसी वात ३, आमा जीर्ण २०, ज्वरातिसार १६, कण्डू १४, वातज ज्वर ७२, अम्ल पित्त ८, आम वात १, प्रतिश्याय ३०, रक्तातिसार ५, शिर : शूल १९, रक्तार्श ४, रक्त पित्त ४, वालातिसार १४, कटि शूल ८, कृमि १०, गर्भ रोग १२, दन्तोदद्भेद ७, यकृत वृद्धि १, तिमिर २, श्वेत प्रदर १६, उरः शूल १, प्रमेह ९, अभिष्यचन्द ४, वातज कास १७, शीत पित्त ३, पिड़िका ३८, भ्रम ९, गलग्रंथि शोथ ३, अ.घ त० १, विदग्धजीर्ण ६, अर्श ५, मूत्र कृच्छ १०, विश्वाची १, कर्ण शूल ३, क्षुद्र श्वास ३, कण्ठ माला १, अग्नि मांद्य ३, तुण्डकेरी शोथ २, वृद्रधि २, मन्थर ज्वर १, वातश्लेष्मक ज्वर १, स्फोट ३, अपस्मार २, कफज ज्वर १, शोथ २, विषम ज्वर १, आमातिसार ९, विचर्चिका २, स्नायु दौर्बल्य ४, दन्त शूल २, अर्द्धावभेदक १, तमक श्वास ३, विष्टब्धाजीर्ण ३, व्रण ९, स्वर भंग २, वात रक्त २, कर्ण पूय २, पामा २, क्षीरालसक १, पार्श्व शूल १, छर्दि १, पित्तज कास १, विपादिका १ मासिक नवीन संख्या ६३९

नवीन संख्या	पुरातन संख्या	मासिक संख्या योग
६३९	२०८९	२७२८

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र झाँसी में माह मई सन् १९७३ में कुल २६५८ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी, जिसमें नवीन संख्या ६४५ है। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है:—

भ्रम ११, रक्त प्रदर १२, वात व्याधि १४, पित्तज ज्वर ४२, वातोदर शूल ९, वात ज्वर ५८, रक्तात्पता २५, कृमि ४, पार्श्व शूल ३, वातज कास २०, तमक श्वास ३, आघात् ७, वालातिसार १०, छर्दि ३, श्वेत प्रदर २९, व्रण ४, पिड़िका ११, दाह ४, कफज कास १९, प्रतिश्याय ३८, जीर्ण ज्वर ४, कण्डू १४, मुखपाक १५, अम्लपित्त ६, अंशुधात् २२, अतिसार २३, आमा जीर्ण १०, स्नायु दौर्बल्य ६, दन्तोद्भेद ३, मूत्र कृच्छ १९, प्रमेह ९, विबंध १५, शिरःशूल २०, रक्त पित्त ७, उरःशूल ३, अभिष्यचन्द १, यकृत वृद्धि ४, गर्भ रोग १८, ज्वरातिसार १३, प्रसूत ज्वर ७, कर्ण शूल ४, श्वेत कुष्ठ १, दन्तवैष्ट १, पामा ४, अर्दाव भेदक २, वात रक्त २, श्लीपद २, विष्टब्धाजीर्ण ११, विसूचिका १, मन्थर ज्वर २, विचर्चिका ३, विदग्ध। जीर्ण १, अग्निमांद्य ४, उरूस्तम्भ १, क्षीरालसक ६, परिणामशूल २, कटि शूल ४, रक्तार्श ४, गल ग्रथि शोथ २, आन्त्र शोथ ३, क्षयज कास १, आमातिसार ५, कर्ण स्राव २, अरुंसिका २, दन्त शूल ४, मृध्रसी १, कण्ठ माला ३, शीतपित्त २, राजिका २, विश्वाची २, क्षुद्र श्वास ३, विपादिका १, वातज गुल्म ३, विषम ज्वर ३, पलित २, शोथ १, स्फोट १, हृदय दौबर्ल्य १, स्वर भंग १ कुल मासिक नवीन ६४५

नवीन संख्या	पुरातन संख्या	मासिक योग
६४५	२०१३	२६५८

बैद्यनाथ

मृतसंजीवनी

सुरा

कमजोरी दूर
करनेवाली
प्रसिद्ध टानिक

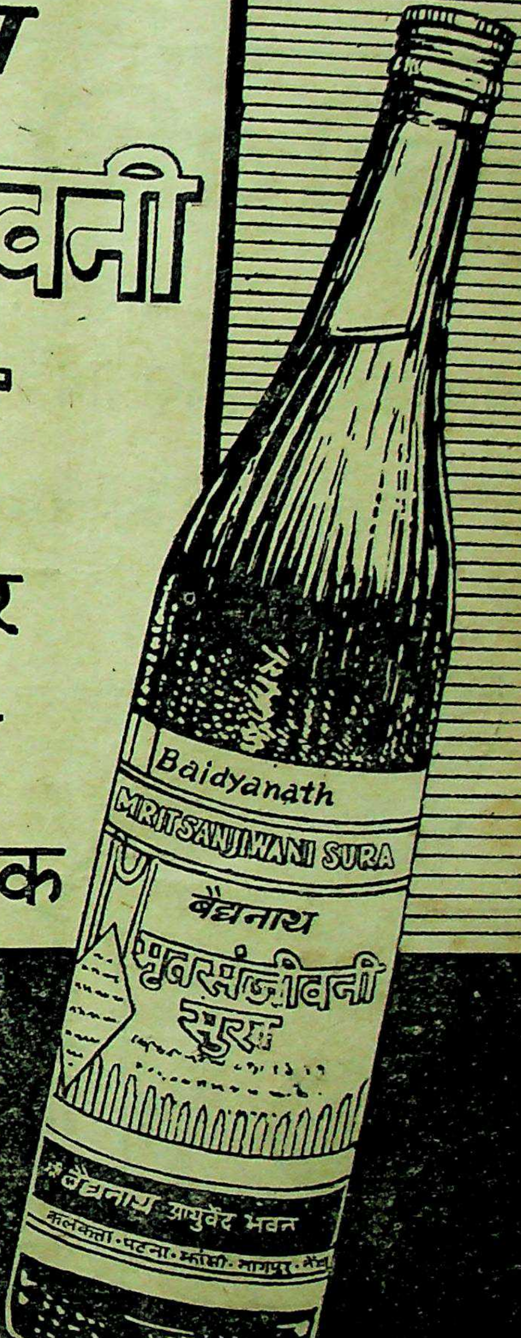
Baidyanath
MRITSANJIWANI SURA
बैद्यनाथ
मृतसंजीवनी
सुरा
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
कलकत्ता · पटना · झांसी · नागपुर · नैनी

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD.
CALCUTTA

वनौषधि संबंधी सर्वाधिक उपयोगी पुस्तक

वनौषधि-शतक

लेखक :—

प्राणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा

निर्देशक :— श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०

अध्यक्ष :-

बिहार-राज्य आयुर्वेद-यूनानी अधिकाय,
पटना

अब तक वनस्पति-सम्बन्धी ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था, जिसके आधार पर चिकित्सक या सर्वसाधारणजन वनस्पतियों का स्वरूप, गुण-धर्म और रोगानुसार इसके उपयोग से लाभ उठा सकें। अतएव, वनस्पति-विशेषज्ञ वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा ने जन-कल्याणार्थ प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें १०० वनौषधि के रंगीन और सादे चित्रों के साथ वनस्पति-परिचय, गुण-धर्म और रोगाणुसार उपयोगों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में है। यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्वानों, छात्रों चिकित्सकों एवं सर्वसाधारणजन के लियें बहुत उपयोगी है।

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

डबल डिमाई १६ पेजी, पृष्ठ संख्या २०८, सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र ५.०० है। पोस्टेज

बैद्यनाथ
सिद्ध मकरध्वज
स्पेशल

बल, पौरुष कान्ति वर्द्धक
नवजीवन दायक बहुरोग हर,
अनुपान भेद से सभी
रोगों में सेवनीय।

श्री
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन
प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना
झाँसी · नागपुर
नैनी (इलाहाबाद)

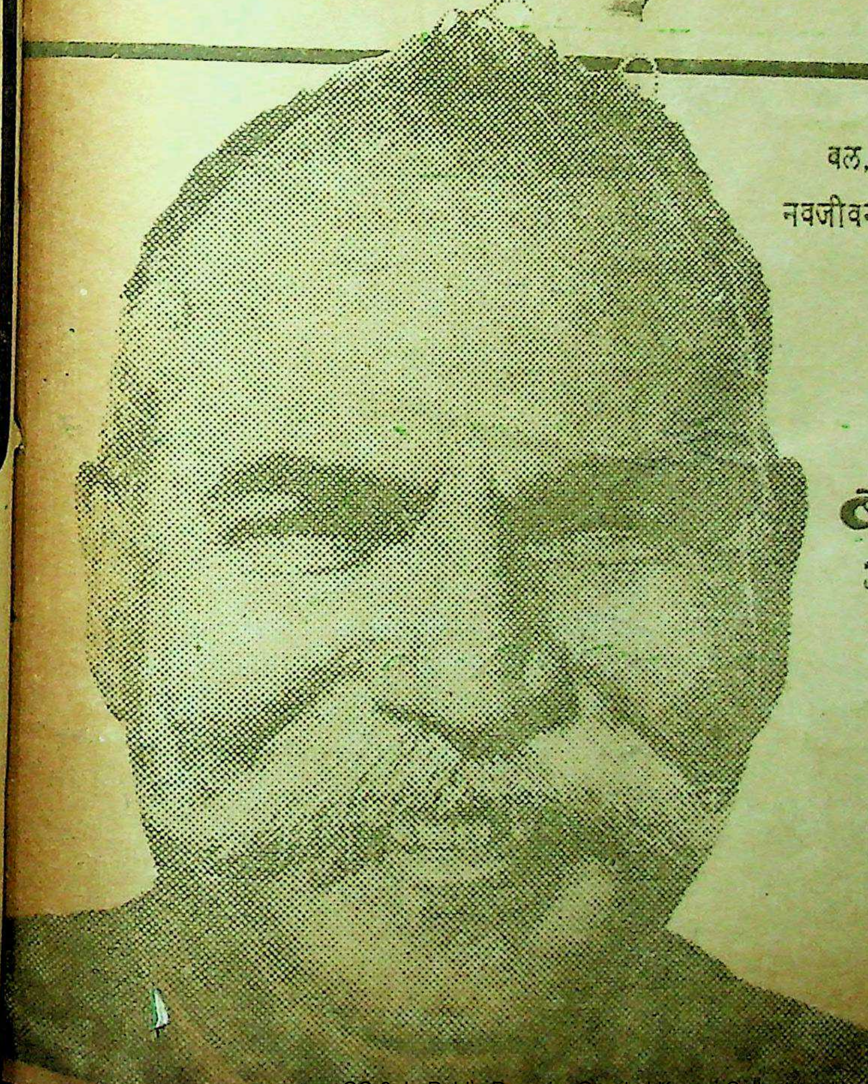

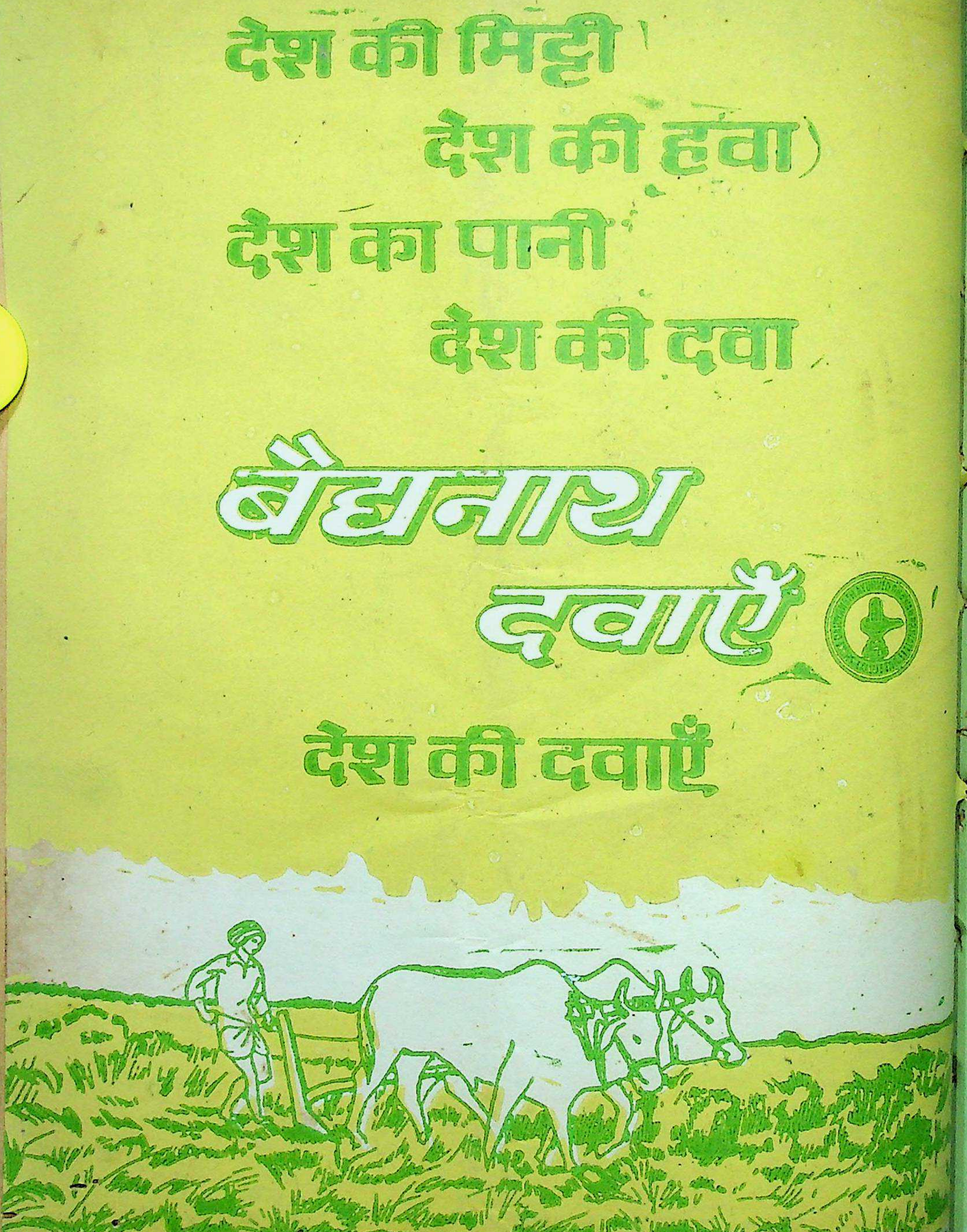

देश की मिट्टी
देश की हवा
देश का पानी
देश की दवा

बैद्यनाथ
दवाएँ

देश की दवाएँ

सर्वाधिकारी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से श्री [illegible] शास्त्री द्वारा शिव-शक्ति प्रेस, लोदीपुर, पटना—
में मुद्रित तथा उनके ही द्वारा वैद्यनाथ भवन रोड पटना—१ से प्रकाशित।

सचित्र आयुर्वेद

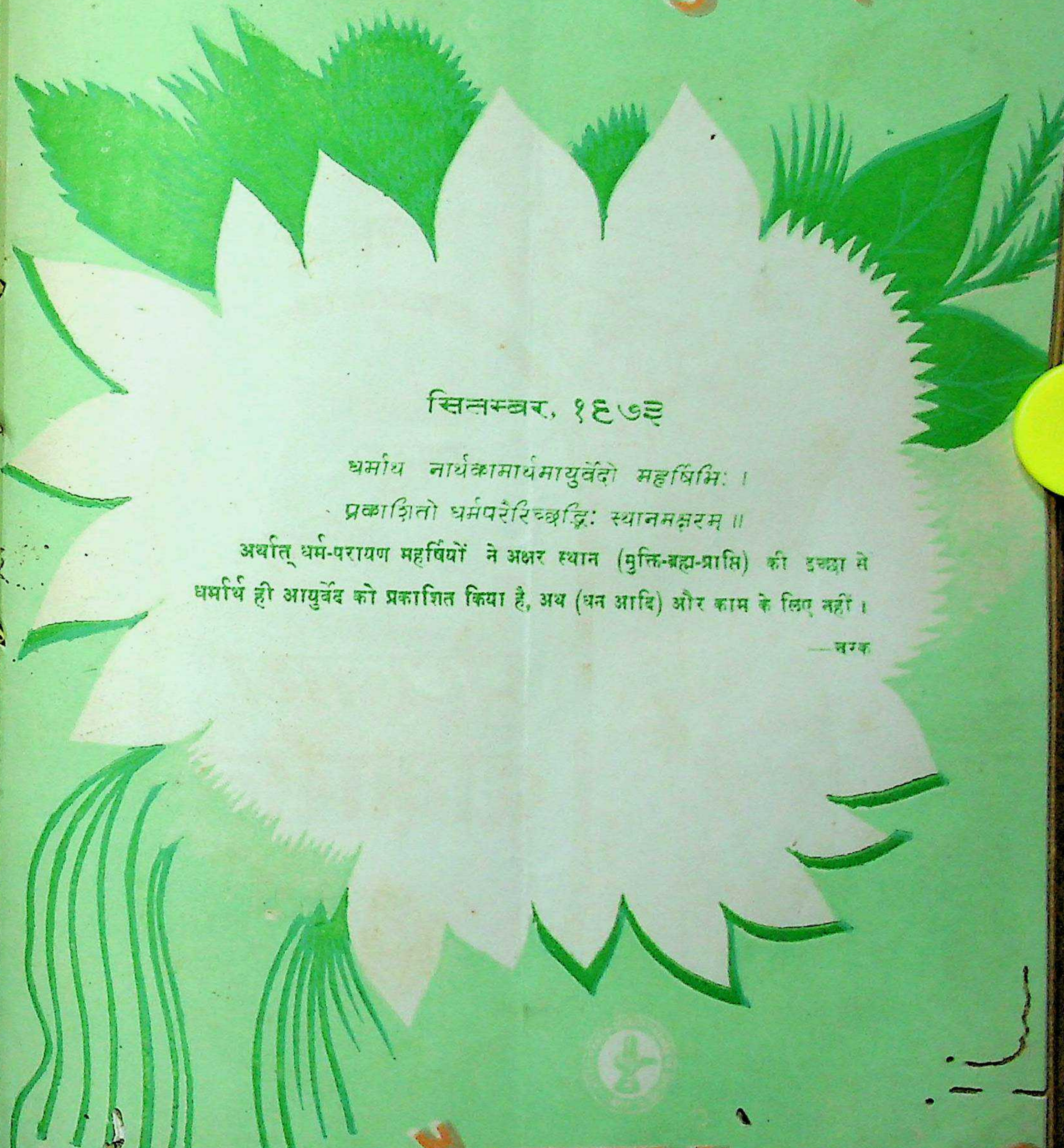

सितम्बर, १९७३

धर्मार्थं नार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः ।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम् ॥

अर्थात् धर्म-परायण महर्षियों ने अक्षर स्थान (मुक्ति-ब्रह्म-प्राप्ति) की इच्छा से धर्मार्थ ही आयुर्वेद को प्रकाशित किया है, अथ (धन आदि) और काम के लिए नहीं ।

—चरक

प्रकाशक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि

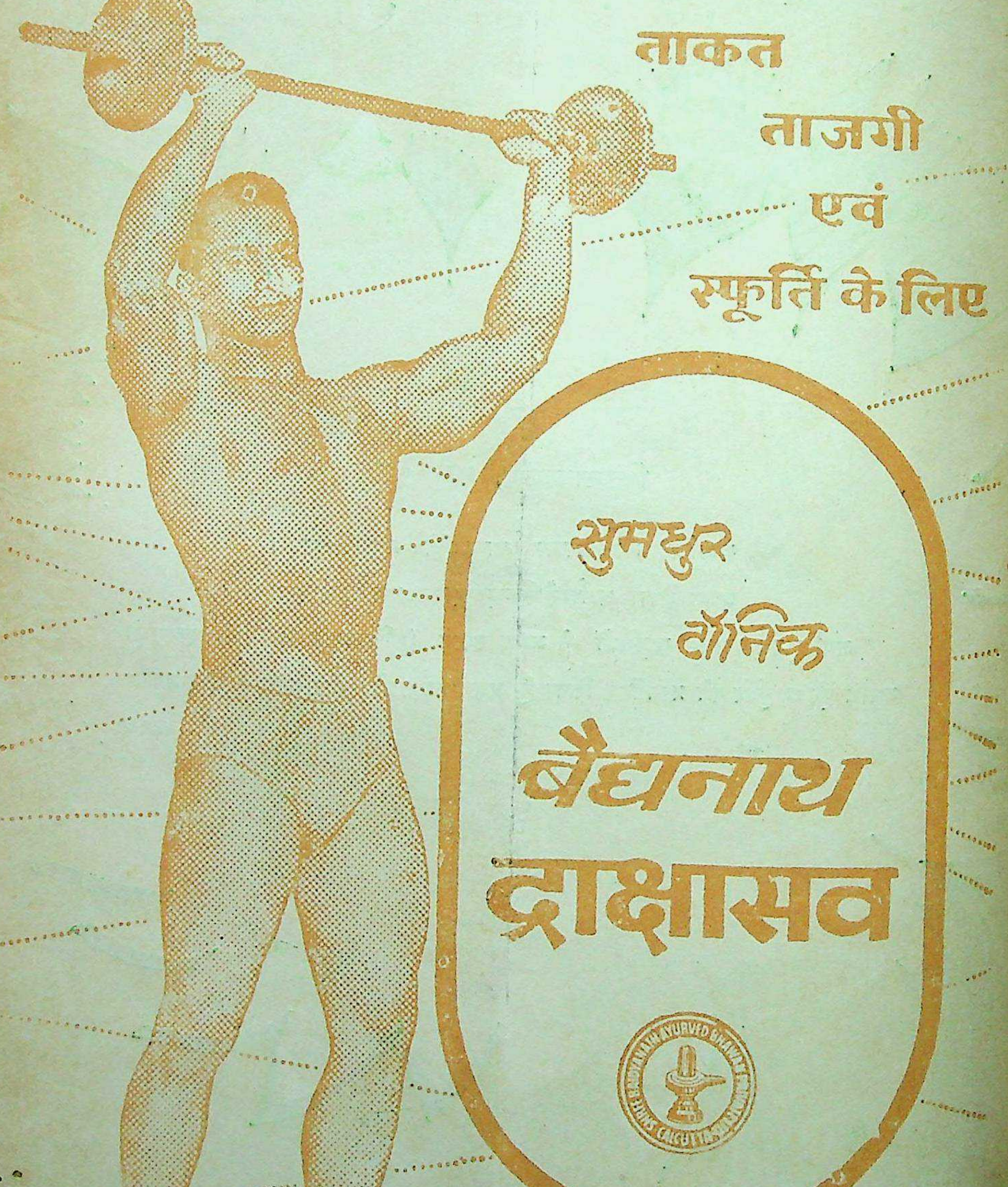

ताकत
ताजगी
एवं
स्फूर्ति के लिए

सुमधुर
टॉनिक
वैद्यनाथ
द्राक्षासव

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

किशोर किशोरियों के लिये
जीवन और यौवन का ज्ञान

यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश

डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वारा लिखित अपूर्व ग्रन्थ

यौवन-विज्ञान पर नया प्रकाश
किशोर किशोरियों के लिये
जीवन और यौवन का ज्ञान
डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा
प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.

मूल्य
३ रु.

V. KAKDE/BA/172-2

प्रकाशक- श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्रा. लि.
ग्रेट नाग रोड, नागपुर. ९

संरक्षक :
आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य
परामर्शदाता :
आयुर्वेद-वृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक
संपादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	लेखक
विदेशी दवाओं पर करोड़ों रु० खोना राष्ट्रीय अपव्यय	क	पण्डित सुन्दरलाल
एष धर्मः सनातनः	ख	श्री अरविन्द
सम्पादकीय	१३७	
आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त : एक दृष्टि	१३९	प्राणाचार्य वैद्य दुर्गा प्र० शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति-आयुर्वेद का ही एक अंग	१४२	आचार्य धर्मदत्तजी वैद्य
उदर—३	१४५	वैद्य रणजितराय देसाई
क्षार-चिकित्सा-शल्य विज्ञान की एक अभूल्य उपलब्धि	१५०	डा० विद्यानन्द प्रसाद, डा० कविरत्न प्रो० प्रभाकर जनार्दन देशपाण्डे
आयुर्वेद में नाड़ी परीक्षा	१५६	डा० बी० एन० सण्ड, डा० विमला वैद्य एम० आर० उनियाल
The Ethical Life as Described in Ayurveda with Special Reference to Charak	१५९	Acharya L. V. Guru Acharya J. Mitra
रास्ना	१६४	वैद्य सिद्धगोपाल शुक्ल "पुरोहित"
प्राकृतिक चिकित्सा और त्रिदोष सिद्धांत	१६७	श्री विट्ठलदास मोदी
कुक्कुर कास	१७०	कविराज एस० एन० बोस
श्वेतप्रदर की चिकित्सा	१७५	श्री इन्द्रमोहन झा "सच्चन"
हृदय के प्रति हमारा दायित्व	१७८	डा० रामशरण मिश्र
आन्ध्र प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति	१८१	कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी
स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-संवर्धन का प्राकृतिक उपाय—"व्यायाम"	१८३	श्री गोपालदास अग्रवाल
शाकाहार ही मानव जाति के लिये श्रेयस्कर है	१८६	विद्याभास्कर वैद्य परमेश्वर धिल्डियाल
आलोचक की दृष्टि में	१८९	
आयुर्वेद जगत	१९१	

वार्षिक मूल्य ५ रु०]

[**एक प्रति ५० पैसे**

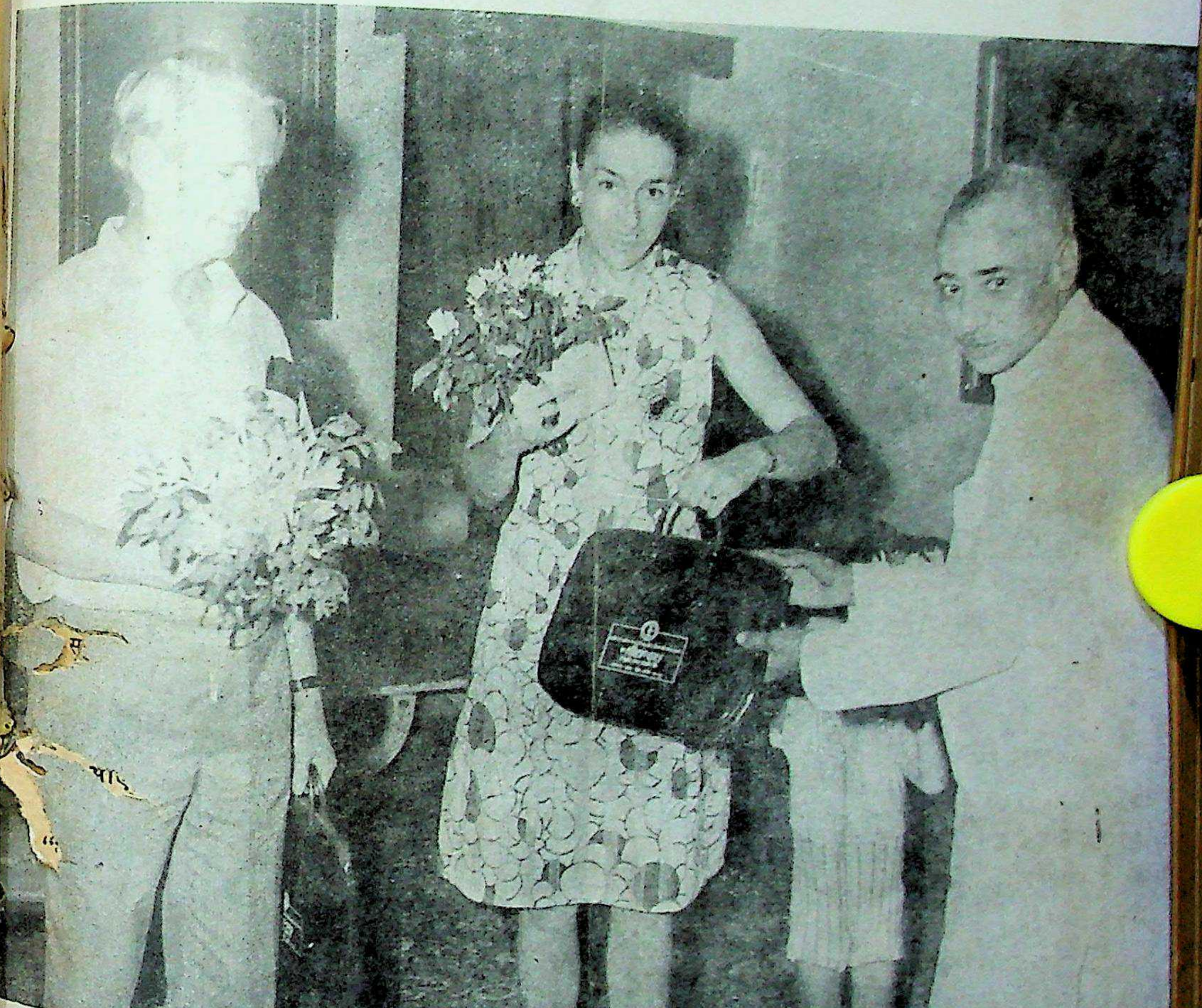

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना निर्माण-केन्द्र में नेपाल स्थित जर्मन-राजदूत श्री एच० यू० लिण्डेमेन एवं उनकी धर्मपत्नी का वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक आयुर्वेद चक्रवर्त्ती वैद्य दुर्गा प्र० शर्मा द्वारा भावभीना स्वागत ।
चित्र में श्रीमती लिण्डेमेन को श्री शर्मा जी वैद्यनाथ का उपहार भेंट करते दिखायी दे रहे हैं ।

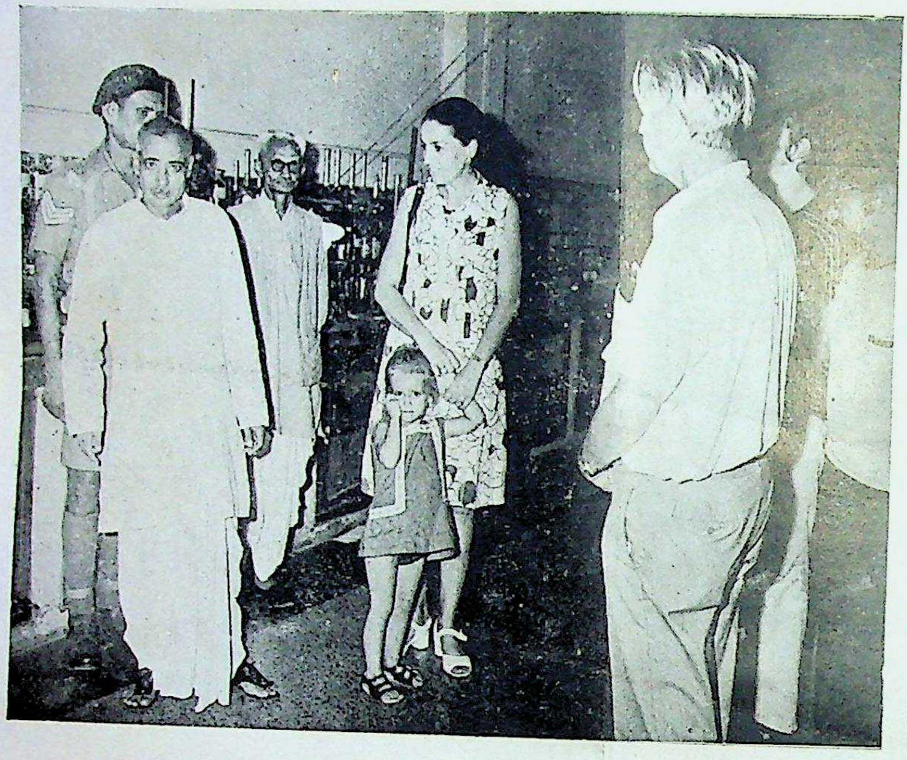

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना-केन्द्र के औषध-निर्माण विभाग में लिया गया एक चित्र। चित्र में जर्मन राजदूत दम्पति के साथ प्रतिष्ठान के निदेशक श्री दुर्गा प्र० शर्मा गंभीर मुद्रा में खड़े दिखायी दे रहे हैं।

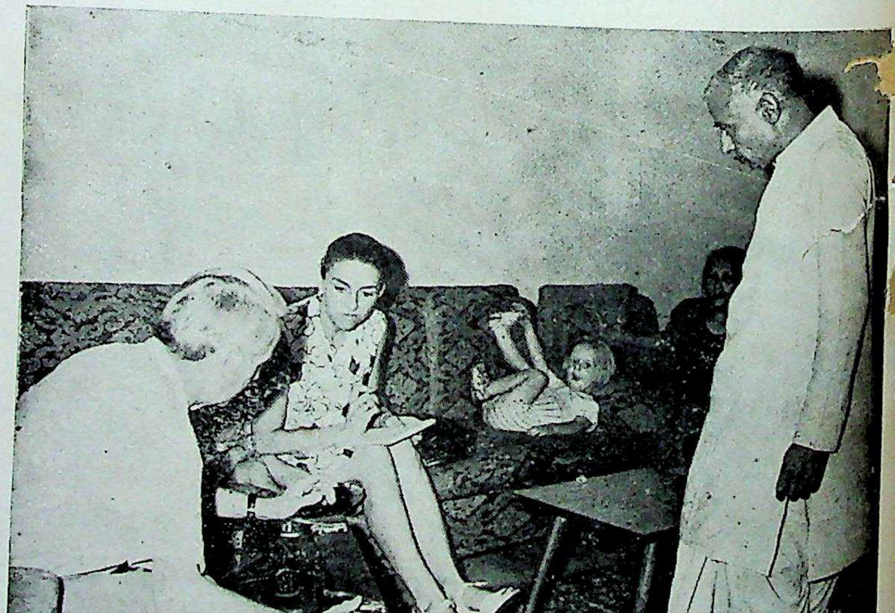

बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना केन्द्र में जर्मन राजदूत दम्पति (सोफा पर अधिष्ठित) एवं प्रतिष्ठान के निदेशक प्राणाचार्य श्री दुर्गा प्र० शर्मा खड़े दिखायी दे रहे हैं।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामायमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष २६ | पटना, सितम्बर १९७३ | अंक—३

विदेशी दवाओं पर करोड़ों रु० खोना राष्ट्रीय अपव्यय

आए दिन के अपने तजुरबों को छोड़कर कुछ दिन हुए हमने यूरोप के एक बहुत बड़े डाक्टर की, जो चालीस साल तक दुनिया के एक बहुत बड़े अस्पताल के चार्ज में रह चुके थे, पच्छिमी दवाओं की बाबत, यह राय पढ़ी थी—"यदि डाक्टर की सब दुकानों की सारी शीशियां समुद्र में उलट कर खाली कर दी जायं तो नतीजा मछलियों के लिए खतरनाक हो सकता है लेकिन मानव समाज अधिक सुखी और अधिक स्वस्थ रहेगा।"

हमें विश्वास है कि महात्मा गांधी इस देश के पच्छिमी ढंग के डाक्टरों को जब देश के दो सबसे खतरनाक और हानिकर गिरोहों में गिना करते थे तो उनकी बात में बहुत बड़ी सचाई थी। हम आजकल पूरी नेकनीयती के साथ, पर उतनी ही पूरी नासमझी के साथ, इस मामले में उसी खतरे की तरफ लुढ़कते चले जा रहे हैं जिससे गांधी जी हमें बचाना चाहते थे।

चीनी शासक इस बारे में हमसे अधिक समझदार हैं। जहां तक आम जनता का सवाल है चीन आज उतना गरीब देश नहीं है जितना भारत। फिर भी चीनी शासक हर साल करोड़ों रुपया विदेशी दवाओं पर नहीं खोते और यह मानी हुई चीज है कि अपनी जनता और अपने बच्चों को हमसे कहीं अधिक तन्दुरुस्त, मोटा-ताजा और खुश रख रहे हैं।

पण्डित सुन्दरलाल

एष धर्मः सनातनः

वेदों की एक दिव्य सत्ता, जिसे ज्ञानियों ने बिभिन्न नाम दिए हैं, उपनिषदों का "एकमेवाद्वितीय" ही है, भारतीय आध्यात्मिकता का मूलगत दर्शन। सब कुछ उसी 'एक से आता है, उसी में रहता है, उसी में वापस जाता और उसी को प्राप्त होता है। इस अनन्त, इस शाश्वत सत्ता को ढूँढ़ निकालना, उसके निकट-सम्पर्क में आना, उसके साथ चाहे जैसी एकता स्थापित करना ही आध्यात्मिक अनुभव का शिखर है। यही भारत में धार्मिक मन की प्रथम भावना है।

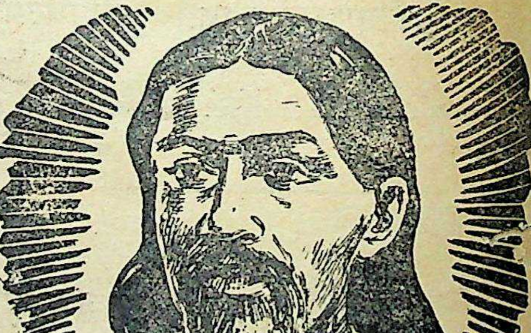

दूसरी भावना है उस शाश्वत और अनन्त सत्ता तक जाने का मनुष्य का बहुविध मार्ग। यह अनन्त अनेक अनेकताओं से भरा है और इन अनन्तरूपों में से प्रत्येक अपनी महिमा में शाश्वत है। विश्व की सीमाओं के भीतर भगवान् मनुष्य के सामने प्रकट होते हैं और अनेक पद्धतियों से जगत् में अपने को पूर्ण करते हैं, पर प्रत्येक सनातन की ही पद्धति है, प्रत्येक ससीम वस्तु के अन्दर हम अनन्त को खोजते हैं, प्रत्येक वस्तु के द्वारा हम अनन्त के पास पहुँच सकते हैं।

विश्व की सभी शक्तियां और अभिव्यक्तियां 'एक' की हैं और प्रकृति की क्रियाओं के पीछे वे उन शक्तियों, नामों, और व्यक्तियों के रूप में देखी और पूजी जाती हैं, जो एक परमदेव के विभिन्न देव-रूप हैं। भागवत-संकल्प और क्रियाशक्ति सभी घटनाओं के पीछे विद्यमान है, भले ही वे हमारे लिए अनुकूल या प्रतिकूल हों। विश्व-व्यवहारों की प्रत्येक पद्धति पर अधिष्ठाता परमदेव का एक रूप विद्यमान है, वे सृष्टि करते और ब्रह्मा होते हैं, पालन करते और विष्णु होते हैं, नाश करते या अपने अन्दर ले लेते और रुद्र या शिव होते हैं। वैष्णवों के दिव्य प्रेम के ईश्वर, शाक्तों की दिव्य शक्ति के ईश्वर दो पृथक्-पृथक् देवता प्रतीत होते हैं, पर वे हैं एक ही परमदेव।

श्री [illegible]विंद

वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना निर्माण-केन्द्र में जर्मन राजदूत श्री लिण्डेमेन, उनकी धर्मपत्नी एवं पुत्र, प्रतिष्ठान के निदेशक श्रीयुत् दुर्गा प्र० शर्मा एवं प्रतिष्ठान के चीफ केमिस्ट श्री आर० के० गुप्त का एक समूह चित्र।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना निर्माण - केन्द्र का जर्मन राजदूत श्री लिण्डेमेन द्वारा निरीक्षण । चित्र में पटना निर्माण - केन्द्र के टेबलेट विभाग में जर्मन राजदूत को प्रतिष्ठान के चीफ केमिस्ट अंगुलि-निर्देश द्वारा औषध-निर्माण-प्रक्रिया बता रहे हैं।

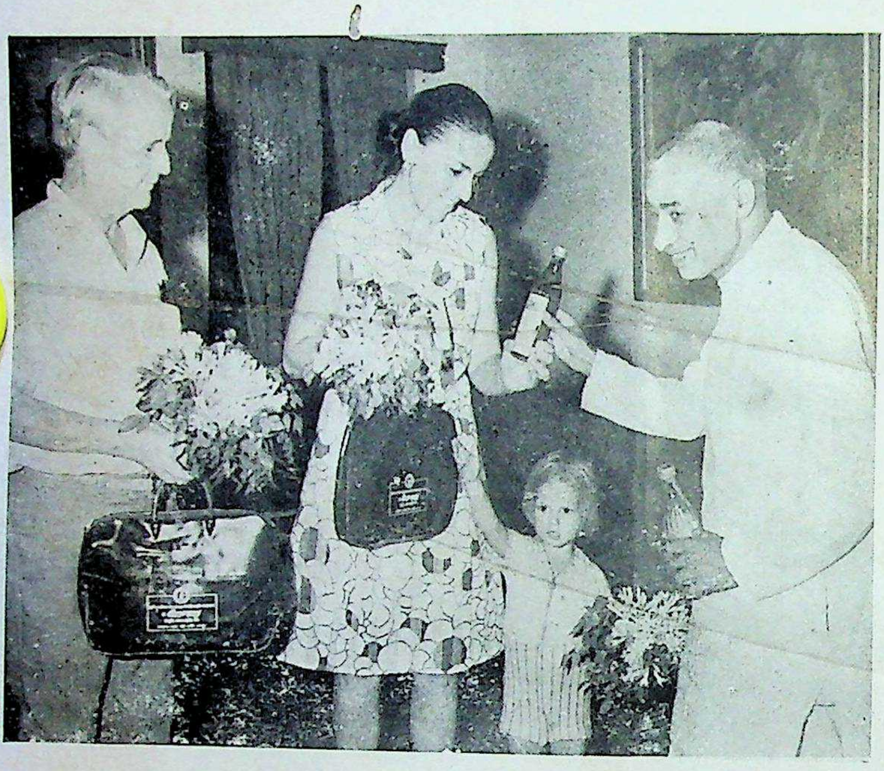

जर्मन-राजदूत-दम्पति को बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्र० शर्मा बैद्यनाथ औषधियाँ एवं पुष्प-स्तवक भेंट कर रहे हैं।

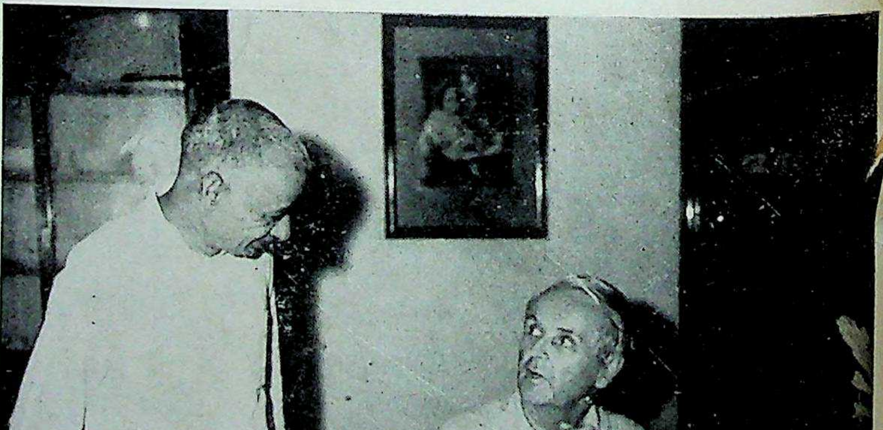

वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना-केन्द्र में नेपाल स्थित जर्मन राजदूत श्री लिण्डेमेन स्वल्पाहार की मेज पर। प्रतिष्ठान के मान्य निदेशक श्री दुर्गा प्र० शर्मा प्रसन्न मुद्रा में राजदूत महोदय से वार्त्ता करते दिखायी दे रहे हैं।

सम्पादकीय

जनस्वास्थ्योन्नति का प्रश्न

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन के १३ वें अधिवेशन का गत २८ जुलाई को लखनऊ में उद्घाटन करते हुए महामहिम राष्ट्रपति श्री गिरि ने जोरदार शब्दों में इस बात पर जोर दिया कि भारत जैसे निर्धन देश के लिए चिकित्सा सस्ती होनी चाहिए, साथ ही साथ भारत की जनता को शीघ्र से शीघ्र स्वास्थ्य-सेवा उपलब्ध करानी चाहिए । इसी संदर्भ में राष्ट्रपति ने आगे कहा कि आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों से हजारों वर्ष पुरानी अपनी महान परम्पराओं से हमें पूरा लाभ भी उठाना चाहिए । कहना न होगा कि लगभग डेढ़-शताब्दी तक अनवरत पूर्णराज्याश्रय एवं प्रशासकीय प्रोत्साहन मिलने के बावजूद भी एलोपैथी इस विशाल देश की सामान्य जनता तक नहीं पहुँच पायी, यह एक सचाई है; और आज भी देश की सम्पूर्ण जनसंख्या का ७०-८० प्रतिशत भाग आयुर्वेद-यूनानी, होम्योपैथी तथा अन्य देशी चिकित्सा-पद्धति पर स्वास्थ्य-लाभ के लिए निर्भर करता है ।

आयुर्वेद, इस देश की मिट्टी से उत्पन्न हुआ है और देश-काल-पात्र की दृष्टि से यह चिकित्सा-पद्धति जितनी इस देश की जनता के लिए सुकर एवं लाभप्रद हो सकती है, उतनी विदेशी चिकित्सा-पद्धति (एलोपैथी) कथमपि नहीं हो सकती । ऐसी बात नहीं कि इस महान सत्य को वर्तमान प्रशासन स्वीकार नहीं करता, स्वीकार अवश्य करता है, योजनाएं भी बनती हैं, उनका प्रारूप भी तैयार किया जाता है, किन्तु उनका कार्यान्वियन खटाई में पड़ जाता है यही भारी विडम्बना है । ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का दृष्टान्त हमारे सामने है । आयुर्वेद की उपादेयता को स्वीकार करते हुए भी प्रशासन न जाने क्यों अमली रूप देते समय पीछे पाँव कर देता है । अब तक यही सिलसिला रहा है—जाने कब तक रहेगा ।

राष्ट्रपति महोदय ने भारतीय जनता के न्यूनतम स्तर की बात भी कही है । इससे भला कौन इन्कार करेगा कि भारत की जनता का जीवन-स्तर विश्व के पर्दे पर विकसित देशों की तुलना में अत्यन्त न्यूनतम स्तर पर है—बल्कि सचाई तो यह है कि २० प्रतिशत लोगों को छोड़ कर बकिए जो लोग जैसा जीवन जीते हैं, उसे मनुष्योचित जीवन कहना सचमुच विरोधाभास ही कहा जायगा । जैसा कि राष्ट्रपति महोदय ने स्वयं अपने भाषण में कहा, भारत में बहुत-सी व्याधियां गरीबी जन्य अपोषण अथवा कुपोषण तथा अज्ञानता के कारण ही होती हैं । और, इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय जनता के रहन-सहन का स्तर ऊंचा करने से बहुत-सी व्याधियां अपने आप दूर हो सकती हैं । किन्तु रोना तो इस बात का है कि स्वतंत्रता के २५ वर्षों के बाद भी इस देश की जनता के लिए रहन-सहन का न्यूनतम स्तर भी उपलब्ध न हो सका, और अज्ञानता, निर्धनता, व्याधिग्रस्तता का बुरी तरह शिकार भारतीय जनता आज भी बनी हुई है । जन स्वास्थ्य का स्तर इस देश में अत्यन्त गिरा हुआ है ।

जन स्वास्थ्य को समुन्नत करने का दायित्व निश्चय ही सरकार पर है, इसे नकारा नहीं जा सकता, और यह भी सत्य है कि जन स्वास्थ्योन्नति की दिशा में सरकार ने बहुत कुछ किया भी; किंतु यह भी सचाई है कि गरीबी, जहालत, बीमारी आदि के विरुद्ध हम तभी विजयी हो सकेंगे जब कि जनता के पूरे सहयोग से राष्ट्रीय स्तर पर भारी प्रयास किए जाएं । आज हमें आवश्यकता है निष्ठावान कार्यकर्ताओं की, जो देश के निर्माण के लिए जनता में नई चेतना पैदा कर सकें । यदि सेवा-भावना की कमी हो तो शानदार भवनों के निर्माण और उपकरणों पर चाहे कितना ही खर्च किया जाए उससे कोई लाभ नहीं होने को ।

देश में सेवा-भावी नैष्ठिक लोक सेवकों का अभाव नहीं है, जरूरत है ऐसे लोक सेवकों को प्रशासन प्रोत्साहन दे, वित्तीय सहायता दे और जन-स्वास्थ्य-विषयक ऐसी योजनायें निर्मित करे, जिनके कार्यान्वियन से इस विशाल भू खण्ड में फैले कोटि-कोटि मानवों के स्वास्थ्योन्नयन की दिशा में प्रगति आ सके । वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों से जन-स्वास्थ्य-विषयक किसी बृहत् योजना की सफल परिणति सन्देहास्पद है । अब तक के अनुभवों से यही परिलक्षित होता रहा है ।

स्व० आचार्य पं० मणिराम शर्मा

आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान एवं प्रख्यात चिकित्सक आचार्य पं० मणिराम जी शर्मा (रतनगढ़) का वि ६।८।७३ को स्वर्गवास हो गया। इस दुःखद संवाद से प्रत्येक आयुर्वेद-प्रेमी मर्माहत हो उठेगा। श्रीमणि जी आयुर्वेद के उन निष्ठावान् साधकों में से थे, जो आजीवन आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार में संलग्न रहे। कु अध्यापक के रूप में भी उनकी ख्याति अच्छी थी और अपने कुशल अध्यापन के द्वारा उन्होंने भारत के अनेक राज्यों में योग्य शिष्यों को तैयार किया, जिनमें श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संचालक वैद्य पं० रामनारायण जी शर्मा अन्यतम हैं। वैद्य जी जिस निष्ठा और लगन के साथ आयुर्वेद के उत्थान में प्रयासी रहे हैं, उसके पीछे आचार्य मणिराम जी शर्मा की सत्प्रेरणा काम करती रही है!

बैद्यनाथ प्रतिष्ठान से उनका प्रगाढ़ सम्बन्ध था— और बैद्यनाथ प्रतिष्ठान अपनी समुन्नति एवं प्रसार के लिए उनके शत-शत परामर्श से सदैव अनुप्रेरित एवं लाभान्वित होता रहा। अतएव बैद्यनाथ परिवार उनके इस अप्रत्याशित वियोग से अत्यन्त मर्माहत एवं दुखी है और अपने को उनके सत्परामर्श के अभाव में विकलता की स्थिति में पा रहा है। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा संचालित प्रमुख आयुर्वेद मासिक पत्र 'सचित्र आयुर्वेद' के भी प्रारंभ से ही श्री मणिराम जी पोषक एवं लेखक थे। इस दृष्टि से उनका वियोग हमें और भी अधिक सालता है। वे अपनी आयुर्वेद-सेवाओं के कारण सदैव स्मरणीय हैं और उनकी कीर्ति-पताका उनके सुयोग्य द्वारा सदैव लहराती रहेगी ही—किन्तु उनके द्वारा संस्थापित धन्वन्तरि मंदिर, रतनगढ़ उनका मूर्त्त कीर्तिस्तं जो उनकी स्मृति को सदैव अक्षुण्ण बनाए रखेगी—इसमें सन्देह नहीं।

प्रभु उनकी दिवंगत आत्मा को पूर्ण शान्ति प्रदान करे और उनके शोक—संतप्त परिवार को यह शोक सहन करने की शक्ति दे।

— सं

आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त : एक दृष्टि

आयुर्वेद चक्रवर्ती, प्राणाचार्य,
वैद्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

महर्षि पुनर्वसु आत्रेय का एक अत्यन्त प्रसिद्ध वचन है—(हिताचार मूलं जीवितम्, अहिताचार मूलश्च मृत्युः) जिसका आशय यह है कि जीवन का मूल हिताचार है, मृत्यु का मूल अहिताचार है। अर्थात् जो आहार-बिहार, पोषण का हेतु होता है, वह हित कहलाता है और इसके विपरीत, "अहित" है। वस्तुतः देखा जाए तो मनुष्य के जीवन का असली आधार, जिस पर आचरण करके, मनुष्य निश्चिन्तता के साथ, असंदिग्ध तौर पर जीवित रह सकता है, तो वह हिताचार ही है। हिताचार पर ही जीवन अवलम्बित है, जीवन टिका हुआ है। केवल हिताचार से ही मनुष्य पूर्ण आयुष्य का भोग कर सकता है— हमारे प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र के चिन्तकों का यह स्पष्ट मत है

औषधियां किसी निश्चित सीमा तक ही रोगों को दूर कर सकती हैं तथा मनुष्य को नीरोग रख सकती हैं, उनके आगे उनका वश नहीं चल पाता। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में बताया गया है कि औषधियों के बिना भी रोग शान्त हो जाते हैं यदि पथ्यापथ्य का विवेक रखते हुए सही ढंग से पथ्याचरण से रहा जाए, और मिथ्या आहार-विहार का सेवन न किया जाए। यदि उचित परहेज से रहा जाए तथा बदपरहेजी से बचा जाए। आयुर्वेद के प्रणेता आचार्यों ने इस बात पर काफी बल देते हुए कहा है कि हजारों औषधियां भी उस रोगी को अच्छा नहीं कर सकतीं, जो पथ्यापथ्य का ध्यान नहीं रखते हुए मिथ्या आहार-विहारों में फंसता है। आयुर्वेद के एक अन्य आचार्य श्रीलोलिम्बराज ने इसी बात को बड़े आलंकारिक ढंग से कहा है—कि यदि कोई हिताहार-विहारका आचरण करे, पथ्य का ठीक-ठीक सेवन करे तो उसे औषधि की जरूरत ही क्यों हो? इसी प्रकार यदि रोगी अपथ्य का सेवन करे, बदपरहेजी करे तो उसे औषधि की जरूरत ही क्या है? आशय यह निकला कि हिताहार-विहार-सेवी के रोग स्वयं शांत हो जाते हैं, अतएव उसे किसी औषधि की जरुरत नहीं है।

इन सब बातों का निचोड़ यह है कि रोग--निवारण में पथ्य की अत्यधिक उपयोगिता है। पथ्यापथ्य का विवेचन आयुर्वेद में बड़ी सूक्ष्मता एवं गहराई से किया गया है। पथ्यापथ्य विज्ञान आयुर्वेद का प्रमुख अंग है और इसकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। अब मैं स्वस्थावस्था तथा अस्वस्थावस्था के सम्बन्ध में आयुर्वेदीय दृष्टि क्या है, उसके सन्दर्भ में कुछ कहना चाहूंगा। मोटे तौर पर आयुर्वेद में शरीर की धातुओं की समावस्था ही आरोग्य अथवा स्वस्थावस्था और उनमें विषमता आना ही रोग है। इन धातुओं का प्रतिक्षण विनाश होता रहता है। यह विनाश क्रिया नित्य चलती रहती है—अतः इसमें किसी कारण की आवश्यकता नहीं। प्रतिक्षण वर्तमान भूत में परिवर्तन होता रहता है। इससे स्पष्ट है कि इस क्षण में यदि स्वस्थावस्था है तो वह अगले क्षण में नष्ट हो जायगी —और यदि रोगावस्था है तो वह भी दूसरे क्षण में नहीं रहे, किन्तु अगले क्षण में जिस अवस्था की धातु का निर्माण हो उसी के अनुसार रोग या आरोग्य मानाना जायगा। और इन धातुओं का प्रति क्षण निर्माण हेतुओं के अनुसार होता रहता है। चरक संहिता में इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहा गया है कि देह की धातुएं हेतु की विषमता के कारण विषम हो जाती हैं और हेतु की समता से सम रहती हैं—यह स्वाभाविक

प्रतिक्रिया है। इस तरह स्पष्ट है कि रोगकारक हेतुओं का परित्याग किये वगैर औषधियों के बल पर धातुओं को समावस्था में लाने का दावा करना भ्रान्तिमूलक है।

यह एक विज्ञान सम्मत बात है कि, विशेष वातावरण में ही विशिष्ट जीव-जंतु, वनस्पति आदि की वृद्धि होती है और उस वातावरण के बदल जाने पर जीव-जंतु भी नष्ट हो जाते हैं—और नवीन जीवन की उत्पत्ति होती है। एलोपैथी चिकित्सा में जन्तु-वृद्धि एवं उनके विनाशकारी औषधियों द्वारा चिकित्सा की जाती है। परन्तु जहां तक आयुर्वेदीय चिकित्सा का सम्बन्ध है, यह उस वातावरण का विचार करती है, जिसमें इन जंतुओं की वृद्धि एवं विनाश होता है। त्रिदोष अर्थात् वात, पित्त, कफ की चिकित्सा का अर्थ शीत, उष्ण एवं जलयुक्त वातावरण की चिकित्सा है—यही शीत काल, उष्ण काल एवं वर्षा काल के नाम से प्रसिद्ध है।

आयुर्वेद की चिकित्सा शीत, उष्ण एवं वर्षा काल के वातावरण पर निर्भर होने से आयुर्वेद में ऋतुचर्या और दिनचर्या का भी महत्वपूर्ण विचार किया गया है। एलोपैथी में ऐसा कुछ विचार नहीं किया गया है। दरअसल हम कह सकते हैं कि एलोपैथी चिकित्सा में रोग प्रतिबन्धक टीका लगाने का जो उद्देश्य है, आयुर्वेद में यही उद्देश्य ऋतुचर्या, और दिनचर्या है। यद्यपि कार्य में अवश्य भिन्नता है, किंतु उद्देश्य समान ही हैं।

आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार ऋतुविपर्यय से उत्पन्न रोग बिना उपचार के शांत नहीं होते। अतः उपचार में अनेक उपायों तथा औषधों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। आयुर्वेद के आचार्यों ने दिनचर्या, ऋतुचर्या के सम्बन्ध में, जैसा कि अभी मैं कह चुका हूं, विस्तृत साहित्य लिखा है। इनके पालन से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है और उनके न पालन करने से मनुष्य व्याधि के चंगुल में फंसता है। स्वभावतः रोगाक्रांत व्यक्ति को अपना रोग दूर करने के लिए औषधी की शरण लेनी पड़ती है। दिनचर्या का पालन स्वास्थ्य - संरक्षण के प्रतिषेधात्मक चिकित्सा (प्रीवेन्टिव क्योर) ही है। रोग के चंगुल से बचने के लिए अनेक नियमों के पालन करने पड़ते हैं, जैसे उषाकाल में शय्या - त्याग, शौचादि कार्यों से निवृत्ति, मुख-प्रक्षालन, अंजन आदि विविध साधनों का सहारा लेना भी चिकित्सा का ही अंग है, क्योंकि इन साधनों को अपना कर हम अपरोक्ष दृष्टि से रोग के आघात से बचने का उपक्रम करते हैं। इसी प्रकार यथासमय उबटन लगाना, मालिश करना, स्नान आदि भी शरीर को स्वस्थ एवं निरोग रखने एवं कुछ उत्पन्न रोगों के निराकरण के लिए भी आवश्यक होता है। ऋतु विपर्यय काल में उनके दुष्परिणामों से बचने के लिए भी अनेक उपाय तथा औषधों का सेवन शास्त्र-विहित है। ये सभी चिकित्सा के ही अंग हैं।

इसी प्रकार बुद्धि के अयोग, अतियोग तथा मिथ्या योग से बचने का उपदेश शास्त्रों में वर्णित है। हमारे प्राचीन शास्त्रों में मनोनिग्रह पर बड़ा जोर दिया गया है। विषयों से मन को दूर रखते हुए अनेक आधि-व्याधियों से बचा जा सकता है—यह भी प्रतिषेधात्मक प्रयत्न है, जिस पर पर्याप्त प्रकाश जन-स्वास्थ्य-संरक्षण की दृष्टि से पड़ने की आवश्यकता है।

आयुर्वेद के अनुसार रोगों का बर्गीकरण चार प्रकार से किया गया है—(१) सुखसाध्य, (२) कृच्छ्र साध्य, (३) याप्य और(४) प्रत्याख्येय। इन में प्रथम पथ्य सेवन मात्र से अर्थात् औषध के प्रयोग के बिना भी अच्छे हो जाते हैं। दूसरे औषध-प्रयोग के बाद भी कठिनाई से अच्छे होते हैं, तीसरे वैसे रोग हैं, जो चिकित्सा करते रहने से ठीक रहते हैं और चिकित्सा नहीं करने पर पुनः कष्ट देते हैं। चौथे वे हैं जिनकी चिकित्सा सफल नहीं होती अर्थात् औषध प्रयोग करने पर भी अच्छे नहीं होते।

इन रोगों के वर्गीकरण को ध्यान में रखकर यदि हम विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि रोग मुक्ति के लिए औषध का सेवन अनिवार्य हो जाता है। जो रोग बिना औषध-सेवन के अच्छे हो जाते हैं, उनकी गहराई में जाकर विचार करने पर यह तथ्य प्रकाश में आ जायगा कि वह भी औषध-सेवन से ही अच्छा हुआ है। औषध-सेवन का अर्थ बनी बनायी किसी औषध योग मात्र से ही नहीं है, बल्कि उन सभी उपचारों से है, जिनसे रोग दूर होता है। उदाहरण-स्वरूप उपवास को ही लें। भोजन न करना यह भी औषधि ही है। लंघन द्वारा हम अपने शरीर-गत दोषों को उपशमित करने में समर्थ होते हैं। ऐसे अनेक उपचार हैं, जिनमें किसी औषध का प्रयोग नहीं होता और उनसे रोग-मुक्ति होती है। आजकल की अत्यन्त लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सा, सूर्यरश्मि चिकि-

त्सा एवं फीजियोथेरापी आदि में भी औषध का प्रयोग प्रायः नहीं होता; पर ये भी चिकित्सा के अंग होने से औषधि ही हैं—क्योंकि 'औषधि' का अर्थ है—रोग को नष्ट करने का उपाय या उपचार।

हमारे यहां 'जीवेम् शरदः शतम्' कहा गया है। प्राचीन काल में स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पालन करते हुए प्रायः ही लोग शतायु हुआ करते थे। इस युग में भी कई लोग, जबकि जीवन-पद्धति एवं परिवेश काफी बदल चुका है, हमारी नजरों के सामने ही शतायु होकर स्वर्गवासी हुए हैं। गीता के 'युक्ताहार विहार' के सेवन एवं स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के पालन द्वारा आज भी हम शतायु हो सकते हैं। चरक ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य अपनी लापरवाही से ही रुग्ण होता और असमय काल का शिकार बनता है।

अन्त में मैं भर्तृहरि के उस अमर वाक्य से अपना लेख समाप्त करूंगा, जिसमें कहा गया है कि, शेरनी के समान काल डर दिखाते हुए सामने खड़ा है, शस्त्र के समान शरीर पर बराबर रोग प्रहार करते रहते हैं, चूते घड़े से रिसता हुआ पानी के समान जीवन बराबर रिसता रहता है, फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि लोग आयुष्य का ह्रास करने एवं रोग उत्पन्न करने वाले और बुढापा को समीप लाने वाले अपथ्यकर, अस्वास्थ्यकर आहार-विहार का नित सेवन किया करते हैं। चरक ने भी कहा है कि नगर-रक्षक जिस प्रकार नगर की रक्षा में तथा शकट वाहक अपने शकट (गाड़ी) के संचालन में जैसी सावधानी एवं मुस्तैदी दिखलाता है, वैसे ही बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए कि, वे सदा अपने शरीर-रक्षा की दिशा में सतत् सावधान एवं जागरुक रहा करें।

बैद्यनाथ
ईसबोल
नये-पुराने आंव तथा
पेचिस-मरोड़ की
बहु-प्रशंसित औषध।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति-आयुर्वेद का ही एक अंग

[अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष एवं भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री, उत्तरप्रदेश, आचार्य श्री धर्मदत्त वैद्य, द्वारा स्वागताध्यक्ष की हैसियत से गत २८ जुलाई, ७३ को अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन, लखनऊ में दिया गया अभिभाषण 'सचित्र आयुर्वेद' के वाचकों के लाभार्थ यहां प्रकाशित किया जा रहा है—आशा है, वाचकगण वैद्य जी के सुलझे हुए विचारों से लाभान्वित होंगे। संपादक]

—आचार्य धर्मदत्तजी वैद्य

वीरेश्वर लक्ष्मण की इस ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगरी लक्ष्मणपुरी में आपने मुझे स्वागत एवं सेवा का अवसर प्रदान किया है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूं तथा आपका हार्दिक स्वागत करता हूं। मुझे यह सूचित करते हुए गर्व का अनुभव हो रहा है कि इस स्थान के ठीक बगल में रेजीडेन्सी (वेलीगारद) स्थित है, जहां १८५७ की क्रांति के शूर-वीरों की गाथा भग्न इमारतों पर बन्दूकों और तोपों की गोलियों के निशानों द्वारा अंकित है।

यहीं दूसरी ओर शहीद स्मारक हमारा मस्तक ऊंचा किये हुये हमें त्याग और बलिदान की प्रेरणा दे रहा है। यही नहीं, बेगम हजरत महल का शौर्य भी हमारे दिल दिमाग में ताजा है। नबाबों की नगरी लखनऊ जहां ऐश्वर्य के लिए विख्यात है, वहीं त्याग, बलिदान और विज्ञान के लिए भी अग्रणी रही है। इसने कितने ही उच्च कोटि के कलाकारों को जन्म दिया है। प्राकृतिक दृष्टि से यह नगर गोमती के तट पर बने पार्कों एवं उद्यानों से सुशोभित है। इस नगरी में आपका स्वागत करते हुये मुझे अपार हर्ष एवं गौरव का अनुभव हो रहा है।

जिस प्रकार इस प्रांत ने राम, कृष्ण एवं कबीर आदि को जन्म देकर अहिंसा के क्षेत्र में अपना मस्तक ऊंचा किया है उसी प्रकार **इसने चिकित्सा-क्षेत्र में प्राकृतिक चिकित्सा जैसी अहिंसक पद्धति को आगे बढ़ाने में भी योगदान दिया है।** मानव प्राकृतिक जीवन-यापन करते हुए पूर्ण रूप से रोग मुक्त था। परन्तु, जैसे-जैसे वह प्रकृति से दूर हो [illegible] अप्राकृतिक एवं बनावटी जीवन की ओर आकर्षित होता गया, वैसे-वैसे उस पर दैहिक, दैविक और भौतिक त्रितापों का भी अधिकाधिक आक्रमण होने लगा। शारीरिक रोगों को दबाने के लिए नाना प्रकार की विषैली शमनकारी औषधियों से रोग-निवारण होने के बदले नाना प्रकार के जटिल रोग उत्पन्न होते गये, जैसा कि विश्व स्वास्थ्य परिषद् ने प्रस्ताव किया है कि अनेकों औषधियों से भी जटिल रोग बढ़े हैं।

आज के इस युग में जबकि संसार और यह दे भौतिकता के कारण वायुदूषण और जलदूषण का शिकार होता चला जा रहा है, ऐसे समय में प्रकृति के द्वा मानव शरीर की रक्षा के उपायों को ढूंढ़ना नितान् आवश्यक हो गया है। वैसे भी प्राकृतिक चिकित् सर्वसुलभ होने के साथ ही स्वावलम्बी होती है इस स्थिति की ओर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी ध्यान आकर्षित हुआ था। पर्या मनन चिन्तन के पश्चात् १९४६ में बापू ने उरु कांचन में प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया। नैसर्गि उपचार आश्रम की स्थापना की और स्वयं भी प्राकृति चिकित्सा का प्रयोग किया। बापू प्राकृतिक चिकित्सा लाभ उठाकर उससे प्रभावित हुये और उन्होंने भाषणों तथा लेखों द्वारा जनता में भी उसका प्र किया। 'आरोग्य की कुन्जी' नामक एक पुस्तक उन्होंने लिखी। आज उरुलीकांचन का चिकित्सा पूज्य बालकोबा जी एवं श्री कृष्णचन्द्र जी के संचालन चल रहा है।

मानव शरीर पंचतत्वों द्वारा निर्मित है। अ

चिकित्सा भी उन्हीं तत्वों द्वारा हो सकती है और प्राकृतिक साधनों का अनुसरण करते हुये वह स्वस्थ एवं निरोग रह सकता है। यह सौभाग्य की बात है कि तेज, वायु, पृथ्वी, जल तथा आकाश ये सभी तत्व हमारे देश में समान रूप से सबको उपलब्ध हैं। यद्यपि जल और वायु-दूषण की स्थिति उत्पन्न है। अतः यदि इन सबको शुद्ध रखने की विधियों एवं उनके सदुपयोग का पर्याप्त प्रसार हो सके तो धूप, हवा, मिट्टी, पानी की चिकित्सा घर-घर में आरोग्य एवं स्वास्थ्य का संचार कर सकती है तथा गांधी जी एवं आचार्य भावे के गांवों के स्वावलम्बी बनने का स्वप्न पूरा हो सकता है।

आज के देश में प्राकृतिक चिकित्सकों, चिकित्सालयों, प्राकृतिक चिकित्सा साहित्य एवं प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमियों की अच्छी संख्या है। सन्त विनोबा भावे एवं बालकोबा जी भावे इसके परम पोषक हैं। हमारे राष्ट्रपति महोदय एवं अन्य गण्यमान्य नेता इसके समर्थक हैं तथा इसकी सफलता एवं उपयोगिता स्वीकार करते हैं। इतना होते हुए भी इस पद्धति को शासकीय स्तर पर अभी तक मान्यता प्राप्त नहीं है। कुछ प्रदेशों में इस दिशा में स्तुत्य कार्य किये गये हैं—गुजरात, आंध्र और मध्य प्रदेश। गुजरात में हमारी परिषद् के अध्यक्ष श्री मन्नारायण जी ने प्राकृतिक चिकित्सा को पूर्ण रूप से मान्यता प्रदान कराई है। मध्य प्रदेश ने भी मान्यता के क्षेत्र में अपना कदम आगे बढ़ाया। किन्तु, वहां प्राकृतिक चिकित्सा का ठोस एवं व्यापक कार्य होते हुये भी सरकार ने उसे अभी तक मान्यता प्रदान नहीं की है। आज हम महामहिम राष्ट्रपति एवं राज्यपाल महोदय तथा प्रदेश के अन्य मूर्धन्य नेताओं की उपस्थिति में आशा व्यक्त करते हैं कि शीघ्र ही उत्तर प्रदेश इस विषय में आगे बढ़ेगा। हम केवल सरकारी मान्यताओं को ही पर्याप्त नहीं समझते अपितु, विविध अन्य पद्धतियों के समान प्राकृतिक चिकित्सा के शिक्षण एवं प्रचार की भी शासन से अपेक्षा करते हैं।

जहाँ तक उत्तर प्रदेश का सम्बन्ध है, यहां पर प्राकृतिक चिकित्सा-क्षेत्र में बहुत-सी संस्थाएं कार्यरत हैं। एक लखनऊ में ही—तीन प्राकृतिक चिकित्सालयों एवं प्राकृतिक चिकित्सा-प्रशिक्षण-केन्द्रों का संचालन हो रहा है, जिनके अनुभवी चिकित्सक वयोवृद्ध खुशीराम दिलकश, [illegible] सरदार यशवन्त सिंह तथा श्री डा० एच० डा० श्रीमाली के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश ने श्री आर० के० शर्मा, डा० विट्ठलदास मोदी, डा० महावीर प्रसाद पोद्दार, डा० महावीर प्रसाद गुप्त, डा० हीरालाल, स्वामी साधनानन्द एवं गौरीशंकर मिश्र आदि चिकित्सकों को जन्म देकर प्राकृतिक चिकित्सा का गौरव बढ़ाया है। प्राकृतिक चिकित्सालयों की संख्या, प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में भी यह प्रदेश किसी से पीछे नहीं है।

उत्तर प्रदेश प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमियों ने तत्सम्बन्धी विभिन्न संस्थानों एवं चिकित्सकों को एक सूत्र में बाँधने, उनको आवश्यक सहयोग प्रदान करने एवं प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार तथा प्रसारार्थ उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मन्त्री श्री लक्ष्मीरमण आचार्य की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेशीय प्राकृतिक चिकित्सा-परिषद की भी स्थापना की है, जिसका पंजीकरण कराया जा चुका है। मैं आशा करता हूं कि यह परिषद् अपने उद्देश्य में सफल होगी। परिषद को सरकार से मान्यता एवं अन्य सहयोग प्राप्त करने के साथ-साथ प्रादेशिक स्तर पर कम से कम एक चिकित्सालय और एक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना करनी चाहिए ताकि योग्य चिकित्सक तैयार हो सकें। इस विषय में उच्चस्तरीय साहित्य-रचना एवं प्रचार का कार्य भी परिषद को सम्पन्न करना चाहिए।

जन-स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगियों को स्वस्थ बनाने की समस्या भारत की ही नहीं वरन् समस्त विश्व की है। आधुनिकीकरण की दौड़ में भारत दुनियां के कई देशों की तुलना में पीछे है। प्राकृतिक जीवन की दृष्टि से भारत के लिये यह सौभाग्य की बात है कि जापान, इंगलैण्ड और अमेरिका आदि की तरह हमारे यहां प्राकृतिक साधनों का अभाव नहीं है। फिर भी हमें सावधान रहना चाहिये ताकि हमारे जल एवं वायु के स्रोत अधिक दूषित न होने पावें जैसे कि अन्य विकसित देशों के हो रहे हैं। रेल तथा मोटरगाड़ियों, कल एवं कारखानों से निकले हुये धुयें और गैस के कारण वायु इतनी दूषित हो जाती है कि जापान तथा अनेक देशों में ट्राफिक पर डियूटी देने वाले सिपाहियों को समय-समय पर आक्सीजन का प्रयोग करना पड़ता है। नागरिकों को भी आक्सीजन के सहारे जीवन बिताना पड़ रहा है। वहां की वायु में कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा बहुत बढ़ गई है। हमारे नगरों एवं शहरों की गन्दगी नदियों में गिरायी जाती है। इन्हीं

नदियों से बहुत स्थानों पर पीने का पानी लिया जाता है जो पूर्णरूपेण शुद्ध न होने के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

खाद्य पदार्थों में मिलावट की समस्या है। समाजद्रोही अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की दृष्टि से शुद्ध वस्तुओं में भी कुछ और तत्वों का संमिश्रण कर देते हैं। परिणामतः शुद्ध खाद्यपदार्थों का मिलना ही दुर्लभ हो गया है।

मनुष्य का रहन-सहन अप्राकृतिक होता जा रहा है एवं दिखावटी बन रहा है। परिश्रम न कर आराम से जीवन बिताने की भावना तथा स्वादलोलुपता, मदिरा आदि का अधिक सेवन मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये घातक होता जा रहा है। प्राचीन वैज्ञानिकों के द्वारा स्वास्थ्य रक्षा के उपायों—दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या एवं सद्वृत्त तथा सदाचार के नियमों का पालन नहीं हो रहा है।

उपरोक्त दुखद स्थिति में हमारा एकमात्र आश्रय प्रकृति पर निर्भर रह जाता है। अतः हमारा आहार-विहार प्राकृतिक जीवन सरल तथा सादा होना चाहिए। रोग-ग्रस्त होने पर यथासम्भव प्राकृतिक उपायों से ही उपचार भी किया जाना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद विज्ञान का ही एक अंग है, जिसे हम भूलते जा रहे हैं। पंचमहाभूत, त्रिदोष, पचकर्म आदि आयुर्वेद की पद्धति हमें प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता प्रमाणित करती है। वास्तविक भारत ग्रामों का देश है। अस्सी प्रतिशत ग्रामीण दीन जनता को यदि प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा पहुँचाना है तो प्राकृतिक चिकित्सा की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करना होगा तथा तभी पूज्य बापू की गाँवों के स्वावलम्बन की कामना पूरी हो सकेगी। इस प्रकार के सम्मेलनों से हमारे उद्देश्य की पूर्त्ति होगी। इस सम्मेलन में महामहिम राष्ट्रपति जी तथा अन्य सम्मानित अतिथियों ने पधार कर जो हमें प्रेरणा और बल दिया है, उसके लिये हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं।"

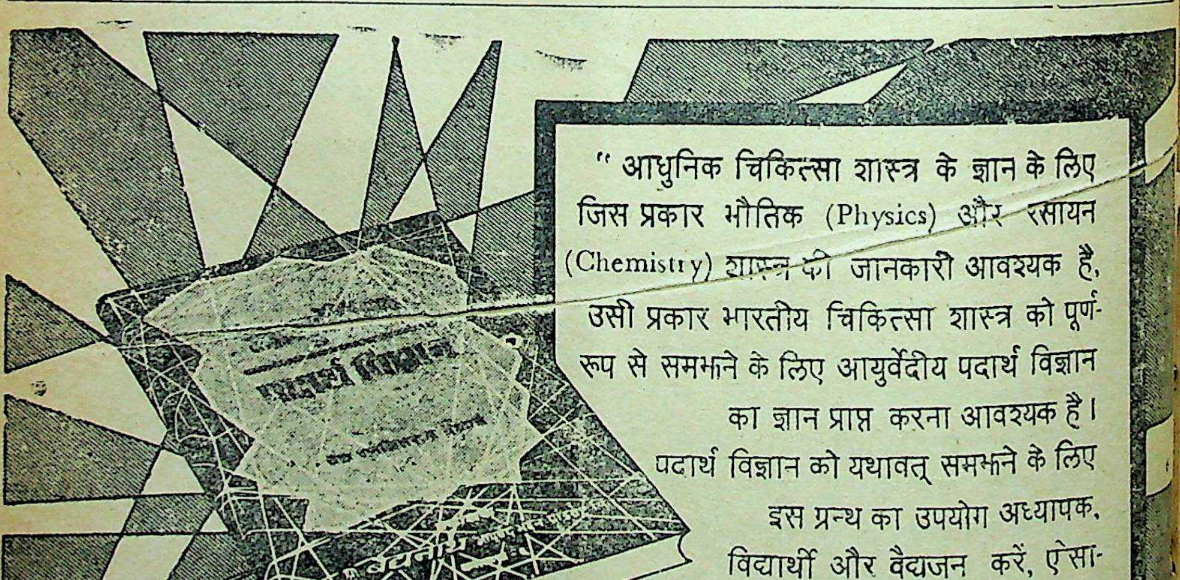
"आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान के लिए जिस प्रकार भौतिक (Physics) और रसायन (Chemistry) शास्त्र की जानकारी आवश्यक है, उसी प्रकार भारतीय चिकित्सा शास्त्र को पूर्णरूप से समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। पदार्थ विज्ञान को यथावत् समझने के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग अध्यापक, विद्यार्थी और वैद्यजन करें, ऐसा मेरा अनुरोध है"।

वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

वैद्यनाथ प्रकाशन

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

(छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

उदर—३

वैद्य रणजितराय देसाई

श्लेष्मोदर के निदान-लक्षण

व्यायाम (चेष्टा, श्रम) का अभाव, दिवास्वाप; मधुर, अतिस्निग्ध तथा पिच्छिल द्रव्यों का अभ्यास (निरन्तर सेवन), यथा—दधि, दुग्ध, औदक मांस एवं आनूप मांस—इनका अतिसेवन—इन हेतुओं से क्रुद्ध हुए कफ से अपने स्रोतों का आवरण होने से कोप को प्राप्त हुआ वायु अन्त्रों के बाहर स्थित हो कफ को पीड़ित करता हुआ—कुक्षि से बाहर निकलने न देता हुआ—उदर का उत्सेध कर श्लेष्मोदर को उत्पन्न करता है।

इस श्लेष्मोदर (कफोदर) में निम्न लक्षण हुआ करते हैं—(उदर तथा शरीर में) गौरव, अङ्गमर्द (शरीर टूटना), अंगसाद; विशेषतया पाणि, पाद, ऊरू तथा वृषण-पर शोथ; उदर श्वेत राजियों (रेखाओं) और सिराओं से सर्वतः व्याप्त तथा शीतल; अवयवों की सुप्ति (स्पर्शनाश) अथवा आसीन-प्रचलायित (बैठे बैठे निद्रा); नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र एवं पुरीष की श्वेत-वर्णता; उदर गुरु, स्तिनित (आर्द्र तथा निश्चल), स्थिर (गुडगुड़ शब्द युक्त), स्निग्ध, कठिन तथा अन्य उदरों की तुलना में अतिशय शोथ युक्त होना; उदर की वृद्धि मन्दगत्या होना (इसी प्रकार कफ प्रधान शोथ के समान कफोदर की निवृत्ति भी अन्य उदरों की तुलना में बिलंब से होना, जिसकी सूचना उपचार आरम्भ करने के पूर्व ही रुग्ण तथा उसके स्वजन परिजनों को व्यावहारिक दृष्टि से दे देना उचित और आवश्यक होता है); अरोचक, अविपाक (अजीर्ण), उत्क्लेश (हृल्लास, अति मुखस्राव), निद्रा, कास तथा श्वास।

श्लेष्मोदर के इन लक्षणों में उदर की त्वचा श्वेत रेखाओं तथा सिराओं से सर्वतः व्याप्त होने का उल्लेख है। आधुनिकोक्त प्रत्यक्षानुसार इससे यह अभिप्रेत है कि कुपित वात के द्वारा हुआ अवरोध रसवाही स्रोतों (लिंफेटिक्स, लिफ वेसल्स) में होता है। अवरोधवश रस इन स्रोतों में संचित होकर उन्हें फुला देता है। अणुतम स्रोतों के इस प्रकार फूलने से वे रेखाओं के समान दृष्टिगोचर होते हैं। स्थूल एवं फूले हुए स्रोतों को यहां सिरा कहा गया है।[1]

---

[1] आयुर्वेद संमत रसधातु—रस धातु का स्थान आयुर्वेद में हृदय कहा गया है। यहाँ से यह सर्वांग में प्रसृत हो शरीर के समस्त अवयवों का जीवन-धारण-तर्पण-पोषण-यापन किया करता है। सर्वांग में प्रसृत हो यह पुनः हृदय में आता है, और पुनः वहां से प्रक्षेपित हो सर्वांग में जाता है। यह क्रिया आजीवन अविराम चलती रहती है। इस वर्णन को देखते आधुनिकोक्त तीन द्रव्यों का वर्ग आयुर्वेद का रस धातु है, यह निःशंक है। इनमें प्रथम ब्लड का रक्तकणों के अतिरिक्त द्रव भाग है; इसे 'प्लाज्मा' कहा जाता है; द्वितीय केशिकाओं से स्रुत हुआ श्वेत भाग है, जिसमें शरीर के कोष तैरते रहते हैं तथा उसमें से अपनी पोषक और कर्मोपयुक्त सामग्री ग्रहण करते हैं एवं धातुपाक के परिणामस्वरूप उत्पन्न मलों का जिसमें उत्सर्जन करते हैं; इस द्रव को इन्टरस्टिशल फ्लुइड कहा जाता है, तृतीय इस द्रव का कुछ अंश, जो विशिष्ट स्रोतों द्वारा गृहीत होकर अंत में हृदय में प्रविष्ट होता है; इस द्रव को 'लिंफ' तथा इसके वाहक स्रोतों को 'लिम्फेटिक्स या लिंफेटिक डक्ट्स' कहा जाता है। धातु की आयुर्वेदोक्त क्रियाएं यही तीन द्रव करते हैं। शेष रक्त कण केवल ऑक्सिजन को शरीर में पहुँचाने तथा कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालने की क्रिया करते हैं।

संनिपातोदर (दूष्युदर)

पुरुष मन्द अग्निवाला हो तथापि अपथ्य, विरुद्ध एवं गुरु भोजन करे, अथवा दुष्ट (विष, मत्स्य, तृण, पत्र आदि युक्त) जल किंवा गरविष (संयोगज, कृत्रिम विष) या अन्य विष का सेवन करे, या कोई शत्रु कराए, अथवा वह दूषी-विष से (मन्दता को प्राप्त हुए पूर्व-सेवित विष से) पीड़ित हो, अथवा दुरात्मा स्त्रियाँ वशीकरण किंवा सौभाग्य-प्राप्ति के निमित्त एवं अन्य भी कोई विवेक-रहित शत्रु पुरुष आर्तव, बिडाल आदि प्राणियों के पुरीष, मूत्र, नख, रोम, अस्थि, शरीर के अन्य किसी अवयव का मल इत्यादि से संयुक्त अन्न-पान का सेवन कराएं अथवा पुरुष तीनों दोषों के प्रकोपक कारणों का सेवन करे तो परिणामस्वरूप उसके तीनों दोष कुपित हो रक्त-सहित कोष्ठ को प्राप्त हो तीनों दोषों के लक्षणयुक्त अति दारूण संनिपातज उदर को उत्पन्न करते हैं।

इस संनिपातोदर में तीनों दोषों के लक्षणों, न नखादि में तीनों दोषों के वर्ण एवं उदर पर विविध वर्णों वाली रेखाओं तथा सिराओं की व्याप्ति के अतिरिक्त शोष (कंठ-तालु-मुखशोष), तृषा, पुनः-पुनः मूर्छा, भ्रम, पांडुता, कृशता—ये विशिष्ट लक्षण हुआ करते हैं।

शीत वायु एवं अतिशय दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) में दूषी विष का स्वाभाविक प्रकोप होता होने से उदर के लक्षणों में भी वृद्धि तथा दाह हुआ करता है। यह उदर शीघ्रपाकी अर्थात् देखते-देखते जलोदर के रूप में परिणत हो जाने वाला होता है।

इसे दूष्युदर किंवा दूष्योदर भी कहा जाता है। इसमें रक्त की दुष्टि विषों के आग्नेय स्वभाववश होती है। इसे दूष्योदर कहने का कारण यह कहा गया है कि दूष्यों में रक्त की इसमें दुष्टि हुआ करती है। अथवा, प्रकुपित हुए दोष अन्य दोषों को दूषित करते हैं। इस प्रकार दोषों द्वारा दूषित किए गए ये दोष भी दूष्य-सदृश ही होते हैं। इस कारण भी इस उदर को दूष्योदर कहा जाता है।

प्लीहोदर के निदान-लक्षण

भाव मिश्र ने लिखा है कि प्लीहा की वृद्धि जिन कारणों से हुआ करती है, उन्हीं कारणों के योग से प्लीहोदर भी होता है। अपरंच प्लीह वृद्धि के जो लक्षण होते हैं वही समस्त लक्षण प्लीहोदर में भी देखे जाते प्लीह-वृद्धि तथा प्लीहोदर में भिन्नता यह समझनी चा कि प्लीहा-वृद्धि को प्राप्त होकर कदाचित् नाभि के नीचे तक पहुँच गयी हो, परन्तु उसके द्वारा उदर सामने की दिशा में उत्सेध न हुआ हो तो इसे प्ली न कह कर प्लीह-वृद्धि ही कहा जाता है। परन्तु प्ली वृद्धि कदाचित् दो-ढाई अंगुल हुई हो, और उसके का उदर का उत्सेध हो तो इसे प्लीह वृद्धि न कह कर प्ली दर कहा जाता है। इसकी गणना उदर-रोग में करने आवश्यकता का कारण यह हुआ करता है कि उदर में प्रथम तो दोषों का संचय अति मात्रा में होता दूसरे, इसमें स्रोतों का अवरोध विशेष हुआ करता अतएव उदरों में नित्य विरेचन का विधान पूर्वाचार्यों किया है। यह विषय उदरों की चिकित्सा के प्रकरण आएगा ही।

प्लीहवृद्धि तथा प्लीहोदर के प्रकरणों में आए मिश्र के लेखानुसार प्लीह वृद्धि के ही निदान प्लीहोदर में भी हुआ करते हैं। इस स्थिति में भाव के पदों में प्लीहा की वृद्धि के निदान, लक्षण तथा का अध्ययन करना सर्वथा उचित होगा तथाहि—

प्लीहा की उत्पत्ति रक्त धातु से होती है। यह का आशय एवं रक्तवाही स्रोतों का मूल कहा गया स्थिति यह होने से रक्त की दुष्टि करने वाले कार योग से प्लीहा की भी वृद्धि एवं उदर हुआ करते देखिए—

पुरुष विदाही (प्रकृत्या अथवा पाकानन्तर दाह कुलत्थ, माष, सर्षपशाक इत्यादि तथा माहिष दधि अभिष्यन्दी द्रव्यों का निरन्तर अतिमात्र सेवन परिणाम रूप में रक्त, पित्त तथा कफ अत्यधिक होकर उदर के वाम पार्श्व में स्थित प्लीहा की करते हैं। रुग्ण इस रोग में अत्यन्त अवसाद करता है, वह मन्द ज्वर एवं अग्निमान्द्य से पीड़ित पांडु तथा क्षीण बल अपच कफ और पित्त के प्र होनेवाले अन्य लक्षणों से आक्रान्त होता है। मू रक्त की होने पर भी रक्त तथा पित्त परस्पर गुण-धर्म वाले, तथा समान कारणों से दुष्ट होनेवाले से रक्त के साथ पित्त की भी दुष्टि इस है। अतः इसमें कफ के साथ पित्तज विकार

विद्यमानता स्वभावतः होती है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हन ने तो कहा है कि—**असृग्ग्रहणेन पित्तस्यापि ग्रहणम्'** (सु० नि० ७।१४-१६ पर) अर्थात् रक्त के ग्रहण से पित्त का भी ग्रहण होता है।

विदाही द्रव्यों के अभ्यास के रक्त तथा पित्त की दुष्टि होती है। इनमें पित्त का लक्षण मन्द ज्वर होता है। अभिष्यन्दी द्रव्यों के अतियोग से कफ का प्रकोप होता है। उससे मन्दाग्नि होता है। अभिष्यन्दी का अर्थ है—दोष, धातु तथा मलों के स्रोतों में क्लेद (द्रवता) की उत्पत्ति।

आधुनिक प्रत्यक्षानुसार प्लीहा की वृद्धि, काल-क्रम से प्लीहोदर एवं जातोदकावस्था प्राप्त होकर उसकी जलोदर में परिणति का प्रमुख स्मरणीय कारण विषम-ज्वर-विशेष (मलेरिया) माना गया है। इस रोग के उत्पादक कृमियों द्वारा रक्तकणनष्ट-भ्रष्ट हो कर प्लीहा में सचित हो उसकी वृद्धि करते हैं। विषम ज्वर की ही चिकित्सा इन में विधेय हुआ करती है।

प्लीहा की वृद्धि, उदर तथा तज्जनित जलोदर के हेतुओं की गणना में विषम ज्वर का स्पष्ट निर्देश पूर्वाचार्यों ने किया नहीं है। तथापि, जीर्ण (विषम) ज्वर के लक्षणों में मन्द ज्वर के अतिरिक्त प्लीहा-वृद्धि तथा अग्निमान्द्य का उल्लेख तंत्रकारों ने अवश्य किया है। ऊपर, प्लीह-वृद्धि के लक्षणों मे भी मन्द ज्वर, अग्निमान्द्य एवं पाण्डु रोग का लक्षणतया हुआ निर्देश (विषम) ज्वर की जीर्णता तथा यहां निर्दिष्ट प्लीह-वृद्धि ये दोनों एक ही होने के प्रति संकेत करता है। तात्पर्य, पूर्वाचार्यों ने प्लीहावृद्धि के हेतुओं में विषम ज्वर की कारणता का प्रत्यक्ष निश्चित किया था, यह सिद्ध है।

इस प्लीह-वृद्धि में रक्त की प्रमुख कारण के रूप में गणना की गयी है। वर्तमान चिकित्सा-शास्त्र में भी विषम ज्वर-विशेष के अनन्तर प्लीह-वृद्धि का स्मरणीय कारण रक्त की विशिष्ट दुष्टि को माना गया है। इसमें रक्त के अंशभूत श्वेत कणों की संख्या में असाधारण वृद्धि हो जाती है। इस विकृति को ल्युकीमिया अथवा ब्लड-केन्सर कहा जाता है। प्लीहा के अतिरिक्त इसमें सतत रक्त स्राव एवं सर्वांग की रस ग्रंथियों (लिंफ-ग्लेंड्स) का भी शोथ हो जाता है। यह रोग असाध्य होता है।

प्लीह-वृद्धि तथा प्लीहोदर के एक अन्य प्रसिद्ध कारण का उल्लेख यकृदुदर के प्रकरण में करेंगे।

प्लीह-वृद्धि का अंग्रेजी पर्याय 'स्प्लीनोमेगेली' है। इसकी परीक्षा इसको नीचे की किनारी पर स्वभावतः स्थित नीक (नॉच) की स्पर्श-परीक्षा द्वारा हो सकती है। अति प्रवृद्ध प्लीहा औषध-साध्य न हो तो शस्त्रोपचार द्वारा उसका निर्हरण एक मात्र उपाय होता है।

प्रासंगिक इतने विवेचन के अनन्तर अब आचार्य भावमिश्र ने प्लीह-वृद्धि के जो भेद बताए हैं उनका उल्लेख क्रम-प्राप्त है।

रक्तज प्लीह-वृद्धि—इसमें क्लम (रक्तक्षय के कारण) भ्रम, विदाह (कुक्षिहृत्कंठदाह), विवर्णता (पाण्डुता), शरीर में गौरव, मोह (ज्ञानेन्द्रियों की विषय-ग्रहण में असमर्थता अथवा मूर्च्छा) तथा उदर की रक्त-वर्णता ये लक्षण होते हैं।

पित्तज प्लीह वृद्धि—इसमें ज्वर, पिपासा, दाह, मोह तथा अन्य कारणों से हुई प्लीह-वृद्धि की तुलना में गात्र की विशेष पीतता—ये लक्षण हुआ करते हैं।

कफज प्लीह वृद्धि—इसमें प्लीहा अधिक स्थूल (बड़ी), अल्प वेदना वाली, कठिन, गौरव-युक्त (रोगी जिसका भार उदर में अनुभव करे ऐसी) तथा रुग्ण अरोचक से पीड़ित होता है।

वातज प्लीह वृद्धि—इसमें आतुर का कोष्ठ नित्य आनाहयुक्त एवं नित्य उदावर्त-पीड़ित होता है; तथा विविध वेदनाएं होती हैं।

त्रिदोषज प्लीह-वृद्धि में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। यह असाध्य होती है।

चरक-संहिता में एक प्रकरण है, जिसे माधव आदि ने भी अपने-अपने तंत्रों में उद्धृत किया है। इसका अभिधेय यह है कि यों रोगों का कारण दोष-प्रकोप है, तथापि कभी-कभी कोई पूर्वोत्पन्न रोग रोगान्तर की उत्पत्ति में निदानवत् कारण होता है। चरक का मूल वचन यह है—**निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते** च० नि० ८।१६।

सुश्रुत ने भी आदिबल प्रवृत्त आदि जो सात रोग-वर्ग बताए हैं उनमें प्रकारान्तर से इस वस्तु का उल्लेख किया है। इन रोग-वर्गों में एक दोषबल प्रवृत्त है। इसके दो प्राथमिक भेद कहे गए हैं—आतङ्क अर्थात् रोग से उत्पन्न तथा मिथ्याहार विहार (अर्थात् उसके कारण

हुए दोष-वैषम्य) से उत्पन्न। एतद्विषयक सुश्रुत का मूल वचन यह है—**दोषबल प्रवृत्ता ये आतङ्क समुत्पन्ना मिथ्याहाराचार कृताश्च**—सु० सू० २४।५।

अब रोग-विशेष से उत्पन्न हुए रोगों के उदाहरणों की सूची में चरक का एक वाक्य है—**प्लहोहाभिवृद्धया जठरे जठराच्छोथ एव च**—च० नि० । १८, — ८ तात्पर्य प्लीहा की अभिवृद्धि से उदर (प्लीहोदर) तथा उदर से (सर्वांग) शोथ हुआ करता है।

इस प्रकार चरकादि ने भी प्लीहोदर की उत्पत्ति में प्लीह-वृद्धि का निदानतया उल्लेख किया है। तथापि, उसका विस्तृत प्रतिपादन भाव मिश्र ने किया है। अतः इस प्रकरण में इन्हीं का दिया वक्तव्य उद्धृत किया है। इस विषय में अन्य ज्ञातव्य यह है कि भाव मिश्र ने प्लीह-वृद्धि के निदान एवं लक्षण के द्योतनार्थ जो पद्य दिए हैं वे मूल में एकाध शब्द के भेद से सुश्रुत में प्लीहोदर के प्रकरण में भी आए हैं। माधव ने भी इस रोग व प्रसंग में इन्हीं पद्यों को उद्धृत किया है। परन्तु भाव मिश्र ने प्लीह वृद्धि तथा प्लीहोदर दोनों के निदान-लक्षण का प्रतिपादन पृथक पद्यों द्वारा किया है। अवश्य ही, प्लीहोदर के प्रकरण में इस रोग को प्लीह-वृद्धि की ही वृद्धिगत अवस्था कहा है। प्लीह-वृद्धि के रक्तज आदि भेद भाव मिश्र को छोड़ अन्य किसी आचार्य के ग्रंथ में देखे नहीं। इस विशिष्टता के कारण हमने प्लीह-वृद्धि का प्रकरण भाव मिश्र के पदों में ही देना उचित माना है। इस विषय में यह भी समझना चाहिए कि यदि प्लीहोदर प्लीह-वृद्धि की ही वृद्धिगत अवस्था है तो प्लीह-वृद्धि के रक्तजादि भेद प्लीहोदर के भी हैं ही। वस्तुतः माधवकर ने प्लीहोदर के निदान और लक्षणों का उल्लेख कर एक अनुष्टुप् में प्लीहोदर में पृथक्-पृथक् दोषों के लक्षण निम्न प्रकार से कहे गये हैं—प्लीहोदर में उदावर्त, रूजा (वेदना) तथा आनाह वात के कारण मोह, तृषा, दाह तथा ज्वर पित्त के कारण एवं गौरव, अरूचि और काठिन्य कफ प्रकोपवश हुआ करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्लीहोदर त्रिदोषज होने से प्रत्येक रूग्ण में ये सर्व लक्षण देखे जाते हैं। भाव मिश्र ने तत्-तत् लक्षण देकर प्लीह-वृद्धि के वातज आदि पृथक्-पृथक् भेद बताए हैं। वह अधिक अर्थवाही है।

इतना प्रासंगिक विवेचन कर अब विभिन्न आचार्यों ने स्वयं प्लीहोदर के प्रकरण में उसके जिन पृथक् निदानों एवं लक्षणों का निर्देश किया है, उन पर दृष्टिपात करें। यह प्रतिपादन चरक तथा उसके वचन उद्धृत करने वाले हृदयकार के मतानुसार है। तथाहि—

भोजन करने के अनन्तर, विशेषतया अतिमात्रा में भोजन करने के पश्चात्, पुरुष को किसी कारण झटके लगें, अथवा वह सवारी द्वारा यात्रा करे, या अति मैथुन, वा अति शारीरिक चेष्टा करे, अतिशय मार्ग-गमन करे, अति भार-वहन करे अथवा अति वमन करे अथवा रोगों के कारण उसका शरीर अति कृश (क्षीण) हो गया हो—तो उदर के वाम पार्श्व में स्थित उसकी प्लीहा अपने स्थान से च्युत होकर वृद्धि को प्राप्त होती है। अथवा रस, मांस आदि धातुओं की वृद्धि होने के परिणामस्वरूप रक्त-धातु की वृद्धि होती है। वृद्धि को प्राप्त यह रक्त अपने आशयों में एक प्लीहा में संचित होकर उसकी वृद्धि करता है। यह वृद्धि सामान्यतः स्वस्थानस्थ ही प्लीहा की हुआ करती है। परन्तु उसके स्थानच्युत होने से भी हो सकती है। (प्लीहा अपने प्राकृत स्थान से च्युत हो तो उसकी ऊपर की किनारी एवं पर्शुकाओं के मध्य अवकाश प्रत्यक्षतः, स्पर्शतः तथा आकोठनतः उपलब्ध होता है।)

स्थानभ्रंश पूर्वक अथवा स्थानभ्रंश बिना वृद्धि को प्राप्त यह प्लीहा अष्ठीला (लोहकारों के यहाँ उपलब्ध लोहमय साधन, जिसपर रखकर रक्तवर्ण प्रतप्त लोह को पीट कर यथेष्ट आकृति में लाया जाता है उस) के समान उन्नत तथा अति कठिन, पाश्चात् क्रमशः अधिक वृद्धि को प्राप्त होकर कुक्षि (उदर-पार्श्व), जठर तथा अग्न्यधिष्ठान (पचन-तत्र के अवयवों) को एक ओर धकेलती हुई उदर को उत्पन्न करती है।

---

१. सुश्रुत का वचन है—**पूर्णः पूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्वर्धयेद्धि परंपरम्** (सु० सू० १५।१८) तात्पर्य, सात धातुओं में पूर्व-पूर्व धातु वृद्धि को प्राप्त होकर उत्तर धातु की भी स्वभावतः वृद्धि किया करती है। डल्हन अपनी टीका में कहते हैं, जैसे किसी जल-प्रवाह में कहीं अवरोध हो तो उसके ऊपर स्थित जल की मात्रा में वृद्धि होती देखी जाती है, तद्वत उत्तर धातु भी वृद्धि को प्राप्त होकर पूर्व धातु की वृद्धि करता है। उधर, पूर्वधातु के क्षय से उत्तर धातु का क्षय होता है, एवं उत्तर धातु के क्षय से भी पूर्व धातु की क्षीणता होती है।

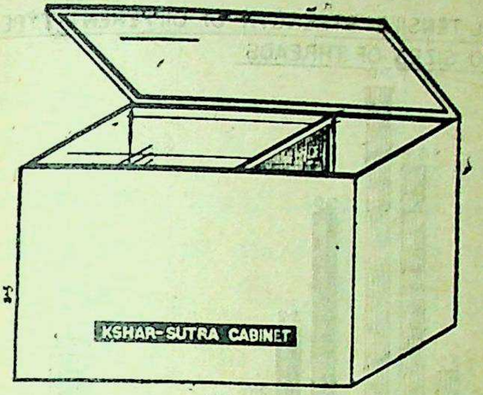

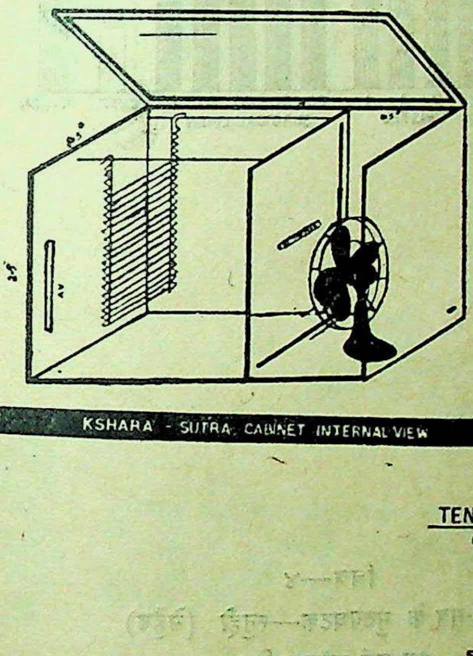

KSHARA - SUTRA CABINET INTERNAL VIEW

चित्र—१
क्षार-सूत्र मंजूषा (क्षार-सूत्र कैबिनेट) इस मंजूषा में क्षार-सूत्र का निर्माण किया जाता है।

चित्र—२
इस ग्राफ के द्वारा विभिन्न प्रकार के सूत्रों (नं० २०-३०) का भावना के पश्चात् तनाव शक्ति दिखलायी गई है।

TENSILE STRENGTH OF SURGICAL LINEN NO. 20 AND 30 AFTER SUCCESSIVE BHAVANAS

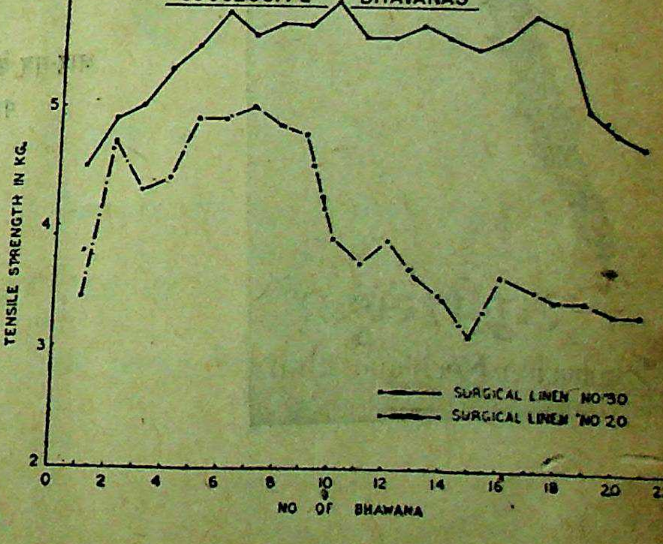

GRAPH SHOWING INITIAL TENSILE STRENGTH OF DIFFERENT TYPES AND SIZES OF THREADS

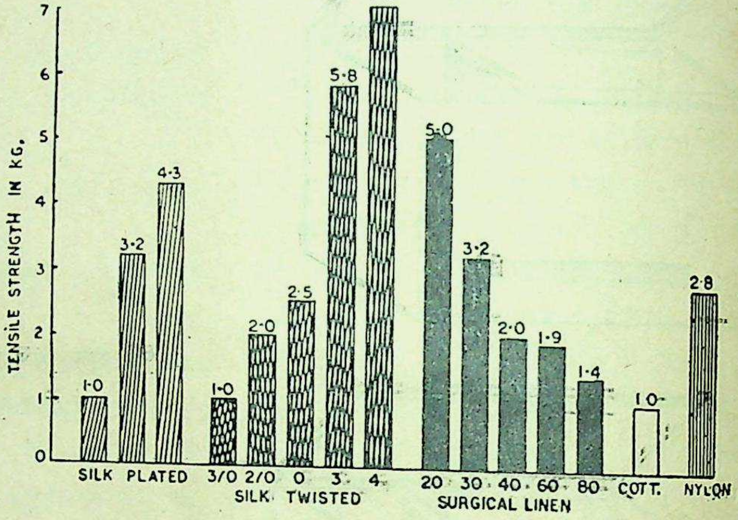

चित्र—३
शल्यकर्म में प्रयुक्त सूत्रों का भावना के पूर्व तनाव शक्ति का प्रदर्शन।

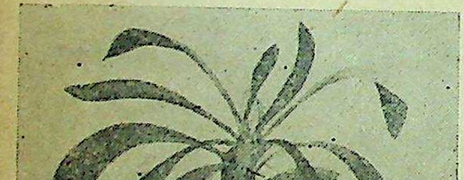
स्नुही (सेहुंड)
Euphorbia Neriifolia Linn.

चित्र—४
क्षार-सूत्र के मुख्यघटक—स्नुही (सेहुँड) पत्र एवं कांड सहित।

इस प्लीहोदर में अधोनिर्दिष्ट लक्षण दृश्यमान होते हैं—अरोचक, अग्निमान्द्य, अविपाक, मुख-वैरस्य, कोष्ठ में वातज शूल, आनाह, आध्मान, छर्दि, तृषा, पुरीषग्रह, मूत्रग्रह (इनकी अप्रवृत्ति), तमः प्रवेश (नेत्रों के आगे अन्धकार छाना), मोह (मूर्छा), अङ्गमर्द, अङ्गसाद, पर्वभेद (संधिया टूटना), वेदना, दाह, पाण्डुत्व, मंद ज्वर, कास, श्वास, कृशता एवं दौर्बल्य । उदर की त्वचा अरुण-वर्ण अथवा विवर्ण (अनिश्चित वर्णवाली अथवा वर्ण-रहित फीकी), तथा नील, हरित और हारिद्रवर्ण राजियों (रेखाओं, केशिकाओं) से व्याप्त होती है ।

चरक ने सूत्र स्थान के उन्नीसवें अध्याय में प्लीहा के विकारों के पाँच भेद कहे हैं—वातज, पित्तज, कफज, संनिपातज तथा रक्तज । प्लीहोदर के प्रकरण में चक्रपाणि विशदता करते कहते हैं कि—प्लीहा की वृद्धि तथा उदर प्लीहा के स्थान भ्रंश-पूर्वक (उसकी च्युति होने पर) हों तो उनके वातज आदि तीन तथा एक संनिपातज इस प्रकार चार भेद होते हैं । शेष, प्लीहा की रक्तज वृद्धि या उदर च्युति बिना होती है । इस प्रकार कुल मिलाकर पाँच भेद होते हैं ।

(सावशेष)

बैद्यनाथ
अनन्त सालसा

खून की खराबी से होनेवाले रोगों में इसका सेवन करें और कुछ दिनों के बाद ही वजन लेकर देखें कि आपके शरीर में नया और शुद्ध रक्त कितना तैयार हुआ है।

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAVAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

हमारा विशेष लेख

क्षार-चिकित्सा-शल्य विज्ञान की एक अमूल्य उपलब्धि

* डा० विद्यानन्द प्रसाद
** डा० कविरत्न शर्मा
*** प्रो० प्रभाकर जनार्दन देशपाण्डे

भारतीय शल्य विज्ञान की अपनी एक विशिष्टता रही है। शस्त्रकर्म के साथ-साथ इस विज्ञान में अग्नि-चिकित्सा एवं क्षार-चिकित्सा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अनेक कष्टसाध्य व्याधियों में 'क्षार' के प्रयोग से आशातीत सफलता मिलती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में इस चिकित्सा का काफी विकास एवं प्रचार हुआ। यह चिकित्सा 'क्षार-तन्त्र' के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा और इस चिकित्सा को करने वाले चिकित्सक "क्षार-वैद्य" से विख्यात हुए।

यह सत्य है कि अनेक असाध्य या कष्टसाध्य व्याधियों में जहाँ आणविक एवं जीव-प्रतिरोधक जैसी चमत्कारपूर्ण औषधियां प्रभावहीन सिद्ध होती हैं वहां हजारों वर्ष पहले की परीक्षित एवं अनुभूत क्षार-चिकित्सा द्वारा सफलता सहज ही मिल जाती है। क्या यह आधुनिक विज्ञान को एक चुनौती नहीं ?

क्षार की परिभाषा

प्राचीन-चिकित्सा-वांगमय (आयुर्वेद-विज्ञान) में क्षार के बारे में विस्तृत अध्ययन किया गया है। 'सुश्रुत-संहिता' में तो क्षार के ऊपर एक अलग से अध्याय ही लिखा गया है जिसमें-निर्माण - विधि, विशेषताएं, भेद, प्रयोग आदि सूक्ष्म बातों पर वैज्ञानिक एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत है। प्राचीन चिकित्सा-शास्त्रियों ने धातुओं का क्षरण या क्षणन करने के कारण ही इसको 'क्षार' के नाम से सम्बोधित किया है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसे रासायनिक दृष्टि से एलकली (Alkali) तथा ने इसे रासा-काय की दृष्टि से 'काष्टिक' (Caustics) कहा है। वास्तवं में 'क्षार' त्रिदोषघ्न होने के कारण दोषों को धातुओं से झिरा कर या 'क्षरण' निकाल देता है इसलिए इसे 'क्षार' कहते हैं। यह छेदन, भेदन एवं लेखन गुणों से सम्पन्न होने के कारण त्वचा, मांस आदि धातुओं के नाश या शतन कर्म में भी समर्थ है। इसलिए भी प्राचीन आचार्यों ने इसे 'क्षार' कहा है। इसके अद्वितीय गुणों को देखकर आचार्य 'सुश्रुत' जैसे शल्यशास्त्रों ने तो क्षार को शस्त्रों एवं अनुशस्त्रों में प्रधानतम् स्थान दिया है।

कारण स्पष्ट ही है। वास्तव में मात्र छेदन, भेदन, लेखन के कार्य करने से ही 'क्षार' की श्रेष्ठता नहीं सिद्ध की जा सकती है। क्योंकि छेदन, भेदन आदि अष्टविध शस्त्रकर्मों के सम्पादन करने में शस्त्र तो सक्षम है ही। किन्तु कुछ ऐसी भी परिस्थितियां होती है जहाँ शस्त्रों का प्रयोग करना अत्यन्त ही कठिन होता है, कभी-कभी अनेक व्याधियों में तो छेदन-भेदन आदि कार्यों के सम्पादन के लिए बार-बार शस्त्रों के प्रयोग के पश्चात् भी सफलता हाथ नहीं लगती है। परन्तु इन परिस्थितियों में 'क्षार' के प्रयोग से अद्‌भुत सफलता मिलती है। इसलिए भी क्षार की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। 'क्षार' छेदन, भेदन का कार्य ऐसे संकटपूर्ण-स्थान में भी कर सकता है जहां शस्त्रों का प्रयोग करना कठिन होता है

---

*क्लीनिकल रजिस्ट्रार, शल्य-शालाक्य विभाग, चिकित्सा -विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

**अनुसंधान अधिकारी, सी० सी० आर० आई० एम० एच०, शल्य-शालाक्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-५

***अध्यक्ष, शल्य-शालाक्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

तथा उसके द्वारा हानि होने की अधिक सम्भावना होती है।

क्षार-निर्माण विधि एवं प्रकार—

क्षारीय तत्व-प्रधान पदार्थ-जैसे, स्नुही, कुटज, पलाश, अश्वकर्ग, पारिभद्र, निम्ब, अडूसा, कदली, चित्रक, आक आदि को मूल, फल, पत्र, शाखा-सहित जलाया जाता है और फिर भस्मावशेष को छः गुने जल में या गोमूत्र में अच्छी तरह घोल दिया जाता है जिससे कि क्षारीय भाग जल में अच्छी तरह घुल जाय। पुनः इसे २१ बार वस्त्रों से छान लिया जाता है। पश्चात् इसे अग्नि पर एक बड़े पात्र में डालकर विपचन किया जाता है। जब वह स्वच्छ लाल-वर्ण, तीक्ष्ण एवं पिच्छल दीखने लग जाय तब उसे अग्नि पर से हटा दिया जाता है। और घने कपड़े से छान कर अविस्तृत किट्ट को अलग निकाल कर विसृत द्रव को फिर अग्नि पर पुनः चढ़ाया जाता। जलीयांश समाप्त होने के पश्चात् सुरक्षित रख लिया जाता है। इस प्रकार निर्मित-क्षार मृदु-गुण सम्पन्न होता है। यदि इसी विस्तृत-द्रव में पुनः अन्य तीक्ष्ण गुण प्रधान द्रव्यों का प्रक्षेप डालकर पुनः पाक करे तो तीक्ष्ण-गुण-सम्पन्न-क्षार तैयार होता है।

प्राचीन आचार्यों ने इस चमत्कारी 'क्षार' को बाह्य-परिमार्जन एवं अन्तः परिमार्जन हेतु प्रयुक्त किया है। बाह्य परिमार्जन 'क्षार' को प्रतिसारणीय और अन्तः परिमार्जन क्षार को पानीय भी कहा गया है। क्योंकि बाह्य परिमार्जन-क्षार केवल प्रतिक्षारण के लिए ही प्रयुक्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग प्रधानतः त्वचागत रोगों में अथवा अर्श, भगन्दर, नाड़ी-व्रण आदि स्थानिक रोगों में होता है। किन्तु अन्तः परिमार्जन-क्षार अथवा पानीय-क्षार का आभ्यन्तर विद्रधि, क्रिमि, अर्श आदि रोगों में किया जाता है।

बाह्य परिमार्जन-क्षार का अधिकतम् उपयोग क्षीर-युक्त वनस्पतियों जैसे स्नुही, अर्क आदि के क्षीर के साथ पिचु, बर्त्ति या सूत्र के रूप में करने का विधान है। क्षार-भावित सूत्र, पिचु अथवा बर्त्ति का प्रयोग, व्रण-शोधन अथवा सौत्रिक तन्तु के विलयन में अद्वितीय सिद्ध हुआ है।

क्षार पिचु

इसका निर्माण स्वच्छ वस्त्र के टुकड़े अथवा 'गौज-पीस' को स्नुही क्षीर में. भावन एं देकर किया जाता है। स्वच्छ तनु-वस्त्र के छोटे-छोटे चौकोर टुकड़े को स्नुही-क्षीर में डुबोकर पुनः सुखा लेते हैं। यह प्रक्रिया आवश्यकतानुसार तीन, पाँच, एवं सात बार की जाती है। पिचु की क्रिया-शक्ति स्नुही क्षीर की भावनाओं पर निर्भर करती है। न्यून भावन-युक्त पिचु की उपेक्षा अधिक भावना-युक्त पिचु अधिक शक्तिशाली एवं तीव्र होता है। जिसका प्रयोग अशुद्ध व्रणों की विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यकतानुसार किया जाता है। अन्तिम भावना के पश्चात् पिचु को 'अल्ट्रावायलेट किरणों' की सहायता से क्षार-सूत्र मजूषा में विसक्रमित करने के पश्चात् प्लास्टिक की थैली के अन्तर्गत रख कर सील कर देते हैं।

प्रयोग विधि

'क्षार-पिचु' का स्थानिक प्रयोग अशुद्ध व्रण में अथवा सौत्रिक-तन्तु-युक्त चिर-कालीन व्रण में व्रण-शोधन के निमित्त किया जाता है। कुछ व्रणों में रोपण-क्रिया के सम्पादन के पूर्व शोधन क्रिया आवश्यक है। बिना शोधन के रोपन हो ही नही सकता। 'क्षार-पिचु' व्रणों के शोधन में जादू के समान कार्य करता है। यह कहना अनुचित न होगा कि आजतक आविष्कृत जितने भी सौत्रिक-तन्तु-नाशक द्रव्य उपलब्ध हैं, उनमें यह सर्वोत्तम एवं आशुकारी है। इस पर विशेष अनुसन्धान से चिकित्सा-विज्ञान के जिज्ञासुओं को एक नई दिशा मिल सकती है। इसका स्थानिक प्रयोग कुष्ठ-जन्य व्रण में भी लाभप्रद हो सकता है ऐसी आशा की जा सकती है।

क्षार-बर्त्ति

'क्षार-बर्त्ति' का निर्माण स्नुही क्षीर और उपर्युक्त क्षारों में से किसी एक क्षार एवं हरिद्रा चूर्ण के मिश्रित योगों द्वारा किया जाता है। स्नुही-क्षीर में किसी एक क्षार (अपामार्ग, कदली, निम्ब, पलाश आदि) तथा हरिद्रा चूर्ण को आवश्यकतानुसार डालकर उसे कठिन; बर्त्ति बनने योग्य बना लेते हैं। फिर इस मिश्रित-योग से एक या आधी ईंच लम्बी एवं गोल पतली बर्त्ति का निर्माण कर सुखा लेते हैं। और पूर्व विधि के अनुसार

विसंक्रमित कर प्लास्टिक की थैली में बन्द कर रख लेते हैं।

प्रयोग विधि

इस बर्त्ति का प्रयोग भी व्रण शोधन के निमित्त ही किया जाता है। इसका विशेष प्रयोग नाड़ी व्रण में होता है। बर्ति को नाड़ी व्रण के अन्दर प्रविष्ट कर व्रण-बध कर देते हैं जिससे एक-दो दिनों के अन्दर ही व्रण का मुख विस्तृत हो जाता है। साथ ही साथ व्रण का शोधन भी हो जाता है। तथा शल्य-निर्हरण आसानी से हो जाता है। पश्चात् उपयुक्त व्रण रोपण औषधि जैसे 'जाती-तैल' या घृत आदि द्वारा चिकित्सा की जाती है। कभी-कभी तो भगन्दर के व्रण में भी इसके प्रयोग से आशातीत सफलता मिलती है।

क्षार सूत्र निर्माण-विधि

क्षार-सूत्र निर्माण के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता पड़ती है :—

(१) सूत्र (२) क्षार (३) क्षीर (४) हरिद्रा (५) क्षारसूत्र-मंजूषा (Kshar-sutra-cabinet) (चित्र—१)

सूत्र

क्षार—सूत्र के निर्माण के लिए सर्वप्रथम सूत्रों का चयन आवश्यक है जो उसकी तनाव-शक्ति, (Tensile strength) भावना-ग्राह्य-शक्ति, मौसम एवं वातावरण-प्रभाव-शक्ति पर निर्धारित किया जाता है। अर्थात् प्रयुक्त सूत्र अधिक से अधिक भावना-ग्राह्य हो, अधिक से अधिक तनाव-शक्ति-सम्पन्न हो तथा प्रत्येक मौसम के उपयुक्त सिद्ध हो। तनाव शक्ति का मापन तनाव शक्ति-मापक यंत्र द्वारा किया जाता है। इस कार्य के लिए सर्जिकल लिनन (Surgical Linen) नं० २० का सूत्र अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। (चित्र—२ + ३)

२. क्षार

क्षार का चयन दोषानुसार किया जाना चाहिए। इसके लिए अर्कक्षार, कदली क्षार, अपामार्ग क्षार, निम्ब क्षार आदि में से किसी एक क्षार का चयन कर सकते हैं।

३. स्नुही (चित्र—४)

क्षार सूत्र निर्माण का दूसरा प्रमुख एवं प्रभावशाली घटक स्नुही-क्षीर है। स्नुही एक कांटेदार लघु सरल क्षुप होता है। यह समस्त भारत, सिक्किम और भूटान मिलता है। काण्ड एवं शाखाएं कंटकित तथा गोलाका होता है। पत्र ६-१२ इंच लम्बे, स्थूल, मांसल होते हैं पुष्प-पीताभ होते हैं। बीज चपटे, रोमश होते हैं। शीत काल में पत्तियाँ झड़ जाती हैं और वसन्त में पुष्प तथ फल लगते हैं। इसकी त्रिधारा, पंचधारा, छीमिया डडा आदि अनेक जातियाँ होती हैं। चरक ने इसकी दो जातियों का उल्लेख किया है (१) अल्प-कंटक (२) बहु कंटक।

रासायनिक संघटन तथा प्रयोग

इसमें युफर्बन (Euphorbon) राल, निर्यास, रबड़ कैलशियम मैलेट आदि पाये जाते हैं। गुण लघु, स्निग्ध तीक्ष्ण। रसकटु। विपाक-कटु। वीर्य-उष्ण। यह कफवातहर है। इसका कांड-पत्र वेदना-स्थापन तथा क्षीर, लेखन है। दीपनार्थ एवं रेचनार्थ इसका अभ्यान्तर प्रयोग किया जाता है। तीक्ष्ण विरेचन द्रव्यों में यह सर्वोत्तम माना गया है। पत्तियां गरम कर शोथ-बेदनायुक्त स्थानों पर बांधते हैं। इसके स्वरस को कर्णशूल में डालते हैं तथा इससे सिद्ध तेल का वातव्याधि में अभ्यंग करते हैं। दूध चर्म-रोगों में लगाते हैं तथा दन्तशूल में रुई के फाहे में रखते हैं। क्लैव्य में इसका दूध अन्य औषध के साथ मिलाकर शिश्न पर लगाते हैं। इसके दूध का लेप अर्शाङ्कुओं पर करते है या दुग्ध-भावित सूत्र से अंकुरों को बांधते हैं। इससे अंकुर नष्ट हो जाते हैं। चरक ने क्षीर-संग्रह की विधि का भी निदेश किया है कि तीक्ष्ण और बहु-कंटक सहुड के दो या तीन वर्ष के क्षुप में तीक्ष्ण शस्त्र से छेद कर शिशिर के अन्त में क्षीर का संग्रह करे।

४. हरिद्रा

हरिद्रा का क्षुप अदरख के समान होता है। पत्ति एक या डेढ़ फुट लम्बी और चौड़ी होती हैं जिनसे आ की तरह गन्ध आती है। पत्रवृन्त भी पत्ती की तरह चौड़ा होता है। पुष्पदण्ड, ४-६ इंच लम्बा होता है जिस हल्दी के रंग के लगभग डेढ़ इंच लम्बे पुष्प निकलते हैं फल लम्बा गोलाकार और गांठदार होता है। यह समस्त भारत में उत्पन्न होता है। इसमें उड़नशील तेल ? प्रति राल कर्कुमीन (Curceemin or Turmerol)

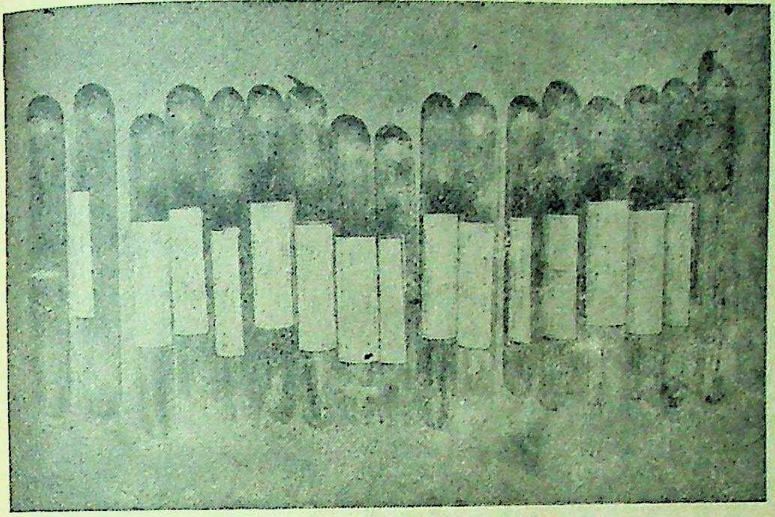

चित्र—५
क्षार-सूत्र काँच नलिका में बंद
(क्षार-सूत्र सीलड अन्डर ट्यूब।)

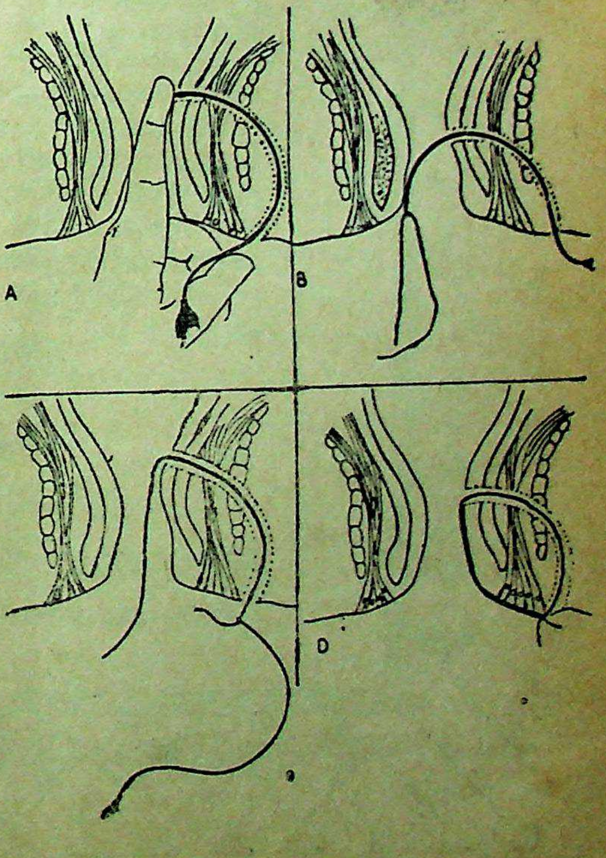

चित्र—६
क्षार-सूत्र प्रयोग—विधि

(A) तर्जनी अङ्गुली की सहायता द्वारा भगन्दर नाड़ी में एषणी यन्त्र का प्रवेश करना तथा गुद-नलिका में एषणीमुख को निकालना।

(B) गुद में प्रविष्ट ऐषणी यन्त्र को गुदमार्ग से वाहर निकालना और यंत्र नेत्र में क्षार सूत्र प्रविष्ट करना।

(C) एषणीयन्त्र में प्रविष्ट क्षार-सूत्र को भगन्दर नाड़ी से निकालना।

(D) भगन्दर नाड़ी में प्रविष्ट क्षात्र-सूत्र के दोनों किनारों में गांठ बांधना।

आयुर्वेद सार संग्रह

संशोधित-परिवर्द्धित पंचम संस्करण

आयुर्वेद-शास्त्रों के मंथन के बाद इस महान ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। इसमें रोगानुसार औषधों का गुण-धर्म, शोधन-मारण, औषध-अनुपात, पथ्यापथ्य आदि का विवरण सरल भाषा में लिखा गया है। इसमें उन सभी प्रयोगों का संकलन किया गया है, जिनकी परीक्षा असंख्य बार सफल चिकित्सकों द्वारा की जा चुकी है। इसके साथ ही औषध-निर्माण के उपाय सरल भाषा में लिखे गए हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सकों, छात्रों तथा प्रत्येक परिवार के लिए यह ग्रंथ विशेष उपयोगी है। हिन्दी में यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रन्थ है।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

सत्व, पीतरंजक द्रव्य, हरिद्रा तैल (Turmeric Oil) नामक गाढ़ा पीला तथा विशिष्ट गन्ध और स्वाद से युक्त तैल होता है। यह गुण में रूक्ष, लघु है। रस-तिक्त, कटु, विपाक कटु एवं उष्णवीर्य है। इसका प्रयोग वात-पित्त, कफ तीनों दोषों से उत्पन्न विकारों में होता है। बाह्य प्रयोगार्थ इसका लेप शोथ-वेदनायुक्त विकारों में विशेषत: आघात लगने पर करते हैं। कुष्ठ, कडु आदि त्वचा दोषों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। व्रणों के पाचनार्थ इसकी पुल्टिस लगाते हैं तथा शोधन एवं रोपण के लिए इसका चूर्ण या मलहम लगाते हैं। नेत्राभिष्यन्द में इसका अश्च्योतन तथा विडालक देते हैं। यकृत-प्लीहा की वृद्धि होने पर इसका लेप यकृत-प्लीहा के प्रदेश में करते हैं। अर्श में भी उसका लेप लगाते हैं। हल्दी के टुकड़े या चूर्ण को अंगारों पर रखने से जो धूम निकलता है वह मूर्च्छा, श्वास एवं हिक्का रोगों में प्रयुक्त होता है। इस धूम से वृश्चिक-दंश की वेदना भी शांत होती है।

क्षार-सूत्र निर्माण-विधि—क्षार-सूत्र के निर्माण में उपर्युक्त द्रव्यों को इक्कीस भावनाएं दी जाती हैं। दस भावनाएं स्नुही-क्षीर द्वारा, सात भावनाएं स्नुही क्षीर एवं क्षार द्वारा तथा अन्तिम चार भावनाएं स्नुही क्षीर एवं हारद्रा चूर्ण की दी जाती हैं।

प्रथम भावना या आधार-भावना, सूत्र को स्नुही क्षीर में २४ घंटे डुबाकर दी जाती है। २४ घंटे के बाद सूत्र को निकाल कर क्षार-सूत्र-मंजूषा में (चित्र १०) हुक या फ्रेम के माध्यम से तान कर सुखाते हैं। धागे को शीघ्रता से सुखाने में मंजूषा स्थित उष्णवात-प्रदायक पंखा बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधार-भावना के सूखने पर ही दूसरी भावना लगायी जाती है। दूसरी भावना सूत्र में कपड़े या स्पंज की सहायता से लगाते हैं। इसी तरह से प्रत्येक बार क्षीर के पूर्णतया शुष्क होने के पश्चात् ही दूसरी भावना दी जाती है। इच्छित भावनाओं के पूर्ण होने के पश्चात् पहले स्नुही क्षीर से सूत्र को लिप्त किया जाता है। तत्पश्चात् हल्के हाथ से क्षार का क्षीर-लिप्त सूत्र से स्पर्श कराया जाता है। इस प्रकार की क्रिया से सूत्र क्षार के संसर्ग को प्राप्त कर उसे पूर्ण-रूपेण चिपका लेता है। सूत्र के शुष्क होने के पश्चात् पुनः-पुनः इस क्रिया का पुनरावर्त्तन इच्छित भावना तक करते हैं। अन्त में इसी विधि से क्षीर एवं हरिद्रा चूर्ण की अन्तिम भावनाएं लगाते हैं। और क्षार-सूत्र-मंजूषा के अन्तर्गत नियोजित 'अल्ट्रा वाइलेट लाइट' को आठ घंटे तक जलाकर क्षार सूत्र को जीवाणुरहित किया जाता है। और सबसे अन्त में जीवाणुरहित काच-नलिका में क्षारसूत्र को रख कर 'स्प्रीट लैम्प' की सहायता द्वारा 'सील' किया जाता है। (चित्र-५)

प्रयोग विधि

प्रायः क्षारसूत्र का प्रयोग भगन्दर के रोगियों में किया जाता है। अर्श के रोगियों में भी क्षारसूत्र मांसाकुरों के मूल में बाँध देते हैं जिसके फलस्वरूप मांसाकुर एक सप्ताह के अन्दर ही कट कर निकल जाता है। क्षारसूत्र चिकित्सा के लिए भगन्दर के रोगियों का चुनाव आवश्यक है क्योंकि क्षार-सूत्र का सफलतापूर्वक प्रयोग उन्हीं रोगियों में किया जा सकता है जिनमें भगन्दर गुद-मार्ग से बहुत दूर अथवा बहुत ऊपर न हो। कुछ असामान्य प्रकार के भगन्दर जिनमें नाड़ी-वृण कई एवं विभिन्न दूरी पर स्थित हो, को छोड़ कर प्रायः क्षारसूत्र-चिकित्सा सभी प्रकार के भगन्दर के रोगियों की सफलतापूर्वक की जा सकती है। परन्तु ऐसे असामान्य भगन्दर के रोगी बहुत ही कम मिलते हैं। अधिकांश रोगियों में प्रायः एक सामान्य नाड़ी-वृण होता है जिसका अन्तर्मुख गुद द्वार में खुलता है और बहिर्मुख गुद द्वार के निकटवर्त्ती नितम्ब प्रदेश में (Peri-anal-region) होता है। अगर नाड़ी-वृण अनेक हों तब जो सामान्य हों उन्हें ही सर्वप्रथम चिकित्सा के लिए ग्रहण करना चाहिए। अगर इसका अन्तर्मुख बन्द हो तब एषणी (Probe) के माध्यम से खोल देना चाहिए। क्षारसूत्र के प्रयोग के पूर्व नितम्ब-प्रदेश-स्थित बालों की सफाई आवश्यक है जिससे कि क्षार-सूत्र बाँधने के समय किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो। बालों की सफाई नहीं करने से प्रायः बाल क्षार-सूत्र के सम्पर्क में आ जाते हैं और गांठ बाँधते-समय उसके साथ-बँध जाते हैं जिसके कारण (तत्काल एवं पश्चात् भी) क्षारसूत्र-परिवर्त्तन के समय खिंचाव के कारण रोगी को काफी पीड़ा होती है। रोगी को अश्मभंजन-शल्य कर्म (Litho Formy position) की अवस्था में उत्तानमुख रखा जाता है। तत्पश्चात् हस्तपाच्छादित एवं स्नेह-लिप्त

तर्जनी अंगुली (A gloved and grised finger) को धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक रोगी के गुद-मार्ग में प्रविष्ट करानी चाहिए तथा दूसरे हाथ की सहायता से उपयुक्त नेत्रयुक्त एवं लचकदार एषणी-यन्त्र को भगन्दर-नाड़ी के बाह्य मुख में प्रविष्ट कराया जाता है। एषणी-यन्त्र को धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ाते जाते हैं—भगन्दर-मार्ग के न्यूनतम अवरोध की दिशा में, किंतु एषणी-यंत्र का मुख हमेशा ही गुदमार्ग में पूर्व-प्रविष्ट-तर्जनी-अंगुली से निर्देशित होना चाहिए। जब यन्त्र के अग्रमुख की गुदा में अनुभूति-प्रतीत होती है तब तर्जनी अंगुली की सहायता से इसे गुदामार्ग के बाहर ले आते हैं। (चित्र ६-A, B) पुनः एषणी यन्त्र के नेत्र में क्षारसूत्र को प्रविष्ट करते हैं और भगन्दर-नाड़ी मार्ग में क्षारसूत्र को छोड़ते हुए एषणी को निकाल लेते हैं तत्पश्चात् क्षारसूत्र के दोनों किनारों की—भगन्दर-नाड़ी मार्ग एवं गुद-द्वार के किनारे के मध्यावस्थित धातुओं को प्रगाढ़-आलिंगन करते हुए, संयत-दृढ़ता के साथ बाँध देते हैं। (चित्र ६-C, D) गठ-बन्धन में यह हमेशा ही ध्यान देना चाहिये कि वह न बहुत दृढ़ हो और न बहुत ढीला। अन्त में नाड़ी व्रण के ऊपर उपयुक्त औषधियों जैसे अणुतैल, जातीघृत आदि का पिचु रखकर गोफणिका (T. Bandage) बाँध देते हैं। किसी-किसी रोगी को केवल वेदना-हर औषधि की आवश्यकता वेदना की शांति के लिए एक या दो दिनों तक पड़ सकती है। परन्तु सार्वदैहिक औषधियों की बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं पड़ती है। गोफणिका बंध बाँधने के पश्चात् रोगी को अणुतैल की एक शीशी तथा इसका स्थानीय प्रयोग (भगन्दर व्रण में लगाने की सलाह प्रत्येक बार शौच के पश्चात् देकर) बतलाकर भेज दिया जाता है। शौच आसानी से एवं पतली ही इसके हेतु 'षट्सकार चूर्ण' की कुछ मात्राएं भी दे दी जाती हैं। रोगी को घर जाते समय विशेष रूप से यह भी परामर्श दिया जाता है कि वे घर जाकर बेकार चुपचाप आलसी की तरह एक स्थान पर लेटे या बैठे न रहें बल्कि हमेशा कुछ न कुछ करते रहें। सदैव गतिशील रहें। इससे क्षार-सूत्र को भगन्दर-मार्ग के छेदन में मदद मिलती है और स्थानीय धातुओं को भी व्रण रोपण क्रिया में सहायता प्राप्त होती है। (चित्र-६-A, B, C, D.)

क्षार सूत्र का निरन्तर एवं नियमित परिवर्तन एक सप्ताह के अन्दर देकर किया जाता है। पुराने बंधे सूत्र में ही नये क्षार-सूत्र का एक किनारा बांध दि जाता है और पुराने क्षारसूत्र के एक हिस्से को शरीर शस्त्र (Scissors) से काट दिया जाता है। सूत्र के दू किनारे की धमनी स्वस्तिक यंत्र (Artery forceps) पकड़कर खींच लेते हैं। इस प्रकार पुराना सूत्र बाहर आ जाता है साथ ही साथ उसके दूसरे किनारे बधा क्षारसूत्र भगन्दर-नाड़ी-मार्ग में आसानी से प्रवि हो जाता है। फिर नवीन सूत्र के एक किनारे से पुराने सूत्र को काट कर निकाल देते हैं। और सूत्र दोनों किनारों को पूर्ववत् बाँधकर व्रण बंधन कर देते हैं प्रत्येक बार पुराने सूत्र की लम्बाई को नाप लेते हैं क्योंकि इससे किस गति से, (तीव्रगति या मन्दगति धातु का भेदन क्षार सूत्र कर रहा है इसका ज्ञान सहज में हो जाता है। प्रायः उसके भेदन में चार या पाँ सप्ताह लग जाते हैं। अर्थात् चार या पाँच बार सूत्र सप्ताह के अन्तर से परिवर्तन करना अनिवार्य है। भग व्रण के पूर्ण छेदन के पश्चात् व्रण का रोपण कुछ ही दि के अन्दर ही हो जाता है और रोगी रोग से पूर्णतः मु हो जाता है। यह हमेशा ही ध्यान रखना चाहिए जब तक 'नाड़ी' का पूर्णतः छेदन न हो जाय; निय रूप से प्रत्येक सप्ताह में एक बार सूत्र प्रविष्ट क आवश्यक है। प्रतिदिन मन्दोष्णजल-पूर्ण पात्र में रोगी (सूत्र बन्धन के दिन छोड़ कर) प्रातः-सायं १५-२० मि के लिए बैठाया जाता है। इससे रोगी को काफी आ मालूम पड़ता है और वेदना की शांति होती है। स्था धातुओं में उत्पन्न क्षोभजन्य शोथ को भी इस तरह स्वेदन से शांति मिलती है। और शोथ का शीघ्र ही हो जाता है।

सावधानी (Precautions)

(१) एषणी-यन्त्र का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अत्यधिक शक्ति का प्रयोग किया जाय अन्यथा एषणी यत्र मिथ्यामार्ग का नि कर सकता है और तब नाड़ी-मार्ग ज्यों का त्यों पूर्व में रह जायगा।

(२) दूसरी सावधानी सूत्र के गांठ-बंधन के बरतनी चाहिए। यह गांठ धातुओं पर न अधिक डाले और न इतनी ढीली बाँधी जाय कि बिल्कु

दबाव न हो। कसी हुई गाँठों के अधिक दबाव के कारण स्थानीय धातुएं नष्ट एवं मृत होने लगती हैं। परिणामतः इसका भेदन तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाता है। धातुओं का अति तीव्र गति से भेदन होने के कारण सौत्रिक तन्तु युक्त नाड़ी का सम्पर्क सूत्र में लिप्त क्षार से बहुत कम समय के लिए होता है।

फलतः सौत्रिक तन्तु के विलयन के लिए 'क्षार-सूत्र' को अधिक समय नहीं मिलने के कारण नाड़ी का समूल नाश नहीं होता और वह पूर्ववत् स्थिति में वर्त्तमान ही रहता है। दूसरी ओर गांठ अगर बहुत ढीली है तो यह व्यर्थ ही धातुओं के बीच में पड़ा रहता है और भेदन-कर्म में बाधा उपस्थित होती है परिणामतः व्रण रोपन कार्य में देर होती है। अतः इस चिकित्सा में सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि क्षार-सूत्र की गांठें विधिवत् एवं आवश्यतानुसार दबाव पर ही दी जाय जिससे कि क्षारसूत्र के मध्यावस्थित धातुओं पर एक सम्यक् दबाव पड़ सके।

सन्दर्भ

(१) सुश्रुत—सुश्रुतसंहिता

(२) वंगसेन—वंगसेन

(३) भावमिश्र—भाव प्रकाश

(४) वाग्भट—अष्टांग हृदय

(५) चक्रपाणि—चक्रदत्त

(६) प्रो० देशपाण्डेय पी० जे० एवं डा० शर्मा के० आर० —क्षारसूत्र टेकनिक

(७) प्रो० शर्मा प्रियव्रत—द्रव्यगुण-विज्ञान

(८) नादकर्णी—मेटेरिया मेडिका।

आयुर्वेदीय
क्रिया-शरीर

आयुर्वेद में नाड़ी परीक्षा

डा० बी० एन० सण्ड
डा० विमला सण्ड
वैद्य एम० आर० उनियाल
रिजनल रिसर्च सेण्टर, जोगिन्दर नगर (हि० प्र

प्राचीन एवं नवीन चिकित्सा-पद्धति में नाड़ी परीक्षा का एक विशेष स्थान है। इस विज्ञान के विद्वान नाड़ी-परीक्षा द्वारा रोगी के खान-पान से लेकर रोग-निदान तक पूर्ण वर्णन करते थे, ऐसा ग्रंथों के अवलोकन एव किंवदन्तियों के सुनने से ज्ञात होता है, अतः इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

रोगी-परीक्षा के आठ साधन हैं—

(१) नाड़ी
(२) मूत्र
(३) मल
(४) जिह्वा
(५) शब्द
(६) स्पर्श
(७) नेत्र
(८) आकार

इनमें से नाड़ी-परीक्षा श्रेष्ठ है, रक्तवाही धमनियाँ दोषों का भी वहन करती है, अतः वे दोषों के स्वरूप को भी प्रकाशित करती हैं, सुश्रुत ने इसकी पुष्टि निम्न प्रकार से की है :—

न हि वातं विना कश्चिन पित्तं केवलम् तथा,
श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहा स्मृताः ॥
दुष्टानाँ हि दोषाणमुच्छ्रितानां प्रधावताम् ।
ध्रुवमुन्मार्ग गमनमतः सर्ववहाः स्मृताः ॥
(सु० सू०)

कोई भी सिरा (रक्तवाहिनी) ऐसी नहीं है जो वात-पित्त और कफ का वहन न करती हो, अतः इन्हें सर्ववहा कहते हैं। दुष्ट हुए (बढ़े हुए) दोषों की गति अमार्गस्थ होती हैं. उनका वहन भी सिराएं करती हैं, अतः इन्हें सर्ववहा कहते हैं।

नाड़ी-परीक्षा स्थान

अंगुष्ठ मूल, मणिबन्ध, कर्पूर सन्धि के ऊपर (Cubiital Fossa) गले आदि में रहने वाली नाड़ियों की परीक्षा करने का विधान है। इनमें से अंगुष्ठ मूल में रहने वाली नाड़ी का प्रधान रूप से निर्देश है, इसके लिए नि कारण हो सकते हैं—

(१) यहाँ नाड़ी सुगमता से देखी जा सकती है,

(२) इस स्थान पर स्त्रियों के रोग ज्ञान में अति सरलता प्राप्त होती है।

(३) इस नाड़ी में दोषों अंश-अंश कल्पना विकृत-अविकृत दोषों को व्यक्त करने की क्षमता स धिक है।

नाड़ी-परीक्षा प्रकार

स्त्री की बायीं एवं पुरुष की दाईं नाड़ी की परी करनी चाहिए ऐसा आचार्यों ने निर्देश किया है, चि त्सक को रोगी की अंगुष्ठ मूल में रहने वाली नाड़ी प अपने दक्षिण हस्त की तीन अंगुलियों को रख कर परी करनी चाहिए, दबाव अधिक नहीं डालना चाहिए।

निर्देशनी अंगुली के नीचे वात, मध्यमा के नी पित्त एवं अनामिका अंगुली के नीचे कफ दोष का होता है।

अग्रे वातवहा नाड़ी मध्ये वहति पित्तला,
अन्ते श्लेष्म विकारेण नाड़ी ज्ञेया बुधैः सदा॥

नाड़ी का सम्बन्ध दोषों से है, अतः दोष विशेष थोड़ा विवेचन करना अनिवार्य है, दोषों की गतियां प्रकार की हैं—

१—दोषों की समावस्था,
२—दोषों का क्षीण हो जाना,
३—दोषों का प्रबुद्ध हो जाना।

पुनः दोषों की गतियाँ तीन प्रकार की हैं:—

१—दोषों का कोष्ठाश्रयी होना,
२—दोषों का शाखा में जाना,
३—दोषों का मर्म या मर्मास्थि संधि जाना।

दोषों के स्वरूप भी तीन हैं:—

१—दोषों का पृथक् रहना,
२—दोषों का मिश्रित होना,
३—दोषों का आवृत होना।

श्लेष्मा भारी है, अतः श्लेष्मा से आवृत दोषों की गति भारी होने के कारण नीचे की ओर होगी और पित्तावृत दोषों की गति ऊपर को होगी। अतः दोषों की गति जानने के लिए हाथ और पैर की नाड़ियों की परीक्षा करनी चाहिए।

स्त्रियों की नाड़ी उनके बाएं हाथ से और पुरुषों की नाड़ी उनके दाहिने हाथ से देखें क्योंकि नाभि - चक्र में, जहाँ से नाड़ियों का जाल शरीर में फैलता है, वहाँ पर नाड़ी जाल कछुए के समान है, यह नाड़ी जाल स्त्रियों में ऊर्ध्वमुखी और पुरुषों में अधोमुखी होता है, अतः स्त्रियों की बाईं नाड़ी और पुरुषों की दाईं नाड़ी देखनी चाहिए।

स्त्रीणामूर्ध्वमुखः कूर्मः पुसाँ पुनरधोमुखः।
अतः कूर्मव्यतिक्रान्तात् सर्वभेषव्यतिक्रमः॥
लक्ष्यंते दक्षिणे पुँसाँ या च नाड़ी विचक्षणैः।
कूर्मभेदेन वामानाँ वामे चैवावलोक्यते॥

शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है कि इन्द्र की पुरुष रूप शक्ति पुरुष की दाहिनीं ओर रहती है और इन्द्राणी रूप शक्ति पुरुष की बायीं ओर रहती है।

दोषों के अनुसार नाड़ी की गति मण्डूकवत्, हंसवत्, कपोतवत एवं सर्पवतादि विविध प्रकार की बताई है जो कि नाड़ी में दोषों की स्थिति की सूचक है। अतः विशेष अभ्यास द्वारा दोषों की अंश-अंश कल्पना का नाड़ी परीक्षा द्वारा अध्ययन करना चाहिए।

निर्दोष नाड़ी

हँसगा चैव या नाड़ी तथैव गजगामिनी।
मुखं प्रशस्तं च भवेत् तस्यारोग्यं भवेत्सदा॥

जिस नाड़ी की गति हंस अथवा हाथी के समान हो, मुख देखने में सुन्दर हो उसे निरोग समझना चाहिए।

सुव्यक्ता निर्मलाचैव स्वस्थान स्थिति रेवच।
अचाञ्चल्यममन्दत्वं सर्वासां लक्षणं शुभम्॥

जो नाड़ी सुव्यक्त, निर्मल अपने स्थान में स्थित चंचलता एवं मन्दता से रहित हो, नाड़ी शुभ एवं स्वस्थ समझनी चाहिए।

वातज नाड़ी

वाते वाताधिका नाड़ी व्यालीव कुटिला सदा।
अत्यन्त दुष्टा वहति स्तब्धातन्त्री समाकृतिः॥

वाताधिक वात दोषों की नाड़ी की गति सर्प के समान कुटिल होती है, अत्यन्त दुष्ट वात में स्तब्ध तन्त्री के समान होती है।

पित्तज नाड़ी

पित्ताधिक्येतु चपला नाड़ी वहति काकवत्।
वक दर्दुर संचारा चटका-वर्तिका गति॥

पित्त की अधिकता में नाड़ी की गति काक, वक, मेंडक (मण्डूक) चटक और बत्तख के समान होती है।

कफज नाड़ी

कफेन दुष्ट नाड़ी तु हंस कुक्कुटगामिनी।
कपोत मन्द सञ्चारा भवतीतिविनिश्चय॥

कफ की अधिकता में नाड़ी की गति हंस, कुक्कुट, कपोत के समान एवं मंद संञ्चारी होती है।

त्रिदोष नाड़ी

वाताद् वक्रगता नाड़ी पित्तादुत्प्लुत्यगामिनी।
कफान्मन्द गतिर्ज्ञेया सन्निपातादतिद्रुता॥

वात से वक्रगति, पित्त से उछल कर चलने वाली एवं कफ मंद गति वाली तथा सन्निपात से अति द्रुत गति वाली नाड़ी होती हैं।

वात पित्तज नाड़ी

मुहुसर्प गति नाड़ी मुहुर्भेक गति तथा।
वात-पित्त द्वयोद्भूतां प्रवदन्ति विचक्षणाः॥

वात-पित्त जनित नाड़ी बार-बार सर्प की भांति एवं बार-बार मण्डूक की भांति चलती है।

वातश्लेष्मिक नाड़ी

भुजगादि गति नाड़ी राजहंस गतितथा।
वात श्लेष्मा समुद्भूतां प्रवदन्ति विनिश्चयम्॥

वातश्लेष्मिक नाड़ी की गति सर्प एवं राजहंस के समान होती है।

पित्तश्लेष्मिक नाड़ी

मण्डूकादि गति नाड़ी मयूरादि गति तथा।
पित्तश्लेष्मा समुद्भूतां प्राहुर्वै बविशारदा॥

पित्तश्लेष्मिक नाड़ी की गति मण्डूक एवं मयूर की गति के समान होती है, ऐसा कुशल वैद्य मानते हैं।

मरण सूचक नाड़ी

स्थित्वा स्थित्वा गतिं याति सा नाड़ी मृत्युदायिनी।
अति शीता च या नाड़ी सा ज्ञेया प्राणहारिणी॥

ठहर-ठहर कर चलने वाली नाड़ी मृत्यु सूचक है जो नाड़ी अत्यन्त शीतल हो वह नाड़ी भी प्राणों का नाश करने वाली है।

तिब्बती चिकित्सा-पद्धति में नाड़ी-परीक्षण का ज्ञान बहुत विस्तृत है, वह नाड़ी देख कर ही हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, आमाशय, यकृत एवं प्लीहा आदि अवयवों के रोग का ज्ञान करते हैं।

प्रस्तुत लेख द्वारा लेखकों का उद्देश्य वैद्य समाज को नाड़ी-परीक्षा के प्रति प्रेरित करना है। अन्त में लेखकगण डा० पी० एन० वी० कुरुप, निदेशक, सी० सी० आर० आई० एम० एच० के आभारी हैं जिनकी आर्थिक सहायता से शोधकार्य चल रहा है।

बैद्यनाथ
दन्तमंजन
लाल • काला और सफेद
इन मंजनों के रोजाना
व्यवहार से दाँत चमकीले
मुँह दुर्गन्ध-रहित और
मसूढ़े मजबूत रहते हैं
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता-६

अपनी-अपनी मान्यता का समर्थन सभी विद्वान करते कन्तु कोई भी दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि कादि आचार्य जिस औषधि को रास्ना कहते थे वह है। यह सामान्य बुद्धि की बात है कि उपर्युक्त औषधियाँ रास्ना नहीं हो सकतीं। वास्तविक रास्ना ो एक ही हो सकती है। औषधि-निर्माण करते समय द्यों के सामने यह जबर्दस्त समस्या उत्पन्न होती है उपर्युक्त १६ रास्नाओं में से किसे ग्रहण करें।

इस सम्बन्ध में हमें वनवासियों से महत्वपूर्ण सहायता ल सकती है। चरकादि आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है कि वन में रहनेवाले, वन में शिकार करने वाले तथा वन में गाय, बकरी, भेड़ आदि चराने वाले औषधियों को पहचानते हैं, उनसे औषधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए—

औषधीर्नामरुपाभ्यां जानन्ते ह्यजपा वने।
आविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिनः॥
(च० सू० १)
गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजन्यक्तिरिष्यते॥
(सु० सू० ३७)
तेभ्यः सकाशादुपलभ्य वैद्यः पश्चाच्च शास्त्रेषु विमृश्य बुद्धया।
विकल्पयेछ्व्यरसप्रभावान्विपाकवीर्याणि तथा प्रयोगात्॥ (रा० नि०)

मध्यप्रदेश के वन विभाग में औषधीय अनुसंधान कार्य करते हुए मुझे गत वर्ष बस्तर जिले के वनों में दौरा करने का अवसर मिला था। उस समय मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वहां के आदिवासी एक ऐसी वनस्पति को रास्ना के नाम से जानते हैं जो उपर्युक्त १६ औषधियों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ, यह बतलाना आवश्यक है कि बस्तर अत्यन्त पिछड़ा हुआ इलाका है जहाँ के अधिकांश निवासी अशिक्षित आदिवासी हैं। वहां डाक्टर वैद्य अत्यन्त थोड़ी संख्या में हैं और उनका कार्यक्षेत्र शहर तक ही सीमित है। शेष सारा इलाका जंगली है। वहाँ के आदिवासियों को औषधियों के संबंध में जो जानकारी है वह परम्परा से है, पुस्तकों अथवा आधुनिक विद्वानों से प्राप्त नहीं है और परम्परा की प्राचीनता पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसलिए हम मान सकते हैं कि चरकादि के काल में तथा उनसे भी पूर्व, जिस औषधि को रास्ना कहा जाता था वह यही है।

इस औषधि का लैटिन नाम ब्लेफेरिस्पर्मम सब्सेसाइल (Blepharispremum subsessile DC) है। यह भृङ्गराज कुल का पौधा है। इसकी ऊंचाई ३ फीट तक होती है। पत्तियाँ २ से ५ इंच तक लम्बी और १ से २ इंच तक चौड़ी, इलायची के पत्तों के समान आकारयुक्त

अथवा जिह्वासदृश होती हैं। इसका सर्वाङ्ग सुगन्धित होता है। इसका पुष्प छत्राकार होता है। सम्पूर्ण क्षुप काफी रसदार होता है। भारत में दक्षिणी पठार, काटिजघाट, पूना के पास (भीत्रा), धारवाड, बेलगाँव, कनारा में पायी जाती है। मध्यप्रदेश में बस्तर (कोडागाँव, गीदम, मनीपुर, केशकाल, भासी में पायी जाती है।

आदिवासी लोग सभी वात रोगों के प्रशमनार्थ इसका वाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग करते हैं। बच्चों के सर्दी-खाँसी एवं श्वसनकज्वर (Pnemonia) में इसका स्वरस या चूर्ण देते हैं। खाज-खुजली आदि चर्म रोगों के प्रशमनार्थ इसका लेप अचूक माना जाता है। पशुओं को उदरकृमि निकालने के लिये इसका पंचाँग खिलाते भादो मास की अमावस्या को यह औषधि पशुओं खिलाते हैं, उनका विश्वास है कि इसके प्रभाव से साल भर तक रोगमुक्त रहता है। वाह्य प्रयोग ले पुल्टिस या साधित तैल के रूप में किया जाता है। आभ्यन्तर प्रयोग स्वरस, हिम एवं चूर्ण के रूप में किया जाता है। स्वरस की वयस्क मात्रा आधा से १ तोला और चूर्ण की वयस्क मात्रा १ से ३ माशे तक।

शास्त्र में रास्ना के जो पर्याय दिये गये हैं वे इस औषधि के लिये उपयुक्त प्रतीत होते हैं—

सुगन्धित होने के कारण गन्धमूला, गन्धनाकुली, सुरसा, सुगन्धा सुरभि, श्रेयसी आदि,

रसदार होने के कारण युक्तरसा, रस्या, सुवहा, रसना, रसा, सुरसा आदि,

इलायची के पत्तों के समान पत्ते होने के कारण एलापर्णी छत्राकार पुष्प के कारण छत्राकी।

चरक और सुश्रुत संहिताओं में रास्ना को श्लेष्मसं मनी वर्ग: में रखा गया है। इस रास्ना में श्लेष्म संशमन का गुण भी पाया जाता है।

इन सब बातों से प्रेरित होकर मैंने इस रास्ना का प्रयोग करके रास्नादि क्वाथ, महारास्नादि क्वा रास्नादि तैल और महारास्नादि तैल बनाकर रोगि पर प्रयोग किया। परिणाम बहुत ही अच्छे रहे। इसलि मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि चरक आदि प्राची आचार्य जिसे रास्ना मानते थे वह वनस्पति यही है। इस रास्ना का परिचय आपको देते हुये अत्यन्त हर्ष गर्व का अनुभव कर रहा हूं। आप भी इसका प्र कीजिये, स्वयं लाभ उठाइये, अपने रोगियों को ला पहुँचाइये और आयुर्वेद की कीर्ति बढ़ाइये।

वैद्यनाथ
आइ-ऑरव
आँखों की रक्षा के लिए सदा व्यवहार कीजिये

प्राकृतिक चिकित्सा और त्रिदोष सिद्धांत

श्री विट्ठलदास मोदी

संचालक आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

बनारस के हवाई अड्डे पर मैं जरा देर से पहुँचा। डा० डमर का हवाई जहाज आ गया था और वे हवाई अड्डे से बाहर निकल कर अपना सामान सहेज रहे थे। मुझे देखते ही वे अकुलाकर गले मिले, प्रसन्नता से उनका अंग अंग पुलकित हो रहा था। उन्होंने मुझे आठ दिन दिये थे और केवल एक दिन उनका दिल्ली रहने का इरादा था पर अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् के मंत्री श्री देवेंद्र भाई और उनके सहयोगी श्री गणेश शर्मा के अनुरोध पर मैंने स्वीकार कर लिया था कि डा० डमर तीन दिन दिल्ली रहें। छूटते ही बोले 'आपने अच्छा किया कि दिल्ली का प्रवास तीन दिन का बना दिया। वहां बहुत काम हुआ—मुझे डा० कुरूप, स्वास्थ्य मन्त्री श्री आर० के० खाडिलकर से मिलाया गया, कई प्राकृतिक चिकित्सकों से मैं मिला और सबसे काफी बातें हुईं।

वास्तव में डा० डमर बौद्ध हैं। ईसाई धर्म त्याग कर उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है। लंदन की बौद्ध-संस्था से भी वे सम्बन्धित हैं। हिन्दुस्तान में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित सभी स्थान देखना चाहते थे। उनकी इच्छा के अनुरूप ही मैंने उनके लिए कार्य-क्रम बनवाया था। उन्हें चिंता थी कि छह दिनों में वे सभी स्थान कैसे देख सकेंगे? मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि सभी इच्छित स्थानों की तीर्थयात्रा वे बड़े आराम से इन छह दिनों में कर सकेंगे।

श्रीमती डमर दिखाई नहीं दी तो मैंने पूछा 'आप की पत्नी कहां हैं?' 'वे अन्दर दूकानें देख रही हैं।'

'कृपाकर उन्हें तुरन्त बता दें कि मैं आ गया हूं, अन्यथा वे यह न सोच रही हों कि मैं आया ही नहीं। तबतक मैं आपका सामान गाड़ी में रखवाता हूं।'

थोड़ी देर बाद ही डा० डमर अपनी पत्नी को लेकर वापस आये। तबतक उनका सामान गाड़ी में रखा जा चुका था। हमलोग गाड़ी में बैठे और शहर की ओर चल दिये।

डा० डमर ने अपने दिल्ली अनुभव सुनाये, उन्हें बड़ा संतोष था कि प्राकृतिक चिकित्सा की ओर स्वास्थ्य मंत्री एवं कई प्रभावशाली व्यक्तियों का ध्यान वे आकर्षित कर सके। मुझे वे पत्र भी उन्होंने दिखाये जिनमें उनके दिल्ली प्रवास और कार्य के समाचार छपे थे।

क्लार्क होटल हम करीब एक बजे पहुँचे। बारादरी में बैठे तो मैंने पूछा 'क्या पीयेंगे, संतरे का, मुसम्मी का या अनानास का रस या कोकाकोला?'

'कोकाकोला तो मैं पीता नहीं, हम दोनों के लिए नीबू पानी मंगा दें'

नीबू पानी आया और डा० डमर उसे बड़ी शांति, संतोष और धीरज से चूस-चूसकर पीने लगे।

मेरे साथ मेरे पुत्र डा० चतुर्भुजदास मोदी ए० बी० एम० एस० थे। वे ही हमलोगों को एयरपोर्ट से अपनी गाड़ी में यहां लाये थे। वे जानते थे कि डा० डमर हर्बलिस्ट हैं। जड़ी-बूटियों का भी प्रयोग करते हैं। उन्होंने पूछा 'मैंने सुना है कि आप जड़ी-बूटियों का प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा तो अपने में पूर्ण है फिर जड़ी बूटियों का प्रयोग क्यों करते हैं? और किन-किन का प्रयोग करते हैं। मैं उनके प्रश्न से जरा संकुचित हुआ पर डा० डमर मुस्काये। उन्हें भी इस हल्के-फुल्के वातावरण में ऐसे कठिन प्रश्न की आशा नहीं थी। तुरन्त उन्होंने अपने को सुव्यवस्थित किया और बोले 'मैं रोगियों की प्राकृतिक चिकित्सा ही करता हूं, पर जब प्रगति रुक जाती है तब आस्टियोपैथी का व्यवहार करता हूं फिर भी काम नहीं चलता, तभी जड़ी-बूटियों को उपयोग में लाता हूं। और केवल सौ ऐसी का जो निर्विष हैं ही व्यवहार करता हूं।

'वे सौ कौन-कौन सी हैं, कुछ के नाम बतायें।'

'डा० डमर बताने लगे। वे जड़ी-बूटियों के लैटिन नाम बता रहे हैं।

मैंने बात को संक्षिप्त करने की गरज से कहा 'डा० आपके गोरखपुर पहुँचने पर मैं आपको अपने पुस्तकालय

मे भारत सरकार का प्रकाशन 'ग्लासरी आफ इंडियन मेडिसिनल प्लांटस' पुस्तक दूंगा उसे आप देख जायें और उनमें जिन जड़ी-बूटियों का व्यवहार आप करते हैं उनपर निशान लगा दें, हम उनके गुण-दोष समझ लेंगे ।

डा० डमर वर्षों से प्राकृतिक चिकित्सा पर विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक लिख रहे हैं। दो वर्ष पहले उन्होंने मुझे उसकी रूपरेखा की प्रतिलिपि दी थी। उसके बारे में जानने को मैं अधिक उत्सुक था। उस पर बात चलाई तो बोले 'पुस्तक तीन चौथाई लिखी जा चुकी है। शेषांश भी लिखा ही जा चुका है केवल उसे जोड़ना है। पुस्तक अंग्रेजी, फ्रेंच और डेनिश तीनों ही भाषाओं में प्रकाशित होगी। अंग्रेजी में मैंने लिखी है, फ्रेंच में भी लिख सकता था पर फ्रेंच और डेनिश के लिए अनुवादक मिल गये हैं। फ्रेंच की अनुवादिका तो प्राकृतिक चिकित्सा की अच्छी जानकार भी हैं। तब तीनों ही भाषाओं में पुस्तक एक वर्ष में जरूर प्रकाशित हो जाना चाहिए। मैंने उसमें जोड़ने के लिए अभी-अभी आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धांत पर एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ी थी। पर वात, पित्त, कफ मेरे कुछ समझ में नहीं आया।'

'वात, पित्त, कफ का अर्थ बहुत विस्तृत है। मोटे तौर पर उसे मैं आपको समझाता हूं। गले से, नाक से, जब अधिक कफ निकलता है तो कफ की वृद्धि कहेंगे, यदि उर्ध्व या अधोवायु या दोनों अधिक निकलती हों तो उसे वायु दोष कहेंगे और यदि मिचली आती हो, खट्टी डकारें आती हों, सिर में दर्द हो, बदन में जलन हो तो उसे प्रकुपित पित्त कहेंगे। और डाक्टर आप जो यह ठंडे पानी के साथ नीबू पी रहे हैं यह पित्त को शांत करता है। यदि नीबू का रस गरम पानी के साथ लें तो वह वायु को शांत करेगा और यदि नीबू का रस शहद के साथ लें तो वह कफ को दूर करता है।'

डा० डमर जरा चौंके, जैसे वे मेरे कथन् पर विश्वास नहीं कर पा रहे हों तो मैंने उनसे एक गैरदोस्ताना सवाल किया। 'डाक्टर क्या आप वायु के रोगी को पालक खिलायेगे'।

'नहीं',

'पर क्यों, आपने कैसे जाना कि वायु के रोगी के लिए पालक हानिकर है अतः नहीं देनी चाहिए ?'

'अनुभव ने मुझे यह सिखाया है।'

कितने रोगियों को नुकसान पहुँचाकर आपने अनुभव पाया है, और कितने सदियों का अनुभव अपने इस छोटे से जीवन में प्राप्त कर सकेंगे।'

'प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों में तो इस दृष्टि कहीं विचार नहीं किया गया है। आपके ज्ञान का क्या है ?'

'आयुर्वेद। आयुर्वेद में' हर खाद्यान्न के गुण-दोष विवेचन विस्तार से प्राप्त है। हर खाद्यान्न का ही नहीं हिन्दुस्तान में पायी जाने वाली हर वनस्पति का— फूल-पत्ती, जड़ का। हर फल, फूल, मूल का। इस सम्ब में मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं। एक वैद्यराज शिष्य वर्षों के कठिन श्रम के बाद जब वैद्यकर्म में पारंग हो गये और परीक्षा का समय आया तब वैद्यराज ने दिन सूर्योदय के पहले ही अपने विद्यार्थियों को बुला कहा—'आज तुम्हारी अंतिम परीक्षा का दिन है, तुम लोग जंगल में जाओ और दोपहर तक ऐसी जड़, फूल, पत्तियां इकट्ठा करके लाओं जिनका मनुष्य के लि औषधगुणन हो।

विद्यार्थी अनेक थे। सब जंगल से दोपहर को कुछ कुछ इकट्ठा करके ले आये। केवल एक विद्यार्थी हाथ लौटा। वैद्यराज ने जिसका जितना ही बड़ा था, उसको उतने ही कम नंबर दिये और जो कुछ नहीं ला सका था उसे प्रथम स्थान दिया।'

डा० डमर बड़े प्रभावित लग रहे थे। उन्होंने कहानी का मर्म समझ लिया था।

मैंने कहा 'डाक्टर, आयुर्वेद में जड़ी-बूटियों की मीमांसा नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा में जिन विधि को हम उपयोग करते हैं उनके भी उचित उपयोग निर्देश हैं जैसे :

वमन कफ नाशाय, वात नाशाय मर्दनं
स्नेहनं (नेहनं) पित्त नाशाय, सर्व नाशाय लंघनम् ॥

अर्थात् कफ की वृद्धि हो तो रोगी को उल्टी धौति कराओ। वायु वृद्धि में मालिश का उपयोग प्रकुपित पित्त से पीड़ित रोगी के भोजन में घी का उपयोग करो। और रोगी यदि त्रिदोष (तीनों दोषों पीड़ित है तो फिर उपवास कराना चाहिए।

श्लोक का अर्थ समझ कर डा० डमर स्तंभित गये। उन्हें लगा कि प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

सौ वर्ष पुराना नहीं, चार हजार वर्ष पुराना है और प्राकृतिक चिकित्सा ने जर्मनी में जन्म लेने के हजारों वर्ष पहले ही भारतवर्ष में जन्म ले लिया था। बोले 'तब तो आयुर्वेद पढ़ने की चीज है। मैं इसका विधिवत् अध्ययन करूंगा। पर अंग्रेजी में ऊँची और सही पुस्तकें पढ़ना चाहता हूं।'

'आप गोरखपुर चलें, मेरे पुस्तकालय में बहुत-सी ऐसी पुस्तकें हैं, उन्हें मैं आपको दिखाऊंगा और जो आप पसंद करेंगे उन्हें आपके लिए प्राप्त कर आपको भेजूंगा।'

उसी दिन शाम को डाक्टर डमर को मैंने सारनाथ के दर्शन कराये। वहां का म्यूजियम दिखाया। अशोक, लाट का वह अग्रभाग दिखाया जिसका चक्र हमारे तिरंगे पर और हमारे सिक्के पर प्रस्थापित है। और शाम को रेल से चलकर सुबह हमलोग गोरखपुर पहुँच गये। पहले दिन वे गोरखनाथ का मंदिर कुष्ठाश्रम आदि देखते रहे, दूसरे दिन मैं उन्हें भगवान बुद्ध की निर्वाण-भूमि कुशीनगर और भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि पावापुरी (फाजिलनगर) ले गया। तीसरे दिन सुबह ही कार से उन्हें लुंबिनी ले जाने की व्यवस्था की गयी। मैं अभी सो ही रहा था कि मेरे पुत्र श्री विमल कुमार ने मुझे बताया कि डा० डमर ड्राइंग रूम में बैठे हैं। आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ अस्वस्थ से लगते हैं। मैं घबराया उनके पास पहुँचा तो बोले 'डाक्टर' मुझे रात को दस दस्त आये हैं और मेरी पत्नी को छह। अब लुंबिनी जाना कैसे होगा ?'

आप बिल्कुल चिंता न करें, आप आराम से लुंबिनी जायेंगे, बिल्कुल स्वस्थ रहेंगे और शाम को लौटकर जो चाहेंगे भोजन ले सकेंगे ?

मैंने पानी और इसबगोल की भूसी मंगवायी और पाव भर पानी में आठ आने भर भूसी मिलाकर उन्हें पीने को दी। डा० डमर ने झिझकते हुए यह घोल पीना स्वीकार किया। वे पीते जा रहे थे और कहते जा रहे थे 'मैं पेट में ठंडक महसूस कर रहा हूं, मेरे आमाशय की जलन मिट रही है, ठंडक बड़ी आंतों तक पहुँच रही है आदि। यह सब उन्हें इसलिए ज्ञात हो रहा था, क्योंकि वे जड़ी-बूटियों का उपयोग करते हैं और उनके असर को महसूस कर सकते हैं।

पीने के बाद डा० डमर ने पूछा 'यह क्या है'

'इसे हम इसबगोल कहते हैं, अंग्रेजी में इसका नाम मुझे याद नहीं आ रहा है, यह मैं देखकर बताऊँगा।'

'हमारे लंदन में भी यह चीज मिलती है, मेरे औषध भंडार में भी होनी चाहिए। पर मैंने इसका उपयोग नहीं किया है।'

'हमलोग ऐसे समय बेल का उपयोग करते हैं, वह नहीं मिलता तो इसबगोल काम में लाते हैं।'

इसबगोल की उतनी ही मात्रा डा० डमर ने अपनी पत्नी को भी देने की कोशिश की पर वे आधी ही मात्रा ले सकीं।

मैं घंटे भर में नहा धोकर राउंड के लिए निकला तो डा० डमर और उनकी पत्नी कार में बैठ चुके थे। कृष्णमुरारी ने उनके आराम के लिए दो तकिए सीट के पीछे लगा दिये थे और गाड़ी ले जाने को ही थे। मैंने डा० डमर से कहा "डाक्टर। यह बिना खयाल किये कि आप क्या खाना पंसद करेंगे मैंने गाड़ी में आप और आप की पत्नी के लिए दही और केला रखवा दिया है। दोपहर को यही लें-और रात को जब आप लौटेंगे तो आप लोगों का मनचाहा भोजन मिलेगा।'

'आप जैसा कह रहे हैं वैसे ही हो। पर आप कैसे कहते हैं कि आप हर्बलिस्ट नहीं है।'

'हर्ब तो अपनी जगह है। भगवान् बुद्ध आपकी रक्षा करें। आपकी यात्रा सकुशल हो।'

रात को डा० डमर देर से लौटे, मैं सो गया था, आकर डा० कृष्णमुरारी ने उनके भोजन और शयन की व्यवस्था की।

सुबह डा० डमर मिले तो मुस्कुराते हुए मिले। वे और उनकी पत्नी बिल्कुल ठीक थे।

मैं बराबर सोचता हूं कि हिन्दुस्तान में प्राकृतिक चिकित्सा बिना आयुर्वेद के चल नहीं सकती। कोई भी प्राकृतिक चिकित्सक आयुर्वेद के ज्ञान के बिना रोगी की चिकित्सा सफलतापूर्वक कर नहीं सकता और मैं आयुर्वेद के उस प्रकांड पंडित प्राकृतिक चिकित्सा के मर्मज्ञ के पथ में फूल माला लिए खड़ा हूं जो आयुर्वेद की पृष्ठभूमि पर प्राकृतिक चिकित्सा को प्रस्थापित करेगा।

शिशु स्वास्थ्य

कुक्कुर कास (Whooping Cough) or Pertussis

● **कविराज एस० एन० बोस**

डी० एस० सी० ए०, आयुर्वेद बृह

संज्ञा—यह एक दारुण तीव्र संक्रामक व्याधि है जिससे श्वासमार्ग की श्लेष्मधरा कला में वात कफोल्वण प्रदाह होता है और दौरे के रूप में खाँसी आती है। इस कास की विशेषता यह है कि श्वास ग्रहण काल में स्वरयन्त्र में आक्षेप के कारण एक विशिष्ट आवाज की सृष्टि होती है—जिसे कुक्कुर ध्वनि या whoop कहा जाता है। इस शब्दोत्पत्ति के कारण ही इसका नाम whooping Cough या कुक्कुर कास हुआ है। कभी-कभी विशिष्ट आवाज के बिना भी यह रोग दिखाई पड़ता है।

निदान—यह व्याधि नातिशीतोष्ण देशों में ही अधिक होती है। उष्ण देशों में यह व्याधि कम ही होती है—और होने से भी उतनी तीव्र नहीं होती है। शरद् व वसन्त ऋतु में यह व्याधि सर्वाधिक पायी जाती है। कभी-कभी यह रोग जनपद ध्वंसकारक रूप में भी प्रकट होता है। बड़े शहरों में तथा कल-कारखाने के पास वाली बस्तियों में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

जन्म से प्रथम पाँच वर्ष के भीतर इस रोग का प्रकोप विशेष रूप से होता है परन्तु इनमें से २ वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं में इसका आक्रमण प्रायशः घातक होता है। १० वर्ष की आयु के पश्चात् यह व्याधि कम होती है परन्तु पूर्ण वयस्कों में भी कभी-कभी कुक्कुर कास होना देखा जाता है। कभी-कभी ६० से ८० वर्ष के वृद्धों में भी यह रोग होता है। माता से गर्भस्थ भ्रूणों में तथा सद्योजात शिशुओं में भी संक्रमण हो सकता है। अधिकांश क्षेत्र में लड़कियों में यह व्याधि होती है और रोमान्तिका के पश्चात् कुक्कुर कास की उत्पत्ति प्रायशः दिखाई पड़ती है।

इस रोग से अन्य शिशुओं में संक्रमण रोग की प्राथमिक अवस्था अथवा दौरे के प्रारम्भिक काल में सबसे अधिक होता है। अतिविरल क्षेत्र में रोगी स्वस्थ होने पर कई महीनों तक रोगवाहक रह जाता है—ऐसा जाता है। खाँसी के समय कफ के छोटी-छोटी बूंदें आ जाती हैं—उन्हीं से रोग का प्रसार होता है। जीवाणु बाहर आने के बाद कई सप्ताह तक जीवित सकता है। साधारणतः प्रथम आक्रमण में ही रोगी आजीवन के लिए रोग प्रतिषेधिका शक्ति मिलजाती इस रोग के कारण रोग जीवाणु का Haemophor pertussis कहते हैं। यह रोग जीवाणु श्लेष्मक ज्व रोग जीवाणु के श्रेणी युक्त है और साधारणतः स्वर मे ही पनपता है। इस रोग में कोई विशेष मृ विकृति दिखाई नहीं पड़ती है। जो कुछ मिलती है उपसर्ग के कारण ही उत्पन्न होती है।

इस रोग में कास का जो दौरा होता है वह मार्ग की श्लेष्मधरा कला में उत्पन्न विवृद्ध चेतना तथा प्राणदा नाड़ी की उत्तेजितावस्था के कार होता है।

लक्षण—रोगोत्पत्ति काल-निर्देश करना कष्ट है—क्योंकि रोग का प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है भी १३ से १५ दिन का अनुमान सामान्यतः जाता है। कभी तीन दिन के भीतर और कभी महीने में भी रोग-लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस रो सब ही लक्षण परिस्फुट होने से तीन विभिन्न अव की उत्पत्ति होती है। प्रायशः प्रदाह, दौरा तथा नि वस्था—ये तीन अवस्थायें दिखाई पड़ती हैं।

प्रदाहावस्था—यह अवस्था ७ दिन से १५ दि रहती है। इस समय शिशु ज्वर व तीव्र सर्दी जु पीड़ित दिखाई पड़ता है। कास अत्यन्त कष्टदायक है। परन्तु श्वास-नलिका प्रदाह के चिह्न नहीं

इस अवस्था में अगर रोगी अन्य किसी कुक्कुर कास के रोगी के संसर्ग में आया है—इसका पता मिले तो रोग-निर्णय बड़ा ही सरल हो सकता है और यही प्रधान अवसर है—जबकि रोग का संक्रमण सबसे अधिक होता है। इस अवस्था के अन्त तक यह कास दौरे का रूप ले लेता है—और रात को अधिक होने लगता है। बच्चे का चेहरा खाँसते समय सूर्ख हो जाता है—और कभी-कभी डकारें आना या वमन होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं—तब ही इस रोग की आशंका होने लगती है। इस समय कफ की परीक्षा से रोगजीवाणु का निर्णय तथा श्वेताणु वृद्धि से रोग का निर्णय हो सकता है। दौरावस्था में इस रोग के निर्णय में भूल नहीं होती है। इस समय ज्वर नहीं रहता है। खाँसी आप ही आप दौरे के रूप में आने लगती है—परन्तु बाहरी उत्तेजना—जैसे क्रोध, वायु अथवा पानी का झोंका, भोजन अथवा गले की परीक्षा आदि से दौरे का प्रारम्भ अधिकतर होता रहता है। एक साथ अथवा कुछ देर में कई दौरे आ सकते हैं। रोगी को खाँसी आने का पता लग जाता है और वह उसे दबाने के लिए प्रयत्न करता है। लेटे हुए बच्चे उठ बैठते हैं अथवा निकट रहने से अपनी माता अथवा धात्री के पास दौड़ कर चला जाता है। सक्षिप्त किन्तु गहरे श्वास लेने के बाद ही एक के बाद एक—इस तरह से कास का वेग आता रहता है। रोगी मुंह खोलकर, जिह्वा बाहर निकालते हुए खाँसता रहता है—जबतक कि उसके फुप-फुस से करीब-करीब सारी वायु निकल नहीं जाती है। उस समय उसके चेहरे पर लालीपन अथवा श्यामाभा, त्वचा के नीचे की सिरायें रक्तपूर्ण तथा आंखों में आंसू भर आते हैं। अक्षिगोलक जैसे बाहर निकल आता है, शरीर पसीने से गीला हो जाता है एवं ऐसा मालूम होता है कि अभी-अभी घुंट रहा है। परन्तु अचानक इस अवस्था से मुक्ति मिल जाती है—स्वर यन्त्र के आक्षेप दूर होने के कारण उसमें शिथिलता आती है—और रोगी एक लम्बा श्वास लेता है—जिसके साथ पूर्वोक्त विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि (whoop) की उत्पत्ति होती है एवं फुसफुस वायु से भर जाता है। इसके बाद फिर से दौरा शुरू हो सकता है और कई दौरे एक साथ अथवा कुछ विलम्ब से आते हैं। शिशु इस समय पसीने से तर और थका हुआ जैसा हो जाता है। दौरे की समाप्ति के साथ साधारणतः श्वासमार्ग के अच्छ कफ की एक छोटी सी गोली जैसी निकल आती है। नाक तथा मुंह से (कभी-कभी कुछ रक्त रंजित) कफ का स्राव भी हो सकता है। साधारणतः एक दौरा २ या ३ मिनट में समाप्त होता है—परन्तु इसी के भीतर रोगी बेहोश हो सकता है अथवा उसका आक्षेप होने लगता है। कभी-कभी वमन से उसके आमाशय से सभी भुक्त पदार्थ निकल जाता है, मूत्र, कभी-कभी मल का भी निर्गम हो जाता है। तीव्र आक्रमण के क्षेत्र में नासिका से रक्त स्राव भी हो सकता है। नेत्र पटल के नीचे कभी-कभी रक्त स्राव हो सकता है। विरल क्षेत्र में कफ पटाह फट जाता है और वहां से रक्त निर्गम होने लगता है। अति शिशु में श्वासरोध भी कभी-कभी हो सकता है। दौरे की प्राथमिक अवस्था में कास कभी-कभी आती है परन्तु शीघ्र ही आक्रमण बार-बार होने लगता है और इस तरह से एक साधारण तीव्र शोर में २४ घंटे १५ से २० बार तक दौरे आ सकते हैं। किसी-किसी क्षेत्र में इससे भी अधिक होता है। रात्रि में दौरे अधिक और तीव्रतर वेग से आते हैं। इस समय रोगी परीक्षा में इतस्ततः प्रसारित श्वासनलिका प्रदाह के चिह्न ही मिलते हैं—परन्तु तरुण वायु कोष विस्तृति (Bronchiouctasis) के लक्षण भी मिल सकते हैं।

दौरे की अवस्था ३ से १० सप्ताह तक चल सकती है—इस समय के पश्चात् निरामावस्था का प्रारम्भ होता है। ग्रीष्मकाल की अपेक्षा शीतकाल में कुक्कुरकास दीर्घ अवधि तक चालू रहता है एवं उपसर्ग की उत्क्रान्ति होने पर रोग की अवधि बढ़ भी जाती है।

प्राथमिक अवस्था में ही श्वेताणु वृद्धि होती है एवं एक कोषीय श्वेताणु वृद्धि अनुपात से अधिक होती है। श्वेताणुओं की संख्या १५ से २५ हजार तक हो सकती है—जिसमें एक कोषीय श्वेताणु कण का अनुपात ५० से ७० प्रतिशत हो सकता है। (स्मरण रहे कि ६ महीने की उम्र में एक कोषीय श्वेताणु की संख्या ५७ प्रतिशत तथा २ वर्ष की आयु में ५३ प्रतिशत स्वभावतः ही रहता है)। श्वसनक ज्वर की उपस्थिति में बहुकोषीय श्वेताणुकण का अनुपात अधिक हो जाता है। रक्त की तलछट जमाव की गति कुक्कुरकास के दौरे की अवस्था में प्रायशः कम हो जाती है।

रोग प्रगति--रोगाक्रमण की तीव्रता तथा अवधि विभिन्न क्षेत्र में पृथक होती है। मृदु आक्रमण १.२ सप्ताह में भी समाप्त हो जाता है एवं उसमें विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि की उत्पत्ति न भी हो सकती है जब कि तीव्र आक्रमण कभी-कभी कई महीनों तक चालू रह सकता है। दौरे की संख्या से रोगाक्रमण की तीव्रता के सम्बन्ध में ज्ञान हो सकता है और उपसर्ग की उत्पत्ति से रोग की तीव्रता का अनुभव हो सकता है। वयस्कों में यद्यपि अन्यान्य लक्षण तीव्र रूप से प्रकट होते हैं —किन्तु विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि प्रायशः अनुपस्थित ही रहती है।

उपसर्ग—साधारण दौरे की अवस्था में ही उपसर्गों की उपस्थिति होती है। अत्यधिक वमन, फुस्फुसीय उपद्रव तथा आक्षेप ही तीव्र उपसर्गों में प्रधान है। दौरे की अवस्था में जब तीव्रतर रूप से शीघ्र-शीघ्र दौरे आते रहते हैं तो रोगी को वमन भी अधिकाधिक होता है। बच्चों में विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में अतिसार प्रायशः हो जाता है। फुस्फुसीय उपद्रवों में से श्वासनलिका प्रदाह के साथ तरूण फुस्फुसीय कोषविस्तार रहता है। इसके अतिरिक्त अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर तथा स्थानीय फुस्फुसावसाद की उत्पत्ति भी हो सकती है। साधारणतः दौरे की अवस्था की तीव्रता में ये उपद्रव होते हैं और तृतीयांश मृत्यु इन उपद्रवों से ही होती है। फुस्फुस गह्वर विदारण तथा श्वासनलिका प्रसार ही कभी-कभी कुक्कुर कास के उपसर्ग के रूप में उत्पन्न हो सकते हैं। कुक्कुर कास में बार-बार आक्षेप होना एक विपज्जनक उपसर्ग है—जो कि प्रायशः शिशु व बच्चों में दिखाई पड़ता है। मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव का दबाव बढ़ जाता है और उसमें एक केन्द्रीय कोषों की संख्या कीवृद्धि होती है। तीव्र कास के प्रभाव से हृस्धन्ड के दक्षिण भाग मे विस्तार होता है, नेत्र पटल के नीचे अथवा दृष्टि वितान में रक्तस्राव अथवा नासा, मुंह या नाक से रक्तस्राव, रक्तनिष्ठीवन आदि दिखाई पड़ सकता है। तीव्र कासवेग के कारण अन्त्रवृद्धि अथवा गुदभ्रंश की सृष्टि हो सकयी है। कभी-कभी खाक्षेप के अनन्तर विभिन्न रूप में पक्षघात अथवा मूर्च्छा की उत्पत्ति होती है।

रोगनिर्णय—रोगी-संसर्ग के इतिहास के बिना जब तक विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि की सृष्टि न हो तब तक रोग निर्णय दुःसाध्य होता है। परन्तु चिकित्सा से अनुपशमित एवं दौरे के रूप में आने बाला कास जो कि रात को तीव्रतर होता है और डकार व वमन से जिसकी समा होती है—उनमें कुक्कुर कास का सन्देह उत्पन्न कर है। कास की तीव्रता के अनुपात से श्वास मार्गिक चिह् की कमी विशेष रूप से लक्षणीय है। अणुखण्डीय श्वसन ज्वर की उपस्थिति में विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि बन्द जाती है, कभी-कभी शिशुओं में यह कास श्वास रोध होते हुए भी कुक्कुरध्वनि से युक्त नही ही होता है— ऐसे क्षेत्रों में प्रयोगशाला की सहायता से रोगनिर्णय सकता है।

श्वासनलिका ग्रंथिजनित वृद्धि जनित उत्तेजना त श्वासनलिकावरोध आदि बाहरी कारणों से दौरे के कास हो सकता है--परन्तु उसमें कुक्कुरध्वनि नहीं मिल है। श्लेष्म ज्वर तथा श्वासनलकिा प्रसार के लगात कास में भी इस प्रकार से ही रोग-निर्णय हो सकता है बच्चों में स्वरयन्त्र की प्रादाहिक उत्तेजना में दौरे के में कास तथा स्वरयन्त्र का आक्षेप उत्पन्न हो सकता है परन्तु खांसी की आवाज से उसकी पहिचान हो जा है। वैसे ही कुक्कुर कास प्रथमावस्था में यदि तीव्रस्वर यन्त्र प्रदाह से युक्त हो तो रोमान्तिका का स्वरय प्रदाह अथवा 'रोहिणी' का भ्रम उत्पन्न कर सकता है

कुक्कुर कास की प्रथमावस्था में पर्याप्ताणुवृद्धि के श्वे साथश्लेष्मक ज्वर के रोगजीवाणु के समान रोगजीवाणु की उपस्थिति, स्वाभाविक तलछट जमाव गति आदि से रो निर्णय सरल हो सकता है। शिशुओं में श्वेताणुवृद्धि विचार उसकी आयु के हिसाब से ही करना चाहिये।

यदि किसी रोगी में पहिले कुक्कुर कास होने का इतिह प्राप्त हो सके तब नवीन आक्रमण का सन्देह दूर हो है—क्योंकि अतिविरल क्षेत्र में ही कुक्कुर कास द्वितीय आक्रमण होता है।

साध्यासाध्यता—दरिद्रगृहस्थों में दुर्बल, अपुष्ट फक्करोग अथवा शीषरोग पीड़ित शिशुओं में कुक्कुर का का आक्रमण धनवान गृहस्थ के घर में पुष्ट तथा बलवा शिशुओं की अपेक्षा अधिकतर घातक होता है। ३ वर्ष कम आयु वाले शिशुओं में इस रोग से मृत्यु अधि होती है— जिससे प्रथम वर्ष के आयु वालों में २५ प्रति शत तक मृत्यु पायी जाती है। तीन वर्ष के बाद रोग के आक्रमण से मृत्यु क्रमशः कम होती जाती और १० वर्ष के वाद नाम मात्र ही रह जाती है।

काल में फुफ्फुसीय उपसर्ग से सबसे अधिक मृत्यु होती है। बार-बार आक्षेप होना विशिष्ट अरिष्ट लक्षण है। कभी-कभी दीर्घ अवधि तक स्वरयन्त्र का आक्षेप होते रहने पर श्वास रोध से अथवा हृदयावसाद से मृत्यु हो सकती है। पक्षाघात के सम्बन्ध में सोच विचार कर ही अपनी राय देनी चाहिये—क्योंकि कई क्षेत्रों में यह पक्षाघात स्थायी रूप से रह जाता है।

चिकित्सा—रोगी को प्रारम्भ से ही अलग कर विश्वस्त सेवकों के सुपुर्द कर देना चाहिये। रोगी के कमरे में खुली वायु, प्रचुर मात्रा में आ सके-इसका प्रबन्ध करना चाहिये। यदि ज्वर न रहे तो रोगी को उठ के बैठना अथवा अकेले खुली वायु में घुमने बैठने की अनुमति दी जा सकती है। आबहवा अच्छी रहने से शय्यागत रोगी को भी अधिक से अधिक समय खुली हवा में रखना लाभदायक प्रतीत होगा। विशेष रूप से अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में इस उपाय का अवलम्बन विशेष सहायक है। रोगी को हल्के ढीले कपड़े पहना कर रखना तथा खाँसी में सहारे के लिये उदर में पट्टी बांधकर रख देना अच्छा है। रोगी को सुपाच्य हल्का तरल भोजन देना चाहिये। शुष्क अथवा ठोस भोजन देने से कास का दौरा प्रायशः आरम्भ हो जाता है। दूध तथा मलाई इन रोगियों के लिये अच्छा है। वमन के क्षेत्र में रोगी को बार-बार अल्प-अल्प मात्रा में दौरा समाप्त होने के थोड़ी देर बाद भोजन देने से वह प्रायशः पच जाता हैं। आमाशय में भारीपन हो जाने से भी खांसी का दौरा पड़ सकता है। दूध फाड़ कर उसका जल तथा ग्लुकोज के साथ सन्तरे या मौसम्बी का रस बार-बार देने से उपचार होता है।

कुक्कुर ध्वनि के प्रारम्भ से लेकर पाँच सप्ताह तक एवं कुक्कुर ध्वनि तथा कास के दौरे की निवृत्ति से १५ दिन तक रोगी को पृथक रखना ही रोग संक्रमणाशंका दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है। कमरा तथा रोगी के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं का शोधन रोग-संक्रमण के निवारण में विशेष सहायक हो सकता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा:—आयुर्वेदीय मतानुसार इस व्याधि की वातजकास में ही गणना करनी चाहिए। परन्तु रोग की तीव्रता को देखते हुए इसे वातोल्वण या वातकफोल्वण सन्निपातज कास ही कहना अच्छा होगा। इसमें प्रधानतः रस तथा रक्त और गौणतः मांस धातु भी दूष्य है।

इस रोग की चिकित्सा में विशिष्ट योगों का उल्लेख किया जाता है जिसके प्रयोग से अनुभवी वैद्यलोगों का लाभ मिलने का संकेत मिला है।

(१) अर्कफूल और सेन्धानमक एक साथ अन्तर्धूम में भस्म बनाकर तीन से चार रत्ती की मात्रा में दिन में तीन या चार बार मिश्री के साथ चटाने से सात दिन में लाभ मिलता है।

(२) तरुणावस्था में कच्ची फिटकरी का चूर्ण १० तोला, सोमकल्प चूर्ण ५ तोला मिलाकर २ से ५ रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देने से लाभ होता है।

(३) कतीरे (विना काँटे के बब्बूल की छाल) के १ सेर क्वाथ में १ पाव पुराना गुड़ मिलाकर शरबत बना लें। ६ - ६ माशे की मात्रा में दिन में दो या तीन बार प्रयोग करने से १०।१५ दिन में रोग निरामय होता है।

(४) गाँवजवाँ ६ माशा आधा पाव पानी में रात को भिगो दें। प्रातः मसल-घुटकर २ तोला पानी मिश्री के साथ पीना चाहिए। एक बार में अथवा कई बार में इसको पिलाया जा सकता है।

अन्यान्य चिकित्सा वातज कास के अनुरूप है। शृंग्यादि चूर्ण (पंचलवणवाला), आवश्यक होने से उसके साथ नरसार मिलाकर, १ से २ माशा की मात्रा में गर्म पानी के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

रोग प्रगति--रोगाक्रमण की तीव्रता तथा अवधि विभिन्न क्षेत्र में पृथक होती है। मृदु आक्रमण १।२ सप्ताह में भी समाप्त हो जाता है एवं उसमें विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि की उत्पत्ति न भी हो सकती है जब कि तीव्र आक्रमण कभी-कभी कई महीनों तक चालू रह सकता है। दौरे की संख्या से रोगाक्रमण की तीव्रता के सम्बन्ध में ज्ञान हो सकता है और उपसर्ग की उत्पत्ति से -रोग की तीव्रता का अनुभव हो सकता है। वयस्कों में यद्यपि अन्यान्य लक्षण तीव्र रूप से प्रकट होते हैं—किन्तु विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि प्रायशः अनुपस्थित ही रहती है।

उपसर्ग—साधारण दौरे की अवस्था में ही उपसर्गों की उपस्थिति होती है। अत्यधिक वमन, फुस्फुसीय उपद्रव तथा आक्षेप ही तीव्र उपसर्गों में प्रधान है। दौरे की अवस्था में जब तीव्रतर रूप से शीघ्र-शीघ्र दौरे आते रहते हैं तो रोगी को वमन भी अधिकाधिक होता है। बच्चों में विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में अतिसार प्रायशः हो जाता है। फुस्फुसीय उपद्रवों में से श्वासनलिका प्रदाह के साथ तरूण फुस्फुसीय कोषविस्तार रहता है। इसके अतिरिक्त अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर तथा स्थानीय फुस्फुसावसाद की उत्पत्ति भी हो सकती है। साधारणतः दौरे की अवस्था की तीव्रता में ये उपद्रव होते हैं और तृतीयांश मृत्यु इन उपद्रवों से ही होती है। फुस्फुस गह्वर विदारण तथा श्वासनलिका प्रसार ही कभी-कभी कुक्कुर कास के उपसर्ग के रूप में उत्पन्न हो सकते हैं। कुक्कुर कास में बार-बार आक्षेप होना एक विपज्जनक उपसर्ग है—जो कि प्रायशः शिशु व बच्चों में दिखाई पड़ता है। मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव का दवाब बढ़ जाता है और उसमें एक केन्द्रीय कोषों की संख्या कीवृद्धि होती है। तीव्र कास के प्रभाव से हृस्धन्ड के दक्षिण भाग मे विस्तार होता है, नेत्र पटल के नीचे अथवा दृष्टि वितान में रक्तस्राव अथवा नासा, मुंह या नाक से रक्तस्राव, रक्तनिष्ठीवन आदि दिखाई पड़ सकता है। तीव्र कासवेग के कारण अन्त्रवृद्धि अथवा गुदभ्रंश की सृष्टि हो सकयी है। कभी-कभी आक्षेप के अनन्तर विभिन्न रूप में पक्षघात अथवा मूर्च्छा की उत्पत्ति होती है।

रोगनिर्णय—रोगी-संसर्ग के इतिहास के विना जब तक विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि की सृष्टि न हो तब तक रोग निर्णय दुःसाध्य होता है। परन्तु चिकित्सा से अनुपशमित एवं दौरे के रूप में आने वाला कास जो कि रात को तीव्रतर होता है और डकार व वमन से जिसकी समा होती है—उनमें कुक्कुर कास का सन्देह उत्पन्न क है। कास की तीव्रता के अनुपात से श्वास मार्गिक चि की कमी विशेष रूप से लक्षणीय है। अणुखण्डीय श्वसन ज्वर की उपस्थिति में विशिष्ट कुक्कुर ध्वनि बन्द जाती है, कभी-कभी शिशुओं में यह कास श्वास रोक होते हुए भी कुक्कुरध्वनि से युक्त नही ही होता है— ऐसे क्षेत्रों में प्रयोगशाला की सहायता से रोगनिर्णय सकता है।

श्वासनलिका ग्रंथिजनित वृद्धि जनित उत्तेजना त श्वासनलिकावरोध आदि बाहरी कारणों से दौरे के रू कास हो सकता है--परन्तु उसमें कुक्कुरध्वनि नहीं मिल है। श्लेष्म ज्वर तथा श्वासनलकिा प्रसार के लगातार कास में भी इस प्रकार से ही रोग-निर्णय हो सकता है बच्चों में स्वरयन्त्र की प्रादाहिक उत्तेजना में दौरे के रू में कास तथा स्वरयन्त्र का आक्षेप उत्पन्न हो सकता है परन्तु खांसी की आवाज से उसकी पहिचान हो जाती है। वैसे ही कुक्कुर कास प्रथमावस्था में यदि तीव्रस्वर यन्त्र प्रदाह से युक्त हो तो रोमान्तिका का स्वरय प्रदाह अथवा 'रोहिणी' का भ्रम उत्पन्न कर सकता है।

कुक्कुर कास की प्रथमावस्था में पर्याप्ताणुवृद्धि के श्वे साथश्लेष्मक ज्वर के रोगजीवाणु के समान रोगजीवाणु की उपस्थिति, स्वाभाविक तलछट जमाव गति आदि से रो निर्णय सरल हो सकता है। शिशुओं में श्वेताणुवृद्धि क विचार उसकी आयु के हिसाब से ही करना चाहिये।

यदि किसी रोगी में पहिले कुक्कुर कास होने का इतिहा प्राप्त हो सके तब नवीन आक्रमण का सन्देह दूर होत है—क्योंकि अतिविरल क्षेत्र में ही कुक्कुर कास द्वितीय आक्रमण होता है।

साध्यासाध्यता—दरिद्रगृहस्थों में दुर्बल, अपुष्ट फक्करोग अथवा शीषरोग पीड़ित शिशुओं में कुक्कुर का का आक्रमण धनवान गृहस्थ के घर में पुष्ट तथा बलवान शिशुओं की अपेक्षा अधिकतर घातक होता है। ३ वर्ष कम आयु वाले शिशुओं में इस रोग से मृत्यु अधि होती है— जिससे प्रथम वर्ष के आयु वालों में २५ प्रति शत तक मृत्यु पायी जाती है। तीन वर्ष के बाद रोग के आक्रमण से मृत्यु क्रमशः कम होती जाती और १० वर्ष के वाद नाम मात्र ही रह जाती है।

काल में फुस्फुसीय उपसर्ग से सबसे अधिक मृत्यु होती है। बार-बार आक्षेप होना विशिष्ट अरिष्ट लक्षण है। कभी-कभी दीर्घ अवधि तक स्वरयन्त्र का आक्षेप होते रहने पर श्वास रोध से अथवा हृदयावसाद से मृत्यु हो सकती है। पक्षाघात के सम्बन्ध में सोच विचार कर ही अपनी राय देनी चाहिये—क्योंकि कई क्षेत्रों में यह पक्षाघात स्थायी रूप से रह जाता है।

चिकित्सा—रोगी को प्रारम्भ से ही अलग कर विश्वस्त सेवकों के सुपुर्द कर देना चाहिये। रोगी के कमरे में खुली वायु, प्रचुर मात्रा में आ सके-इसका प्रबन्ध करना चाहिये। यदि ज्वर न रहे तो रोगी को उठ के बैठना अथवा अकेले खुली वायु में घुमने बैठने की अनुमति दी जा सकती है। आवहवा अच्छी रहने से शय्यागत रोगी को भी अधिक से अधिक समय खुली हवा में रखना लाभदायक प्रतीत होगा। विशेष रूप से अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में इस उपाय का अवलम्बन विशेष सहायक है। रोगी को हल्के ढीले कपड़े पहना कर रखना तथा खाँसी में सहारे के लिये उदर में पट्टी बांधकर रख देना अच्छा है। रोगी को सुपाच्य हल्का तरल भोजन देना चाहिये। शुष्क अथवा ठोस भोजन देने से कास का दौरा प्रायशः आरम्भ हो जाता है। दूध तथा मलाई इन रोगियों के लिये अच्छा है। वमन के क्षेत्र में रोगी को बार-बार अल्प-अल्प मात्रा में दौरा समाप्त होने के थोड़ी देर बाद भोजन देने से वह प्रायशः पच जाता हैं। आमाशय में भारीपन हो जाने से भी खांसी का दौरा पड़ सकता है। दूध फाड़ कर उसका जल तथा ग्लुकोज के साथ सन्तरे या मौसम्वी का रस बार-बार देने से उपचार होता है।

कुक्कुर ध्वनि के प्रारम्भ से लेकर पाँच सप्ताह तक एवं कुक्कुर ध्वनि तथा कास के दौरे की निवृत्ति से १५ दिन तक रोगी को पृथक रखना ही रोग संक्रमणाशंका दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है। कमरे तथा रोगी के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं का शोधन रोग-संक्रमण के निवारण में विशेष सहायक हो सकता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा:—आयुर्वेदीय मतानुसार इस व्याधि की वातजकास में ही गणना करनी चाहिए। परन्तु रोग की तीव्रता को देखते हुए इसे वातोल्वण या वातकफोल्वण सन्निपातज कास ही कहना अच्छा होगा। इसमें प्रधानतः रस तथा रक्त और गौणतः मांस धातु भी दूष्य है।

इस रोग की चिकित्सा में विशिष्ट योगों का उल्लेख किया जाता है जिसके प्रयोग से अनुभवी वैद्यलोगों का लाभ मिलने का संकेत मिला है।

(१) अर्कफूल और सेन्धानमक एक साथ अन्तर्धूम में भस्म बनाकर तीन से चार रत्ती की मात्रा में दिन में तीन या चार बार मिश्री के साथ चटाने से सात दिन में लाभ मिलता है।

(२) तरुणावस्था में कच्ची फिटकरी का चूर्ण १० तोला, सोमकल्प चूर्ण ५ तोला मिलाकर २ से ५ रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देने से लाभ होता है।

(३) कतीरे (विना काँटे के बब्बूल की छाल) के १ सेर क्वाथ में १ पाव पुराना गुड़ मिलाकर शरबत बना लें। ६ - ६ माशे की मात्रा में दिन में दो या तीन बार प्रयोग करने से १०।१५ दिन में रोग निरामय होता है।

(४) गाँवजवाँ ६ माशा आधा पाव पानी में रात को भिगो दें। प्रातः मसल-घुटकर २ तोला पानी मिश्री के साथ पीना चाहिए। एक बार में अथवा कई बार में इसको पिलाया जा सकता है।

अन्यान्य चिकित्सा वातज कास के अनुरूप है। शृंग्यादि चूर्ण (पंचलवणवाला), आवश्यक होने से उसके साथ नरसार मिलाकर, १ से २ माशा की मात्रा में गर्म पानी के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त श्वासरोगाधिकारोक्त पिप्पल्यादि लौह, श्वास कासचिन्तामणि, कनकासव आदि आयु के अनुसार उपयुक्त मात्रा में प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। कासरोगाधिकारोक्त वृःशशिप्रभावटी (अहिफेन घटित) आयु के अनुसार यथोपयुक्त मात्रा में आवश्यकतानुसार १ या २ बार, विशेषतः सायंकाल प्रयोग करने से रोगी को रात्रिकाल में शान्ति मिलती है, उपसर्गों की चिकित्सा तदनुरूप करनी चाहिए।

स्वानुभूत चिकित्सा:—ग्वालियर आयुर्वेद कालेज में अनुसंधान करते समय श्वास रोग में जब घृतभृष्ट हरिद्रा का प्रयोग किया जाता था—तब इस वातज कास में भी घृतभृष्ट हरिद्रा प्रयोग की प्रेरणा मिली। घृतभृष्ट हरिद्रा १ ग्राम की मात्रा में छोटे-छोटे केपसुल में भरकर अथवा जहां शिशु केपसुल निगलने में असमर्थ हो वहाँ मातृदुग्ध अथवा शहद के साथ मिलाकर चटाने के लिए दिया जाता था। दिन में आयु के अनुसार ३ या ४ ग्राम प्रयोग किया जाता था। इसका फल बड़ा ही उत्साहप्रद था। ३।४ दिन में रोगी का वमन बन्द हो जाता था और ७ दिन में कास का दौरा भी काफी कम हो जाता था। १० दिन में इस औषधि से पूर्ण निरामय होता था। ५०।६० रोगियों में इसके प्रयोग का अवसर मिला था। इस औषधि का और अधिक प्रयोग होने से इसकी गुणकारिता के सम्बन्ध में अधिकतर विश्वस्त होना सम्भव है।

बैद्यनाथ
अशोकारिष्ट

स्त्रियों के स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं
सुखी जीवन के लिए

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना
श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

श्वेतप्रदर की चिकित्सा

★ श्री इन्द्रमोहन झा "सच्चन"
आयुर्वेदाचार्य, साहित्यालंकार

स्त्रियों को होने वाला यह एक रोग है, जो आजकल अत्यन्त भयंकरता से नारियों में दृष्टिगोचर होता है। जैसे पुरुषों को धातुक्षीणता का रोग होता है। उसी प्रकार यह भी स्त्रियों को होते देखा गया है।

डा० नीलमणि घटक ने लिखा है कि 'श्वेत-प्रदर' भी एक प्रकार की सर्दी ही है। जिस प्रकार फुसफुस से स्राव होने पर उसे कफ कहते हैं, नाक के श्लेष्मिक झिल्ली से स्राव होने पर सर्दी का स्राव कहलाता है, उसी प्रकार गर्भाशय के स्राव को श्वेत प्रदर कहते हैं।

Henry Jellett ने लिखा है—

Lecorrhoea is the term applied to discharge of a non-sanguineous character coming from the genital tract.

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नारी की जनेन्द्रियों से निकलने वाला रक्तरहित श्वेत स्राव ही श्वेत-प्रदर कहलाता है।

लक्षण

श्वेतप्रदर के प्रारम्भ होते ही रोगिणी में नीचे लिखे लक्षण प्रकट हो जाते हैं। यथा योनि से पतला, सफेद, पीला, गुलाबी, लसीला, फेनदार तथा बदबूदार कई रंग का स्राव होता है। स्राव का परिणाम कभी कम रहता है और कभी इतना बढ़ जाता है कि नीचे पहने जाने वाले वस्त्र जैसे अण्डर वियर, पेटीकोट आदि भींग जाते हैं। इतना ही नहीं अधिक स्राव होने से पेडू पर भार पैदा हो जाता है, सिर में चक्कर आने लगता है। शरीर और हाथ-पैर में दर्द तथा ऐंठन होने लगती है। कमजोरी होती है, शरीर पीला हो जाता और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। अतः इस रोग के होते ही गर्भिणी की चिकित्सा करवाना चाहिये अन्यथा यही रोग प्राणघातक हो जाता है। यथा—

> आसृगदरो प्राणहरः प्रदिष्टः,
> स्रोणमितस्तं विनिवार मेश्य ॥

अर्थात् सब तरह के प्रदर रोग प्राणनाशक हैं। इसलिये इसको शीघ्र ही दूर करना चाहिए।

कारण

इस रोग की उत्पत्ति का मुख्य कारण होम्योपैथिक दृष्टि से साइकोसिस दोष के अन्तर्गत है। माता-पिता के द्वारा या स्वोपार्जित साइकोसिस दोष का होना इसका प्रधान कारण है। किन्तु महर्षि चरक के मतानुसार गुरु, विदाही, अम्ल, भोजन तथा मद्य सेवन से प्रदर रोग की उत्पत्ति होती है।

शूक्र, मुस्त, सुरा आदि सेवन करने वाली स्त्री का वायु कुपित होकर गर्भाशयगत शिराओं तथा रजोवाहिनी में आश्रित होकर रक्त के परिणाम को बढ़ाकर तथा रज का भी उस स्राव से पतला करके बढ़ाकर स्राव कराता है। इस प्रकार की सम्प्राप्ति से रक्त-प्रदर तथा श्वेत-प्रदर दोनों हो जाता है तथा यह भी सिद्ध हो जाता है कि श्वेत-प्रदर में स्त्रियों का रज (श्वेतसान्द्र स्राव) ही पतला होकर बहता है।

आधुनिक विद्वान भी भोजन तथा मद्य सेवन को प्रदर का कारण मानते हैं यथा—

'Over indulgence in food and alcohalic drinks.' (Bland—Suttan and Gibs)

उपरोक्त कारणों के अलावा प्रदर होने के नीचे लिखे भी कारण हैं—

(१) यौनांगों के विकारों के कारण प्रदर होता है। जैसे—गर्भाशय ग्रीवा अथवा गर्भाशय मुख की सूजन होने की दशा में, गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने के कारण। डिम्ब नलिकाओं के शोथ की स्थिति में, डिम्ब ग्रंथियों में सूजन आ जाने पर अथवा इन स्थानों पर कोई भी फोड़ा होने या मवाद पड़ जाने पर, इन सभी हालतों में प्रदर होता है।

(२) गुप्तांगों की सफाई न रखने के कारण प्रदर होता है जैसे—कई बार जब यौनांगों की सफाई नहीं की जाती है तो वहां पर मैल जमा हो जाता है और वह प्रदर-स्राव को उत्पन्न करने में योगदान देता है।

(३) सम्भोग से उत्पन्न व्याधियों के कारण प्रदर होता है जैसे—जब महिलाओं को सम्भोग से लाने वाली व्याधि-सिफलिस हो जाती है तो प्रदर-स्राव होते देखा गया है।

(४) दूसरे विकारों के कारण प्रदर होता है। जैसे जिगर, गुर्दे, आंतों और फेफड़ों के पुराने रोगों में भी प्रदर-स्राव होता है।

आयुर्बेद चिकित्सा

(१) गुड़मार १ सेर, गुलाब के फूल १ सेर, निम्ब की ताड़ी एक घड़ा तथा ताड़ की ताड़ी एक घड़ा। ताड़ी ताजा हो उसमें ताड़ के गुड़ १। सेर डालकर गुड़मार, गुलाब को डालकर मुंह बन्द करके छोड़ दें। १५ दिनों के बाद बबूल के पत्ते, बेर के पत्ते और घाय के पत्ते पाव-पाव भर डालकर पुनः १५ दिन संधान करे। एक मास के बाद छानकर बोतल में भर लें भोजन के बाद २॥०-२॥० तोला दें तो सभी प्रकार का प्रदर नष्ट हो जाता है।

(२) दारुहरिद्रा, रसौत, बाँसा, मुस्तक, चिरायता विल्वत्वक, शुद्ध भल्लातक यव सब समान भाग लेकर क्वाथ बना ले। इस क्वाथ के सेवन से मूल सहित, श्वेत, लाल, रक्त नील प्रदर को नाश करता है जैसा कि भैषज्य रत्नावली में लिखा है—

दार्वी रसाञ्जन वृषाब्द किरात विल्व,
भल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः।
पीतोजयात्यत्ति बलं प्रदरं सशूलम्।
पीतोसितारुण विलोहित नील शुक्लम्॥

(३) श्वेताज्जन १ माशा, नागकेशर १ माशा, गन्ध सफेद १ माशा, लोध १ माशा, मिश्री २ भाग—इन सब को चूर्ण कर ३ माशे की मात्रा से दूध के साथ देने से श्वेत-प्रदर में लाभ करता है। साथ ही साथ फिटकिरी या त्रिफला से योनि साफ कर लेना चाहिये।

(४) प्रदरांतक कैपसूल—सुबह - शाम १-१ कैपसूल सेवन करने से सफेद, लाल, नीला, पीला, हरा कैसा भी प्रदर के लिए रामवाण है।

बनाने की विधि

अभ्रक भस्म शतपुटी, गोखरु, सोंठ, स्वर्ण माक्षिक भस्म, आम की गुठली, अर्जुन की छाल, सेमल मुसली, पुनर्नवा, सिंघाडा, सफेद मुसली, नागकेशर, नागरमोथा, त्रिफला।

इन सबके वस्त्रपूत चूर्ण में अशोक छाल तथा गिलोय की क्वाथ की ३ भावना देकर २-२ रत्ती की मात्रा में लेकर खाली केपसूल में भर ले।

(५) अशोक की छाल-काकजंघा, पठानी लोध, चिकनी सुपारी प्रत्येक १-१ छटाक, बड़ी इलायची के दाने, माजूफल २॥-२॥ तोला इन सबको कुटपीस छान-कर रख लें।

मात्रा—३-३ माशा गो दुग्ध के साथ प्रातः सायं दें। यह सभी प्रकार के प्रदर के लिए आशुगुणकारी दवा है।

(६) शातावर १ पठानीलोध, समुद्र शोषविधारा ५-५ तोला मिश्री २० तोला—इन सब को चूर्णं बना लें। इसके सेवन से श्वेत एवं रक्त-प्रदर दोनों में फायदा करता है। मात्रा ६ माशा प्रातः सायं दूध के साथ।

(७) श्वेत प्रदरान्तक चूर्ण भी श्वेत-प्रदर और उसके कटिशूल हाथ-पैरों की जलन, सिरदर्द आदि में विश्वसनीय दवाएं हैं।

(८) प्रदरारिलौह (र० यो०) सभी प्रकार के प्रदर-रोग तथा कटिशूल में लाभदायक है। १-२ गोली प्रातः समय अशोक छाल के क्वाथ या कुशमूल स्वरस के साथ सेवन करना चाहिये।

(९) प्रदरान्तक रस—इससे भी प्रदर रोग और उससे कई सारी शिकायतें समाप्त होती हैं।

(१०) पुष्यानुगचूर्ण (च० सं०) यह चूर्ण रक्त प्रदर के अलावा सभी प्रकार के श्वेत नीलरजोविकारयोनिदोष का शमन करता है।

बनाने की विधि

(१) पाढ़ा २ भाग तथा जामुन की गुठली, आम की गुठली की गिरिपाषण भेदरसाजान, मोचरस, मजीठ कुड़ा की छाल, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध गरू, कायफल मिर्च, छोटा मुनक्का रक्तचंदन, अरलू (श्योनाक), छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल धातकी पुष्प, मधुयष्टि, अर्जुनत्वक ये सब समभाग लेकर चूर्ण बनालें।

मात्राः—१॥ से ३ माशा प्रातः-सायं शहद या चावल धोवन के साथ।

ऊपर वर्णित प्रायः सभी योग हमारे परीक्षितहैं। रोगी के बलाबल देशकाल आदि का विचार कर जिस योग को बर्ताव में ला सकें उसी से लाभ उठावें।

बैद्यनाथ गैसान्तक बटी

पेट में वायु (गैस) भर जाने पर इस दवा की दो-एक गोली खाते ही आराम मिलता है।

हृदय के प्रति हमारा दायित्व

डा० रामशरण मिश्र, बी० ए० (आनर्स)
ए० एम० आई० एच०, वैद्यविश

हृदय हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके समुचित संचालन पर ही हमारा जीवन सम्भव है। यदि हमारा हृदय कार्य करना ब्रन्द कर दे तो हमारे शरीर का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। यह रात-दिन अविरल गति से कार्य-रत रहता है। इसलिए इसे 'जीवन इंजन' की भी संज्ञा दी गई है। यह रक्त का पंपिग केन्द्र है और यहाँ से ही सम्पूर्ण शरीर को रक्त प्रेषित होता रहता है। यदि किसीकारणवश इस केन्द्र द्वारा रक्त परिभ्रमण में कुछ रूकावट उत्पन्न हो जाती है तो हम अनुमान लगा लेते हैं कि हृदय की क्रिया में कुछ गड़बड़ी अवश्य उत्पन्न हो गई है।

आज हम वैज्ञानिक प्रगति से जितने ही अधिक सुखी-सम्पन्न हुए हैं, मशीनीकरण की अधिकता से उतनी ही हमारे शरीर को क्षति पहुँची है। वर्तमान समय में विश्व के समस्त देशों में अन्य रोगों की अपेक्षा हृदय-रोग अधिक समस्या बना हुआ है। आए दिन सुनने में आता है कि अमुक सज्जन समाचार-पत्र पढ़ रहे थे कि हृदय गति बन्द हो गई और चल बसे। गुसलखाने में स्नान करने घुसे और घंटों प्रतीक्षा के बाद दरवाजा खोलने पर हृदय-व्याघात के कारण मृत पाए गए। इस प्रकार की बीमारी आज बुद्धिजीवी समाज में तो निरन्तर बढ़ती जा रही है।

सर्वेक्षण के आंकड़ों से ज्ञात हुआ है कि ५० प्रतिशत मृत्यु हृदय रोगों के कारण होती है। देश के कुल हृदय रोगियों में ११ से २० प्रतिशत रोगी (कारोनरी), ११ से २० प्रतिशत उच्च रक्त-चाप (हाइपरटेन्शन), २२ से ४० प्रतिशत संधिवातीय (रिमेंटिक), १३ से १८ प्रतिशत हृदय के दाहिने मिलय (वेंट्रीकल) के बढ़ने या विकृत होने से तथा १ से २ प्रतिशत लोग वंशानुगत हृदय रोग से पीड़ित रहते हैं। एक नए अध्ययन से पता चला है कि रक्तवाहिनियों के रोगों से मृत्यु दर में २२० प्रति वृद्धि हुई है।

हृदय रोग के विषय में ज्ञातव्य नव उपलब्धियाँ

वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि आच विचार, खान पान में अनियमितता, असंतुलन आदि से हृदय रोगों का प्रसार तीव्र गति से होता है। व्या की कमी, अत्यधिक धूम्रपान, मानसिक चिन्ता विकार, रक्त, वसा आदि का जमाव इन रोगों उत्पत्ति के मुख्य हेतु हैं। जो आहार हम ग्रहण करते उनका शरीर के पोषण में विशेष हाथ होता है। सा न्यत: सुशिक्षित लोगों को भी अपने आहार को संतुलि बनाने का अल्प ही ज्ञान होता है। यदि हम चर्बी पदार्थों (Fats) का अत्यधिक सेवन करते हैं तो इ हमारे हृदय की दीवारों पर अवरोध होने की अधि सम्भावना रहती है। प्राय: अत्यधिक वनस्पति (डालडा) का प्रयोग भी हृदय के लिए हानिकर बता गया है। इसके स्थान पर सफोला का प्रयोग हित वताया गया है।

रूस की चिकित्सा-विज्ञान की डाइटेटिक्स संस्था वैस्कुलर रोग की डाइटेटिक्स ढंग से पता लगाने विशेष ध्यान दिया जा रहा है। हृदय की बीमारियों सबसे अधिक व्यापक धमनीकाठिन्य (Artheriscleros है, जिसका सम्बन्ध चर्बीले पदार्थों के उपायचन में गं गड़बड़ी उत्पन्न हो जाने से है। इसमें धमनियों की दीवारें चर्बीले पदार्थों के जमाव से मोटी और खुर हो जाती है। इस प्रकार धमनियों का अंतः मार्ग सं हो जाता है जिससे रक्त के बहाव में अवरोध लगता है।

इस रोग के अधिक व्यापक होने के कारणों का प लगाने के लिए उच्च पैमाने पर भी एक विश्लेषण प्र

पादित किया गया जिससे यह निष्कर्ष निकला कि यह रोग अधिकांश लोगों के खाद्य पदार्थों से संबंधित है। आहार में अत्यधिक कैलोरी की मात्रा विद्यमान होने से इस रोग की व्यापकता की अधिक सम्भावना होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि प्रायः स्थूलकाय (मोटे) लोग ही इस रोग से अधिक पीड़ित होते हैं। स्थूलता के कारण बढ़ी हुई वसा हृदय के कार्य में रुकावट उत्पन्न करती है।

केवल स्थूलता को ही इस रोग का कारण मानना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। वास्तव में परिमंडल वाहिकाओं में कोलस्टरल प्लेट (तह) जमा हो जाती है जो कि उपाचयन के अन्तर्जनित विघटन का मुख्य हेतु है। वैसे तो प्रायः कोलस्टरल की प्रवृत्ति आनुवंशिक होती है, फिर भी कार्य न करना, शारीरिक व्यायाम की कमी, आलस्यपूर्ण जीवन बिताना, अपरिमित आहार का ग्रहण करना तथा अत्यधिक सिगरेट आदि का धूम्रपान करना इसकी वृद्धि में सहायक होते हैं।

अपरिमित आहार से हृदय का ह्रासः—रूसी अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि अनुमानित मात्रा से अधिक आहार का ग्रहण हृदय रोगों की उत्पत्ति के मुख्य अंग हैं। सेथिरोक्लेरोसिस (धमनी काठिन्य) रोग से पीड़ित लोगों का सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ कि ये लोग दिन में ४ से ६ बार तक भोजन किया करते थे। जिस समय हमारा हृदय रक्तवाही नाड़ियों द्वारा वृहत शरीर में रक्त-संचालन कर रहा होता है उस समय द्रवगति विज्ञान के अनुसार उसकी संख्या ४० से १०० प्र० तक बढ़ जाती है। प्रायः स्थूल शरीर वाले शारीरिक श्रम में भी कम रूचि लेते हैं जिससे उनके हृदय की तथा शरीर की अन्य पेशियां कार्य से अछूती रह जाती हैं। ऐसे लोगों को सांस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। इसका कारण है कि बढ़ी हुई वसा मध्यच्छद (Diaphargam) पर दबाव डालने लगती है। इस मध्यच्छद को कतिपय शरीर-शास्त्री 'तृतीय हृदय' भी कहते हैं।

एक आलसी व्यक्ति में जो कि हानिकारक पदार्थों का भी सेवन करने में तनिक भी संकोच नहीं करता, हमेशा आक्सीजन की कमी बनी रहती है। इस प्रकार उसकी इस क्रिया में, जिसके द्वारा भोजन जीवित पदार्थों में परिवर्तित होकर शरीर को समुचित पोषण प्रदान करता है विकार उत्पन्न हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप लोग काम करते समय अल्प श्रम से ही थकान अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार अपरिमित आहार ग्रहण करने से हृदय को लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना अधिक रहती है।

हृदय का कार्य सिद्धांत :—हमारा हृदय सर्वभक्षी है। यह प्रोटीन, वसा और कार्बोज से संचित ऊर्जा को परिवर्तित करते हुए ग्रहण करता है जो कि जल जाने पर ऊर्जा की उच्च मात्रा छोड़ देता है। यह ऊर्जा पेशीय संकोच पर अपना विशेष प्रभाव डालती है।

यह तो सर्वविदित ही है कि हमारे हृदय में दो क्रियाएं—आकुंचन (Systole) और प्रसारण (Diastole) हुआ करती हैं। आकुंचन के समय सम्पूर्ण शरीर में रक्त प्रवाहित होता है। इस क्रिया में ०-३ सेकंड का समय लगता है इसी प्रकार विस्तार की स्थिति में ०-४ सेकण्ड का समय व्यतीत होता है।

यदि कोई व्यक्ति जिसे अधिक चलने की आदत नहीं है, तीव्रतापूर्वक २०० मीटर तक चलता है तो उसके हृदय का संकोचन १२० तक बढ़ जाता है तथा प्रसारण की गति आधी हो जाती है। इसके अतिरिक्त हृदय और कोलस्टेरल वेसल का नाड़ी-मंडल बिना अभ्यास के पूर्ण विकसित नहीं रहता। इस प्रकार हृदय में तीव्र रक्त-संवहन जो कि चार गुना तक बढ़ चुका होता है, अपने स्तर तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप हृदय की पेशियों तथा सम्पूर्ण मांस-पेशियों में आक्सीजन की कमी हो जाती है। किन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति नियमित रूप से व्यायाम करते हैं उनका शरीर तथा हृदय तेजी से चलते समय भी आवश्यकता से अधिक रक्त प्राप्त करता है। उनका हृदय-स्पन्दन भी नहीं बढ़ता तथा परिमंडल वाहिकाओं (Coronary-Vessels) के रक्त से परिपूर्ण रहने पर भी हृदय का प्रसारण हमेशा ०-४ सेकेण्ड पर ही बना रहता है।

पुष्ट हृदय के लिए व्यायाम की उपयोगिताः—वर्तमान समय में हृदय के रोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेकों कदम उठाये जा रहे हैं। बहुत पहले से ही लोगों की धारणा रही है कि हृदय रूपी 'जीवन-इंजन' को ठीक अवस्था में चलाने के लिए शारीरिक व्यायाम की नितांत आवश्यकता है। इन दृष्टिकोणों की प्रति-

क्रियास्वरूप लोगों को पर्याप्त लाभ भी प्राप्त हुआ है। कुछ हृदय विशेषज्ञों ने तो शारीरिक व्यायाम को हृदय का स्तम्भ ही मान लिया है। इस प्रकार हृदय रोगियों से सिफारिश की जाती है कि हृदय रोगों से बचने के लिए दौड़ लगाएं। किन्तु हमें इस बात पर विचार करना है कि यदि ये रोगी दौड़ लगाकर सुरक्षा प्राप्त करना चाहें तो इसका परिणाम क्या होगा?

वस्तुत: दौड़ने के लिए प्रोत्साहित करने का मुख्य उद्देश्य लोगों का ध्यान दैनिक व्यायाम की ओर आकर्षित करने से ही है। प्राय: व्यायाम का हृदय की पेशियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। हृदय रोग की रोक-थाम करना अत्यन्त शीघ्रता का विषय है। चिकित्सा के आंकड़ों द्वारा ज्ञात हुआ है कि ४० वर्ष की आयु के १० में से १ व्यक्ति हृदय व्याघात के खतरे में है। यहाँ औषधियाँ कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचातीं। हृदय के विशेषज्ञों का कहना है कि इसके लिए जो औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं वे लाक्षणिक मात्र ही हैं। पाश्चात्य प्रणाली में प्रयुक्त की जाने वाली वैलीडोल, नाइट्राग्लाशिरिन, इंटेनक्वाइन प्रभृति औषधियाँ केवल परिमंडल वाहिकाओं (Coronary Vessel) को थोड़ा बहुत लाभ पहुँचाने के सिवा कुछ विशेष लाभ नहीं करतीं। अभी तक सेथिरोखलेरोसिस की कोई विशेष प्रभावशाली चिकित्सा नहीं खोजी जा सकी है।

हृदय को पुष्ट बनाए रखने की जिम्मेदारी व्यक्ति विशेष पर ही होती है। जो व्यक्ति नियमित रूप से प्रतिदिन व्यायाम करते हैं उनके हृदय की पेशियाँ उत्तम क़िस्म के रबर की भाँति लचीली होती हैं। इसी प्रकार आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले के हृदय की पेशियाँ जीर्ण एवं शुष्क रबर की भाँति हो जाती हैं जिनका अधिकांश लचीलापन का तत्व समाप्त हो गया होता है।

वर्तमान समय में औद्योगीकरण आदि के प्रभाव से मनुष्य अपने नाड़ी मण्डल (Nerves) के बल पर ही जीवित रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बड़े-नगरों में आज मनुष्य को मशीनी जीवन बिताना पड़ता है जिससे उसका नाड़ी-मण्डल भी विकृत हो जाता है। इस प्रकार की घुलनशील जिंदगी में खेल-कूद, घूमने फिरने एवं साइकिल आदि चलाने से हमारे मस्तिष्क को ताजगी प्राप्त हो जाती है तथा उसे विश्राम का भी अवसर मिल जाता है। इस प्रकार के आयोजन द्वारा समस्त प्रकार की नाड़ी-उत्तेजना शांत हो जाती है।

इस प्रसंग में हमें इस बात की भी जानकारी प्राप्त करनी है कि हम व्यायाम का आयोजन किस प्रकार करें। सर्व प्रथम हमें यह नियम बना लेना चाहिए कि हम प्रतिदिन सुबह उठकर कुछ न कुछ भार उठाने का कार्य अवश्य करें। उत्थापक कार्य करने से हृदय एवं पैरों को पर्याप्त बल प्राप्त होता है। हम जो व्यायाम करें, उसके प्रति नियमित हों। क्योंकि व्यायाम में किसी भी प्रकार की अनियमितता से लाभ की कम किन्तु हानि की अधिक संभावना रहती है।

हमारा हृदय जो कि मांसपेशियों का एक छोटा-सा गुच्छा है, सम्पूर्ण जीवन काल में १६०,०००,०० किलोग्राम रक्त का संवहन करता है। यह कार्य तभी पूर्ण हो सकता है जबकि हमारा हृदय पूर्ण स्वस्थ हो। अतः सारांश में हम कहेंगे कि हृदय को स्वस्थ एवं कार्यशील बनाए रखने का हमारा दायित्व है कि—

१. मुख्य वाहिकाओं में चर्बी जमा होने के कारण हृदयघात की सम्भावना से बचने के लिए शरीर के वजन को सामान्य रखें।
२. धूम्रपान का सर्वथा त्याग कर दें।
३. रक्तचाप बढ़ने की स्थिति में 'सर्पगंधा' से निर्मित औषधियों का उपयोग करें तथा भोजन में नमक, वसा, अनाज में कमी करके फलों की मात्रा बढ़ाएं।
४. वनस्पति घी का उपयोग कम करके 'सफोला' का प्रयोग करें।
५. हृदय को पुष्ट बनाए रखने के लिए नियमित व्यायाम करते रहें।
६. मानसिक चिन्ता या तनाव से दूर रहें तथा
७. सदैव स्वच्छ वातावरण में रहने का प्रयास करें।

वैद्यनाथ बालामृत—कमजोर बच्चों के लिये मीठी पुष्टई।

आन्ध्र प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति

कविराज पुरूषोत्तमदेव मुलतानी
आयुर्वेदालंकार, डिप्टी डाइरेक्टर (आयुर्वेद)
आन्ध्र प्रदेश, हैदराबाद

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन निजाम स्टेट ने भारत की स्वाधीनता को स्वीकार नहीं किया। सितम्बर सन् १९४८ में भारतीय पुलिस की कार्यवाही के बाद निजाम की सेना ने भारतीय सेना के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। २ वर्ष के सैनिक शासन के बाद १९५० में चार सिविलियन व चार कांग्रेस नेताओं का मिला-जुला मन्त्रिमण्डल श्री के० एम० वेलोडी के मुख्य मन्त्रिमण्डल में बना। मंत्रित्व ने शीघ्र ही राज्य में अनेक नई योजनाओं को मूर्त रूप दिया जिसमें आयुर्वेदोद्धार भी शामिल था। इसके साथ ही राज्य में आयुर्वेद की प्रगति का नया युग प्रारम्भ हुआ।

इन दिनों राज्य में आयुर्वेद की दुर्दशा थी। हैदराबाद नगर में केवल ३ राजकीय आयुर्वेद औषधालय एवं एक विद्यालय था। उधर यूनानी का पृथक् निर्देशालय एवं सुव्यवस्थित महाविद्यालय, आतुरालय एवं अनेक औषधालय थे। सरकार डा० पी० एस० मेलकोटे की आयुर्वेदोद्धार के लिए उच्च स्तरीय समिति का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में आयुर्वेद महाविद्यालय व रसायन-शाला का पुनर्गठन, आतुरालय एवं राज्य में अनेक आयुर्वेद औषधालय खोलने की सिफारिश की। राज्य के लोकप्रिय नेता एवं स्वास्थ्य मन्त्री श्री फूलचन्द गांधी के सत्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप राज्य सरकार ने मेलकोटे समिति की सिफारिशों को पूर्ण रूप से स्वीकार किया। तदनुसार १६ सितम्बर १९५१ को श्री के० एम० वेलोडी मुख्यमंत्रीकी अध्यक्षता में एक आयोजन किया गया जिसमें पुनर्गठित आयुर्वेद महाविद्यालय एवं नवीन आतुरालय (२२ शय्या वाले) का विधिवत् उद्घाटन किया गया। वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी राज्य सरकार के आमंत्रण पर इस समारोह के मुख्य अतिथि थे।

इसके १ मास बाद अक्टूबर १९५१ में राज्य के ग्रामीण इलाकों में ५१ नये आयुर्वेद औषधालय खोले गये। आयुर्वेद फार्मेसी एवं यूनानी मेडिकल स्टोर्स को मिलाकर 'इंडियन मेडिकल फार्मेसी' का संचालन प्रारम्भ किया गया। इसमें आधुनिक मशीनरी से औषध-निर्माण किया जाने लगा। ग्रामों में अनेक चिकित्सकों को औषधि एवं नकद रुपए का ग्रान्ट देना स्वीकृत हुआ। यूनानी निर्देशालय एवं आयुर्वेद विभाग को मिलाकर 'भारतीय भैषज्य विभाग' की स्थापना हुई। वैद्यों के पंजीकरण व शिक्षा-दीक्षा के लिए, बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसन का निर्माण हुआ। ३१ जनवरी, १९५३ को आतुरालय में रुग्ण शय्याओं की संख्या २२ से ५० कर दी गई। १० एकड़ जमीन में 'वनस्पति उद्यान' की स्थापना की गई। सन् १९५५ में १५ नवीन आयुर्वेद औषधालय खोले गये। विभाग के स्पेशल आफिसर के पद का नामकरण निर्देशक कर दिया गया एवं दो डिप्टी डाइरेक्टर (आयुर्वेद व यूनानी) की नियुक्ति की गई।

१ नवम्बर १९५६ को प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहर लाल नेहरू के कर-कमलों से मद्रास प्रान्त एवं हैदराबाद राज्य के विभाजन के परिणामस्वरूप प्रथम भाषावारी 'आंध्र प्रदेश' का उद्घाटन हुआ। इस समय आयुर्वेद यूनानी का बजट १८ लाख के लगभग था। विभाजन के परिणामस्वरूप अनेक औषधालय मैसूर व महाराष्ट्र में चले जाने से यह राशि १३ लाख हो गई।

आंध्र प्रदेश के निर्माण के बाद सितम्बर १९५७ में मुख्य मन्त्री श्री नीलम संजीव रेड्डी ने आंध्र आयुर्वेद बोर्ड का उद्घाटन किया। डा० लक्ष्मीपति इसके प्रथम सभा-

पति थे। हैदराबाद स्थित राजकीय आतुरालय में ६४ रुग्ण शय्याओं की वृद्धि की गई। नवम्बर १९५९ में आयुर्वेद व यूनानी आतुरालयों में क्रमशः ४० एवं २० शय्याओं की वृद्धि के साथ अनुसंधान विभाग की स्थापना हुई जिसमें आमवात, पक्षाघात व पाण्डू, कामला, पर Clinical Research की जा रही है। हैदराबाद राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के विस्तार के लिए कई लाख रुपये स्वीकृत हुए। इसी वर्ष इण्डियन मेडिकल फार्मेसी के विस्तार के लिए आधुनिक मशीनरी खरीद की गई तथा अतिरिक्त स्टाक भी स्वीकृत हुआ। वारंगल, विजयवाड़ा एवं गुंटूर नगर के प्राइवेट आयुर्वेद कालेजों को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। वारंगल व विजयवाड़ा में २०-२० शय्या वाले आतुरालय खोले गये। पिछले कुछ वर्षों में ६५ नये आयुर्वेद व यूनानी औषधालय खोले गये।

१९७० में हैदराबाद व वारंगल स्थित राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय उस्मानिया विश्वविद्यालय से एवं विजयवाड़ा आयुर्वेद कालेज आंध्र विश्वविद्यालय से सम्बन्धित है। दोनों विश्वविद्यालयों में आयुर्वेद संकाय की स्थापना की गई। हैदराबाद स्थित आयुर्वेद - यूनानी आतुरालयों में क्रमशः ३० व ३२ शय्याओं की वृद्धि की गई। इस समय आतुरालयों में रुग्ण शय्याओं की कुल संख्या ४३४ है। पंचम पंच-वर्षीय योजना में इन्हें १००० करने का प्रस्ताव है। विभागीय बजट १३ लाख से बढ़कर लगभग १ करोड़ हो गया है।

१९७२ में भारत सरकार के खर्च से हैदराबाद आयुर्वेद व यूनानी महाविद्यालयों में कायचिकित्सा में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण-केन्द्र की स्थापना की गई है। इसमें १० विद्यार्थी प्रविष्ट करने की व्यवस्था है। इस समय राजकीय औषधालयों की संख्या १६६ है। इसके अतिरिक्त १००० के लगभग ऐसे औषधालय हैं जो म्युनिसिपेलटी, जिला परिषद् व पंचायत-समिति के अधीन है। इस वर्ष Self Employment Scheme के अन्तर्गत २५० ग्रामों में चिकित्सकों को २००/- प्रतिमास वेतन (एक वर्ष के लिए) एवं ५०००-रुपये के लगभग राष्ट्रीय बैंक से कर्ज दिलाने की व्यवस्था की योजना है।

आयुर्वेद व यूनानी अनुसंधान के क्षेत्र में भी राज्य में काफी प्रगति हुई है। पिछले दो वर्षों में भारतीय चिकित्सा - पद्धति व होमियोपैथी के केन्द्रीय अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के तत्वावधान में निम्न अनुसंधान केन्द्र राज्य में खोले गये।

(1) केन्द्रीय यूनानी अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद
(2) यूनानी परिवार नियोजन केन्द्र (तिब्बी कालेज हैदराबाद)
(3) Clinical Research Unit. (Govt. Ayurvedic College, Hyderabad).
(4) Drug Standardization Research Enquiry, (Govt. Indian Medicine Pharmacy, Hyderabad).
(5) क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, विजयवाड़ा

पंचम पंचवर्षीय योजना में ३¼ करोड़ की लागत से ६५१ नए औषधालय (प्रत्येक ब्लाक में एक औषधालय) खोलने का प्रस्ताव है। आयुर्वेद आतुरालयों की शय्याओं की संख्या १००० तक वृद्धि का प्रस्ताव है। राज्य के २० जिलों में से अधिक जिले में २०० शय्यावाले आतुरालय खोलने की योजना है। राज्य के चारों आयुर्वेद महाविद्यालयों में १२-१२ विभागों को उच्चस्तरीय करने की योजना है।

मई १९७२ में राज्य सरकार ने राज्य के लगभग ३०९ वैद्यों व हकीमों का एक सम्मेलन आयोजित किया था जिसका उद्घाटन राज्य के मुख्यमंत्री श्री पी० वी० नरसिंहराव ने किया एवं स्वास्थ्य मन्त्री श्री मूर्तिराज ने सभापतित्व किया। सम्मेलन में भारतीय भैषज्य चिकित्सा-पद्धति की उन्नति के लिये कई महत्वपूर्ण निर्णय किये गये जो सरकार के विचाराधीन हैं।

उपर्युक्त सभी योजनाओं के कार्यान्वित होने पर राज्य में आयुर्वेद व यूनानी औषधालयों का जाल बिछ जाएगा एवं कोई भी जिला व पंचायत क्षेत्र भारतीय चिकित्सा की सुविधा से वंचित न रहेगा। आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र व स्नातकोत्तर प्रशिक्षण - केन्द्र की स्थापना में आयुर्वेद शिक्षा व अनुसंधान के क्षेत्र में विशेष प्रगति की संभावना है।

आयुर्वेद जगत का यह सौभाग्य है कि राज्य में जितने भी मुख्य मन्त्री व स्वास्थ्य मन्त्री २५ वर्षों में नियुक्त हुए हैं उन्होंने देशी चिकित्सा-पद्धति के लिए ठोस कदम उठाये हैं। इसी के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में आयुर्वेद-चिकित्सा, शिक्षा व अनुसंधान के क्षेत्र में राज्य में आशातीत प्रगति हुई है। आशा है आगामी कुछ वर्षों में यह राज्य इस दिशा में दूसरे राज्यों का अग्रणी होगा।

स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-संवर्धन का प्राकृतिक उपाय—"व्यायाम"

श्री गोपालदास अग्रवाल,
एम० ए० एल० टी०

आपने सेठ-साहूकारों को दूकानों और गद्दियों में बैठे हुए देखा ही होगा। ये लोग दिन भर बेकार बैठे रहते हैं। इसी कारण शरीर में अनावश्यक चर्बी बढ़ जाती है और पेट बढ़ जाता है। ऐसे लोगों को ही प्रायः रोग दबा लेते हैं, फलतः असमय मृत्यु के शिकार होते हैं। इसका एक कारण यह है कि ऐसी मोटी तोंद वाले, आलसी और निकम्मे लोगों के लिए ही तो शायद सन्त मलूकदास एक दोहा में उपदेश दे गये हैं। ये लोग इस आदर्श वाक्य को सदा ही अपने सामने रखते हैं। संत मलूकदास का दोहा इस प्रकार है—

"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गये, सबके दाता राम।।"

भारतवासियों का यह दुर्भाग्य रहा है कि देशवासी भाग्य के भरोसे जीते हैं इसी आसरे रहकर मर जाते हैं। भारतीय परिश्रम करना तो जानते ही नहीं। घर में यदि शौच भी जाना हुआ तो आलस्य के कारण पानी का लोटा तक अपने हाथ से नहीं ले सकते। घर के अन्दर रहने वाली स्त्रियां जाने-अनजाने दिन भर बहुत-सा कार्य करती हैं। इसलिये आज-कल पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों का स्वास्थ्य दिनो-दिन गिरता जा रहा है। इसी कारण शरीर में अनेक दोष अनजाने ही आ जाते हैं। शरीर को निरोग रखने के लिये परिश्रम करना ही होगा। जो लोग किसी भी प्रकार का परिश्रम करते हैं वे कभी भी बीमार नहीं हो सकते। इस के विपरीत आलसी व्यक्ति सदा ही बीमार रहते हैं और चारपाई पकड़े रहते हैं।

व्यायाम प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है। व्यायाम, स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-संवर्धन का प्राकृतिक उपाय है। जो लोग नियम से प्रतिदिन व्यायाम करते हैं वे प्रायः रोगों से मुक्त रहते हैं और आनन्दपूर्वक जीवन बिताते हैं। व्यायाम न करने वाले लोग रोगी और दुखी रहते हैं। व्यायाम एक ऐसी सरल क्रिया है कि इसे ६ वर्ष की उम्र के बालक-बालिकाओं से लेकर ६० वर्ष के बूढ़े भी नियमित रूप से अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कर सकते हैं। स्त्रियों के लिए भी व्यायाम आवश्यक है किन्तु स्त्रियों के लिए विशिष्ट प्रकार के व्यायाम होते हैं। स्वास्थ्य - रक्षा की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को नियत समय में नियमित रूप से किसी न किसी रूप में अवश्य ही व्यायाम करना चाहिए।

प्रायः लोग आलस्य के कारण ही व्यायाम नहीं करते और सच बात तो यह है कि जब तक व्यायाम नहीं होता तब तक आलस्य भी नहीं दूर होता। बाल्यकाल से ही व्यायाम का अभ्यास करने और कराते रहने से आलस्य पास नहीं फटकने पाता। वृद्धावस्था में भी व्यायाम करते रहने के कारण आलस्य नहीं घेरता। व्यायाम का क्रम टूटते ही आलस्य आ जाता है। सही बात तो यह है कि आलस्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस शत्रु का सामना करना नितान्त आवश्यक है। इससे बचने का सरल उपाय यही है कि हम धीरे-धीरे इस प्रकार के व्यायाम को करना शुरू करें जो हम आसानी से कर सकें। हम शरीर के द्वारा जो भी श्रम करते हैं वह व्यायाम ही माना जाता है।

किसी भी प्रकार का शारीरिक कार्य शरीर की मांस-पेशियों द्वारा ही पूरा होता है। इस प्रकार श्रमसाध्य व्यायाम करने से मांस-पेशियों के साथ-साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मन पर हितकारी प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं, परिश्रम अथवा व्यायाम करने से फेफड़े, हृदय, दिमाग, आमाशय, जिगर, आंत आदि संस्थानों पर भी हितकारी प्रभाव पड़ता है, परिणामस्वरूप शरीर निरोग रहता है। इसी कारण हमारा स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य बनता है जिससे हमें हर क्षण प्रसन्न दिखलाई

पड़ते हैं।

व्यायाम का स्वरूप चाहे कुछ भी हो, अवस्था की दृष्टि से बालक, युवा वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को व्यायाम करना चाहिए। हमारा शरीर व्यायाम करते रहने के कारण ही बना रहता है। जिस प्रकार शरीर की बढ़ोत्तरी एवं पोषण के लिए भोजन, नींद, जल और वायु आवश्यक है उसी प्रकार शरीर को निरोग रखने के लिए व्यायाम भी आवश्यक है।

जो लोग व्यायाम नहीं करते और आलस्य में पड़े रहते हैं ऐसे लोगों का शरीर निःस्तेज हो जाता है, चेहरा सूख कर मुरझा जाता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। बैठे रहने अथवा हाथ-पैर न हिलाने के कारण ही शरीर के विभिन्न अवयवों में चर्बी बढ़ जाती है जिससे शरीर बेढंगा मालूम होने लगता है। ऐसे लोग निश्चय ही समाज के लिए भारस्वरूप हैं। शरीर में चर्बी बढ़ जाने से स्नायु ढीले पड़ जाते हैं। ऐसे लोगों को ही अनेक प्रकार के भयंकर रोग दबा लेते हैं। आलसी लोगों को ही मधुमेह, ब्लड प्रेसर, दुर्बलता आदि बीमारियाँ अधिकता से होती हुई देखी गई है।

जिस प्रकार व्यायाम न करने से अनेक हानियाँ हैं उसी प्रकार व्यायाम करते रहने से अनेक लाभ होते हैं। व्यायाम करने से शरीर की शक्ति बढ़ती है। शरीर की शक्ति बढ़ने पर ही स्वस्थ शरीर रोगों का प्रतिकार कर सकता है। व्यायाम करने से शरीर के विभिन्न अवयव मुलायम एवं मजबूत बनते हैं। व्यायाम करने से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हृदय मजबूत हो जाता है और खून का दौरा ठीक प्रकार से होता है। व्यायाम करने से खून साफ होता रहता है। व्यायाम करने से ही प्राण-वायु फेफड़ों में पहुँच कर हमारे समस्त शरीर का पोषण करती है। व्यायाम करते रहने से पाचन-क्रिया ठीक प्रकार से होती है और खाया गया भोजन पच जाने से पेट की बीमारियाँ नहीं होने पातीं। व्यायाम अथवा परिश्रम करने के बाद पसीना आ जाने के कारण शरीर में एक विशेष प्रकार का हल्कापन आ जाता है जिससे तबीयत प्रसन्न रहती है।

व्यायाम के अनेक प्रकार हैं। बच्चे, युवकों, वृद्धों और स्त्रियों को जिस प्रकार का व्यायाम रूचिकर लगे नित्य ही करने का अभ्यास डालना चाहिए। वैसे घूमना, खेलना, आसन लगाना, तैरना, कसरत करना, व्यायाम के विविध रूप हैं। इन अनेक प्रकार के व्यायामों में सबसे सरल व्यायाम घूमना ही है। घूमने का अभ्यास तो लोग सरलतापूर्वक कर सकते हैं। घूमना सभी के लिए हितकर व्यायाम है। बालकों, विशेषतया स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए खेलना ही सबसे अच्छा व्यायाम माना गया है। विभिन्न प्रकार के खेलों में नियमित रूप से भाग लेने से बालकों का यथेष्ट मनोरंजन तो होता ही है साथ-ही-साथ आँख, नाक, कान, हाथ, पैर, जिह्वा आदि सभी प्रकार की ज्ञानेद्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का स्वाभाविक रूप से व्यायाम हो जाता हैं। शरीर के सभी अंग स्वस्थ और सुडौल बनते हैं। कुछ लोग व्यायाम करने के लिए आसन लगाया करते हैं। विशेष प्रकार का अभ्यास करने पर ही अथवा किसी जानकार व्यक्ति के निर्देशन में आसन लगाना चाहिए। आसन लगाने से शरीर का प्रत्येक अंग ठीक प्रकार से काम करता है। आसन करने से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति बढ़ती है।

व्यायाम करने के लिए नदी, तालाब आदि में तैरने से भी अच्छा-खासा व्यायाम हो जाता है। वैसे तो प्रत्येक ऋतु में तैरने का अभ्यास किया जा सकता है किन्तु ग्रीष्म ऋतु में जब कि पानी ठण्डा रहता है और लू व गर्मी का अधिक प्रकोप होता है, प्रातःकाल तैरने से विशेष लाभ होता है। तैरने से शरीर की उष्णता कम होती है और फेफड़े व हृदय मजबूत बनते हैं। खून का दौरा बढ़ जाने से शरीर में हल्कापन और एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति व ताजगी आ जाती है। इन उपरोक्त प्रकार के सभी व्यायाम पुरुष, बालक, वृद्ध तो करते ही हैं साथ ही थोड़े ही अभ्यास से स्त्रियाँ भी कर सकती हैं।

स्त्रियों के लिए व्यायाम के अनेक साधन घर पर ही उपलब्ध रहते हैं, जिन्हें करते रहने से घर की रानी स्वस्थ और प्रसन्नचित्त रह सकती है। घर के अन्दर जो व्यायाम हो सकते हैं ऐसे कार्यों में चक्की चलाना, कपड़ा धोना, चर्खा चलाना, घूमना-फिरना और कूटना-पीसना प्रमुख हैं। इन सभी कार्यों को स्त्रियाँ घर पर ही कर सकती हैं। घर के अन्दर इस प्रकार के कार्य स्वयं ही करते रहने से स्त्रियां कभी भी न तो बीमार पड़ सकती हैं और न आलसी ही रहेंगी। गृह कार्य करने वाली महिलाओं को इसीं प्रकार प्रसव के समय भी विशेष कष्ट नहीं होता। इस के विपरीत पर्दानसीन और काम न करने वाली महिलाओं को ऐसे समय इतना कष्ट होता है

कि नानी याद आ जाती है।

कौन-सा और किस प्रकार का व्यायाम किस उम्र के लोगों को करना चाहिये, यह भी जान लेना चाहिए। घर में ५-६ वर्षों के जो छोटे-छोटे बालक होते हैं इन लोगों को किसी विशेष प्रकार का व्यायाम करने की जरूरत नहीं पड़ती। दिन भर चलते-फिरते रहने, दौड़ने एवं सीढ़ियों के उतरने-चढ़ने में ही बालकों का अच्छा-खासा व्यायाम हो जाता है। छोटे बालकों के लिए घर की दौड़-धूप ही सबसे अच्छा व्यायाम है। छः वर्ष से चौदह वर्ष तक की उम्र में शरीर का विकास तेजी से होता है अतः घर दौड़ने-कूदने के साथ-साथ घर के बाहर दौड़ने-कूदने आदि के विभिन्न खेल विशेष रूप से लाभदायक होते हैं।

चौदह वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की उम्र वालों को कसरत करना चाहिए। कसरत करने से इच्छा शक्ति बढ़ती है। इस अवस्था के नवयुवकों को ऐसे व्यायाम करना चाहिए जिससे शरीर के प्रत्येक अंग सुदृढ़ हों। पच्चीस वर्ष के बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता है। घर-गृहस्थी के कार्यों में पड़ जाने से धनोपार्जन एवं परिवार के अन्य सदस्यों का पालन-पोषण करने के लिए अनेक कार्य करने होते हैं। इसलिए ऐसी अवस्था में नियमानुसार नियमित रूप से अपनी ही रूचि का व्यायाम करने की आदत डालनी चाहिए। जो लोग इस प्रकार के व्यायाम में लगे हों जिनके करने में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता हो उन्हें अलग से कोई दूसरा व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है।

बुढ़ापा आ जाने पर अंग शिथिल पड़ जाते हैं और शक्ति भी क्षीण हो जाती है। अतः बुढ़ापा में तो केवल टहलना ही एक सरल व्यायाम है जिसे प्रत्येक वृद्ध आसानी से नियमपूर्वक पूरा कर सकता है। वृद्धावस्था आ जाने पर भी जो लोग नियमित रूप से व्यायाम करते रहते हैं वे अन्तिम समय तक स्वस्थ एवं निरोग बने रहते हैं।

किसी भी अवस्था में कभी भी व्यायाम की अधिकता के लोभ में नहीं पड़ना चाहिए। अधिक व्यायाम करने से अधिक लाभ नहीं होता वरन् जो लोग अधिक व्यायाम शुरू कर देते हैं ऐसे लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। होता क्या है कि व्यायाम करने से लाभ के स्थान पर उल्टे हानि होने लगती है। जो लोग अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करते हैं ऐसे लोगों को ही क्षय, प्यास अधिक लगना, भोजन में अरुचि, थकावट, खांसी, बुखार, श्वासादि विभिन्न प्रकार के भयंकर रोगों में फंसना पड़ता है। जिस प्रकार अधिक भोजन कर लेने से शरीर को नुकसान होता है उसी प्रकार अधिक मात्रा में व्यायाम करना भी हानिकारक होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर शक्ति से कम ही व्यायाम करना चाहिये।

व्यायाम करने का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल ही है। प्रातःकाल जो लोग व्यायाम करते हैं उनका जी हल्का रहता है, दिन भर तबियत प्रसन्न रहती है और विशेष लाभ होता है कि इच्छा शक्ति बढ़ती है। खेलने आदि के लिए तो सायंकाल का समय ही उत्तम माना गया है। कुछ ऐसी अवस्थाएं होती हैं जब व्यायाम नहीं करना चाहिए। जिस व्यक्ति को वायु एवं पित्त विकार हो अथवा अजीर्ण हो ऐसी हालत में व्यायाम करना बन्द कर देना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यायाम, स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-संवर्धन का प्राकृतिक उपाय है। नियमित व्यायाम करने वाला व्यक्ति रोगों से मुक्त रहता है और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। व्यायाम प्रत्येक अवस्था के लोगों को अवश्य ही करते रहना चाहिए। व्यायाम करने वाला व्यक्ति ही निरोग रहता है। निरोग व्यक्ति आलसी नहीं होता, आलसी व्यक्ति निश्चय ही समाज के लिए भारस्वरूप है, इसलिए आप व्यायाम करना शुरू कर दें और समाज के लिए भारस्वरूप बनकर न रहें।

बैद्यनाथ जन्मघुँटी
बच्चों को नीरोग रखनेवाली गुणकारी दवा

जन स्वास्थ्य की समस्याएँ

शाकाहार ही मानव जाति के लिये श्रेयस्कर है

विद्याभास्कर वैद्य परमेश्वर घिल्डियाल
राजामऊ, रायबरेली

मानवदेह की परिवृद्धि, क्षतविक्षत तन्तुओं का पुनर्निर्माण, ऊर्जा एवं ताप के लिये सन्तुलित आहार की परम आवश्यकता होती है। इसी के द्वारा शरीर की स्थिति समस्त ऐच्छिक और अनैच्छिक शारीरिक क्रियाएं अनवरत गति से होती रहती हैं। इसलिये महर्षि (चरक ने भी कहा है "हिताहारोपयोग एकएव पुरुष वृद्धि करो भवति, अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधि निमित्तम्" चरक सूत्र० अ० २५,३०) सन्तुलित आहार के समस्त अवयव प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट, वसा, लवण, पानी और जीवनीय तत्व शाकाहार में ही पूर्णरूपेण पाये जाते हैं। हमारा शरीर भी इन्ही सब तत्वों से बना हुआ है। अतः इन की पूर्ति शाकाहार से ही सम्भव है। विश्व के अधिकांश मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिये परम आवश्यक भोजनावयव कार्वोहाइड्रेट (निशास्ता या शक्कर) तथा वानस्पतिक अम्लों का मुख्य स्रोत तो शाकाहार ही है। लोगों में यह मिथ्या धारणा ही है कि प्रोटीन सर्वाधिक मांस में पाया जाता है। आहार शास्त्र विशारदों का यह स्पष्ट मत है कि सर्वाधिक ४३.२%एवं उत्तम प्रकार की सुपाच्य प्रोटीन सोयावीन में पाई जाती है तथा यह मांसगत हानिकारक पदार्थों से भी मुक्त होती है। अन्नज प्रोटीन की अपेक्षा पाशविक प्रोटीन में अम्ल तत्व अधिक होने के कारण यूरिकऐसिड प्रचुर मात्रा में बनता है जिसके कारण मांसाहारियों को गठिया रोग का शिकार होना पड़ता है। शाकाहार एवं फलाहार रोगनिरोधिनी एवं जीवनीय शक्ति देने में अपना सानी ही नहीं रखता। यह निरापद आहार है। यही नहीं मांसाहार से मूत्र एवं रक्त संस्थान के कई रोगों के हो जाने का भय बना रहता है। आयुर्वेद के मुख्य ग्रंथ सुश्रुत में तो कर्कटार्बुद (केन्सर) का एक कारण मांसाहार भी बताया है—

"प्रदुष्ट मांसस्य नरस्य बाढ़मेतद्भवेन्मांसपरायणस्य" (सुश्रुत नि० ११-१७) भारत की अपेक्षा पाश्चात्य देशों में मांसलोलुपता अधिक पायी जाती है। संभवतः अन्य कारणों के साथ मांसपरायणता के कारण ही वहां अधिकांश व्यक्ति सहसा इस रोग के शिकार बन जाते हैं। विश्वविख्यात डा० खेलर की श्रीमती का कथन है कि मांसभक्षण से मुझे इसलिये घृणा है कि इससे श्वास और त्वचा में दुर्गन्ध आने लगती है। हम भारतीयों की आहार-पद्धति चिरकालीन अनुभवों पर ही आधारित है। अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि शाकाहार का पाचन, प्रचूषण एवं सात्मीकरण जितनी शीघ्रता से होता है उतना मांसाहार का नहीं। मांसाहार को पकाने में कई मांसाहारी पूंगीफल (सुपारी) एवं पपीता का सहारा लेकर उसे सुपाच्य बनाते हैं जो कि इस बात का प्रमाण है कि यह दुष्पाच्य खाद्य है।

शाकाहार का आदिकाल से ही प्रचलन रहा। हमारे अग्रजन्मा ऋषि-मुनियों ने कन्दमूलफल खा कर ही "शत जीवेम शरदः" की उक्ति को चरितार्थ किया एवं बड़े पराक्रम से हिंसक वन्य जन्तुओं से अपनी रक्षा की।

प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्रियों का मत है कि मांसाहारी अधिकतर कलेजे (जिगर) एवं गुर्दे को ही स्वादिष्ट एवं श्रेष्ठ मानकर प्रयोग में लाते हैं। शरीर की निर्विषीकरण क्रिया इन्हीं अंगों द्वारा होती है। शरीर के विजातीय पदार्थ इन्ही में एकत्रित होकर बाहर निकलते हैं। तो क्या इन अंगों के सेवन से स्वास्थ्यलाभ हो सकता है। यह भी विचारणीय है।

इसके अतिरिक्त मांस में कई घातक पदार्थ पाये जाते हैं जो कि जानवरों की जीवितावस्था में स्वाभाविक क्रियावश बाहर निकलते रहते हैं किन्तु मारने के बाद

शरीर में व्याप्त हो नाना प्रकार के रोगोत्पादक हो जाते हैं। प्राणि शास्त्रियों का स्पष्ट मत है कि राजयक्ष्मा (टी० बी०) और ऐन्थ्रेक्स के जीवाणु माँसाहार के द्वारा ही सहसा मानवदेह को संक्रमित कर देते हैं। इन्हीं सब कारणों से हम भारतीय मांसाहार को कामोत्तेजक एवं असात्विक मानते हैं। उच्च मानवीय गुणों सत्य, अहिंसा, प्रेम, विश्वास आदि के विकास के लिये शाकाहार की सद्यः फलदायिनी शक्ति को अन्ततः स्वीकार करना ही पड़ेगा।

मांसाहार एवं शाकाहार पर विचार करते हुए हमें न केवल शारीरिक स्वास्थ्य अपितु मानसिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना होगा जिससे "प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते" (स्वस्थ वही है जिसकी आत्मा, समस्त इन्द्रियां और मन प्रसन्न हो) वाली कहावत चरितार्थ हो सके। हमारे शास्त्रकारों ने पूर्ण मनन एवं चिंतन कर अपनी दीर्घानुभूति के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य जैसा आहार करता है तदनुरूप ही उसकी विचारधारा बनती है, मनोबल और आत्मबल प्राप्त होता है। इसीलिये उन्होंने सात्विक आहार (शाकाहार) का ही उपदेश दिया और मांसाहार को त्याज्य माना। मनुस्मृति में तो मनु जी ने इसे हेय मानकर "निवृत्तिस्तु महाफला" कहा है। गीता में भी "रस्याः स्निग्धाः स्थिरागृह्याआहाराः सात्विक प्रियाः" कहकर सात्विक भोजन को श्रेष्ठ माना। अर्थात् जो भोजन रस हो, स्निग्ध हो, शरीर को स्थिर रखने एवं हृद्य (दिल और दिमाग को शक्ति देने वाले) हों वही सात्विक भोजन है। गीता की यह उक्ति शाकाहार के लिये ही पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है मांसाहार के लिए नहीं। मांसाहार को अग्राह्य एवं असेव्य बताते हुए ऋषिकल्प रूसी विद्वान टाल्स्टाय ने लिखा है मांस खाने से पाशविक वृत्तियां बढ़ती हैं, कामोत्तेजना प्रदीप्त हो व्यभिचार करने एवं मदिरा पीने की भी इच्छा होती है, मनुष्य का विवेक कुण्ठित हो पशुत्व जागृत हो जाता है। पुण्यश्लोक महात्मा गाँधी भी इन्हीं सब कारणों से शाकाहार को ही श्रेष्ठ मानते थे और शाकाहार पर ही जीवन-यापन करते रहे तथा विश्व को शाकाहार का महत्व बराबर अपने आचरण और व्यवहार से बतलाते रहे। अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शा शाकाहारी ही थे, उन्होंने भी मांसाहार को बड़े भावपूर्ण शब्दों में हेय बतलाते हुये लिखा—"कि मांस भक्षण सौन्दर्य मीमांसा शास्त्र के प्रतिकूल है, कोमलवृत्ति, कलात्मक सौन्दर्योपासक मनुष्य हड्डी चूसने का असुन्दर कार्य कैसे कर सकता है।"

हमारे बहुत-से बन्धु मांसाहार के पक्ष में यह भी दलील पेश करते हैं कि मांसाहारी बड़ा शूर, वीर और पराक्रमी होता है किन्तु वे भूल जाते हैं कि आज के तथाकथित साहसी एवं पराक्रमियों से कहीं अधिक, कन्दमूल फल खाने वाले हमारे ऋषि-महर्षि पराक्रमी एवं साहसी होते थे। यही नहीं विश्व-विख्यात नाजियों का नेता हिटलर भी शाकाहारी ही था।

शाकाहार ही मांसाहार की अपेक्षा मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है। यदि हम मनुष्य शरीर की रचना एवं क्रिया-विज्ञान पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर ही पहुँचेंगे कि यदि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांसाहार होता तो उसके मुख एवं अन्न प्रणाली की रचना तथा आंतों का आयाम भी मांसाहार जीवों जैसा होता, उसका भी क्रूर चेहरा, शृगाल जैसे नुकीले तेज दाँतों और व्याघ्र नखों के समान नख होते। मनुष्य भी व्याघ्र एवं कुत्ते के समान अपने खाद्य बकरी, भेड़ की ओरझपटता, अन्य स्वखाद्य जानवरों की ओर देखकर उसके मुंह में लाल स्राव होता किन्तु प्रत्येक्ष ऐसा देखने को नहीं मिलता। हां, हरे-भरे खेतों कंदमूल फलान्वित बागों को देखकर तो हठात् उन्हें ग्रहण करने की प्रवृत्ति मानव मात्र की होती है। यही इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन मांसाहार नहीं शाकाहार ही है।

मांसाहारी लोग शाकाहारी पशु-पक्षियों का ही मांस खाते देखे जाते हैं जो शाकाहार के ही कारण स्वास्थ्य-वर्धक एवं उपादेय माना जाता है। मांसभक्षी व्याघ्र और कुक्कुरादि पशुओं का मांस भक्षण कर स्वास्थ्य लाभ करते हुए लोक में न कोई स्वस्थ व्यक्ति देखा गया है और न सुना ही गया है। फिर क्यों न हम मूल वस्तु (शाकाहार) को जिसके कारण मांस ग्राह्य माना जाता है—ग्रहण कर शक्ति एवं स्फूर्ति अर्जित करते हुए अपने शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करें।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' एवं 'जिओ और जीने दो' के उदात्त सिद्धान्तानुसार भी हमें

अधिकार नहीं जबकि हम मृत जीव को प्राण देने की कोई सामर्थ्य नहीं रखते।

पाश्चात्य देशों में दिनानुदिन शाकाहार की ओर लोकरुचि का बढ़ना भी इस बात का द्योतक है कि शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टि से भी श्रेयष्कर है।

उपर्युक्त ऊहापोह कर लेने के बाद हम निःसंकोच इस तथ्य का उद्घोष करने में समर्थ हैं कि इस अणु एवं उपग्रह युग में भी मानव जाति के लिये शाकाहार ही श्रेयष्कर है मांसाहार नहीं। शाकाहार से ही हम उच्च-स्तरीय मानवगुणों को प्राप्त कर—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

की उदात्त उक्ति को चरितार्थ कर सकते हैं।

आभार प्रदर्शन—इस लेख को लिखने में आयुर्वेदीय एवं आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान - सम्बन्धी ग्रंथों से पर्या सहायता ली गयी है। एतदर्थ आभारी हूं।

सदा
सबके लिये
सेवनीय
परम पौष्टिक
रसायन
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
(अष्टवर्गयुक्त)
देशी दवाओं पर
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन
प्राइवेट लि॰
कलकत्ता

आलोचक की दृष्टि में

वाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद : लेखक—वैद्य अम्बालाल जोशी, प्रकाशक : पूर्णिमा प्रकाशन, मकराना महल्ला, जोधपुर, मूल्य : १५ रुपए।

प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक के लेखक अपनी लेखन-प्रतिभा के लिए आयुर्वेद जगत् में सुख्यात हैं और उनकी लेखन-प्रतिभा के अनुरूप ही यह पुस्तक बन पड़ी है। जैसा कि पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है, आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण के विभिन्न स्थलों पर बिखरे हुए आयुर्वेद-प्रसंगों को लेखक ने एक सूत्र में निबद्ध कर अपनी मधुप-वृत्ति का सुन्दर परिचय दिया है। एक अर्थ में यह पुस्तक शोध क्षेत्र में आ सकती है, क्योंकि पुस्तक के विषय की व्यापकता और आयुर्वेद की व्यापकता पर एक समान दृष्टि डाली गयी है। आयुर्वेद भी प्राचीन है, और वाल्मीकीय रामायण तो संसार का आदि काव्य ही ठहरा।

लेखक के इस विचार से इन पंक्तियों का लेखक भी पूर्णतया सहमति रखता है कि आयुर्वेद के प्रणयन के मूल में यदि भूतदया की पावन प्रेरणा थी तो वाल्मीकीय रामायण की रचना के समय महर्षि वाल्मीकि के हृदय में भी वही करूणा थी, जो बाण-बिद्ध क्रौंच की करुण कराह से उत्पन्न हुई थी। इसलिए आयुर्वेद और रामायण दोनों के उद्देश्य एवं प्रयोजन में साम्य है।

पुस्तक में विद्वान एवं मननशील लेखक ने रामायण से उन्हीं प्रसंगों को चुना है जिनका सम्बन्ध आयुर्वेद से है—और ऐसे प्रसंग २५ हैं, जो लेखक ने रामायण से चुने हैं। यों लेखक का यह दावा है कि रामायण में आयुर्वेद के आठो अंगों का सांगोपांग वर्णन मिलता है, आवश्यकता है उस अन्वेषण-परक दृष्टि की, जो यत्र-तत्र बिखरे प्रसंगों को उठाकर ठौर-ठिकाने लगा सके। निःसन्देह लेखक ने प्रस्तुत ग्रंथ-प्रणयन में अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति एवं अमोघ परिश्रमशीलता से काम लिया है, उसकी दाद देनी पड़ेगी।

वस्तुतः वाल्मीकीय रामायण, आयुर्वेद अथवा विज्ञान का ग्रंथ नहीं, वह मूलतया काव्य ग्रंथ है—और उसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के चरित्र-गुणगान का ही प्राधान्य है, उसमें आयुर्वेद विषयक सामग्री भी है, इससे इन्कार करने का प्रश्न ही कहां उठता, जबकि लेखक ने दो-सौ से ऊपर के पृष्ठों में उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अष्टांग आयुर्वेद के विविध प्रसंगों को ढूंढ़ कर निकाला है। लेखक का श्रम सफल हुआ है और वह निश्चय ही धन्यवादार्ह है।

शरीरावयववाची शब्द का भी एक अध्याय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है, और इस अध्याय में शरीरावयववाची शब्द वही आए हैं, जिनका उल्लेख रामायण में हुआ है। लेखक ने संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी, और अंग्रेजी नाम भी दिए हैं, जो सर्वथा उपयुक्त ही है। किंतु अंग्रेजी नामों में प्रूफ सम्बन्धी भूलों का बाहुल्य है। प्रूफ की भूलें अन्य स्थानों पर भी किसी भी सुधी पाठक को परिलक्षित हुए बिना न रहेगी। यों पुस्तक मुद्रण एव स्वच्छता की दृष्टि से उत्तम ही कही जायगी।

आशा है, इस-ग्रंथ-रत्न का अच्छा स्वागत होगा।

श्री शाण्डिल्य

धन्वन्तरि (प्राणिज खनिज द्रव्याङ्क) : विशेष सम्पादक—वैद्य छगन लाल समदर्शी : सम्पादक—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक : ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू-भाँजा रोड, अलीगढ़, मूल्य—१० ०० रु०।

'नानौषधं जगत् किञ्चित्'—चरक के इस वचन के अनुसार जगत में पाए जाने वाले सभी प्रकार के द्रव्यों का उपयोग औषध के रूप में किया जा सकता है। जहां तक आयुर्वेद का प्रश्न है, कहना न होगा कि इस चिकित्सा-विज्ञान में प्रायः सभी प्राणिज तथा खनिज द्रव्यों का उपयोग औषध-निर्माण के हेतु प्रारंभ से ही किया जाता रहा है। आधुनिक विज्ञान ने भी यह प्रमाणित किया है कि प्राणिज द्रव्यों को तत्काल ही प्राणियों का शरीर आत्मसात् कर लेता है। आयुर्वेद विज्ञान में सभी प्रकार के द्रव्यों का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विशद विवेचन उपलब्ध है—फलतः प्राणिज-खनिज दोनों ही प्रकार के द्रव्यों से निर्मित योगों का आयुर्वेद में बाहुल्य है।

प्रस्तुत विशेषांक में जिसका कलेवर लगभग ५०० पृष्ठों का है, प्राणिज-खनिज द्रव्यों के सम्बन्ध में विपुल पाठ्य-सामग्री संग्रहीत की गयी है और सभी दृष्टियों से विशेषांक प्रत्येक चिकित्सक के लिए संग्रहणीय है।

विशेषांक कई प्रकरणों में विभक्त है—यथा-प्राणिज खंड के अन्तर्गत अस्थि प्रकरण, बाल प्रकरण,

लैण्डी प्रकरण, चर्बी प्रकरण, दुग्ध प्रकरण, मांस प्रकरण, रक्त प्रकरण और समुद्रीय प्राणिज प्रकरण। इसी प्रकार खनिज वर्ग के अन्तर्गत, रस, उपरस, धातु, उपधातु रत्न, लवण तथा अन्य खनिज द्रव्य प्रकरण हैं—और इन सभी प्रकरणों के अन्तर्गत आए विविध विषयों पर विविध विद्वानों के उपयोगी लेख हैं।

निःसन्देह प्रस्तुत विशेषांक अतीत में प्रकाशित धन्वन्तरि के अनेकानेक उपयोगी विशेषांकों की तरह ही उपादेय एवं संग्रहणीय बन पड़ा है। आशा है, इसको समुचित आदर मिलेगा।

—श्री शाण्डिल्य

A check-list of Sanskrit Medical manuscripts in India compiled by B. Rama Rao, G. C. A. M. M. A. Research officer, Institute of history of medicine, Hyderabad, published for - The central council for Research in Indian medicine and Homeopathy, New Delhi, Price Rs 10 00.

The present volume is the result of the compilation that was done by Sri B. Rama Rao, Research officer of Ayurved at Dr. Subba Reddy's centre for the history of medicine, Hyderabad. It presents a check-list of Sanskrit medical manuscripts and carries in skeletal form minium details of about 1100 manuscripts.

As is evident from the statement of the compiler, he has based this compilation on the sources that he could procure from institutions & liabraries scattered all over the country.

Informations are categorically arranged in six columns under different heads—such as, serial number, title, author, script, liabraries etc.

No doubt, this compilation work, although a feeble effort, will be beneficial to those who are interested in research, so far as the history of Indian medicine is concerned. I fervently hope that present Volume would find ready welcome.

Sri Shandilya

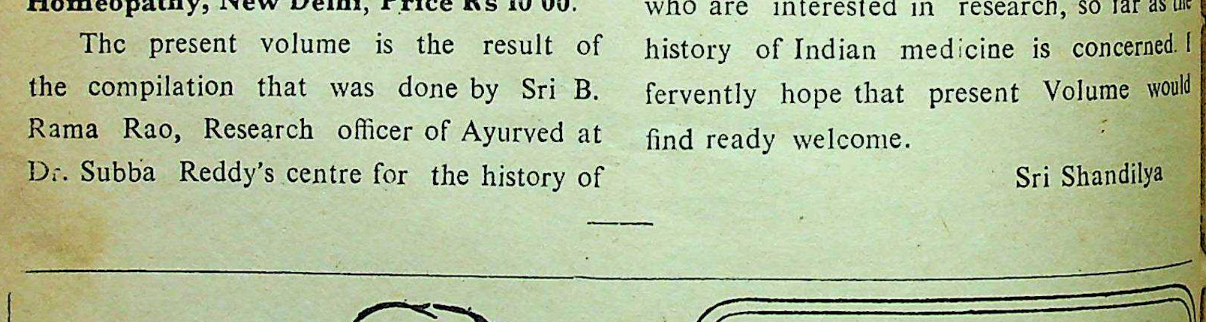

बैद्यनाथ
महायोगराज
गुग्गुलु
सर्वांग शूल, कमर या मेरुदण्ड के दर्द एवं समस्त प्रकार के वायु के विकारों की सुप्रसिद्ध महौषधि।

आयुर्वेद जगत

बिहार में आयुर्वेद-शिक्षा को विश्वविद्यालय में स्थान मिले

राज्य सरकार का पूर्व निर्णय अवश्य कार्यान्वित हो

आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का वक्तव्य

पटना। अखिल भारतीय आयुर्वेद-महासम्मेलन के प्रधानमंत्री, बिहार-राज्य आयुर्वेद-यूनानी अधिकाय के अध्यक्ष और श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया है:—

'बिहार के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री लहटन चौधरी के कार्यकाल में राज्य सरकार ने यह निर्णय लिया था कि राज्य के आयुर्वेदिक कालेजों की स्नातक-परीक्षा इस वर्ष बिहार-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत होगी। तदनुसार लिखित रूप में घोषणा हो गई थी। लेकिन न जाने क्यों ऐसा न हो सका, जिससे परीक्षार्थियों में घोर निराशा फैल गई। मैं राज्य के मुख्यमंत्री एवं स्वास्थ्य मंत्री श्री अब्दुल गफूर से अनुरोध करता हूं कि वे राज्य-सरकार के उक्त निर्णय को कार्यान्वित कराने की कृपा करें।

इस व्यवस्था के अभाव में आयुर्वेद के सैकड़ों छात्रों एवं छात्राओं का जीवन बर्बाद हो रहा है। साथ ही, बिहार-राज्य स्नातकोत्तर आयुर्वेद शिक्षा-संस्थान से भी वंचित रह रहा है। अतः ऐसी व्यवस्था करने में राज्य-सरकार देर न करे।'

रा० आयु० यू० चिकित्सा अधिकारियों का सम्मेलन

भगवान धन्वन्तरि की प्रेरणा से राजकीय आयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सक संघ उत्तर प्रदेश के आगरा मण्डलीय चिकित्साधिकारियों का सम्मेलन दि० २२-७-७३ को जैन धर्मशाला राजामन्डी आगरा के विशाल कक्ष में आदरणीय वैद्य श्री पटवर्धन जी की अध्यक्षता में प्रातः ९-४५ से हुआ। इस अवसर पर चिकित्सक संघ के महामंत्री वैद्य श्री आनंदकुमार बरनवाल एवं भूतपूर्व मंत्री वैद्य श्री परमेश्वर शर्मा घिल्डियाल जी की उपस्थिति से चिकित्साधिकारियों का विशेष रूप से उत्साहवर्धन हुआ।

कार्यवाही का प्रारम्भ वैद्य गौर कृष्ण गोस्वामी द्वारा मंगल पाठ से हुआ। तत्पश्चात आगरा क्षेत्र के आयुर्वेदिक यूनानी अधिकारी महोदय वैद्य श्री प्रेमचन्द्र बिश्नोई ने सभी चिकित्साधिकारियों को सम्बोधित करते हुए यह आवाहन किया कि हमारा संघ सभी आयुर्वेद सेवा-रत राजकीय कर्मचारियों का संघ है और इसके माध्यम से हमने अनेक उपलब्धियां प्राप्त कीं अतएव हमारा और आपका यह प्रथम पुनीत कर्तव्य है कि हम स्वयं इस संघ के सदस्य बनें और अन्य सभी साथियों को इसके लिए प्रेरणा प्रदान करें। इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमुख कर्तव्य हमारा यह है कि आयुर्वेद के आधारभूत उद्देश्य, "स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् आतुरस्य विकार प्रशमनम्" को अपने समक्ष रखते हुए अपने कर्तव्यों के पालन में तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में त्याग, सहानुभूति एवं समाज सेवा में सदैव तत्पर रहें तथा स्वयं को अनुशासित कर विभागीय अनुशासन के प्रति सदैव निष्ठावान रहें।

तदुपरान्त वैद्य श्री घिल्डियाल जी भूतपूर्व महामंत्री ने भारत सपूत स्व० श्री लोकमान्य तिलक के उद्घोष 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का स्मरण दिलाते हुए आयुर्वेद विभाग के प्रशासन का प्राप्त स्वतंत्रता की ओर ध्यान आकर्षित किया। इस हेतु भूतपूर्व राज्य मंत्री स्वास्थ्य, श्री प्रेमचन्द्र जी शर्मा एवं श्री वैद्य धर्मदत्त जी भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री, उ० प्र० की भूरि-भूरि प्रशंसा की जिनके द्वारा विभाग को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। अब हमारे विभाग की शासन व्यवस्था पूर्णतः हमारे ही अपने अधिकारी के आधीन है। प्रारम्भ में कुछ कठिनाइयां स्वाभाविक हैं जिनका सामना हम आप सभी को धैर्यपूर्वक करना है। तत्पश्चात् संघ की उपलब्धियों को बताते हुए उन्होंने कहा कि यह संघ के निरन्तर प्रयत्न का ही परिणाम है कि आज हमारे बीच में बैठे हुए अध्यक्ष महोदय सहायक निदेशक के पद पर पदोन्नत होकर जा रहे हैं। संघ इस अराजपत्रित चिकित्साधिकारी का पद शीघ्र ही

समाप्त कर अपने मस्तक के कलंक को मिटा सकें।

इसके पश्चात संघ के महामंत्री वैद्य वरनवाल जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस नये वर्ष का प्रथम दिन आयुर्वेद जगत के इतिहास में सदैव स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जायगा।

इसके पूर्व जब यह कहा जाता था कि आयुर्वेद विभाग की उन्नति अवरुद्ध है तो उसके प्रत्युत्तर में हम यह कहते थे कि हमारा शासन दूसरे लोगों के हाथों में है इसलिए हमारा विकास नहीं हो पा रहा है अब हमें स्वयं अपने उत्तरदायित्व को समझना है क्योंकि क्षेत्रीय प्रशासन हमारे अपने हाथों में है। इन बदली हुई परिस्थितियों में चिकित्साधिकारी बन्धुओं पर गुरुतर भार आ जाता है क्योंकि जनता-जनार्दन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध चिकित्साधिकारी से ही है। उन्हें एक ओर अपनी सेवा द्वारा जनता-जर्नादन का प्रेम आयुर्वेद एवं यूनानी विभाग के प्रति प्राप्त करना है। दूसरी ओर अपने अधिकारियों के प्रति पूर्णरूपेण निष्ठावान् रह कर उनसे प्रशस्ति प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने पद एवं मान-सम्मान के अनुकूल सदाचरण का पालन करना है जिससे चिकित्सालय को प्रतिष्ठा एवं आयुर्वेद को गौरव प्राप्त हो सके। जहां तक संघ की सदस्यता का प्रश्न है, प्रत्येक चिकित्साधिकारी अपने पद पर आते ही संघ का स्वत: सदस्य बन जाता है। सदस्यता शुल्क देकर केवल मात्र वैधानिक रूप प्राप्त करना रहता है अतएव हमारा आपका यह पुनीत कर्तव्य है कि हम शत प्रतिशत रूप में सदस्य बन कर अपने संघ को संगठन एवं आर्थिक दृष्टि से दृढ़ करने का गौरव प्राप्त करें। अन्त में खेद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कतिपय हमारे भाई पाश्चात्य सभ्तया के चकाचौंध में अर्थ-लोलुप होकर अपने अस्तित्व को ही भूल जाते हैं कि हम आयुर्वेदिक यूनानी में आयुर्वेद चिकित्सा हेतु नियुक्त किये गये है। हमारे कुछ साथी प्रमादवश चिकित्सालय की मुद्रा में आयुर्वेद एवं यूनानी शब्द का बहिष्कार करके अपने को हर तरह से डाक्टर सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं यह एक आत्मघाती प्रवृत्ति है। अतएव अपने बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपने कर्तव्यों और कार्य-कलापों द्वारा जनता में अपनी चिकित्सा के प्रति आस्था एवं विश्वास उत्पन्न करें और यह सिद्ध करने का प्रयास करे कि वे रोगी की चिकित्सा करने में पूर्णरूपेण सक्षम हों और एलोपैथी चिकित्सकों की अपेक्षा समाज के लिए अधिक उपयोगी है। अन्त में उन्होंने सभी बन्धुओं का आवाहन किया कि आइये हम अपने संगठन को दृढ़ करें और अक्टूबर माह में होने वाले वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रदेश की राजधानी में एकत्र होकर अपनी संगठन शक्ति का परिचय दें ताकि हम अपनी कठिनाइयों को शासन के समक्ष प्रभावशाली ढंग से रख सकें।

इसके उपरान्त अध्यक्ष महोदय ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा यह सत्य है कि अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी हम बहुत कुछ आगे बढ़े। नवीन शासन में आने वाली कठिनाइयों से निराश न हो; वे सब के सहयोग से स्वयं ही दूर हो जायेगी। हमें आत्म-निरीक्षण करते हुए कर्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिए ताकि हम सफलता की ओर अग्रसर हो सकें।

तत्पश्चात् संघ के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रघुनन्दन प्रसाद ने अध्यक्ष श्रीपटवर्धन जी का आभार प्रकट करते हुए कहा कि उन्होंने झांसी से पधार कर हमें जो मार्ग दर्शन एवं आशिवाद प्रदान किया है उसके लिए हम हृदय से धन्यवाद देते हैं।

क्षेत्रीय आयुर्वेदिक यूनानी अधिकारी स्री प्रेमचन्द्र जी विश्नोई के सहयोग की प्रशंसा करते हुए उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की गयी। संघ के महामंत्री एवं भूतपूर्व मंत्री की प्रेरणा एवं सतत प्रयास का ही यह परिणाम है कि हम इस क्षेत्र में सम्मेलन का आयोजन करते में सफल हो सके। मैं किन शब्दों में उनके प्रति आभार प्रकट करूं जिन्होंने वर्षा त्रृतु में मार्ग की कठिनाइयों को सहन करते हुए यहां पधार कर हम चिकित्साधिकारियों का उद्‌बोधन किया है। मैं इस क्षेत्र के सभी चिकित्साधिकारियों की ओर से यह आश्वासन देना चाहूंगा कि हम संघ द्वारा प्रस्तुत ग्यारह सूत्री मांगों का समर्थन करते हैं तथा भविष्य में जो भी पग संघ उठायेगा उसके लिए हम तन, मन, धन से सहयोग देने के लिए तैयार हैं। अन्त में आये हुए चिकित्सक बन्धुओं को धन्यवाद देते हुए कहा कि इतनी अधिक संख्या में उनकी उपस्थिति संघ के प्रति निष्ठा एवं जागरूकता का परिचायक है। अब वह दिन दूर नहीं है जब कि हम समाज एवं शासन में अपनी योग्यता एवं प्रतिष्ठा के अनुरूप अपना स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ० प्र०, लखनऊ लेखकों को आयुर्वेदिक एवं तिब्बी पुस्तकों पर पुरस्कार

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ आयुर्वेदिक एवं यूनानी के विद्वानों को (१) काय चिकित्सा (२) शल्य-शालाक्य (३) आयुर्वेद शिक्षण के लिए आधारभूत विज्ञान (४) द्रव्य विज्ञान एवं रस-शास्त्र (५) प्रसूति एवं स्त्री रोग एवं कौमार भृत्य आदि विषयों पर पुस्तक-प्रणयन हेतु आमंत्रित करती है। उच्चस्तरीय विशेष कर आयुर्वेदिक महाविद्यालयों के लिए पाठ्य-ग्रंथ के रूप में उपादेय पुस्तकों पर शासन की स्वीकृति के पश्चात् पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे। इस प्रतियोगिता में वे ही पुस्तकें या पाण्डुलिपियां सम्मिलित की जायेंगी जो सन् १९६५ के पश्चात् लिखी गयी हों या प्रकाशित हुई हों। तिब्बी पुस्तकें उर्दू में भी स्वीकार की जायेंगी प्रतियोगिता में जाने वाली पुस्तकें सम्पूर्ण तथा कम से कम २५० पृष्ठ की अवश्य होनी चाहिए। वे पुस्तकें जो एक बार इस प्रतियोगिता में आ चुकी हैं अथवा अकादमी द्वारा जिनके किसी भाग पर पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है वे अथवा उनका नवीन संस्करण इस प्रतियोगिता में नहीं सम्मिलित किया जायेगा। प्रतियोगी लेखकों को चाहिए कि वे अपनी मुद्रित पुस्तक की तेरह प्रतियां दिनांक ३१-७-७३ तक अध्यक्ष आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, तुलसीदास मार्ग, लखनऊ पोस्ट बाक्स संख्या १४१ के पास प्रेषित करें। इस प्रकार प्राप्त पुस्तकों में दो-दो प्रतियां अकादमी पुस्तकालय में रख दी जायेंगी और शेष ग्यारह प्रतियां पुरस्कार घोषणा के पश्चात् सम्बधित व्यक्ति को भेज दी जायेंगी।

ह० मुकुन्दीलाल द्विवेदी
अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ० प्र०
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ-४

अ० शि० आ० कालेज बेगूसराय में सभा

तिथि २०।७।७३ को अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय, बेगूसराय के प्रांगण में कालेज के प्राध्यापक एवं छात्रगण तथा स्थानीय वैद्यों की एक सभा श्री कृष्णचन्द्र प्रसाद प्राचार्य की अध्यक्षता में हुई। जिसमें वर्त्तमान केन्द्रीय परिषद तथा बिहार में आयुर्वेदिक निदेशालय की स्थापना तथा अन्य विषयों पर चर्चा हुई। इस गोष्ठी में दिल्ली आयुर्वेद पत्रकार संघ के प्रधानमंत्री श्री वेदप्रकाश गुप्त जी ने इस सम्बन्ध में केन्द्रीय नीति पर प्रकाश डाला और बिहार प्रान्तीय वर्त्तमान आयुर्वेदिक समस्याओं पर बोलते हुए बतलाया कि इस प्रान्त के पिछड़ेपन का मुख्य कारण वैद्यों में संगठन का अभाव, आयुर्वेदिक निर्देशक पद का अभाव और आयुर्वेदिक औषधालय, आतुरालय आदि का न होना है। जिसके परिणामस्वरूप वैद्यों की समस्याओं का हल, शिक्षण संस्थाओं की उन्नति का मार्गदर्शन तथा जनता औषधालयों के अभाव में आयुर्वेद के प्रति जनता में अभिरुचि उत्पन्न नहीं हो रही है। अन्य सभी प्रान्त में आयुर्वेद निर्देशालय होने के कारण वहां की शैक्षणिक संस्थाओं के विकास और आयुर्वेदिक औषधालयों के खुलने से जनता में आयुर्वेद के प्रति रूचि उत्पन्न हुई। यहां भी जबतक वैद्यों का दृढ़ संगठन नहीं होता। तथा आयुर्वेदिक डायरेक्टरेट की स्थापना नहीं होती तबतक वैद्यों तथा जनता में जागृति नही आ सकती।

अतः में प्राचार्य महोदय ने आयुर्वेद के विकास के लिए सबों से सहयोग की अपील की।

योग क्रियाओं से घातक रोगों की चिकित्सा

चण्डीगढ़। कैंसर, लकवा व हृदय रोग जैसी घातक बीमारियों की योग पद्धति से आसानी से चिकित्सा हो सकती है।

एक भारतीय योग - विशेषज्ञ डा० स्वामीराम के अनुसार ऐसी सभी बीमारियां मस्तिष्क व श्वास क्रिया तथा फेफड़ों की क्रिया को नियन्त्रित कर तथा विभिन्न ग्रन्थि व्यवस्थाओं के नियमन से ठीक की जा सकती हैं।

इन बीमारियों का मूलकारण 'शारीरिक व मानसिक प्रक्रिया में एकाग्रता का अभाव' बताते हुए डा० राम ने यहां एक संवाददाता सम्मेलन में बताया कि गत दो वर्षों में यौगिक क्रियाओं के जरिये न्यूयार्क के पुनर्वास केन्द्र में कैंसर के नौ तथा लकवे के करीब सात सौ रोगियों की चिकित्सा की गयी और वे बिलकुल ठीक हो गये। डा० राम न्यूयार्क में मिनिगंर फाउन्डेशन में

सलाहकार व विशेषज्ञ के पद पर कार्यरत हैं।

नेत्र-यज्ञ का आयोजन

श्री कृष्ण फार्मेसी के अध्यक्ष वैद्य पं० कृष्णलाल राठी ने पुगलवाड़ा (जोधपुर) में एक विशाल नेत्र-यज्ञ का आयोजन किया जिसमें विभिन्न नेत्र-पीड़ित रोगियों को नेत्रों का निदान तथा चिकित्सा की गई। विशेष उल्लेखनीय है कि वैद्य राठी जी दिव्य ज्योति नामक नेत्र बिन्दु के आविष्कारक हैं। वह औषधि नेत्राभिष्यन्द, दृष्टिहीनता, मोतियाबिन्दु, जाला, गोथा नेत्र कुकुणक आदि रोगों में विशेष तौर से लाभदायक पाई गई हैं। वैद्य जी की यह आविष्कृत औषधि भारत के अनेक प्रमुख वैद्यों द्वारा प्रयुक्त तथा प्रशंसित हैं। वैद्य जी ने यह निश्चय किया है कि यह औषधि प्रथम ५०० चिकित्सकों जो इसे प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं निः शुल्क वितरित की जायगी।

शोक संवाद

बड़े दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि मंडावा (झूंझूंनू) के प्रमुख राजवैद्य श्री बजरंगलाल जी ढंड का स्वर्गवास ता० ४।८।७३ को हो गया। उन्होंने आयुर्वेद की सेवा निस्वार्थ भाव से की थी। दाह संस्कार में हर जाति के काफी लोग सम्मिलित थे। शोक में बाजार, स्कूल, संस्थायें बंद रही। उनके ५ पुत्र हैं जो आयुर्वेदके द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र व धर्मार्थ औषधालय, पटना—१ में माह जुलाई १९७३ में १०७२ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। जिनमें २२६ नये रोगी और ८४६ पुराने रोगी थे। ज्वर ३०, चर्मरोग ७०, कर्णश्राव एवं कर्णशूल ३०, आमातिसार ४०, प्रदर १५, कासश्वास ६, मुखपाक १२, कोष्ठबद्धता ९, प्रवाहिका ८, शिरःशूल ३, नेत्राभिष्यन्द ३।

चिकित्सापदाधिकारी
विश्वनाथ मिश्र

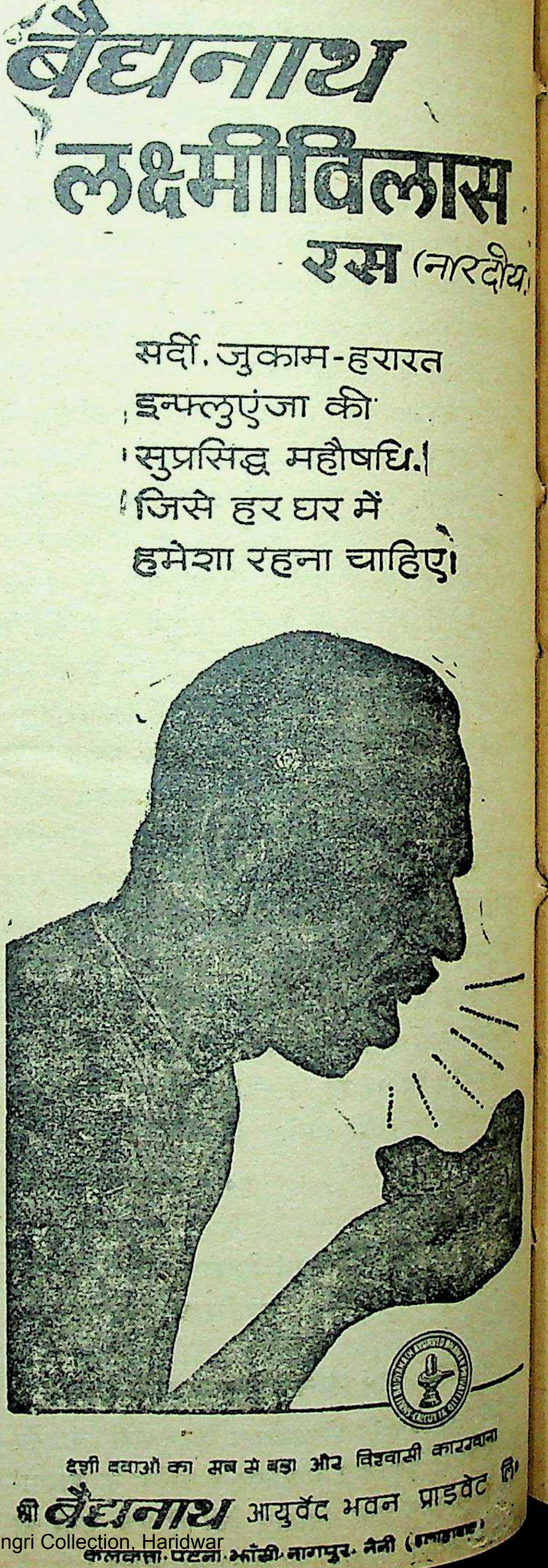
बैद्यनाथ
लक्ष्मीविलास
रस (नारदीय)
सर्दी. जुकाम-हरारत
इन्फ्लुएंजा की
सुप्रसिद्ध महौषधि।
जिसे हर घर में
हमेशा रहना चाहिए।
देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता· पटना· झाँसी· नागपुर· नैनी (इलाहाबाद)

श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, नागपुर

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह जुलाई सन् १९७३ में ६०२० रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ७४३ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वर-१०१, कास-१७, उदावर्त्त-१०४, श्वास-४, अतिसार-३, प्रतिश्याय-५३, उदरशूल-२, शिरःशूल-३, दन्त रोग-५, कर्ण रोग-६, नेत्र रोग-१, वातव्याधि-१११, रक्ताल्पता-१, आमविकार-४७, कृमि-१२, शोथ-२, क्षुद्र कुष्ठ-३, व्रण-७, दौर्बल्य-७५, मूत्राघात-१, दाह-४, मुखपाक-४, गलग्रंथि शोथ-१, रक्त पित्त-३, छर्दि (वमन)-१, मूत्र कृच्छ्र-१७, अर्श-८, अम्लपित्त-११, रक्त विकार-६२, मन्दाग्नि-५, उपदंश-१, पाण्डु-१, रक्त प्रदर-१६, कोष्ठबद्धता-२, विसर्प-२०, गृध्रसी-१, यकृतोदर-४, प्रमेह-१, अजीर्ण-४, कटिशूल-२, स्वप्नदोष-३, सगर्मी-३, अर्धावभेदक-१, रक्तातंव-१, पक्षाघात-१, विसूचिका-१, अण्डकोष-१ ट्रप्सी-१, कुल जोड़ ६४३

श्री ५ की सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग

आयुर्वेद चिकित्सालय कांठमांडू (नेपाल)

२०३० साल वैशाख महीने भर में हुई रोगियों की निःशुल्क सेवा का विवरण—

नया और पुनरागत रोगियों की कुल संख्या....२३००

२०३० साल वैशाख महीना भर में निःशुल्क सेवा की गयी रोगियों की कुल संख्या....१७५५

पुरुष रोगियों की संख्या....१०१०

स्त्री रोगियों की संख्या....६३५

बालक रोगियों की संख्या....८०

जिसमें निम्न विभाग की निम्न संस्था द्वारा सेवा की गयी है।

(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या....११८१
(२) शल्य शालाक्य " " " " ५७४

पुनरागत रोगियों का सेवा-विवरण

पुनरागत रोगियों की संख्या....६२
(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या ४५४
(२) श[illegible]लाक्य " " " " १७१

अंतरंग विभाग के रोगियों का विवरण

अंतरंग विभाग के रोगियों की कुल संख्या....९४
(१) गत मास के इस मास में अन्तरित संख्या....१४
(२) इस मास भर में प्रवेशित ८०
(क) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या...२९
(ख) आंशिक " " " " ६
(ग) स्वेच्छा से जाने वालों की " " ७
(घ) आगामी मास में अन्तरित " " १२

श्री ५ की सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग

आयुर्वेद चिकित्सालय

२०३० साल जेष्ठ महीने भर में हुई रोगियों की निःशुल्क सेवा का विवरण—

नया और पुनरागत रोगियो की कुल संख्या....३२२०

२०३० साल जेष्ठ महीने भर की निःशुल्क सेवा की गयी रोगियों की कुल संख्या....२२१०

पुरुष रोगियों की संख्या....१२६३
स्त्री " " " ६६०
बालक" " " ८७

जिसमें निम्न विभाग की निम्न संस्था में सेवा की गयी है

(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या...१६१०
(२) शल्य शालाक्य " " " " ६००

पुनरागत रोगियों का सेवा-विवरण

पुनरागत रोगियों की संख्या .. १११०
(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या .. ८३२
(१) शल्य शालाक्य " " " " २७८

अंतरंग विभाग के रोगियों का विवरण

अंतरंग विभाग तर्फ के रोगियों की कुल संख्या....१०४
(१) गत मास के इस मास में अन्तरित संख्या....१२
(२) इस मास भर में प्रवेशित ९२
(क) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या....५५
(ख) आंशिक स्वास्थ्य लाभ करनेवालों की संख्या....६
(ग) स्वेच्छा से जाने वालों की संख्या....७
(घ) आगामी मासमें अन्तरित करने वालोंकी संख्या २४

बैद्यनाथ-प्रकाशन की अपूर्व देन

अंग्रेजी भाषा में अद्वितीय आयुर्वेद ग्रंथ

आयुर्वेदीय चिकित्सा का

थेराप्युटिक गाइड टू आयुर्वेदिक मेडिसिन

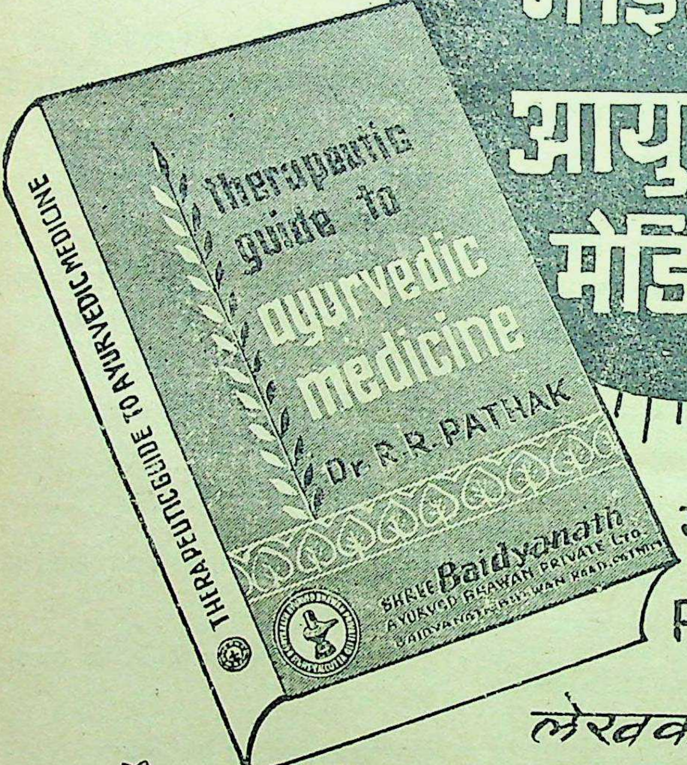
THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINE
therapeutic guide to
ayurvedic medicine
Dr. R. R. PATHAK
SHREE Baidyanath
AYURVED BHAWAN PRIVATE Ltd.
BAIDYANATH BHAWAN ROAD, PATNA

मूल्य सिर्फ पन्द्रह रुपये

Price Rs. Fifteen only

लेखक

आयुर्वेद: महामहोपाध्याय पं॰ रामरक्ष पाठक

By

Dr. R. R. PATHAK

With diagnosis & prescriptions for all the diseases.

समस्त रोगों के निदान एवं व्यवस्था सहित

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

SHREE Baidyanath AYURVED BHAWAN PRIV

स्वास्थ्य, इलाज एवं शक्ति के लिये

बैद्यनाथ दवाएँ

सदा सेवन करें

देशी दवाओं का सबसे बड़ा
और विश्वस्त कारखाना

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्रा. लि.

प्रसव के बाद
अवश्य सेवनीय

बैद्यनाथ
दशमूलारिष्ट

देशी दवाओं
का
सबसे बड़ा
और विश्वस्त
कारखाना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
कलकत्ता • पटना • झांसी • नागपुर • नैनी (इलाहाबाद)

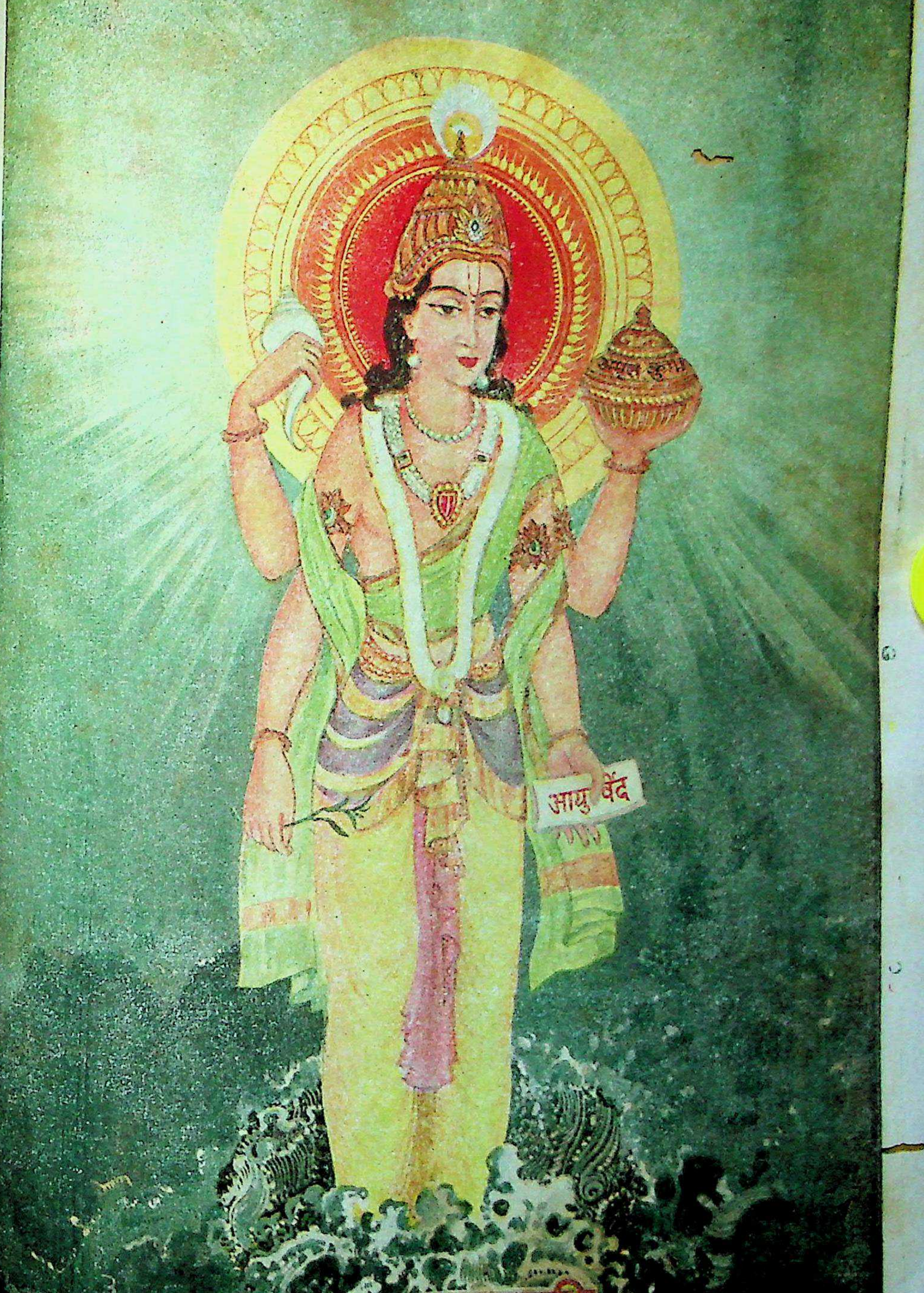

भगवान धन्वन्तरि

सचित्र आयुर्वेद

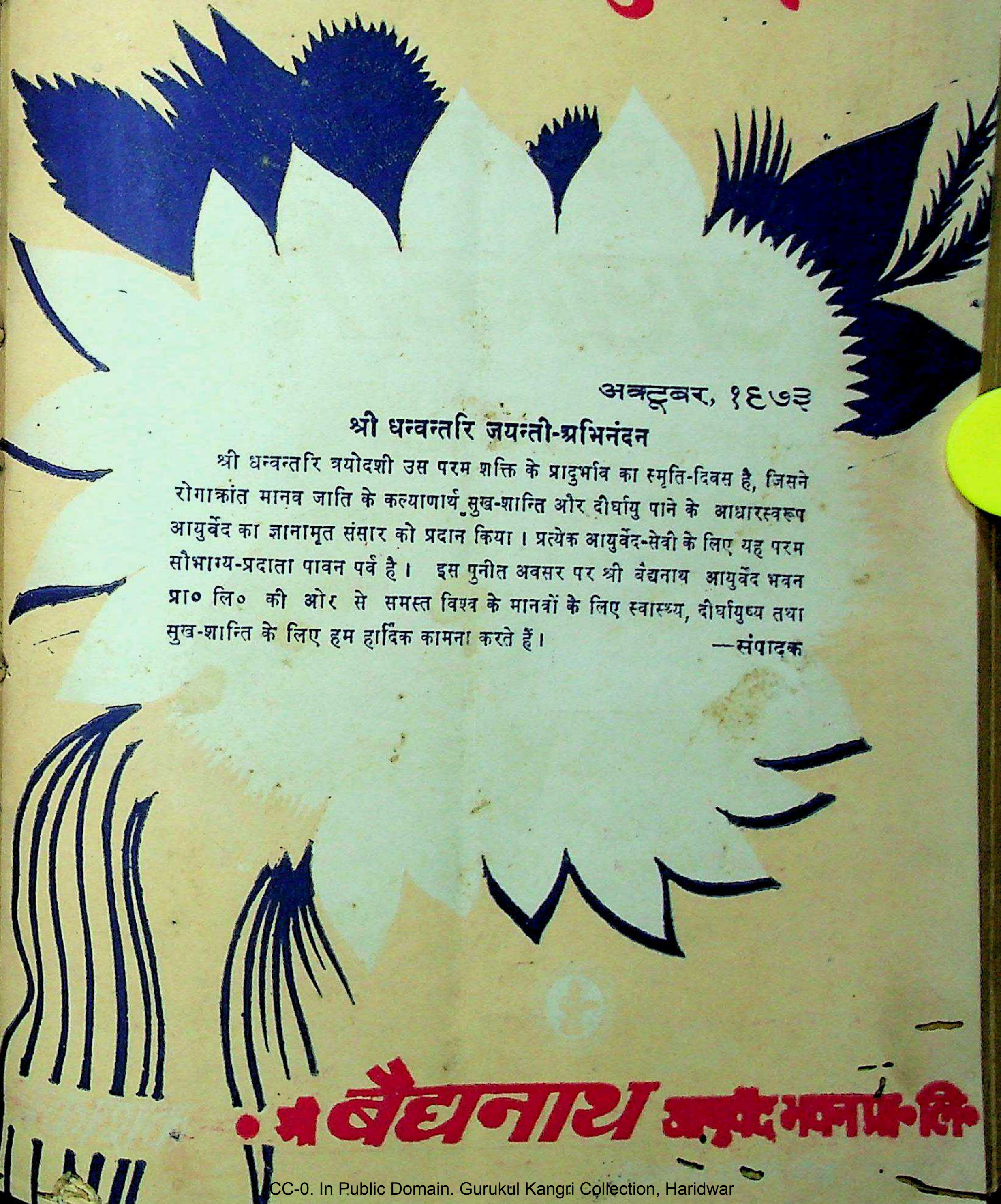

अक्टूबर, १९७३

श्री धन्वन्तरि जयन्ती-अभिनंदन

श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी उस परम शक्ति के प्रादुर्भाव का स्मृति-दिवस है, जिसने रोगाक्रांत मानव जाति के कल्याणार्थ सुख-शान्ति और दीर्घायु पाने के आधारस्वरूप आयुर्वेद का ज्ञानामृत संसार को प्रदान किया। प्रत्येक आयुर्वेद-सेवी के लिए यह परम सौभाग्य-प्रदाता पावन पर्व है। इस पुनीत अवसर पर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से समस्त विश्व के मानवों के लिए स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य तथा सुख-शान्ति के लिए हम हार्दिक कामना करते हैं।

—संपादक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

स्त्रियों के स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं
सुखी जीवन के
लिए ....

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नैनी (इलाहाबाद)

आयुर्वेद साहित्य को एक अमूल्य भेंट

वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य तथा रक्तमोक्षण इन पञ्चकर्मों का एवं पूर्वकर्म स्नेहन स्वेदन आदि का २०० शय्याओं की अस्पताल में क्रियात्मक ज्ञान तथा शास्त्रीयज्ञान के आधार पर बहुत वर्षों तक अनुभव करके यह ग्रन्थ लिखा गया है। संपूर्ण वात रोगों की आधी चिकित्सा वस्ति कर्म है। कफ की वमन और पित्त की विरेचन प्रधान चिकित्सा है। आयुर्वेद चिकित्सकों के लिए इसका अध्ययन आवश्यक है। आयुर्वेद कालेजों में पढ़ाने के लिये यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। स्नातकोत्तर तथा अन्वेषण में लगे हुए छात्रों एवं वैद्यों को पथ प्रदर्शक के रूप में यह उपयुक्त ग्रन्थ है।

लेखक

ह. श्री. कस्तुरे

जी. सी. ए. एम (हैद्राबाद) एच. पी. ए. जामनगर,
सुप्रिन्टेडेण्ट श्रीमती मनीबेन अमृतलाल हरगोवनदास
सरकारी आयुर्वेदिक हॉस्पिटल, अहमदाबाद

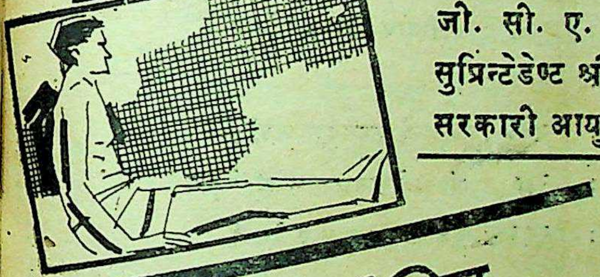

आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान

मध्यप्रदेश शासन की आयुर्वेदानुसंधान समिती द्वारा प्रथम पुरस्कृत

पृष्ठ संख्या ६८८ चित्र संख्या २४
मूल्य १५ रु.

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
ग्रेट नाग रोड, नागपुर ९.

संरक्षक :

आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

परामर्शदाता :

आयुर्वेद-वृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक

संपादक :

श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	लेखक
धन्वन्तरि-वन्दन	२०३	आचार्य गौर कृष्ण गोस्वामी शास्त्री
आरोग्य-देवता नमन नमन	२०४	गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
संपादकीय	२०५	
श्रीधन्वन्तरि जयन्ती	२०६	आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य
आरोग्य के देवता 'भगवान धन्वन्तरि'	२०९	श्री नागेन्द्रनारायण शर्मा वैद्य
उदर—४	२१३	वैद्य रणजित राय देसाई
An Ideal Vaidya of Ancient Ayurveda	२२०	Dr. P. M. Mehta
गन्ध प्रसारिणी	२२३	कुमारी कान्ति श्रीवास्तव
केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद द्वारा निर्मित आयुर्वेदीयपाठ्यक्रम	२२५	कविराज एस० एन० बोस
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा—११	२३०	आचार्य पं० रामरक्ष पाठक
श्लेष्मक ज्वर (फ्लू)	२४१	आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायण खरे
माता में गर्भ की विषमयता	२४६	डा० दिवाकर उपाध्याय
सामयिक चर्चाएँ	२५१	(संकलित)
एक आयुर्वेद-मनस्वी का महाप्रयाण	२५३	वैद्य घनश्याम शर्मा
पाठकों के पत्र	२५५	
अभिभाषण	२५६	
आयुर्वेद जगत	२५७	

वार्षिक मूल्य ५ रु०] [एक प्रति ५० पै

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामायमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष २६ | पटना, अक्टूबर १९७३ | अंक—४

धन्वन्तरि-वन्दन

आचार्य गौर कृष्ण गोस्वामी शास्त्री, काव्य-पुराण-दर्शन-तीर्थ

घनस्तोमश्यामं तपनकररागाम्बरधरं,
मयूराणां पिच्छं वकुलकुलमालं परतरम् ।
चलच्चक्राम्भोजामृतकलशशङ्खाङ्कितकरं,
नमामीशंधन्वन्तरिमजमनन्तं गुणमणिम् ॥१॥

सुधाधाराधारं सकलसुखसारं सुरवरं,
गुणानामागारं गदववहरं गौरवव्रतम् ।
भयग्रन्थिध्वंसं भवजलजलीलापरिमलं,
प्रपद्ये पुण्यानां परप्रकटप्रीतिप्रतिफलम् ।।२॥

अमन्दानन्दानां निधिममितरुपं तनुभृतां,
सतां स्नेहस्थानं शरणमसतां क्लेशशमनम् ।
गिरां ज्ञानारण्यं गतिमति शयेनोत्तमधियः,
जपेज्जातिव्रातोद्धरजलधिजं जीवजनकम् ॥३॥

कलाकान्तंशान्तंभुवनवनविभ्रान्तनिलयं,
कलालापालोपाकलकलितक्रीडाकुवलयम् ।
नराणामालम्वं कविकुलकदम्वाङ्ककृतिनं,
श्रये नित्यं सत्यं विभुमजितमीशं जलधिजम् ॥४॥

धराणामुद्धारं धृतिततिधरंध्येयमसितं,
सुराणां सौन्दर्यं दनुजवधुनीराजितपदम् ।
पुराणानां पाठं प्रतिपदप्रभाप्रेमप्रतिमं,
स्मरेत् सिध्दंधन्वन्तरिममृतवन्धु नवनिधिम् ॥५॥

चिन्तन के क्षणों में

आरोग्य-देवता ! नमन नमन

आरोग्य देवता । नमन नमन
यह भक्तावलि अवलोक रही
प्रकटो, करने को दु:खदलन ।
आरोग्य देवता । नमन नमन ।।

देवों और दानवों ने
जब किया समुद्र-मंथन भारी ।
प्रकटे थे अमृतकलश धार
ले स्वस्थातुर हित उजियारी ।
स्वस्थों के स्वास्थ्य - सुरक्षक
आतुर जन के अवलम्बन ।।१।।

है आधि-व्याधि का जाल तना
जगती के कोने-कोने में ।
अज्ञान तिमिर से दिशाभ्रमित
जन लगा भटकने, कोने में ।
सिर सहलाने, पथ बतलाने
आओ, हे भाग्य भाल चन्दन ।।२।।

मतभेद घृणा आलस्य त्याग
सब वैद्य संगठित हो जायें ।
नव समयोचित आदर्श पंथ
शुभ संकल्पों का अपनायें ।
कर दें इस जग को सबल स्वस्थ
कर आयुर्वेद का हित-चिन्तन ।।३।।

सब हों सुखी सदा सब विधि
न किसी ओर भी रोग रहें ।
सब ही कल्याण सदा देखें
सब दूर दु:खों से लोग रहें ।
अमृतवितरक, इस जगती तल पर
प्रकटो करने अमृत-वितरण ।।४।।

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

सम्पादकीय

आरोग्य-देवता की जयन्ती

आगामी कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार २३ अक्टूबर, ७३ को मानव मात्र के आरोग्य-देवता श्री धन्वन्तरि महाराज की जयन्ती इस वर्ष पड़ रही है—उक्त दिवस आयुर्वेद-सेवियों के लिए एक महान एवं पवित्र-दिवस है, इसमें दो मत नहीं। भारतीय संस्कृति में महापुरुषों अथवा महान विभूतियों की जयन्ती मनाने की परम्परा के पीछे मूलोद्देश्य यह रहता आया है कि जिन विशिष्ट गुणों के कारण महापुरुष लोकदृष्टि में वरेण्य रहे हैं, उनकी अवतारणा हम अपने जीवन में करें और जिन आदर्शों तथा संकल्पों को लेकर कोई महापुरुष लोक-जीवन में समादृत हुआ, उसका पूरी निष्ठा के साथ पालन करें। लोकसंग्रही महापुरुषों का 'लोक हिताय' सर्वथा समर्पित जीवन होता है—और उसके पीछे विशुद्ध जन-सेवा अथवा मानव-सेवा की भावना ही निहित होती है। श्री धन्वन्तरि महाराज का प्रादुर्भाव भी लोक हिताय ही हुआ था—आधिव्याधि से पीड़ित मानव-जगत के कल्याणार्थ ही भवनान् धन्वन्तरि अमृतकलश लिए इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे—और इस अर्थ में श्री धन्वन्तरि हमारे आरोग्य-देवता हैं—उनका स्मरण एवं स्तवन उन लोगों के लिए जो चिकित्सा-क्षेत्र से सम्बन्धित हैं; एक पुण्य कार्य होता है। धन्वन्तरि-पूजन-अर्चन की इस पुण्य परम्परा को हम अक्षुण्ण बनाए रख रहे हैं, इतना ही अलम् नहीं है। धन्वन्तरि त्रयोदशी एक अवसर हमें देती है, जबकि हम समवेत होकर आयुर्वेद-हित में विचार-विमर्श करें और भविष्य की रूप-रेखा निर्धारित करें।

जैसा कि विदित है, आयुर्वेद एक सार्वभौम चिकित्सा-पद्धति है और यह एक ऐसा आरोग्य-शास्त्र है जो जन्म से मृत्यु-पर्यन्त मानव जीवन को अपनी इयत्ता में समेटता है। फिर भी इस बात से इनकार नहीं करना होगा कि आयुर्वेद सहस्रों वर्ष पूर्व प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र है और वर्त्तमान युग में, जबकि आधुनिक विज्ञान ने हमारी सम्पूर्ण जीवन-पद्धति एवं विचारधारा में आमूल-चूल परिवर्त्तन कर दिया है, और प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन, परीक्षण-पद्धति से होने लगा है—यह अत्यन्त समीचीन एवं युक्ति-युक्त प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों का परीक्षण वैज्ञानिक आधार पर हो और नवीन प्रयोगों के द्वारा इस प्राचीन चिकित्सा-विज्ञान को उन्नत किया जाना चाहिए—इसके लिए वैज्ञानिक साधनों या उपकरणों का भी पूर्णतया उपयोग किया जाना चाहिए। पुरानपंथी एवं लकीर का फकीर बनने से अब हमारी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती—इस सत्य को हृदयंगम कर लेना चाहिए। आयुर्वेद के प्रतिसंस्कार की दिशा में हमारे कदम तेजी से उठने चाहिए—अन्यथा प्रगति की दौड़ में हम पीछे रह जायंगे। आज इस बात की आवश्यकता है कि आयुर्वेद को हम युगानुरूप बनाएं, नयी शब्दावली एवं नवीन परिधान एवं नीवन सांचे में हम आयुर्वेद को ढालें—उसका स्वरूप प्रकृत्या सार्वभौम है, अन्तरराष्ट्रीय है। आयुर्वेद को विश्वचिकित्सा-पद्धति का जामा हम तभी पहना सकेंगे, जबकि हमारी वृत्ति उदार हो, हममें ग्रहणशीलता (रिसेपटिवनेस) हो और हमारा मानस-क्षितिज व्यापक हो।

आचार्य वाग्भट के 'विनिगूढार्थ तत्वानां प्रदेशानां प्रकाशकः' इस वचन के अनुसार प्रायोगिक परीक्षण (प्रेक्टीटल आब्जरवेशन) के आधार पर हम आयुर्वेद में नवीण प्राण का संचार कर सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि कतिपय आयुर्वेदिक प्रतिष्ठान, जिनमें श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० प्रमुख है, इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इस दिशा में आयुर्वेद औषधि-निर्माण करने वाले संस्थानों के अतिरिक्त प्रशासन का भी दायित्व होता है—प्रशासनिक सहयोग के बिना इस दिशा में समुचित प्रगति नहीं हो सकती।

अतः आज के इस पुनीत अवसर पर हम दृढ़व्रती बनें—हम आयुर्वेदोन्नयन के लिए यह संकल्प लें कि विरासत के रूप में प्राप्त आयुर्वेद जैसे चिकित्सा-विज्ञान को उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा करके हम विश्राम लेंगे—उसके पूर्व नहीं। धन्वन्तरि आविर्भाव-दिवस से हम यही शुभ प्रेरणा लें।

श्रीधन्वन्तरि जयन्ती

आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य,

आयुर्वेदाचार्य, एच. पी. ए. (जाम०)

आदिदेव श्री धन्वन्तरि

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, २३-१०-७३ को आरोग्य के देवता, भगवान श्री धन्वन्तरि का पवित्र आविर्भाव दिवस है। यह अवतार भगवान के ऐसे स्वरूप का प्रतीक है—जो स्वास्थ्य, शक्ति, दीर्घायु का प्रतीक है। वैद्य जगत का यह राष्ट्रीय पर्व है। भगवान श्री धन्वन्तरि वैद्य जगत के राष्ट्रीय देवता-प्रतीक हैं। अतीतकाल में सहस्रों वर्ष पूर्व आज ही के दिन समुद्र-मंथन के पश्चात् अमृत कलश लिए भगवान धन्वन्तरि इस पृथ्वीतल पर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ, जरारोग के निवारणार्थ अवतरित हुए थे। भागवत-पुराण में लिखा है कि धन्वन्तरि भगवान स्वमेव कीर्ति है, रोगों का शीघ्र नाश करने वाले, यज्ञ में भाग दिलाने वाले, आयुर्वेद का आविष्कार करने वाले भगवान समुद्र-मंथन के चौदह रत्नों में एक हैं, धन्वन्तरि का नाम लेने मात्र से ही रोग दूर हो जाते हैं। इस प्रकार की प्रशस्ति है।

धन्वन्तरि का अर्थ—भगवान श्री धन्वन्तरि स्वयं षड् ऐश्वर्य युक्त हैं—सुश्रुत संहिता में डल्हण ने धन्वन्तरि की व्याख्या इस प्रकार की है—धनु शल्यशास्त्रं तस्य अन्तंपारं इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरि। एक अन्य कोषकार ने धन्वन्तरि की व्याख्या इस प्रकार की है--धन्वन्तरि इस प्रकार के पुरुष की संज्ञा है—जो चिकित्सक मात्र का देवता है, जो समुद्र-मन्थन से उत्पन्न हुए, उनके हाथ में अमृत का कलश था :[1]

श्री धन्वन्तरि ने सुश्रुत संहिता में स्वयं कहा है कि अहं हि धन्वन्तरि—आदि जो शल्य-शास्त्र का पुनरुद्धार करने हेतु प्रकट हुआ। इसी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप धन्वन्तरि शल्य चिकित्सा एवम् वैद्य जगत के प्रतीक-पुरुष बन गये। आगे जो भी शल्य का ज्ञाता अथवा विशेषज्ञ हुआ, उसे भी धन्वन्तरि की उपाधि से विभूषित किया जाने लगा।

पुराणों के अनुसार श्री धन्वन्तरि विष्णु के अवतार हैं। इन्हें इन्द्र ने आयुर्वेद-शास्त्र और भास्कर ने चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान दिया। विष्णु के अवतार होने से इनमें सृजनात्मक एवम् जीवन-शक्ति उत्पन्न करने की विशेष क्षमता रही।

धन्वन्तरि का स्वरूप

धन्वन्तरि के स्वरूप में मतभेद अथवा अन्तर पाया जाता है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत की परम्परा में विभिन्नता मिलती है। दक्षिण से प्राप्त चित्र में दाहिने तरफ के ऊपर के हाथ में चक्र है, परन्तु उत्तर भारतीय चित्र में उसी हाथ में शंख है। इसी प्रकार नीचे वाले हाथ (दक्षिण भारत के चित्र में) दाहिने में जोंक (जलौका) तथा काशी के चित्रों में अमृत कलश दिखाया गया है। अन्य कई ने इसी हाथ में अमृतकलश की बजाय आयुर्वेद-शास्त्र की पुस्तक दी है। ऊपर के बांये हाथ में अमृत-कलश दिया है तथा नीचे वाले में जड़ी-बूटी (औषधि)। बैद्यनाथ; डाबर, के धन्वन्तरि चित्रों में ऊपर के दोनों हाथों-दांये में शंख, बांये में अमृतकलश तथा नीचे के दायें में आयुर्वेद-शास्त्र, बांये में जड़ी-बूटी है। आजकल ये चित्र बहु-प्रचलित हैं। धन्वन्तरि कार्यालय के द्वारा प्रकाशित धन्वन्तरि चित्र में ऊपर के दांये-बांये हाथ में चक्र तथा शंख है। नीचे के दांये तथा बांये में क्रमशः अमृतकलश एवम् वनौषधि है। गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर के धन्वन्तरि मन्दिर भवन है

---

[1] धन्वन्तरिः Name of the physician of the gods, said to have been produced at the churning of the ocean with a cup of nectar in his hand; चतुर्दशरत्नम्

धन्वन्तरि की द्विभुज प्रतिमा है। इसमें ऊपर के हाथ में अमृतकलश है। नीचे के हाथ में वनौषधि एवम् आयुर्वेद है। दाहिने तथा बांये हाथ में चिह्नों का परिवर्तन चित्रकार कर सकता है। उत्तर दक्षिण भारत के धन्वन्तरि चित्रों में शंख, चक्र अवश्य दिखाये गये हैं। वस्तुतः धन्वन्तरि विष्णु के अवतार माने जाते हैं। इन्हीं आदि देव की जयन्ती मनायी जाती है। जोंक (जलौका) तथा चाकू प्रतीकात्मक हैं। वाराणसी के हिन्दू विश्वविद्यालय की धन्वन्तरि प्रतिमा के एक हाथ में चाकू है।

धन्वन्तरि की जयन्ती

धन्वन्तरि-जयन्ती (धन-तेरस) शुभ-संकल्पों का पर्व है। इसका प्रचार शहरों में तथा ग्रामों में सभी जगह है। स्वतंत्रता के बाद इसे धन्वन्तरि जयन्ती के रूप में मनाया जाने लगा-पहिले अधिकांशतः इसे धनतेरस के रूप में नये बर्तन खरीद कर मनाया जाता रहा है। दीपावली के साथ-ही-साथ इसे भी एक या दो दिन पूर्व मनाया जाता है। कार्तिक कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी को धन्वन्तरि जयन्ती, चतुर्दशी को रूप-चतुर्दशी, अमावस्या को दीपावली-लक्ष्मीपूजन, कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को अन्नकूट तथा द्वितीया को यमद्वितीया भातृद्वितीया के रूप में मनाने का प्रचार भी है। धन्वन्तरि जयन्ती का समय स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही अच्छा है। इस समय भगवान हिमांशु अपनी शीतल किरणों से अमृत की वर्षा करते हैं। इस समय एक ताजगी, उत्साह, कार्यक्षमता का दर्शन होता है। 'धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुंत्तम्' की ओर बढ़ने का उत्तम काल होता है। धन्वन्तरि जयंती वैद्य समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य का लेखा-जोखा करने का पव भी है। धन्वन्तरि जयन्ती मेरी नम्र सम्मति में विश्व आयुर्वेद दिवस है और इसी रूप में इसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाना चाहिये। धन्वन्तरि जयन्ती सप्ताह १७-१०-७३ से २३-१०-७३ तक इस प्रकार आयोजित किया जाये। इसे प्रत्येक जिला मुख्यालय पर वैद्यों द्वारा सामूहिक रूप से मनाया जाना चाहिये।

१७-१०-७३- धन्वन्तरि वंदना, वृहद् 'त्रयी' लघुत्रयी का अध्ययन, प्रभावशाली विद्वान वैद्य रेडियो पर अपनी वार्ता, रूपक आदि प्रस्तुत करें।

१८-१०-७३- आयुर्वेदिक ग्रंथों तथा आधुनिक विज्ञान के ग्रंथों का अध्ययनालेखक बन्धु अपने लेख दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक पत्रों में निबन्ध प्रकाशित करावें।

१९-१०-७३- सार्वजनिक स्वास्थ्य में आयुर्वेद का स्थान है, इस ओर ध्यान देकर आयुर्वेद के सद्वृत्त-स्वस्थवृत्त का प्रचार-प्रसार करना चाहिये। समाचार पत्रों में प्रोग्राम दिया जाये।

२०-१०-७३- उपरोक्त तथा पंचशुद्धि अभियान से जनता को परिचित कराना।

२१-१०-७३- मांग-दिवस मनाया जाये। इसके अन्तर्गत राज्य सेवारत वैद्य अपनी मांगें विभागाध्यक्षों तथा सरकार के पास भेजें। प्राइवेट वैद्य अपनी चिकित्सा एवं औषधि - प्राप्ति, निर्माण - विषयक बातों को जिलाधीश एवं सीधे सरकार को लिखें। प्रस्ताव स्वीकृत करके भेजें।

२२-१०-७३- विचार-गोष्ठी, विभिन्न विषयों पर तथा रेडियो पर वार्ता रूपक प्रस्तुत किये जायें।

२३-१०-७३- मुख्य समारोह-धन्वन्तरि जयन्ती (विश्व आयुर्वेद दिवस, पूजन, बंदना, वक्ताओं के भाषण, प्रचार सामग्री का वितरण।)

धन्वन्तरि जयन्ती पर स्थानीय विधान सभा-सदस्यों, लोकसभा - सदस्यों, नगर पार्षदों को आयुर्वेद की ओर ध्यान देने के लिये कहा जाये। वैद्यों का दृष्टिकोण उन्हें समझाया जाये। वैद्यों की मांगों से अवगत कराया जाये। वैद्य समाज का जन-सम्पर्क सूत्र बहुत बड़ा एवं गहरा नहीं है। अतः आजकल के विज्ञापन एवं प्रचार युग में हमको भी बढ़ने का प्रयास करना चाहिये।

धन्वन्तरि जयन्ती को 'केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद' द्वारा व्यापक पैमाने पर मनाने की योजना स्वीकृत कर-प्रचारित किया जाना चाहिये।

विश्व-स्वास्थ्य संगठन जिस प्रकार प्रत्येक ७ अप्रैल को विश्व-स्वास्थ्य दिवस के रूप में आयोजित करती है, ठीक उसी प्रकार केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद को धन्वन्तरि जयन्ती-विश्व आयुर्वेद दिवस के रूप में आयोजन करना चाहिये।

बैद्यनाथ

मृतसंजीवनी

सुरा

कमजोरी दूर

करनेवाली

प्रसिद्ध टानिक

Baidyanath
MRITSANJIWANI SURA
बैद्यनाथ
मृतसंजीवनी
सुरा
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
कलकत्ता · पटना · झांसी · नागपुर · नैनी

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

Baidyanath
PATNA
EXPORT
TO
NAIROBI
FOR EXPORT EXHIBITION
AT NAIROBI
For EXPORT EXHIBITION
AT NAIROBI

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, पटना से नैरोबी (दक्षिण अफ्रीका) को भेजी गयीं आयुर्वेदिक औषधियों की पेटियां। पेटियों के अगल-बगल बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना-केन्द्र के व्यवस्थापक श्री तेजनारायण लाल एवं प्रतिष्ठान के [illegible]

आरोग्य के देवता 'भगवान धन्वन्तरि'

श्री नागेन्द्र नारायण शर्मा वैद्य

विष्णु भगवान के चौबीस अवतारों में से श्री भगवान् धन्वन्तरि बारहवें अवतार हैं। जब सृष्टि के लोगों और लोकनायक देवताओं को अपने सृष्टिसंचालन-कार्य में कितने ही अभावों का बोध होने लगा, शत्रु को पराजित करने के लिए शरीर को सुदृढ़ और अजर-अमर बनाने के लिए ऐसी वस्तु की खोज हुई जिससे कामना सिद्ध हो सके, तब भगवान विष्णु के उपदेश से देवताओं ने अपने प्रतिद्वन्द्वी दैत्यों के साथ सन्धि स्थापित की। यह नीति है कि जिस समय कार्य सिद्ध करने की अत्यन्त आवश्यकता आ पड़े, उस समय शत्रु से भी मेल करके कार्य सिद्ध करनें का उद्योग करना चाहिए। इस प्रकार मेल स्थापित करने के समय बड़े-छोटे और अधिक अथवा कनिष्ठ स्वत्व का विचार न करके प्रतिद्वन्द्वी की इच्छानुसार सुलभ शर्त्तों से ही मिलाप कर लेना चाहिये। देवताओं ने यही कर क्षीरसागर में समस्त लता और औषधियों को डालकर सम्मिलित शक्ति से प्रयोग पर प्रयोग करना अर्थात् समुद्र का मथना आरम्भ किया। उन्होंने अपने प्रयोग-रूपी मन्थन की मथानी मन्दराचल पर्वत को बनाया, परन्तु उसी के लाने में सब थक कर निराश हुए, तब विष्णु के उत्साहदान से उसे लाने में समर्थ हुए, अर्थात् उसकी दिव्य औषधियां प्राप्त कर सके। स्वयं नागराज वासुकी भी इसमें सहायक हुए और मन्थन-कार्य में जैसे रज्जु का उपयोग होता है उसी प्रकार उन्होंने इस कार्य में प्रधान रूप से भाग लिया। दैत्यों ने वासुकीराज की पूंछ पकड़कर मथना अर्थात् निम्नश्रेणी का कार्य करना अस्वीकार किया, इसलिये भगवान की सम्मति से देवताओं ने उस काम को स्वीकार किया और दैत्यों ने उनके मुख भाग को ग्रहण कर कार्य करना आरम्भ किया।

मन्दराचल का भार संभालने के लिये भगवान् ने कच्छपरूप धारण किया और इस प्रकार कच्छप यन्त्र द्वारा मन्थन-प्रयोग होने लग गया। सर्पराज के मुख की झाग और भयानक विष से सभी प्रयोगकर्त्ताओं का शरीर काला और वर्ण-प्रभाहीन हो गया। जैसे विषशोधन में पहले उसके जहरीले भाग ही निकलते हैं उसी प्रकार इस प्रयोग में भी पहले हलाहल विष की उत्पत्ति हुई। जैसे आज चण्डू, कोकेन आदि से प्रजा त्रस्त है उसी प्रकार हालाहल से उस समय पृथ्वी हिलने लग गयी। अन्त में देवताओं की प्रार्थना से महादेवजी ने उसका लैसंस (ठेका) ले लिया और विषसम्बन्धी प्रयोग करने का जिम्मा अपने ऊपर रखा। इसीलिये रसतन्त्र के परमाचार्य भगवान् शिव माने जाते हैं और आज संखिया-सींगिया आदि विषौषधियां रसतन्त्र प्रयोग के कारण प्रजारक्षण में अमृत का काम कर रही हैं। इस विष-प्रयोग में भगवान् शिव को भी बड़ी-बड़ी यन्त्रणायें भोगनी पड़ीं, प्रयोग में विषपान करने के कारण उनका गला श्याम हो गया, उनके प्राण छटपटाने लगे, परन्तु नारायण के अनुग्रह से सब विघ्न दूर हुए और उनका प्रयोग कार्य सफल हुआ।

यह नियम की बात है कि जब मनुष्य एक वस्तु की खोज के लिये निकलता है तब उस मार्ग में उसे और भी अनेक वस्तुओं का ज्ञान होता है, [वह अन्य अनेक बातें ढूंढ़ निकालता है। इस प्रकार अपने प्रयोगों में लगे रहने और समुद्र-यात्रा द्वारा समुद्र को मथ डालने के कर्म में अमृत के सिवा अन्य कई रत्न प्राप्त हुए, जिनमें हलाहल के बाद दूसरा रत्न सुरभि गाय है। इस जाति की गाय बहुत ही दूध, घी देनेवाली थी इसलिये यज्ञ की हवि जुटाने के लिये वह श्रेष्ठ समझी गयी और ऋषियों को सौंपी गयी। इसके बाद श्वेत रंग के उच्चश्रवा जाति के उत्तम अश्व की खोज हुई जो दैत्यराज बलि की सेना में भरती किया गया। फिर इस समुद्रयात्रा के फलस्वरूप एरावत आदि आठ जाति के हाथी और हथिनी आयीं, इन्द्र की राजरक्षा में इनकी नियुक्ति हुई। इस रत्नाकर

ने फिर उन अन्वेषकों को कौस्तुभमणि (जिसे स्वयं विष्णु ने ग्रहण किया) और वृक्ष श्रेष्ठ पारिजात प्रदान किया। इस वृक्ष की अनोखी शक्ति ने देवताओं का मनोभिलाष-पूर्ण करना आरम्भ किया। फिर अप्सराएं आयीं और उसके पीछे विपुल धन-सम्पत्ति पूर्ण करने वाली लक्ष्मीजी प्रकट हुईं। औषधि, जल, पुष्पादि से उनकी पूजा हुई, उन्हें खूब भेंट-पूजा मिली। लक्ष्मी अपना पात्र ढूंढ़ने लगी। जो तपस्या में तपा करता है वह तो लक्ष्मीवान हो नहीं सकता, जो क्रोध का दमन नहीं कर सका वह अपने अध्यवसाय में सफलता प्राप्त कर लक्ष्मीपति नहीं हो सकता, जो केवल ज्ञानी हैं, किन्तु कूपमण्डूकवत घर में पड़े अभीष्टचिन्तन नहीं करते लक्ष्मी उनके भी गले नहीं लिपट सकती, जो उच्चाशय हैं, महात्मा हैं, साहस के साथ उद्योग करते हैं किन्तु काम को वशीभूत नहीं कर सकते, वे यदि अनैतिक कार्य में लगे रहे तो अर्जित द्रव्य गवां देंगे, अतएव लक्ष्मी उनके यहां भी स्थिरा नहीं हो सकती इसी तरह जिसमें आत्मनिर्भरता नहीं है, जो अपने कार्य के लिये दूसरों का मुंह ताकता है लक्ष्मी उसका भी अवलम्बन नहीं करती, जो दिखाने के लिये तो बड़े माला-तिलकधारी और धार्मिक हैं, किन्तु सब प्राणियों में समदृष्टि नहीं रखते, इसी तरह धन की शोभा दान होने पर भी जो दिखाने के लिए, नाम के लिए दान करते हैं कैवल्य प्राप्ति के समान नहीं करते, जो बलवान हैं किन्तु समय के अनुसार वल का प्रयोग नहीं कर सकते, जिन्होंने निर्गुणवादी होकर लोगों का साथ और भ्रमण छोड़ दिया उन पर भी लक्ष्मी प्रसन्न नहीं हो सकती। जो दीर्घायु होकर राष्ट्र की मंगलचिन्ता और परोपकारादि व्रतों का पालन नहीं करते, जो स्वयं अमंगल स्वरूप ही क्यों न हों किन्तु अपने देश की मंगल कामना नहीं करते, जो ऐसे शुष्क निष्कामी हैं कि विष्णु-प्रिया लक्ष्मी की भी कामना नहीं करते, उन्हें लक्ष्मी अपनी कृपाकोर से नहीं देखती। इसीलिए सिन्धुसुता लक्ष्मीजी ने सबको छोड़ परम अध्यवसायी, मननशील, पुरुषार्थी, सृष्टिपालक, सृष्टि की उन्नति और रक्षा में तत्पर, राष्ट्रोन्नति के किये समय पर सब कुछ सहन करने वाले नारायण का ही आश्रय ग्रहण किया। इसके पश्चात् प्रयोग करते-करते वारुणी क्षुधा का आविष्कार

इस प्रकार क्रमशः नौ रत्नों की प्राप्ति हो गई, किन्तु समुद्र-मन्थन बन्द नहीं हुआ, क्योंकि अभी तक देवताओं का अभीष्ट अमृत नहीं निकला। संसार को आरोग्य, आयुष्य और ऐश्वर्य देनेवाले आदि वैद्य, सृष्टि के मनुष्यों और वैद्यों के देवता भगवान् धन्वन्तरि के ही भाग्य में सृष्टि को अमृत देना बदा था। अतएव इस बार के मन्थन में दिव्यकान्ति भगवान धन्वन्तरि अमृतकलश लेकर अवतीर्ण हुए। उनकी कान्ति नवजल-धर समान श्याम और नेत्र पद्म समान लोहित थे। गर्दन मोटी, छाती विशाल, और घुटनों तक लटकनेवाले आजानुबाहु थे। तरुणायु, पीताम्बरधारी और कानों में कुण्डल शोभा दे रहे थे, केश स्वच्छ, सुन्दर और घुंघराले थे। हाथों में कड़े, गले में माला और अनेक आभूषणधारी, सृष्टि मनोमोहक स्वरूप में थे। वे आयुर्वेद के पारंगत थे, इन्द्र के समान वे यज्ञांश के भोजी थे। असुरों ने भगवान धन्वन्तरि के हाथ से अमृतकलश ले लिया। अन्त में भगवान ने मोहिनीरूप धारण कर राष्ट्ररक्षक देवताओं को अमृतपान करा कर अमर किया और दुराचारी असुरों को वारूणी में ही आसक्त रखा, जिससे वे सृष्टि की अधिक हानि न कर सकें। इसके बाद चार रत्नों की और भी प्राप्ति हुई।

ऊपर के वर्णन से यह सिद्ध है कि आदि वैद्य भगवान धन्वन्तरि विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों में से द्वादश अवतार हैं। भारत की चतुर्वर्ण प्रजा जिस प्रकार अपना ऐहिक, पारलौकिक सुधारने के लिये लोक कल्याणकारी भगवान् राम, कृष्ण, वामन आदि का स्मरण, पूजन और व्रतादिक करती है, उसी प्रकार भगवान् धन्वन्तरि का भी अर्चन-पूजन और व्रतोत्सवादि करना चाहिये। आज भारत हीनबल, क्षीणकाय और रोग-शोक ग्रसित हो रहा है। कौन नहीं कह सकता है कि भगवान् धन्वन्तरि को भूल जाने के कारण, उनका यज्ञभाग न निकालने के कारण ही ये यातनाएं भोगनी पड़ रही हैं। हिन्दू भावुक होते हैं, उत्सवप्रिय होते हैं, यह काम समाज प्रवर्तकों का है कि जनसमुदाय को उचित मार्ग पर चलाने का उद्योग करे। व्रत शरीर के लिये बहुत हितकारी है। ब्रह्माण्डपुराण में ब्रह्मदेव ने नारद ऋषि को उपदेश किया है कि ऋतुकाल सात्म्य आदि के विचार किए बिना ही आहार-

बाधा होती है, व्रतोपवासादि से उनकी निवृत्ति होती है। स्कन्दपुराण में प्रति दिन के हिसाब से तिथि, वार, संक्रमण, पक्ष, अवतार आदि के विचार से व्रत, उत्सव और मंगलाचरण करने की विधि बतायी है, जिसके अनुसार परमानन्द प्राप्ति की लालसा रचने वाले हिन्दुओं के साल के ३६५ दिन आनन्द से ही व्यतीत हों।

आज हिन्दू आनन्द मनाना भूल गये हैं, इसीलिये आनन्द भी उनसे दूर होता जा रहा है। हिन्दुओं में क्रमशः मुर्दे की सी शान्ति अपना अधिकार जमाती जा रही है। हिन्दू अपना घर भूल रहे हैं। समाजप्रवर्तक लोग अपने कर्त्तव्य में वैसे दक्ष नहीं रहे। मनुष्य स्वभाव से ही विस्मृतिशील है। ज्यों-ज्यों कोई घटना पुरानी पड़ती जाती है, त्यों-त्यों वह भूलती जाती है। यही कारण है कि भगवान् के अवतारों में से आधुनिक राम और कृष्ण के अवतारों की ही पूजा-अर्चा विशेष रह गयी है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, प्रभृति अवतारों के उपकार लोग भूल गये हैं, नृसिंह और वामन अवतारों का जन्मव्रत (उत्सव) वह भी नहीं होता। कुछ वैष्णवों में ही रह गया है। परशुराम जयन्ती का कहीं नाम-निशान नहीं, बहुत थोड़े मनुष्य यह जानते हैं कि वैशाख शुक्ल की द्वितीया भगवान् परशुराम का स्मरण कराती है। कार्तिक कृष्ण (दाक्षिणात्यों के हिसाब से आश्विन कृष्ण) त्रयोदशी को धनतेरस के नाम से अब तक हिन्दू पूजते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि यह भगवान् धन्वन्तरि की पूजा-अर्चा का हेतु है। जिसकी पूजा करते हैं, को नहीं जाँनते अतएव उन्हें अभीष्ट मिल सकता है? इस दिन भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लेकर जगत्कल्याण के लिये अवतीर्ण हुए थे, अतएव आज भी लोग कुछ न कुछ नवीन पात्र खरीदते हैं, परन्तु नहीं जानते कि यह धन्वन्तरि के कलश का स्मारक है और इसके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। यह समाजप्रवर्तकों का कर्तव्य है कि लोग जो भूल रहे हों उसे समाज को बतलायें।

इधर कुछ जागृति की ज्योति दिखाई पड़ रही है। जहां-तहां लोगों ने अपना घर ढूंढ़ना और अपने स्वरूप को पहचानना आरम्भ किया है, अतएव सब ओर से जीवन-संचार की आशा उत्पन्न हो रही है। इस सन्दर्भ में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने प्रशंसनीय कार्य किया है। उसके द्वारा प्रत्येक बड़े नगर-उपनगर एवं यहाँ तक कि गांव-गांव में भी उनके बिक्री-केन्द्रों पर भगवान् धन्वन्तरि का अवतरणोत्सव मनाया जा रहा है। इससे जन साधारण में भी जाग्रति पैदा हो रही है।

लेखक इस जाग्रति को चतुर्दिक फैलाने के लिये वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संस्थापक पं० रामनारायण जी शर्मा का कृतज्ञ है।

शास्त्राज्ञाओं के आधार पर मुझे विश्वास है कि जो मनुष्य नित्य धन्वन्तरि भगवान् का स्मरण-पूजन करेगा वह आरोग्य-सम्पन्न, दृढ़, बली रहेगा। अधिक न हो तो कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को भगवान् धन्वन्तरि की विधिवत पूजा प्रत्येक मनुष्य को करनी चाहिये। धन्वन्तरि भगवान् किसी जाति विशेष के नहीं, सृष्टिमात्र के परमाराध्य देवता हैं। ऐसा कौन जनपद है जो वनस्पतियों और औषधियों से किसी न किसी रूप में, किसी न किसी चिकित्सा-पद्धतिवाले वैद्य के द्वारा अपनी आरोग्य-रक्षा में सहायता न प्राप्त करता हो। भगवान् धन्वन्तरि का दयापूर्ण आशीर्वाद सभी जाति पर यथारूप कल्याण कर रहा है। अतएव उनके उपकारों का स्मरण सभी को करना चाहिये।

प्रत्येक वैद्य को यह स्मरण रखना चाहिये कि धन्वन्तरि महाराज वैद्य सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ और परमाराध्य देवता हैं। जो वैद्य उनका भजन, पूजन, व्रत, उत्सव नहीं करता, वह इष्टसिद्धि कभी नहीं प्राप्त कर सकता। वह कभी पीयूषपाणि नहीं हो सकता। उसकी दी हुई औषधियों में कभी चमत्कारिक शक्ति नहीं आ सकती। जिस घर में कम से कम साल में एक बार भी श्री धन्वन्तरि महाराज का पूजन नहीं होता वह घर नहीं शूकरों का निवासस्थल है। नारदमुनि तो यहां तक कहते हैं कि जो भगवान् धन्वन्तरि की जयन्ती के दिन उनका पूजन नहीं करता वह रौरव नरक में पड़ता है, जिस घर में धन्वन्तरिस्तोत्र की प्रति नहीं, उसे सभी ऐश्वर्यों से शून्य समझो। शास्त्र में वैद्यक प्रतिक्रिया चार प्रकार की मानी गयी हैं :—'':देवनां मन्त्र वैद्यन्तु, राज्ञां गन्धौषधम् स्मृतम्। शस्त्रवैद्यन्तु दैत्यानां, नराणां मूलिका क्रिया।'' अतएव चाहे मन्त्रवैद्य हो, सभी को धन्वन्तरि भगवान् की पूजा करनी चाहिये। भक्तिपूर्वक धन्वन्तरि स्तोत्र का पाठ करने से जीर्ण रोगी भी धीरे-धीरे आरोग्य लाभ कर सकते हैं।

आशा है, अब धन्वन्तरि त्रयोदशी को धन्वन्तरि भगवान की विधिवत पूजा का प्रचार होगा। यह पूजा धनत्रयोदशी को गोरजमुहूर्त में तैलाभ्यंग कर धन्वन्तरि भगवान की मूर्त्ति अथवा (फोटो) चित्र स्थापित कर कुम्भ पूर्णित वैदिक कलश रख, स्वयं अथवा ब्राह्मण द्वारा कल्पोक्त कथा, पूजा, पारायण, सुवर्ण दोरक धारण, दोरकदान, प्रसाद समर्पण करना चाहिये। इष्टमित्रादि सहित भक्ति श्रद्धा के अनुसार आयुर्वेद के अभ्युदय के निमित्त, अथवा आरोग्यरक्षा-सम्बन्धी व्याख्यान-प्रवचन-जागरण आदि करना-कराना चाहिये। जैसी श्रद्धा हो यह उत्सव नवरात्र, पांचरात्रि, तीनरात्रि अथवा कम से कम एक रात्रि करना चाहिये। ऐसा करनेवालों को भगवान धन्वन्तरि आयुष्य, आरोग्य और ऐश्वर्य का भागी बनाते हैं।

बैद्यनाथ
दन्तमंजन
लाल • काला और सफेद
इन मंजनों के रोजाना
व्यवहार से दाँत चमकीले
मुँह दुर्गन्ध-रहित और
मसूढ़े मजबूत रहते हैं
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता-६

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

(छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

उदर—४

वैद्य रणजित राय देसाई

यकृदुदर (यकृच्छाल्युदर) :

कुक्षि के वाम पार्श्व में जिन कारणों से प्लीहोदर हुआ करता है उन्हीं कारणों से दक्षिण पार्श्व में यकृदुदर होता है। इसके सामान्य तथा दोष-भेद से विशिष्ट लक्षण भी प्लीहोदरवत् होते हैं। उसीके समान स्वस्थान से च्युतिपूर्वक अथवा च्युति के विना दुष्ट रक्त की वृद्धिवश यकृदुदर भी होता है। इसकी चिकित्सा भी प्लीहोदर के सदृश ही हुआ करती है।

यकृदुदर का ही पर्याय यकृच्छाल्युदर है। मधुकोशकार ने इसकी व्युत्पत्ति यह कही है—**यकृच्छालयति दोषैर्भेदयतीति यकृतच्छाल्युदरम्**—तात्पर्य, यह रोग यकृत् का दालन अर्थात् दोषों द्वारा भेदन (स्वरूप तथा कर्म की दृष्टि से छिन्न-भिन्न कर देना) कर देता है. अतः इसे यकृच्छाल्युदर कहा जाता है। (कोई यकृदुदर को यकृतोदर लिखते-बोलते हैं। वह अशुद्ध है।)

टीकाकार कहते हैं कि, संहिताकारों के मत से यकृदुदर का समावेश प्लीहोदर में ही हो जाने से उदर के आठ भेद यथोक्त रहते हैं।

इस प्रकार प्राचीनों ने यकृदुदर को प्लीहोदर का ही भेद माना है। परन्तु आधुनिक प्रत्यक्षानुसार यकृदुदर के संप्राप्ति-भेद के अनेक कारण कहे गए हैं। उनका उल्लेख आवश्यक होने से संक्षेप में करते हैं। विस्तार के लिए मूल ग्रंथ ही देखना चाहिए।

यकृदुदर नव्यमत से

यकृत्काठिन्य (सिरोसिस ऑफ द लिवर)—यकृत् की वृद्धि तथा यकृदुदर के कारणों में प्रथम स्मरणीय विकृति यह यकृत्काठिन्य है। यकृत् का घटक मूल धातु (पेरेनकाइमा) मृदु—स्थितिस्थापक—हुआ करता है। विभिन्न रोगों के आक्रमणशव यह मूल धातु नष्ट हो कर उसका स्थान-योजक धातु (कलेक्टिव टिश्यु) ले लेता है। इस योजक धातु से स्नायु (संधिवन्धन; लिगामेंट्स) तथा पेशियों के अस्थि-संधियों पर स्थित प्रान्त पर विद्यमान कण्डराएं (टेंडन्स) बने होते हैं इन्हें लक्ष्य में रखा जाए तो योजक धातु का स्वरूप तथा कर्म ध्यान में आ सकता है।

इस प्रकार यकृत् के मूल धातु का स्थान योजक धातु ले ले तो प्रथम स्पष्ट परिणाम यह होता है कि क्रिया-शारीर में यकृत के जो प्राकृत कर्म कहे गए हैं वे विकृति की इयत्ता के अनुपात में हो न नहीं पाते। परन्तु प्रकृति इस क्षति का प्रत्युपाय तो करती ही है। यकृत के जिस खंड (लोब) में काठिन्य की उत्पत्ति होने से वह अपने प्राकृत कर्म करने में असमर्थ हो जाता है उसके कर्त्तव्य कर्म-को यकृत का स्वस्थ खण्ड अपने ऊपर ले लेता है। इस क्षति-पूर्ति के प्रयास को अंग्रेजी में 'कम्पेन्सेशन' कहा जाता है।

स्वस्थ खण्ड में यह क्षति-पूर्ति दो प्रकार से होती है। या तो इसके घटक कोषों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। संख्या वृद्धि को प्राप्त कोषों की क्रिया में भी स्वभावतः वृद्धि होती है। अथवा, क्षति-पूर्ति का अन्य प्रकार यह हो सकता है कि कोषों की संख्या तो यथा-पूर्व रहे, परन्तु उनके परिणाह (लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई) में वृद्धि हो जाए। इस प्रकार में भी यकृत के स्वस्थ खण्ड की प्राकृत क्रिया में वृद्धि स्वभावतः होती है।

यकृत् अथवा किसी भी शरीरावयव के घटक कोषों कीसंख्या की वृद्धि होने से स्वयं उस अवयव के परिणाह (विस्तार) में भी वृद्धि होती है। इस स्थिति का अंग्रेजी में नाम 'हायपरप्लाजिया' है। उधर, यकृत् अथवा अन्य किसी भी अवयव के कोषों का आकार वढ़ जाए तो भी उस शरीरावयव के विस्तार में वृद्धि होती है। इस स्थिति को अंग्रेजी में 'हायपरट्राफी' कहा जाता है।

यकृत् के एक अथवा दोनों खण्डों में काठिन्य का एक अन्य साक्षात् परिणाम जलोदर होता है। इसकी उत्पत्ति का स्वरूप समझने के लिए संक्षेप में यकृत् का अपेक्षित रचना-शारीर देख लें।

यह सुविदित है कि, शरीरान्तर्गत रस-रक्त शरीरावयवों में संचरण कर सिराओं द्वारा हृदयाभिमुख गति करता है। हृदय से यह फुप्फुसों में जा कर विशुद्ध हो, पुनः हृदय में आता है, जहां से यह पुनः सर्व शरीर में संचरणार्थ विक्षेपित होता है। यहां समझने योग्य तथ्य यह है कि, उर तथा उसके ऊपर के अवयवों का रस-रक्त तो विशुद्धार्थ सीधा हृदय में जाता है, परन्तु दोनों सक्थियों (अधः शाखाओं, पैरों) एवं उदरावयवों का रस-रक्त सीधा हृदय में नहीं जाता प्रत्युत प्रथम यकृत् में जाता है। वहाँ इस पर तत्-तत् क्रिया होती है। पश्चात् यह हृदय में जाता है।

अब, यकृत् सुस्वस्थ हो तो, जैसा कि ऊपर देख आए हैं इस की रचना मृदु या स्थिति स्थापक (इलेस्टिक) होती है। इसका अनुकूल परिणाम यह होता है कि, अपने अन्तराल में आने वाले इस रस-रक्त को ग्रहण करने के लिए यकृत के घटक अंश संकुचित हो कर रस-रक्त को पूर्णमात्रा में आने देते हैं। परन्तु, काठिन्यवश यकृत का अमुक भाग स्थिति स्थापकता-रहित हो गया हो तो आने वाले रस-रक्त को ग्रहण करने वाले स्रोत विस्तृत हो कर यथेष्ट परिमाण में रस-रक्त का ग्रहण कर सकें इस हेतु आसपास स्थित यकृत का अंश अब संकुचित नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप सिराओं द्वारा आने वाला रस-रक्त संपूर्ण मात्रा में यकृत में प्रविष्ट नहीं हो पाता। प्रत्युत उन्हीं में संचित रहता है। स्थूल सिराओं में रस-रक्त का संचय होने से उनको शाखा-भूत उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती हुई सिराओं (ट्रिब्युटरीज) में भी रस-रक्त संचित रहता है। सूक्ष्मतम सिरायें केवल एक मण्डल (कोट) से वढ़ी होती है। स्थिति यह होने से रस-रक्त का द्रव भाग उनमें से स्रुत (क्षरित) हो सकता है—होता है। स्थूल सिराओं में से संचित, किंवा सूक्ष्मतम् सिराओं में से क्षरित (चूए हुए) रस-रक्त का अनिष्ट परिमाम स्थान भेद तः भिन्न-भिन्न होता है। इसे समझना उल्लिखित तथ्यों के प्रकाश में सुगम हो सकेगा।

उदरावयवों को अपने अंचल में लपेट कर रखनेवाली उदरधरा कला (पेरीटोरियम) की सूक्ष्मतम सिराओं में से क्षरित होकर रस-रक्त का द्रवांश उदरधरा कला के अवकाश में संचित हो तो इस विकृति को जलोदर (एसाइटिस) कहा जाता है।

उभय सक्थियों में इस प्रकार रस-रक्त के द्रवांश का संचय हो तो पाद-शोथ होता है। उपर्युक्त संप्राप्ति पर ध्यान दें तो समझा जा सकता है कि यह शोथ दोनों पैरों में होता है। श्लीपद आदि के सदृश एक पैर में नहीं। यह शोथ प्रथम दोनों पादों (फुट) में अथवा गुल्फ-संधियों में होता है। पश्चात् उभय जंघाओं (लेग्स) में और अनन्तर ऊरुओं में भी होकर समस्त सक्थियों में व्याप्त हो जाता है।

इस प्रकार जलोदर एवं पादशोथ की संप्राप्ति का मूल एक ही होने से स्पष्ट है कि तंत्रकारों ने जलोदर में पूर्व रूपावस्था से ही पादशोथ की जो गणना की है वह नव्यमत से भी यथार्थ ही है। कदाचित्, यह भी स्थिति हो सकती है कि विकृति प्रथम उभयपाद शोथ के रूप में व्यक्त हो और पश्चात् यही संप्राप्ति उदरधरा कला में भी उपस्थित हो जलोदर को भी उत्पन्न करे।

यकृत-काठिन्यवश स्थूल सिराओं में संचित हुए रस-रक्त के दो अनिष्ट परिणाम सुविदित हैं। अधरगुद अथवा मलद्वार (एनस) की सिराओं में इस प्रकार रस-रक्त संचित हो तो वे फूल जाती हैं। इन्हीं फूली हुई सिराओं का नाम 'अर्श' है। कभी-कभी मलावष्टंभ आदि कारणान्तरों से भी गुदगत सिराओं का पीडन होकर यकृत की दिशा में रस-रक्त के प्रवाह की गति यथावत् नहीं हो पाती। इस कारण भी अर्श हो सकता है। बहुधा अर्श-पीडित रुग्णों में मलावष्टंभ होता ही है। अतएव, अर्श के उपचारों में सुप्रयुक्त अभयारिष्ट, स्वादिष्ट विरेचन (यष्टयादी) चूर्ण, बाहुशाल गुड़, तिलादि-मोदक आदि योगों में मलशुद्धि कर द्रव्य उत्तम प्रमाण में होते हैं। पित्तज अर्शों में पित्त के द्रव गुण के योग पुरीष द्रव होता है। तथापि प्रकुपित पित्त को शोधनपूर्वक समावस्था में लाने के लिए तज्जन्य अर्शों में भी विरेचन योग आवश्यक ठहरता है।

मलद्वार की सिराओं के समान आमाशय की सिराएं भी फूल कर टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। प्रायः रक्तच्छर्दि (खून की उल्टी, हेमेटेमेसिस) से पीडित रुग्णों की बेरीयम-मील एक्स-रे परीक्षा में सिराएं इस प्रकार विस्फारित तथा टेढ़ी-मेढ़ी दृश्यमान होती है।

फूली हुई तथा टेढ़ी-मेढ़ी सिराओं तो आयुर्वेद में वातविकारों में 'सिरा कौटिल्य' संज्ञा दी गयी है। अंग्रेजी में इस विकृति को 'वेसेकोसिस' अथवा 'वेरिक्सा' कहा जाता है। अर्शों की ऊपर निर्दिष्ट संप्राप्ति को देखते समझा जा सकता है कि अर्शों के अङ्कुर भी सिरा कौटिल्य के ही प्रकार हैं। कई व्यक्तियों की जंवाओं पर इस प्रकार फूली हुई सिराएं प्रत्यक्ष देखी जाती हैं। इन्हें देखने से अर्श तथा आमाशय के सिराकौटिल्य का स्वरूप समझा जा सकता है। जंघाओं में यह विकृति बहुधा धोबी, दर्जी आदि व्यक्तियों में देखी जाती हैं, जिन्हें व्यवसायवश चिरकाल पैर नीचे रखने पड़ते हैं। गुरुत्वाकर्षण का सामना करते ये सिराएं हार कर अन्त को फूल जाती हैं।

अर्श की ऊपर कही संप्राप्ति को लक्ष्य में रखें तो यह सरलता से समझा जा सकता है कि जब तक इनका मूलगामी उपचार न किया जाए तब तक केवल शास्त्रोपचार से एक-दो अंकुरों का निर्हरण कर देने पर भी अन्य सिराओं के इसी प्रकार फूल जाने से अर्शों की उत्पत्ति की संभावना बनी ही रहती है। अतएव, यकृत में हुए स्रोतोरोध को अपनी तीक्ष्णता से छिन्न-भिन्न करें ऐसे अरिष्टक (अरीठा, मसी के रूप में), भल्लातक, धन्य सूरण, मूलकपत्र आदि का एवं विरेचक कल्पों का सेवन न किया जाए तब तक अर्शों के पुनरावर्त्तन को अवकाश रहता ही है।

इसके अतिरिक्त स्वयं शस्त्रोपचार के भी भयस्थान हैं, जिन्हें लक्ष्य में रखते हुए अनुभवी शल्य-चिकित्सक अधुना अर्श में शस्त्रोपचार को पसंद नहीं करते। आयुर्वेदानुरागी चिकित्सकों एवं प्राकृत जनों को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि प्रायः आधुनिक शल्य-चिकित्सक अर्श में पायलेक्स टेब्लेट्स का आभ्यन्तर सेवन तथा पायलेक्स ऑयण्टमेंट का अंकुरों पर लेप के रूप में व्यवहार कराते हुए यश अर्जित करते हैं। कहना न होगा कि ये दोनों कल्प शत-प्रति-शत आयुर्वेदीय वनौषधि कल्प ही है।

अर्शोरोग में शस्त्रोपचार के प्रति अरूचि का एक कारण तो जिसका ऊपर उल्लेख कर आए हैं, यह है कि यह मूलगामी उपचार (रेडीकल क्योर) नहीं है। दूसरे, इसमें एक-दो व्यापत्तियां (अनिष्ट प्रमाण) होते हैं। प्रथम तो कई आतुरों में शस्त्रपालन के स्थान का रोपण होता है तो योजक धातु (कनेक्टिव टिश्यु) की अति उत्पत्ति के कारण वेगोत्सर्ग का इच्छानुसार निग्रह करने की आतुर की शक्ति सदा के लिए नष्ट हो जाती है। परिणाम यह होता है कि उसे वेग हुआ कि तत्क्षण मल के विसर्जनार्थ उपयुक्त स्थान की शोध करना प्राप्त होता है। अन्यथा, वस्त्र बिगड़ने की भी परिस्थिति होती है।

अन्य कई रूग्णों में मल द्वार संकुचित हो जाता है। परिणामतया, रूग्ण के पुरीष तथा अधोवायु का सदा के लिए अवरोध एवं नित्य मलावष्टंभ होकर इन व्यथाओं के साथ अर्श के पुनरावर्तन की भी संभावना रहती है।

अन्य एक अनिष्ट परिणाम कभी-कभी यह होता है कि सुषुम्णा-कांड में जहां स्पर्शनाश (एनेस्थीशिया) के लिए सूची-प्रवेश किया जाता है उस स्थान पर आजीवन न्यूनाधिक वेदना रहती है, जो रूग्ण के चित्त को अपने में ही केन्द्रित किए रहती है। कई अपेक्षया भाग्यशाली व्याधितों में वेदना के वेग शीतकाल या वर्षा ऋतु में ही उद्भवते हैं।

ऊपर कहा गया है कि उदर तथा सक्थिगत सिराओं का पीडन अन्य कारणों से भी हो सकता है। इनमें व्यवसाय में नित्य स्मरणीय एक कारण गर्भस्थिति है। गर्भ, गर्भोदक तथा अपरा द्वारा उदरगत सिराओं पर अथवा सक्थियों की उदर में आई सिराओं पर दबाव आए तो पूर्व कथित रीत्या अर्श तथा अभयपादशोथ होने की संभावना रहा करती है। अतएव, सगर्भा की सामान्य परीक्षा (रूटीन एग्जामिनेशन) होता है। ये दोनों अथवा इनमें कोई एक हो तो भूतपूर्व सगर्भावस्थाओं में भी ये लक्षण विद्यमान थे या नहीं यह पृच्छा करना आवश्यक होता है। प्रायः प्रश्न-परीक्षा द्वारा यह विदित होता है कि पूर्व गर्भस्थितियों में भी ये लक्षण थे ही, एवं प्रसवान्तर उपचार विशेष बिना ये स्वतः शान्त हो गए।

प्रसव के पश्चात् भी ये लक्षण विद्यमान रहें तो पाण्डुरोग या स्वतंत्र अर्श आदि का निदान कर तदनुरूप उपचार करना उचित ठहरता है।

सगर्भा के पादशोथ का विचार स्वयं गर्भस्थिति-काल में, अर्थात् प्रसूति के पूर्व भी, स्वतंत्र रूप से करना समीचीन होता है। पाद, मुख आदि पर शोथ, मूत्र में आल्ब्युमिन की प्रवृत्ति (आयुर्वेद का सान्द्रमेह तथा [illegible]

प्रसाद मेह अथवा सुरामेह)[1] के कारण भी होता है। सगर्भा में मूत्र मार्ग से आल्ब्युमिन की प्रवृति हो, एवं उसका खून का दबाव अधिक (हायपरटेन्शन, हाईब्लड-प्रेशर) हो तो सगर्भा को प्रसव के पूर्व, प्रसव-काल में अथवा प्रसव के अन्तर आयाम (खेंच) होने की आशंका रहती है। यह आयाम प्रसव-काल में हो तो कभी-कभी वह इतना बलवान् होता है कि उसके दबाव से गर्भ अन्दर ही दबकर अथवा श्वासावरोध से मृत्युवश होने की संभावना रहती है। अंग्रेजी में इस विकृति को 'एक्लेम्शिया' कहते हैं। यह तत्काल उपचरणीय रोग है। इस व्याधि का अनुभव-सिद्ध आयुर्वेदीय चिकित्साक्रम मैं समझता हूं, आद्यावधि प्रकाश में नहीं आया है।

इन्फेक्टिव हिपेटाइटिस—यकृत्-काठिन्य के मूल में यह विकृति हुआ करती है। इसके उत्तर पद 'हिपेटाइटिस' का अर्थ है—यकृत् का शोथ ('शोथ' के स्थान पर 'पाक' शब्द अधिक शास्त्रशुद्ध है।) पूर्व पद 'इन्फेक्टिव' का अर्थ है किसी रोगजनक सूक्ष्म जीवन का (यकृत् में) संक्रमण या छूत। यह संक्रमण प्रधानतया प्रवाहिका (डिसेण्ट्री) के दो प्रकारों में एक 'अमीबिक डिसेण्ट्री' के आरम्भक प्राणिवर्गीय जीवाणुओं द्वारा होता है। (इसका समावेश आयुर्वेद में कहां किया जाए, यह चिन्त्य है।) इसके जीवाणु की शास्त्रीय संज्ञा 'एण्टामीबा हिस्टोलिटिका' है। यक्ष्मा के उत्पादक जीवाणु, विषाणु (वायरस) आदि के संक्रमण का अन्तिम परिणाम भी यह इन्फेक्टिव हिपेटाइटिस तथा तज्जन्य यकृत काठिन्य हो सकता है।

अधुना, अनेक रोगों का कारण परीक्षा के अन्त में यह 'वायरस' निश्चित होता है। जिज्ञासुवाचकों को इस 'वायरस' का परिचय करना योग्य होगा।

गत कतिपय वर्षों से आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में रोगों के उत्पादक कारणों की गणना में 'वायरस' का प्रवेश हुआ है। देखते-देखते यह कारण समस्त निदान शास्त्र में व्याप्त हो गया है। यह एक अति सूक्ष्म एवं सजीव तथा निर्जीव दोनों वर्गों के लक्षणों से युक्त द्रव्य है। अब तो सूक्ष्म वस्तु को असंख्य गुणा बड़ा करके प्रत्यक्ष कराने वाले इलेक्ट्रोनिक माइक्रोस्कोप की सहायता-से यह प्रत्यक्ष दर्शन-गम्य हो गया है। परन्तु इस साधन के आविष्कार के पूर्व प्रचलित माइक्रस्कोपों द्वारा इसकी प्रत्यक्ष परीक्षा शक्य न थी। इसकी रोग-कारणता केवल अनुमान-गम्य ही थी। अनुमान-गम्यता का स्वरूप निम्न प्रकार का था।

वायरस से जिस व्यक्ति को अमुक रोग होने की आशंका की गयी हो उसका रक्त लेकर उसे पोर्सलेन[1] के सूक्ष्म फिल्टर द्वारा छान लें। इस क्रिया में फिल्टर के ऊपर शेष रहे पदार्थ का इंजेक्शन परीक्षा-पात्र प्राणी को लगाएं तो वह उस रोग से पीडित नहीं होता जिससे वह पुरुष पीडित था जिस के शरीर से रक्त लिया गया था नीचे के द्रव्य का इंजेक्शन दिया जाए तो परीक्ष्य निश्चित उस रोग से आक्रान्त हो जाता है जिससे जिस आतुर पुरुष के शरीर से परीक्षणार्थ रक्त लिया गया था, वह आक्रान्त हो। इस प्रयोग से इस निष्कर्ष पर आया जाता है कि रुग्ण के शरीर में कोई रोगोत्पादक वस्तु रहती है अवश्य, जो पोर्सलेन के फिल्टर द्वारा छन कर नीचे चली जाती है। यह वस्तु पहले के माइक्रोस्कोपो से दृश्यमान नहीं होती। देश-भाषाओं में इसे 'विषाणु' सज्ञा दी गयी है।

स्वरूप की दृष्टि से 'वायरस' प्रोटीन के स्थूल कण (अणु; मालीक्यूल) होते हैं। जैसा कि ऊपर कहा, इसमें सजीव द्रव्यों (प्राणियों अथच वनस्पतियों) के विशिष्ट लक्षण होते हैं तथापि वे हैं तो निर्जीव रासायनिक पदार्थ ही। माना जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में निर्जीव सृष्टि से सजीव सृष्टि की उत्पत्ति आरम्भ हुई तो प्रथम उभयविध सृष्टियों के मध्य सेतु-रूप ये द्रव्य उत्पन्न हुए, जिनमें दोनों वर्गों के गुण-धर्म पाए जाते हैं। सजीव कोषों के सदृश प्रोटीन के ये कण प्रचुर मात्रा तथा वेग से संख्या-वृद्धि करते हैं। अपने इस स्वभाव के कारण ये विषाणु प्राणि-शरीर किंवा वनस्पति-शरीर पर आक्रमण करते हैं तो अपनी संख्या-वृद्धि करते हुए उनकी धातुपाक (मेटाबॉलिज्म) की प्रक्रिया में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। इनके अगणित प्रकार हैं। इसके द्वारा उत्पादित कतिपय रोग ये हैं—इन्फ्लुएंजा, एनसेफेलाइटिस (मस्तिष्क-शोथ), पीत ज्वर (येलो फीवर), पोलियोमायलाइटिस (बाल-पक्षाघात), मसूरिका, यकृत-शोथ (हिपेटाइटिस)

---

[1] स्मरण रहे, कई बार मूत्र की प्रत्यक्ष परीक्षा में सामान्यतया उपलब्ध होने वाली शुक्लता तथा मलिनता नहीं भी दृश्यमान होती। प्रयोगशाला-परीक्षा से ही

फुफ्फुस-शोथ (न्यूमोनिया), प्रतिश्याय... इत्यादि । अब तो कैन्सर की उत्पत्ति के विषय में भी अन्तिम शोध यह हुई है कि यह दारुण रोग भी वायरस के एक प्रकार द्वारा ही उत्पन्न होता है। इस वायरस को देखा भी जा चुका है। इसके प्रतिकार के उपायभूत द्रव्य भी क्षितिज पर दृष्टिगोचर होने लगे हैं एवं आशा उपजी है कि मानव-कुल के विध्वंसक इस रोग को अनतिदूर भविष्य में नियंत्रण में लाया जा सकेगा।

वायरस-विषयक इतने प्रसँगोपात्त प्रतिपादन के पश्चात् अब पुनः शेष विषय का निरूपण करते हैं।—

एमीबिक हिपेटाइटिस—यकृत्-काठिन्य एवं तज्जन्य जलोदर तथा अन्य व्याधियों के मूल में यह एमीबिक हिपेटाइटिस अधिकतम रुग्णों में होता है। अतएव, चिकित्सा-व्यवसाय में यह तथा इसकी प्राथमिक कारण-भूत एमीबिक डिसेन्ट्री (प्रवाहिका का एक प्रकार) स-विशेष स्मरणीय एवं उपचारणीय रोग हुआ करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में प्रवाहिका के दो भेद किये गये हैं—उपर्युक्त एमीबिक डिसेण्ट्री तथा अन्य बेसीलरी डिसेण्ट्री। इनका आयुर्वेद के साथ समन्वय अशक्य प्राय होने से नव्यमतानुसार ही इनका स्वरूप संक्षेप में देखेंगे।

बेसीलरी डिसेण्ट्री अनेक प्रकार के दण्डाकृति जीवाणुओं के पक्वाशय की कला पर हुए आक्रमणवश होती है। मूल शब्द बेसीलस का अर्थ है—दण्डाकृति अर्थात् लम्बे (जीवाणु आदि)। एमीबिक डिसेण्ट्री 'एण्टामीबा हिस्टोलिटिका'—नामक कृमिवर्गीय, परन्तु माइक्रोस्कोप से ही देखे जा सकें, ऐसे सूक्ष्म जीवों के स्थूलान्त्र पर हुए आक्रमणवश उत्पन्न होती है।

प्रवाहिका-पीड़ित पुरुष इस रोग के उपर्युक्त दोनों भेदों में से किससे आक्रान्त है इसकी सत्वर परीक्षा अत्यंत आवश्यक होती है। कारण, परीक्षाद्वारा आतुर एमीबिक डिसेण्ट्री से पीड़ित है यह विदित हुआ कि तत्काल तदनुरूप उपचार आरंभ कर देने से रुग्ण को इसके भावी निकट उपद्रवों के त्रास से बचाया जा सकता है। 'इमेटीन' इसके लिए आज भी अव्यर्थ आयुध माना जाता है।

बेसीलरी डिसेण्ट्री का स्थान उत्तरगुद (रेक्टम) के ऊपर स्थित स्थूलांत्र का अंग्रेजी 'एस' अक्षर के समान आकृतिवाला अंश होता है। अंग्रेजी में इसे 'सिग्मायड कोलन' कहा जाता है। मलद्वार इस स्थान के अति निकट होने से प्रवाहिका के इस प्रकार में कला से जो रक्तस्राव होता है उसे पुरीष के साथ संयुक्त हो एकाकार होने का उतना अवसर सुलभ नहीं होता। परिणामतया पुरीष तथा रक्त की प्रवृत्ति पृथक्-पृथक् होती है। इस प्रकार स्वतन्त्र रहकर प्रवृत्त हुए रक्त को अंग्रेजी में 'फ्री' या 'फ्रैंक'ब्लड कहा जाता है।

इसके विपरीत एमीबिक डिसेण्ट्री का संश्रय-स्थान स्थूलान्त्र का आदि स्थान अर्थात् उण्डुक (सीकम[1]) एवं आरोही अन्त्र (एसेण्डिगकोलन) होता है। यहाँ से मल-द्वार पर्यन्त प्रवास करने में पुरीष को प्रायः कई घंटे लगते हैं। इतने दीर्घ प्रवासक बुद्धिगम्य सहज परिणाम यह होता है कि पुरीष तथा प्रवाहिका में स्रुत हुए रक्त को परस्पर संयुक्त हो एकाकार हो जाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है।

अतएव, प्रवाहिका के इस प्रकार में निर्गत रक्त बेसीलरी डिसेण्ट्री में निर्गत रक्त के समान स्वतंत्र तथा पृथक् नहीं होता। प्रत्युत, पुरीष के साथ एकाकार (रला-मिला) हुआ करता है। अपरंच, इतने प्रवास में निःस्रुत इस रक्त को जम जाने का (कोएग्युलेशन या क्लाटिंग का) भी समय उपलब्ध हो जाने से वह जम कर स्वयं कृष्णवर्ण हो पुरीष को भी आत्म-वर्ण का (कृष्ण) बना देता है। किं बहुना, पुरीष का यह वर्ण-भेद प्रवाहिका के दोनों भेदों की प्रथम प्रत्यायक परीक्षा है। आगे विभिन्न, विशेषतया पुरीष की प्रयोगशाला-परीक्षाओं की सहायता से निश्चित निदान पर आया जा सकता है।

एमीबा का सफल आक्रमण यकृत एवं इतर अवयवों पर होने के परिणामस्वरूप जो वैकारिक लक्षण फलित होते हैं उन सब की संग्राहक एक संज्ञा 'एमीबायसिस' है। यकृत पर इनका आक्रमण और उसका निदान-पूर्वक उप-

---

[1] जैसा कि सुविदित है, अन्त्रपुच्छ या एपेंडिक्स इस उण्डुक (सीकम) से ही संलग्न होता है। यह उण्डुक, एमीबिक डिसेण्ट्री का स्थान होने से एमीबा का संक्रमण अन्त्रपुच्छ में होना, (एपेंडिसाइटिस) अत्यन्त संभावित होता है। और वास्तव में एपेंडिसाइटिस का प्रधानतम कारण एपेंडिक्स में एमीबा का संक्रमण ही उपलब्ध होता है।

चार न होने पर यकृत-शोथ (हिपेटाइटिस) होकर, यकृद्-विद्रधि (लिवर एब्सेस) तथा अन्त में यकृत-काठिन्य होकर जलोदर एवं यकृत की विकृति के कारण अथवा रोग के मूल कारण के चालू रहने का विविध व्याधि-लक्षण होते हैं।

फुप्फुसों में एमीबा की संक्रान्ति होने पर राजयक्ष्मा से अक्षरशः मिलते लक्षण भी बहुधा देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त कई बार संक्रमण प्रथम 'संलग्न श्वास-पटल (महाप्राचीरा पेशी; ड्रायाफ्राम; फ्रेन) में होता है, पश्चात् उर: पंजर में स्थित पार्श्वधरा कला (पयुरा) में होता है। पार्श्वधरा कला का शोथ (पाक; नाम—प्लुरिसी) अजातोदक (ड्राई) अथवा जातोदक (प्लुरिसी विद इफ्-युजन; वेट प्लुरिसी) दो प्रकार का होता है। प्लुरिसी के इस प्रकार को 'काण्टेक्ट प्युरीसी' अथवा 'डायाफ्रामेटिक प्युरिसी' कहा जाता है।

अधिकांश रुग्णों में पार्श्वशूल अथवा प्लुरिसी राजयक्ष्मा के जीवाणुओं के संक्रमण के कारण होती है। परन्तु, इस रोग में एमीबा को भी ध्यान में रखना चाहिए। यक्ष्मा के सिद्ध उपचारों से जितने दिवसों में लक्षणों में अपेक्षित लघुता उत्पन्न होनी चाहिए वह उत्पन्न न हो तो इस विकृति को लक्ष में लेना ही चाहिए।

जलोदर का मूल कारण एमीबा हो तो वह एमीबा के मूलगामी उपचार हाथ में लेने से देखते-देखते पटक जाता है—बैठ जाता है।

एमीबा के कारण होनेवाले यकृत-काठिन्य का संनिकृष्ट अथवा साक्षात् कारण इस प्रकार भले एमीबा हों, तथापि उनके आक्रमण की भूमिका तो उत्तम पोषक आहार का अभाव ही है। चूंकि अवलोकन के आधार पर अनुसंधानकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि पुरुष निर्धनता आदि कारणों से प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में न ले सकें, विशेषतया जंगम (प्राणिज, एनीमल) प्रोटीन का सेवन उसे सुलभ न हो तो एमीबा के लिए संक्रमण द्वारा रोगोत्पादन की अनुकूलतम भूमिका सुलभ हो जाती है। अति मद्यपान, विशेषतः जंगम प्रोटीन के अयोग की दशा में, उपर्युक्त प्रकार की भूमिका तैयार करनेवाला सहकारी कारण है।

मलेरिया, कालाजार, [illegible] डुओडिनेल), उदरधरा कला का यक्ष्मा (टयुबरक्युलर पेरीटोनाइटिस), एवं फिरंग रोग—ये कारण भी यकृत्-काठिन्य की क्वचित् उत्पत्ति करनेवाले हैं।

सामान्य व्यवहार में 'इन्फेक्टिव हिपेटाइटिस' शब्द कामला के उस प्रकार के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें पुरीष श्वेतवर्ण तथा मूत्र, नेत्र, नख तथा त्वचा हारिद्रवर्ण हो जाते हैं। इन दोनों व्याधियों में परस्पर संबंध तो देखा ही जाता है। एतद्विषयक विवरण अप्रासंगिक है।

कन्जेस्टिव कार्डीअक फेल्यर—व्यवसाय में यकृत की वृद्धि एवं जलोदर का यह भी एक स्मरणीय कारण है। ऊपर कह आए हैं कि उभय सक्थियों तथा उदरावयवों का रस-रक्त यकृत में होकर हृदय में जाता है। हृदय की कोष्ठों की अमुक कपाटिकाएं संपूर्णतया परस्पर संसक्त न हो सकती हों—एक-दूसरे के साथ सह न पाती हों—तो रस-रक्त पूर्णतया आगे न जाकर थोड़ी मात्रा में पीछे की ओर चला जाता है (रीगर्गिटेशन)। फलस्वरूप, वह जिधर से—जिन आयशों से—हृदय में आया होता है उनमें संचित हो जाता है। इस क्रम में रस-रक्त यकृत में एकत्र हो उसकी वृद्धि कर देता है। इस विकृति में वृद्धि यकृत के दोनों खंडों की होती है, यकृत-काठिन्य के सदृश किसी एक खंड की नहीं। स्पर्श-परीक्षा में यकृत की संपूर्ण किनारी करांगुलियों को लगती है कि आधी, इस पर से वृद्धि एक ही खंड की है, अथवा दोनों खंडों की इस वस्तु का निदान किया जा सकता है।

कभी-कभी हृदय के किसी कोष्ठ के द्वार का पाकजन्य संकोच (स्टेनोसिस) होने का परिणाम भी ऐसा ही होता है। रस-रक्त आगे न जाकर पीछे के अवयवों में संचित होता हुआ यकृत् में संचित होकर उसकी वृद्धि कर देता है।

कदाचित्, हृदय का बल न्यून हो (कार्डिअक इनसफिशेन्सी) तो भी रस-रक्त आगे पूर्णमात्रा में न जाकर पीछे के अवयवों में संचित होता हुआ अंततः यकृत् में संचित हो उसकी वृद्धि कर देता है।

हृदय-सम्बन्धी उपर्युक्त जिन परिस्थितियों में यकृत् में रस-रक्त का संचय होता है वे ही उदर में संचित हो जलोदर की उत्पत्ति करते हैं तथा सक्थिद्वय में संचित हो पादशोथ को उत्पन्न करते हैं।

यकृत्-काठिन्य में अन्य उदरावयवों के समान

प्लीहा में ही संचित हो कर प्लीहा की वृद्धि कर देता है। प्लीह-वृद्धि के कारणों में इस कारण को भी लक्ष्य में रखना होता है।

'कंजेस्टिव कार्डिअक फेल्यर' शब्द का शब्दार्थ देख-कर यह प्रकरण समाप्त करें। 'कन्जेश्चन' का अर्थ है—संचय। सो, 'कंजेस्टिव' का अर्थ हुआ—संचयजन्य। 'कार्डिअक' का अर्थ है - हृदय-संबन्धी। 'फेल्यर' का प्रचलित अर्थ हृदय की गति का अवरोध तथा तज्जनित मृत्यु होता है परन्तु, यहां इसका अर्थ मर्यादित है—हृदय के आकुञ्चन-प्रसारण का परिणाम अपूर्ण रह जाना।

हृदय के कोष्ठों की कपाटिकाओं (वाल्व्स) तथा दो-दो कोष्ठों के मध्यगत द्वार का संकोच इन कपाटिकाओं, इनको खोलने और बन्द करनेवाले विशिष्ट सूत्रों (शाकिञ्जीज फाइबर्स) तथा मध्यगत द्वारों की इस विकृति का कारण यह होता है कि—हृदय की आभ्यन्तर कला (एण्डोकार्डिअम) तथा उपर्युक्त अवयवों में हुए तत्सहचरित शोथ (पाक) का रोपण होते हुए इन अवयवों के संकोच-विकास कारक मूल मृदु (इलेस्टिक) धातु का स्थान संकोच-विकास रहित योजक धातु (कनेक्टिव टिश्यु) ले लेता है।

यह पाक बहुधा आमवात (रुमेटिज्म) या आभ्यन्तर कला का जीवाणुओं द्वारा संक्रमण (बेक्टीरिअल एण्डो-कार्डाइटिस) होने से होता है। कपाटिकाओं की रचना तथा क्रिया समझी हो तो इस विकृति को समझना सुगम हो सकता है। परन्तु ऐसा करना अति अप्रसक्त होगा।

हायडेटेड सिस्ट—यकृत् की वृद्धि का एक कारण यह व्याधि हुआ करती है। इसमें बहुधा यकृत् स्थान-भ्रष्ट भी होता है। प्रायः निदानार्थ उदरपाटन (एक्सप्लोरेटरी लेपेरोटामी) से ही इसका परिज्ञान होता है। औषध अथवा शस्त्रपातन किसी भी उपचार से यह साध्य नहीं होता। स्थानभ्रष्ट यकृत् इसके कच्छपवत् अनायास दीख पड़नेवाले उर्ध्वतन पृष्ठ से जाना जा सकता है।[१]

सिस्ट का मूल अर्थ है—मूत्राशय। मूत्रपूर्ण मूत्राशय-के समान शरीर में कहीं भी द्रव-पूर्ण ग्रंथि बनी हो तो उसे 'सिस्ट' (आयुर्वेद में 'ग्रंथि'; रुपये-पैसे भरने की प्राचीन काल में प्रचलित कपड़े की गोल छोटी-बड़ी थैली) कहा जाता है।

हायडेटेड सिस्ट का उत्पादक एक पराश्रय कृमि होता है, जो ब्रध्न कृमि (टेपवर्म; सेस्टोडा; सेस्टोड; चपटे कीड़े; कद्दूदाना) के वर्ग का होता है। यकृत् में स्थान-संश्रय कर यह कृमि द्रवपूर्ण ग्रंथियों (सिस्टों) के द्राक्षा के गुच्छों जैसे गुच्छे उत्पन्न करता है। ग्रंथि को फोड़ा जाए तो उसमें से इस कृमि की इल्ली (लार्वा) निकलते हैं। इस कृमि को अंग्रेजी में 'टीनिया एकीनो-काकस' कहा जाता है। ग्रंथियों के भारवश इनमें यकृत् स्थानच्युत हो जाता है।

वृक्क की अकार्यक्षमता से भी शरीर में क्लेद (अब्धातु) का संचय होने के फलस्वरूप सर्वांगशोथ एवं तदनुषंगी जलोदर होना संभव है, यह पहले कह आए हैं। उदरधराकला अथवा यकृत् के दारुण अर्बुद (केन्सर) से भी जलोदर तथा कामला हो सकते हैं। अन्य दो-एक कारण बहुत प्रसिद्ध न होने से उनका उल्लेख नहीं किया जाता।

(सावशेष)

---

[१] स्मरण रहे, कभी-कभी यकृत् की वृद्धि ऊपर की ओर फुप्फुसों की दिशा में भी होती है। अवश्य ही क्वचित्। यकृत् का पर्शुकान्तरगत भाग जिन पर्शुकाओं तक रहना है, उनके ऊपर भी आकोठन से यकृत् की ऊर्ध्व अवस्थिति की सूचक घन ध्वनि (द्रव्य साउण्ड) सुनी जाती है।

बैद्यनाथ जुकामो—जुकाम में अवश्य सेवन करें।

AN IDEAL VAIDYA
OF
ANCIENT AYURVEDA

By

Dr. P. M. Mehta

To understand the full meaning and significance of the term Vaidya (वैद्य) and to evaluate the true merit of the designation of Vaidya as applied in Ayurveda, one has to fathom the original texts of ancient classics of Ayurveda. These classics are full of adjectives and epithets as applied to the Vaidyas; the study of these as well as the qualities and qualifications essential to earn the title of a Vaidya is likely to throw sufficient light to estimate the real status, dignity and honour with which the Vaidya was held in the golden age of Ayurveda and Aryan civilization of India. On comparison of that period, with the present time, the term Vaidya has lost much of its meaning and standard. It has become a hackneyed or trite term that anybody, even devoid of any learning can appropriate and use as he likes.

There is great similarity between the words Yaidya and Doctor both in meaning and derivation. The derivation of Vaidya is– विद[illegible]धीते-उदधीते-तद्वेद इत्यण्-विद्या अल्पस्य अण् and the derivation of doctor is - Latin Docere = to teach. Both the words signify the fact that the Vaidyas and doctors were looked upon as highly learned and proficient persons in ancient time. Vaidyas were considered as great scholars and Pundits. It is interesting to know that Amarakosha gives twenty-two synonyms of the word 'Pandit'. They are—

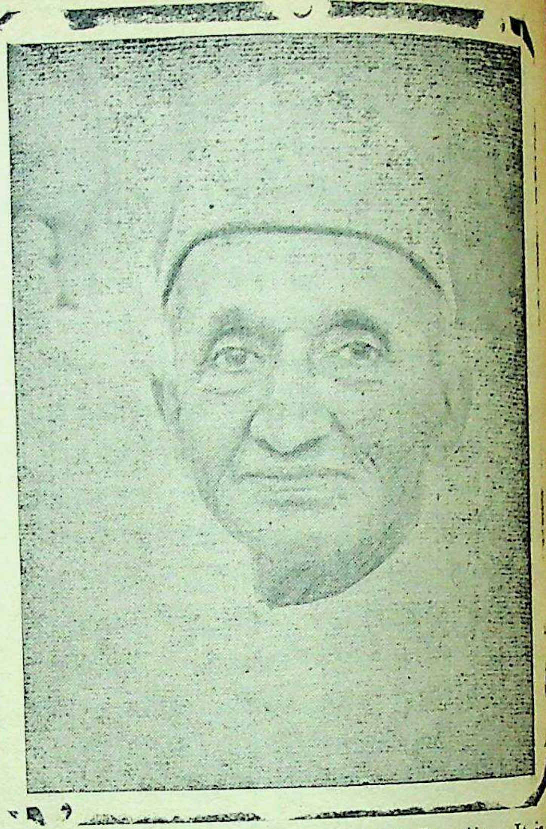

विद्वान्-विपश्चित्-दोषज्ञः-सन्-सुधीः-कोविदो बुधः ।
धीरो-मनीषी-ज्ञः-प्रज्ञः-संख्यावान्-पण्डितः-कविः ॥५॥
धीमान् सूरिः-कृती-कृष्टि-लब्धिवर्णो विचक्षणः ।
दूरदर्शी दीर्घदर्शी—(द्वाविंशतिः पण्डितस्य) ॥६॥
अमरकोष—२-७-५-६

We find in Ayurvedic classics that not only most of these appellations are used for Vaidyas, but some more epithets signifying some special proficiency are applied to Vaidyas They are—

प्रवीण-विजानत्-मतिमान्-मुनिः-विशारदः-कुशलः
तद्विद्-तत्त्पदर्शी-मेधावि न्-चिन्तकः-निष्णातः
आचार्यः-विशेषविद्-तत्त्वज्ञः-निपुणः

This was the standard of the qualities and qualifications of a Vaidya of Ayurveda in the ancient golden period of Ayurveda which was universally regarded as the most brilliant period in the long annals of man. The Vaidya possessed the general wisdom of the philosophers as well as the special skill of a scientist. He understood the major cosmos (Macrocosm-Universe) and he studied the minor cosmos (Microcosm-man) and their mutual relations. The result was the development of a co-ordinated outlook which studied the parts but which also studied them as forming the whole. It was this synthetic or integrated outlook that endowed him systematised wisdom, scientific spirit and skillful acumen.

It was at this time when physicians occupied the exalted place when medicine and metaphysics were equally the domain of the Vaidya—the man of khowledge and wisdom-and when the Vaidyas were admittedly considered the wisest men of the age. Hippocrates says the nearest thing to divinity is the physcian who is also a philosopher. As the Vaidyas of ancient period were both physicians as well as philosophers who can deny that they were as near-gods as any that our world can breed ? All these facts are elaborated here for one definite purpose, and that is to distinguish the specific value and merit of the phrase-an ideal Vaidya of ancient Ayurveda.

I quote here an anecdote of the Vaidya Kharaka whose diagnostic skill and rational therapeutics cured the disease condition of the Tirthankar Mahavir-one of the supreme saints of Jainism.

When the last Tirthankar Supreme Saint of Jains was undergoing religious austerities, he happened to stand in meditation under a tree. Nearby passed a farmer with his two bullocks. He wanted to go to the town and so he uttered loudly to the saint to take care of his bullocks till he returned.

The saint being in contemplation could not look after the bullocks. They had gone away far off when the farmer returned. The farmer shouted with anger at the saint asking about the bullocks. The saint could not break his silence. On not getting any reply the farmer became excited and exclaimed—"Why don't you answer, are you deaf ? If you are not deaf up to now, I shall make you deaf for ever." He picked up two sharp-pointed long thorns and thrust them into each ear of the saint. The saint in meditation neither shook nor spoke. He was under the vow of tolerating all afflictions of the worldly sources. The farmer was astonished at the silence, was alarmed for his mischievous act and ran away.

The saint finishing his meditation went to the town. Next day when he went to a citizen for begging food, the Vaidya Kharaka had been present at the house-holder's place. Vaidya Kharaka and the house-holder Siddhartha paid their courteous salutations to the saint; the house-holder started making preparations to bring food for the saint. In the meanwhile, the Vaidya Kharaka observing the changes in the features of the face of the saint, thought that the saint was suffering from some severe piercing pain (शल्य पीडा) and requested the house-holder to enquire of the saint. The saint who never wished to complain, had anyhow to tell truth about the pain in ears The saint wondered how the Vaidya was able to diagnose it. The house-holder and the Vaidya then arranged the operation of extraction of the thorns from both the ears. The story shows how powerful was the clinical observation of the Vaidya.

Chang Chung Ching the Hippocrates of China has remarked in the Golden Chamber that—

The skillful doctor knows by observation
The mediocre doctor knows by interrogation
and the ordinary doctor knows by Palpation
or examination of the pulse.

Kharaka is a skilled doctor according to this; but what will be an epithet to a modern doctor or Vaidya who does observation, who also does interrogations and who also conducts examination by palpation, percussion and even auscreltation and still he has often to take help of x-ray and laboratory investigations.

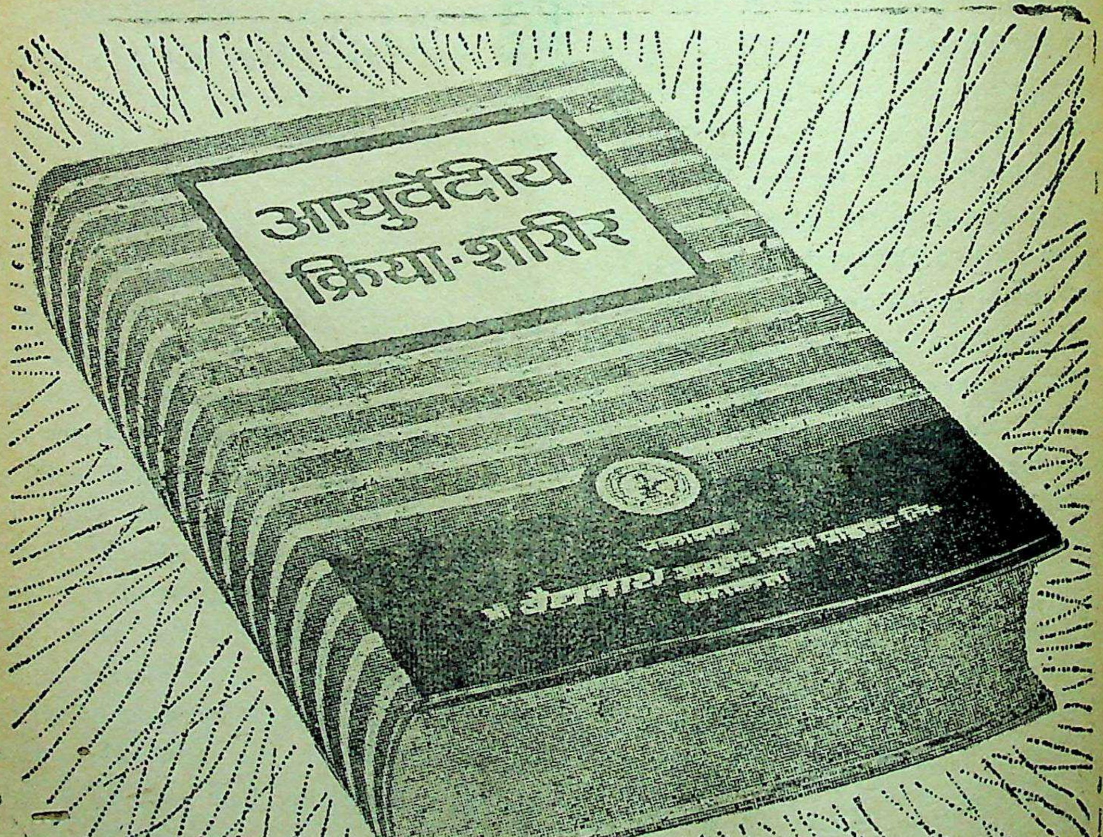

वनस्पति विवेचन

गन्ध प्रसारिणी

कुमारी कान्ति श्रीवास्तव
राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, लखनऊ

वनस्पति संसार नाना प्रकार के आश्चर्य से भरा पड़ा है। कुछ वनस्पतियों में ऐसी सुगन्ध होती है कि मन प्रफुल्लित हो उठता है जैसे क्योड़ा, गुलाब, चमेली इत्यादि। कुछ अपनी दुर्गन्ध के लिये प्रख्यात हैं। जैसे गंध प्रसारिणी, पिस्सूमार, कलिहारी, कुरिया इत्यादि।

आइये अब हम इस वनस्पति के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करें-जो है तो बहुत दुर्गन्धित किन्तु है बहुत उपयोगी। गंध प्रसारिणी को लैटिन भाषा में 'पिडेरिया फोइटिडा' कहा जाता है। पिडेरिया शब्द संभवतः नेपाली एवं सिक्किम भाषा के शब्दों से पायेदेवरी तथा पदविसी से लिया गया है। फोइटिडा का अर्थ है— दुर्गन्ध देने वाला। संस्कृत में इसे प्रसारिणी, भद्रवाला, चंद्रुपरमी, गंधपर्णी, राजबाला, कहा जाता है। बंगाली भाषा में इसे गांधाल, गधमादली, गंधाली कहते हैं।

गंध प्रसारिणी एक बड़ी जाति की लता होती है। यह हिमालय, बंगाल तथा दक्षिण में पैदा होती है और भारत के बाहर इंडोनेशिया मोलुका में भी प्राप्त होती है। इसके तंतु बहुत लम्बे तथा मजबूत होते हैं। इन तंतुओं को सन् की जगह भी काम में लिया जाता है। इसके बेल का तना गोल और कोमल होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार के और तीखे होते हैं। इसके फूल बैंगनी रंग के होते हैं परन्तु लखनऊ में यह लता प्रायः नहीं फूलती। इसका फल लम्बा गोल आता है। प्रसारिणी की लता समीप वाले वृक्ष पर चढ़ कर भी फूलती है और वृक्ष के अभाव में भूमि पर फैलती हुई बढ़ती है इसलिए इसे प्रसारिणी भी कहते हैं। भूमि पर फैलनेवाली लता की गांठ में अंकुर निकल कर भूमि में घुस जाते हैं। इस प्रकार दूब की तरह बढ़ती है और कुछ दिनों के बाद इन गांठों में से लता की टहनियां फूट-फूट कर बढ़ती हैं क्योंकि गांठ अपने अंकुरों [illegible] भूमि [illegible] शोषक द्रव्य [illegible] करने लग जाती है [illegible] पत्ते [illegible] और सूंघने से अपानवायु के समान दुर्गन्ध आती है। लता के समीप जाने से मंद गंध आती है किन्तु बेल के काटने पर उसमें से निकलनेवाले रस के साथ वायु का संयोग होने पर और भी गंध आती है। इसके कटे हुए टुकड़ों से दूर-दूर गंध फैल जाती है। सूखने पर गंध कम होने लगती है। धीरे-धीरे यह बिलकुल समाप्त हो जाती है। गंध प्रसारिणी को औषधि के लिए शरद ऋतु में संग्रह करके रखना चाहिए जबकि वह हरी-भरी हो क्योंकि रखने पर यह गुणहीन हो जाती है।

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति में इस वनस्पति को कड़वी व बलदायक, कामोत्तेजक, टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाली, मृदुविरेचक बतलाया गया है। यह वात, सूजन और कब्जियत को दूर करनेवाली है। प्रसारिणी की जड़ वातनाशक, शोधक, मूत्रक और आनुलोमिक है।

'प्रसारिणी राजबाला भद्रपर्णी प्रतानिनी सरस सारिणी
भद्रावला चादि कटामरा प्रसारिणी गुरु वृष्या बलसंधान
कृत्सरा वीर्योष्णा वातघ्नविक्ता वातरक्त कफापहा'

प्रसारिणी, राजबला, भद्रपर्णी प्रतारिनी, सरणी, सारिणी, भद्रावला और कटम्भरा इतने नाम पसरन के हैं प्रसारिणी। विकृत रसयुक्त गुरू, वृष्य, बलकारी, संधानकारक, उष्णवीर्य एवं वातरक्त और कफ को दूर करने वाली है। अधिक मात्रा में लेने से यह वमन पैदा करती है। इसका प्रधान उपयोग रक्तदोष और वात प्रधान रोगों में किया जाता है। आमवात और रक्तवात में यह एक हुक्मी औषधि मानी जाती है। इन रोगों में इसको खाने से और संधियों पर लेप करने से अच्छा लाभ होता है। इसको सोंठ, मिर्च और पीपल के साथ खाया जाता है और चित्रकमूल के साथ इसका लेप बालकों के अतिसार (पेचीश) हो जाने पर इसके पत्तों का स्वरस २, ३ मासा [illegible] हैं।

इसके पंचांग (फल, फूल, पत्र, तना, जड़,) का चूर्ण प्रातः नारियल के साथ सेवन कराने से भगकृच्छ और अशम्भरी (पथरी) में लाभ होता है। आयुर्वेद में इसके कई योग तेल के रूप में किये जाते हैं जिसमें मुख्य हैं प्रसारिणी तेल।

यूनानी चिकित्सा-पद्धति में यह वीर्यवर्द्धक है और बीमारी के बाद की कमजोरी के लिये इसका सेवन गठिया और बच्चों के दस्त और वात विकारों के लिये उपयोगी बतलाया गया है। प्रसारिणी की जड़ वामक हैं किन्तु इसकी मात्रा अधिक होनी चाहिए। इसमें रोचक गुण भी हैं। इसके फलों का मंजन दांतों को कृमिरहित तथा सुरक्षित रखता है। इससे दाँतों का रंग भी काला हो जाता है। इसके पत्तों को पीस कर फोड़े पर रखते हैं जिससे वह बैठ जाता है या फूटता है। बंगाल में इस लता को घर-घर में लगाया जाता है क्योंकि प्रायः बंगाली उदरशूल अथवा पेचिस लगने पर पहले इसकी पत्तियों का उपयोग करते हैं। इसकी पत्तियां या तो पीस कर सब्जी में डाली जाती हैं या फिर पकौड़ी अथवा शाक बना कर खायी जाती हैं। यदि इस पर भी कोई लाभ नहीं हुआ तब चिकित्सक के पास जाया जाता है। भारत ही में नहीं, अपितु श्रीलंका, एवं इंडोनेशिया में भी इस वनस्पति का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है। यहां पर इस वनस्पति का लेप ट्युमर (फोड़े) पर किया जाता है।

गंध प्रसारिणी एक बहुत ही उपयोगी लता है। इसको बरसात के मौसम में कटिंग द्वारा लगाया जाता है। यह बिना किसी देखभाल के एक वर्ष में एक पूर्ण लता का रूप ले लेती है।

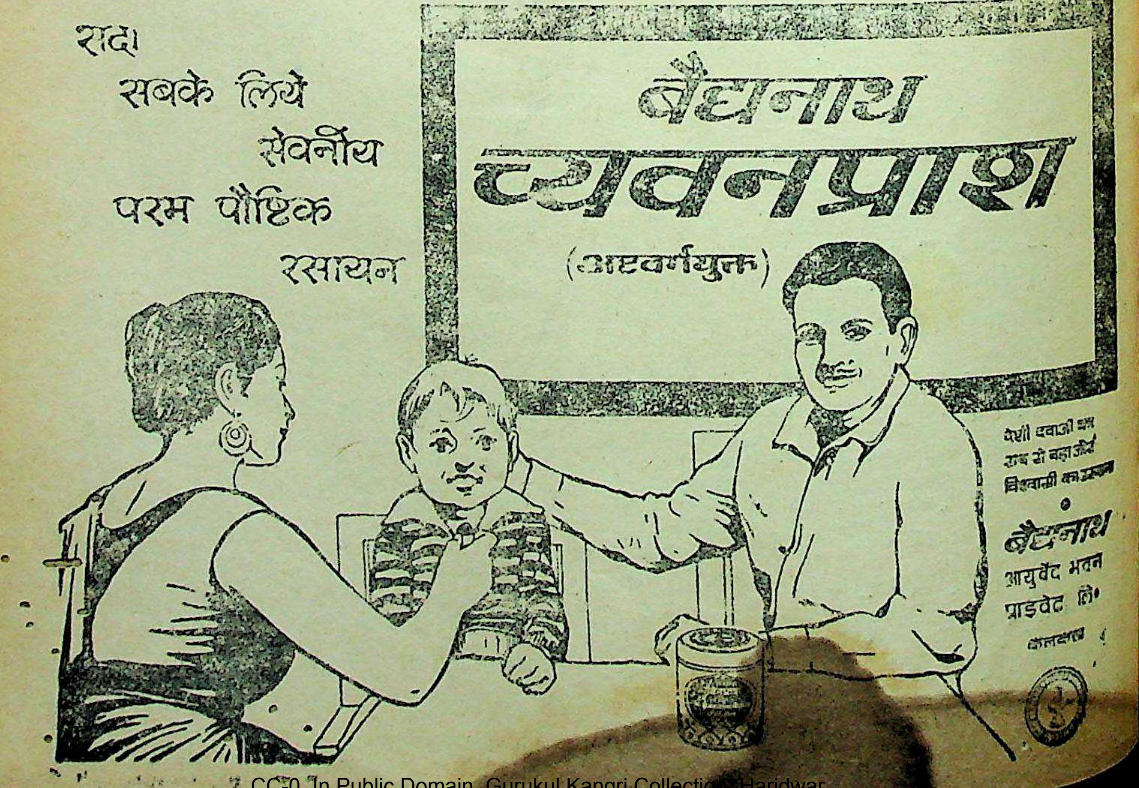

सदा
सबके लिये
सेवनीय
परम पौष्टिक
रसायन
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
(अष्टवर्गयुक्त)
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन
प्राइवेट लि॰
कलकत्ता

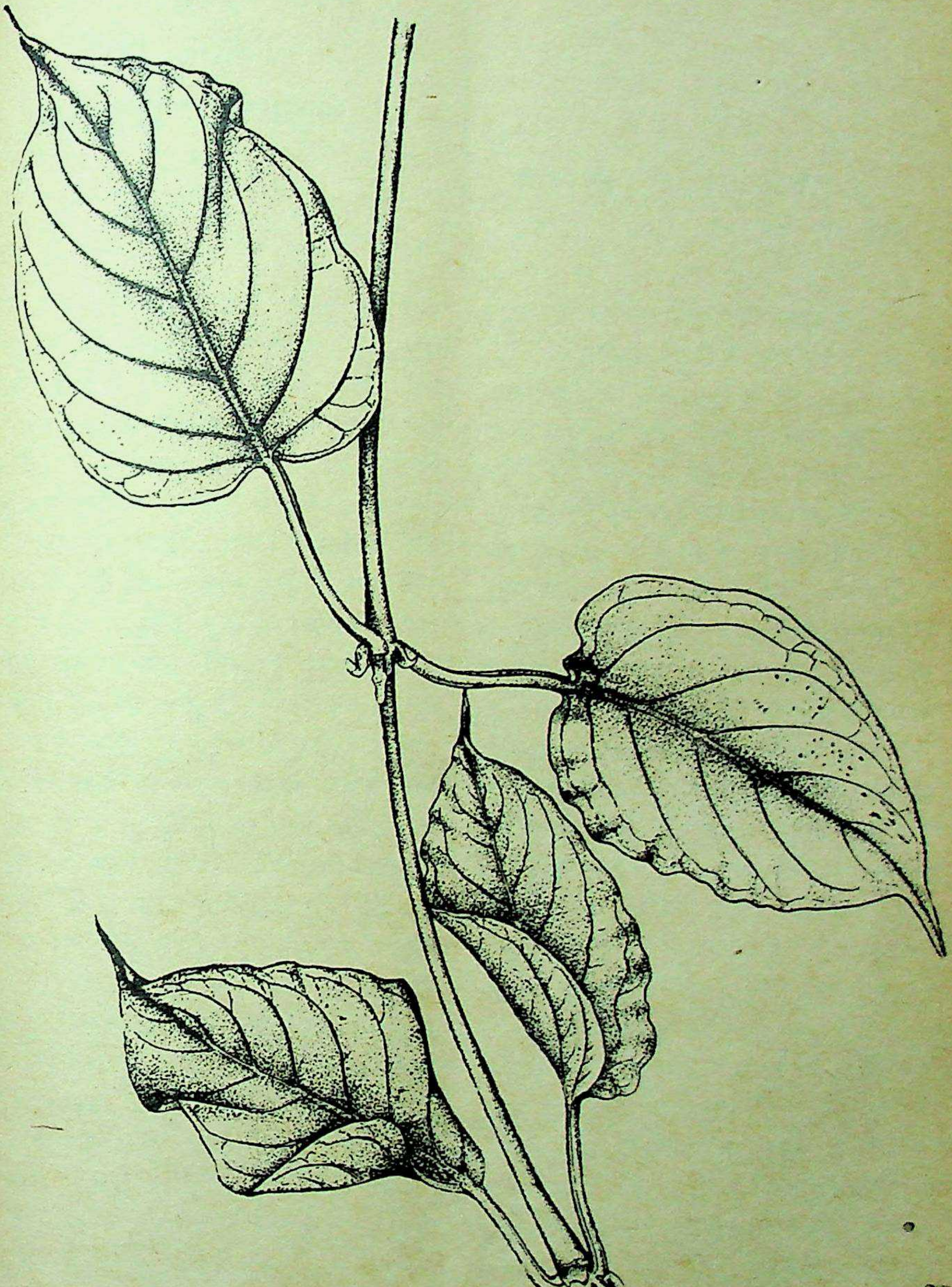

केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद द्वारा निर्मित आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम

कविराज एस. एन. बोस,

एच० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न

अब केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद द्वारा प्रस्तुत बहु प्रतीक्षित तथा बहु विज्ञापित आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम बन चुका और सारे भारतवर्ष में उसी पाठ्यक्रम को लागू किया जायेगा। शुद्ध आयुर्वेद के समर्थक इस पाठ्यक्रम के लिये बड़े ही आशान्वित हैं—इससे आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठा मिलेगी, अशुद्ध आयुर्वेदीय स्नातकों के हाथ से आयुर्वेद की रक्षा हो जावेगी—आयुर्वेद शुद्ध हो जावेगा—जैसे भगीरथ गंगा जी को फिर से हिन्दुस्तान में लाए और उसी के स्पर्श से ही आयुर्वेद शुद्ध हो जावेगा। शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का जरा विश्लेषण किया जाय—देखा जाय, उसमें ऐसी क्या वस्तु है—जिससे आयुर्वेद में जो अशुद्धि आई हैं—उसे शुद्ध बनाने की शक्ति विद्यमान है। अंग्रेजी और हिन्दी या संस्कृत भाषा जानने वाले को तुरन्त पता लग जावेगा कि शरीर-रचना-विज्ञान को अंग्रेजी में एनाटमी, शारीर क्रिया विज्ञान को फिजिओलाजी स्वस्थवृत्त को हायजीन, अगदतन्त्र को टॅक्सिकोलाजी और व्यवहार आयुर्वेद को जुरिसप्रुडेन्स, विकृति विज्ञान को पैथोलाजी, प्रसूतितन्त्र तथा स्त्री रोग को मिडवाईफरी व गायनोकोलाजी, शल्यतन्त्र को सर्जरी, शालाक्यतन्त्र को ई० एन० टी०—यही कहा जाता है। तब तो सब ही विदेशी वस्तुओं का समावेश इस शुद्ध आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में है—तो फिर शुद्ध कैसे हुआ। समझ में आया, इन सबों का हिन्दी या संस्कृत रूपान्तर किया गया है—इसी से वह शुद्ध हो गया है। तो उन विदेशी वस्तुओं को हिन्दी-संस्कृत भाषा-रूपी गंगाजल से प्रक्षालन किया गया है—यही बात है। नहीं तो आयुर्वेद में तो पृथक रूप से उस प्रकार विषयानुसार शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। पश्चात्य शिक्षा-पद्धति की देखादेखी आयुर्वेद का दोहन हुआ है—यह सन्तोष की बात है। तब तो ठीक है, पर आगे देखा जाय, अनुविश्लेषण से पाठ्यक्रम की रूपरेखा कैसी बनती है

(१) परीक्षा-प्रणाली में देखा जाता है—प्रश्न पत्र संस्कृत में होगा और छात्रों को यह छूट दी गयी है कि वे हिन्दी में अथवा अन्य किसी प्रादेशिक भाषा में—जिसके जरिये उन्हें शिक्षा दी गई—वह भाषा अगर मान्यता-प्राप्त हो तो उस भाषा में उत्तर लिख सकते हैं। संस्कृत भाषा में प्रश्न पत्र बनाने का उद्देश्य छात्रों के संस्कृत भाषा के ज्ञान की परीक्षा करनी है। उन सभी छात्रों को प्राक्-आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में संस्कृत पढ़नी पड़ी और परीक्षा भी पास करनी पड़ी, तो फिर संस्कृत में प्रश्न पत्र बना कर उनकी दुावरा परीक्षा लेने की आवश्यकता क्या है। प्रश्न-पत्र तो सर्वभारतीय रूप से नहीं बनाये जायेंगे—ऐसा कोई उद्देश्य तो पाठ्यक्रम से प्रगट नहीं है, प्रतिप्रांत में जब पृथक-पृथक विश्वविद्यालय अथवा बोर्ड द्वारा परीक्षा ली जावेगी तो यह विधान क्यों? छात्रों के ऊपर इस अकारण बोझ का उद्देश्य क्या है? उत्तर जब प्रादेशिक भाषा में दे सकते हैं तो प्रश्न-पत्र भी उसी भाषा में होना ही श्रेयस्कर है—जिससे प्रश्न पत्रों का सहजबोध्य बनना ही अधिकतर सम्भव है। प्रश्न-पत्रों को सरलता से समझने से उत्तर भी अशानुरूप सन्तोषजनक मिलने की सम्भावना है।

(२) काय चिकित्सा के प्रथम पत्र में चिकित्सा-सिद्धान्त (आयुर्वेदीय ?)के ५० अंक, सिद्ध २५ अंक तथा यूनानी के २५ अंक, इस तरह से १०० अंकों के प्रश्नों का समावेश होगा—यह निश्चित किया गया है। अर्थात् आयुर्वेद पढ़ने वाले प्रत्येक छात्रों को आयूर्वेद के साथ-साथ सिद्ध तथा यूनानी चिकित्साशास्त्र का भी थोड़ा बहुत ज्ञान रहना चाहिये। पाठ्यक्रम में तो कहीं इस प्रकार ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था देखने को नहीं मिली, तो छात्रों को वह ज्ञान कहां से आयेगा। और

दूसरी बात यह है—कि आयुर्वेद के छात्रों को सिद्ध तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति के ज्ञान की इतनी आवश्यकता क्या है? पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर भारत में सिद्ध चिकित्सा प्रचलित नहीं है—उसकी विशेष पद्धति है—जो केवल दक्षिण भारत में ही प्रचलित है। उसकी शिक्षा दक्षिण भारत में ही दी जानी चाहिये। शेष भारत में इस शिक्षा पद्धति को स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में सन्निविष्ट किया जा सकता है—और छात्रों की अभिरुचि के अनुसार उसी पद्धति की शिक्षा दी जा सकती है। यूनानी एक विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति है—जिसकी शिक्षा की पृथक व्यवस्था हमारे देश में वर्तमान है और किसी तरह से यूनानी तथा आयुर्वेद की समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति चालू करने का विचार नजर में नहीं आया है। तो आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में इन विषयों का प्रश्न-पत्र समाविष्ट करने का उद्देश्य क्या है। यह न केवल अनावश्यक ही है—परन्तु पाठ्यक्रम निर्मांताओं की चिन्ताधारा का असामंजस्य प्रकट करता है।

(३) सैद्धान्तिक तथा प्रत्यक्ष शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था पाठ्यक्रम में है—इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु शिक्षकों की योग्यता के ऊपर ध्यान देने से कुछ विचार स्वतः ही मन में उठते हैं। आधुनिक आयुर्वेद स्नातक—जिन्होंने आयुर्वेद को अशुद्ध बनाया है उन्हें भी योग्य अध्यापक कहा गया है—परन्तु उनका अध्यापन करें कौन। आयुर्वेद विद्यापीठ के आयुर्वेदाचार्यों से शायद सम्भव नहीं हैं। अतः उन स्नातकों की आवश्यकता पड़ी है। उन अस्पृश्य आयुर्वेद स्नातकों को भी शुद्ध कर लिया जावेगा—नहीं तो आयुर्वेद फिर से अशुद्ध हो हो जावेगा। खैर, उन आयुर्वेद स्नातकों के भीतर भी कितनों में सुचारु रूप से अध्यापन की योग्यता है..यह भी विचारणीय है। मेरी ४० वर्ष व्यापी विभिन्न प्रान्तों की अभिज्ञता इस सम्बन्ध में मुझे सावधान कर रही है। अभी भी अधिकांश आयुर्वेद कालेजों में पाश्चात्य विषयों के अध्यापन के लिये प्रायशः पाश्चात्य विशारदों की नियुक्ति दिखाई पड़ती है, इन क्षेत्रों में आयुर्वेद स्नातक नहीं है—यह बात नहीं है, परन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि शायद ऐसी व्युवस्था सब ही कालेज के लिये सम्भव नहीं होगी। आयुर्वेद स्नातकों को अगर प्रारम्भ से यह भार सौंपा जाता तो शायद इस प्रकार की कमी को शिक्षा का कोई भी प्रबन्ध हमारे देश में नहीं है। इस ओर हमारे नेताओं का ध्यान कभी गया ही नहीं। आज प्राथमिक शिक्षा के लिये भी प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता का अनुभव किया गया, परन्तु आयुर्वेदाध्यपन के लिये किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता ही नहीं समझी गई। आयुर्वेद कालेजों से पास होने के बाद किसी भी स्नातक को योग्य अध्यापक माना जाता है। हमारे देश में जो दो स्नातकोत्तर महाविद्यालय अभी प्रतिष्ठित हैं—वहां भी आयुर्वेदाध्यापन की शिक्षा नहीं दी जाती। अपनी-अपनी थिसिस लिखकर वे स्नातकोत्तर उपाधिधारी बन जाते हैं और अभिज्ञता की कसौटी पर अध्यापक पद पर उनका निर्वाचन विशेष उत्साहप्रद है—ऐसा अभी तक कहने का सुअवसर नहीं आया। अधिकांश आयुर्वेद कालेजों से निकले स्नातक शहर के किसी प्रतिष्ठित पाश्चात्य चिकित्सा-विशारद के पास प्रत्यक्ष शिक्षा के लिये ६ महीने या १ वर्ष तक कार्य करते हैं—फिर वे स्वतन्त्ररूप से चिकित्सा करने का साहस करते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा की प्रत्यक्ष शिक्षा अधिकांश कालेजों में मिलती नहीं—यह मैं अपनी कटु अभिज्ञता से कह सकता हूं, स्नातक कालेजो से निकलने के बाद करें क्या? मुझे पूर्ण विश्वास है—यत्र-तत्र पाश्चात्य चिकित्साभिज्ञानोक्त विषयों के अध्यापन का भार आधुनिक आयुर्वेद स्नातकों के ऊपर डालने से विशेष सुफल की आशा नही है।

विशेषतः जहां पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्रोक्त विषयों का—चाहे उन्हें हिन्दी-संस्कृत रूपी-गंगाजल से धुलाकर ही ग्रहण किया जाय—चाहे हैलिबार्टन की फिजियोलाजी के स्थान पर श्रीप्रियव्रत शर्मा का अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाय—वह विषय पाश्चात्य फिजियोलाजी ही रहेगा। और जबतक हैलिबार्टन की फिजियोलाजी के समान उच्चस्तर की पाठ्य पुस्तक हिन्दी-संस्कृत भाषा में न मिले तब तक उस फिजियोलाजी पढ़ाने में क्या दोष है? यह आशा तो की जा सकती है कि उस फिजियोलोजी को भित्ति के रूप में ग्रहण करने के पश्चात् स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में फिजियोलोजी की विशिष्ट शिक्षा लेने के बाद कम-से-कम दो चार उच्चस्तर के [illegible] विषय के लिए सुलभ होंगे। नहीं तो अधि

अध्यापक मिलना मुश्किल होगा—यह आशंका प्रतीत होती है। एनाटमी अर्थात् गंगाजल से शुद्ध शरीर रचना विज्ञान का जो ज्ञान प्रत्यक्ष शारीर से मिल सकता है अथवा रोग विज्ञान तथा विकृति विज्ञान का जो ज्ञान सिद्धान्त निदान से मिल सकता है—वह स्नातकस्तर के योग्य कभी नहीं कहा जा सकता है—यद्यपि ये दोनों ग्रन्थ मेरे स्वर्गत गुरुदेव महामहोपाध्याय गणनाथ सेन महोदय द्वारा रचित हैं, तो भी यह कहने में मुझे कुछ भी हिचकिचाहट नहीं है, कि ये पुस्तकें तो प्रारम्भिक ज्ञान के लिए पर्याप्त है—परन्तु आज के आयुर्वेद स्नातकों में इससे पर्याप्त अधिक तथा उच्चस्तर के ज्ञान की आवश्यकता है, जिससे आयुर्वेद - शास्त्र में उस ज्ञान का यथायोग्य समावेश हो सके और भविष्य में उच्चस्तरीय नवीन पुस्तकों की रचना सम्भव हो सके। पक्षपातरहित तथा आयुर्वेद के यथार्थ हितकामी दृष्टि से अवलोकन करने से इस उक्ति की सत्यता अवश्य ही प्रकट होगी। केवल पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त विषयों का ही नहीं बल्कि आयुर्वेदीय विषयों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार चिन्ताधारा की आवश्यकता है। आज आयुर्वेद कालेजों की दुरवस्था किसी से छिपी नहीं है। इस दुरवस्था के कई कारण हैं—इनमें से योग्य अध्यापकों का अभाव विशिष्ट स्थान रखता है—इसमें मतैक्य नहीं है। जबतक इस अभाव की पूर्त्ति नहीं होती तबतक आयुर्वेद कालेजों से योग्य छात्रों के निकलने की आशा कम है। इससे आयुर्वेद कालेजों की संख्या में कितना ही क्यों न ह्रास हो चाहे एक प्रान्त में एक ही आयुर्वेद कालेज ही रह जाय, परन्तु कठोरता के साथ इस ओर कदम उठाना परमावश्यक है। आयुर्वेद विद्यापीठ के अधिकांश आयुर्वेदाचार्यों से भी पुस्तकें रटने की सिवाय और कुछ अधिक आशा नहीं की जाती है। आयुर्वेद के विशिष्ट तथा प्रख्यात व्यक्ति को तद् विषय के लिए अध्यापक नियुक्त करना उचित है—परन्तु इस सम्बन्ध में भी अधिक आशा करना उचित नहीं है। अधिकांश विशिष्ट आयुर्वेदज्ञ जिन्होंने ख्याति अर्जित की है वह काय चिकित्सक के रूप में ही। कुछ चरक, सुश्रुत या वाग्भटसंहिता के विशेष अध्येता मिल सकते हैं—परन्तु उनलोगों से उन विषयों के अध्यापन के अतिरिक्त और कुछ आशा नहीं करनी चाहिये। अभिज्ञता के आधार पर ही अध्यापकों का निर्णय होता है—परन्तु मेरे सामने ऐसे भी अध्यापक हैं—जिन्होंने १५ साल तक काय चिकित्सा के लेक्चरर तथा रीडर रहने के बाद भी एक दिन आतुरालय में छात्रों को प्रत्यक्ष शिक्षा देने का उद्यम या साहस नहीं किया। कालेज के रेकार्ड के अनुसार उनकी अभिज्ञता मानकर उन्हें प्राध्यापक बना दिया जाय तो छात्रों को कम से कम कोई लाभ नहीं मिलेगा। —और न उनसे आयुर्वेद की प्रगति की ही आशा की जा सकती है। ऐसे—एक नहीं—कितने हैं—इसका क्या पता है।

अगर सच्चे दिल से सोचा जाय तो हमें आयुर्वेद को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिये योग्य अध्यापक तथा उपयुक्त पाठ्य - पुस्तकों की आश्यकता सबसे अधिक है। आयुर्वेद कालेजों में साधनों का जुटाना अर्थसापेक्ष है। धन से स्वल्पकाल में ही आयुर्वेद कालेजों को सर्व साधन सम्पन्न बनाया जा सकता है—परन्तु योग्य अध्यापक तथा उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का अभाव केवल धन से ही पूरा नहीं किया जा सकता है। इसके लिये हमें योजना बनानी है एवं सुचिन्तित योजना के अनुसार हमें प्रगति के पथ पर चलना है। केवल हिन्दी - संस्कृतरूपी गंगाजल से प्रक्षालित कर पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त विषयों के ग्रहण करने से आयुर्वेद के लुप्तांगों की पूर्त्ति नहीं होगी। उस ज्ञान को यथार्थ रूप से आत्मसात करना पड़ेगा—तभी आयुर्वेद में समाविष्ट होने की योग्यता होगी। आज हमें अध्यापक बनाने के लिये चोपड़ा कमेटी की सिफारिशों के अनुसार सब ही आयुर्वेद कालेजों में एक निर्दिष्ट काल के लिये समकक्ष चिकित्सा - विद्या शिक्षा का आयोजन करना पड़ेगा। उन कालेजों से निकले उत्तमोत्तम छात्रों को शिक्षा प्रदान-रूपी व्यवसाय को हृदय में ग्रहण के लिये प्रोत्साहित करना पड़ेगा। उन्हें योग्य अध्यापक बनाने के लिये हमें प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना करनी पड़ेगी—जहां से प्रशिक्षत होकर वे योग्य अध्यापक बन सकेंगे। उस निर्दिष्ट काल के भीतर ही उपयुक्त ग्रंथ-निर्माण की व्यवस्था करनी पड़ेगी, एवं निर्दिष्ट काल के अन्त में समान्तराल चिकित्सा-विद्या शिक्षा की पद्धति को बन्द करके समन्वयात्मक चिकित्सापद्धति की शिक्षा के लिए कालेजों में व्यवस्था करनी पड़ेगी। आज से २४ वर्ष पहले चोपड़ा कमेटी की सिफारिशें भारत सरकार के समक्ष पेश की गई थीं।

राजनैतिक कारणों से प्रबुद्ध न होकर यदि उन सिफारिशों को मूर्त रूप देने की चेष्टा की जाती तो शायद आज आयुर्वेद का कायापलट हो जाता, आज शायद आयुर्वेद भारत की स्वास्थ्य समस्याओं को अधिकतर सुचारू रूप से सुलझाकर इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति होने का गौरव अर्जन कर सकता था, परन्तु विधि का विधान यह नहीं था। भगवान धन्वन्तरि हमसे विरुद्ध थे—अतः वैसा हो नहीं पाया। अभी तो भारतीय केंद्रीय आयुर्वेद-परिषद् बनी है। आयुर्वेद की बागडोर आज उसी के हाथ में समर्पित है, आज भी वह दूरदर्शिता के आधार पर साहस के साथ कदम उठा सकती थी और आयुर्वेद को अदूर भविष्य में इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के गौरवमय आसन पर प्रतिष्ठित कर सकती थी किन्तु उसके भीतर व्यक्तिगत प्रतिष्ठा आयुर्वेद की प्रगति में बाधा पहुँचा रही है। यद्यपि इस पाठ्यक्रम में कुछ झलक दिखाई पड़ती है, तो भी वह बालवधू का सलज्ज पदक्षेप है, वीर माता का सदम्भ प्रयास नहीं है। इससे आशानुरूप प्रगति नहीं मिलेगी—यह सत्य है।

(४) आयुर्वेद की प्रगति में दूसरा प्रधान अन्तराल है—उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों का अभाव। परिषद् द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम में जिन पाठ्य-पुस्तकों का नामोल्लेख किया गया है—उससे यह अभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। पाश्चात्य विषय प्रत्यक्ष रूप से न सही, परोक्ष रूप से तो पाठ्यक्रम में समावेश किया गया है। चाहे उस विषय का हिन्दी अनुवाद करके ही रखा गया हो—परंतु इस प्रकार विषय प्रधान पाठ्यक्रम तो शुद्ध आयुर्वेद-सेवियों की कल्पना में भी नहीं आ सकता है, यह तो पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति का ही अनुकरण है। आज उन विषयों के जो ग्रंथ हिन्दी में हमारे देश में उपलब्ध हैं—उनमें से एक भी ग्रन्थ पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के ग्रंथों के साथ तुलना के योग्य नहीं है। इन ग्रन्थों के अन्दर ही पाठ्यक्रमान्तर्गत शिक्षा सीमित रखने से उसका स्तर आशानुरूप उन्नत होगा—यह कहना व्यर्थ है। आज यदि आयुर्वेद के छात्रों का शिक्षा-स्तर ऊंचा नहीं किया गया तो उनसे भविष्य में योग्य अध्यापक, अनुसंधानकर्त्ता तथा उच्च स्तर के काय चिकित्सक तथा शल्य चिकित्सकों का निर्माण—जो कि पाठ्यक्रम के प्रारम्भ में ही

कभी नहीं हो सकती है; इस सत्य को स्वीकार करना चाहिए। जब तक उच्च स्तर की पाठ्यपुस्तकें तैयार न हो जायं तब तक अंग्रेजी में उपलब्ध पुस्तकों की सहायता लेने में हिचकिचाहट की आवश्यकता नहीं है—और यथाशीघ्र उपयुक्त स्तर की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए सचेष्ट होना चाहिए।

विषयानुसार पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के पहिले हमें आयुर्वेद-संहिताओं का विषयानुसार दोहन करना आवश्यक है। अपने घर में क्या है—इसका पता न रहने से दूसरे से कितना उधार लेना है—इसका पता कैसे लगेगा। अतः एक ही विषय के कुछ अध्यापकों की एक समिति बनाकर उन्हें उस विषय की पाठ्य-पुस्तक बनाने का भार सौंप देना चाहिये। उनकी सहायता के लिये पश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र के उक्त विषय के अध्यापक—जिनमें आयुर्वेद के प्रति सहानुभूति है, उन्हें भी सम्मिलित करना चाहिये। इस तरह से प्रत्येक बिषय के लिए ग्रंथ का निर्माण आवश्यक है और चेष्टा करने पर समान्तराल अध्यापन के लिये निर्दिष्ट काल में ही आवश्यक ग्रंथों की उपलब्धि सम्भव है। योजनानुसार आन्तरिक चेष्टा होनी चाहिये। आज देश में विषयानुसार ग्रंथों का अभाव देखकर कुछ आधुनिक आयुर्वेद स्नातक अपने अधिकार बहिर्भूत विषयों की पुस्तकें प्रकाशित करवा रहे हैं। उन ग्रंथों में पाश्चात्य शास्त्रोक्त अंग्रेजी ग्रंथों का संक्षिप्त अनुवाद अथवा अनुकरण किया गया है। इन ग्रंथों से स्नातक स्तर का शिक्षा-प्रदान असम्भव है। प्रारम्भिक ज्ञान हो सकता है—परन्तु जिन उद्देश्यों की पूर्त्ति की आशा में इस पाठ्य-क्रम को बनाया गया है—इन पुस्तकों से उस आशा की पूर्त्ति सम्भव नहीं है। अगर शुद्ध आयुर्वेद के समर्थकों की आपत्ति हो तो पूर्वोक्त अंग्रेजी पुस्तकों को आलोच्य ग्रंथों की सूची में स्थान अवश्य ही मिलना चाहिए ताकि अध्यापक अपने अध्यापनकाल में अपने को उन ग्रंथ तक ही शिक्षा-प्रदान को सीमित न रखें और छात्र भी अपने ज्ञान को विस्तृत कर सकें। यद्यपि यह पग सराहनीय नहीं है—तो भी आपत्कालीन व्यवस्था के रूप में ग्रहणीय है। मुझे यह बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है कि एक ही व्यक्ति स्त्री रोग-विज्ञान, शल्यतन्त्र तथा शालाक्य तन्त्र के पाठ्यग्रंथों का प्रणेता हो। क्या वे सर्वशास्त्रविद् हैं, आयुर्वेद में 'क्षेत्र विशेष में अहंता

एक विषय का अध्यापक बन गये तो चरक या सुश्रुत बन बैठे और सभी विषय में पुस्तकें लिखने की योग्यता का अर्जन कर लिया ! इससे आयुर्वेद जगत की वर्त्तमान स्थिति सहज ही अनुमेय है ।

इन सब कमियों का अनुभव करते हुए भी सन्तोष इस बात का है कि केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद् ने एक स्नातक-स्तर का पाठ्यक्रम बनाया है और उसे समग्र भारतवर्ष में चालू करने का सोच रहा है। आयुर्वेद की प्रगति के लिए समग्र भारतवर्ष में स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम में एकरूपता जरूरी है। उसमें जो कमियाँ है—आशा है, अधिकारी वृन्द उस ओर यथायोग्य ध्यान देकर उसे परिमार्जित तथा संशोधित करने का सत्साहस दिखायेंगे। पाठ्यक्रम तो बना, परन्तु उसे सर्वभारतीय रूप देने में बहुत कठिनाइयों का सामना उन्हें करना पड़ेगा—और पूर्ण विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि सभी बाधा-विघ्नों को हटाकर वे अपनी सफलता अर्जन कर सकेंगे। इस पाठ्यक्रम में कम से कम इतना तो है कि हिन्दी में बना है और हिन्दी में लिखी गई पुस्तकें इस पाठ्यक्रम के पठनीय ग्रंथ हैं—अतः शुद्ध आयुर्वेद-सेवियों का अनुमोदन इसमें मिलेगा। आधुनिक स्नातक यह देख कर खुश होंगे—कि आयुर्वेद-शास्त्र में जो कमियाँ कालक्रम से आ गयी थीं —उनको इस पाठ्यक्रम - निर्माताओं ने स्वीकार किया और उसकी पूर्ति के लिये कुछ कदम उठाया है। अतः उनका भी अनुमोदन अपेक्षित है। इस तरह से प्राचीन तथा आधुनिक आयुर्वेद - सेवियों के अनुमोदन से पाठ्यक्रम चालू करने में परिषद को बल मिलेगा। परन्तु मुझे शंका है—कि कुछ वर्षों में उनको जो अभिज्ञता मिलेगी—उससे आयुर्वेदाध्ययन में कायाकल्प करने की आवश्यकता उन्हें अवश्य ही अनुभूत होगी। भगवान श्री धन्वन्तरि की इच्छा सफल हो—यही प्रार्थना है।

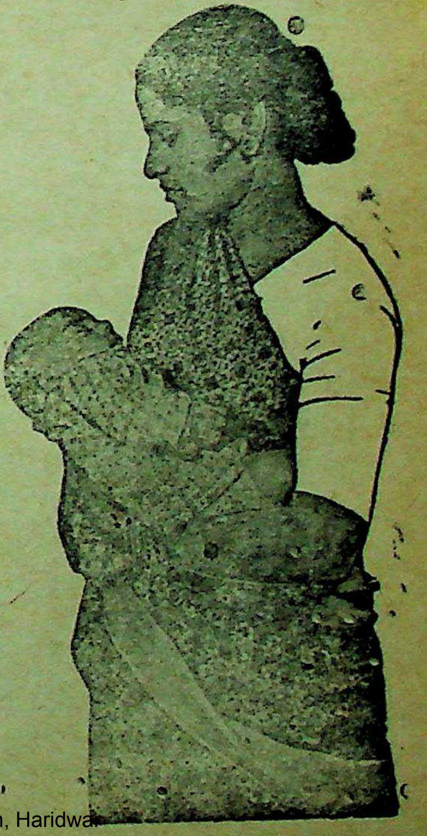

प्रसव के बाद
अवश्य सेवनीय
बैद्यनाथ
दशमूलारिष्ट

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता·पटना·झाँसी·नागपुर·नैनी (इलाहाबाद)

बैद्यनाथ दशमूलारिष्ट सब जगह, एक समान, एक स्वर और एक ही मूल्य पर मिलता है।

आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा—११

अग्निवेश

आचार्य पं० रामरक्ष पाठक

पुनर्वसु आत्रेय के ६ प्रमुख शिष्यों में भी अग्निवेश अग्रणी माने जाते हैं¹ । यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अग्निवेश पुनर्वसु आत्रेय काल के ही आचार्य हैं। अर्थात् उनके शिष्य होने से उनका काल कुछ पीछे हो सकता है।

ये अपने सहपाठियों में सर्वप्रथम तंत्रकर्ता हुए जिससे इनको अग्रणी कहा गया है। इनके द्वारा रचित तन्त्र का नाम 'अग्निवेश तन्त्र' हुआ जिसका प्रतिसंस्कार चरक ने किया, जो आगे चलकर चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुआ² । इस चरक प्रतिसंस्कृत अग्निवेश तन्त्र के भी लुप्तप्राय हो जाने पर पुनः दृढ़बल ने यथालाभ अर्थात् सूत्र, निदान, शरीर, इन्द्रिय और चिकित्सा के १३ अध्याय को लेकर अन्य तंत्रों से शेष चिकित्सा के १७ अध्याय का तथा कल्प एवं सिद्धिस्थान का निर्माण कर पुनः प्रतिसंस्कार किया जो आज चरक संहिता के नाम से उपलब्ध है³ । अग्निवेश तंत्र कायचिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना गया है। इस तंत्र के अनेक उद्धरण टीकाओं में प्राप्त होते हैं⁴ ।

तंत्रकर्ता तथा चिकित्सक के रूप में अग्निवेश का वर्णन सुश्रुतसंहिता, अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदय आदि अन्य ग्रंथों में भी प्राप्त होता है¹ । अतः इनके चिकित्सक तथा तंत्रकर्ता होने में कोई सन्देह नहीं होता। इन उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं का भी संकेत प्राप्त होता है। जैसे—अञ्जननिदान, निदान स्थान, या नेत्राञ्जन, प्रभृति। इनके नाम पर अनेक योगों का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे—(१) चङ्गेरी घृत (२) वासाद्य घृत (३) षट्पलघृत (४) चव्याद्य घृत (५) श्वदंष्ट्राद्य घृत (६) तिलक घृत आदि² ।

अग्निवेश संहिता में 'तक्षशिला' का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। परन्तु पाणिनी ने गार्गादिगण में अग्निवेश, जतुकर्ण तथा पराशर का उल्लेख किया है। ³ पाणिनी ने तक्षशिला का भी उल्लेख किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि अग्निवेश पाणिनी से पहले अवश्य हुए हैं। 'शालिहोत्र संहिता' में वर्णित आचार्यों में भी अग्निवेश का नाम आया है। इसी प्रकार पालकाप्यकृत 'हस्त्यायुर्वेद' में भी इनका नामोल्लेख है। मज्झिमनिकाय में गौतम बुद्ध के साथ आध्यात्मिक चर्चा करने वाले सच्चक (सत्यक) नामक निगण्ट (निर्ग्रन्थ) नाथपुत्र का भी गोत्र परक अग्निवेश शब्द द्वारा निर्देश प्राप्त होता है।

---

१. (१) 'अग्विेनशश्च भेलश्च जतुकण: परासर: ।
हारीत: क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेर्वच: ॥'
(च० सू० अ० १-३०)
(ii) बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः ।
तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥'
(च० सू० अ० १-३८)

२. (i) इत्यग्निवेशकृते तंत्रे चरकप्रतिसंस्कृते × '
(ii) इत्यग्निवेशकृते तन्त्रेऽप्राप्ते दृढ़बलपुरिते....।''

३. अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पा: सिद्धय एव च ।
नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरकसंस्कृते ॥
तान्येतान् कापिलबलि: शेषान् दृढ़बलोऽकरोत् ॥'

४. (i) यदुक्तमग्निवेशतन्त्रे (च० चि० २-१८ पर चक्रपाणि)
(ii) अत्राग्निवेश संहितायामधीयते ।' (च० चि० अ० ३-१८७ पर चक्रपाणि)
(iii) तथाहि अग्निवेश: (च०चि० अ० ७।६४ पर चक्र०)
(iv) उक्तं चाग्निवेशेन (च० चि० अ० ४-७१ पर चक्रपाणि)

१ —(i) 'षटसु कायचिकित्सासु ये चोक्ताः परमर्षिभि: ।' (सु० उ० अ० ।)
षटसु कायचिकित्सासु अग्निवेशभेल—जतुकर्ण
पराशर-हारीत-क्षारपाणि प्रोक्तासु'
(डल्लन)
(ii) 'तेऽग्निवेशादिकांस्तेतु पृथक् तंत्राणि तेनिरे।'
(अ० उ० अ०)
(iii) अ० सं० अ० । (४) व्याख्या कुसुमावली

२—गदनिग्रह

३ (१) पाणिनि सू० ४-३-७३
(२) गर्गादिभ्योयञ् (पाणि सू० ४-१-१०५)
(३) पालकाप्य पृ० ५८१ मज्झिम निकाय पृ० १३८

महाभारत में भी अग्निवेश का वर्णन प्राप्त होता है। वहां कहा है कि ये अग्नि के पुत्र थे। भागवत पुराण में (६।२।२१-२२) इन्हें देवदत्त के पुत्र तथा अग्नि का अवतार कहा गया है। मत्स्य पुराण (१६६।१२) में अग्निवेश नाम अङ्गिरा गोत्रान्तर्गत आया है। इन्हें वह्निवेश, हुताशवेश भी कहा है। (च० सू० अ० १३।३।१७।५) ये श्री दाशरथि राम के काल से कुछ पूर्व से भारत युद्ध के लगभग २५० वर्ष पूर्व तक जीवित रहे। इस दीर्घकाल में इन्होंने अनेक मुनियों को आयुर्वेद की शिक्षा दी। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार (३।४७।४६) जामदग्न्य परशुराम के अश्वमेध यज्ञ में कश्यप आदि के साथ वेदवेदाङ्ग पारंगत अग्निवेश और पराशर दोनों उपस्थित थे। चौबीसवें परिवर्तन में जब वाल्मीकि व्यास थे तब उनके साथ शालिहोत्र और अग्निवेश भी थे। (वायुराण २३।२०७) इन्होंने भरद्वाज से आग्नेयास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। ये द्रोणाचार्य और द्रुपद के अस्त्रविद्या गुरु भी थे। (आदि १२६।३६-४०) अगस्त्य द्वारा इनको धनुर्वेद की भी शिक्षा हुई थी। (आदि १३८।६)

पाणिनिप्रोक्त तथा मज्झिमनिकाय में वर्णित तथा महाभारत के अग्निवेश ही आग्नवेश तंत्र के कर्त्ता तथा पुनर्वसु आत्रेय के अग्रगण्य शिष्य थे इसका कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। अतः यह निर्णय करना कि ये एक थे, कठिन हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी अग्निवेश का नामोल्लेख है। इस प्रकार अनेक अग्निवेशों का वर्णन भारतीय वाङ्मय में प्राप्त होता है।

भेल (S)

पुनर्वसु आत्रेय के ६ शिष्यों में एक भेल या भेड भी थे। इन्होने भी अपने नाम से एक तंत्र की रचना की थी जो आज 'भेल संहिता' के नाम से उपलब्ध है।[1] इनके नाम का उल्लेख भी उपलब्ध आयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।[2] इस उपलब्ध संहिता में अनेक स्थलों पर गांधार देश का नाम आने से बर्नेल ने इन्हें गांधार देश निवासी कहा है।

पुरातन ग्रन्थों में भेल तथा भेड दोनों नाम प्राप्त होते हैं। अग्निवेश का काल ही भेल का काल है। काश्यप संहिता में प्रोक्त अनेक परिषदों में से एक में गार्ग्य, माठर, आत्रेय पुनर्वसु, पराशर तथा कश्यप के साथ भेल की उपस्थिति का भी वर्णन है। भेल संहिता में भी एक परिषद् में वडिश, शौनक, खंडकाप्य, भरद्वाज, कश्यप आदि के साथ भेल का वर्णन प्राप्त होता है।

उपलब्ध 'भेल संहिता' खण्डित रूप में ही प्राप्त हुआ है। वाग्भट्ट के वचनों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय में भेल संहिता अविकल रूप में प्राप्त था। ये भी अग्निवेशकालीन आचार्यों में ही हैं।

जतुकर्ण

ये भी पुनर्वसु के ६ प्रमुख शिष्यों में एक थे। इन्होंने जतुकर्णसंहिता नामक तंत्र की रचना की थी। परन्तु यह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इनके अनेक उदाहरण टीकाओं में प्राप्त होते हैं।[1] जैसे—(१) शिवदाससेनकृत तत्व-चन्द्रिका टीका में। (२) विजयरक्षित कृत मधुकोष व्याख्या में। (३) श्री कण्ठदत्तकृत आतंक दर्पण व्याख्या मे (४) डल्लनाचार्यकृत निबन्धसंग्रह व्याख्या में इत्यादि। इनके नाम से योगों के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। जैसे—महातिलक घृत—गदनिग्रह में।

जतुकर्ण की वंशावली अभी संदिग्ध ही है। वायुपुराण के अनुसार ये वशिष्ठ के "नप्ता" थे। "ऋषीणां च वशिष्ठाय वासिष्ठाय महात्मने। तन्नप्त्रे चातियशस्ते जातुकर्णाय चार्षय ११" (१/१०) नप्ता शब्द पौत्र तथा दौहित्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संभवतः नाती–पोता इसी का अपभ्रंश है। पाणिनी ने भी गर्गादि गण में जतुकर्ण का उल्लेख किया है। (४/१/१०४)। इस गण में अग्निवेश, अगस्ति, पुलस्ति, अश्मरथ तथा मण्डू आदि नाम भी आये हैं। इससे जतुकर्ण या जातुकर्ण शब्द गोत्रापत्य प्रत्ययान्त प्रतीत होता है। कहीं-कहीं जतुकर्ण के लिए ही जातुकर्ण प्रयोग हुआ है। अष्टाङ्ग संग्रह, उत्तर स्थान में विषों के वर्गों का वर्णन करते हुए भी जतुकर्ण का उल्लेख है।

---

१. (१) च० सू० अ० १-३०

२. (२) "षड्वर्ष प्रभृतिनांतु भेडः
(का० चि० अ०।)"

(३) "भेडाद्याः किन [illegible] × × × ×।"

१. (१) च० सू० अ० १-२ टीका में पेज ३-२-४०, ६-२-२६

(२) ,, ,, (३)—(२६-२-२४)

ऐतरेय आरण्यक (५/३) में जतुकर्ण का मत उद्धृत है। पुनर्वसु आत्रेय के अतिरिक्त इन्होंने पराशर से पुराण परम्परा का ज्ञान प्राप्त किया था तथा बाष्कल ऋषि से ऋग्वेद की एक संहिता पढ़ी थी। इनकी रचनायें पुराण, धर्मसूत्र तथा योग पर भी थीं।

हारीत

हारीत भी पुनर्वसु आत्रेय के ६ शिष्यों में एक थे और इन्होने भी अपने नाम पर तंत्र की रचना की थी। जो "हारीतसंहिता" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] इनके वचन भी टीकाग्रंथों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।[2] हारीतसंहिता नाम की सम्प्रति जो पुस्तक प्राप्त होती है वह किसी आधुनिक पण्डित की कृति प्रतीत होती है। क्योंकि टीकाओं में उद्धृत वचन उसमें नहीं मिलते। साथ ही उसकी भाषा अति नूतन है। अनेक अशुद्धियां भी उसमें प्राप्त होती हैं। उपलब्ध "हारीतसंहिता" के रचयिता का विचार आगे किया जायेगा।

महाभारत में एक प्राचीन ऋषि के रूप में 'हारीत' का वर्णन प्राप्त होता है जो युधिष्ठिर का विशेष सम्मान करते थे। (वन० २६/२३)। ये शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म को देखने के लिए गये थे। (शान्ति अ० ४०/७)

पं० भगवद्दत्त जी के अनुसार हारीतमुनि मान्धाता के वंशज थे। (मा० ई० पे० ७५) ये मान्धाता की चौथी पीढ़ी में थे और अङ्गिरस गोत्रीय थे।

मान्धाता
|
अम्बरीष
|
हरीत
|
हारीत

सांख्यकारिका के अति प्राचीन माठरवृत्ति के अनुसार भार्गव, उलूक, वाल्मीकि हारीत तथा देवल ने भिक्षुपञ्चशिख से सांख्यज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने अपने नाम चरक संहिता के अतिरिक्त अन्य चिकित्साशास्त्रसंग्रह, याजुष हारीतसंहिता, कल्पसूत्र भी लिखी थी।

पराशर

—पुनर्वसुआत्रेय के शिष्यों में पराशर भी थे और इन्होंने भी अपने नाम पर पराशरसंहिता नामक तंत्र की रचना की थी। यह भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। परन्तु इनके उद्धरण टीकाओं में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होते हैं।[1] गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने दो पराशरों का संकेत किया है। जैसे:—१. वृद्धपराशर और २. पराशर। कश्यप आदि ऋषियों के साथ कश्यपसंहिता में पराशर का भी नामोल्लेख हुआ है। अष्टांगसंग्रह के सूत्रस्थान २७ वें अध्याय में भी इनका नाम आया है। पालकाप्य संहिता में वर्णित ऋषियों की सूची में भी इनका नाम है। इनकी दूसरी रचना 'तक्रकल्प' का भी संकेत प्राप्त होता है।[2] इनके नाम के अनेक औषधयोग भी मिलते हैं। जैसे—पराशरघृत, रसोनपिण्ड इत्यादि। पराशर का वंश प्रसिद्ध है। जैमिनीय ब्राह्मण (१/१६५), ताण्ड्य ब्राह्मण (११-५-१४)

वशिष्ठ
|
शक्ति
|
अन्धीगु — गौराधित पराशर × सत्यवती — जतुकर्ण
|
द्वैपायन व्यास

महाभारत में भी पराशर के अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं परन्तु उनमें कहीं भी इनके चिकित्सक होने का वर्णन नहीं प्राप्त होता है। अतः महाभारत के पराशर, उक्त पराशर से भिन्न प्रतीत होते हैं। ये भी अग्निवेश आदि के समकालीन हैं। यह निर्विवाद है। वृद्ध पराशर के सम्बन्ध में अग्निपुराण का उद्धरण देकर गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने इन्हें शक्ति का पुत्र तथा वशिष्ठ ऋषि का पौत्र कहा है। महाभारत में भी इसका समर्थन प्राप्त होता है (आदि १-७-१७)। इनकी माता का नाम 'अदृश्यन्ति' था। इन्होंने सत्यवती से व्याह किया था जिससे व्यासमुनि उत्पन्न हुए थे। इन्होंने पौत

---

१. (१) च० सू० अ० १-२१, अ० सू० अ० १-(२७-२)
अ० सू० २१-(११८-२)
(२) च० चि० अ० [illegible]

१. (i) च० चि० अ० १५-३५ पर चक्रः (५१६ ह०)
(ii) च० सि० अ० १-३१ पर चक्रः
(iii) सु० चि० अ० ३८-१११ पर डल्लन
(iv) सु० चि० ३८-६ पर डल्लन.

२. M. S. Book, M. S. S.—1438

मुनि से विष्णुपुराण लिखकर मैत्रेय को इसका उपदेश दिया था। (आदि ६३-८४)

क्षारपाणि

क्षारपाणि भी पुनर्वसु आत्रेय के ६ शिष्यों में एक थे और इन्होंने भी 'क्षारपाणि तन्त्र' की रचना की थी[1]। यह ग्रंथ सम्प्रति दुर्लभ है। परन्तु टीका ग्रंथों में इनके अनेक उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं।[2] इनके नाम पर कुछ योग भी प्रख्यात हैं। जैसे—(i) बिल्वाद्यघृत, नीलघृत इत्यादि।

चरक चिकित्सा अ० १६। ११ पर भी चक्रपाणि ने कहा है— 'क्षारपाणिना सर्वातिसाराणामेव समता पृथगुक्ता - वचनं हि —'वातातीसारः सामश्च सशूलः फेनिलस्तनुः। श्यावः सशब्दों दुर्गन्धों विबद्धोऽल्पाल्प एव च॥ एवं पित्त कफे सामयतीसारं विनिर्दिशेत्॥ पुनः चरक चिकित्सा अ० ३। ६७-६७ पर जेज्जटाचार्य ने कहा है —'अपरं च क्षारपाणीयं वचः —

'अस्थीनि संश्रित्य तृतीयकस्तु मेदश्च संश्रित्य च केचिदन्ये। मज्जानमाश्रित्य चतुर्थकस्तु प्रवर्त्तते तेन स दुश्चिकित्स्यः॥' इसी प्रकार अ० हृ० सू० १४। ६ पर अरुणदत्त ने कहा है। —'क्षारपाणिनाऽप्युक्तम्—'
पाचनं पाचयेद्दोषान् सामान् शमनमेवतु।

दीपनं अग्निकृत्वाऽ मं कदाचित्पाचयेन्नवा॥' पुनः सु० चि० अ० ३७। १००—१०१ पर डल्हन ने कहा है —' 'तथा च क्षारपाणिः — अङ्गुलाण्यथ चत्वारि—

पञ्च, षट्, सप्तवा तथा॥ सप्ताङ्गुलं परं नेत्रं प्राणिधेयम् भिषग्विदा॥

हिंस्याद वस्तिं नरं चेह प्रमाणादधिकं ततः॥'

सुश्रुत :—काशीराज दिवादोश धन्वन्तरि के यहां आयुर्वेद के ज्ञानार्थ पहुँचे हुए मुनियों में सुश्रुत प्रधान थे। इनके साथी अन्य मुनियों के नाम औपधेनव, औरभ्र, वैतरण, पौषकलावत, करवीर्य, तथा गोपुररक्षित हैं। इन सबों में प्रधान होने से ये ही प्रतिनिधिरूप में आयुर्वेद-सम्बन्धी प्रश्नों को धन्वन्तरि के समक्ष उपस्थित करते थे।[1]

इनके पिता नाम विश्वामित्र था। इन्होंने भगवान् धन्वन्तरि से शल्यप्रधान आयुर्वेद का ज्ञान लाभकर जिस

---

[1] च० सू० अ० १-३३

[2] (i) उक्तंच क्षारपाणौ—'त्रिमासस्य रोमनखान् संहारयेत्' (च० सू० अ० ८-१८ पर चक्रः)

(ii) 'स च क्षारपाणिवचनेन कर्त्तव्यः—यदुक्तं यावत् कालं न सुप्तः स्याद्रात्रौ स्वप्नाद्यथोदितां ततोऽर्धमात्रं तत्कालं दिवास्वप्नो विधीयते॥'
(च० सू० २१-४३ पर चक्रः)

(iii) 'तथा च क्षारपाणिः —' अङ्गुलान्यथ
चत्वारि पञ्च षट् सप्तवा तथा।
सप्तांगुलं परं नेत्रं प्रणिधेयं भिषग्विदा॥'
(सु० चि० अ० ३७-१०१ पर डल्लन)

(iv) क्षारपाणिनाप्युक्तम् :—'उर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी मुखंस्त्रियं।
उभयं वस्ति संयातः शोथो हन्ति न संशयः॥
(मा० नि० विजयरक्षितः)

(v) यदाह क्षारपाणि :— 'यावत्कालं न सुप्तिः स्याद्रात्रौ स्वप्नाद्यथोचिताम्। ततोर्धमात्रं तत्कालं दिवास्वप्नो विधीयते॥ (व्याख्या कुसुमावली पृ१ ११२)

(vi) क्षारपाणिनाप्युवम् :— 'द्रोणद्वयं तु सूर्पः स्यात् कुम्भ इत्यमिधीयते॥'
(तत्वचन्द्रिका पे० ९४)

(vii) यदुक्तं क्षारपाणिना — 'दोह्यादिनोवास्याशोणितगलिमनी
(आयर्वेददीपिका)

[1] 'अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगण–परिवृत्तमाश्रमस्थं, काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनव—वैतरण - औरभ्र - पौष्कलावत — करवीर्य-गोपुररक्षित-सुश्रुत प्रभृतयः ऊचुः।

तेषां सुखैषिणां रोगोपशमनार्थमात्मनश्च प्राणयात्रार्थं प्रजाहितोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छामः। त ऊचुः अस्माकं सर्वेषामेवं शल्यज्ञानमूलं कृत्वोपदिशतु भगवानिति। × × ×
अस्माकमेक मतीनांमत मभिसमीक्ष्य सुश्रुतोभवन्तं प्रक्ष्यति ····॥'

तंत्र की रचना की वह सुश्रुतसंहिता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यहां इस बात का भी ध्यान रखना परमावश्यक है कि वैदिक ऋषि विश्वामित्र तथा राम को धनुर्विद्या का उपदेश कराने वाले विश्वामित्र इनसे भिन्न थे अथवा अभिन्न? पं० सूरमचन्द्र जी ने डा० पी० सी० राय तथा पं० हेमराज जी राजगुरु के इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि "वस्तुतः पाश्चात्यों के एतद्विषयक भ्रान्त मतों के प्रचार से ये संदेह उत्पन्न हुए हैं। विश्वामित्र दीर्घायु था। डल्हन के वचनों के अनुसार सुश्रुत के पिता ने विश्वामित्र को गाधिराज कहा है। अतः निश्चित ही राम का धनुर्विद्योपदेष्टा विश्वामित्र सुश्रुत का पिता था। गाधिराज विश्वामित्र का पुत्र होने से ही सुश्रुत को ऋषि कहा है।"

दिवोदास धन्वन्तरि का शिष्य रूप में उपदेश होने से तथा सुश्रुत संहिता में (सु० चि० अ० ३०)[2] राम तथा कृष्ण का नामोल्लेख होने से कश्यप तथा आत्रेय के समान सुश्रुत भी उपनिषद्कालीन ही प्रतीत होते हैं। पं० हेमराज जी ने भी अनेक प्रमाणों से इनको पाणिनि से पूर्वकालीन तथा उपनिषद्कालीन सिद्ध किया है।

सुश्रुत नाम के दो प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों के नाम उपलब्ध होते हैं। एक उपर्युक्त विश्वामित्र के पुत्र मानवायुर्वेदविद् सुश्रुत और दूसरे राजर्षि शालिहोत्र के पुत्र अश्वायुर्वेदविद् सुश्रुत। राजश्री शालिहोत्र महर्षि आत्रेय के शिष्य अग्निवेश आदि के सतीर्थं थे ऐसा भी सुनने में आता है अतः इनके पुत्र सुश्रुत मानवायुर्वेद के भी ज्ञाता थे। यदि ऐसा मान लिया जाये कि राजर्षि शालिहोत्र अग्निवेश आदि के समकालीन थे तो सुश्रुत का काल भी दिवोदास आदि से बहुत पहले हो जाता है। अर्थात् वे भी अग्निवेश आदि के समकालीन हो जाते हैं। शालिहोत्र संहिता में वर्णित पितापुत्रसम्वाद से ऐसा प्रतीत होता है कि शालिहोत्र सुश्रुत ने अपने पिता से अश्वायुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। जैसे—

(i) "शालिहोत्रं मुनिश्रेष्ठं सुश्रुतः परिपृच्छति।
अश्व-प्रशंसामाहात्म्यं न ज्ञातं तत्त्वतो मया॥

(ii) "शालिहोत्रमपृच्छन्त पुत्राः सुश्रुतसङ्गताः।
व्याख्यातं शालिहोत्रेण पुत्राय परिपृच्छति॥"

(iii) "वृताग्निहोत्रमासीनं शालिहोत्रं महामुनिम्॥"
इत्यादि

परन्तु अग्निपुराण में सुश्रुत का भगवान् धन्वन्तरि से भी पशुओं की चिकित्सा-संबंधी ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन प्राप्त होता है। (अग्नि अ० २७९-२९५)। ऐसी परिस्थिति में यह मानना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि दोनों सुश्रुत उभयविध आयुर्वेद के ज्ञाता थे परन्तु विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत ने शल्य प्रधान मानवायुर्वेद को अपनाया और शालिहोत्रि सुश्रुत ने अश्वायुर्वेद को अपनाया और दोनों ने अपने-अपने विषय में प्रसिद्धि प्राप्त की। शिष्य के लिए भी पुत्र शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। परन्तु परवर्ती इसी प्रसंग में प्रोक्त 'पुत्राः शिष्याश्च पृच्छन्ति विनयेन महामुनिम्' इस वाक्य से इसका निराकरण हो जाता है। सुश्रुत के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकों का विचार चिन्त्य है। ये विचार इस प्रकार से हैं:—

१—हेस (Hass) नामक पाश्चात्य विद्वान् ने सुश्रुत का समय १२वीं शताब्दि (१२०० A) बतलाया है।

२—[illegible] ने ८वीं से १०वीं शताब्दि सुश्रुत

---

१. (i) "अथ परम कारुणिको विश्वामित्रसुतः सुश्रुतः शल्यप्रधानमायुर्वेदतंत्रं प्रणेतुमारब्धवान्।"
—(चक्रदत्तः)

(ii) विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति॥"
(सु० उ० अ० ६५)

(iii) "विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषि सुश्रुतमन्वाशात्।"
(सु० चि० २।३)

(iv) "श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा।
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः॥"

(v) "श्रीमानिति राजश्रिया ब्राह्मया वा अलंकृतः। ननु विश्वामित्रो गाधिराजिः तत्सुतत्वेन राजश्रिया योगो युक्तः। कथं ब्राह्मया श्रियेति? सत्यं विश्वामित्रस्य ब्राह्मण्यं तपसा....।" (डल्हनः)

२. "महेन्द्र रामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि।
तपसा तेजसा वाऽपि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै।"

३—कुछ अन्य विद्वानों ने ४थी तथा ५वीं शताब्दि सुश्रुत का समय निश्चित किया है।

४—मैकडोनल ने कहा है कि सुश्रुत ४थी शताब्दि (४००AD) में प्रतीत होते हैं क्योंकि बाउअर्समैन्युस्क्रीप्ट के प्रकरण, चरक तथा सुश्रुत के साथ केवल भाव में ही समानता नहीं रखते अपितु इनमें शब्दों की भी समानता है। (History of Sanskrit Literature by Macdonel)

५—वेबर लिखता है कि भाषा तथा शैली में सुश्रुत के लेख वराहमिहिर से समानता रखते हैं। (History of Indian Literature by Weber)

६—हर्वर्टगोवेन ने तो यहां तक लिखा है कि सुश्रुत नाम का कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं। यदि हुआ तो वह 'सोक्रेटीस' के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं था।

इन उपर्युक्त विचारों में हर्वर्ट गोवेन का विचार अन्य पाश्चत्य विद्वानों के कथन से ही खण्डित हो जांता है। सोक्रेटीस और सुश्रुत को किसी ने एक नहीं माना है। साथ ही सोक्रेटीस का शल्यचिकित्सक होने का कहीं भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। अन्य उपर्युक्त विचारों में मैकडोनल के विचार कुछ चिन्तनीय हैं। बाउआर्स मैन्युस्क्रेप्ट जिसका दूसरा नाम 'नावनीतक' है; खोटाङ्ग प्रदेश में भोजपत्र पर लिखा हुआ प्राप्त हुआ था। इस ग्रंथ की लिपि के आधार पर ऐसिहासिकों ने इसका समय तृतीय तथा चतुर्थ शताब्दि निश्चित किया है। इस नावनीतक में जहां पुनर्वसु आत्रेय तथा उनके शिष्यों (अग्निवेश आदि का) तथा काश्यप, जीवक, सुश्रुत के नाम तथा उनके नाम से योगों का वर्णन उपलब्ध होता है वहां चरक तथा नागार्जुन का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता है। अतः सुश्रुत नागार्जुन तथा चरक के पूर्वकालीन है ऐसा प्रतीत होता है।

महाभाष्यकार ने "तद्धितेष्वचामादेः" (७-२-१७) तथा इकोगुणो वृद्धिः" (१-१-३) की व्याख्या में 'सौश्रुतः" तथा शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम्" (२-१-१७०) इस वार्तिक में' कुतपवासाः सौश्रुतः कुतपसौश्रुतः' का निर्देश किया है। अतः महाभाष्यकार से भी प्राचीन सुश्रुत सिद्ध होते हैं। इतना ही नहीं, पाणिनि द्वारा "कार्तकौजपादश्च" (६-२-३७) इस सूत्र के गण में भी 'सौश्रुत पार्थिवाः' अपद अर्थ के सूचक प्रत्ययान्त सौश्रुत शब्द के उल्लेख होने से न केवल सुश्रुत अपितु उसके वंशज अथवा शिष्य भी पाणिनी से प्राचीन सिद्ध होते हैं। पाणिनि का काल ७०० ई०पू० ऐतिहासिकों ने निश्चित किया है। कुछ विचारक इस नामपरक को नहीं मानते हैं और कहते हैं कि सुश्रुत नाम के अनेक ऋषि हुए। अतः पाणिनिप्रोक्त सुश्रुत ही धन्वन्तरि के शिष्य तथा विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत हैं इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होता। परन्तु धन्वन्तरि (काशीराज, दिवोदास) कालीन सुश्रुत होना सर्वसम्मत है। ऐसी परिस्थिति में उपर्युक्त पाश्चात्य विचारकों का विचार स्वतः खण्डित हो जाता है।

पण्डित हेमराज जी ने उपर्युक्त पाश्चात्य विचारकों के मत का प्रतिवाद करते हुए कहा है कि नागार्जुन कृत 'उपायहृदय' नामक[१] दार्शनिक ग्रंथ में अन्य तन्त्रों के प्रसंग में "औषधिविधाः षडविधाः—औषधि नाम, औषधिगुणः, औषधि रसः, औषधि वीर्य, सन्निपातो, विपाकश्चेति भैषज्यधर्मो" इत्यादि वाक्यों द्वारा भैषज्यविद्या के विषयों का उल्लेख कर अन्त में "ययासुवैद्य को भैषजकुशलो मैत्रचित्तेन शिक्षकः सुश्रुतः" इत्यादि द्वारा भेषज विद्या के आचार्य रूप में ससम्मान एवं गौरव के साथ सुश्रुत का नामोल्लेख किया है। इस प्रकार लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्ववर्ती आर्य नागार्जुन द्वारा भी आचार्य के रूप में सुश्रुत का नामोल्लेख उक्त पाश्चात्य विचारों के प्रतिवाद के लिए पर्याप्त है।

महाभारत अनुशासन पर्व (४-४५) में भी सुश्रुत विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में एक थे ऐसा वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार आचार्य सुश्रुत का भिषगाचार्य के रूप में नागार्जुनकृत 'उपाहृदय' में नावनीतक में पाणिनि तथा महाभाष्य में एवं महाभारत आदि में वर्णन होने से सुश्रुत प्राचीन आचार्यों में तथा ई०पू० (ख्रीष्ट के पूर्व) के ही प्रतीत होते हैं।

---

[१] दो सहस्र वर्ष प्राचीन नागार्जुनकृत दार्शनिक ग्रंथ जिसका चीनी भाषा में अनुवाद तुच्ची महोदय द्वारा किया गया है। मूलग्रंथ संस्कृत में है। (का० स० उपोद्घात पेज ३२)

A. F. Rudolf Horhel ने "Studies in the Medicine of animal in India" नामक अपनी पुस्तक में सुश्रुत का समय ६०० ई० पू० (६०० B.C) निश्चय किया है। इस समय का समर्थन अन्य ऐतिहासिक भी करते हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि सुश्रुत में सात प्रकार के कुष्ठों का वर्णन प्राप्त होता है। इस रोग का भारत तथा चीन निवासियों ने २५०० वर्ष पूर्व ज्ञान प्राप्त किया था (History of Indian medicine)। सुश्रुत संहिता का लैटीन भाषा में अनुवाद करने वाला हेसलर (Hesler) ने सुश्रुत का काल १००० वर्ष ई० (११-००० B.C.) बतलाया है। इस प्रकार विभिन्न विचारकों के विचार के अनुसार सुश्रुत का काल २६००-२६०० वर्ष आज से पूर्व होता है।

सुश्रुत के काल निर्णयार्थ एक और साधन अपनाया जा सकता है। वह यह कि भारतवर्ष में रवि-सोम-भौम आदि वार गणना के प्रचार होने के पूर्व ही सुश्रुत की रचना हुई है ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि उपलब्ध सुश्रुत संहिता में कहीं भी शुभाशुभ के लिए वारों का वर्णन नहीं उपलब्ध होता। सर्वत्र तिथि, नक्षत्र आदि से ही शुभाशुभ का निर्देश किया गया है। भारतवर्ष में वार गणना का प्रचार श्री शंकरबालकृष्ण-दीक्षित जी के अनुसार १००० वर्ष पूर्व शकारम्भकाल से हुआ है। अतः सुश्रुत का काल इस आधार पर आज से ३००० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। दुर्लभगणकृत 'सिद्धोपदेश संग्रह' नामक ग्रंथ में भी सुश्रुत का उल्लेख है। परन्तु वहां स्पष्ट कहा है कि ये अश्ववैद्यक के आचार्य थे। जैसे—'शालिहोत्रेण गर्गेण सुश्रुतेन च भाषितम्। तत्वं यद्वाजी शास्त्रस्थ तत्सर्वमिह संस्थितम् ॥' इत्यादि। अग्निपुराण के अनुसार धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत भी अश्ववैद्यक के ज्ञाता थे (जिसका संकेत पहले कर चुके हैं)।

इन उपर्युक्त दो सुश्रुतों के अतिरिक्त टीकाकारों द्वारा अनेक स्थलों पर 'वृद्ध सुश्रुत' के वचनों का उद्धरण मिलने से तथा इन उद्धृत वचनों का उपलब्ध सुश्रुत में न प्राप्त होने से एवं औपधेनव, औरभ्र प्रभृति के साथ सुश्रुत का पृथक उल्लेख होने से कुछ विद्वान वृद्ध सुश्रुत की भी कल्पना करते हैं। परन्तु सुश्रुत का उल्लेख न होने से तथा महाभारत आदि में विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत का ही उल्लेख होने से अरब तथा कम्बोडिया के शिलालेखों में भी सुश्रुत का ही नाम होने से एवं वृद्ध सुश्रुत के नाम से उपलब्ध वचनों की भाषा में प्राचीन रचना एवं प्रौढ़ता का अभाव दृष्टिगोचर होने से वृद्ध सुश्रुत की कल्पना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होती।

इस प्रकार दोनों सुश्रुत—हयशास्त्रवेत्ता राजर्षि शालिहोत्र के पुत्र सुश्रुत तथा नरायुर्वेदवेत्ता विश्वामित्र ऋषि के पुत्र सुश्रुत ईसा के पूर्वकालीन हैं। इनका काल १००० ई० पू० से लेकर ३०० ई० पू० तक विभिन्न विचारकों के अनुसार प्राप्त होता है।

चरक

—अग्निवेश संहिता के प्रतिसंस्कर्ता चरक थे। आयुर्वेदीय वाङ्मय में चरक के सम्बन्ध में अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। जैसे—

(१) अग्निवेशतंत्र के प्रतिसंस्कर्ता चरक
(२) शेषावतार चरक।
(३) अहिपति या पतंजलि चरक।
(४) चरकतंत्र के रचयिता चरक।

उपलब्ध चरक संहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रतिसंस्कृते' इस पद द्वारा अग्निवेश तंत्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक थे, यह स्पष्ट रूप से कहा है। भाव प्रकाश में पौराणिकवार्ता के आधार पर चरक को शेषावतार कहा गया है। जैसे—

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः।
तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥
अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान्।
एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः ॥
तत्रलोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीडितान्।
स्थलेषुबहुषु व्यग्रान् प्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥
तान् दृष्ट्वाति दया युक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः।
अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥
संचिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूवह।
प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवादिनः ॥
यतश्चरद्वायातो न ज्ञातः केनचिद् यतः।
तस्माच्चरक नाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ॥'

इस उपाख्यान के अनुसार विशुद्ध मुनि के पुत्र चरक हुए ऐसा विचार भी प्रगट किया गया है। चक्रपाणिदत्त ने अपनी दीपिका व्याख्या के मङ्गलाचरण में इन्हें अहिपति

अर्थात् पतंजली शब्द के द्वारा सम्बोधित किया है [1]।

कायचिकित्सा प्रधान चरकतंत्र के रचयिता चरक मुनि थे। भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश को आयुर्वेद का उपदेश दिया और अग्निवेश ने अपने नाम पर एक तंत्र (अग्निवेशतंत्र) की रचना की। पश्चात् कालक्रम से अग्निवेश तंत्र का लोप-सा हो गया। पुनः यथासाध्य उपलब्ध अग्निवेश तंत्र के अंशों के आधार पर चरक ने उसका प्रतिसंस्कार किया और अपने नाम पर चरक तंत्र की रचना की। इसका समर्थन च० सि० अ० १२ के अधोलिखित वचनों से हो जाता है। जैसे—

'विस्तारयति' लेशोक्तं संक्षिप्त्यति विस्तरम्। संस्कर्ता कुरुते तंत्रं पुराणं च पुनर्नवम्॥ अतस्तन्त्रोत्तममिदं चरकेनाति कवुद्धिना। संस्कृतं तत्त्वसम्पूर्णं..॥'
(च० सि० अ० १२-३६-३८)

डल्लनाचार्य ने भी अनेक स्थलों पर चरक के वचनों का उद्धरण दिया है। वाग्भटाचार्य ने तो चरक का उल्लेख मात्र ही नहीं अपितु यह भी आशंका प्रकट की है कि ऋषि प्रणीत होने से कोई उनकी रचना का अनादर न करें। क्योंकि उन्होंने चरक तथा सुश्रुत दोनों के विषयों का ग्रहण कर अपनी पुस्तक की रचना की है। उनकी पुस्तक को पढ़नेवाला चरक तथा सुश्रुत दोनों के विचारों से अवगत होगा। उन्होंने कहा है —

'यदि चरकमधीते तद् ध्रुवं सुश्रुतादि।
परिगदित गदानां नाममात्रेऽपि वाह्यः॥
अथ चरक विहीनः प्रक्रियाया मात्रभिन्नः।
किमिव खलु करोतु व्याधितानां वराकः॥
(वा० उ० अ० ४०। ८३-८४)

इन उपर्युक्त वर्णनों के अतिरिक्त चरक का उल्लेख आयुर्वेदेतर भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र उपलब्ध होता है। अतः चरक के काल-निर्णय में इन सभी वर्णनों की समीक्षा आवश्यक है।

सबसे प्राचीन ग्रन्थ शुक्लयजुः संहिता के ३० वें अध्याय में पुरुष प्रकरण के १८ वें मन्त्र में 'दुष्कृताय चरकाचार्यम्' ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। इसकी व्याख्या करते हुए श्री मिश्र जी ने चरकाचार्य का अर्थ वैद्याचार्य किया है। इस पाठ के अनुसार वैद्याचार्य चरक अति प्राचीन प्रतीत होते हैं। महीधर ने इसका अर्थ चरकों के अर्थात् चरक शाखावालों का गुरु ऐसा अर्थ किया है। मराठी ज्ञान कोष (Encyclopedia) के रचयिता का मत इसके विरुद्ध है। शतपथ ब्राह्मण में भी चरक शाखा का बोध कराने वाला चरक पद अनेक स्थलों पर आता है। तैत्तीरीय ब्राह्मण के मन्त्र में भी, 'दुष्कृताय चरकाचार्यम्' यह पद आया है। सायण ने इसका अर्थ बांसो पर खेलने वाला नट किया है। यजुर्वेद के भाष्यकार श्री स्वामी दयानन्द जी ने (चरक) का अर्थ भोजन भट्ट खानेवालों का आचार्य (चरगतिभक्षयोः के आधार पर) किया है। इन उपर्युक्त वर्णनों से चरक तन्त्र के कर्ता तथा अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता चरक का कोई निर्णय नहीं होता है।

चरक चतुरानन चक्रपाणिदत्त के पूर्वोक्त वर्णन का समर्थन योगवार्तिककार तथा नागेशभट्ट से प्राप्त होता है। योगवार्तिककार ने भाष्यकार पतंजली को ही चरक माना है। जैसे—'योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन। योऽपाकारोत्तं प्रवरं मुनिनां पतंजलीं प्रांजलिना नतोऽस्मि॥ इसका समर्थन नागेशभट्ट ने 'चरके पतंजली' इस सूत्र से किया है। इसके आधार पर चरक का काल २०० ई० पू० ऐतिहासिकों के अनुसार होता है। किसी-किसी आचार्य ने पाणिनी सूत्रों में चरक उल्लेख होने से चरक को पाणिनी के भी पूर्वकालिक माना है। पाणिनि सूत्रों में— १. 'कठचरकाल्लुक' (४-३-१०९)

२. 'माणवकचरकाभ्यांखम्' (५-१-१४) ये सूत्र आते हैं जहां चरक का उल्लेख है। इसके आधार पर चरक ७०० ई० पू० से भी पूर्वकालिक हो जाते हैं। परन्तु यहां यह विचार करना आवश्यक है कि ये संज्ञाएं गोत्रपरक हैं न कि वैद्य या चिकित्सा के आचार्य परक।

याज्ञवल्क्यस्मृति की व्याख्या में विश्वरूपाचार्य (८ वीं शताब्दी) द्वारा उद्धृत 'तथा च चरकाः पठन्ति' इस वाक्य में अश्विनी कुमारों द्वारा भैषज्य का उपदेश दृष्टिगोचर होने से आपाततः यह वैद्यक का विषय प्रतीत होने पर भी आपत्काल में मधु (शराब) के ब्रह्मचर्य का बाधक न होकर साधक के रूप में निर्देश है। इसके साथ ही ब्राह्मणों के वचन उद्धृत होने से तथा

---

[1] पातंजलमहाभाष्य चरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥
(च० सू० १।१) चक्र

उनके साहचर्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां चरक शब्द का प्रयोग चरक शाखा वालों के लिए हुआ है। काशिका के अनुसार वैशम्पायन तथा अन्य शिष्यों के लिए भी चरक का प्रयोग हुआ (काशिका वृति ४-३-१०४)

वृहज्जातक के अनुसार चरक बौद्धकालीन भिक्षु-चिकित्सक प्रतीत होते हैं। वाराहमिहिर ने वृहज्जातक के सन्यासवर्णन में प्रोक्त शाक्याजीविक की व्याख्या करते हुए आजीविका सम्प्रदाय का उल्लेख कर कहा है कि इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक गौतम बुद्ध का समकालीन मङ्खलिपुत्र गोपाल हुआ। इस सम्प्रदाय के अनुयायी भी 'चरक' कहलाये। इससे चरक 'जैन' सम्प्रदाय के थे ऐसा प्रतीत होता है।[1]

जयन्त भट्ट ने अपनी न्याय मंजरी में भी चरक का उल्लेख कर सम्मान करते हुए कहा है कि देश, काल, पुरुष, दशा भेदों के अनुसार समस्त एवं व्यस्त पदार्थ तथा शक्तियों का निश्चय कारक चरकादि हुए[2]। शान्तिरक्षित बौद्धाचार्य ने तत्व-संग्रह में चरक के मत को उद्धृत किया है जैसे—

अस्मिन् सति भवत्येव न भवत्यसतीति च।
तस्मादतो भवत्येव युक्तिरेषाऽमिधीयते ॥

प्रमाणान्तरमेवेयमित्याह चरको मुनिः ॥ 'यहां युक्ति को 'प्रमाणान्तरमेवेयमित्याह चरको मुनिः' मानते हुए चरक के मत का उद्धरण अपने समर्थन में दिया है। बौद्धाचार्य शान्तिरक्षित का समय ८वीं शताब्दी (६००-७६२) माना गया है।

पतंजलि ने 'आसंघवनः साकेतम्'। अर्थात् यवनों (यूनानियों) ने अयोध्या पर आक्रमण किया—इस वाक्य द्वारा युनानियों के आक्रमण को अतीत रूप में तथा 'पुष्यमित्रं याजयाम्ः' अर्थात् पुष्यमित्र की स्तुति करते हैं, इस वाक्य द्वारा अशोक के बाद वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक पुष्यमित्र का वर्तमान रूप से उल्लेख किया है। इस प्रकार पतंजली विक्रम सम्वत के प्रारम्भ से २०० पूर्व का निश्चित होते हैं। भण्डारकर महोदय ने भी महाभाष्य पुराण आदि का पाश्चात्य इतिहास के आधार पर महाभाष्यकार पतंजली का समय ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व निश्चय किया है। यदि पतंजली को ही चरक माना जाय तो इनका काल ई० पू० २०० वर्ष होता है।

सील्वन लेवी (Silvan Levy) ने बौद्ध त्रिपिटक के चीनी अनुवाद (Chinese Budhism) के आधार पर चरक को कनिष्ककालीन (100 A.D.) माना है। उक्त त्रिपिटक में चरक को कनिष्क का राजवैद्य कहा है। इसमें ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि कनिष्क के राजा की पत्नी को भयंकर रोग हो गया था जिसकी चिकित्सा चरक ने की थी। ऐतिहासिकों ने दार्शनिक नागार्जुन को भी कनिष्ककालीन लेख में विगृह् यसम्भाषा के समान रूप से वर्णित होने से चरक तथा नागार्जुन को कनिष्क के समकालीन माना है। परन्तु अग्निवेश तंत्र का प्रतिसंस्कर्ता चरक और उपर्युक्त चरक एक ही हैं ऐसा कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। क्योंकि कनिष्ककालीन चरक ने अग्निवेश तंत्र का प्रतिसंस्कार किया ऐसा वर्णन कहीं नहीं उपलब्ध होता है। ये कापिलबलि नामक नवीन चरक प्रतीत होते हैं। डा. पी. सी. राय ने अपनी पुस्तक (History of Hindu Chemistry) में चरक को पाणिनि से भी प्राचीन माना है। कनिष्ककालीन चरक को चरकपरम्परा का चिकित्सक माना है। गोल्डस्टुकर ने पाणिनि का काल ६00 ई० पू० माना है।

चरक चतुरानन चक्रपाणि ने चरक और महाभाष्यकार पतंजली को एक ही माना है।। नागेशभट्ट के उद्धरण "चरके पतंज्जलिः" तथा योगवार्तिककार का समर्थन दोनों चक्रपाणिदत के मत के पुष्ट पोषक प्रतीत होते हैं। अतः इस पर थोड़ा और विचार करना आवश्यक है। योग और व्याकरण में समागत पतंजली नाम को वैद्यक में न देकर वहां अन्य ही चरक नाम देने में क्या हेतु हो सकता है। इस पर पंडित हेमराज जी ने जो विचार किया है उसको भी ध्यान में रखना परम आवश्यक है। महाभाष्य में "गोनर्दीयस्त्वाह" ऐसा पाठ होने से यह प्रतीत होता है कि भाष्यकार अपने-आपको गोनर्द देश निवासी प्रकट करता है। "....एड्ग्राचां देशे" इस सूत्र की व्याख्या में काशिकाकार ने भी गोनर्दीय उद्धरण दिया है। जिससे गोनर्द देश पश्चिम भाग में स्थित प्रतीत होता है। भण्डारकर महोदय ने गोनर्द देश को

---

[1] १—'वृहज्जातकेशाक्या जीवकभिक्षुक वृद्धचरकानिग्रंथ वन्याशनाः' वाराहमिहिरेण भट्टेत्यसेन चरकश्चक्रधरः' इति।

[2] २—रुद्रेण—'चरका योगाभ्यासकुशला मुद्रा धारिणश्चिकित्सायामपि निपुणाः पाखण्डभेदा इति व्याख्यानं विहितमस्ति'।

वर्तमान गोण्डा (उत्तरप्रदेश का एक जिला) बतलाया है। काश्मीर राज्य के प्राचीन इतिहास में गोनर्द नामक राजा का वर्णन प्राप्त होने से काश्मीर ही गोनर्द देश है ऐसा भी किसी-किसी का मत है। यदि भाष्यकार पतंजली ही गोनर्द निवासी हों और उनका चरक से अभेद हो तो चरकसंहिता में इस देश का उल्लेख होना चाहिए। परंतु चरकसंहिता में पांचाल आदि के नाम हैं। गोनर्द का वहां भी नाम नहीं है। अत: चरक और पतंजली का अभेद सम्बन्ध इससे नहीं सिद्ध होता है।

भाषा के आधार पर भी इसका समर्थन नहीं प्राप्त होता। क्योंकि पतंजली कृत महाभाष्य में लोकोक्तियों, समासोक्तियों एवं व्यासोक्तियों का बाहुल्य है तथा उसकी भाषा परम दुर्बोध है। परन्तु चरकसंहिता में चरक द्वारा संभाषित विषय गम्भीर होने पर भी सरस एवं मनोहर भाषा में है। भाषा के प्रसादगुणमयी होने से इससे अध्ययन में आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार लेख की शैली भी दोनों का अनैक्य प्रतिपादित करता है। इसके अतिरिक्त यदि पतंजली ही चरक होते तो महाभाष्य जैसे शीर्षस्थ ग्रंथ के रचयिता मौलिक चिकित्सा के ग्रंथ का निर्माण कर प्रतिसंस्कर्ता रूप में ही होना किस प्रकार स्वीकार कर सकता है। अस्तु—

चक्रदत की टीका में शिवदास सेन ने "तदुक्तं पातंजले" इस पद द्वारा रस विद्या के किसी पतंजली तंत्र का संकेत किया है। संभव है पतंजली कृत कोई रसतंत्र का ग्रंथ हो परन्तु चरकसंहिता में रस - विषयक वर्णनों का प्राय: अभाव इस तथ्य का द्योतक है कि रसतंत्र का कर्ता पतंजली कोई अन्य ही है।

"पातंजलमहाभाष्य चरक प्रतिसंस्कृतै: ।
मनोवाक्काय दोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नम: ॥"

चक्रपाणि दत्त द्वारा मङ्गलाचरण में प्राप्त इस श्लोक के आधार पर चरक और पतंजली को एक सिद्ध करना शब्द योजना के आधार पर उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि चरक पद यदि यहां पर पतंजली के लिए आया होता तो "चरकाहिपतये" ऐसा कहना चाहिए था। चरक पद का प्रतिसंस्कृत पद के साथ आना उपयुक्त नहीं क्योंकि "नामैक देशे नाम ग्रहण:" इसके अनुसार चरक शब्द से चरकसंहिता का ग्रहण किया जाय तो प्रतिसंस्कृत से पूर्व प्रसिद्ध किसी ग्रंथ का प्रतिसंस्कर्ता पतंजली सिद्ध होते हैं न कि चरक ही पतंजलि हैं।

नागेश भट्ट के "इतिचरके पतंजलि:" इस उक्ति का क्या आशय है इस पर भी विचार करना आवश्यक है। उपर्युक्त पद का यदि अर्थ—'चरक संहिता में पतंजलि का यह वचन "ऐसा करें तो चरक संहिता में इस वचन का उल्लेख प्राप्त होना चाहिए। परन्तु उपलब्ध चरक संहिता (सूत्र अ० ॥ तथा विमान अ०४ था) में आप्त के जो लक्षण दिये हुए हैं वह इस उद्धृत रीति के विपरीत हैं। इस उपर्युक्त वाक्य का दूसरा अर्थ चरक की व्याख्या में पतंजलि ने ऐसा कहा यह भी हो सकता है। ऐसी अवस्था में पतंजलि को चरक का व्याख्याकार ही मानना पड़ेगा। इससे सिद्ध होता है कि चरकसंहिता पर पतंजली की कोई व्याख्या थी जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं। इसी आधार पर कुछ लोग यह विचार प्रकट करने लगे हैं कि पतंजली चरक संहिता की मंजूषा नामक टीका का रचयिता है। इसका समर्थन आर्यप्रदीप नामक पुस्तक में प्राप्त होता है। उपर्युक्त वाक्य नागेशकृत व्याकरण मंजूषा में उपलब्ध होता है। पतञ्जली कृत चरक की मंजूषा टीका का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होता। अत: "चरक प्रतिसंस्कृतै:" तथा "चरके पतंजलि:" इन वाक्यों के आधार पर चरक और पतंजलि को एक सिद्ध करना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता।

उपर्युक्त सभी विवरणों के बाद भी अग्निवेश तंत्र के प्रतिसंस्कर्ता चरक काल का निर्णय करना सरल नहीं है। विभिन्न विचारकों के अनुसार चरक का काल ६०० ई० पू० से १०० ई० पू० तक निश्चित होता है। वर्णनों के आधार पर यह भी प्रतीत होता है कि चरक नाम के आचार्य अनेक हुए।

वात्स्य

वात्स्य के सम्बन्ध में काश्यप संहिता में अधोलिखित वर्णन प्राप्त होते हैं। जैसे—

तत: कलियुगे नष्टं तन्त्रमेतद्यदृच्छया ।
अनायसेन यक्षेण धारितं लोकभूतये ॥
वृद्धजीवक वंश्येनततो वात्स्येन धीमता ।
अनायासं प्रसाद्याथ लब्धतंत्रमिदंमहत् ॥
(का० क० स्था, संहिताकल्प)

संहिता कलियुग में नष्ट हो जाने पर अनायासनामक यक्ष ने लोककल्याण कामना से इसको धारण किया था। अर्थात् सुरक्षित रखा था। तत् पश्चात् वृद्ध जीवन वंश में उत्पन्न वात्स्य मुनि उक्त यक्ष से इस तंत्र को प्राप्त किया। और उसका संस्कार कर पुन: प्रकाशित किया।

वत्स गोत्र में उत्पन्न होने से ही इनका नाम वात्स्य हुआ। जीवक तथा वात्स्य दोनों ही भृगुकुल के थे। अतः इन्हें भार्गव भी कहा गया है। इस प्रतिसंस्कर्ता वात्स्य का वास्तविक नाम क्या था तथा जीवक की कौन सी सन्तति में थे, इसका कोई संकेत नहीं प्राप्त होने से निश्चित रूप में कुछ कहना कठिन है।

अनायास नामक यक्ष से वात्स्य ने इस तंत्र को प्राप्त किया, इससे वात्स्य यक्षकुल के भी हो सकते हैं। यक्ष जाति का बहुत प्राचीन काल से परिचय प्राप्त होता है। यक्षों के सम्प्रदाय को बौद्धधर्म से भी प्राचीन कुमार स्वामी ने सिद्ध किया है। इन्होंने कहा है कि यह सम्प्रदाय बाद में बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय के अन्दर मिल गया। अतः प्राचीन बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में यक्षों का वर्णन उपलब्ध होता है। बुद्ध के समय में यक्षों की पूजा प्रचलित थी। भारत में अनेक स्थलों पर इनकी मूर्त्तियां भी मिली हैं। भारतेतर देशों में जैसे—रमठ, जागुड, वाल्मीक आदि सीमाप्रान्त के प्रदेशों में भी यक्षों की मूर्त्तियां उपलब्ध हुई हैं। पञ्चरक्षा नामक उपलब्ध प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ में अनायास यक्ष का नामोल्लेख है। इस पुस्तक के महामायूरी विद्या के प्रकरण में अमुक-अमुक देश के यक्षों का निदेश करते हुए "कौशाम्व्यां चाप्यनायासो भाद्रिकायां च भद्रिक:" इत्यादि वाक्य द्वारा कौसाम्बी (कोसम इलाहाबाद के पास) के रक्षक के रूप में अनायास नामक यक्ष का निर्देश प्राप्त होता है। कौसम्बी बुद्ध के समय भी प्रसिद्ध थी। इस प्रकार उक्त विवरण के आधार पर अनायास यक्ष का प्राचीन होना तथा बुद्ध काल में भी इन्हें पूज्य माना जाना सिद्ध होता है। पुनः अनायास यक्ष से वात्स्य मुनि को इस तंत्र की प्राप्ति का वर्णन वात्स्य को भी प्राचीन अर्थात् बुद्ध के पूर्वकालीन प्रमाणित करता है।

औपधेनव

सुश्रुत के सहाध्यायियों में एक औपधेनव भी थे जिन्होंने औपधेनव तंत्र की रचना की थी। यह पुस्तक सम्प्रति अलभ्य है।[1] यह तंत्र अन्य शल्य तंत्रों का आधार रूप बना था ऐसा भी वर्णन प्राप्त होता है।[2]

पं० हेमराज जी ने उपधेनोरपत्यं इस निरुक्ति से औपधेनव को उपधेनु का पुत्र कहा है। परन्तु उपधेनु नाम के व्यक्ति का कोई संकेत नहीं दिया है।

औरभ्र

औरभ्र मुनि भी सुश्रुत के सहपाठियों में एक थे और इन्होंने भी अपने नाम का औरभ्र तंत्र बनाया जो सम्प्रति अप्राप्य है। इनका उद्धरण चिकित्साकलिका विवृति में भी उपलब्ध होता है। जैसे—'सुश्रुताधाः सुश्रुत आदौ येषां औषधेन वौस्र पुष्कलावतादोनां शल्यतंत्रविदो। आगमैक कृतिनः आगमे वैद्यक शास्त्रै त एव एककृतिनः पण्डिता इति।' परन्तु यह उद्धरण उपलब्ध टीकाओं में प्राप्त नहीं होता।

पण्डित हेमराज जी ने 'उरभ्रस्यापत्यं' अथवा 'उरभ्रेभवः' इस निरुक्ति के अनुसार इन्हें उरभ्र का पुत्र अथवा उरभ्र देश निवासी कहा है। परन्तु उरभ्र नाम के किसी व्यक्ति का तथा देश का कोई पता नहीं मिलता।

पुष्कलावत

सुश्रुत के तृतीथ सहाध्यायी 'पुष्कलावत' थे। इनके द्वारा रचित तंत्र का नाम पौष्कलावततंत्र था। यह भी अलभ्य है। परन्तु इसके उद्धरण प्राप्त होते हैं। जैसे—'तरूणत्कच सप्ताहमात्रं यदुक्तं पौष्कलावते—आसप्तरात्रं तरुणं (तत्व चन्द्रिका ज्वर चिकित्सा आयुर्वेद दीपिका च० चि० ३)' तथा 'तथाहि पुष्कलावतः ग्रीवावंक्षण चौष्टपादकर्ण कराश्रम्। श्लीपदं मांसमेदोभ्याम्' (च० चि० १३९ पर चक्रः) अथवा 'उक्तं हि पौष्कलावतेन शेध्यति यद्दोपान समान्नोदीरयत्यति। सभीकरोति विषमांस्तत् संशमनमुच्यते ॥' (च० चि० अ० २०-२२ पर चक्रः)

पण्डित हेमराज जी ने इन्हें गान्धार देश की प्राचीन राजधानी पुष्कलावत देश का निवासी बतलाया है। यह देश भी भरत के पुत्र पुष्कल द्वारा स्थापित हुआ था। एलेकजेण्डर के आगमन काल में भी यह नगरी गान्धार में प्रसिद्ध थी।

---

[1] औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतंत्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥

[2] शेषाणां करवीर्यगोपुररक्षितप्रभृति प्रणीतशल्यतंत्राणां प्रत्ययेतु प्रत्येयो न भवति, कस्मात् तेषां तंत्राणांमेतन्मूलत्वात्। (डल्लनः)

श्लेष्मक ज्वर (फ्लू)

आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायण खरे,
ए०, एम० बी० एस०

'फ्लू' नाम से प्रत्येक भारतीय परिचित होगा। पिछले कुछ वर्षों से लगातार इसका प्रकोप होता रहता है। इस कारण प्रत्येक भारतीय कभी न कभी इस व्याधि से ग्रसित हो चुका होगा। यह ज्वर शरद्, शिशिर और वसन्तऋतु में ज्यादा फैलता है। साधारणतः जब कोई ऋतु परिवर्त्तन होता है उसी समय कुछ लोग इससे पीड़ित हो जाते हैं।

इस ज्वर में कफ विशेष रूप से दूषित होता है. इस कारण इसे श्लेष्मक ज्वर कहते हैं। शरीर में अधिक पीड़ा रहने के कारण वात दोष भी दूषित रहता है अतः कुछ लोग वातश्लेष्मक ज्वर कहते हैं। पाश्चात्य देशों में इसे इन्फ्लुऐंजा (Influenza) कहते हैं क्योंकि यह एक संक्रामक रोग होने के कारण 'वेसिलस इन्फ्लुऐंजा' नामक कीटाणु से फैलता है। इस ज्वर के प्रारम्भ में प्रतिश्याय (cold) विशेष रूप से होता है; इस कारण से स्टाफिलोकोकस आरियस (Staphylococus Aureus) कीटाणु भी इस ज्वर की वृद्धि में सहायक हैं।

यह ज्वर तीव्र आशुकारी, संक्रामक एवं महामारी रोग है। इस रोग का प्रसार विषैले कीटाणुओं के आक्रमण से होता है। यह रोग महामारी के रुप में सम्पूर्ण भू-मण्डल पर सन् १९१८ (सं० १९७५-७६) में फैला था। इसमें करोड़ों मनुष्यों का विनाश हो गया था। इस व्याधि का महामारी के रुप में प्रकोप होता है। दिसम्बर १९६९ से इसका व्यापक विश्वव्यापी प्रसार हो रहा है। ब्रिटेन में तो कुछ वर्ष पूर्व सात हजार व्यक्ति इस ज्वर से मर गए थे। इसी प्रकार भारत के राजस्थान, मध्य-प्रदेश, उत्तरप्रदेश में इस ज्वर का व्यापक प्रकोप कुछ वर्ष पहले हुआ। इस व्याधि से सभी आयु के व्यक्ति पीड़ित हो जाते हैं। फिर भी बालक और वृद्ध की अपेक्षा १० से ४० वर्ष की आयुवालों को अधिक होता है।

प्रस्तुत लेख में इस ज्वर के प्रसार के कारण व लक्षणों का उल्लेख करते हुये इससे बचने के उपाय और रोगोन्मुक्त होने के उपायों का वर्णन भारतीयों के स्वास्थ्य-रक्षण हेतु किया जा रहा है। जिससे प्रत्येक भारतीय इस मारक व्याधि से वंचित रह सके।

फ्लू की उत्पत्ति व प्रसार के कारण—साधारणतः यह ज्वर ऋतु परिवर्तन के समय, वर्षा के पानी में भीगने, शीतल वस्तुओं के अधिक सेवन से एवं रोगी के संसर्ग से शरीरगत वात व कफ दोष दूषित होने से होता हैं। इस प्रकार जो ज्वर उत्पन्न होता है वह क्षेत्रीय अथवा सीमित रहता है इससे कुछ ही व्यक्ति पीड़ित होते हैं।

लेकिन जब अधर्म की वृद्धि हो जाती है तब वायु-मण्डल दूषित हो जाता है एवं अकस्मात् इस रोग के कीटाणुओं की उत्पत्ति हो जाती है। इस रोग के विषाणु वायु द्वारा फैलकर विश्वव्यापी प्रकोप उत्पन्न करते हैं। ऐसा प्रकोप मरक (Epidemic) के रूप में फैलता है। इसमें मृत्यु संख्या अत्यधिक होती है। यह व्यापक प्रकोप १० से ४० वर्ष के अन्तर से सदैव होता है।

इन कीटाणुओं का प्रसार वायु द्वारा होकर श्वास मार्ग, मुँह से एवं दूषित वस्त्रों के संसर्ग से हो जाता है। यह संक्रामक रोग होने का कारण शीघ्र फैलता है। इसलिये सिनेमा, होटल, यातायात के समय एवं भीड़ के स्थानों से अधिक फैलता है। यह गन्दी व घनी बस्तियों में भी ज्यादा फैलता है। जैसा कि पहले उल्लिखित है कि वैसिलस इन्फ्लूएंजा (Bacillus Influenza) के कारण फैलता है इसलिये इसे इन्फ्लुएंजा कहते हैं। कुछ लोग इसके कीटाणु को हीमोफायलस वैक्टीरिया (Haemophilus Bacteria) कहते हैं।

फ्लू के लक्षण—रोग के कीटाणु के शरीर में प्रविष्ठ होने के कुछ घण्टों से पाँचवें दिन तक रोगोत्पत्ति होती है। रोग का आक्रमण अकस्मात् होता है। अच्छी तरह

कार्य करते हुए मनुष्य के थोड़े ही समय में सम्पूर्ण शरीर में नाना प्रकार की वेदना होकर ज्वर बढ़ने लगता है। नासिका व नेत्रों में से जल के समान स्राव, कंठ में कुछ सुरसुरी सी पैदा होकर गला रूंध जाता है, मुंह में दाह, नेत्रों में लाली, तीव्र शिरःशूल, शीत लगना और कम्प होना, हाथ-पैर कमर, पीठ और उर में तीव्र वेदना, खाँसी शुष्क, बेचैनी एवं ज्वर रहता है। ज्वर लगभग १०३-१०४° रहता है। मुखशोष व लालिमा रहती है। इसमें ज्वर के समय व बाद में शारीरिक शक्ति अधिक नष्ट हो जाती है। रोगी उठने-बैठने-चलने में पूर्णतया असमर्थ रहता है एवं शारीरिक अंगों की मांसपेशी इतनी शिथिल पड़ जाती है कि हृदय की क्रिया का संचालन कठिन हो जाता है। इस कारण इस ज्वर में फेफड़े-निमोनिया से प्रभावित होकर एवं हृदयगति अवरोध के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इस कारण इस ज्वर की जांच सावधानी से व शीघ्र करनी चाहिये। जब महामारी अथवा विश्वव्यापी आक्रमण होता है तब निदान में कोई कठिनता प्रतीत नहीं होती है।

इस ज्वर की विशेष पहिचान शरीर की शक्तिहीनता है। थोड़े समय में इतनी शक्ति अन्य ज्वर में नष्ट नहीं होने पाती है। यह ज्वर साधरणतः ३-४ दिन में ठीक हो जाता है परन्तु कार्य करने योग्य रोगी १०-१५ दिन में हो पाता है।

फ्लू को अवस्था के अनुसार ४ प्रकार के लक्षणों में रक्खा गया है—

१- ज्वरयुक्त २- फौफ्फुसिक विकृति लक्षण ३- आंत्रिक विकृति लक्षण ४- वातसंस्थान विकृति जन्य लक्षण।

१-०ज्वर युक्त अवस्था में तीव्र शिरःशूल के साथ ज्वर १०२° से १०४ डिग्री फारेनहाइट तक पहुँच जाता है। मलावरोध, तीव्र श्वास, प्यास लगना, मूत्र कम व गाढ़ी मात्रा में होना, जीभ मैली, श्वास दुर्गन्धित, पूरे बदन में तीव्र वेदना, प्रतिश्याय के लक्षण, जिह्वा-कांटेदार शीत लगने के बाद त्वचा प्रस्वेदपूर्ण होना। ज्वर ७-८ दिन से ज्यादा नहीं रहता है अगर रहे तो उपद्रवयुक्त समझना चाहिये।

२-फुफ्फुसगतविकार—प्रारम्भ में ज्वर, शरीर में पीड़ा, नासास्राव, दुर्बलता अधिक, श्वासकृच्छ् के लक्षण रहते हैं। ३-४ दिन बाद यदि फेफड़ों में विकार बढ़ गया तो ज्वर, प्रलाप, कास व रक्तष्ठीवन होता है। न्यूमोनिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। थूक थोड़ा गुलाबी रंग का तथा झागयुक्त निकलता है। फुफ्फुस रोगग्रस्त होने के कारण रक्त शुद्धि में अवरोध हो कर प्राणवायु (आक्सीजन) की कमी रक्त में हो जाती है इस कारण मुख पर नीलिमा रहती है। यह नीलिमा खतरे की सूचक है जो कि १२ से २४ घण्टे तक रह सकती है। शुद्ध वायु (आक्सीजन) हृदय को न मिलने के कारण किसी भी समय हृदयगति अवरुद्ध हो सकती है। अतः फेफड़ों की परीक्षा सावधानी से करनी चाहिये; जिससे फुफ्फुसगत वायु कोष (Air Sacs) श्लैष्मिक स्राव से अवरुद्ध न होने पावें। इसी विकार में अधिकतर फ्लू के रोगी की जीवन लीला समाप्त होती है।

३- आंत्रिक विकृति—यह विकृति साधारण होती है। इसमें ज्वर कम, जी मिचलाना, वमन, अग्निमांद्य, नाभि के पास पीड़ा रहती है। कभी-कभी प्रवाहिका भी हो जाती है। कभी-कभी कामला भी हो जाता है।

४- वात-संस्थान की विकृति—इस ज्वर में इसकी विकृति विशेष रहती है। विशेष रूप से गम्भीर शिरदर्द, निद्रानाश, प्रलाप, सामान्य शक्तिह्रास, नाड़ीशूल व मूर्च्छा रहती है।

कुछ रोगियों में शारीरिक शक्तिह्रास के साथ मानसिक शक्ति का ह्रास भी हो जाता है। रोगी की अवस्था की वृद्धि होने पर पूर्ववत शक्ति प्राप्त हो जाती है। रोगी की अवस्था व बल के अनुसार रोग अगर अधिक समय तक चले तो निम्न उपद्रव पैदा हो जाते हैं। जिनका चिकित्सा के समय विशेष ध्यान रखना आवश्यक है—

फ्लू से उत्पन्न विशेष उपद्रव—न्यूमोनिया, ब्रोंको-निमोनिया, फुफ्फुसावरणशोध श्वास, राजयक्ष्मा, हृदय की दुर्बलता, हृदय की धड़कन, हृदय की अनियमित क्रिया का होना, हृच्छूल, श्वास कष्ट, चक्कर आना, मस्तिष्कावरण शोथ, पक्षाघात, उरुस्तम्भ, शिरःशूल, उन्माद, स्मृतिभ्रंश आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त वृषण-शोथ, पेशीशोथ, आंत्रपुच्छशोथ, मध्यकर्णशोथ एवं

कर्णमूलशोथ भी उपद्रव के रूप में प्रकट होते हैं। जिनकी चिकित्सा लक्षणों के अनुसार करनी चाहिये।

इन्फ्लुऐंजा स्वयं एक घातक व्याधि नहीं है अपितु यह न्यूमोनिया, मस्तिष्कावरणशोथ एवं हृदयदौर्बल्य आदि उपद्रवों से घातक हो जाता है।

प्रलाप, निद्रानाश तथा मूर्च्छा व नीलिमा आदि लक्षणों से युक्त रोगी असाध्य होता है।

फ्लू से बचने के उपाय—कुछ उपाय ऐसे हैं जिनसे प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति अपने को 'फ्लू' से बचा सकता है वे इस प्रकार हैं—

१. जिस समय ऋतु का परिवर्तन हो उस समय प्रत्येक व्यक्ति अधिक शीत व अधिक गर्मी से अपने शरीर की रक्षा करे। अचानक गर्मी से सर्दी में अथवा सर्दी से गर्मी में न जाये और न इस प्रकार के भोजन का सेवन करे।

२. जिस समय 'फ्लू' रोग संक्रामक व मारक के रूप में फैला हो उस समय अपने मन को प्रसन्न व निर्भय बनाये रक्खे एवं ईश्वर की छाया का आश्रय समझकर इस व्याधि से न डरे।

३. अगर गांव या शहर में इसका व्यापक प्रकोप हो तो भोजन गर्म, हल्का, सुपाच्य व कम करिये। उदर विकार अथवा कोष्ठबद्धता होने पर उपवास रखिये। उपवास में गर्म जल, अदरख, तुलसी की चाय का सेवन कीजिये।

४. शरीर की शारीरिक शक्ति को सुदृढ़ बनाइये एवं इसकी रक्षा कीजिए, शक्ति-वर्द्धक शुद्ध भोजन करिये एवं संयम व ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

५. यह रोग सर्वप्रथम नासिका व गले से उत्पन्न होता है अत: इस स्थान की श्लैष्मिक कला को सुरक्षित रखने के लिये गरम पानी में थोड़ा नमक डालकर गरारा कीजिये एवं प्रतिदिन प्रातः काल में नाक से सरसों का तेल सूंघिये व नाक के अन्दर लगाइये। जिन्हें सदैव जुकाम होता हो या श्वास के रोगी हों तो उन्हें प्रातःकाल सरसों का तेल सूंघना चाहिये। फ्लू में नाक व गले की सुरक्षा के लिये यह उत्तम है।

६. यह रोग शीत से फैलता है अतः आर्द्र वातावरण, बरसात व शीतल ओस से अपने शरीर की रक्षा कीजिये। बासी भोजन का प्रयोग न कीजिये। रात को अधिक न जागिये। भीड़-भाड़ के स्थानों में न जाइये।

८. इस रोग के प्रकोप के समय धूम्रपान न कीजिये व सिनेमा यथासम्भव न देखिये।

९. इस ज्वर के प्रकोप के समय अदरख, कालीमिर्च का प्रयोग चाय के साथ कीजिए।

१०. अदरख व लहसुन को चटनी में मिलाकर नित्य प्रयोग करने से वात व कफ का प्रकोप नहीं हो पाता है। अतः इसका प्रयोग नित्य कीजिए।

११. प्रत्येक व्यक्ति को स्वच्छ, सूखे व प्रकाशयुक्त कमरे में रहना चाहिए। शयन-कक्ष में शुद्ध वायु का आवागमन रहना चाहिये। अगर परिवार में कोई 'फ्लू' का रोगी हो तो उसको अलग साफ कमरे में लिटाना चाहिये।

१२. शयन-कक्ष को कीटाणुरहित बनाने के लिये नित्य नीम के पत्तों के साथ गुग्गुल की धूनी करनी चाहिये।

१३. इस व्याधि के प्रकोप के समय एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का रूमाल, तौलिया व बिछाने-ओढ़ने के वस्त्र प्रयोग में न लावें।

उपरोक्त उपायों के अपनाने से प्रत्येक व्यक्ति इस ज्वर से अपनी रक्षा कर सकता है। अगर भूल से किसी को यह व्याधि हो भी जावे तो निम्न चिकित्सा करनी चाहिये जिससे रोगी तुरन्त रोग-मुक्त होकर स्वास्थ्य-लाभ कर सके।

अत: फ्लू की चिकित्सा इस प्रकार से है—

इन्फ्लूएंजा की सामान्य चिकित्सा—रोगी का शारीरिक बल अच्छा है व रोग का प्रभाव शरीर के ऊपर साधारण है तो निम्न चिकित्सा करनी चाहिये—

१. रोगी को स्वच्छ साधारण प्रकाशयुक्त कमरे में अलग रखना चाहिये। रोगी की नासिका से निकला हुआ स्राव एवं कफ एक बर्तन में इकट्ठा करके जमीन में गाड़ देना चाहिये।

२. परिवार व पड़ोसवालों को रोगी से यथासम्भव दूर ही रखिये जिससे रोग दूसरे व्यक्तियों को न हो सके।

३. परिचारक को अपनी नासिका के ऊपर स्वच्छ कपड़े को, चार तह में मोड़ कर रखना चाहिए। परिचारक को अपने रुमाल में नीलगिरी तेल लगा कर सूंघते

४. रोगी के मल, मूत्र और कफ को राख में दबाकर रखना चाहिये।

५. रोगी को पूर्ण शय्या विश्राम देना चाहिये जब तक कि वह अपने को पूर्ण स्वस्थ न समझे एवं चिकित्सक भी उसका तापक्रम एवं नाड़ी व हृदय की क्रिया की पूर्णरुपेण परीक्षा करके रोगी को कार्य करने की अनुमति दें।

६. रोगी की शय्या के पास तीव्र हवा का वेग नहीं आना चाहिये। रोगी को शीत ऋतु में गरम वातावरण व ग्रीष्म ऋतु में कमरे को शीतल रखना आवश्यक है। ऋतु के अनुसार रोगी को वस्त्र ओढ़ना चाहिए। बाहरी वायुमण्डल के तापक्रम का प्रभाव रोगी के शरीर पर न पड़े।

७. ज्वरावस्था में रोगी को कभी भी अन्न का सेवन नहीं कराना चाहिये। जिस समय यह ज्वर महामारी के रूप में फैला हो उस समय अन्न रोगी के लिये जहर के समान है। सन् १९१८ में जब यह रोग महामारी के रूप में फैला था तो जो व्यक्ति लंघन करते थे वह स्वस्थ हो गये एवं जिन्होंने अन्न का सेवन कर लिया उनके जीवन की रक्षा नहीं की जा सकी।

८. रोगी को पीने के लिये उष्ण जल पिलाना आवश्यक है, क्योंकि वात श्लेष्मक ज्वर में बार-बार प्यास लगने पर थोड़ा-थोड़ा मन्दोष्ण जल पिलाना चाहिये।

९. रोगी को आयु बल के अनुसार उपवास कराना चाहिये। ज्वरावस्था में यह नितान्त आवश्यक है। जो रोगी कमजोर हों, स्त्री, बालक व वृद्ध पुरुष को पूर्ण लंघन करना ठीक नहीं है। इनको दूध, चाय व मुनक्का-मुसम्मी का रस पिलाना चाहिये। चाय में अदरख व तुलसी पत्र का उपयोग ज्यादा लाभप्रद है।

१०. गला साफ रखने के लिये जल को गरम करके नमक डालकर रोगी को गरारा दिन में १-२ बार करते रहना चाहिये।

११. रोगी अगर कोष्ठबद्धता (मलावरोध) से पीड़ित हो तो मृदु विरेचन मुनक्का-दूध के साथ, त्रिफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण अथवा हरड़ का चूर्ण देना चाहिये जिससे १-२ बार ही मल त्याग हो। कभी-कभी कोष्ठबद्धता से भी ज्वर कम नहीं होता है।

१२. रोगी की शारीरिक शक्ति व हृदय की शक्ति को नियमित रखने के लिये रोगी को पोषक तत्व दूध व फलों का रस देते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

१३. प्रारम्भ में रोगी को ज्वर उतारने के लिये तीव्र ज्वर-नाशक दवा नहीं देनी चाहिये। वैसे उपरोक्त उपायों से उपवास, अदरख-तुलसी-कालीमिर्च की चाय से ज्वर का शमन हो जाता है। अगर आवश्यकता पड़े तो त्रिभुवन कीर्ति रस १ रत्ती, शृंगभस्म १ रत्ती व गोदंती भस्म २ रत्ती की एक मात्रा बनाकर शहद व तुलसी पत्र स्वरस के साथ प्रातः-सायं प्रयोग करना चाहिये। शीत ऋतु व उस समय जब शीतल वायु का संचार अधिक हो, वर्षा हो रही हो तब ज्वरनाशक स्वेदल दवा नहीं देनी चाहिये, क्योंकि अधिक पसीना आने से अगर शीतल वायु का स्पर्श शरीर से हो गया तो रोगी शीताङ्ग सन्निपात से पीड़ित हो सकता है जिसकी चिकित्सा में अधिक कठिनाई होती है।

१४. ज्वर उतरने पर रोगी को सुपाच्य, हल्का भोजन, गेहूं की दलिया, मूंग की दाल, पालक, दाल-चावल की खिचड़ी एवं लहसुन अदरख मिली हुई पोदीने अथवा धनिया की चटनी देनी चाहिये।

१५. अधिकतर रोगी इस ज्वर के बाद क्षुधानाश व अग्निमांद्य से पीड़ित रहते हैं। उनको आँवला एवं अदरख के अचार को मुख में डालकर चूसना चाहिये। अचार में तेल नहीं होना चाहिये।

इन्फ्लुएंजा की विशेष चिकित्सा

१. ज्वर शमन के लिये त्रिभुवन कीर्ति रस १ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, गिलोय का सत्व ४ रत्ती की एक मात्रा बना कर अदरख स्वरस व तुलसी-पत्र स्वरस मिलाकर शहद के साथ प्रातः-दोपहर-सायंकाल में प्रयोग करना चाहिए। यह औषधि ज्वरावस्था में ही देना चाहिए। अगर कास का वेग ज्यादा हो तो इसके साथ शृंग भस्म २ रत्ती मिला देना चाहिये। यह मात्रा वयस्क के लिए है। इसी प्रकार आयु के अनुसार आधी व चौथाई मात्रा बच्चों को कर देना चाहिए।

२. ज्वर शमन के लिये आनन्द भैरव (कास) १ रत्ती व संजीवनीवटी २ रत्ती मिलाकर तुलसी-पत्र स्वरस व शहद के साथ देना चाहिए।

३. कास के वेग अधिक होने पर चन्द्रामृत रस मिश्री के साथ, मरिच्यादि वटी, लवंगादि वटी चूसने को देना चाहिये। चद्रामृत रस से कफ ढीला होकर बाहर निकल जाता है।

४. इस ज्वर के साथ कभी-कभी विषम-ज्वर भी हो जाता है तब मृत्युञ्जय रस का प्रयोग करना चाहिए।

५. गिलोय, तुलसीपत्र, बेलपत्र, लौंग, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ को बराबर मिलाकर क्वाथ बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

६. इस ज्वर के साथ निमोनिया अगर हो जावे तो इसकी औषधि के साथ शृंगभस्म, अभ्रकभस्म व समीर-पन्नग रस को मिलाकर देना चाहिए। वक्ष पर पीड़ा के लिये वातहर तेल, तारपीन के तैल में कपूर व मीठा तिल का तेल मिलाकर मालिश करें। इसके बाद गरम सिकाई कर दें। अधिक पीड़ा हो तो तेल में अफीम मिलाकर भी मालिश की जा सकती है। गर्म पानी की बोतल से सेंक कीजिए।

७. शिरःशूल अधिक हो तो सोंठ को जल में घिस कर कपाल पर लेप करिये अथवा अमृतधारा का लेप कीजिये। वैसे ज्वर-शमन के साथ सिर का दर्द कम हो जाता है। कुछ कमजोरी ठीक होने पर भी दर्द कम हो जाता है।

८. निद्रानाश व प्रलाप हो तो ब्राह्मी का क्वाथ दिन में ३ बार देना चाहिये।

९. शरीर का तापक्रम ९६ डिग्री फारेनहाइट से कम व हृदयावरोध व नाड़ी मन्द हो तो संजीवनी वटी, शृंगभस्म, रससिन्दूर व सिद्धमकरध्वज (स्वर्ण-कस्तूरी युक्त) को सितोपलादि चूर्ण के साथ तुलसीपत्र स्वरस व शहद के साथ प्रातः-सायं-दोपहर में देना चाहिये। इससे तापक्रम सामान्य हो जाता है।

१०. अधिक पसीना आने पर जब त्वचा शीतल हो जाती है तब कायफल के चूर्ण की मालिश सम्पूर्ण शरीर पर करनी चाहिए। गरम पानी की बोतल को हथेली व पैरों के तलवों के पास रखना चाहिए। गरम कपड़ा से शरीर को ढका रहना चाहिये। पसीना बन्द करने के लिये 'डस्टिंग पाउडर' (हिमालय बुके) की मालिश शरीर पर करने से तुरत लाभ होता है। रोगमुक्त होने पर द्राक्षासव, च्यवनप्राश आदि पौष्टिक औषधियों का सेवन शक्ति-वर्द्धन के लिए करें।

बैद्यनाथ
बसन्त
कुसुमाकर रस
इसके सेवन से मस्तिष्क व
हृदय स्वस्थ एवं बलवान होते हैं।

माता में गर्भ की विषमयता

(TOXAEMIA OF PREGNANCY)

डा० दिवाकर उपाध्याय,
बी० ए० एम० एस०, साहित्यरत्न

पृथ्वी से अधिक माता में सहनशीलता होती है। उसकी यह सहनशीलता मानव के हृदय को विदीर्ण कर देती है। माँ बच्चे के लिये जब से वह गर्भ के रूप में विकसित होना आरम्भ करता है धरती की तरह धैर्य धारण करके अनेक संकटों से टकराती हुई अपना सर्वस्व लुटाकर भावी शिशु की प्रतीक्षा में आंखें बिछाए रहती है। शिशु के जन्म लेने तक उसकी यही स्थिति रहती है।

गर्भ काल में माता के रक्त में कुछ विष संचारित होने लगता है। संभव है इनमें गर्भ विष-संचार एक सामान्य हेतु हो। अन्यथा इनमें से बहुत तो अभावात्मक रोग है। बहुत से अंतःस्रावी ग्रंथियों के विपर्यय से होने वाले हैं तथा कुछ निःसंदेह विशुद्ध विषजन्य होते हैं।

वास्तव में इस समुदाय के रोगों का कारण (Etiology) अभी तक अज्ञात है। जब तक ठीक-ठीक इनके हेतु नहीं जाने जाते इन्हें विष-संचार जन्य मानना ही उचित है। इस समुदाय में प्रधानतया ५ रोग आते हैं।

(१) अतिवमन (२) गर्भकालीन दुष्ट कामला (३) गर्भकालीन शुक्तिमेह (४) पूर्व गर्भाक्षेप (५) गर्भाक्षेप।

१. गर्भजन्य अतिवमन अथवा अन्तः सत्वाति वान्ति :— (Hyperemesis gravidarum.)

गर्भावस्था में वमन दो प्रकार का हो सकता है। (क) मानसिक (ख) विषज

क- गर्भवती स्त्रियों में प्रातग्लानि के रूप में वमन या छर्दि का होना स्वाभाविक है। यदि उसकी प्रकृति वातिक हुई तो वमन अधिक वृहद रूप ले लेता है और

जाता है। यह इतना भी बढ़ सकता है कि आमाशय में कुछ भी स्थिर न रह सके। तथापि गर्भिणी बहुत अस्वस्थ नहीं जान पड़ती। उसकी जिह्वा साफ रहती है। नाड़ी और तापक्रम भी प्राकृत रहता है। यदि छर्दि अधिक दिनों तक चलती रहती तो उसके शरीर में जलांश की कमी हो जाती है। मूत्र अल्प मात्रा में निकलता है और उसका विशिष्ट घनत्व बढ़ जाता है। मूत्र में शुक्ति, पित्त या निर्मोक की उपस्थिति नहीं रहती, अस्तु उसके निजी मेद के अपूर्ण पचन के कारण मूत्र में ऐसीटोन मिलता है। धीरे-धीरे रूग्ण का स्वास्थ्य गिरता चलता है और वह दुर्बल होती जाती है। और बिना अन्न के रहने के कारण उसकी स्थिति चिन्तनीय होकर विषज अति वमन सदृश्य हो जाती है। कई बार इस का वमन उन स्त्रियों में अधिक होता है जिनमें सन्तान की इच्छा न हो या सन्तानोत्पत्ति का भय हो, या अनुचित गर्भाधान की लज्जा हो। इन कारणों से उनके अचेतन मन (Subconscious mind) में सन्तान विरोधी भावनायें उथल-पुथल मचाये रहती हैं। उसके दूरीकरण के प्रतीक रूप में यह मानसिक वमन होता है। कई बार श्रोणिगत अंगों में अस्वाभाविकता आने पर भी इस प्रकार का वमन चलता है। फिर अंगों में सुधार हो जाने पर बन्द हो जाता है।

ख- विषज :—इस प्रकार का वमन प्रजाता तथा अप्रजाता दोनों प्रकार की स्त्रियों में समान भाव से पाया जाता है। गर्भकालीन विष-संचार से होने वाले रोगों

माह में भी हो सकता है। विशेषत: प्रारम्भिक महीनों में ही अधिक होता है। प्रारम्भ में जब अवस्था सौम्य रहती है तो मानसिक छर्दि जैसी ही दिखती है। अवस्था अत्यधिक तीव्र होने पर (यद्यपि यह अवस्था कम आती है) गर्भिणी अधिक क्षीण, विषाक्त, त्वचा सूखी और मलावृत, नेत्र कामला युक्त, श्वास दुर्गन्धित और ऐसीटोन सदृश गन्ध युक्त, मूत्र अत्यल्प और उसमें शुक्ति, पित्त निर्मोक एसीटोन हाई एसटिक एसिड क्वचित ल्यूसिन और ट्यूरोसिन युक्त हो जाती है।

स्थिति की गम्भीरता के अनुसार नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है और तापक्रम बढ़ सकता है। वमन का रंग भूरा या काफी के रंग का हो जाता है। अन्त में रुग्णा की अवस्था सन्यास में परिणत हो जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। वैकृतिकी (Pathology) तीव्र पीत यकृच्छोष (Acuteyellatrophy) सदृश ही यकृत में परिवर्तन इस रोग में मिलता है। यकृतत्केंद्रस्थ धातु का अपजनन शोथ (Necrosis) होता है। वृक्क में भी अपजनन कोथ और रक्तस्त्रुति के चिह्न मिलते हैं।

साध्यासाध्यता :—यदि ठीक समय से रोग का निदान हो सके और अनुकूल चिकित्सा की व्यवस्था की जा सके तो रोग साध्य है। परन्तु यदि रोग की अपेक्षा हुई और रोगों की स्थिति चिन्ताजनक ज्ञात हो तो कृत्रिम विधियों से गर्भपात कराके रोगी को प्राण-रक्षा की जा सकती है।

२. गर्भकालीन गम्भीर (तीव्र कामला) अथवा तीव्रपात यकृच्छोष

यह अत्यन्त विरलता से पाया जाता है। यह गर्भावस्था के अतिरिक्त काल में मिल सकता है। गर्भावस्था में यह एक अत्यन्त भयङ्कर रोग है। यह विकार प्रायः गर्भकाल के अन्तिम मासो में मिलता है।

वैकृतिकी (Pathology) —यकृत शीघ्रता से परिमाण में घटकर छोटा हो जाता है जिससे उसका भार भी औसत से आधा हो जाता है। इसके ऊपर का कोष (Capsule) वलियुक्त (झुर्रीदार) हो जाता है। और प्रकृति के अधिक मृदु और भंगुर हो जाता है। काटकर देखने पर पृष्ठ का वर्ण पीत हो जाता है और बीच में कालिमा या नारंगी के रंग के छोटे-छोटे स्थल पाये जाते है। यकृत के कोषों के मध्य का कोथ (Necrosis) सर्वप्रथम देखने को मिलता है। कोषों के परिसर Periphery) में कोई भी अस्वाभाविकता नहीं मिलती। कुछ मेदोपचयन (Fattydegeneration) का चिह्न मिलता है। रोग को अत्यन्त तीव्रावस्था में सम्पूर्ण उपपिण्ड (Lolules) नष्ट हो जाते है जिससे यकृत कोशाओं का ठीक-ठीक पहचानना भी कठिन हो जाता है। प्रतिवाहिनी सिराओं और पित्त वाहिनियों में कोई परिवर्तन नहीं होता। वृक्क में भी अपजनन और कोथ के चिह्न मिलते हैं।

निदान :—यदि रोगारम्भ अचानक हुआ तो तीव्र स्फुरण (Phosphorus) विषाक्त से भेद करना पड़ता है। (टट्राक्लोरेथीलीन) विष में भी इस रोग से मिलते-जुलते लक्षण होते हैं।

लक्षण :—तीव्र उदर शूल, शिरः शूल, अति वमन, गाढ़ी कामला, रक्त मिश्रित वमन, मूत्राल्पता, मूत्र में शुक्ली, विविध प्रकार के निर्मोक और रोग का अचानक आक्रमण प्रभृति लक्षण मिलते हैं। शीघ्रता से रुग्णा सन्यास की अवस्था प्राप्त करती और मर जाती है।

३ शुक्ली मेह और गर्भावस्था

शुक्ली मेह (Abluminnuria) एक लक्षण है। रोग नहीं। गर्भिणी के मूत्र में शुक्ली का पाया जाना कोई बहुत बड़ा विकार नहीं है। ५ प्रतिशत के प्रमाण में प्रायः सभी गर्भिणियां में मिलता है। सब समय इसमें किसी महान उपद्रव की आशंका नहीं कर सकते हैं। तथापि सन्देह का निराकरण अवश्य कर लेना चाहिये। शुक्ली मेह दो प्रधान भेदों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) गर्भ विषजन्य शुक्ली मेह

(क) गर्भकालीन शुक्ली मेह।
(ख) पूर्व-गर्भाक्षेपक।
(ग) गर्भाक्षेपक।
(घ) पुनरावर्त्तित शुक्ली मेह।
(ङ) विषज अति वमन की तीव्रावस्था।

(२) गर्भ कालीन शुक्ली मेह—

(क) योनि स्राव से संक्रमित होकर।
(ख) तीव्र तथा जीर्ण वृक्क शोथ।
(ग) उच्च रक्त निपीडजन्य व्याधियां।
(घ) वृक्क तथा वस्ति शोथ।
(ङ) हृद्रोग (MarIuscardis)

गर्भकालीन शुक्ली मेह या पूर्व गर्भाक्षेपक या गर्भ क्षेपक (Pre Eclampsia) इन तीनों अवस्थाओं में हेतु तथा विकृति समान होती है।

(१) अन्तर्विष संचार—सम्भवतः इन अवस्थाओं में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से कुछ विष बनते हैं। इन विषों का उद्भव स्त्री बीज अपरा अथवा कोरांकुरो से होता है। इन विषों का प्रभाव माता के वृक्क और यकृत पर पड़कर वे विकारयुक्त हो जाते हैं। और शरीरगत त्याज्य पदार्थों को बाहर फेंकने में असमर्थ हो जाते हैं।

(२) शरीरगत अम्लाधिक्य (Aciddosis)

यह भी इस विषमता की उत्पत्ति में सहायक होता है।

(३) अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विपर्ययः अवटुका उपअवटुका, अधिवृक्क पोषणिका तथा विभिन्न प्रकार की बीज ग्रन्थि के स्राव भी इसकी उत्पत्ति में हेतु माने गये हैं। इसके कारण कुछ प्रत्यावर्तित क्रियाओं के द्वारा रक्तवह संस्थानगत प्रतिक्रियायें होती हैं।

(४) उदरान्तर्गत भार की वृद्धि—गर्भावस्था में निश्चित रूप से उदर के भीतर भार की वृद्धि होती है। यदि इस भार में अत्यन्त वृद्धि हो जावे तो यकृत वृक्क की कोशिकाओं का पीड़न होकर उसकी विसर्जन क्रिया में बाधा पहुँचती है। फलतः विषमयता के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि उदरान्तर्गत बड़े-से-बड़े अर्बुद में विषमयता के रोग नहीं मिलते। वे तो केवल मात्र गर्भित गर्भाशय की अवस्था में ही पाये जाते हैं।

५ पोषणाभाव : कुछ विद्वानों के विचार से गर्भाक्षेपक प्रभृति गर्भ विष संञ्चार जन्य रोगों में हेतु पोषण तत्वों की कमी विशेषतः जीवतिक्ति द्रव्यों का अभाव है।

वैकृतिकी (Pathology of eclampsia)—

उपयुक्त तीनों रोगों में विकृति समान ही होती है। केवल विकृतिकी मात्रा में न्यूनाधिकता रहती है। इन रोगों में यकृत वृक्क हृदय और मस्तिष्क में निम्न परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। इन परिवर्तनों का ज्ञान रोग से पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर उनके विभिन्न अंगों के निरीक्षण से प्राप्त होता है।

कः यकृत –यकृत का आयाम बढ़ जाता है। आवरण के नीचे यत्र-तत्र रक्तस्त्रुति के स्थल जिनका वर्ण कृष्णाभ होता है, को काट कर देखने पर इनमें कोथयुक्त असंख्य क्षेत्र भी मिलते हैं। जिनका वर्ण पीत होता है। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न क्षेत्र पूरे यकृत में मिलते हैं।

अणुवीक्षण से देखने पर ये विकार यकृत उपपिण्डों (Lolubes) के परिसर (Periphery) में मिलते हैं। जिस स्थान पर स्कन्दित (Thrombosed) प्रतिहारिणी शिरायें (Portalveins) मिलती हैं यकृत कोष का अपजनन होता है। और उसके स्थान पर रक्त कोष (Blood Cells) भर जाते हैं। यकृत कोष की सीमा रेखा (out line) नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार का विकार यकृत के उपपिण्डों में और अन्तःसत्वाति वमन में भी मिलता है।

परन्तु भेद यह होता है कि आक्षेपक में उपपिण्डों के परिसर पर विकार की अभिव्यक्ति होती है। और अतिवमन नामक व्याधि में केन्द्र भाग (centre of the Lobules) अधिक विकृत होते हैं। तथापि विकार यदि तीव्र स्वरूप का हुआ तो वह केवल वाह्य भाग तक ही सीमित न रह कर केन्द्र को भी दूषित कर देता है।

खः वृक्क :—वृक्क का आयाम बढ़ जाता है। वर्ण फीका या पीला हो जाता है। आवरण के नीचे यत्र-तत्र रक्त स्त्रुति के क्षेत्र में पाये जाते हैं। काट कर देखने पर पृष्ठ पीत वर्ण का वाह्य भाग (cortex) स्थूल और फीका (Pale) वाह्य तथा अन्तः स्थल भागों में रक्तस्राव युक्त स्थल मिलते हैं। अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर वृक्क का धातु प्रभावित मिलता है। उसमें अपजनन के चिह्न मिलते हैं।

गः प्लीहा—प्रायः वैकृतिक परिवर्तन नहीं पाये जाते क्वचित यकृत के समान विकृति मिल सकती है।

घः हृदय—इस रोग में मृत स्त्रियों के हृदय तीव्र विस्तृत (Acute dilutition) मिलती है। हृदय की पेशियां फीकी और श्याम शोथयुक्त (cloudy swelling) होती है। कोथ (Necrosis) तथा रक्तस्रुति (Haemorrhage) के स्थलों की उपस्थिति ६५% रोगियों में मिलती है। कणमय तथा मेदोमय अपजनन (Granular and Fatty degeneration) के चिह्न मिलते हैं। रक्त काषाणुओं के भीतर मेद के बुद-बुद (Glolules) भरे रहते हैं।

ङ: मस्तिष्क—६०% रोगियों में मस्तिष्क परिवर्तन मिलते हैं। नाड़ी कोषाणु तथा सूत्र अपचयनयुक्त रहते हैं। मस्तिष्क वृति के नीचे कई बार रक्त-स्राव पाया जाता है।

आक्षेप पीड़ित माताओं के प्रसवों में बच्चे के ऊपर लिखे अङ्ग भी प्रभावित हो कर उपर्युक्त विकारों से युक्त मिलते हैं।

पूर्व गर्भाक्षेप (Pre-eclampsia)—पूर्व गर्भाक्षेप, आक्षेपक तथा शुक्लीमेह ये तीनों ही हेतु तथा विकृति की दृष्टि से समान हैं। ऐसा बतलाया जा चुका है। लक्षणों की दृष्टि से शुक्ली मेह से अधिक तीव्र अवस्था पूर्व गर्भाक्षेप की और पूर्व गर्भाक्षेपक से अधिक तीव्रावस्था गर्भाक्षेपक की हैं। ऐसा जानना चाहिये।

लक्षण— इस रोग के आक्रमण शुक्लीमेह से अधिक तीव्र अचानक होने वाले होते हैं। रोग की वृद्धि भी शीघ्रता से होती है। इसमें रोगी को भाराधिक्य होकर अचानक उसके सम्पूर्ण शरीर पर शोथ व्यक्त हो जाता है। मुख-हाथ-उदर भाग सभी स्थलों पर सूजन फैल जाती है। मूत्र की अल्प मात्रा हो जाती है। और उसमें शुक्लीमेह की उपस्थिति बढ़ कर १००० से ५-२० भाग तक हो जाती है। तीव्रावस्था में रक्त कायाणु तथा अपिस्तर (Epithelialcoast) निर्मोक भी मिलते हैं। रक्त निपीड शीघ्रता से ऊँचा हो जाता है जिससे सांकोचिक १४० मि० मि० और विस्फारिक ११० मि० मी० तक हो सकता है। सिर में विशेषत: अग्रिम भाग में ललाट में तीव्र शूल होता हैं। रुग्णा दृष्टिमान्द्य, (धुंधला) द्विधा दृष्टि, आंखों के आगे चिनगारी देखना कभी-कभी अन्धता की तकलीफ बतलाती है। नेत्र-दर्शक यंत्र से देखने पर दृष्टि-वितान (शुक्ली मेहज) शोथ दिखलाई पड़ता है। कौड़ी प्रदेश में पीड़ा, हृल्लास, वमन, प्रभृति लक्षण भी यकृत के विनाश के द्योतक हैं। इसमें रुग्णा की मृत्यु पूर्व गर्भाक्षेपक से न होकर किसी अन्य उपद्रवों के हेतु से होती है।

गर्भाक्षेपक (ECLAMPSIA)

पूर्व गर्भाक्षेपक की बढ़ी हुयी अवस्था है जिसमें मूर्च्छा प्रारम्भ के पूर्व हो तो प्राक प्रसव आक्षेपक, प्रसव काल में हो तो प्रसवकालीन आक्षेप और यदि अन्त में हो प्रसवोत्तर आक्षेपक (Pre Intra and Post patum eclampsia) कहलाते हैं। सामान्यतया यह बीमारी गर्भावस्था के मध्य में शुरू होती और प्रसवकाल के समीप आने पर अधिक तीव्र हो जाती है। प्रथम गर्भा स्त्रियों में यह सबसे अधिक ७५% मिलती है। ज्यादातर यह बीमारी यमलगर्भ, गर्भोदक वृद्धि मांस गर्भ (Hyatid form male) की उपस्थिति में पाई जाती है।

लक्षण—कई बार इस रोग का आक्रमण गुप्त रीति से होता है। रोग की उत्पत्ति के सूचक शोथ उच्च रक्त निपीड प्रभृति लक्षण व्यक्त होते हैं। अचानक मूत्राघात (Supperession) होता है और प्रबल आक्षेपक आना शुरू हो जाते हैं। इस अवस्था में एक ही चिकित्सा रहती है कि उदर का विपाटन करके गर्भाशय को रिक्त किया जाय। अधिकतर रोगियों में रोगारम्भ के पूर्व अन्तर्विष संचार के कुछ चिह्न मिलते हैं। इस प्रकार पूर्वरूप कुछ दिन या सप्ताहों तक मिलते हैं। इस प्रकार शिर:शूल तीव्र एवं अनवरत मिल सकता है। शोथ तीव्रता के साथ बढ़ता है। दृष्टि शक्ति का क्रमशः मन्द होते जाना या अन्धता की प्राप्ति तीव्र कौड़ी प्रदेश की पीड़ा तथा वमन व्यक्त-मूत्र की अल्पता, मूत्र में शुक्लीमेह की मात्रा की वृद्धि (२० से ३० तक प्रति सहस्र, मूत्रावसाद मूत्र में निर्मोक का पाया जाना, रक्त निपीड की वृद्धि और ज्वर प्रभृति के लक्षण मिलते हैं।

अब गर्भाक्षेपक कभी भी उपस्थित हो सकता है। यहाँ तक कि रोगी का रूप मृदु होने पर १ से ३ तक आवेग आते हैं। मध्यम स्वरूप के रोग में और अधिक होते हैं। रोग की अत्यन्त तीव्रावस्था में १०० या अधिक तक आवेग आ सकते हैं। आक्षेप के आवेग (Fit) कई प्रकार के हो सकते हैं।

आक्षेप के आवेग (Fit) की अवस्थायें

ये आवेग अपस्मार के सदृश होते हैं। रोगी आवेगभर बेहोश रहता है। इस प्रकार मूर्छा होकर उसमें आक्षेप आने लगते हैं। इनका क्रम निम्न ४ प्रकार से होता है।

(i) पूर्वग्रह की अवस्था (Premmitory stage)—

अपनी आंखों को घुमाने लगती है। हाथ और मुख पर खिचाव झटके से आने लगते है। १५-२० सेकेन्ड तक यह अवस्था रहती है।

(ii) **निरन्तर संकोच की अवस्था** (Tonic contraction)—मांस-पेशियों के संकोच के कारण रोगी का चेहरा काला (cynosed) पड़ जाता है। दांतों के दबाव से जीभ कट जाती है। यह अवस्था ½ मिनट तक रह कर सान्तर संकोच में परिवर्तित हो जाती है।

(iii) **सान्तर संकोच की अवस्था** (Clonic Strage) इस अवस्था में संकुचित पेशियां शिथिल होती हैं तथा पुनः संकुचित होतीं और शिथिल होती हैं। इसीलिये इसको निरंतर आक्षेप की अवस्था न कहकर सान्तर आक्षेप की अवस्था कहते हैं। जबड़े की पेशियां भी इसमें भाग लेती हैं, जिससे रोगी अपनी जीभ को काट लेता है। रोगी के मुख से रक्त मिश्रित झाग निकलता है। मुख रक्ताधिक्य युक्त, श्वसन घर्घरयुक्त और रोगी संज्ञाहीन पड़ा रहता है। यह अवस्था ½ मिनट से २ मिनट तक रहती है। इसके बाद रोगी सन्यास (Coma) की अवस्था में आ जाता है।

(iv) **सन्यास की अवस्था**—आक्षेप के बाद सन्यास की अवस्था आ जाती है। और कई घंटों तक चल सकती है। इसके बाद रोगी चेतनायुक्त हो जाता है।

इस रोग में माता की प्रायः मृत्यु हो जाती है। इसकी मृत्यु के ५ कारण होते हैं।

(A) आक्षेपों के श्वास के अवरुद्ध हो जाने से प्राणावरोध से अथवा रक्त या श्लेष्मा या लाल स्राव का वेहोशी हालत में प्रचूषण होने के कारण से।

(B) फुफ्फुस शोथ (aedema of the lung)

(C) मस्तिष्कगत रक्तस्राव होने से।

(D) हृदयावसाद से।

(E) उपद्रव के रूप में श्वसनक ((Broncho Pneumonia) होकर।

गर्भकालीन शुक्लीमेह पूर्व गर्भाक्षेपक तथा गर्भाक्षेपक ये एक ही रोग की अवस्था - विशेष हैं। अतएव विधिगत गर्भकालीन शुक्लीमेह की चिकित्सा कर दी जाय तो पूर्व गर्भाक्षेप की दशा नहीं प्राप्त हो सकती अथवा पूर्व गर्भाक्षेपक विधिवत उपचार कर दिया जाय तो गर्भाक्षेपक नामक रोग की उत्पत्ति रोकी जा सकती है।

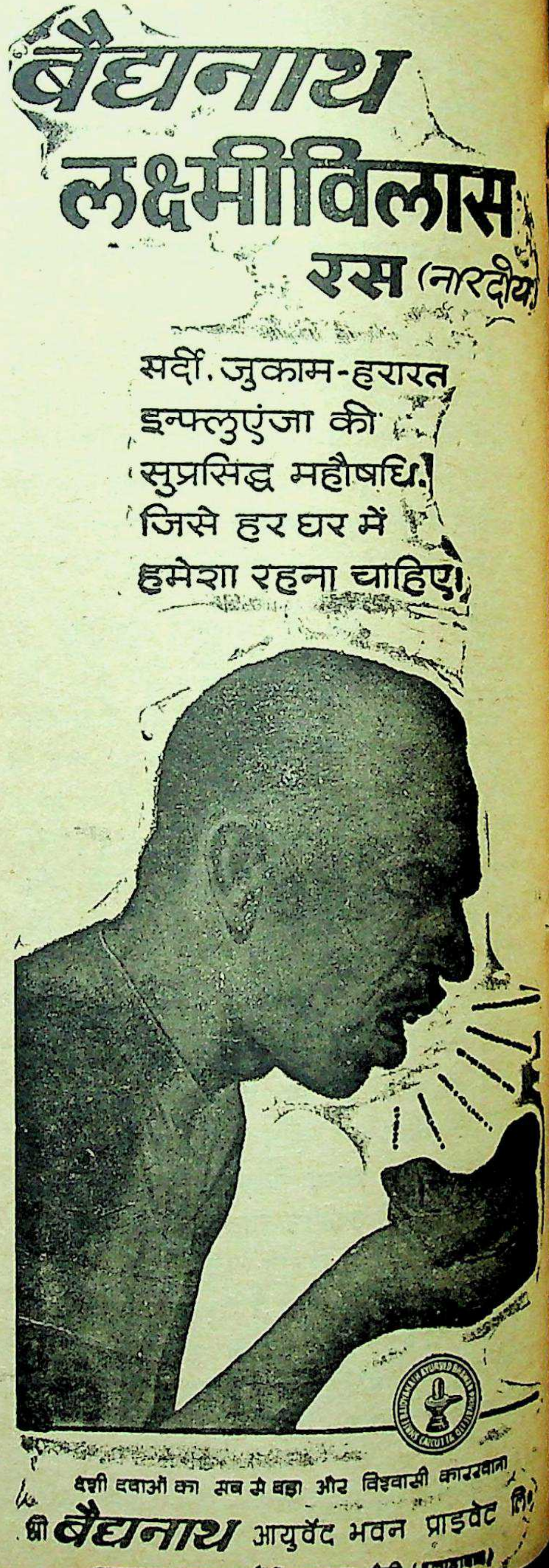

बैद्यनाथ
लक्ष्मीविलास
रस (नारदीय)
सर्दी. जुकाम-हरारत
इन्फ्लुएंजा की
सुप्रसिद्ध महौषधि.
जिसे हर घर में
हमेशा रहना चाहिए।
देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
कलकत्ता. पटना. झाँसी. नागपुर. नैनी (इलाहाबाद)

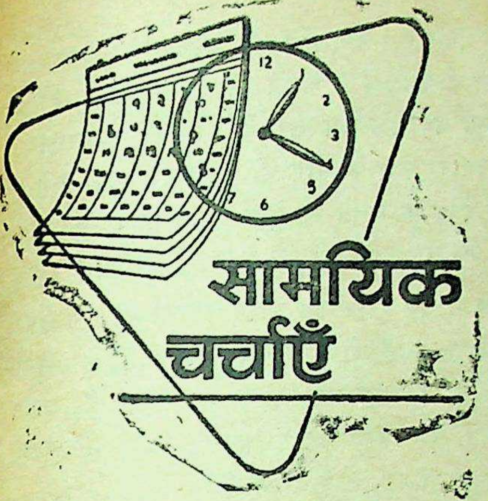

आयुर्वैदिक अनुसंधान का महत्व

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के अनुसंधानकर्त्ताओं ने दावा किया है कि गुग्गुलू हृदय रोगों को दूर करने में प्रभावी औषध सिद्ध हो सकता है। वास्तव में गुग्गुलू ही नहीं, भारतीय चिकित्सा विज्ञान में ऐसी कितनी ही वस्तुएं भरी पड़ी है, जो रोग-शमन के गुण के लिए अनुभूत और विख्यात हैं। सर्पगन्धा पर तो देश और विदेश दोनों जगह सफल अनुसंधान किये गये हैं, परन्तु घृतकुमारी, त्रिफला, पुनर्नवा तथा और भी न जाने कितनी अन्य ऐसी वनस्पतियां तथा औषधियां हैं जिन पर वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग और अनुसंधान किये जाने चाहिए। आज का संसार पुरातन ज्ञान को भी विज्ञान की कसौटी पर कसता है, वह केवल आप्त "प्रमाण के आधार पर किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता। अतएव यह अनुसंधान और भी जरूरी हो जाता है।

चीन ने अपनी पुरानी चिकित्सा-पद्धतियों का पुनरुद्धार किया है जिससे संसार में उसका सम्मान बढ़ा है। यहां भी यदि पुराने चिकित्सातन्त्र का उद्धार किया जाय और उस पर वैज्ञानिक पद्धति से अनुसन्धान किये जाएं तो न केवल भारत की प्रतिष्ठा बढ़ेगी बल्कि चिकित्सा के क्षेत्र में संसार को कुछ देने के साथ-साथ हम आत्मनिर्भरता की ओर भी पग बढ़ा सकेंगे। भारतीय चिकिसा-पद्धति निश्चय ही पाश्चात्य चिकित्सा - पद्धति की तुलना में सस्ती, सरल और हमारी जनता के लिये अधिक ग्राह्य है। आवश्यकता इस बांत की है कि उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाय। सरकार को इसके लिये आयुर्वेद के अनुसन्धान को प्रोत्साहन तथा आवश्यकतानुसार वित्तीय सहायता देनी चाहिये। अर्थाभाव के कारण इस अनुसंधान के कार्य में बाधा पड़े, ऐसी स्थिति नहीं आने देनी चाहिए। इसके साथ ही यह भी जरुरी है कि आयुर्वेद की जो दवाएं बिक्री के लिये बाजार में आएं, वे शुद्ध हों ताकि आयुर्वेद जनता का विश्वास न खोवे। —दैनिक हिन्दुस्तान, दिल्ली

कुपोषण की समस्या

हमारे देश में जो भी खाद्य पदार्थ उपलब्ध हैं, उनसे हमारी कुल जनसंख्या को सन्तुलित आहार नहीं मिल सकता है। भारत में कुपोषण की यही मूलभूत समस्या है।

आजकल हर भारतीय को औसतन २१०० कैलोरी तथा ५२ ग्राम प्रोटीन आहार में मिल पाता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम २३५७ कैलोरी तथा ४४.३ प्रोटीन की आवश्यकता होती हैं। केवल प्रोटीन 'ए' की ही कमी से हमारे देश में १० लाख लोग अन्धेपन के शिकार हो रहे हैं।

हमारे आहार में प्रति व्यक्ति कैलोरी की मात्रा कम मिलती है। इसका प्रमुख कारण है हमारे खाद्य - पदार्थों में अनाजों का अधिक होना। इसलिए हमारे आहार में सब्जियों, अण्डे और दूध की मात्रा बढ़ाने की काफी गुंजाइश है।

भारतीय खाद्य की एक सबसे बड़ी पेचीदी समस्या यह है कि लगभग ७० प्रतिशत भारतीय जनता बाजारों से काफी दूर रहती है। उपभोक्ता की क्रय-शक्ति तथा जोरदार मांग की भी कमी है। अच्छी खाद्य - सामग्री खरीदने के लिए लोगों की आय में वृद्धि होना जरूरी है

ऐसी परिस्थिति में न्यूनतम आवश्यकताओं के राष्ट्रीय कार्यक्रम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम, शिशु-पोषण समन्वित कार्यक्रम और कृषि उत्पादन कार्यक्रम, जो कुपोषण पर सीधा असर डालने वाले हैं, समस्या की केवल सीमा रेखा को ही छू पाते हैं। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में पौष्टिक आहार पर ६०० करोड़ रु० खर्च करने की व्यवस्था है। योजना के अन्त तक इससे लगभग २ करोड़ ६० लाख लोगों की यानी जनसंख्या के बहुत ही कमजोर वर्ग के १३ प्रतिशत लोगों को लाभ मिलने की सम्भावना है।

स्कूल आने के पहले ५ वर्ष से कम आयु के बच्चों को बहुत अच्छे भोजन की जरूरत होती है। इस उम्र में कुपोषण से बच्चे का मानसिक विकास रुक जाता है। लगभग ३३ लाख ऐसे बच्चों को गेहूं, मक्का, टेपिओका मीठे आलू, मूंगफली के आटे और सोयाबीन आदि से बनी हुई चीजें खाने को दी जा रही हैं।

हमारे देश की विभिन्न समस्याओं के लिए कोई एक आसान तरीका नहीं लागू किया जा सकता। ५६ करोड़ लोगों की पोषाहार की स्थिति सुधारने के लिए काफी मात्रा में खाद्य पदार्थों का उत्पादन, पोषाहार - सम्बन्धी शिक्षा तथा अन्य भोजन-सम्बन्धी सुविधाओं की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त लोगों को बीमारियों से बचाने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। समान उपभोग के लिए आय का समान वितरण भी होना चाहिए।

'योजना' दिल्ली

आत्महत्याओं का देश-भारत

सरकारी आंकड़ों को देखने से विदित होता है कि भारत आत्महत्याओं का देश बन गया है। यहाँ हर १२ मिनट के बाद एक आत्महत्या होती है। विगत ४ वर्षों में भारत में लगभग १ लाख ७० हजार लोगों ने आत्महत्याएं कीं। इस हिसाब से हम देखते हैं कि भारत में प्रतिदिन १२० व्यक्ति आत्महत्या करते हैं। ज्यादातर आत्महत्याएं प्रेम में असफल होने पर, गरीबी के कारण तबाह होने पर तथा परीक्षा में फेल होने पर की जाती हैं। प्रेम में असफल होने पर पुरुषों की अपेक्षा नवयुतियां अधिक आत्महत्याएं करती हैं। सम्पत्ति के झगड़े आत्महत्या का कारण बनते हैं। पागलपन भी आत्महत्याएं कराता है। असाध्य बीमारियों के चलते भी आत्महत्याएं होती हैं। यह बात नहीं कि कम उम्र के लोग ही आत्महत्या करते हों, ज्यादा उम्र के लोग भी इससे बच नहीं पाते। कभी-कभी गैरत के चलते भी ऐसा होता है। कुछ धर्म भी ऐसे हैं जो आत्महत्याओं को बुरा नहीं मानते।

अब प्रश्न यह है कि इन आत्महत्याओं को कैसे रोका जाए। प्रेम के चलते जो आत्महत्याएं होती हैं, वे रोकी जा सकती हैं या उनमें कमी लायी जा सकती है, यदि समाज अपना दृष्टिकोण उदार बना ले, जाति-पाँति तथा धन-दौलत की दीवारें तोड़ दी जाएं।

परीक्षा में असफल कोई हो ही न; स्कूल तथा कालेजों में ऐसे कार्यक्रम रखे जाएं तथा हर महीने परीक्षा ली जाए और उसी के रिकार्ड पर छात्र-छात्राओं को पास कर दिया जाए। वार्षिक परीक्षा को उठा दिया जाए।

असाध्य रोगियों तथा पागलों के लिए सरकार उचित उपचार की व्यवस्था करे। यदि हमारी पुलिस और प्रशासक चौकस रहें तो सम्पत्ति के झगड़ों के चलते जो आत्महत्याएं होती हैं, वे रुक जाएं।

गरीबी के चलते जो आत्महत्याएं होती हैं, उन्हें सरकार बखूबी रोक सकती है। बहरहाल आत्महत्याओं का रोकना हर सरकार तथा हर समाज का पावन कर्तव्य है। यदि समाज तथा सरकार दृढ़ निश्चय कर लें कि आत्महत्या नहीं होने देंगे तो अवश्य ही आत्महत्याओं पर अंकुश लग जाएगा। हर हालत में आत्महत्याएं रोकी जानी चाहिए।

—'आजाद मजदूर'

बैद्यनाथ
आइ-ऑख
आँखों की रक्षा के लिए सदा व्यवहार कीजिये

अविस्मरणीय आयुर्वेद-सेवी

एक आयुर्वेद-मनस्वी का महाप्रयाण

जीवात्मा भगवान् का सनातन अंश है; परन्तु उनमें शिष्ट आत्माएं भगवान् की विशेष कृपा से उसकी शिष्ट शक्ति लेकर इस जगत् का महान् कार्य करने के लिए समय-समय पर अवतीर्ण होती हैं। उन्हीं आत्माओं में पूज्य आचार्य चरण श्रीमणिरामजी महाराज थे। इनका जन्म आज से ८७ वर्ष पूर्व सम्वत् १९४३ में जम्मू-मीर राज्य के देवा ला के पास रायपुर न में साधारण ब्राह्मण वार में हुआ।

आपकी प्रारम्भिक क्षा जम्मू के हाई ल तथा श्री रघुनाथ दिर की संस्कृत पाठ-ला में हुई। तद-र देहली के सुप्रसिद्ध श्री मनोहरलाल के पास श्री बनवारी आयुर्वेद विद्यालय पने आयुर्वेद की लघु-का अध्ययन किया। तत्पश्चात् भारत सुप्रसिद्ध वैद्य आयु-र्तण्ड स्वामी श्री रामजी (जयपुर) शिष्यत्व में महाराजा ज जयपुर में अध्य-करके कालेज की रि आयुर्वेद की क्षा आपने समुत्तीर्ण । आपकी गणना मी जी के पट्टशिष्यों थी। जब कभी भी स्वामी जी महाराज चिकित्सार्थ बाहर होता था तब को साथ में ले जाया करते थे। श्री स्वामी जी

एवं मर्मज्ञ माने जाते थे।

बन कर आ गये और वहां करीब २० बीस वर्ष तक निरन्तर आयुर्वेद का अध्ययन तथा चिकित्सा-कार्य किया। रामगढ़ में ही अपने रस शास्त्र के प्राचीन ग्रंथ 'रसेन्द्र चिन्तामणि' पर मणिप्रभा नामक संस्कृत टीका की जो आयुर्वेद जगत् के लिए संग्रहणीय एवं महत्वपूर्ण है। रामगढ़ के कालेज में पढ़े हुए आपके मुख्य-मुख्य शिष्य भारत के आयुर्वेदाकाश में प्रद्योतित हैं; जिनमें वैद्य श्री रामनारायण जी, संस्थापक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, राष्ट्रपति के श्वास चिकित्सक वैद्य डा० प्रह्लाद राय जी, श्वास रोग-विशेषज्ञ सीकर, बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री वैद्यनाथ जी, वैद्य डा० ओंकार प्रसाद जी नवलगढ़, वैद्य डा० ओंकार प्रसाद जी देहली, वैद्य श्री नारायण दत्त जी, वैद्य श्री हरीन्द्र जी, आदि प्रमुख हैं।

अनन्तर रतनगढ़ के स्वर्गीय सेठ श्री सूरजमलजी जालान फर्म सूरजमल नागरमल कलकत्ता के अध्यक्ष के आग्रह से श्री हनुमान आयुर्वेद विद्यालय, रतनगढ़ के प्रिंसिपल पद को स्वीकार किया और अन्तिम दो वर्ष को छोड़ कर रतनगढ़ में ही निवास किया। २५ वर्ष तक उक्त विद्यालय को संचालित करते हुए भारत प्रख्यात श्री धन्वन्तरि मंदिर शोध संस्थान की स्थापना आपने की जो आज तक निर्बाध गति से उन्नति के पथ पर अग्रसर श्वास रोग अनुसन्धान का एकमात्र भारत में प्रतिष्ठान है। करीब तीन वर्ष तक आयुर्वेद विश्वभारती गांधी विद्या मंदिर, सरदार शहर के प्रिंसिपल पद पर कार्य करते हुए भिषगाचार्य तक उसकी मान्यता आपने दिलवाई। यद्यपि महाराज के शिष्य-प्रशिष्य सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं तथापि राजस्थान, देहली, पंजाब, हरियाणा में आयुर्वेद के महत्वपूर्ण राजकीय पदों पर तथा राजकीय एवं जनता के चिकित्सालयों में ऊंचे-ऊंचे पदों पर कार्य करते हुए जनसेवा-रत हैं।

केवल चिकित्सा-कार्य करने वाले शिष्य-प्रशिष्य तो बंगाल, बिहार, आसाम, उत्तर प्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि में भी ससम्मान चिकित्सा कर रहे हैं।

आप अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के सपापति एवं अनेक वैद्य सभाओं के अध्यक्ष रह चुके थे।

आपकी गणना भारत के सम्मानीय वैद्यों में थी। आप राजस्थान में चरक संहिता के महान् मर्मज्ञ एवं तदनुकूल चिकित्सा करने वालों में अद्वितीय थे। आप महान् रस-शास्त्र के व्याख्याकार, काय चिकित्सा के एक अद्वितीय विद्वान्, वैद्यों के सहायक, शिष्यों के महान् हितैषी, चरक के विचित्र व्याख्याकार, महान् कर्मठ, योगी, तपस्वी, परिवार, धर्म, अतिथि; अभ्यागत-सेवी, रोगियों के सर्वस्व, भिषज-भेषज निर्माता, श्री धन्वन्तरि मन्दिर-संस्थापक थे।

आपका पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय था। ऐसा कम ही वैद्यों के जीवन में होता है। आपके तीनों ही पुत्र अत्यन्त सरल, विद्वान् तथा समाजसेवी हैं।

आपका जीवन अत्यन्त सरल, सादा, निश्छल तथा दुराव-रहित था। आपके जीवन से प्रत्येक मानव को प्रेरणा मिलती है। ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व वाले आयुर्वेद-विद्वान् के परलोकगमन पर कौन शोक-विह्वल न होगा। आप बिना संकोच के अपनी छोटी गलती को छोटे-से छोटे व्यक्ति के सम्मुख स्वीकार कर लेते थे। जो महान् व्यक्तियों का विशिष्ट गुण होता है। आपका जीवन ब जन हिताय बहुजन सुखाय था।

आपका जीवन केवल वैद्यों के लिए ही आदर्श न है अपितु सभी मानवों के लिए अनुकरणीय है। आ महान् तितिक्षु, वैरागी तथा परम भागवत थे।

आपका सम्पूर्ण जीवन आयुर्वेद-सेवा में लगा रहा। आपने आयु के अन्तिम भाग में श्री धन्वन्तरि मन्दि जैसी उत्तम संस्था बना दी जो आयुर्वेद में हमेशा अ रहेगी।

श्री धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ राजस्थान में ही न अपितु भारत में श्वास रोग - चिकित्सा के लिए प्र है। यहां श्वास रोग पर अनुसंधान-कार्य चालू है।

वर्तमान में इसके संचालन की सारी व्यवस्था उ ट्रस्टी वैद्य श्री रामनारायण जी द्वारा होती है। महा की प्रसन्नता तथा आज्ञापालन के लिए श्री धन्व मंदिर का सम्पूर्ण अर्थ-व्यय वही वहन करते हैं।

महाराज आयुर्वेद आकाश में जाज्वल्यमान प्र सूर्य थे जिसका प्रकाश आज सर्वत्र फैला है। ऐसी महान् आत्मा का तिरोहित होना आयुर्वेद चिन्तनीय तथा अपूर्णनीय क्षति है। उनके शिष्य-प्र एवं सहयोगियों का महान् कर्तव्य है कि वे उनके को सुचारु रूप से चलने में सहयोग प्रदान करें।

वैद्य घनश्याम शर्मा, साहित्या

पाठकों के पत्र

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् द्वारा निबन्धन के विषय में भ्रम निवारण

प्रिय महोदय,

देश के विभिन्न भागों से अनेक वैद्य-हकीमों द्वारा इस परिषद् के कार्यालय में निबन्धन के लिए प्रायः प्रतिदिन ही प्रार्थना-पत्र आते रहते हैं। ऐसी सूचना भी मिली है कि कुछ लोग वैद्य-हकीमों से इस परिषद् द्वारा निबन्धन कराए जाने के नाम पर पैसे भी वसूल करते हैं।

इस सन्दर्भ में वैद्य-हकीम बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस परिषद् द्वारा निबन्धन कराए जाने के नाम पर ठगी का शिकार न बनें, क्योंकि जिन राज्यों में प्रांतीय परिषदें बनी हुई हैं वहां के वैद्य-हकीमों का निबन्धन इस परिषद् द्वारा अप्रत्यक्ष विधि से ही होगा और इसमें अभी विलम्ब की भी सम्भावना है। इस विषय में निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

१. भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् की धारा १७ के अन्तर्गत अधिनियम के सेड्यूल में उल्लिखित सभी उपाधिधारियों का प्रत्येक राज्य परिषद् द्वारा निबन्धन किया जा सकेगा।

२. अधिनियम की धारा २३ के अन्तर्गत यह परिषद् देशी चिकित्सा-पद्धतियों के उन वैद्य-हकीमों का एक रजिस्टर तैयार करेगी जिनका निबन्धन किसी राज्य परिषद् द्वारा हो चुका है और जो सेड्यूल में उल्लिखित किसी भी उपाधि से विभूषित हैं।

३. केन्द्रीय रजिस्टर में इस प्रकार अप्रत्यक्ष विधि से निबन्धन के लिए वैद्य-हकीम-सिद्धों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जायगा और उन्हें आवेदन-पत्र मंगाने की भी आवश्यकता नहीं है।

४. भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् की उक्त धाराएं अभी लागू नहीं हुई हैं। किन्तु इनके लागू करने के विषय में भारत सरकार आवश्यक कार्यवाही कर रही है।

५. अधिनियम की धारा २५ के अन्तर्गत भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् के रजिस्ट्रार को प्रत्यक्ष निबन्धन करने के अधिकार दिए गए हैं, किन्तु ऐसा प्रत्यक्ष निबन्धन केवल उन राज्यों के लिए हैं जहां अभी तक कोई राज्य परिषद् गठित नहीं की जा सकी है। धारा २५ भी अभी लागू नहीं की गई है।

६. मात्र अनुभव के आधार पर राज्य बोर्ड परिषद् द्वारा निबन्धत व्यक्तियों का नाम केन्द्रीय रजिस्टर में दर्ज नहीं किया जा सकेगा। परन्तु ऐसे चिकित्सक उस राज्य में चिकित्सा व्यवसाय करते रहेंगे और उनके इस अधिकार पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है।

७. अनुभव के आधार पर राज्य बोर्ड परिषद् द्वारा निबन्धित व्यक्तियों का नाम भी केन्द्रीय रजिस्टर में दर्ज किया जाय, इस विषय में अनुरोध आते रहते हैं। इस सन्दर्भ में निवेदन है कि यह परिषद् भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद अधिनियम की धाराओं में उल्लिखित व्यवस्थाओं के अन्तर्गत ही कार्य कर सकती हैं और परिषद् को इन धाराओं में किसी प्रकार के परिवर्तन-परिवर्धन का अधिकार नहीं है। अधिनियम की वर्तमान व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अनुभव के आधार पर निबन्धित वैद्य हकीम-सिद्धों का नाम केन्द्रीय रजिस्टर में अंकित करने का प्रावधान नहीं है।

मुझे आशा है केन्द्रीय परिषद् द्वारा निबन्धन के विषय में वास्तविक स्थिति का पता इन विवरणों से हमारे चिकित्सक को मिल जायगा और इस परिषद् को उनका सहयोग मिलता रहेगा।

भवदीय

शिव कुमार मिश्र
रजिस्ट्रार एवं सचिव

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की

पं० बंग प्रादेशिक शाखा की बैठक में

प्राणाचार्य वैद्य दुर्गा प्र० शर्मा का भाषण

कलकत्ता। विगत २५ अगस्त को ताराचन्द दत्त स्ट्रीट स्थित डाबर हाउस में अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रादेशिक शाखा की बैठक लब्धप्रतिष्ठ कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। कार्यक्रम श्री ऋषिशंकर दीक्षित के भव्य संयोजनत्व में सम्पादित हुआ। प्रधान अतिथि के आसन पर अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महामन्त्री एवं सुप्रसिद्ध आयुर्वेद औषधि-निर्माता, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन के संचालक श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा थे। समारोह का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ। श्री अरुणप्रकाश अवस्थी ने आयुर्वेद की मूल भावना के अनुरूप उद्बोधन कविता प्रस्तुत की। उद्बोधन भाषण में श्री वैद्यनाथ जी शर्मा ने सम्मानित अतिथियों का स्वागत करते हुए उपस्थित वैद्य समुदाय को आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार एवं उत्थान हेतु समवेत एवं सुसंगठित होने का आह्वान किया। अपने स्वागत-भाषण में लब्धप्रतिष्ठ डाबर प्रतिष्ठान के संचालक श्री रतनचन्द्र बर्मन ने सम्मेलन की प्रगति पर विचार प्रकट किये। उन्होंने आगे कहा कि आयुर्वेद में शोध-कार्य पूरे जोर-शोर के साथ होने चाहिए। उन्होंने ऐसे कार्यों के लिए अपना पूर्ण सहयोग देने की बात कही। श्री बर्मन ने नवीन पाठ्यक्रम पर जोर देते हुए कहा कि अभी तो हम भूमिका लिख रहे हैं। लक्ष्य-प्राप्ति हेतु संगठन को मजबूत बनाना है। श्री ब्रह्मानन्द गुप्त ने पाठ्य-पुस्तकों के अभाव एवं अन्य समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

श्री राम प्रसन्न शर्मा एवं श्री फणिभूषण राय ने कमियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए अपने जागरण संदेश में 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा दुहराई। श्री बागला मजूमदार ने [illegible] कि हमें अपने ज्ञान, चिन्तन एवं लोक हितैषी कार्यों से जनता में आयुर्वेद के प्रति विश्वास पैदा करना चाहिए। श्री दामोदर शास्त्री ने भी संगठन पर बल दिया।

श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा

श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा ने अपने भाषण में कहा कि जब तक भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा नहीं होगी, आयुर्वेद का विकास सम्भव नहीं है। आज एलोपैथी के सम्मुख हमारा पराभव हुआ है। पर निराश होने का कोई कारण नहीं है। सरकार की ओर से इंडियन मेडिकल कौन्सिल ने वैद्यों को प्राथमिकता देने की योजना तैयार की है। प्रधान मंत्री ने भी ग्रामीण स्वास्थ्य योजनाओं में आयुर्वेद का ध्यान रखा है। सरकार ने वैद्यों की ३ श्रेणियां बनाकर अनुदान देने की योजना तैयार की है। ५वीं पंचवर्षीय योजना में भी आयुर्वेद-यूनानी होमियो आदि के लिये एक सम्मिलित अनुसंधान समिति है। उन्होंने आगे बताया कि राष्ट्रपति को भी आयुर्वेद की समस्याओं से अवगत कराया गया है। उन्होंने कहा कि हर स्तर पर आयुर्वेद के विकास के लिए हमें संघर्ष-रत होना चाहिये। पं० बंगाल में वनस्पतियों का व्यवसायिक पैमाने पर अनुसंधान होना चाहिये। साथ ही उन्होंने हर प्रकार का योगदान देने की बात कही। अन्त में अध्यक्ष श्री प्रभाकर चटर्जी ने अपने उपसंहार भाषण में सम्मेलन की सफलता हेतु कामना की। श्री ऋषिशंकर दीक्षित ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

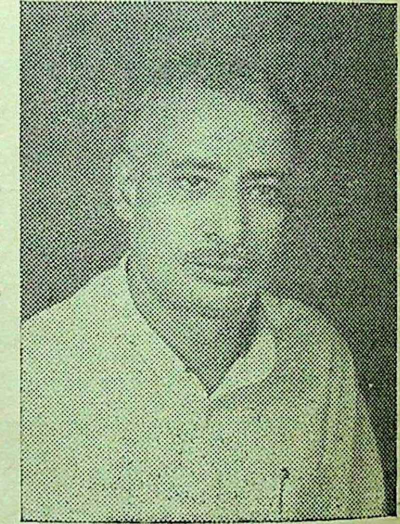

आयुर्वेद जगत

बिहार के मुख्य मंत्री को आयु० प्रतिनिधियों का प्रतिवेदन

गत माह बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की ओर से एक प्रतिनिधिमंडल मुख्य मन्त्री श्री गफूर महोदय से उनके निवासस्थान पर मिला। प्रतिनिधिमण्डल में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महामन्त्री आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद जी शर्मा; के अतिरिक्त निम्नलिखिस आयुर्वेद-विद्वान भी थे—श्री सिद्धेश्वरनाथ उपाध्याय, (अध्यक्ष, बिहार प्रांतीय वैद्य सम्मेलन) (२) श्रीरामरक्ष पाठक, (३) कविदाज सुखराम प्रसाद, (४) श्री वामदेव त्रिपाठी, (५) श्री बिक्कू सिंह, (६) श्री दारोगा मिश्र, (मन्त्री बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन) (७) श्री शिवपूजन प्रसाद, एम० एल० ए०, (८) श्री नन्दकिशोर मिश्र।

प्रतिनिधिमण्डल के विशिष्ट सदस्य प्राणाचार्य वैद्य दुर्गा प्र० शर्मा ने भारत के विभिन्न राज्यों में आयुर्वेद-क्षेत्र में हो रही उल्लेखनीय प्रगतियों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि बिहार में आयुर्वेद की प्रगति अन्य राज्यों की तुलना में सर्वथा असंतोषप्रद है। और, बिहार सरकार का ध्यानाकर्षण करते हुए उन्होंने आयुर्वेद निदेशालय की स्थापना तत्काल किए जाने की मांग मुख्य मन्त्री महोदय से की। मुख्य मन्त्री को एक प्रतिवेदन भी दिया गया, जिसमें आयुर्वेद स्नातकों की अधिकाधिक नियुक्ति, समयोचित वेतनमान, बिहार में आयुर्वेद-निदेशालय की स्थापना, एवं आयुर्वेद-निदेशक की नियुक्ति तथा पटना आयुर्वेद कालेज के आचार्य एवं प्राध्यापकों के रिक्त पदों की पूर्ति, आयुर्वेद-कालेजों की विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्रभृति प्रश्नों पर मुख्य मन्त्री का ध्यानाकर्षण किया गया था। मुख्य मन्त्री ने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनीं और प्रतिवेदन में की गयी मांगों को पूरा करने का

राजकीय आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सक-संघ उत्तर प्रदेश की विज्ञप्ति

१- वार्षिक अधिवेशन

उत्तर प्रदेश के समस्त आयुर्वेद-यूनानी, इन्टीग्रेटेड एवं श्रम कल्याण-केन्द्र के चिकित्साधिकारियों से सूचनार्थ निवेदन है कि इस वर्ष चिकित्सक संघ का वार्षिक अधिवेशन दिनांक १-२-३ नवम्बर १९७३ तदनुसार, गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार को लखनऊ में हो रहा है जिसमें अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर आप अपनी संगठन-शक्ति का परिचय दें। संघ ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपनी कठिनाइयों व असुविधाओं का समाधान सामूहिक प्रयास से खोज सकते हैं तथा अपनी न्यूनतम मांगों की ओर शासन का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं।

अस्तु आप सभी से प्रार्थना है कि अपने प्रस्तावों को दिनांक २० अक्टूबर, १९७३ तक मन्त्री के पास अवश्य भेज दें। ताकि प्रस्ताव समिति उन पर विचार कर कार्यकारिणी के समक्ष प्रस्तुत कर सकें।

२- वार्षिक सदस्यता-शुल्क

सभी चिकित्साधिकारियों से विनम्र निवेदन है कि आपका चिकित्सक संघ आपके ही सहयोग पर आधारित है। जिस प्रकार-संघ की उपलब्धियों में आप समान रूपसे भागीदार होते है, उसी प्रकार आपका पुनीत कर्त्तव्य है कि आप वार्षिक अधिवेशन के पूर्व संघ के नियमित सदस्य अवश्य बन जायें। अतएव जिन बन्धुओं ने अभी तक इस वर्ष का सदस्यगा शुल्क नहीं दिया है वे तुरन्त १० रुपया मनीआर्डर द्वारा अधोहस्ताक्षरकर्त्ता को प्रेषित कर दें। जो प्रथम बार सदस्य बन रहे हैं वे २ रुपया प्रवेश शुल्क के साथ अर्थात १२ रुपया प्रेषित करने की कृपा करें। अधिवेशन का समय अत्यन्त मूल्यवान होता है यदि हम उस समय का उपयोग अपनी कठिनाइयों के समाधान एवं अपने विभाग के स्तर को उच्चतर सीमा पर लाने के उपायों पर विचार करने में लगायें तो अधिक अच्छा हो।

यह हर्ष का विषय है कि संघ को इस वर्ष अपने बन्धुओं का विशेष सहयोग प्राप्त हो रहा है। सदस्यता शुल्क के मनीआर्डर बराबर प्राप्त हो रहे हैं। अतएव आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करें और सदस्यता शुल्क भेजकर अपनी चेतना एवं कर्त्तव्यपरायणता का

३- कार्यकारिणी के सदस्यों को सूचना

कार्यकारिणी के सभी माननीय सदस्यों से सूचनार्थ निवेदन है कि प्रस्ताव समिति द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर अन्तिम विचार हेतु तथा अधिवेशन की तैयारी को अंतिम रूप देने हेतु कार्यकारिणी की आवश्यक बैठक दिनांक ३१-१०-७३ से प्रातः १० बजे से प्रारम्भ होगी। स्थान की सूचना बाद में दी जायेगी।

अतएव सभी से प्रार्थना है कि बैठक में पधार कर अधिवेशन को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें साथ ही आप यह प्रयत्न करें कि अधिक से अधिक चिकित्साधिकारी अधिवेशन में उपस्थित हों।

वैद्य आनन्द कुमार बरनवाल
महामन्त्री
राजकीय आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सक संघ
२६६-११५ ए नई बस्ती, भदैंवा
लखनऊ-४

वैद्य श्री पटवर्धन का अभिनन्दन

झांसी क्षेत्र के समस्त चिकित्साधिकारियों एवं क्षेत्रीय कार्यालय के कर्मचारियों की ओर से आदरणीय वैद्य श्री सी० एम० पटवर्धन, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी की उत्तर प्रदेश में सहायक निदेशक आयुर्वेद के पद पर पदोन्नति के शुभ अवसर पर विदाई एवं अभिनन्दन-समारोह का आयोजन झांसी में दिनांक ५ अगस्त १९७३ को किया गया। इस अवसर पर झांसी, बांदा, हमीरपुर तथा जालौन के अधिकांश चिकित्साधिकारी एवं नगर के गण्यमान्य अधिकारीगण तथा बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक महाविद्यालय के प्राचार्य एवं अन्य प्राध्यापक महानुभाव भी उपस्थित थे।

विदाई-समारोह के अवसर पर सर्व प्रथम चिकित्साधिकारियों ने श्री पटवर्धन जी के सरल स्वभाव एवं प्रशासन की कुशलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की और यह शुभकामना प्रकट की वे सहायक निदेशक के रूप में आयुर्वेद की विशेष रूप से सेवा कर सकेंगे तथा लखनऊ जाकर हमें भूलेंगे नहीं। तत्पश्चात् वैद्य श्री परमेश्वर शर्मा ने श्री पटवर्धन जी का अभिनन्दन करते हुए कहा कि वे एक ऐसे अधिकारी हैं जिनके अधीनस्थ सभी कर्मचारियों को विशेष स्नेह प्राप्त होता रहा है साथ ही वे उच्च अधिकारियों की दृष्टि में भी एक सफल अधिकारी होने का गौरव प्राप्त करते रहे हैं। तत्पश्चात् वैद्य आनन्द कुमार बरनवाल ने अपने वक्तव्य में कहा कि वे तो लखनऊ से श्री पटवर्धन जी का स्वागत करने हेतु आये हैं और संघ की ओर से उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं तथा यह आशा करते हैं कि वे सहायक निदेशक के रूप में आयुर्वेद के लिये वरदान सिद्ध होंगे।

बुन्देलखण्ड आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राचार्य श्री घुलेकर जी ने अपने छात्र-जीवन का स्मरण करते हुए श्री पटवर्धन जी के गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की, जिससे कि वे प्रभावित हुए थे तथा झांसी के क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारी के रूप में उनका जो हार्दिक सहयोग आयुर्वेद विद्यालय के विकास में उन्हें प्राप्त हुआ उसकी मुक्त कण्ठ से सराहना की और उनकी उत्तरोत्तर उन्नति की शुभ कामना प्रकट की। इस अवसर पर उप स्वास्थ्य चिकित्साधिकारी डा० जेनी साहब ने पटवर्धन जी के सौम्य स्वभाव की चर्चा की।

इस प्रकार अभिनन्दन-समारोह अत्यन्त भावपूर्ण वातावरण में समाप्त हुआ।

झांसी क्षेत्र के चिकित्साधिकारियों का सम्मेलन

पावस ऋतु की रिमझिम बेला के मध्य राजकीय आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सक संघ के अन्तर्गत झांसी क्षेत्र के चिकित्साधिकारियों का सम्मेलन माननीय श्री सी० एम० पटवर्धन, सहायक निदेशक आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश की अध्यक्षता में दिनांक ५ अगस्त १९४३ अपराह्न २-३० बजे से श्री सीताराम भागवत, सदस्य कार्यकारिणी के विशेष प्रयत्न के फलस्वरूप आरम्भ हुआ।

इस अवसर पर संघ के महामन्त्री 'वैद्य आनन्द कुमार बरनवाल एवं भूतपूर्व महामन्त्री वैद्य परमेश्वर शर्मा घिल्डियाल विशेष रूप से आमन्त्रित अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

सर्वप्रथम वैद्य परमेश्वर शर्मा घिल्डियाल ने अब तक संघ की गति-विधियों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुये चिकित्साधिकारियोंको यह बताया कि संघ के सत्प्रयासोंसे हमको अनेकों उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। यद्यपि हमें अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में अत्यधिक सामूहिक प्रयास करना पड़ेगा, उसके यिये हमें अपने संगठन को दृढ़ करना आवश्यक है।

तत्पश्चात अनेकों चिकित्साधिकारियों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये, जिनमें विशेष रूप से सर्वश्री सुन्दर लाल जैन, भोलाराम मिश्र, आर० पी० शर्मा, वासुदेव शर्मा, मलखान सिंह सचान, श्री रामानन्द सिंह, जी ने अपने वक्तव्यों द्वारा संघ की कार्यवाही का समर्थन किया तथा सदस्यों से आग्रह किया कि वे तन-मन-धन से संघ को पूर्ण सहयोग प्रदान करें। तदुपरान्त संघ के महामन्त्री महोदय ने अपने वक्तव्य द्वारा सावधान किया कि क्षेत्रीय स्तर पर आयुर्वेद व यूनानी विभाग को जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है वह हमारे प्रमादवश कहीं छिन न जाये। क्योंकि कुछ ऐसे तत्व हैं जो कि अब भी इस प्रकार का प्रयास कर रहे हैं कि इस विभाग का प्रशासन जिला-स्तर पर चीफ मेडिकल आफिसर के अन्तर्गत कर दिया जाये। अस्तु हमें 'धैर्यपूर्वक इस समय की कठिनाइयों का सामना करना है। कुछ समय व्यतीत होने के बाद स्वतः प्रयास से हम कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

चिकित्साधिकारी बन्धुओं का ध्यान उनके वक्तव्यों की ओर आकर्षित करते हुये उन्होंने कहा कि हम अधिकारों की मांग करने से पूर्व अपने कर्त्तव्यों के दृष्टिकोण से आत्म-निरीक्षण करें और सदस्यों में प्रेम भावना को जाग्रत कर अपने संघ को प्रत्येक प्रकार से सहयोग प्रदान करें। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि आप अपनी वास्तविकता को पहचान कर समाज में अपने आस्तित्व के प्रति जागरुकता का परिचय दें। उन्होंने कहा कि आप विभाग की आधार शिला के समान हैं कि जिस पर आयुर्वेद विभाग का प्रतिष्ठा-रूपी महल खड़ा है। आप अपनी सेवा-पद्धति की उपयोगिता को ऐसा प्रतिबिम्बअंकित करें कि जिससे जनता आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सालयों की मांग करे।

वेतन आयोग के प्रतिवेदन के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि यद्यपि आयोग ने हमारे संघ की भावना को पूर्णरूपेण नहीं समझा है परन्तु इस पर प्रसन्नता व्यक्त की कि आयोग ने हमारे वेतन-स्तर में व्याप्त वर्तमान विषमताओं एवं विभिन्नताओं को कुछ अंश में समझ कर वेतन की खाई को आंशिक रूप में भरने का प्रयास किया है।

अतएव संघ शासन से यह मांग करता है कि आयु-

स्तर का निर्धारण किया जाये, और इस समय चिकित्साधिकारियों के विभिन्न सम्वर्गों को समाप्त कर एक ऐसा सम्वर्ग बनाया जाये जिसका वेतन दन्त चिकित्सकों से अधिक होना चाहिए। क्योंकि उनकी प्रवेश योग्यता एवं प्रशिक्षण अवधि हमसे कम है। अतएव वेतन निर्धारण सिद्धांतों के आधार पर हमारा वेतन दन्त चिकित्सकों से कम रखना एक स्पष्ट असंगति है। अतएव असंगत समितियों को उस पर विचार करना है।

मन्त्री महोदय ने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि यद्यपि शासन ने आयुर्वेद विभाग में राजकीय सेवाओं का सृजन किया है परन्तु उनका वेतन अन्य राजकीय सेवाओं के समकक्ष नहीं रखा जो कि हमारे प्रति सरासर अन्याय है। अतः हम शासन से यह माँग करते हैं कि राजकीय आयुर्वेद सेवा का वेतन अन्य राजकीय सेवाओं के बराबर कर दिया जाये।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी ११ सूत्री मांगों का एक स्वर से समर्थन किया गया।

तदुपरान्त सम्मेलन की कार्यवाही इस संकल्प के साथ समाप्त हुई कि नवम्बर के प्रथम सप्ताह में होने वाले वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर सभी लोग लखनऊ में एकत्रित होकर अपनी एकता का परिचय देंगे।

चिकित्सा अधिकारी का स्थानान्तरण

सन् १९३७ में जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में शासन की बागडोर आई और जनता के हित के लिए ग्राम सुधार विभाग चालू हुआ। अल्मोड़ा जिला में पुराने कांग्रेस कार्यकर्त्ता सरकारी सर्विस में रक्खे गये, जिन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह गांधी जी द्वारा चालू करने पर एक साथ सन् १९४१ में पद-त्याग किया। मुझे भी इस कार्य हेतु चुन लिया गया। उस समय हमारे प्रान्त के मुख्य मन्त्री स्वर्गीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत जी हुए। जिला की बागडोर स्वर्गीय श्री हरगोविन्द पंत जी के हाथ में थी। श्री पंत के द्वारा अल्मोड़ा जिले में सैकड़ों जनहितकारी कार्य हुए। सिलोर पट्टी के मध्य सौला में एक राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय सन् १९३८ से चालू किया गया। तब से आज तक [illegible] औषधालय जनता की चिकित्सा-सम्बन्धी सेवा करता आ रहा है। जब मैं सन् १९४२ के क्रांतिकारी आन्दोलन में अगस्त १९४२ से अप्रैल १९४३ तक फरार व जेल में रहा।

भी जेल गई। सब की चल तथा अचल सम्पत्ति का नीलाम व कुडकी हो गई तो ब्रिटिश सरकार के देशद्रोही शासकों की दृष्टि में यह जनता की सुविधा खटकी और १९४५ में औषधालय खत्म कर स्थानान्तरित करा दिया, जब सन् १९४६ में जेल से आने पर मैंने जनता की परेशानी देखी तो मैं सीधा लखनऊ स्वर्गीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत जी के पास गया। शासन की बागडोर उनके हाथ में आ गई थी। उन्होने यह समाचार सुनते ही विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर को निर्देश दिया कि १५ दिन के अन्दर सौला में वैद्यसहित औषधालय-सम्बन्धी सामान पहुँचाकर औषधालय पूर्ववत् चालू किया जाय। उनके आदेश का पूर्ण पालन उसी समय के भीतर हुआ और औषधालय सन् १९४७ में पुनः चालू हो गया और जनता प्रसन्न होकर शासन का आभार मानने लगी। पंत जी के शासन की यह घटना हमारे मौजूदा मन्द गति से चलने वाले शासन के लिए अनुकरणीय है।

इस औषधालय में आज तक कई वैद्य कार्य कर चुके हैं, जिनमें श्री तारादत्त उपरेती, शिवकुमार नेगी व रामप्रसाद कोटियाल जैसे सहृदय वैद्य यहां रहे; परन्तु जब सन् १९५९ में जिला मुजफ्फर नगर के श्री राजा राम आत्रेय बी० आई० एम० एस० आर्यवेदाचार्य आये तो उन्होंने जनता से ऐसा सम्पर्क अपनी सेवा, सहानुभूति, व भ्रातृत्व से बना लिया जैसा कोई चिकित्सक अब तक न बना सका। एक बार सन् १९६७ में उनका स्थानान्तरण पिथौरागढ जिले में हो गया तो जनता बहुत दुःखी हुई और उन्हें पुनः यहां बुलाने के लिए बार-बार मुझ से आग्रह किया और विभाग को मेजरनामे भेजे। विभाग के उच्च अधिकारियों ने मेरे मौखिक कहने व मेजरनामों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर पुनः सन् १९६८ से पहले ही उन्हें यहां भेज दिया। आज वे पदोन्नति (गजेंटेड) हो कर जिला सहारनपुर में स्थानान्तरित किये गये हैं। उपचार-सम्बन्धी सेवा के अलावा इलाके की ९ सात पट्टियों के लोगों से चन्दा लेकर भवन निर्माण-कार्य में उन्होंने पूरा भाग लिया। मैं उनकी बार-बार पदोन्नति की कामना करता हूं। गत वर्ष निर्देशक श्री मुकन्दीलाल लाल द्विवेदी जी ने इस औषधालय की चर्चा सुन कर ऊबड़-खाबड़ ग्रामीण रास्तों से आकर इस औषधालय का निरीक्षण किया। इसकी रोगी-संख्या, लेवी फीस व जनता की आवश्यकता का अनुभव कर इस औषधालय को चार विस्तरों का इनडोर बना दिया। चारपाई आदि सभी सामान मरीजों के लिए आ गया है। यहां पर यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि मौजूदा औषधालय व वैद्य कम्पाउन्डर के रहने के मकान जनता द्वारा निर्मित किये गये और औषधालय के विस्तार हेतु जनता ने १० नाली और भूमि सरकार से स्वीकृत करवा के औषधालय के नाम कर दी है। मौजूदा भवनों में मरीजों की चारपाई रख कर उपचार करने की व्यवस्था नहीं हो सकती। खेद है सरकार ने कोई भवन यहां अब तक नहीं बनवाया। जब लाखों रुपया स्टेट लाटरी द्वारा सरकार प्राप्त कर रही है और सरकार की यह घोषणा भी है कि यह धन जनता के चिकित्सा-हेतु खर्च होगा, परन्तु इतने पुराने औषधालय के लिए कोई भवन की मदद नहीं की गई। ग्रामीण जनता व आयुर्वेद के प्रति मौजूदा सरकार की यह उपेक्षा - नीति ही कही जा सकती है जबकि निरीक्षण करने वाले कई माननीय व्यक्तियों व क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी श्री रमादत्त उनयाल जी ने अपने निरीक्षण में बार-बार एक अच्छी धन - राशि भवननिर्माण हेतु देने की सरकार से संस्तुति की है।

मैं एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के नाते मौजूदा सरकार से निवेदन करता हूं कि वह इस औषधालय का शीघ्र उच्चीकरण (गजेटिड) कर एक अच्छी धनराशि अनुदान देकर रोगियों के लिए सुविधाजनक भवन निर्माण करा दें।

—मथुरा दत्त भट्ट, देवलीखेत

जिला वैद्य सम्मेलन समस्तीपुर

समस्तीपुर नगर वैद्य एवं आयुर्वेद-प्रेमियों की एक गोष्ठी विगत दिनांक ११-९-७३ बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के उपाध्यक्ष एवं राजकीय आयुर्वेदीय औषधालय के चिकित्सा-पदाधिकारी श्री गणेश प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में औषधालय भवन में ही आयोजित की गयी। इस गोष्ठी में मुख्य अतिथि दिल्ली के पत्रकार संघ के प्रधान मन्त्री श्री वेदप्रकाश गुप्त ने आयुर्वेद-विज्ञान-विकास, इसके प्रति केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों की उदासीनता आदि की विस्तृत चर्चा के साथ पूर्ण प्रकाश डालते हुए वैद्यों से संगठित होने की अपील की।

गोष्ठी में अनेक चर्चाओं के क्रम में सर्वसम्मति से उपस्थित वैद्य-बन्धुओं ने यह निश्चित रूप से मान लिया है कि २५-२६ वर्षों में हमारे लिये एक स्वतन्त्र निदेशा-

लय की स्थापनाका नहीं होना अत्यन्त खेद का विषय रहा है, जो हमारे विकास-मार्ग में अभी तक अवरोध उत्पन्न करता रहा है। हमारी सरकार जान-बूझकर हमारे भविष्य को अंधकार में रखने का प्रयत्न रही है। सरकार आयुर्वेद विकास के मार्ग में स्वयं प्रगतिशील होती यदि स्वतंत्र निदेशालय प्रांतों और केन्द्र में होता जो विकास मार्ग के लिये उचित परामर्श के साथ अभिमन्त्रणा सहित योजना को प्रस्तुत कर उसे और अग्रसर होने में मार्ग-दर्शन करा पाता। दुर्भाग्यवश अभी तक वैसा कोई प्रबन्ध हमारे लिए नहीं हो सका है। अतः अब समय आ गया है जब हमें सजग हो अपनी एकमात्र मांग सरकार के समक्ष उपस्थित करनी है कि वह हमारे लिये स्वतन्त्र निदेशालय की स्थापना आज नहीं अभी कर दें।

सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया और यह भी तय पाया कि इसकी प्रतिलिपियां प्रधान मंत्री, भारत सरकार तथा स्वास्थ्य मन्त्रणालय, भारत सरकार, मुख्यमन्त्री, बिहार सरकार, स्वास्थ्य-मन्त्री, बिहार सरकार और सचित्र-आयुर्वेद के साथ ही अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रेषित कर दी जाय।

उपस्थित वैद्यों एवं आयुर्वेद-प्रेमियों की यह गोष्ठी केन्द्रीय सरकार एवं प्रांतीय सरकार से अनुरोध करती है कि वे अपनी आयुर्वेद-विज्ञान-विकास के प्रति उदासीनतापूर्ण नीति का परित्याग कर शीघ्रातिशीघ्र एक स्वतन्त्र निदेशालय की स्थापना करें तथा अपनी उदारता का परिचय देकर जनप्रिय सरकार को समाज एवं लोक में प्रशस्त करें।

श्री सत्यपाल शर्मा का स्थानान्तरण

डा० सत्यपाल शर्मा, (जो गुरुकुल कांगड़ी, आयुर्वेद महाविद्यालय के स्नातक हैं) ने राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय सहार (मथुरा) में सात वर्ष तक चिकित्साधिकारी के पद पर अत्यन्त सफलता के साथ काम किया। आपके ही प्रयत्न से वहां पर चिकित्सालय भवन के अभाव को पूरा किया गया। आपकी प्रेरणा से ही वहां के श्री बद्री प्रसाद अग्रवाल के पुत्र श्री श्यामलाल जी अग्रवाल ने भवन दान दिया और श्री शर्मा जी ने जनता से मांगकर उसका जीर्णोद्धार किया। वहां की अधिकारी जनता आपको दुबारा सहार में बुलाना चाहती है। इसलिए आयुर्वेद विभाग के निदेशक महोदय से प्रार्थना भी है कि उन जैसे त्यागी, कर्मठ व समाज-सेवक को जनता की मांग पर भेजा जाना चाहिए। उन्होंने बड़े-छोटे, अमीर-गरीब में कभी भेदभाव नहीं किया।

'पौथिया (हमीरपुर) में रा० आ० चिकित्सालय का भव्य उद्घाटन

गत दिनांक १३-८-७३ ई० को रक्षाबन्धन के पावन पर्व पर माननीय पं० शिवसहाय जी द्विवेदी, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी झांसी, की संरक्षता में पं० प्रेम नारायण शुक्ल, आयुर्वेद-शास्त्री द्वारा भगवान धन्वन्तरि का षोडशोपचार पूजन कराया गया। तत्पश्चात् श्री भगवान दीन वर्मा, स्वतंत्रता सेनानी द्वारा राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय पौथिया, जनपद-हमीरपुर उ० प्र० का विधिवत् उद्घाटन किया गया तथा माननीय द्विवेदी जी द्वारा चिकित्सालय की प्रगति हेतु संस्कृत श्लोक द्वारा स्वस्तिवाचन किया गया। उद्घाटन भाषण क्षेत्र के नेता श्री रामस्वरूप जी सचान द्वारा दिया गया, जिसमें उन्होंने आयुर्वेदिक विभाग उ० प्र० की इस कार्य के लिये विशेष प्रशंसा की तथा उन्होंने बताया कि यहां पर प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्र की स्थापना हेतु सरकार से बातचीत चल रही है किन्तु आयुर्वेद विभाग इस कार्य में अग्रणी बन गया है। यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। माननीय द्विवेदी जी ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा कि मुझे अपने प्रथम भ्रमण कार्यक्रम में ही उस नये चिकित्सालय को प्रारम्भ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। रक्षाबन्धन के पवित्र पर्व पर क्षेत्र के निवासियों को चिकित्सा-सुविधा प्रदान करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। श्लोक मिश्रित शुद्ध भाषा में श्री द्विवेदी ने 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं आतुरस्य च विकार प्रशमनम्' इस आयुर्वेद के सिद्धान्त को सारगर्भित भाषण द्वारा समझाया और प्रति नये रोगी द्वारा १० पैसे देकर औषधि लेने का आह्वान किया। अन्त में अध्यक्ष पद से पंडित प्रेमनारायण शुक्ल द्वारा सभी आगन्तुक महानुभावों को धन्यवाद दिया गया।

• • •

श्री कृष्ण आयुर्वेदिक महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र में स्वतंत्रता-दिवस-समारोह

कुरुक्षेत्र १५ अगस्त। "छात्रों के कार्य से देश का उत्थान हुआ करता है, उनकी सारी शक्ति देश हित में [illegible]

तत्वों के हाथों की कठपुतलियां बन कर जो छात्र कार्य करता है वह देश के साथ अपने आपका भी द्रोही है। आज भारत उस दौर से गुजर रहा है जिसका मुकाबला प्रत्येक भारतवासी बल्कि छात्रों को आगे आकर करना है। 'ये शब्द कालेज के प्राचार्य श्री पी० पी० शर्मा ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहे।'

स्वास्थ्य निर्माण

प्राचार्य श्री शर्मा जी ने इस अवसर पर 'स्वास्थ्य निर्माण' के बारे में भाषण देते हुए कहा कि आज का नवयुवक विशेषकर आयुर्वेद के छात्र-छात्राओं का विशेष महत्व है, इसलिये हमें इस दिशा में नवीन मापदण्ड स्थापित करना है जैसे कि आपको पता है कि मानव का स्वास्थ्य न केवल उसकी अपनी खुशी का कारण होता है बल्कि देश की खुशहाली का एक बहुत बड़ा स्रोत है। आपसब का व्यवसाय एक पवित्र व्यवसाय है, इसमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सब की प्राप्ति होती है। इसलिए हमने आज यह निर्णय लिया है कि हम इस वर्ष पथ-भ्रष्ट नवयुवकों को सही मार्ग पर लाने के लिए दिन-रात कार्य करते रहेंगे।

छात्रों के आचरण की प्रशंसा करते हुए आचार्य श्री शर्मा जी ने कहा कि १९७२-७३ का वर्ष शिक्षा के क्षेत्र में हरियाणा प्रदेश में उथल-पुथल वाला रहा है, किन्तु इस संस्था के छात्रों ने अपने आपको बड़ा संयमित रखा और पूरे वर्ष बड़ी नेकी के साथ संस्था और समाजकार्य किया। इसलिये ये विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

क्रीड़ा बनाम सिनेमा

प्राचार्य श्री शर्मा ने छात्रों से आग्रह किया कि इस वर्ष यह प्रतिज्ञा कर लें कि क्रीड़ा का समय सिनेमा हाऊस में नहीं बितायें, क्योंकि सिनेमा बुराइयों से भरा पड़ा है, और इसका परिणाम इन छात्रों पर बहुत बुरा पड़ता है। छात्रों ने विश्वास दिलाया कि वह इस वर्ष से मनोरंजन का साधन खेलों को बनायेंगे, सिनेमा को नहीं।

सर्वप्रथम प्राचार्य श्री पी० पी० शर्मा ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और राष्ट्रीय गीत का गान हुआ। अन्त में प्रसाद वितरण हुआ।

१५ अगस्त को स्वतन्त्रता-दिवस की धूम

१५ अगस्त १९७३ का राष्ट्रीय पुनीत पर्व रा० आयु- मनाया गया। प्रातः ८ बजे श्री सत्यप्रसाद निर्मो शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने ध्वजारोहण कर, उपस्थित जनता को सम्बोधित करते हुए राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बनने की अपील की। छात्रों में मिष्टान्न वितरित किया गया।

गुग्गुलु हृदय रोगों की अचूक दवा

वाराणसी, १० अगस्त (यु० न्यू०)। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के अनुसंधानकर्ताओं का दावा है कि वसा और पित्त के चयापचय के कारण पैदा होने वाले हृदय रोगों को देशी दवाइयां ठीक कर सकती हैं।

गुग्गुलू, रक्त जमाव वसा और पित्त को प्रभावकारी ढंग से कम कर देता है। रक्त शिराओं में एकत्र मज्जा को साफ करता है जिनके कारण दिल का दौरा पड़ता है।

संस्थान ने यह दावा भी किया है कि गुग्गुलू पित्त को नष्ट करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

स्वतंत्रता-दिवस पर नवीन राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय का उद्घाटन

सिकन्दरा राऊ १५ अगस्त। इस विकास क्षेत्र के आदर्श गांव वरईशाहपुर में आज नवीन राजकीय आ० चि० का उद्घाटन बड़ी धूमधाम के साथ क्षेत्र के वयोवृद्ध समाजसेवी एवं भूतपूर्व सरपंच श्री रामस्वरूप शर्मा द्वारा किया गया। सरपंच साहब ने अपने उद्घाटन भाषण में इस गांव में चिकित्सालय स्थापित कराने पर श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी, आयुर्वेद एवं यूनानी सेवा निदेशक उ० प्र० लखनऊ तथा क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी श्री प्रेमचन्द विश्नोई के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए उन्हें बधाई दी तथा उसे असहाय एवं निर्धन जनता के लिये जीवनरक्षक संस्था बताते हुए हर्ष प्रकट किया। उन्होंने यहां के युवकों को गांव के सर्वांगीण विकास में तेजी के साथ जुट जाने के लिए आह्वान किया।

गया में वैद्य सभा

गत दिनांक ५-९-७३ को अपराह्न ४ बजे स्थानीय रामा आयुर्वेदीय फार्मेसी ऊपरडिह, गया, के प्रांग में वाराणसेय सं० महाविद्यालय आयुर्वेद विभाग, रस - शास्त्र के रीडर कविराज सिद्धिनन्दन मिश्र की अध्यक्षता में गया के वैद्यों की एक 'आवश्यक गोष्ठी

का विशेष अधिवेशन करने का निर्णय किया गया। एतदर्थ एक स्वागत-समिति का गठन किया गया। सर्वसम्मति से निम्नांकित पदाधिकारी चुने गये। सर्वश्री कारूप्रसाद सिंह वैद्य-स्वागताध्यक्ष, श्री शिवपूजन त्रिपाठी उपस्वागताध्यक्ष, वैद्य प्रदीप नारायण प्रधान स्वागत मंत्री, हीरा पाठक स्वा० मंत्री, रघुवीर मिश्र प्र० मंत्री, वेदनाथ मिश्र कोषाध्यक्ष, तथा श्री पं० दारोगा मिश्र वैद्य, हरदेव पाठक, गंगाधर मिश्र अंशुमान शर्मा, सिद्धिनन्दन मिश्र, रामकुमार मिश्र, गिरिजानन्दन मिश्र, और गुप्ता जी सदस्य चुने गये।

वैद्यराज श्री मणिराम जी शर्मा के निधन पर विभिन्न स्थानों पर शोक-सभा एवं श्रद्धांजलि-अर्पण

दतिया। आज दिनांक २४-८-७३को अपराह्न ४-४५ बजे श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर, दतिया (म० प्र०) के प्रांगण में समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की एक शोक-सभा हुई जिसमें भारत-प्रसिद्ध आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान एवं यशस्वी चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कुलपति, पू० पू० प्रिन्सिपल हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय व आयुर्वेद विश्वभारती सरदार शहर (राज०) तथा संस्थापक धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ (राज०) वैद्यराज मणिराम जी शर्मा के आकस्मिक निधन पर असीम दुःख प्रकट करते हुए अनेक वक्ताओं ने स्व० श्री आचार्य जी के जीवन चरित का वर्णन किया तथा उनके प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए निम्नलिखित शोक-प्रस्ताव पारित किया गया।

शोक-प्रस्ताव

श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर दतिया (म० प्र०) कार्यालय के हम सभी अधिकारी एवं कर्मचारीगण परमपूज्य श्रद्धेय, आयुर्वेद के प्राण, यशस्वी चिकित्सक, आचार्य श्री मणिराम जी शर्मा के आकस्मिक निधन पर शोक एवं असीम दुःख प्रकट करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह स्व० श्री आचार्यजी की आत्मा को सद्‌गति प्रदान करे और उनके शोक-संतप्त परिवार तथा उनके शिष्यगणों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दे।

स्मरण रहे कि स्वर्गीय श्री आचार्य मणिराम जी शर्मा भारत-प्रसिद्ध औषधि-निर्माता प्रतिष्ठान श्री बैद्यनाथ रामनारायणजी शर्मा के आयुर्वेद गुरु थे। भारत भर में एक हजार से भी अधिक प्रतिष्ठित वैद्य उनके शिष्य हैं जो कि आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा जनता की बड़ी उत्तम सेवा कर रहे हैं। स्व० आचार्य जी ने लगभग ६० वर्ष तक आयुर्वेद अध्यापन एवं चिकित्सा द्वारा देश की महान सेवा की है। उन्होंने रतनगढ़ (राजस्थान) में धन्वन्तरि मन्दिर नाम से एक बहुत बड़ा आयुर्वेद शोध-संस्थान स्थापित किया है जिसमें समय-समय पर विभिन्न रोगों पर औषधियों का परीक्षण किया जाता है।

श्री गंगानगर (राज०)

भारत के ख्यातनामा आयुर्वेदज्ञ, श्रद्धेय, गुरुजी, विविध उपाधि से अलंकृत वैद्य मणिराम जी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, भिषगाचार्य, पीयूषपाणि के असामयिक स्वर्गवास (६-८-७३ को हुआ है) पर गहरा शोक प्रकट करते हुए विभागीय चिकित्सक सघ राजस्थान के सभापति वैद्य कृष्णदत्त शर्मा ने इसे भारतवर्ष के वैद्य समाज की, आयुर्वेद विज्ञान की अपूरणीय क्षति बताया। श्री शर्मा ने कहा है कि इनके स्वर्गवास से आयुर्वेद-जगत की एक ऐसी शृंखला समाप्त हो गयी जिसने करीब ७० वर्षों तक आयुर्वेद की कीर्तिपताका को फहराये रखा। वैद्य श्री मणिराम जी महाराज की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा बहुत ही बड़ी है। राजस्थान मे आयुर्वेद की शिष्य-परम्परा के सबसे बड़े जनक वैद्य श्री मणिराम जी महाराज ही रहे हैं।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति के रूप में, तथा रामगढ़ (शेखावाटी); रतनगढ़ (बीकानेर) से करीब अर्द्ध-शताब्दी तक आपने आयुर्वेद की शिक्षा दी एवं प्रिंसिपल पद को सुशोभित किया। श्री धन्वन्तरि मदिर (आतुरालय एवं अनुसन्धान संस्था रतनगढ़-बीकानेर वैद्य श्री मणिराम जी महाराज का जीता-जागता कीर्ति-स्तम्भ है। आपने 'रसेन्द्र चिन्तामणि' पर संस्कृत में टीका भी लिखी है।

• • •

श्री गुरुजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कृष्णदत्त शर्मा ने कहा है कि इस पवित्र आत्मा को भगवान सद्‌गति प्रदान करे तथा हमें आयुर्वेद के प्रति निष्ठापूर्वक कार्य करने की शक्ति प्रदान करे। हमलोगों को गुरुजी के जैसी आयुर्वेद के प्रति निष्ठा रखते हुए कार्य

सरदार शहर

श्री भंवरलाल दूंगढ़ आयुर्वेद विश्व-भारती के संचालकों, अध्यापकों तथा छात्रों की यह सभा आयुर्विज्ञान के प्रबल पोषक, भारतीयता के पुजारी, उच्च कोटि के विद्वान, हमारी आयुर्वेद विश्व-भारती के भूतपूर्व आचार्य तथा धन्वन्तरि मन्दिर, रतनगढ़ के संस्थापक श्री मणिराम जी महाराज के निधन पर अत्यन्त शोक प्रकट करती है और भगवान् धन्वन्तरि से प्रार्थना करती है कि वे उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति, शोकाकुल आयुर्वेद परिवार को धैर्य-धारण करने तथा उनके अधूरे कार्यों को पूरा करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र-पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र व धर्मार्थ औषधालय पटना १ में माह जून १९७३ में १००९ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। जिनमें २१४ नये रोगी और ७९५ पुराने रोगी थे।

फ्लू ज्वर ८५, चर्मरोग ७५, कर्णस्राव ३२, आमातिसार ८, प्रदर ५, शिरःशूल ३, कोष्ठबद्धता ६।

चिकित्सा पदा०
विश्वनाथ मिश्र
जी. ए. एम. एस. (पैट.)

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र-पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना द्वारा संचालित श्री बैद्यनाध धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र पटना १ में माह अगस्त १९७३ में ९४० रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। जिनमें २११ नये रोगी ७२९ पुराने रोगी थे।

इनफ्लूएंजा ५५, मुखपाक ७, कर्णस्राव और कर्णशूल १२, कास १५, आमातिसार ११, प्रवाहिका ५, दंतशूल ६, नेत्राभिष्यन्द ४, पक्षाघात ३, चर्मरोग १२, शिरःशूल १५, कोष्ठबद्धता २५, अर्श १०, रक्त प्रदर २०, विसूचिका ११।

चिकित्सा पदा०
विश्वनाथ मिश्र
जी. ए. एम. एस. (पैट.)

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, बाकर रोड, नागपुर में माह अगस्त, सन् १९७३ में ६१७८ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिसमें ६९९ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वर ९७, कास ४४, उदावर्त्त ५, श्वास ९, अतिसार १८, प्रतिश्याय ५१, उदर शूल ११, दन्त रोग ७, कर्ण रोग १२, वात व्याधि ५६, रक्ताल्पता ४, आम विकार ३९, कृमि १३, शोथ १, शीतपित्त ६, क्षुद्र कुष्ठ २, व्रण २४, दौर्बल्य ९१, मूत्राघात ७, दाह ५, मुखपाक १३, गलग्रंथि शोथ १, छर्दि (वमन) ४, मूत्र कृच्छ्र ६, अर्श २, अम्लपित्त ३३, पित्तविकार १, रक्त विकार ६, मन्दाग्नि १२, अभिघात १, शिरोभ्रम १, रक्त प्रदर ३३, कोष्ठबद्धता ५, विसर्प २८, अपबाहुक ३, गृध्रसी ३, यकृतोदर २, प्रमेह ३, कष्टार्तव १, अजीर्ण ८, स्वप्नमेह ४, संग्रहणी ३, प्रसूतिका विकार ६, गुदभ्रंश हिक्का १, अर्धावभेदक १, कामला २, विवर्चिका २, रजोवरोध ४, टॉन्सील २, मन्मथ ज्वर १, अंडकोष १।

श्री को सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय, स्वास्थ्य सेवाविभाग
आयुर्वेद चिकित्सालय, काठमांडू

२०३० साल श्रावण महिनो भर में हुए रोगियों की निशुल्क सेवा का विवरण :—

नया और पुरानागत रोगियों की कुल संख्या ४३२३

२०३० साल श्रावण महिनों भर में नि.शुल्क सेवा की गयी रोगियो की कुल संख्या—

पुरुष रोगियों की संख्या—
स्त्री ,, ,,
बालक ,, ,,

(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या
(२) शल्य-शालाक्य ,, ,,

पुनरागत रोगियों की सेवा-विवरण

पुनरागत रोगियों की संख्या—
(१) काय चिकित्सा के रोगियों की संख्या
(२) शल्य-शालाक्य ,, ,,

अन्तरंग विभाग के रोगियों के विवरण

अंतरंग विभाग के रोगियों की कुल संख्या
(१) गत मास के इस मास में अन्तरिम संख्या
(२) इस मास भर में प्रवेशिका—
(क) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करनेवालों की संख्या—
(ख) आंशिक ,, ,, ,,
(ग) स्वेच्छया से जानेवालों की संख्या

वनौषधि संबंधी सर्वाधिक उपयोगी पुस्तक

वनौषधि-शतक

लेखक :—
प्राणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा

निर्देशक :— श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०

अध्यक्ष :-
बिहार-राज्य आयुर्वेद-यूनानी अधिकाय,
पटना

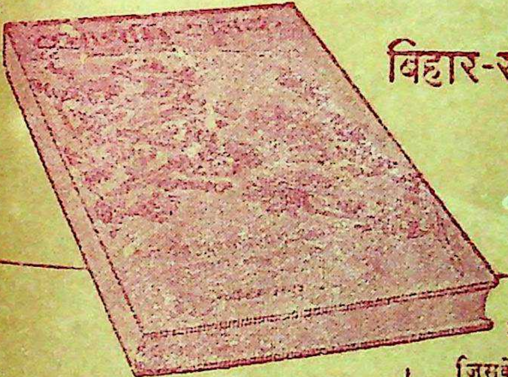

अब तक वनस्पति-सम्बन्धी ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं था, जिसके आधार पर चिकित्सक या सर्वसाधारणजन वनस्पतियों का स्वरूप, गुण-धर्म और रोगानुसार इसके उपयोग से लाभ उठा सकें। अतएव, वनस्पति-विशेषज्ञ वैद्य श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा ने जन-कल्याणार्थ प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें १०० वनौषधि के रंगीन और सादे चित्रों के साथ वनस्पति-परिचय, गुण-धर्म और रोगाणुसार उपयोगों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में है। यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्वानों, छात्रों चिकित्सकों एवं सर्वसाधारणजन के लिये बहुत उपयोगी है।

श्री **वैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

डबल डिमाई १६ पेजी, पृष्ठ संख्या २०८, सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र ५.०० है। पोस्टेज [illegible]

धिकारी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा शिव-[illegible] प्रेस, लोदीपुर, पटना — १ में मुद्रित [illegible]

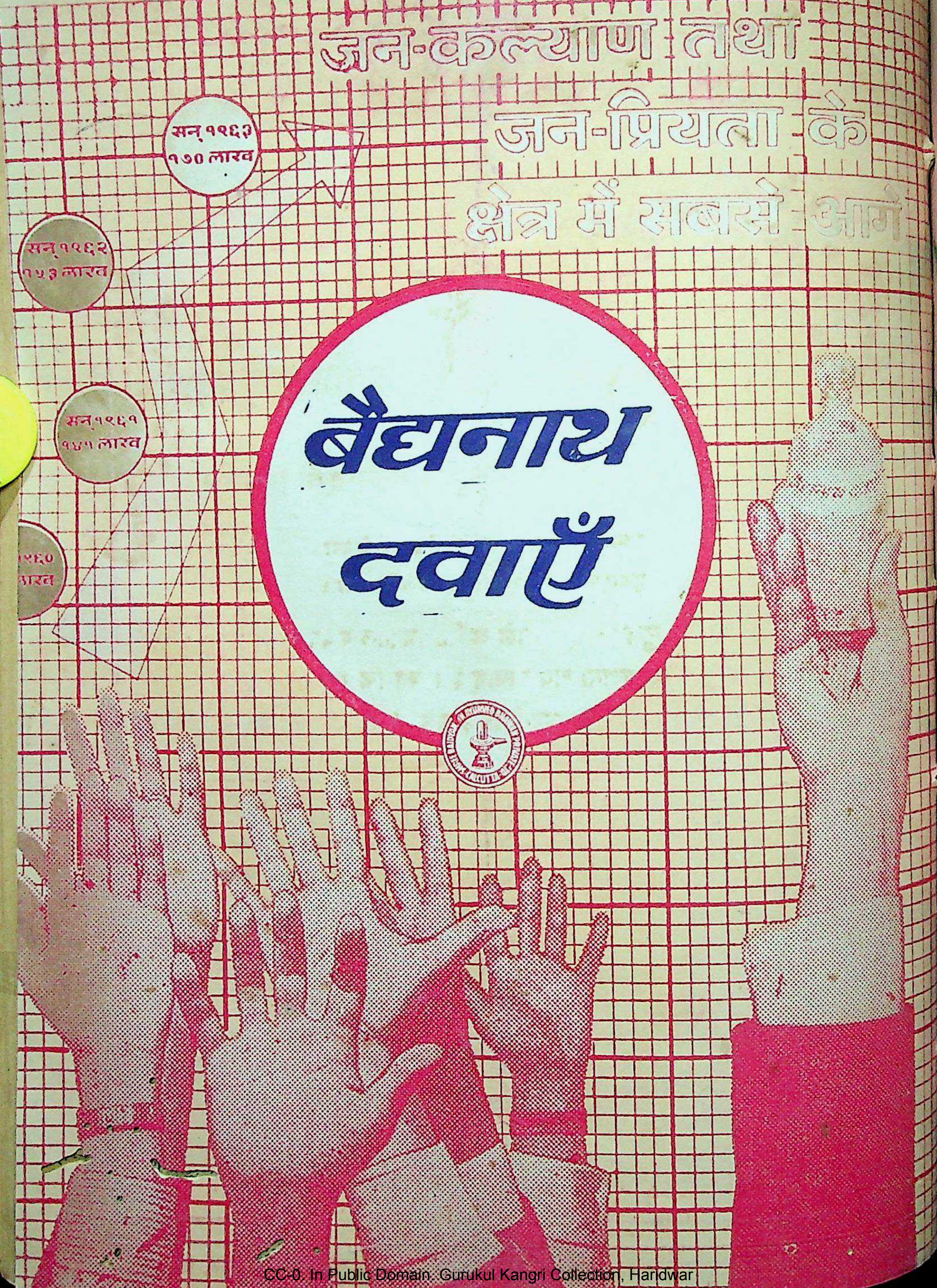
ज़न-कल्याण तथा
जन-प्रियता के
क्षेत्र में सबसे आगे
सन् १९६३ १७० लाख
सन् १९६२ १५३ लाख
सन् १९६१ १४१ लाख
१९६० लाख
बैद्यनाथ
दवाएँ

सचित्र आयुर्वेद

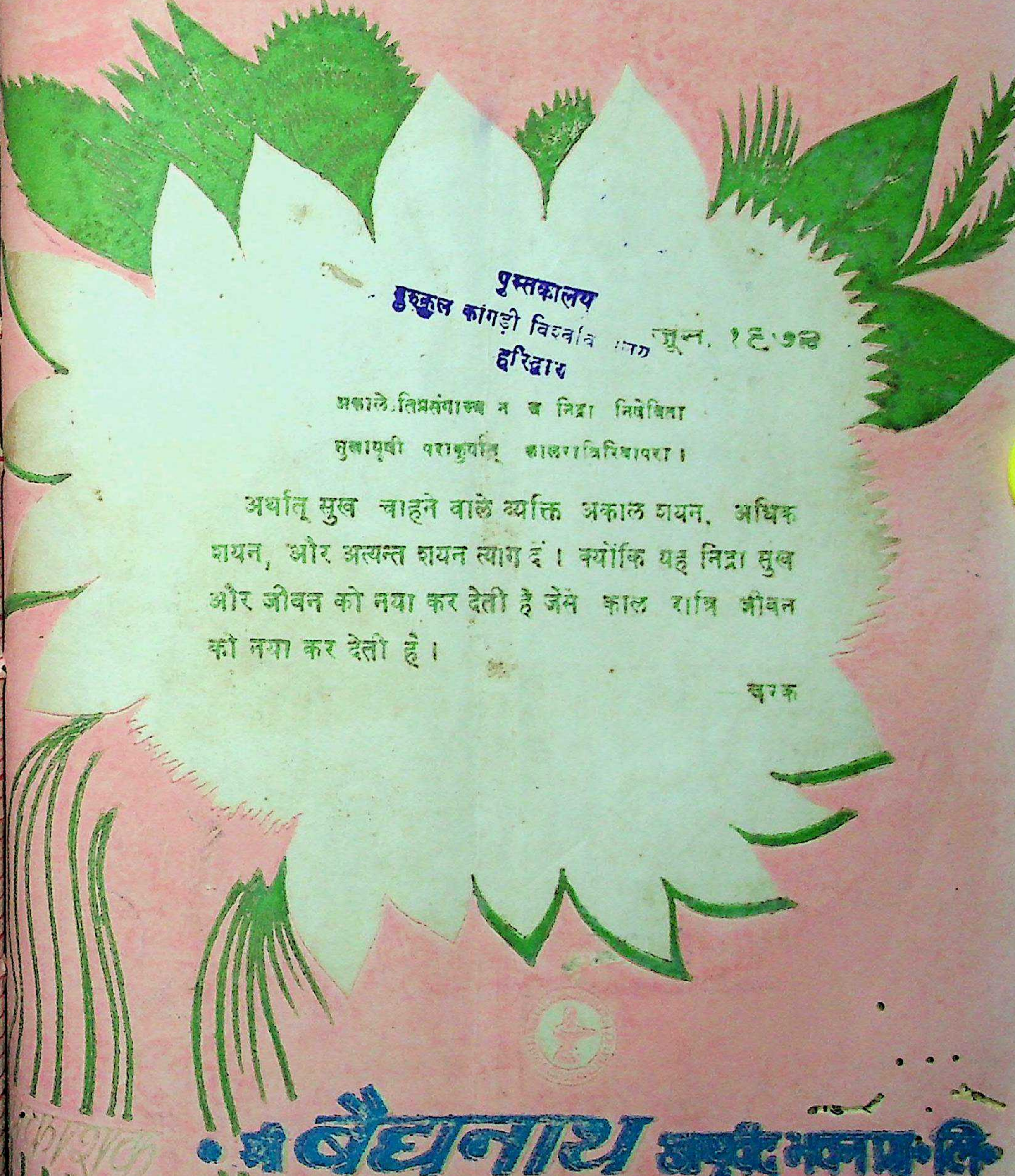

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

जून, १९७२

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रा निषेविता
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा ।

अर्थात् सुख चाहने वाले व्यक्ति अकाल शयन, अधिक शयन, और अत्यन्त शयन त्याग दें। क्योंकि यह निद्रा सुख और जीवन को नया कर देती है जैसे काल रात्रि जीवन को नया कर देती है।

चरक

प्रकाशक

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि.

रोड पटना-१

बैद्यनाथ
अशोकारिष्ट

स्त्रियों के स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं
सुखी जीवन के
लिए ....

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
कलकत्ता·पटना·झांसी·नागपुर·नैनी (इलाहाबाद)

'सचित्र आयुर्वेद' के प्रेमी ग्राहकों के लिये

आवश्यक-सूचना

यह सर्वविदित है कि इस समय जहां सभी चीजों की कीमतें आसमान छू रही हैं वहां कागज, स्याही, ब्लाक आदि मुद्रण-सामग्री एवं मजदूरी की दरों में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। जहाँ तक "सचित्र आयुर्वेद" के वार्षिक चन्दे का प्रश्न है—इसका वार्षिक चन्दा ५) जमाने से चला आ रहा है। अब इस अत्यल्प वार्षिक मूल्य पर ग्राहकों को "सचित्र आयुर्वेद" भेजना हमारे लिए सम्भव नहीं है। अतः इस महार्घता को देखते हुए अब जुलाई '७४ तदनुसार वर्ष २७ से "सचित्र आयुर्वेद" का वार्षिक शुल्क १०) कर दिया गया है। अब नये-पुराने सभी ग्राहक बनने के इच्छुक व्यक्ति ऊपर लिखे अनुसार ही ग्राहक शुल्क की रकम भेजें।

जहां तक उपरोक्त वार्षिक शुल्क में रियायत देने का प्रश्न है, चिकित्सकों, प्राध्यापकों एवं आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन में लीन अन्यान्य व्यक्तियों के लिए इसका रियायती वार्षिक शुल्क ७ रु० रखा गया है। हां, राजकीय आयुर्वेदिक औषधालयों के लिए एक साथ ५०० या इससे अधिक प्रतियों के मंगाने पर इसका विशेष रियायतो शुल्क मात्र ५) कर दिया गया है।

व्यवस्थापक
'सचित्र आयुर्वेद'
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-८००००१

चन्दा-समाप्ति सूचना

'सचित्र आयुर्वेद' का जून ७४ अंक आपके हाथों में है। मई ७४ के अंक में जुलाई ७४ से जो वार्षिक शुल्क-वृद्धि की सूचना छपी थी वह आपने पढ़ी ही होगी। जिन ग्राहकों का वार्षिक चन्दा जुलाई ७३ से जून ७४ के लिए जमा था, वह जून ७४ अंक मिलकर समाप्त हो जाता है। अगर आपका वार्षिक चन्दा जून ७४ अंक मिलकर समाप्त हो चुका हो तो आप शीघ्र ही १०) वार्षिक शुल्क मनिआर्डर से हमारे पास भेज दें। आप चाहें तो हम आपकी सेवा में वी० पी० से भी जुलाई ७४ अंक भेज सकते हैं परन्तु, वी० पी० शुल्क आपको ही देना पड़ जायेगा और इस प्रकार आपको कुल मिलाकर १२) वार्षिक शुल्क देने होंगे। अतएव मनिआर्डर द्वारा शीघ्र वार्षिक चन्दा भेज देना आपके लिये अधिक सुगम होगा। मनिआर्डर भेजते समय कृपया कूपन पर अपना स्पष्ट नाम, पता एवं ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कर दिया करें। अगर किसी विशेष परिस्थितिवश आप वार्षिक शुल्क भेजने में असमर्थ हों तो वैसी सूचना तत्काल ही कार्यालय को दे देने की कृपा करेंगे। आशा है आप हमारी उक्त प्रार्थना पर ध्यान देते हुए तत्काल उस पर अमल करेंगे।

व्यवस्थापक
"सचित्र आयुर्वेद"
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०
बैद्यनाथ भवन रोड पटना-१

'सचित्र आयुर्वेद' में विज्ञापन

विशेष विज्ञप्ति

'सचित्र आयुर्वेद'--आयुर्वेद-विज्ञान की महत्ता को विज्ञापित करने वाला सर्वप्रिय मासिक पत्र है। कविराज, वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त आयुर्वेद और स्वास्थ्य में अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति भी इसके पाठकों में हैं। देश-विदेश के चिकित्सा-शास्त्रियों तथा प्रतिष्ठानों ने इसकी प्रशंसा की है और अपना सक्रिय सहयोग दिया है।

अभी तक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा निर्मित औषधियों और प्रकाशनों के अतिरिक्त इस पत्र में किसी अन्य संस्थान के विज्ञापन स्थान नहीं पाते थे। किन्तु पत्र को और अधिक लोक-प्रिय तथा उपयोगी बनाने की दृष्टि से अब अन्य सभी संस्थानों के विज्ञापन भी ग्रहण करने का निश्चय किया गया है।

विज्ञापन-प्रकाशन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जायेगा।

(१) 'सचित्र आयुर्वेद' में अश्लील और भ्रमात्मक विज्ञापन नहीं छपेंगे।

(२) विज्ञापन का मैटर देखने के बाद ही विज्ञापन छापने की स्वीकृति दी जायेगी।

(३) स्वीकृत विज्ञापन संस्थानों द्वारा प्राप्त विज्ञापनों के सिवा अन्य सभी विज्ञापन पेशगी आये बिना नहीं छपेंगे।

(४) कभर के दूसरे, तीसरे तथा चौथे पेज पर पर बैद्यनाथ के ही विज्ञापन छपेंगे।

विशेष जानकारी के लिए विज्ञापन-सम्बन्धी विशेष नियमादि 'सचित्र आयुर्वेद' कार्यालय (विज्ञापन-विभाग) से मंगाकर देखें।

व्यवस्थापक
'सचित्र आयुर्वेद' (विज्ञापन विभाग)
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

संरक्षक :

आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

परामर्शदाता :

आयुर्वेद-वृहस्पति आचार्य रामरक्ष पाठक

संपादक :

श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	लेखक
आयुर्वेद-जीवन का शास्त्र :	७४९ :	श्री शिव शर्मा
न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित :	७५० :	
संपादकीय :	७५१ :	
गुरु लघु गुण-वीर्य :	७५३ :	वैद्य रणजितराय देसाई
उदर :	७५८ :	” ”
‘तमक श्वास-चिकित्सा समन्वय’’ :	७६१ :	डा० पी० एन० चतुर्वेदी डा० एम० आर० शाह डा० मृदुला एम० शाह
कवि बोपदेव और उनकी नैघण्टुक कृतियाँ :	७६५ :	कविराज राजेन्द्र प्रकाश आ० भटनागर
Asana and Bijaka :	७७२ :	Dr. M. C. Pandey
रोहीतक के याकृत कर्म का परीक्षण :	७८० :	श्री भृगुनाथ सिंह प्रियव्रत शर्मा
क्लीतक :	७८३ :	डा० कृष्ण प्रसाद मिश्र
हिमाचल प्रदेश और आयुर्वेद :	७८७ :	डा० प्रेमनाथ चतुर्वेदी वैद्य मायाराम उनियाल
बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल कीजिये :	७९० :	सुशीला देवी जैन
शोर-श्रवण-शक्ति के लिए हानिकर :	७९३ :	डा० वी० क्रिनोव
विषाणुओं के रहस्य :	७९५ :	निक्तोर ज्वानोल
सामयिक चर्चाएँ :	७९७ :	
पाठकों के पत्र :	७९९ :	
आयुर्वेद जगत :	८०० :	
लेख एवं लेखकों की त्रिवार्षिक—सूची :	८०७ :	

वार्षिक मूल्य ५ रु०]　　[एक प्रति ५० पै०

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामायमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

२६ वर्ष | पटना, जून १९७४ | अंक—१२

आयुर्वेद—जीवन का शास्त्र

देश में यह गलत धारणा फैलायी गयी है कि आयुर्वेद की औषधियां शीघ्र लाभ नहीं पहुंचातीं। विपरीत इसके सचाई यह है कि आज की वैज्ञानिक कही जानेवाली चिकित्सा जहां अपनी बड़ी-बड़ी औषधियां देकर असफल हो जाती हैं, वहीं आयुर्वेद की औषधियां चमत्कारिक आशुलाभकारी सिद्ध होती हैं। वस्तुतः आयुर्वेद जीवन का शास्त्र है, जनजीवन के साथ आयुर्वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है, आयुर्वेद के बताए हुए ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, दिनचर्या एवं आहार-विहार आदि नियमों का मानव पालन करे तो औषधि की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। भारतीयों के स्वास्थ्य का एक मात्र रक्षक आयुर्वेद है किन्तु दुर्भाग्य से शासन ने इसका आज तक जो उपयोग लेना चाहिए वह लिया नहीं।

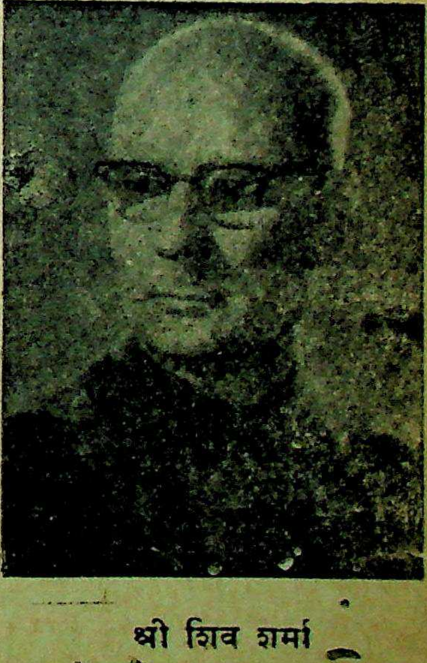

श्री शिव शर्मा

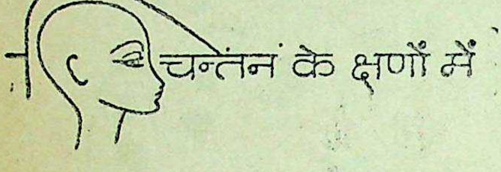

न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित

भारतीय संस्कृति भौतिक उन्नति के विरुद्ध नहीं है। हमारे छह दर्शनों में एक दर्शन का नाम है—वैशेषिक दर्शन। वैशेषिक दर्शन में एक वाक्य आया है : यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। यहां अभ्युदय शब्द का अर्थ है, भौतिक उन्नति और "निःश्रेयस" का मोक्ष-प्राप्ति। किन्तु आज निःश्रेयस को छोड़कर केवल अभ्युदय पर ध्यान केन्द्रित हो गया है, जिससे कल्याण नहीं हो सकता। इसी कारण रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, आदि अनेक सामाजिक पापों का उदय हुआ है। पैसे का स्थान ईश्वर से भी ऊंचा हो गया है। ईश्वर के सम्बन्ध में तो दो मत हैं : एक मत ईश्वरवादी है और दूसरा निरीश्वरवादी। कुछ आस्तिक हैं, तो कुछ नास्तिक। किन्तु पैसों के सम्बन्ध में कोई नास्तिक नहीं है।

मैं भौतिक उन्नति के विरुद्ध नहीं हूं। किन्तु धर्मविहीन अर्थ और उस अर्थ द्वारा काम की सन्तुष्टि व्यक्ति और समाज को जर्जर बना देते हैं, मानव सच्चा मानव नहीं रहता। स्वामी विवेकानन्द बार-बार एक प्रश्न पूछते थे "क्या तुम मनुष्य हो ?" इस प्रश्न में सभी कुछ आ जाता था। ऐसे सच्चे मनुष्य के लिए हजारों वर्ष पहले महाभारत में कहा गया था : न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित।

अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथ ने एक बार कहा था : Wealth accumulates and men decay यही बात फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्यकार रोमांरोलां ने कही : The more I have the less I am. हमारी उपनिषदों में हजारों वर्ष पहले कहा गया था—न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

सम्पादकीय

चेचक उन्मूलन-आज भी एक चुनौती

भारत सरीखे गृष्म प्रधान देश में वसन्त ऋतु के पश्चात् प्राय: प्रति-वर्ष चेचक या शीतला का प्रकोप होता है, और इस महामारी के लाखो की संख्या में लोग शिकार होते हैं।

जैसा कि सभी लोग जानते हैं, यह एक संक्रामक रोग है जो वेरियोलावायरस नामक अति सूक्ष्म विषाणुओं से उत्पन्न होता है। चेचक के बचाव का केवल मात्र उपाय टीका लगवाना ही है। टीके के द्वारा हमारे शरीर में जीवाणुओं के अतिक्रमण को रोकने की अस्थायी क्षमता आ जाती है। बच्चे को उसके जन्म के ८ दिन के भीतर निश्चित रूप से टीका लगवा लेना चाहिए और किसी भी हालत में पहला टीका लगवाने में ३ माह से अधिक का विलम्ब नहीं करना चाहिए।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, इस देश की जनता में चेचक या शीतला के सम्बन्ध में धार्मिक भावना जुड़ी हुई है और लोग इसे 'माता का प्रसाद' समझकर ग्रहण करते और कोई भी उपचार करना पसन्द नहीं करते। यह सचाई है कि इस देश के नागरिक इस रोग के उन्मूलन में टीका लगवाकर अथवा चेचक के रोगी की तुरन्त सूचना देकर चिकित्सा व स्वास्थ्य विभाग को सक्रिय सहयोग नहीं दे पाते। आज भी ग्रामीण जनता इस रोग से बचाव के एक मात्र टीका लगवाने के प्रति उदासीन ही है। रोग से पीड़ित होने पर रोगी के परिवार वाले भी अस्पताल या डिस्पेन्सरी में सूचना नहीं देते और इस प्रकार पूरे गांव को जोखिम में डालते हैं। यद्यपि टीके को सहर्ष स्वीकार करनेवालों की संख्या बढ़ी है, परन्तु चेचक से आक्रान्त रोगी की तुरन्त सूचना देने में अपेक्षित जागृति नहीं आयी है। इस दिशा में समुचित जागृति लाने की अपेक्षा है।

यहाँ यह उल्लेख करना शायद अप्रासंगिक न होगा कि सम्प्रति विश्व के केवल ७ देशों, जैसे भारत, पाकिस्तान, बंगला देश, नेपाल, अफगानिस्तान, इथोपिया व सूडान—में चेचक का प्रकोप होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार जनवरी से सितम्बर १९७२ तक इन देशों में कुल ५३१०२ चेचक के रोगी दर्ज किए गए, जो उन देशों की आबादी को दृष्टि में रखते हुए ४२ प्रतिशत है। संसार के अन्य देशों में इस बीमारी पर काबू पा लिया गया है। थोड़ी सतर्कता बरती जाय एवं भारतीय जनता के दृष्टिकोण में बुनियादी रूप से परिवर्त्तन लाया जाए तो इस देश में भी चेचक पर काबू पाया जा सकता है। दुनिया के अन्य विकसित देशों की मिसाल को सामने रखते हुए इस विशाल देश में भी चेचक उन्मूलन का देशव्यापी अभियान प्रशासनिक स्तर पर चल रहा है अवश्य, किन्तु अभी इसमें आंशिक सफलता ही प्राप्त हो सकी है; उसमें बहुत कुछ बाधक इस देश की मध्ययुगीन भावना भी है। इस भावना का उन्मूलन चेचक रोग के नियंत्रण की दिशा में एक आवश्यक कदम होगा। विश्व स्वास्थ्य संघटन भी इस दिशा में प्रयत्नशील है और यह एक महत्त्व की बात है कि उसने सभी देशों की सरकारों के सहयोग से इस भयंकर व्याधि के उन्मूलन का बीड़ा उठाया है—और १९७४-७५ तक इस रोग के उन्मूलन के लक्ष्य को सामने रखा गया है। भविष्य ही बतायेगा कि भारत के चेचक उन्मूलन-अभियान में विश्व स्वास्थ्य संघ किस हद तक कामयाबी की मंजिल तक पहुंच सकेगा।

'सचित्र आयुर्वेद' की शुल्क-वृद्धि

'सचित्र आयुर्वेद' के कृपालु पाठकों की सेवा में यह सखेद निवेदन करना पड़ रहा है कि कागज, मुद्रण एवं ब्लाक-सम्बन्धी व्यय में सम्प्रति इतनी बढ़ोतरी हो गयी है कि व्यवस्था केलिए अब ५) रु० वार्षिक शुल्क पर ही 'सचित्र आयुर्वेद' दे सकना सर्वथा कठिन हो गया है। इधर डाक विभाग द्वारा पोस्टेज, रजिस्ट्रेशन आदि में भी बेहद वृद्धि हो गयी है। ऐसी स्थिति में मंहगाई अन्य परिस्थितियों से मजबूर होकर 'सचित्र आयुर्वेद'

का वार्षिक शुल्क १० रु० तथा एक प्रति का मूल्य १ रु० आगामी जुलाई, ७४ से निर्धारित किया गया है। यों इस पत्र का उद्देश्य मुनाफा कमाना कभी नहीं रहा और आयुर्वेद-प्रचार को दृष्टिगत करते हुए अभीतक व्यवस्था ५) रु० मात्र पर ही 'सचित्र आयुर्वेद' का प्रकाशन करके प्रतिवर्ष लगभग एक लाख रु० के घाटे को बर्दाश्त करती रही; किन्तु निरन्तर बढ़ती हुई मंहगाई के कारण अब 'सचित्र आयुर्वेद' के वार्षिक मूल्य में वृद्धि करने के लिए व्यवस्था विवश हो गयी है। व्यवस्था के समक्ष लाचारी आ गयी। आशा है, वर्तमान परिस्थिति का ध्यान रखते हुए 'सचित्र आयुर्वेद' के कृपालु पाठक हमें पूर्ववत् सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के निदेशक, अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महामन्त्री, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्र० शर्मा, जी गत २५ अप्रेल, ७४ को दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों (यथा, थाईलैंड, सिंगापुर, फिलीपाइन्स, जापान प्रभृति) की मास व्यापी यात्रा पर गए थे, गत २६ मई को सानन्द पटना वापस लौटे। श्री शर्मा जी की इस यात्रा का उद्देश्य दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में आयुर्वेद औषधि-द्रव्यों के निर्यात के लिए सम्भावित क्षेत्रों का विशेष अध्ययन ही था। श्री शर्मा जी को अपने उद्देश्यों में पर्याप्त सफलता मिली है। ईश्वर उत्तरोत्तर उनके उद्देश्यों को सत्य-सिद्ध करे—यही कामना है।

—सम्पादक

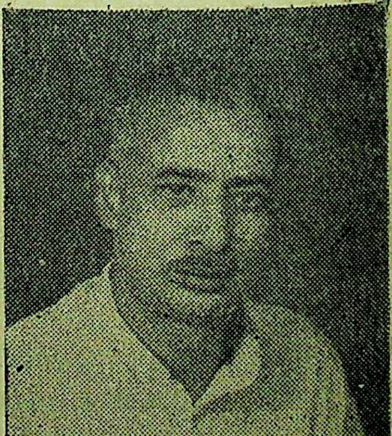

गुरु-लघु गुण-वीर्य

वैद्य रणजित राय देसाई

गुणों और वीर्यों की अनुमान-गम्यता—

गुरु और लघु इन गुणों तथा वीर्यों का परिचय कराने वाली जानकारी संहिताओं में यत्र-तत्र विकीर्ण है। उसे एक स्थान पर लाना एवं कालोचित नई दृष्टि से उसे समझने का प्रयास करना इन पंक्तियों का प्रयोजन है। अन्य गुण-वीर्यों को समझने की दिशा भी इससे प्रशस्त होगी।

आरम्भ में ही यह समझ लेना आवश्यक है कि द्रव्यों के रस जिस प्रकार रसना-द्वारा प्रत्यक्षगम्य हैं अथवा यह पत्र जिस पर यह लेख लिखा जा रहा है एवं लेखनी जिसके द्वारा ये पंक्तियां लेख-बद्ध की जा रही हैं उनके समान गुण-वीर्य (विपाक तथा प्रभाव भी) प्रत्यक्षगम्य नहीं है। एकांग अथवा सर्वांगपर आहार-द्रव्यों, औषध-द्रव्यों एवं वात-प्रभृति शारीर द्रव्यों के कर्म देखकर ही उनमें स्थित तत्-तत् गुण या वीर्य के होने की कल्पना, अनुमान या निर्धारण होता है।

एक-दो उदाहरणों से इस वस्तु को समझने का प्रयास करें।

अनुमान-गम्यता के उदाहरण— सर्वांगशैत्य तथा उसके कारण हुई हृदय और नाड़ी की गति की मन्दता में पादतल पर अथवा आवश्यकता हो तो सर्वांग पर शुंठी-चूर्ण का उद्वर्तन (मर्दन, घर्षण) लोक-व्यवहार-सिद्ध है। इससे शरीर में उष्णता के पुनरुद्भव को देखकर अनुमान होता है कि शुंठी में कोई शक्ति है जो शरीर में उष्णता की उत्पत्ति करती है। इसे उष्णवीर्य संज्ञा देते हुए माना गया कि शुंठी उष्ण-वीर्य द्रव्य है।

उदर में दाह, पाक और शूल, विशेषतया ऐसा शूल जिसमें भोजनोत्तर वृद्धि हो तो उसके शमनार्थ दुग्ध का-सितोपला-मिश्रित हो तो अधिक उत्तम—मुहुर्मुहुः सेवन कराया जाता है। इससे दाह-प्रभृति लक्षणों की सद्यः शांति होती है। इससे अनुमान किया जाता है कि दुग्ध एवं सितोपला (मिश्री) में दाह-जनक उष्ण गुण-विरोधी कोई कर्म-शक्ति है जो उदर आदि अवयवों में हुए दाह का प्रशमन करती है। इसे शीत गुण नामाभिधान देकर इन द्रव्यों में शीत गुण होता है, यह कल्पना की गयी।

अग्नि मन्द हो और उसके कारण क्षुधानाश, अजीर्ण, कोष्ठगत वात (गैस) आदि विकार हों तो भोजन के पूर्व लवणार्द्रक-सेवन कराया जाता है। उससे अग्नि की दीप्ति होती है तथा क्षुधा-नाश, अरुचि आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं। इससे इस अनुमान पर आया जाता है कि आर्द्रक तथा लवण में कोई ऐसी द्रव्य-शक्ति है जो अग्नि का दीपन और पाचन करती है। इसे तीक्ष्ण यह संज्ञा दी गयी तथा इन द्रव्यों में तीक्ष्ण वीर्य है इस सिद्धान्त की स्थापना की गयी।

यही स्थिति अन्य आहारौषध-द्रव्यों, दोषादि शारीर द्रव्यों, विहारों, देशों एवं कालों में स्थित गुण, वीर्य आदि कर्म-शक्तियों के ज्ञान के विषय में भी समझनी चाहिए।

दोषों के गुण—प्रत्येक दोष के अमुक-अमुक गुण पूर्वाचार्यों ने संहिताओं में लिखे हैं। दोषों के ये गुण शरीर में उनकी वृद्धि होने पर ही अभिव्यक्त होते हैं और तभी उनका परिज्ञान अनुमान प्रमाण द्वारा होना संभव होता है। उदाहरणतया—

वायु की वृद्धि होने पर त्वचा आदि में रूक्षता, शीतता, शरीरावयवों में कंपन आक्षेपादि के रूप में चलत्व आदि लक्षण उत्पन्न हुए देखकर वायु में रूक्ष (रौक्ष्य), शीत (शैत्य), चल आदि गुण हैं, यह कल्पना की गयी।

कफ की वृद्धि होने पर चेष्टा, अग्नि, बुद्धि, रस-रक्त के संवहन आदि में मन्दता; त्वचा, मुख आदि में चिक्कणता, मुख में माधुर्य, शरीर में शीतता आदि विकृतियां दृग्गत होती हैं। इन्हें देख कर अनुमान किया जाता है कि कफ में इन कर्मों की उत्पादक कर्म-शक्तियां

है। इनका निरूपण मन्द, पिच्छिल, मधुर, शीत आदि गुणों के रूप में किया गया।

पित्त प्रकुपित होने पर अग्नि की तीक्ष्णता, स्वभाव में उग्रता, दाह, मुख में अम्लता आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इन परिणामों को लक्ष्य में रखते हुए पित्त में तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल आदि धर्मों का स्वीकार किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा, दोषों के गुण-धर्मों की अभिव्यक्ति उनका प्रकोप होने पर ही हुआ करती है, स्वस्थावस्था में प्रत्येक दोष शेष दो दोषों को अभिभूत किए रखता है—दबाए रखता हैं। अन्य शब्दों में उन्हें समावस्था में रखता है। यह किस प्रकार होता है, यह संक्षेप में देख लें :

दोषों के जो गुण शास्त्रकारों ने लिखे हैं उन में कुछ-कुछ गुण इतर दो दोषों से विपरीत स्वभाववाले अथच विपरीत क्रिया करने वाले होते हैं। इस परस्पर वैपरीत्य का परिणाम यह होता है कि प्रत्येक दोष अपने अन्य दोषों के विपरीत गुण-कर्मों के योग से अन्य दोषों को दबाए रखता है। यथा, कफ तथा वायु में शीत गुण तथा पित्तमें उष्ण-तीक्ष्ण गुण हैं। सो शीत गुण द्वारा पित्त के उष्ण-तीक्ष्ण की तथा पित्त के उष्ण-तीक्ष्ण गुणों द्वारा कफ और वायु के शीत गुण की वृद्धि नहीं होने पाती। इसी प्रकार दोषों के इतर गुणों के विषय में भी समझ लेना चाहिए। स्वस्थावस्था में, अर्थात् प्रत्येक दोष का प्रत्येक गुण अपने प्राकृत प्रमाण में हो तो ये दोष समावस्था में रहते हैं। अपनी वृद्धि के निदानानुसार किसी दोष के एक, अनेक अथवा सभी गुणों की वृद्धि हो जाए इस स्थिति का अर्थ यह हुआ करता है कि अन्य दोषों के विरोधी गुणों-की मात्रा इतनी नहीं थी कि निदानानुसार प्रकुपित होने वाले दोष की वृद्धि का मुकाबला कर सकें।

द्रव्य आदि में स्थित गुण-वीर्य (विपाक और प्रभाव भी) कर्मानुमेय होते हैं, यह ऊपर कहा है। इस विषय मे आचार्य सुश्रुत का निम्न वचन प्रख्यात है—**कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नाना-द्रव्याश्रया गुणाः**—सु० सू० ४६।५१४।

गुण-वीर्य में भेद

आचार्यों ने गुणों के जो प्रकार कहे हैं उन्हीं में से कुछ की गणना वीर्यों में की है। ये वीर्य आठ हैं—शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष, विशद-पिच्छिल, मृदु-तीक्ष्ण (सु० सू० ४०।५)। चरक तथा वाग्भट ने वीर्यों की सूची में विशद-पिच्छिल के स्थान पर गुरु-लघु का समावेश करते हुए निम्न आठ की वीर्यों में गणना की है—मृदु-तीक्ष्ण, गुरु-लघु, स्निग्ध-रूक्ष, उष्ण-शीत (च० सू० २६।६४, अ० हृ० सू० ९।१२)।

सामान्यतया स्थिति यह होती है कि द्रव्यों के गुण, वीर्य, विपाक (प्रभाव नहीं) की क्रिया उनके रस के सदृश ही हुआ करती है। अतः तंत्रकारों ने कई द्रव्यों के केवल रस का निर्देश किया है। ऐसे द्रव्यों की गुण आदि द्रव्य-शक्तियों का परिज्ञान रसों को देख कर ही कर लेने का उपदेश पूर्वाचार्यों ने किया है। यथा, चरक कहते हैं—**तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुण संग्रह :**—च० सू० २६।४६। परन्तु—

किसी द्रव्य का वीर्य रस के विपरीत हो तो वह वीर्य रस को दबा कर अपने कर्म करता है। यथा, सुश्रुत ने कहा है—**एतानि वीर्याणि स्वबल गुणोत्कर्षात्र समभिभूयात्मकर्मकुर्वन्ति**—सु० सू० ४०।५।

इस वचन के आधार पर गुणों और वीर्यों की परस्पर भिन्नता भी समझी जा सकती है। यों तो समान संज्ञा (नाम) वाले गुणों और वीर्यों के कर्म परस्पर सदृश ही हुआ करते हैं, परन्तु गुणों में अधिक।

अन्य दृष्टि से विचार करें तो आहार-द्रव्य जिनमें रस का प्राधान्य होता है उनमें शीत-उष्ण आदि द्रव्य-शक्तियों की क्रिया स्वल्प होने से उनमें स्थित शीत-उष्ण प्रभृति द्रव्य-शक्तियों को **गुण** कहा जाता है। परन्तु औषध-द्रव्यों में स्थित शीत-उष्ण आदि शक्तियों की क्रिया अधिक बलवती होने के कारण उनमें स्थित शीत-उष्ण आदि शक्तियों को **वीर्य** कहा जाता है।

द्रव्यों के इस प्रकार दो भेदों का निर्देश चक्रपाणिदत्त ने अपनी चरक-टीका में किया है। उनका वचन है—**द्रव्यं वावद्धिविधं, वीर्य प्रधानमौषध द्रव्यं तथा रस प्रधानमाहार द्रव्यं च**—च० सू० २/१७ पर।

गुणों और वीर्यों के विषय में अब तक किए विवेच में इतनी सामग्री एकत्र हो गयी है कि उसके आधार पर एक अन्य दिशा में गुरु-लघु इन गुण-वीर्यों पर विचार

किया जा सके। आगे प्रस्तुत सामग्री के निर्देश का प्रयोजन यह है कि आयुर्वेद के विभिन्न क्षेत्रों में इनकी क्रिया को देखते हुए उन्हें विभिन्न विशेषण दिए जाएं तो इस वर्गीकरण से इनका स्वरूप अधिक विशद हो सकेगा।

गुरु-लघु गुण-वार्यों के विविध रूप

१. **भौतिक गुण**—द्रव्य गुण विज्ञान के प्रकरणों में पृथ्वी और अपधातु को गुरु तथा शेष भूतों को लघु कह कर उनका तथा उनकी प्रधानता वाले द्रव्यों का यह स्वभाव बताया है कि गुरु पदार्थ अधोगमनशील तथा लघु पदार्थ ऊर्ध्वगमनशील होते हैं। निश्चित ही इस अर्थ में प्रयुक्त गुण-लघु शब्द द्रव्यों के पांचभौतिक स्वरूप के परिचायक हैं। इस अर्थ मे इन्हें द्रव्यों के भौतिक गुण (फिजिकल प्रॉपर्टीज) कहा जा सकता है। इनका औषधीय उपयोग भी होता है। यथा, ज्वर के आरम्भ में '**वसनं गुरु सूक्ष्मपेशलम**' गुरु, सूक्ष्म (पतला) तथा खर न हो ऐसे वस्त्र से रुग्ण को आवृत्त कर निवात्गृह में रखना चाहिए, जिससे उसे प्रस्वेद आता रहे। बालक को स्वेद करना प्राप्त हो तो हाथ उष्ण कर उसके उदर आदि स्वेद्य अवयवों पर हलके-हलके रखते रहना चाहिए। प्राकृत वायु के कारण शरीर के हस्त-पादादि बाह्य अवयवों में अथवा हृदय, धमनी, महास्रोत आदि अन्तरवयवों में विविध चेष्टाएँ हुआ करती हैं। इनका कारणभूत वायु का चल गुण है, यह अनुमान किया जाता है। यह भी एक भौतिक गुण (फिजिकल प्रॉपर्टी) है। अथवा, नव्य-प्रत्यक्षानुसार अन्तर्बाह्य चेष्टाओं का कारण नाड़ी-तत्र (नर्वस सिस्टम) हुआ करता है। इस नाड़ी-तन्त्र की क्रियाओं के मूल में एसिटिल कोलीन आदि रासायनिक द्रव्य होते हैं। अतः इन चेष्टाओं के मूल में स्थित चल गुण को रासायनिक गुग (केमिकल प्रॉपर्टी) भी कहा जा सकता है।

२. **रासायनिक गुण**—इस गुण का कुछ परिचय ऊपर दिया गया है। इस गणना में विशेष तो जाठराग्नि और धात्वग्नियों के नाम से आयुर्वेद में प्रसिद्ध उन द्रव्यों का समावेश होता है जो आहार-द्रव्यो को रुपान्तरित करने की क्रिया करते हैं। इनमें विभिन्न एन्जाइम, हॉर्मोन तथा जिनकी गणना इन द्रव्यों में नहीं होती उन लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) एवं याकृत पित्त (बाइल) का अन्तर्भाव होता है। इन्हें रासायनिक गुण (केमीकल प्रॉपर्टीज) कहा जा सकता है। संहितोक्त तीक्ष्ण-उष्ण गुण-वीर्य इस प्रकार के अन्तर्गत हैं। इन गुण-वीर्यों के विरोधी मन्द शीत गुण-वीर्य क्रमशः तीक्ष्ण एवं उष्ण गुण-वीर्यों की क्षीणता के ही प्रकारान्तर तथा नामान्तर हैं। अतः इन्हें भी रासायनिक गुण ही कहा जा सकता है।

३. **रचनात्मक गुण**—अस्थियों की कठिनता, यकृत-प्लीहा की घनता, फुप्फुसों की मृदुता (स्थितिस्थापकता, इलेस्टिसिटी), विभिन्न शरीरावयवों की शुषिरता आदि गुणों को रचनात्मक गुण (एनेटॉमिकल, स्ट्रक्चरल या ऑर्गेनिक प्रॉपर्टीज) कह सकते हैं। इनके प्राकृत कर्म सुविदित हैं।

४. **कर्मात्मक गुण**—प्रत्येक दोष का प्रत्येक गुण समावस्था में रहता हुआ अपने शास्त्रोक्त प्राकृत कर्म किया करता है। इन गुणों को उनके कर्मात्मक गुण (फिजियोलॉजिक या फंक्शनल प्रॉपर्टीज) कह सकते हैं।

समावस्था में शरीर में रहते हुए गुरु गुण से शरीर के पृथक-पृथक अवयव एवं अन्ततः समग्र शरीर में अमुक ऊंचाई तथा भार (गुरुता) रहा करते हैं। जिन वातिक या पैत्तिक प्रकृति वाले पुरुषों का भार न्यून होता है उनमें लघु-गुण का प्रकर्ष होता है।

मन में गुरु और लघु गुण समावस्था में रहते हुए उसके प्राकृत कर्म सुस्थिति में कराते हैं। आहार-विहारादि के वैषम्य से शरीर के साथ मन में भी गौरव, अवसाद (सुस्ती), आलस्य, अनुत्साह आदि विकृतियों का आविर्भाव होता है।

५. **विकारात्मक गुण**—इस विवेचन से सहज ही समझा जा सकता है कि विशेषतः दोषों के गुण विषम हो जाए—उनकी वृद्धि या क्षय हो जाय—तो जिस गुण की वृद्धि या क्षीणता जितनी मात्रा में हुई हो उतनी मात्रा में उसके कर्मों की वृद्धि या क्षय होकर तत्तत् विकार उत्पन्न होते हैं। शास्त्र में इनका सविस्तार प्रतिपादन होने से इनके विषय में अधिक निरुपण निष्प्रयोजन है।

दोषादि के गुणों को इस स्थिति में विकारात्मक गुण (पैथोलाजिकल या क्लिनिकल प्रॉपर्टीज) कह सकते हैं। ऊपर निर्दिष्ट गुरु-लघु गुण वृद्धि या क्षय को प्राप्त होकर शरीर एवं मन में गौरव, अवसाद आदि उत्पन्न करें तो उस दशा में इन्हें इसी कोटि में से सन्निविष्ट करना होगा।

आधुनिकों ने प्राकृत स्थिति में प्रत्येक शरीर[illegible]व के

भार तथा कितनी ऊँचाई हो तो सर्वांग का कितना भार होना चाहिए इसका अन्वेषण-पूर्वक निरुपण किया है।

६-७—संस्कार एवं मात्रा से गौरव-लाघव—स्वस्थवृत्त के भोजन-संबंधी प्रकरण में कहा गया है कि गुरु भी द्रव्य का मात्रावत् सेवन किया जाए तो वह लघु ही सिद्ध होता है। इसके विपरीत लघु भी द्रव्य का अतियोग किया जाए तो वह गुरु सिद्ध होता है।

मूत्र में माधुर्य जिन प्रमेहों में होता है वे मात्रा-गुरु द्रव्यों के अतियोग से होनेवाली विकृति के उत्तम उदाहरण हैं। प्रायः तथाकथित मधुमेह-पीड़ित रूग्णों का इतिहास जानने से विदित होता है कि उनके आहार में मधुर (मधुर रसात्मक शर्करा प्रभृति एवं मधुर विपाकात्मक आलू, चावल आदि) का परिवर्जन, भ्रमण (आयुर्वेद का अध्वा) आदि लघु व्यायाम तथा मेथी, करेला जैसे तिक्त द्रव्यों के सेवन से मूत्र और रस-रक्त में मधुरता की मात्रा सप्रमाण हो जाती है। इससे अनुमान होता है कि इन रूग्णों में शरीर-माधुर्य (ब्लड-शुगर) तथा मूत्र माधुर्य का कारण कफप्रकोपक (उनमें भी मधुर द्रव्यों का अतियोग ही था। आयुर्वेद में इन्हें इक्षुमेह (इक्षुवालिकामेह) तथा शीतमेह संज्ञा दी गयी हैं। ऐलोपैथी में इसे 'एलीमेण्टरी ग्लायकोस्यूरिया' कहा जाता है।

इस रोग में रोगी मधुर द्रव्यों का अतियोग करे तो अग्न्याशय (यहां पेन्क्रियाज के इन्स्युलीन उत्पन्न करनेवाले प्रदेश—आइलेट्स ऑफ लेंगरहेन्स) अधिक मात्रा में इन्सुलीन उत्पन्न कर मधुर द्रव्यों के अतियोग का प्रतिकार करने का प्रयास करते हैं। परन्तु उनकी कर्म-शक्ति की भी अन्त को इयत्ता (मर्यादा, सीमा) होती है। परिणामतया, आतुर मधुर द्रव्यों का अतियोग चालू ही रखे तो अग्याशय हार जाता है—वह अधिक मात्रा में इन्स्युलीन उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है। अन्य शब्दों में रूग्ण असाध्यप्रायः और स्थायी मधुमेह (डायाबिटीज मेलीटस) का शिकार हो जाता है। प्रकरण की दृष्टि से विचार करें तो इन रूग्णों में मधुर द्रव्य आरंभ में लघु-सदृश स्थिति में रहते थे। दीर्घ काल तक इनके सेवन के परिणामवश वे दुर्जर (दुष्पच) एवं गुरु हो जाते हैं।

८. संस्कारज गुण—संस्कार का अर्थ है राँधने वगैरह की क्रिया। संस्कार की परिभाषा ही यह है कि इससे 'गुणान्तराधान' अर्थात् अन्य गुण की उत्पत्ति होती है। चरकाचार्य ने इसके उदाहरण देते हुए कहा है व्रीहि गुरु होता है परन्तु उसकी खील (प्लाज) बना दी जाय तो वह लघु हो जाती है। सक्तु गुरु होता है परन्तु उसे अग्निपक्व कर पिण्ड बनाया जाए तो वह लघु हो जाता है (देखिए: च० सू० २७/३३७; अथवा, शिम्बीधान्य निस्तुष (छिलके—रहित) लिए जाएँ तथा उन्हें किंचित भूँज लिया जाय तो वे लघु हो जाते हैं।

निस्तुषं युक्ति भृष्टं च सूप्यं लघु त्रिपच्यते—च० सू० २७/३७

युक्ति भृष्ट भीषद भृष्ट मितियावत्—**चक्रपाणि**। मात्रा कृत गुरुत्व लघुत्व के लिए देखिए च० सू० २७/३४०)। मिठाइयों की गुरुता प्रसिद्ध है।

औषधों में भी संस्कार-वश अर्थात् उन्हें सिद्ध करने की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप गुणान्तराधान होना प्रसिद्ध है। स्वरसादि पञ्चकषाय उत्तरोत्तर गुरु होना भैषज्यकल्पना विज्ञान में आरंभ में ही निर्दिष्ट हैं।

६-१० कृषि तथा रांधने की क्रिया से गम्य गुण—जिन द्रव्यों को उपरिनिर्दिष्ट कारणों से गुरु या लघु कहा गया है उनमें गुरुता—लघुता का यह भी स्वरूप देखा जाता है कि जो द्रव्य लघु होते हैं वे बोये जाने पर अपेक्षाकृत शीघ्र अंकुरित होते हैं। इनके विपरीत गुरु द्रव्यों के उगने में समय अधिक लगता है। इसी प्रकार गुरु आदि लघु द्रव्यों को पाकशाला में पकाया जाए तो वे शीघ्र पक जाते हैं, जबकि अरहर, माष आदि गुरु द्रव्यों के पकने में अधिक समय लगता है। यह तो ऊपर कह ही आए हे कि सेवनान्तर गुरु द्रव्यों के पकने में अधिक समय लगता है तथा लघु आहारौषध द्रव्यों का पचन स्वल्पतर काल में होता है।

कृषि में लगने वाले समय से अनुमेय गुरुता-लघुता को 'एग्रीकल्चरल प्रॉपर्टीज, या ऐसा ही कोई नाम दिया जा सकता है। रांधने में लगनेवाले समय द्वारा ज्ञेय गुरुता-लघुता को 'कुकरी प्रॉपर्टीज' या अन्य कोई संज्ञा दे सकते है। आहारौषध-निर्माण या संस्कार जन्य गुणों को 'प्रेपरेटरी प्रॉपर्टीज' इत्यादि कोई नाम दिया जा सकता है।

बोये जाने पर अंकुरित होने के समय एवं सेवनान्तर पचने में व्यतीत होने वाले समय को दृष्टि में रखते हुए

गुरुता-लघुता का जो परिज्ञान होता है उसका उल्लेख चरक तथा चक्रपाणिदत्त के निम्न वचनों में प्राप्त होता है।

यद्यदागच्छति क्षिप्रं तत्तल्लघुतरं स्मृतम्।

—च० सू० २७/३१०

आगच्छति क्षिप्रमिति उक्तं सञ्जीर्यं भवति। तेन, षष्टिकाः सर्वधान्येषु लघवः, ते हि षष्टिरात्रेण पच्यन्ते किंवा आगच्छति क्षिप्रमिति—**चक्रपाणि**। युक्तं सत् क्षिप्रं पच्यते॥

पूर्व चरण के स्थान पर '**यज्जरां याति शीघ्रं तु**' यह पाठान्तर है।

११. **आत्मा के गुण**—ये शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। इन्हें 'मेटाफिजिकल प्रॉपर्टीज' कह सकते हैं।

१२. **परादि गुण**—गुणों की गणना में ये भी प्रसिद्ध हैं। अन्य नामों के अभाव में इन्हें 'मिसलेनियस प्रॉपर्टीज' कहा जा सकता है।।

गुणों और वीर्यों के स्वरूप को स्पष्ट समझने का यह नम्र प्रयास है। इस प्रकरण के अन्त में एक ही विचार शेष है। वीर्य शब्द शास्त्र में दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है—१. द्रव्य शक्तियों में एक, जिसके उष्ण-शीत, मृदु-तीक्ष्ण आदि आठ भेद हैं तथा २. सामान्य रूप से कोई भी द्रव्य शक्ति। वीर्य के अतिरिक्त गुण तथा प्रभाव शब्द भी सामान्य और विशेष दोनों अर्थों में शास्त्र में प्रयुक्त हुए हैं। 'द्रव्य गुण विज्ञान' आदि शब्दों में गुण शब्द व्यापक अर्थ में गृहीत है।

संहिताओं ने वीर्य शब्द की दोनों अर्थों में परिभाषा का निरूपण एक ही प्रकरण में कर दिया है। दोनों को पृथक करके उनका पृथक निरूपण करने से क्लिष्टता न रहेगी। द्रव्य जिसके द्वारा क्रिया करता है वह वीर्य है, यह परिभाषा सामान्य-वाचक वीर्य शब्द की है।

आचार्यों की यह शैली है कि वे दो अर्थों वाले एक शब्द से गृहीत दोनों अर्थों का प्रतिपादन एक ही प्रकरण में कर देते हैं। जैसे 'ज्वर' या 'संताप' से शरीर और मानस दोनों ज्वरों का ग्रहण कर उनका समावेश एक ही प्रकरण में कर दिया गया है। इससे उत्पन्न कठिनाई का उल्लेख कभी करेंगे। निदान शब्द के भी दो अर्थ हैं। और दोनों अर्थों वाले इस शब्द का उपयोग एक ही प्रकरण में किया गया है। यही स्थिति 'शब्द' की भी है।

कमजोरी दूर करनेवाली
प्रसिद्ध टॉनिक
बैद्यनाथ
मृतसंजीवनी
सुरा
Baidyanath
SANJIVANI SURA
बैद्यनाथ
मृतसंजीवनी
सुरा
SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD.
CALCUTTA

निदान-चिकित्सा-हस्तामलक

(छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

उदर—

वैद्य रणजितराय देसाई

[आयुर्वेदीय वाङ्मय का युगानुरूप नवीन दृष्टि से प्रतिपादन करने वाले लेखकों में वैद्य रणजितराय देसाई जी का स्थान अप्रतिम है। इस लेख में आपने लिखा है कि प्राचीनों ने विभिन्न उदरों में सर्प-विष के मुख्यतः सेवन का विधान किया है, तथा उसके घातक परिणामों का उल्लेख किया है। परन्तु सांप्रत विष विज्ञान के अनुसार यह प्रयोग सर्वथा निरापद है। इस विषय में अन्य विद्वान अपने लेख भेजेंगे तो 'सचित्र आयुर्वेद' उनका सहर्ष स्वागत करेगा।—सम्पादक]

संनिपातोदर अथवा दूष्योदर का क्रियाक्रम

इस रोग का जो उपचार पूर्वाचार्यों ने लिखा है वह संप्रति प्रचलित नहीं है। परन्तु शास्त्र के अनुशीलन की दृष्टि से उसका उल्लेख तो आवश्यक ही है। कोई भी उदर, विशेषतः त्रिदोषज उदर, औषध-चिकित्सा से शांत होने का नाम न लेता हो उसकी वृद्धि ही होती जाती हो तो निम्नोक्त उपचार का अवलंबन करना चाहिए। औषधोपचार सफल न होने का सूचक लक्षण उदर का जातोदकावस्था में परिणत हो जाना है। इस प्रकरण के आरंभ में आए "क्रियातिवृत्ते जठरे" (च॰ चि॰ १३। १७५ तथा अ॰ हृ॰ चि॰ १५।७७) की टीका में चक्रदत्त जी लिखते हैं—**क्रियातिवृत्त इत्यनेन जातोदकतां दर्शयति। तत्र क्रिया निषिद्धा अजातोदकमित्यादिना। त्रिदोषजे इत्यनेनापि जातोदक एव त्रिदोषज इति ज्ञेयम्। अजातोदके त्रिदोषजेऽपि क्रिया उक्तैव।** तात्पर्य, त्रिदोषज उदर अजातोदक हो तो उसका औषधीय उपचार (क्रिया) पृथक् निर्दिष्ट है ही। उसके अंकुश में रोग न आए तभी अन्य पदों में जातोदकावस्था उत्पन्न होने पर ही, वक्ष्यमाण उपचार करना प्राप्त होता है।

संनिपातोदर में अजातोदकावस्था में संक्षेपतः उपचार यही है कि रुग्ण तथा उसके स्वजन-परिजनों को रोग प्रत्याख्येय (अशक्य) है यह वस्तु योग्य शब्दों में समझा कर ही उपक्रम आरंभ करना चाहिए। पृथक्-पृथक् दोषज उदरों का जो उपचार प्रथम कह आए हैं उनको ही, त्रिदोषज उदर में जिस दोष का जितने अंश में प्राधान्य हो उसे लक्ष्य में रखकर व्यवहार करना चाहिए। रोगी का बल तथा अग्नि अतिक्षीण न हो गया हो तथा उपद्रवों का आविर्भाव न हो चुका हो यह देखकर ही औषधीय उपचार आरंभ करना चाहिए।

वाग्भट ने औषधोपचार में दन्ती और द्रवन्ती के फलों के तैल का मुख द्वारा सेवन प्रशस्त कहा है। इन तैलों के प्रतिनिधि-द्रव्यों का निर्देश पहले कर आए हैं। सुश्रुत ने ऐसे ही दो शोधन क्रमों का उल्लेख किया है। सातला (चिकाखाई) तथा शंखिनी (?) के स्वरसों से सिद्ध घृत यथावश्यक एक मास अथवा एक पक्ष देते रहकर विरेचन कराए। अथवा, सेहुंड का क्षीर, सुरा एवं गोमूत्र से सिद्ध घृत का इसी प्रकार सेवन कराए। आतुर के स्वजनों को परिस्थिति समझाकर अश्वमार (कनेर), गुञ्जा और काकादनी (कन्यार) के मूल का मद्य में बनाया कल्क पानार्थ दें। इनसे अभीष्ट फल न प्राप्त हो तो आगे कहा विष-प्रयोग कराएँ। इसके पूर्व रुग्ण के स्वजनों, इष्ट मित्रों आदि के समक्ष विशेष तो सरकारी अधिकारी के समक्ष अनुमति प्राप्त करने के लिए वस्तुस्थिति प्रस्तुत कर दें कि कोई उपचार न किया जाए तो मृत्यु अवश्यंभावी है, परन्तु आगे कहीं चिकित्सा से भाग्य बलवान् हो तो रोगी बच भी जाए। उनकी अनुमति हो तभी विष-प्रयोग करे।

विष-प्रयोग के दो प्रकार हैं। इनमें सरल प्रकार यह है कि अन्नपान में स्थावर (मूलज या कन्दज) विष का सेवन मद्य द्वारा उनका कल्क बनाकर कराएँ। विष-प्रयोग के अन्य प्रकार में कृष्ण सर्प (कोब्रा) के विष को

उपयोग कराया जाता है। इसकी विधि यह है।— इक्षुकाण्ड अथवा वल्लीफलों को (कर्कटी, विया, कद्दू आदि लता में लगने वाले फलों को) कृष्ण सर्प से दंश करा उन फलों का अथवा इक्षुकाण्ड का सेवन रुग्ण को कराएँ। चक्रपाणि ने अपनी टीका में एक पद्य उद्धृत किया है। उसमें मूल संहिताओं में अनिर्दिष्ट यह विधान लिखित है कि अन्य भी उदरों में सर्प के दंष्ट्रा-विष का इस प्रकार व्यवहार कराना चाहिए—

दूष्योदरे बद्धगुदे क्षतान्त्रे च जलोदरे।
अपि दंष्ट्राविषस्यैव प्रयोगोऽपि विशोधने॥

—च० चि० १३।१७८-१८० पर

तात्पर्य, दूष्योदर (संनिपातोदर), बद्धगुदोदर, क्षतोदर, (छिद्रोदर) तथा जलोदर में विष के शोधनार्थ दंष्ट्रा-विष का प्रयोग करना चाहिए। डल्लन कहते हैं विषादि से उत्पन्न उदर रोग में स्वयं विष का (दंष्ट्रा-विष एवं मूलज-कंदज विषों का) उपयोग तदर्थकारी चिकित्सा के रूप में किया जाता है। उसी प्रकार जिस प्रकार मदात्यय (आलकोहलिज्म) में मद्यपान का, अग्निदग्ध में आग्नेय स्वेद का, अतिसार में स्विन्न (जल में डाल मंद अग्नि पर फुलाई हुई) पथ्या आदि पुरीष-प्रवर्तक औषधों का, छर्दि में वमन का, सर्प-विष में (स्थावर) विषों का प्रयोग किया जाता है। ये सभी उपचार प्रथम क्षण में रोग की वृद्धि करनेवाले आभासित होते हैं परन्तु तत्-तत् प्रकार से संप्राप्ति को भंग करते हुए वे रोग-निवृत्ति किया करते हैं।

इन विषयों का सेवन करने से विषों के आशुकारी एवं प्रमाथी (क्षोभकारी-दोष को संचालित करने वाले) होने से विमार्गगामी होकर शरीरावयवों में लीन एवं स्थिर होकर स्थित दोष-संघात छिन्न-भिन्न होकर बहिर्मार्गों से प्रवृत्त (निर्हृत) हो जाता है। विष-सेवन के परिणाम-स्वरूप दोष-रहित हुए आतुर को शीत जल से स्नान कराए। रुग्ण को एक मास अन्न का परिवर्जन कराते हुए पेया तथा त्रिवृत् (निशोथ), मंडुकपर्णी (ब्राह्मी), वास्तूक (बथुआ), कालशाक, यवशाक (खेत में स्वयं उगनेवाला बथुआ) इनका जल के स्थान, में अपने-अपने ही [illegible]रस में बनाया हुआ शाक अम्ल (खटाई), लवण और स्नेह का संयोग किए बिना तथा हरितक वर्ग के कच्चे या अधपके खाये जानेवाले प्याज आदि द्रव्यों के समान किंचित् पक्व करके उसका व्यवहार कराए। तृषा लगे तो उपरिनिर्दिष्ट शाकों के स्वरस का ही पान करे। शाकों के इस प्रकार एक मास पर्यन्त उपयोग से शेष दोष की शुद्धि हो जाने पर दुर्बल आतुर को प्राण-दायी (बल्य) उष्ट्री-दुग्ध का सेवन कराए।

इस तथा आगे कही विष-चिकित्सा की व्यवस्था के दो परिणाम हो सकते हैं—या तो रोगी स्वस्थ हो जाता है, या मृत्यु को प्राप्त होता है।

सर्प-विष की निर्दोषता—पूर्वाचार्यों ने सर्प-विष का मुखत: सेवन करने में रहे जोखिम पर इतना भार रखा है। परन्तु वर्तमान विष-तंत्र (टॉक्सिकॉलोजी) के अनुसार कोब्रा या वाइपर किसी के भी विष का मुख से सेवन किया जाए तो इससे लेशमात्र विष-लक्षणों का प्रादुर्भाव होता नहीं। ये विष प्रोटीनों के प्रकार होते हैं एवं अन्नपानगत अन्य प्रोटीनों के समान ही महास्रोत में उनका पचन हो जाता है। प्राचीन-अर्वाचीन उभय पद्धतियों के समन्वयात्मक अनुशीलन के रसिकों के लिए यह विषय अतीव रसप्रद हो सकता है। इस दृष्टि से प्रथम पूर्वाचार्यों का इस प्रकरण में जो वक्तव्य है उस पर दृष्टिपात करेंगे।

क्रियातिवृत्ते जठरे त्रिदोषे चाप्रशाम्यति।
(अ० हृ० चि० २५।४७ में 'त्रिदोषे च विशेषत.'
पाठान्तर)

ज्ञातीन् ससुहृदो दारान् ब्राह्मणान्नृपतीन् गुरून्॥
अनुज्ञाप्य भिषक् कर्म विरध्यात् संशयं ध्रुवम्।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत्॥
एवमाख्याय तस्येदमनुज्ञातः सुहृद्गणैः।
पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रयोजयेत्॥
यस्मिन् वा कुपितः सर्पो विसृजेद्धि फले विषम्।
भोजयेत्तदुदरिणं प्रविचार्य भिषग्वरः॥

—च० चि० १३।१७५-१७६

तथा व्रजत्यगदतां शरीरान्तरमेव वा॥

—अ० हृ० १५।८१

तेनाऽगदो भवत्यन्यं वा भावमापद्यते॥

—सु० चि० १४.८

अन्यं वा भावमापद्यते मरणं प्राप्नोति । कमर्दं दारुणम्, अक्रियायां ध्रुवं मरणम्; क्रियायां संशये सत्येवं कुर्यात् । तत्रापीश्वरानुज्ञातेनैव कार्यम् ।।

—डल्हन

दूष्योदर (त्रिदोषोदर), बद्धगुदोदर, छिद्रोदर एवं जलोदर औषधीय चिकित्सा से प्रशमित न हों, जिसका प्रमुख लक्षण प्रथम तीन उदरों में जातोदकावस्था का आविर्भाव होना होता है, तब ज्ञातियों (समान जाति-वालों), मित्रों, पत्नी, ब्राह्मणों, राजाओं एवं गुरुओं की अनुमति यह कह कर प्रथम ही वैद्य प्राप्त कर ले कि विषोपचार न किया जाए तो मरण नियत है, परन्तु यह उपचार किया जाए तो परिणाम संशयित है—आतुर स्वस्थ हो जाए अथवा मृत्यु को प्राप्त हो जाए। वे अनुज्ञा दें तभी उक्त दोनों प्रकारों में से किसी विष प्रयोग का उपयोग करें।

इन वचनों से स्पष्ट है कि मुख द्वारा सर्पविष के प्रयोग में पूर्वाचार्यों की दृष्टि में कितना जोखिम रहा है। परन्तु आधुनिक विषतंत्रविदों का अभिमत है कि कोब्रा या वाइपर किसी भी सर्प का विष मुख से लेने से कोई अनिष्ट नहीं होता। ये विष रस-रक्त के संपर्क में आकर सर्वदेह में प्रसृत हों तभी उनके विष-लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं। किसी कारण जिह्वा, दन्तवेष्ट (मसूड़े) आदि में व्रण हो तो उसके द्वारा सर्पविष सार्वदेहिक रस-रक्त के संसर्ग में आने से मृत्यु-पर्यन्त दारुण विष-लक्षण उत्पन्न होते हैं। सपेरे लोग इसी कारण तत्क्षण सर्प का दंष्ट्रा-विष निकाल कर निर्भयता-पूर्वक उसे पी दिखाते हैं और उन्हें कोई अनिष्ट नहीं होता। ऐलोपथी में इन सर्प विषों का जो मात्रावत् औषधीय उपयोग किया जाता है वह इंजेक्शन के रूप में होता है।

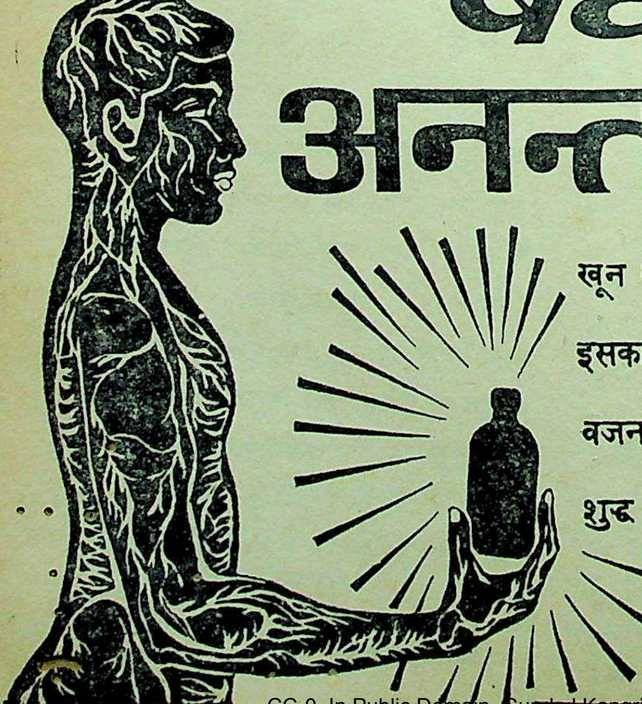

बैद्यनाथ
अनन्त सालसा
खून की खराबी से होनेवाले रोगों में इसका सेवन करें और कुछ दिनों के बाद ही वजन लेकर देखें कि आपके शरीर में नया और शुद्ध रक्त कितना तैयार हुआ है।
SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

"तमक श्वास-चिकित्सा समन्वय"

❀ डा० पो. एन. चतुर्वेदी
(डी. ए. वाई. एम.)
❀❀ डा. एम. आर. शाह
(एम. एस. ए. एम.)
❀❀❀ डा. मृदुला एम. शाह
(एम. एस. ए. एम.)

पूर्व लेख में नैदानकीय आधार पर तमकश्वास को "ब्रॉन्कीयल अस्थमा" (Bronchial asthma), सन्तमकश्वास को "कार्डीएक अस्थमा" (Cardiac asthma) तथा प्रतमकश्वास को "एक्यूट ब्रोन्काइटीस" (Acute bronchitis) सोदाहरण सिद्ध किया जा चुका है। इस लेख में चिकित्सा के आधार पर उपरोक्त उक्ति की वैज्ञानिक विधि से संपुष्टि की जायेगी।

एतदर्थ उपरोक्त तीनों व्याधियों की आयुर्वेदीय चिकित्सा को उनके समकक्ष व्याधियों की आधुनिक चिकित्सा का समन्वय करने का प्रयास किया जाएगा।

तमकश्वास की चिकित्सा (Treatment of Bronchial asthma)

आयुर्वेद के प्रायः सभी चिकित्सा ग्रन्थों में इस रोग की चिकित्सा वर्णित है। चिकित्सा अवसर आने पर इस रोग के दो विभाग, आयुर्वेदाचार्यों ने किए, ज्ञात होता है। जैसे कि एक प्रकार की चिकित्सा रोग के वेग के समय की (Control of Paroxysm) तथा दूसरी सामान्य चिकित्सा (Treatment for remission) वेग के समय प्रायः ऐसे औषध-क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। जिससे कि अवरोध उत्पन्न करनेवाले कफ का स्राव हो जाय तथा वायु प्राणवहस्त्रोतस में अप्रतिहत गति से आवागमन कर सके, क्योंकि इस व्याधि को 'कफवातात्मक' कहा जाता है। वेग के समय रोगी को जिस स्थिति में बैठना अच्छा लगे, उसे वैसा ही रखना चाहिए ऐसा आधुनिक मत है।[1]/अ उसी प्रकार चरक भी कहते हैं कि रोगी को बैठने से आराम मिलता है, सोने पर कष्ट बढ़ता है, अतः बैठना ही लाभप्रद होगा।[1]/ब रोगी के ओष्ठ मुखादि पर श्यावता आये तो नव्यमत से 'ओक्सीजन' दिया जाता है[2] उसी प्रकार रोगी को प्रमेह उत्पन्न हो तो चरक के बताये 'वायुः सज्ञाप्रदानाम्'—से संज्ञा देने वाले वायु-शुद्ध वायु प्रदान करना चाहिए।

रोगी के प्राणवहस्त्रोतस में वृद्ध कफ का स्राव कराना चाहिए इसके लिए नव्य चिकित्सा विज्ञान में—आइसोप्रीनालीन (Isoprenaline) (अरोसोल के रूप में) को धूमपान विधि से नासिका द्वारा प्रयुक्त किया जाता है[3] उसी प्रकार आयुर्वेद में भी धूमपान कराया जाता है। चरक ने 'हरिद्राद्यधूमवर्ति' बनाकर धूमपान कराने को कहा है। भैषज्यरत्नावली में कनक के फल-पत्रादि को कूटकर, सुखाकर उसके चूर्ण से धूमपान करने को बताया है। यह धूस्तूरधूम के नाम से प्रसिद्ध है। इसी तरह कंटकारी धूम एवं श्वासहरधूम (सि० यो० सं०) का भी प्रयोग करते हैं। ऐलोपैथी में सामान्य वेग के समय 'एफीड्रीन' (Ephedrine) मुख मार्ग से देने का विधान है तथा आयुर्वेद में भी "सोम" औषधि के योग देना प्रचलित है।

❀ औफिसर-इन्चार्ज
❀❀ असि० रिसर्च औफिसर
❀❀❀ अस्सि० रिसर्च औफिसर
रीजनल रिसर्च सेन्टर जोगिन्दर नगर (हि० प्र)

१अ The Patient Should be allowed to take up the position which he finds most comfortable "Davidsan-Medicine"

१ब आसीने लभते सौख्यं—(चरक)

२. If there is obvious cynosis oxygen should be administered.

३. Isoprenaline may also be inhaled in the form of an aerosol. (Davids[illegible])

अब जीर्णावस्था प्राप्त तमकश्वास की चिकित्सा पर विचार किया जाय। नवीन चिकित्सा प्रणाली में तमक श्वास की चिकित्सा में प्रमुखतया प्रणाली विस्तृत कारक (ब्रोन्कोडाइलेटर्स) द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।[४] ऐसे द्रव्य प्राणवहस्रोतस की रचना का विस्तार करते हैं जिससे मार्ग चौड़ा होने पर उसमें रुका कफ आसानी से निकल जाय तथा वायु, मार्ग बड़ा होने से सरलतया आवागमन कर सकें। ऐसे द्रव्यों में 'एफेड्रीन' और 'थीओफायलीन' के साथ फेनोबारबीटोन का प्रयोग लाभप्रद देखा गया है। फेनोबारबीटोन से रोगी को नींद आ जाती है। आयुर्वेद में भी "सोम" औषधि ऐसी ही 'ब्रोन्कोडायलेटर' है, उसमें नवीन परीक्षणों में 'ऐफेड्रीन' की मात्रा पायी जाती है। सोम-कनकासव आदि के प्रयोग से भी नींद आ जाती है।

निदान परिवर्जन व्यवस्था

(अ) मानस क्षोभ—रोग की उत्पत्ति व वृद्धि करने में प्रधान कारण अगर मानसिक अशांति-क्रोध-शोकादि है तो उसके लिए शामक-निद्राजनन-मानस शांति करने वाले उपचार ही श्रेष्ठ हैं। मानस विकृतिकारक निदानों का त्याग कराना प्रथम कार्य है।

इसी नव्यमत को आयुर्वेद में भी समर्थन प्राप्त है। "संक्षेपत: क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्" कहकर आचार्यों ने निदानों का त्याग कराने को ही चिकित्सा मानी है। मानस दोषों की शान्ति के लिए आयुर्वेद में भी ब्राह्मी-शंखपुष्पी—जटामांसी आदि द्रव्य प्रयोग बताए हैं तथा सत्वावजय-दैवव्यपाश्रय जैसी चिकित्साओं को भी महत्व दिया है।

(ब) औपसर्गिक कारण:—आधुनिक विद्वान कहते हैं कि यदि तमकश्वास वेग, प्राणवहस्त्रोतस् में हुए किसी अन्य रोग के उपसर्ग से सम्बन्धित है तो प्रथम उस रोग की चिकित्सा करनी पड़ेगी। आयुर्वेद में भी इस बात की सहमति दी गई है कि उपद्रव की शांति तभी संभव होगी जबकि मूल व्याधि का शमन किया जायेगा। अगर तमकश्वास किसी अन्य व्याधि का उपद्रवस्वरूप उपस्थित है तो प्रथम उस रोग की चिकित्सा करनी पड़ेगी तब उपद्रव स्वयमेव शान्त हो जायेगा।[५]

(क) अनुर्जता (Allergy)—किसी विशिष्ट पदार्थ का जब शरीर से सम्पर्क होता है तब शरीर प्रतिक्रिया रूप कुछ लक्षण (व्याधिरूप) प्रदर्शित करता है, जिसमें एक यह श्वास रोग भी है। ऐसे श्वास रोग की चिकित्सा करने से पूर्व उस विशिष्ट पदार्थ का रोगी से त्याग कराना अत्यावश्यक है। इसकी चिकित्सा में 'ऐन्टीहीस्टेमीनीक' औषधों का प्रयोग लाभप्रद है। आयुर्वेद में भी "निदान-परिवर्जन" सिद्धान्त के साथ-साथ 'हरिद्रा' युक्त औषधो का प्रयोग यश देने वाला माना जाता है। हरिद्रा में भी नवीन परीक्षणों में ऐन्टीहीस्टेमीनीक' तत्व पाया गया है।

तमकश्वास की सामान्य आयुर्वेदीय चिकित्सा—

तमकश्वास में सामान्यतया संशोधन एवं संशमन चिकित्सा बतायी गई है। वमन-विरेचन धूम रूप संशोधन कर्म रोगी-रोग बल को देखते हुए कराये जाते हैं क्योंकि इस व्याधि के निदान में कहा है कि—

'कफवातात्मकौ एतौ पित्त स्थान समुद्भवौ' आजकल आयुर्वेद के चिकित्सा व अनुसन्धान - केन्द्रों में इस रोग पर कार्य शुरू हुए हैं।

रसमाणिक्य-सोमयोग— कंटकारी-हरिद्रा-धत्तूर के योगों पर कार्य हो रहे हैं। सामान्यतया निम्न योगों का प्रयोग सामान्य चिकित्सा के रूप में वैद्यगण करते हैं।

(१) श्वासकुठार रस—४ रत्ती
श्रृंगाराभ्र रस —४ रत्ती
चन्द्रामृत रस —४ रत्ती
सोमचूर्ण —२-४ रत्ती
तालिसादि चूर्ण—४ माशा
मिश्र ३ माशा
आर्द्रकस्वरस-मधु अनुपान से ३ बार

(२) कनकासव —१ तोला
———
२ मासा

---

[४] The first essential in this cases to treat any respiratory infection present with an antibiotic then long acting bronchodilater drugs are given to control asthmatic symptoms.

[५] व्याधेरूपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तर कालजः।
[illegible] च स उपद्रव उच्यते ॥ (चरक)

भोजनोत्तर समजल मिलाकर

(३) आरोग्यवर्धिनी— २ गो

१ बार रात्री में गर्म दुग्ध से ।

(४) तालिशादि चूर्ण—६ मा०
यवक्षार —२ मा०
चन्द्रामृत —१ मा०

मधु मिला कर चटनी की तरह दिन में कई बार चाटे ।

मुक्तादि चूर्ण का भी प्रयोग लाभ-प्रद है ।

नोट—कुछ लोग प्रारम्भिक तमकश्वास के रोगियों को (Tropical Eosinophilia) "उष्णकटिबंधीय उपसिप्रियता" नामक व्याधि मानते हैं । उस दशा में आयुर्वेद में संखिया के योगो का प्रयोग बताया है । जिस दशा में आधुनिक चिकित्सक भी (Arsenic) आर्सेनीक के योगों का प्रयोग करते हैं । सखिया के प्राप्य योग निम्नांकित हैं ।

(१) समीरपन्नग रस
(२) मल्लसिन्दूर
(३) ताल चन्द्रोदय एवं
(४) महातालकेश्वर रस आदि

इनकी दिन भर की मात्रा $\frac{१}{२}$ रत्ती है, साथ में अन्य लाक्षणिक औषधियों का प्रयोग करते हैं । वस्तुतः इस व्याधि को 'वातिककास' में रखना ज्यादा उचित है, जो पूर्व लेख में स्पष्ट किया जा चुका है ।

सन्तमकश्वास (Cardiac asthma)

आधुनिक विज्ञान के आधार पर यह माना जाता है कि "कार्डीअक अस्थमा"का उग्रस्वरूप सर्वदा सायंकाल (अर्धरात्रि के पूर्व) तथा "ब्रोन्कियल अस्थमा" का प्रातः (अर्धरात्रि के पश्चात्) को देखने को मिलता है । यह आयुर्वेद के अनुसार दोषसंगत ही है । क्योंकि अर्धरात्रि या उसके पूर्व का काल पित्तविशेष का वर्द्धन काल है तथा संतमकश्वास पित्तप्रधान व्याधि है अतः उग्रता का उसी समय होना स्वाभाविक ही है । साथ ही अर्द्धरात्रि के बाद वायु का काल प्रारम्भ होता है, जो तमकश्वास को उग्र करने के अनुरुप होता है । तमकश्वास के इस प्रकार विशेष में जो लक्षण देखे जाते हैं, उसके आधार पर इसे "कार्डीअक अस्थमा" कहने की चेष्टा की है । इस रोग की चिकित्सा करने में दो बातों पर ध्यान देना पड़ेगा । एक सामान्य चिकित्सा श्वासरोग की करते हुए विशेष चिकित्सा हृदय रोग की करनी पड़ेगी । तमकश्वास रोग का उदर्क-उत्तरकालीन अवस्था 'हृदयस्य रसादीना धातूनां चोपशोषणी' ऐसा आचार्य चरक ने कहा है, अर्थात् तमकश्वास की जीर्णावस्था में हृदय तथा रसादि धातुओं पर भी प्रभाव होता है । इसका कारण यह है कि 'श्वास' प्राणवहस्रोतस की व्याधि है तथा इस स्रोतस के मूल हृदय और महास्रोतस हैं ।[६] एक में कुछ विकृति होने पर कालान्तर में भी दूसरी विकृति होगी ।

अतः संतमकश्वास में हृदय की विकृति होती है । इसकी चिकित्सा में आधुनिक विद्वान Morphine or Pethidine (मोर्फिया या पैथेडीन) का प्रयोग करते है जिसका उद्देश्य है कि रोगी को नींद आकर आराम मिले । आयुर्वेद में भी सन्तमकश्वास की चिकित्सा में 'आहिफेन' के योगों का प्रयोग होता है । इस रोग की चिकित्सा में अहिफेन का योग 'मङ्गलोदयावटी, या निद्रोदय रस सफल चिकित्सक द्वारा प्रयुक्त की जाती है ।

नोट :—इस व्याधि में आधुनिक मत के अनुसार एफेड्रीन या एट्रोपीन का प्रयोग जीवन के लिए हानिकर है, क्योंकि यह हृदय की गति को बंद करता है । आयुर्वेद में भी सोम-कनक का प्रयोग वर्जित है । सर्वदा ऐसी ही औषधि आहार-विहार की व्यवस्था करते हैं जो हृदय को आराम दें । सामान्य चिकित्सा एक समान ही है ।

प्रतमक श्वास की चिकित्सा (Treatment of Acute Bronchitis) लक्षणों के आधार पर इस रोग का समन्वय 'एक्यूट ब्रोन्काइटीस' से किया गया है । आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में इस रोग की चिकित्सा में जब कफ निकालने में कष्ट होता है, तब "बेन्जाइन" या "मेन्थोल" जैसी औषधियों की वाष्प नासा द्वारा ग्रहण कराई जाती है[७] उसी प्रकार आयुर्वेद में भी 'मनःशिलादि धूम' अर्कादि धूम आदि धूमों का प्रयोग करवाया जाता है ।

---

[६] प्राणवहानां स्त्रोतसां हृदयं मूलं महास्त्रोतसश्च ....(च० वि०५)

[७] In early stage·······by the inhalation of steam medicated with benzoin or menthol

रात्रि में कफ वृद्धि को कफशामक-निद्राजनन औषधियों से रोका जाता है ऐसे ही आयुर्वेद में भी प्रभूत कफ की अवस्था को कनकासव आदि देकर शमन किया जाता है। उरः-प्रदेश में असुख लगने पर स्वेदन से सुख लगता है यह भी दोनों पैथीओं में समान वर्णित है।[८] कास रोग में भी प्राणवहस्रोतस में विकृति होती है, यदि (कफजकास) कास में कफ द्वारा स्रोतस में अवरोध उत्पन्न हो जाय, तो ऐलोपैथी में 'प्राणवहस्रोतस विस्फारक' तथा आयुर्वेद में भी कफघ्न औषधोपचार किया जाता है। "ऐन्टी बायोटिक्स" औषधियों के स्थान पर आयुर्वेद में स्वर्ण-अभ्रक के योगों का सफल प्रयोग जगविदित ही है।

आभार प्रदर्शन:—लेखकगण डा० पी० एन० वी० कुरुप, निर्देशक सी० सी० आर० एम० एच०, नई देहली के आभारी हैं जिनके सफल निर्देशन से यह लेख पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सका है।

---

8. If restrosternal discomfort is troublesome heat may be helpful, applied to the chest—
"Davidsan Medicine"

बैद्यनाथ
दन्तमंजन
लाल·काला और सफेद
इन मंजनों के रोजाना व्यवहार से दाँत चमकीले मुँह दुर्गन्ध-रहित और मसूढ़े मजबूत रहते हैं
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता-६

कवि बोपदेव और उनकी वैद्यक कृतियाँ

कविराज राजेन्द्र प्रकाश आ० भटनागर
एम. ए., भिषगाचार्य (स्वर्णपदक प्राप्त),
आयुर्वेदाचार्य, एच. पी. ए. (जाम.), साहित्यरत्न
प्राध्यापक, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
उदयपुर, (राज०)

व्यक्ति-परिचय

महाराष्ट्र की वैद्य परम्परा में 'वोपदेव' या 'वोपदेव' का स्थान महत्वपूर्ण है। यह महाराष्ट्रीय बरारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम 'केशव' था, जो स्वयं एक कुशल वैद्य थे तथा उनका वैद्यों में पर्याप्त सम्मान था। बोपदेव ने गुरु का नाम 'धनेश्वर' बताया है।[१] परन्तु 'शतश्लोकी' के अन्तिम आत्मपरिचयज्ञापक पद्य में यह नाम 'धनेश' मिलता है। इसी ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति में इन्हें 'धनेश्वर भट्ट' भी कहा गया है।[२] बोपदेव के पिता और गुरु तथा स्वयं का निवास स्थान बरार (महाराष्ट्र) में 'वरदा' (वर्तमान वर्धा) नदी के तट पर स्थित 'वेदपद' या 'पदेपुर' नामक ग्राम था।[3]

बोपदेव के पिता 'केशव' के समय में वेदपुर पर 'सिंहराज' नामक राजा का शासन था। केशवकृत 'सिद्ध-मन्त्र' ग्रंथ मे लिखा है कि 'केशव ने महादेव से जन्म, भास्कर से आयुर्वेद और सिंहराज से सन्मान प्राप्त किया था।' इससे ज्ञात होता है कि केशव के पिता (बोपदेव के पितामह) का नाम महादेव था, गुरु का नाम भास्कर था और इनको सिंहराज का राज्याश्रय प्राप्त हुआ था।[४]

केशवकृत 'सिद्धमन्त्र संज्ञक उक्त वैद्यक ग्रंथ की टीका में बोपदेव ने अपने पितामह महादेव के लिए 'वेदपदाभिधान-महाराष्ट्री विप्र' ऐसा कहा है। अतः बोपदेव का, उक्त स्थान पर अपने पूर्वजों के काल से वहां का निवासी होना ज्ञात होता है।

इससे बोपदेव की वंशपरम्परा इस प्रकार ज्ञात होती है।

—महादेव—केशव—बोपदेव।

बोपदेव का काल :—महाराष्ट्र में मध्यकाल बहुत उत्कर्ष का समय रहा है। देवगिरी के यादव राजाओं के शासन काल की बहुत प्रसिद्धि है। इन यादव राजाओं का राज्य उत्तर में नर्मदा से दक्षिण में कृष्णा नदी तक विस्तृत था। इस प्रकार सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर इनका अधिकार था। इन राजाओं में सिंघण के पौत्र कृष्णदेव और महादेव तथा कृष्णदेव के पुत्र रामदेव राव का शासन काल ६२ वर्ष पर्यन्त रहा (ई० सन् १२४७ से १३०९ तक)। इस काल में विद्या और कला को बहुत प्रोत्साहन मिला। परिणाम-स्वरूप महाराष्ट्र में साहित्य और कलाकृतियों का अभूतपूर्व सृजन हुआ। मराठी भाषा को व्यवस्थित रूप भी इसी काल में प्राप्त हुआ। यादव राजा महादेव (ई० स० १२६०-१२७१) और तत्परवर्ती रामदेव राव (रामचन्द्र राव, ई० १२७१-१३०९) के काल में **हेमाद्रि** को राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। लगभग ४० वर्ष तक हेमाद्रि ने यादव राजाओं के शासन में **'श्री करणधिप'** (अथवा राज्यसूत्रधार) अर्थात् प्रधानामात्य (मुख्यमंत्री) के पद को सम्भाला था। वह वीर और राजकार्य में निपुण होने के साथ ही धर्मशास्त्रज्ञ, विद्वान्, गुणग्राही और उदार था। उसका वैद्यक शास्त्र पर भी अच्छा अधिकार था। उसकी अष्टांग हृदय पर लिखी हुई 'आयुर्वेद रसायन टीका' उपलब्ध है, जो व्यावहारिक और विद्वत्तापूर्ण है।

हेमाद्रि और बोपदेव दोनों ही मित्र और सम्भवतः सहपाठी थे। हेमाद्रि ने बोपदेव को आश्रय प्रदान किया था। कहा जाता है कि बोपदेव को यादवराजा महादेव ने 'पंडित' के पद पर आसीन किया था। अतः हेमाद्रि और बोपदेव के निकट के सम्बन्ध होना ज्ञात होता है। वैसे ये दोनों ही देशस्थ महाराष्ट्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। मुख्यमंत्री हेमाद्रि के अनुरोध पर बोपदेव ने 'हरिलीला' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[५] जीवन के अन्तिम वर्ष

में बोपदेव ने हेमाद्रि की जीवनी भी लिखी थी। दूसरी ओर, बोपदेव के 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल' नामक ग्रन्थों पर हेमाद्रि ने टीकाएं लिखी थी।[६] इस प्रकार हेमाद्रि और बोपदेव की घनिष्ठता सुज्ञात है। दोनों को ही यादव राज्य कालीन 'गुरु' और 'शुक्र' की उपमा दी जाती है।

उपर्युक्त वर्णन से बोपदेव का काल हेमाद्रि और महादेव व रामदेवराव के समसामयिक प्रमाणित होता है, जिसे हम ईसवीय १३वीं शती का उत्तरार्ध और कदाचित् १४वीं शती का पूर्वार्ध निश्चित कर सकते हैं। (संभवत: ई० सन् १२७१ से १३०९ के मध्य अथवा ई० सन् १३०० के लगभग)।

बोपदेव की कृतियां—बोपदेव की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह आयुर्वेद का प्रकांड पंडित होने के साथ, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य और धर्मशास्त्र का विद्वान् भी था। वह कुशल चिकित्सक के अतिरिक्त अच्छा कवि भी था। यही कारण था कि उसने विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ज्ञान के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बोपदेव ने अपनी विद्वत्ता व लेखनी का परिचय उपस्थित किया है।[७] उस समय दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का सर्वत्र प्रचार हो रहा था।[८]

बोपदेव भी कृष्णोपासक था। यह इस तथ्य से ज्ञात होता है कि उसने श्रीमद्भागवत के आधार पर १ **हरिलीला** २ **मुक्ताफल** ३ **परमहंसप्रिया** और ४ **मुकुट**—ये चार श्रीकृष्णभक्तिपरक ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में बोपदेव ने क्रमश: **हरिलीला** में भागवत का स्कन्धश: सार दिया है; **मुक्ताफल** में भागवत का तात्पर्य स्पष्ट किया है; **परमहंसप्रिया** नामक ग्रन्थ भागवत पर बोपदेवीय टीका है; और **मुकुट**—यह भागवत का साररूप ग्रन्थ है। 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल' ग्रन्थों की रचना करने के लिए हेमाद्रि ने बोपदेव को प्रेरित किया था![९]

क्योंकि 'हरिलीला' में बोपदेव लिखता है—

"श्रीमद्भागवतस्कंधाऽध्यायार्थादि निरूप्यते।
विदुषा बोपदेवेन मंत्रिहेमाद्रितुष्टये॥
(हरिलीला)

इसी प्रकार 'मुक्ताफल' में भी वह लिखता है—

हेमाद्रिर्बोपदेवेन मुक्ताफलमचीकरत्।"

वस्तुत:, हेमाद्रि ने अपने मित्र व आश्रित बोपदेव से अनेक ग्रन्थ लिखवाये थे।

बोपदेव ने 'हरिलीला' में स्वरचित ग्रन्थों की एक सूची दी है, जिसके अनुसार उसने व्याकरण पर १०, आयुर्वेद (वैद्यक) पर ९, ज्योतिष पर १, साहित्य पर ३ और भागवत पर ३ ग्रन्थ लिखे थे। इस प्रकार उसके ग्रन्थों की कुल संख्या २६ हो जाती है।[१०]

'मुक्ताफल' पर लिखी हुई अपनी टीका में हेमाद्रि ने बोपदेवकृत ग्रन्थों की उपर्युक्त सूची का ही अनुमोदन किया हे। वास्तव में बोपदेव की प्रशंसा के लिए हेमाद्रि का यह वचन निश्चित ही चरितार्थ होता है—

'भूगीर्वाणशिरोमणेरिह: गुणा: के के न लोकोत्तरा:॥'

हेमाद्रिकृत "चतुर्वर्गचिंतामणि" ग्रन्थ के उपोद्घात में पं० भरतचन्द्र शिरोमणि ने एक किम्वदन्ती का उल्लेख किया है—

"अत्रायं जनायवाद:—एतद्ग्रन्थकर्ता बोपदेव इति। बोपदेवस्तु महान् पंडित: पदार्थादर्श-महाभारतभाष्य-कोष-व्याकरण-भागवतकाव्य-भाष्य-बहुविधवैद्यकग्रन्थान् स च विरचितवान्, बोपदेवकृत पदार्थाभिधानक ग्रन्थ-कारिकामनल्पस्थाने उत्थाप्य यथातत्वं कारिकाव्याख्यां समाधाय तत्प्रामाण्य प्रतिपादनार्थं मूलं हेमाद्रौ चिन्त्य-मित्यादिभिर्निबन्धै: कमलाक भट्टाद्यैर्मिहितैरेव प्रतीमश्च।'
(पृ० ३८)।

आफ्रेक्ट ने बोपदेव के निम्न ग्रन्थों का उल्लेख किया है—[११]

Bopadeva—Son of Kesava, Pupil of Dhanesh. He was Pandit to Mahadeva, king of Devagiri. He is quoted in the Madhaviya Dhatuvritti.

1. Kavikalpadrum कविकल्पद्रुम
2. Kavyakamadhenu काव्यकामधेनु
3. Trinsacchloki Asauchsamgraha त्रिंशश्लोकी अशौचसंग्रह
4. Dhatukosha and Dhatupatha (two first named works) धातुकोश और धातु पथ
5. Paramhanspriya परमहंसप्रिया
6. Parashuramapratapatika (Shraddha kanda) परशुरामप्रतपतिका (श्राद्धकाण्ड)

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

7. Bhagawatpurara Dwadasha-Skandhanukrana. भागवतपुराण द्वादशस्कंधानुक्रम
8. Mahimnastawatika. महिम्नास्तवटिका
9. Muktaphala मुक्ताफल
10. Mugdhabodha मुग्धबोध
11. Ram Vyakarana (Perhaps the same work as the last) रामव्याकरण
12. Shatasloki and Shatasloki-Chandrakala शतश्लोकी और शतश्लोकीचन्द्रकला
13. Sarangdharasamhita gudharthadipika शार्ङ्गधरसंहिता-गूढार्थदीपिका
14. Siddhamantra-Praksh (Somtimes attributed to his father) सिद्धमंत्र प्रकाश
15. Harilila हरिलीला
16. Hridayadipa Nighantu हृदयदीपनिघण्टु
17. Some anonymous treatise of his on dharma is several times quoted in the Nirnaya Sindhu, in Acharya mayukha and once in Shradha mayukha. धर्मशास्त्र पर लिखित कुछ ग्रन्थ जिनको निर्णयसिंधु और आचार्यमयूख में अनेक बार व श्राद्धमयूख में एक बार उद्धृत किया गया है।
18. Vopadevashatakakavya बोपदेवशतक काव्य

गुरुपद शर्मा हालदार ने [12] बोपदेव द्वारा विरचित निम्न ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है।

१ मुग्धबोध व्याकरण
२ सिद्धमंत्र प्रकाश
३ शार्ङ्गधरसंहिता टीका
४ शतश्लोकी-सटीका
५ हेमाद्रीकृत-'शतश्लोकी' पर चन्द्रिका-टीका
६ हृदयदीपनिघण्टु
७ मुक्ताफल
८ महिम्नास्तोत्र की टीका
९ हरिलीला
१० कविकल्पद्रुम
११ काव्य कामधेनु

बोपदेव के वैद्यक ग्रन्थ

ऊपर उद्धृत बोपदेवकृत 'हरिलीला' और हेमाद्रिकृत 'मुक्ताफलटीका' के वचन से ज्ञात होता है कि बोपदेव ने आयुर्वेद या वैद्यक पर ९ ग्रन्थ रचे थे। परन्तु वे सब आज प्राप्त नहीं हैं, जिन ग्रन्थों की जानकारी अद्यावधि से प्राप्त हुई है, उनका परिचय निम्न पंक्तियों में उपस्थित किया जा रहा है।

(१) **सिद्धमंत्रप्रकाश**—यह बोपदेव के पिता वैद्यवर केशव की रचना 'सिद्धमंत्र' पर संस्कृत में टीका है। 'सिद्धमंत्र' निघण्टु विषयक यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन वि० संवत् १९६५ में बम्बई से मुरारजी वैद्य ने किया था। इस ग्रन्थ की रचना शैली धन्वन्तरि आदि निघण्टु ग्रन्थों की अपेक्षा भिन्न है। इस संक्षिप्त ग्रन्थ में, वातघ्न, वातघ्न-पितल, वातघ्न-श्लेष्मल आदि सत्तावन (५७) गुणभेद प्रदर्शित कर, प्रत्येक गुणवाले वर्ग में द्रव्यों का सूचना किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में रचनाकार ने यह प्रतिज्ञावचन दिया है कि किसी द्रव्य को चरक ने वातल कहा है, उसे ही सुश्रुत ने वातघ्न लिखा है, अतः इस संशय को निवारण करने के लिए यह ग्रन्थ बनाया गया है। केशव की यह कृति संक्षिप्त होते हुए भी बहुत ही महत्व की है। केशव 'वेदपुर' के निवासी थे। ग्रन्थ पर लेखक के ही पुत्र बोपदेव ने **'सिद्धमंत्रप्रकाश'** नामक टीका लिखी थी। इसका प्रकाशन व सपादन यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई ने १९०९ में किया था।

शार्ङ्गधरसंहिता की टीका (गूढार्थदीपिका) ज्यूलियस जाली ने वेबर की सूचना के अनुसार इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[13]

'आफ्रेक्ट' ने इस टीका का नाम 'गूढार्थदीपिका' लिखा है।

(३) **'शतश्लोकी'** और उस पर **'चन्द्रकलाटीका'**—

यह बोपदेव का प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ है। इसे 'बोपदेव वैद्यक शतक' के नाम से वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से भाषा-टीका सहित वि० संवत् १९५३ में छपवाया गया था। इससे पूर्व यह मद्रास से १८६० और बम्बई १८८९ में प्रकाशित हो चुका था।

शतश्लोकी पर तीन संस्कृत टीकाएं मिलतीं हैं। इनमें से एक स्वयं लेखक बोपदेव ने लिखी थी जिसे

लेखक **चन्द्रकला**' या '**शतश्लोकी चन्द्रकला**' नाम दिया है।

इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिलीं, अतः इसका वैद्य जगत् में बहुत प्रचार-प्रसार होना ज्ञात होता है। 'शतश्लोकी' को 'शतश्लोकी चन्द्रकला टीका सहिता लक्ष्मीशंकर ना० भट्ट भावनगर ने १९१२ में और मराठी अनुवाद सहिता कृष्णशास्त्री भाटवडेकर, बम्बई ने १८६० में प्रकाशित किया था।

इस ग्रन्थ में ६ अधिकार है—चूर्णाधिकार, गुटिकाधिकार, अवलेहाधिकार, घृताधिकार, तैलाधिकार और क्वाथाधिकार। यह योगसंग्रह है, जिसमें योग नाम, घटक निर्माण और उपयोग का वर्णन दिया गया है। ये सभी योग उपयोगी, व्यावहारिक और चिकित्सा कार्य में नित्य लाभप्रद हैं।

ग्रन्थारम्भ में बोपदेव ने सूर्य नमस्कार के रूप में मंगलाचरण किया है और प्रतिज्ञा की है कि १६-१६ श्लोकों में चूर्ण, गुटिका, लेह, घृत, तैल और क्वाथ का निरुपण करेंगे। प्रारम्भ में मंगलाचरण का १ पद्य और अंत में २ पद्य चिकित्सा - सम्बन्धी विशेष निर्देश सूचक एवं १ पद्य आत्मपरिचय ज्ञापक है। इस प्रकार—

इसमें कुल १०० श्लोकों का समावेश हैं। इस ग्रन्थ में जिन योगों का उल्लेख है; वे निम्न हैं—

(१) **चूर्णाधिकरर**—विजयचूर्ण, लवंगादिचूर्ण, चातुर्जातादिचूर्ण, धान्यादिचूर्ण, नारायणचूर्ण, नारसिंहचूर्ण, भाङ्गर्यादिचूर्ण, भास्करचूर्ण, आभादिचूर्ण, हिंग्वादिचूर्ण, शार्दलचूर्ण अग्निमुखचूर्ण, सितोपलादिचूर्ण (कुल योग १५)

(२) **गुटिकाधिकार**— कृष्णमोदक, मणिभद्रमोदक, हिंग्वादिगुटिका, दार्व्यादिगुटिका, सूरणवटिका, कांकायनगुटिका, त्रिजातादि मोदक, दीप्यादिमोदक, तालीसादिमोदक, शम्बूकादिवटी, कैशोरक गुग्गुलु, योगराज गुग्गुलु, आभादिवटक, खदिरादिगुटिका, कोलादिगुटी, दन्त्यादिवटक, मधुवटक, ओजस्करीगुटिका, अंजनीगुटिका। (कुल योग १९)

(३) **अवलेहाधिकार**—कुष्मांडावलेह, अगस्त्यहरीतक्यावलेह, आर्द्रकावलेह, भार्ङ्गीशिरानामावलेह, कंसहरीतकीनामावलेह, वासाहरीतक्यावलेह, चित्रकहरीतनामावलेह दंन्तीशिवानामावलेह, व्याघ्रीपथ्यावलेह, कण्टकारी-अवलेह, कुटजाष्टकावलेह, खदिराद्यवलेह, कल्याणकावलेह, च्यवनप्राशावलेह, अक्षावलेह, पंचजीरकावलेह (कुल योग १६)

(४) **घृताधिकार**—षट्पलघृत, वज्रघृत, रास्नादिघृत, फलघृत, पंचगव्यघृत, बिन्दुघृत, जातादिघृत, चांगेरीघृत, धन्वन्तरिघृत, आटरुषघृत, सुकुमारकघृत, वृहत्पंचमूलादिघृत, अष्टांगघृत, तिकाघृत, नारसिंहघृत (कुल योग १६)

(५) **तैलाधिकार**—प्रसारणीतैल, माषतैल, क्षारतैल, शतावरीतैल, वज्रतैल, नारायणतैल, बलातैल, **वाट्यादितैल (अनुवासनतैल)**, षड्बिन्दुतैल, मूर्वादितैल, लाक्षातैल, गुडूच्यादितैल, महानीलतैल, ब्राह्मीतैल (कुलयोग—१४)।

(६) **क्वाथाधिकार**—महाक्वाथ, त्रिरास्नादिक्वाथ, मूर्वादिक्वाथ, **दार्वादिनिरूह**, द्राक्षादिक्वाथ, भूनिंबादिक्वाथ, विषाण्यादिक्वाथ, शृंग्यादिक्वाथ, पथ्यादिक्वाथ, हिमादिक्वाथ, अतिविषादिकषाय; मुस्तदादिक्वाथ, गोक्षुरादिक्वाथ, हरिद्रादिक्वाथ, दीप्यादिक्वाथ, दार्व्यादिक्वाथ, त्रिफलादि, चंदनादि, न्याग्र्यादि, शृंग्यादि, यवादि, आटरूषकक्वाथ, द्राक्षादि, तिलक्वाथ, शुंठीक्वाथ प्रथम, शुंठीक्वाथ द्वितीय, रास्नादि, शुंठ्यादिक्वाथ तृतीय, फलत्रादि, धात्रीक्वाथ, छिन्नादि, पालिंद्यादि, अमृतादि, शृंग्यादि। (कुल योग ३५)

इस प्रकार उपलब्ध ग्रन्थ में १५+१९+१६+१६+१४+३५=११५ कुल योग मिलते हैं।[१४]

(४) **सिद्धान्तमंजरी**—यह अप्रकाशित ग्रंथ है। 'वनौषधिदर्पण' के 'उपोद्घात' में विरजाचरण गुप्त ने इसे बोपदेव की कृति लिखी है।

(५) **'हृदयदीप (क)'** या '**हृदयदीपकनिघण्टु**'—यह बोपदेव की मौलिक कृति है। 'शतश्लोकी' के समान इसका भी वैद्यजगत में पर्याप्त प्रचार-प्रसार रहा है। यह ग्रंथ स्वल्प वाग्भट की कृति अर्थात् अष्टांगहृदय में वर्णित द्रव्यों को स्पष्ट करने के लिए 'निघण्टु' के रूप में रचा गया था, जैसा कि ग्रंथांत में लिखित निम्न पद्य से ज्ञात होता है—

"यो वैद्यवन्द्यपदकेशववैद्यसूनुर्विद्वज्जनार्चितधनेश-
हृद्यशिष्यः।

स स्वल्पवाग्भटकृतिप्रभृतिप्रकाशं चक्रे निघण्टुममलं द्विजबोपदेवः ॥१७६॥

उस समय में अष्टांगहृदय का दक्षिण के वैद्यसमुदाय में पठन-पाठन का अधिक प्रचलन रहा हो, (वैसे, आज भी चरक एवं सुश्रुत संहिता की अपेक्षा अष्टांगहृदय का पठन-पाठन दक्षिण व महाराष्ट्र में विशेषरूप से किया जाता है)। इसकी लोकप्रियता के कारण इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएं और विषयानुसार विषय-स्पष्टीकरण करने वाले ग्रन्थ रचे गये थे। अष्टांगहृदय में निर्दिष्ट औषधिद्रव्यों के विशदीकरण की आवश्यकता भी अनुभव की गयी हो, और उसको पूर्ण करने हेतु बोपदेव ने 'हृदयदीपक' की रचना की हो। ऐसी मान्यता है कि सभी संहिताओं के साथ परिशिष्ट के रुप में निघण्टु भाग समाविष्ट था[15]। निघण्टु ग्रन्थों की रचना में बोपदेव और उसके पिता केशव, ने अपूर्व योगदान किया है। केशव ने निघण्टु ग्रन्थ 'सिद्धमन्त्र' लिखा है। इस पर बोपदेव ने 'प्रकाश' नामक टीका लिखी है, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

ग्रंथ की विषयवस्तु को निम्न ८ वर्गों (अध्यायों) में बांटा गया है।

(१) चतुष्पादवर्ग
(२) त्रिपादवर्ग
(३) द्विपादवर्ग
(४) एकपादवर्ग
(५) द्विनामवर्ग
(६) एकनामवर्ग
(७) नानार्थवर्ग
(८) मिश्रक वर्ग

इस ग्रन्थ में उपर्युक्त वर्गों के अंतर्गत द्रव्यों के पर्यायों का निरुपण किया गया है और उसके द्वारा ही द्रव्यों का परिचय उपस्थित किया गया है। विश्वप्रकाश, मेदिनीकोश आदि की भाँति वर्णानुक्रम शैली को नहीं अपना कर, बोपदेव ने इसमें माधवकृत 'पर्यायरत्नमाला' की छन्द शैली का अनुसरण किया है। यह निम्न स्पष्टीकरण से ज्ञात हो जाता है।

(१) **चतुष्पादवर्ग**—में प्रत्येक छंद के चारों पादों में (चरणों में) एक ही औषधि के पर्याय दिये गये हैं, यथा—

'मधुयष्टी यष्टिमधु क्लीतकं क्षौद्रसाह्वयम्।
यष्ट्याह्वं मधुक यष्टी चान्याम्भोजा मधूलिका ॥३॥'

(२) **त्रिपादवर्ग** में—छंद के तीन पादों (चरणों) में एक-एक द्रव्य के पर्याय बताये गये हैं—यथा

'आरग्वधो॰ व्याधिघातः शम्पाकश्चतुरंगुलः।
आरेवतो राजवृक्षो, देवाह्वं तु सुराह्वयम् ॥२४॥
सुरवृक्षो भद्रदारु देवदारु च दारु च॥'

(३) **द्विपादवर्ग** में—छंद के पादों में द्रव्य के पर्याय हैं—

मैनफल—'मदनः शल्यो गात्रः पिण्डीतो राठकरहाटो।
छोटीइलायची—एला भूरिश्च बहुला सूक्ष्मैलाऽन्या तु
वृहदेला ॥४५॥

(४) **एकपादवर्ग**—छंद के एक-एक पाद में एक-एक द्रव्य के पर्याय दिये हैं, जैसे—

स्वर्णक्षीरी हेमदुग्धा, हंसपादी त्रिपाद्यपि।
नीलिनी नीलिका नीली, बिल्व श्रीः श्रीफलं तथा ॥८४

(५) **द्विनामवर्ग**—इसमें प्रत्येक द्रव्य के दो-दो नाम निर्दिष्ट हैं—यथा

तिनिशः स्यन्दनो दूर्वा शाद्वलं बीजकोऽसनः ॥११३॥

(६) **एकनामवर्ग**—इसमें प्रत्येक द्रव्य के एक-एक नाम का उल्लेख है, जैसे—शंखिनी जीवको दाडिमः शिंशपा।

कंगुकः कच्छुका चोरको लक्ष्मणा ॥११९॥

(७) **नानार्थवर्ग**—इसमें एक ही शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग सूचित किया गया है—

यथा—'कोशातकी क्ष्वेडवेधश्चामार्गविपटोलिषु ॥१२८॥
स्थिरा गुहा मुद्गपर्णी माषपर्ण्याखुपर्ण्यपि।

(८) **मिश्रकवर्ग**—इसमें औषधि द्रव्यों के अतिरिक्त भोजन, पथ्य, पंचकर्म, मान और अन्य चिकित्सोपयोगी विधियों का भी वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ में द्रव्यों के पर्याय बताने में अमरकोश का काफी आधार ग्रहण किया गया है—ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है, क्योंकि छंदों के अनेक अंश दोनों में समान मिलते हैं।

'हृदयदीपक' का अधिकांश भाग 'अनुष्टुप' छंद में लिखा गया है। परन्तु अन्य छंद जैसे, आर्या, उपजाति, स्रग्धरा, स्वागता, वसंततिलका, स्त्रग्विणी और शालिनी भी प्रयुक्त हुए हैं।

यद्यपि अधिकांश छंद पूर्ण हैं, तथापि कुछ स्थानों पर छंद त्रुटित हैं और उनका अवशिष्ट भाग अन्य छंद से पूर्ण किया गया है।

उदाहरण-तथा—"वेतसो वंजुलोऽन्यस्तु विदुलो
जलवेतसः।

निम्बः पिचुमन्दश्चारिष्टोऽन्यो रम्पको
महानिम्बः ॥८०॥

इसका पूर्वार्ध अनुष्टुप छंद में है और उत्तरार्ध आर्या छंद में है। इस ग्रन्थ में ५५ द्रव्यों के भेदों का भी उल्लेख है।

ग्रन्थारंभ—

"श्री बैद्यनाथमजमक्षरमानतोऽस्मि यस्मिस्तरन्ति
मरुतीव मनोऽनुकूले ।
वैद्योपदिष्ट परिवारक कर्णधार दिव्यौषधीतरि-
भिरामयतोयराशिम् ॥१॥
चतुस्तिद्वयेकपादै कनामनानार्थमिश्रकैः ।
वर्गैर्निघण्टुं संक्षिप्य वक्ष्ये हृदयदीपकम् ॥२॥
मधुयष्टी यष्टीमधु क्लीतकं क्षौदुसाह्वयम् ।
यष्ट्याह्वं मधुकं यष्टी चान्याम्भोजा
मधूलिका ॥३॥

ग्रंथांत—इति हृदय दीपके मिश्रकवर्गः ।
यों वैद्यवन्द्यपदकेशववैद्यसूनुर्विद्वज्जनार्चितधनेश्वर
—हृद्यशिष्यः ।
स स्वल्पवाग्भटकृतिप्रभृतिप्रकाशं चक्रे निघण्टुममलं
द्विजबोपदेवः ॥१७६॥
(कविबोपदेवः—पाठाँतर)

राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर में स्थित ग्रंथांक २६५० की हस्तलिखित प्रति में इसके आगे निम्न पद्य अधिक मिलता है—

"विद्वद्धनेश्वरच्छात्रो शिषक्केश्वनन्दनः ।
बोपदेवश्चकारेमं विप्रो देवपदास्पदः ॥२॥
इति श्री वैद्यवन्द्यबोपदेवविरचितो हृदयदीपक-
निघण्टुः समाप्तः ॥"

इस कृति का लिपिकाल सं० १७७१ है।

---

१. यो वैद्यवन्द्यपदकेशववैद्यसूनुर्विद्वज्जनार्चित धनेश्वर हृद्यशिष्यः । (हृदयदीपक, १७६ वां पद्य)

२. हस्तलिखित ग्रंथांक ४५१०५, सरस्वती भवन, वाराणसी ।

३. देशानां वरदातरं वरमतः (च रमते-पाठांतर) सार्थाभिधानं महास्थानं (महाशान्तं-पा०) वेदपद सदग्रजगणाग्रंण्यं (देव पदास्पदाग्रजगणाग्रण्यं-पा०) सहस्त्रं द्विजाः ।
तत्रामीषु धनेश केशवविदौ वैद्यौ वरिष्ठौ क्रमाच्चक्रे शिष्यसुतस्तयोः कृतिमिमां श्रीबोपदेवः कविः ॥ (शतश्लोकी, अन्तिमपद्य)

४. लेभे जन्म महादेवादायुर्वेदं च भास्करात् ।
सम्मानं सिंहराजाच्च केशवः कारकोऽस्य सः ॥
(सिद्धमंत्र)

५. श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते ।
विदुषा बोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रि तुष्टये ॥
(हरिलीला)

६. द्रष्टव्य, उपोद्घात्, अष्टांगहृदय, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, (१९३९), पृष्ठ ३४।

७. बोपदेव की कृतियों के लिए देखिए, पी० के० गोडे, पूना-ओरियन्टेलिस्ट, पूना, भाग ४९, पृष्ठ ४९-६२।

८. हेमाद्रि और बोपदेव को देवगिरि के जिन यादव राजाओं ने आश्रय प्रदान किया था, उनका संबंध द्वारकाधीश श्रीकृष्ण से था। ८वीं शती के उत्तरार्ध में यादवों की शाखाएं आर्यावर्त में सर्वत्र फैल गई थीं। सौराष्ट्र के 'गिरनार' नामक स्थान पर यादवों की जो शाखा राज्य कर रही थी, उसका 'दृढ़प्रहरी' नामक एक व्यक्ति ने नासिक के पास ई० सं० ७४५ के लगभग अपना छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया था। यह स्थान चंद्रादित्यपुर या चांदुर (वर्तमान नासिक जिले में) बताया जाता है। इसी वंश में दृढ़प्रहरी के बाद १८वीं पीढ़ी में भिल्लम हुआ। उसने राज्यविस्तार कर शक सं० ११०९ में देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया था। उसके बाद भिल्लम से चौथी पीढ़ी पर महादेव नरेश हुआ था। अतः इन यादव राजाओं के शासनकाल में कृष्णोपासना चरमोत्कर्ष पर थी।

९. बोपदेव-कृत 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल' ग्रन्थों पर हेमाद्रि ने अपनी वृद्धावस्था में क्रमशः "हरिलीला भाष्य" और "कैवल्य दीपिका" नामक टीकाएं लिखी थीं।

१०. यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनास्फीताः प्रबन्धा दश प्रख्याता नव वैद्यकेऽथ तिथिनिर्धारार्थमेकोऽद्भुतः । साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य

मुग्धन्तर्वाणिशिरोमणेरिह गुणाः के के न
लोकोत्तराः ॥
(हरिलीला) ।

११ ऑफ्रेक्ट, केटेलॉगस केटेलोग्रम, पार्ट १, (१९६२), पृष्ठ ६१६ ।

१२ गुरुपद शर्मा हालदार, वृद्धत्रयी, पृ० ४६७ ।

१३. ज्यूलियस जॉली, इण्डियन मेडिसिन, पृ० ५

१४ **ग्रंथारंभः—**

मंगलाचरण ।

भैषज्य द्विजतारकाधिपतिरप्येतिक्षपेशः क्षयक्षीणांगः
शरणं शरण्यगणनाग्रण्यं यमतिच्छिदम् ।
देवं तरंगिप्रणम्य सरुजं सौख्याय कुर्मः शतश्लोकीं
षोडशकोक्तचूर्णगुटिकालेहाज्यतैलोदकाम् ॥१॥

अंतिम भाग—

कफे शीतं पित्ते दहनमनिले रूक्षमिति
याभिदोषी कोपस्य प्रवहणमसाधारणमदः ।
विमृश्य व्याधीनां मलबलवयःस्थानवशतः
प्रयोज्यं भैषज्यं स्वधिगतशतश्लोकभिषजा ॥१॥
दोषा दूष्यानलबलवयःकालदेशत्ववस्था
सत्वं सात्म्यं प्रकृतिमसकृद्यः परीक्ष्य प्रयुक्ते ।
योग रोगे भिषगनलसस्तस्य सिध्यत्यभीष्टं
तस्मादेतल्लिखितपठितार्थीन. धीभिर्निबोध्यम् ॥२॥
देशानां वरदातटं वरमतः सार्थाभिधानं महास्थानं
वेदपदं सदग्रजगणग्रण्यं सहस्रं द्विजाः ।
तत्रामीषु धनेशकेशव विदौ वैद्यो वरिष्ठौ
क्रमाच्चक्रे शिष्यसुतस्तयोः कृतमिति श्री बोपदेवः
कवि ॥३॥

अंतिमपुष्पिका—इति विद्वच्चक्रचूडामणिमहाकवि पंडित श्री बोपदेव-विरचिता शतश्लोकी समाप्ता ।

चंद्रकलाटीकान्त में—

कैलासाचलमौलिमंडनमणेर्नृत्योत्सवे यद्यशो
गायंति त्रिदशांगनाः कलरणद्गंभीरतारस्वनैः ।
चक्रे **चंद्रकला** सुशोभितशतश्लोकी पदोल्लसिनीं
त्रैलोक्यकवीन्द्रवृंदतिलकः श्री बोपदेवः कविः ॥४॥

रा० प्रा० वि० प्र० शा० का० उदयपुर स्थित ग्रंथांक ४७८ वाली 'शतश्लोकी' की ह० लि० प्र० संवत् १५९४, शाके १४५९ "प्रवर्तमाने विशवसुनाम्नि संवत्सरे" की है ।

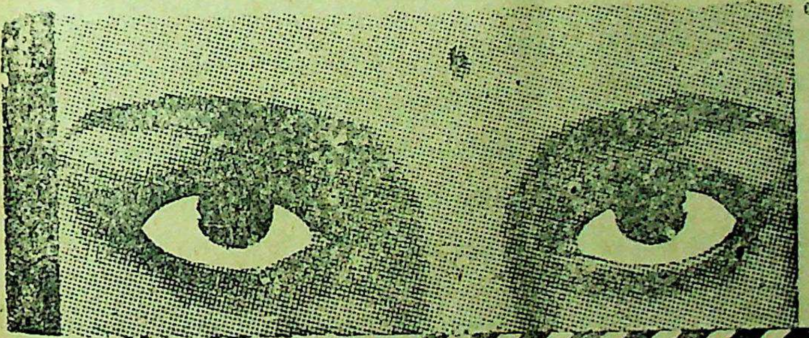
दुःखती आँखोंकी प्रसिद्ध दवा

बैद्यनाथ आइ-आँख

सदा व्यवहार करें ।

देशी दवाओं का
सब से बड़ा और
विश्वासी
कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
[illegible] पटना [illegible]

वनस्पति विवेचन

ASANA AND BIJAKA

Dr. M, C. Pandey,

B. A. M. M. S., Research Scholar, Department of Dravyaguna, Banaras Hindu University, Varanasi

Asana and Bijaka have been used frequently in almost all Ayurvedic Samhitas i.e. Charaka-shruta, Vagbhata Bhela & Kashayapa for the treatment of many diseases and as an important ingrdient of many medicinal preparations used for various diseases.

Charaka Samhita : This samhita is mainly concerned with Kayachikitsa and it is not the original work of Charaka but redaction of Agnivesh Samhita. So far as period is concerned Agnivesh, the original author of Agnivesh Samhita stands in 2000 B. C. in vedic period while Charaka its redactor comes in 2nd cent. B. C. while the last redactor Dradhbala belongs to Gupta period in 3rd or 4th Cent. A. D.

In Charak Samhita Asana is described among the drugs of Udard prashaman gana [1] and used for sheet pitta & Danta-Vishodhana [2] Asananiryas is described to be useful as Shirovirechan. [3]

It has been mentioned that it is mostly found in Jangal pradesh [4] and used for paitic-prameha. [5]

Bijaka is used for the treatment of Mutra-Krichchra, Ashmari, Kamala, Pandu-roga etc.

There are certain preparations of Asana & Bijaka which are described in above Samhita and have great medicinal value. They are :—

Preparations	**Indications**
1. Sarasava [7]	....
1. Chandanadhya Taila [8]	Jwara
3. Asan Kshara [9]	Rakta-pitta
4. Triphaladi kwatha [10]	Kustha (vatic) Switraroga
5. Mahaneel Taila [11]	Khalitya-palitya
6. Syonakadi lep [12]	Urustambha
7. Bijakarista [13]	Mutrakrichchra, Ashmari, Prameha, Kamala etc.

Asan is one of the ingredients of many rasayanas such as :—

8. Baladi-rasayan [14]
9. Brahmya-rasayan. [15]
10. Indorokta-rasayan [16]

It may be noted that the word Bijaka is no where found in Charaka except at one place in Chikitsasthan Chapter 16 which is evidently a work of Drdhbala. The word Asana is also continuing in the portion of Drdhbala along with Bijaka.

Sushruat-Samhita :—This samhita is mainly concerned with Shalya-Shalakya & like Charaka samhita it is not the original work of sushruta. The initial form of Sushruta samhita was Vridha-sushruta Samhita. Sushruta comes after Vridha Sushruta who has given a new shape to the text. Dalhan has mentioned in his commentary that Nagarjuna was the redactor of Sushruta samhita.

The period of Vridha Sushruta may be 2,000 B. C in Vedic period & Sushruta may be contemporary of Charaka. The last redactor Nagarjuna seems to be contemporary of Drdhbala in Gupta period. The existing Sushruta samhita appears to be much later than Charaka samhita because of fact that it was lastly modified by chandrat in 10 cent. A. D. In Sushruta Asana is alsaradigana [1] & is frequently used for Prameha [2], Snosh-pratishedha, [3] and for Purification of water.[4]

Bijaka is used for the treatment of all kustha [5] and specially for Mahakustha. [6] It is also used for Nasya.[7] It may be noted that Sushrut has not mentioned about any medicinal preparation and the word Asana & Bijaka come more frequent ly than charak-samhita. So it seems that Bijaka became more popular at the time of Sushruta.

Bhela Samhita : Bhela, the author of this text, as he is a colleague of Agnivesa may be placed in 2,000 B.C.

In this samhita Asana has been prescribed for the treatment of Urustambha, Visarpa,[1] Arochaka, [2] Diseases of ear i. e. Karnashoola, Karna.srawa etc

There are certain preparations described in text. They are :—

Preparations :	**Iudications :**
1. Banasakadi Yoga [3]	Urustambha
2. Karanjadi lepa [4]	,,
3 Tryushnadi Taila [5]	Karnasrawa Karna-shoola etc.

Kashyapa Samhita :—This is also one of the ancient Samhita but there are certain facts which point to its redaction in Gupta-period. Historians are of the opinion that Shasthipuja which is mentioned in Kashyapa Samhita is not found in works before Gupta period.

In Kashyapa Samhita Asana has been prescribed for the treatment of Rajyakshma[1] and is one of the ingredient of Mahabhayarista.

Vagbhata Samhita$_5$-Regarding indentity of Vagbhata there is a lot of controversy. Some scholars believe there was only one Vagbhata who was the author of both Astanga Sangraha aud Astanghridaya. While other believe that there were two vagbhatas belonging to different periods and having authorship of both the above texts. Vagbhata I and II respectively were author of Astarga-Sargraha and Astanga Hridaya.

Vagbhata I may be placed in 6th cent. A. D. while Vagbhata II in the begining of 7th cent perhaps both the works were completed before the Chinese traveller It 'Sing Visited the country in the last quarter of 7th cent. Vagbhata Samhita is compilation of both Charaka and Sushruta Samhita.

1. Astanga Sangraha - In Astanga Sangraha Asana has been described among Asnadigana dravyas which are used for Sleshma-prashmana[1]. It is frequently used incarseof Switra[2], Kustha, Kapha, Krimi, Panduroga, Prameha, Madodosh, Udarroga[3], Palitya[4] Dusta pratisyaya[5] Mukhroga,[6] Rakta-pitta[7] and vatic vrana.[8] It is also used for Timir pratisheda,[9] and Dantadhavana.[10] Asanopatra swaras has been used for blackening of hairs.[11]

Bijaka has been used for the treatment of Prameha,[12] and Kshaya. Asana and Bijaka have been used as a Rasayan[13] also.

There are certain preparations which are mentioned in texts They are;—

Preparations	**Indications.**
1 Pushpa Ghrita[84]	Rakta pitta
2 Sarpi Guda[15]	Prameha & Kshaya
3 Loha Rista[16]	Prameh
4 Narising Ghrita[17]	Rasayan
5 Vashisth-Muni-Prokta[18] Rasayan.	Kshtaja & Kshyajkas.

Astanga Haridaya:—In this Samhita Asana has been mentioned in Asanadigana[1] and used for the treatment Switra, Kustha, Kapha Krimi, Panduroga, Prameha &Medodosha. It has also been included among Kaphanashak-gana.[2]

Bijaka has been used for the treatment of Switra,[3] Switra-Krimi, etc.

There are many medicinal preparations of Asana and Bijaka described in text which are used for certain diseases, they are—

Preparations	**Indications**
1. Trifaladi Yoga[4]	Kushtha, Mehapidika and Bhagandar.
2. Sunthyadi Yoga[5]	Rasayan.
3. Bacuchi Rasayan[6]	Bardhkaya Janya-Vikar.

There are many other preparations, described in text which are being used as Rasayana.[7]

COMMENTATOR'S VIEWS

The commentators of Charak Samhita Jajjata[8] and Chakrapani[9] believe that Asana and Bijaka are synonyms denoting one and the same plant. Dalhan[10] and Arundutta,[11] the commentators of Sushruta Samhita and Astanga hridaya respectively are also of the same opinion, but in Chakrapani's commentary on sushrut samhita[12], it is mentioned at that time Asara was much popular but some took it as pitasal, it shows controversy regarding their identity. Vopadeva[13] in his commentary on Sidhamantra has mentioned that Asana and Bijaka are synonyms.

Nighantus:--

MEDAEVAL PERIOD

Astang Nighantu (8th Cent. A. D)— In this Nighantu Asana[1] and Bijaka have been mentioned as Synonyms.

Paryay-Ratnamala (9th Cent. A. D.)— In this Nighantu, the word Bijaka is not found but Asana has been used for two different plants i. e. Pitasala[2] and Mahasala.[3] Pitsala seems to be the Pterocarpus marsupium and Mahasala may be Termi lia sps. on the basis of synonym Ajakaroa.

Dhanwantari Nighantu (10th Cent. A. D.)—In this Nighantu Asana[4] and Bijaka have been used as Synonyms and Bijaka has been used for Kaphapitta.

Nighantu Sesa (12th Cent. A. D.) : In Nighantu Sesa, Bijaka[5] and Asana have been used as synonyms and two varieties of Bijaka has been described i. e. Sikhigriva[6] and Gaumutraka, of which Sikhigriva is better.

Shodhal (12th Cent. A. D.)—In this Nighantu word Bijaka is not found and sana[7] has been used for Kustha, Shool, Switra, Vata and kapha.

Hridaya Deepak (13th Cent. A. D.) : In the Nighantu Asana[8] and Bijaka have been described as synonyms.

Madanpal Nighantu (15th Cent. A. D.) : In this Nighantu Asanak[9] has been given the synonyms of Bijaka and used for Kustha, Visarpa, Switra, Prameh etc.

Raj Nighantu (15th Cent. A. D.) : In this Nighantu Vijavraksha[10] (Not Bijaka) has been mentioned as synonyms of Asana & Asanasar has been used for Galdosha & Rakta-Mandal.

Keyadeva Nighantu (15th Cent. A. D.): In this Nighantu Bijaka[11] and Asana have been used as Synonyms and Bijaka is used for Krimi, Visarpa, Kustha, Kandu etc.

Bhava-Prakasa Nighantu (16th Cent. A. D.) : In this Nighantu Asana[12] and Bijaka have been used as synonyms. Bijaka has been used for the treatment of Kustha, Visarpa, Switra, Meha, Gudkrami etc.

MODERN PERIOD

Shiva Kosa (17th Cent. A. D.) : According to Shivakosa Bijaka[1] was used for two drugs i. e. Bijapur[2] and Pitasar, looking to our topic Bijaka was difinitely used for pitasara which may be Pterocarpus marsupium as indicated by it's colour but the word Asana has not been used as synonyms of Bijaka anywhere. On the other hand Sarja and Sarjaka has been given as synonyms of Asana[3] it means that same plant of the type sarja was taken by Asana which may be Terminalia sps. It may be noted that in same quarters the Terminalia tomentosa is locally known as Saja, which is clearly a modified form of Sarja. The commentator of Shivakosa which belongs to a later date takes Asana[4] and Bijaka as synonyms.

Raja vallabha Nighantu (18th Cent. A. D) : In this Nighantu word Bijaka is not found and Asana[5] has been used as Dantakastha.

Saligram Nighantu (1967) : In this Nighantu Asana[6] and Bijaka has been used as synonyms.

Ayurveda Vigyan (19th Cent. A. D.) : In this Nighantu Asana[7] and Bijaka have been used as synonyms and Bijaka is used for the treatment of Kustha, Visarpa, Switra etc.

PROBLEM

As above discription reveals, Asana & Bijaka were being used in Ayurvedic literature as synonyms but later on many texts have mentioned them for two different plants.

It may be clear by seeing the Paryayaratnamala that in this nighantu word Bijaka has not been used at all. Only Asana has been mentioned for two different plants i. e. Pitsala[1] and Mahasala.[2] Pitsal may be Pterocarpus marsupium. and Mahasala may be Terminalia or Bredalia sps. Chakrapani has mentioned in his commentary on Charaka Samhita that Asana and Bijaka as synonyms (C. chi. 16/106) but in his commentary on Sushruta Samhita he says "असनः प्रसिद्धः पतिशाल इत्यन्ये:" (s su. 38/9), it means that Asana was a common plant while some took Pitsal by the same. It clearly indicates that there was controversy regarding the identity of Asana at the time of Chakrapani. The common plant taken by Asana may be Terminalia sps. While the plant pitsal taken by other is clearly Pterocarpus marsupium.

Hema Chandra in his Nighantu-sesa has mentioned two types of Bijaka i.e Sikhigriva & Gaumutraka.[1] These words indicate the colour of the infusion extracted from the wood of the plant. Sikhigriva means the colour resembling that of the peacock's neck (bluish-green) and Gaumutraka means the straw colour like that of Cow's urin. Apprently these indicate two different plants having infusion of different colours. The former may be pterroarpus marsupium while the later may be Terminalia or Bredalia sps.

The commentater of Kayadeva Nighantu Acharya Surendra Mohan believes that Bijaka is Pterocarpus marsupium[2] and Asana is Terminalis tomentosa. The commentator of Bhava Prakasa Nighantu[3] Sri K.C. Chunekar is of the same opinion. Thakur Balwant Singh has mentioned in his texts i.e. "Banoshadhi-dershika[4]" and "Bihar kiVanaspatiyan[5] both the plant separately by the name Bijaka (Pterocarpus marsupium) and Asana (Terminalia tomentosa). Bapalal Ji also supports the above idea with the explaintion that Bijaka is pterocarpus marsupium[6] and Asana is Bredelia montana (in Gujrat) and Terminalia tomentosa (in Maharastra). In "Bhartiya Vanoshadhi" by Sri Kalipad Viswas, Bijaka and Asna have been described as Synonyms[7] for Terminalia tomentosa while Pitasala (Synonyms of Bijaka described by many other text) as pterocarpus marsupium. Although it seems to be confusing but it is very clear that there were two separate plants in the opinion of author. In wealth of India[8] and Flora of Bombay,[9] Asana has been used for Bredalalia sps. and not for Pterocarpus marsupium. It also indicates that there were two separate plants

By the aforesaid statement of Various scholars it is evident that though Asana was definitely used for Bijaka (Pterocarpus marsupium), in medeaval Period starting from Paryaratnamala two different plants began to be taken by the word Asana. Nighantu-sesa also confirms this. The Commentators and Scholars have also taken two different plants for Asana & Bijaka i.e. Terminalia tomentosa and Pterocapus marsupium. Now it is to be considered whether Asana & Bijaka be taken as synonyms or they may be allowed to denote two different plants.

Discussion : As described above, Asana & Bijaka are frequently used for the treatment of many diseases. In tradition Asana & Bijaka were taken as two different plants by some scholars. They take Terminalia tomentosa or Bredalia sps. by Asana & Pterocarpus marsupium by Bijaka but now it is known that Asana & Bijaka are the same and these two names are given to the same plant i. e. Pterocarpus marsupium. The facts are as follows —

1. Asana & Bijaka have been replaced each other in identical Yogas It may be clear if we compare the Udarda—prasamana group of drugs of Charaka [1] and Astanga Sangraha [2] where there is Asana in the former and Bijaka in the latter.

2. Asana Niryas has been mentioned as "Sirovirechana" [3] by Charaka. Niryas (Gummy exudation) is only found in Pterocarpus sp., not in Terminalia or Bredalia sps

3. In Kustha & Meha Asana-sar has been used more frequently and Asana has been included in the Salsaradi [4] or Asanadi group [5] (group of wood drugs used for above diseases). If Bijaka would have been different it exclusion from this group and scarce mention in the chapter of Kustha could not de reasonably explained.

4. In Kustha Chikitsa, Charaka has not mentioned Bijaka even once and Sushruta [6] & Vagbhata [7] have mentioned it only once while at other places in Charaka, Sushruta & Vagbhata Asana has been used. The Kusthaghna couple of Agams, Khadira and Bijaka quoted by Sushruta has been retained in Samhita as Khadirasana. It appears that for the same region, the name Asana became more popular and was more frequently used in Samhita period than the other name Bijaka which was common in latter period. The local name Bijaya-sala seems to be derived from Bijakasar as well as the local name Biya or Biyan.

In Sandigadh Nirnaya Vanosadhi Sastra by Pt. Bhâgirath Swami, it is clearly mentioned that Asana & Bijaka are the same [8] i. e. Pterocarpus marsupium.

In Kosas i. e. Amar Kosa, [9] Vaijayanti Kosa, [10] Medani Kosa [11] word Bijaka is not found, only Asana has been mentioned as synonyms of Pitasala. It indicates that there was no controversy regarding the identity of Asana and Bijaka, and they toook only pitsale as pterocarpus marsupium.

Summary:

In Charaka Samhita the word Asana has been used. Bijaka comes only in the portion of Dradhbala, In other texts Asana & Bijaka have been used as synonyms, meaning the same plant. The commentators have also supported this idea by their explaination, so we should take pterocarpus marsupium by both the word Asana & Bijaka. The parts which are being used for the treatment purpose are sara, Niryas, Flowers, leaves in difierent preparations like Kwath (decoction) Asaw, Arista, Swaras, Siddha taila, Ghrita and Kshar etc.

Acknowledgement

The author is very much thankful and expresses deep gratitude to prof. p.v Sharma Head of the Department, for guidance and continuous inspiration. Thanks, are also due to Sri Balwant Singh and Dr, K.C. Chunekar, the author of the book "Glossary of Vegetable drugs in Brahatriyi" which has been helpful in the discussion of the subject.

Ref.

1. C. S. S. 17/43
2. C. S. S. 5/73
3. C S. S. V. 8/151
4. C. S. K. 1/8

5, C. S. Chi. 6/32
6. C. S. S. 25/49
7. C. S. Chi. 16/106
8. C. S. V. 3/258 ·
9. C. S. Chi. 4/94
10. C. S. Chi. 7/101
11. C. S Chi. 26/272
12. C. S. Chi. 27/56
13. C. S. Chi. 16/106
14. C. S. Chi. 1-2P./12
15. C. S. Chi. 1-3P/3
16. C. S. Chi. 1-4P/13

Ref :—

1. S. S. S. 38/11
2. S. S. Chi 11/8
3. S. S. U. 41/33
4. S. S K. 3/9
5. S. S. Chi. 6/18,9/6,9/31.
6. S. S. Chi. 10/3
7. S. S. Chi 25/19

Ref :—

1. Bhe. S. Chi. 17/31
2. Bhe. S. Chi. 23 P/213
3. Bhe. S. Chi. 16 P/179
4. Bhe. S Chi. 16 P/180
5. Bhe. S. Chi. 23 P/211.

Ref,:—1. Ka. S. Rajyakshma Chikitsa. P. 110.

Ref:–

1. A. S.S. 14/12
2. ,, 16/13,14,21/16,17,29,45,22/5,10,
3. ,, 15/42
4. A.S. U.28/45
5. ,, 24/22
6. ,, 26/50
7. A.S.Chi 3/70
8. A.S.U. 30/43,53
9. ,, 16/12
10. A.S.S. 3/13
11. A.S.U. 28/48
12. A.S.Chi. 14/5,7,21,23;
13. A.S.U. 49/224.225, 226,227, 232,241, 249.
14. A.S,Chi. 3/37
15, A.S.Chi. 7/48
16. A.S.Chi. 14/17
17. A.S.U. 49/247
18. A.S.Chi. 5/90

Ref.:––

1. A.H S. 15/19,20;Chi.12/14,29,41
2. A.H.S. 15/7
2. A.H.Chi. 20/82
4. A H U, 28/42
5. ,, 39/105
6. ,, 39/107
7. ,, 39/152,149,150,153,155,174.
8. C.S.Chi. 1-4pa/13
9. ,, 16/106
10. S.S.Chi. 11/8,25/19,U.41/30
11. A H.U. 39/150,152,174.
12. S.S.Su. 38/9
13. S.M. Kaphap ittaghnavarga pp. 70.

Ref—

1. A- N. p. 10-
2. P. R. M. 345
3. P. R. M. 355
4. D. N. 125
5. N. S. 99, 100
6. N. S. 101
7. S. N. p. 48 and Rasaladivarga.
8. H. D. Ekpad varga 113
9. M. P. N. Vatadi varga 5/34, 35
10. R. N. 207. 208
11. K. N. 743, 744
12. B. P. N. Vatadivarga 28, 29.

Ref—

1. S. K. 50

2. S K. 51.
3. S K. 34, 53, 108, 190
4. S K. 34, 53, 190
5. R. V. N. 1/6, 7
6. S. N. Batadiyarga p. 670
7. Ay. V.—Cap.19, p. 585.

Ref:—

1. P.R.M. 345
2. P.R.M. 355
3. N.S. 101
4. K.N.p. 192
5. B.N.P. 524
6. B D.P. 86
7. B.K.B.P. 46,57
8. N.A.P. 380
9. B.B.P. 212 (part I) and 243 (part (partII)

10. W.O.I.p, 227 (Vol. I).
11. F.O.B.p. 68 (Vol. III)

Ref—

1. C. S. S. 4/43
2. A. S.S. 15/42
3. C. S. V. 8/151
4. S. S. S. 38/6
5. A. S. S. 13/13,14
6. S. S. Chi. 9/50
7. Vag. S. Chi. 20/87,
8. S. N. B. S. P/627
9. A. K. 4/43
10. V. K. 3/39
11. M. K. Nantavarga 20.

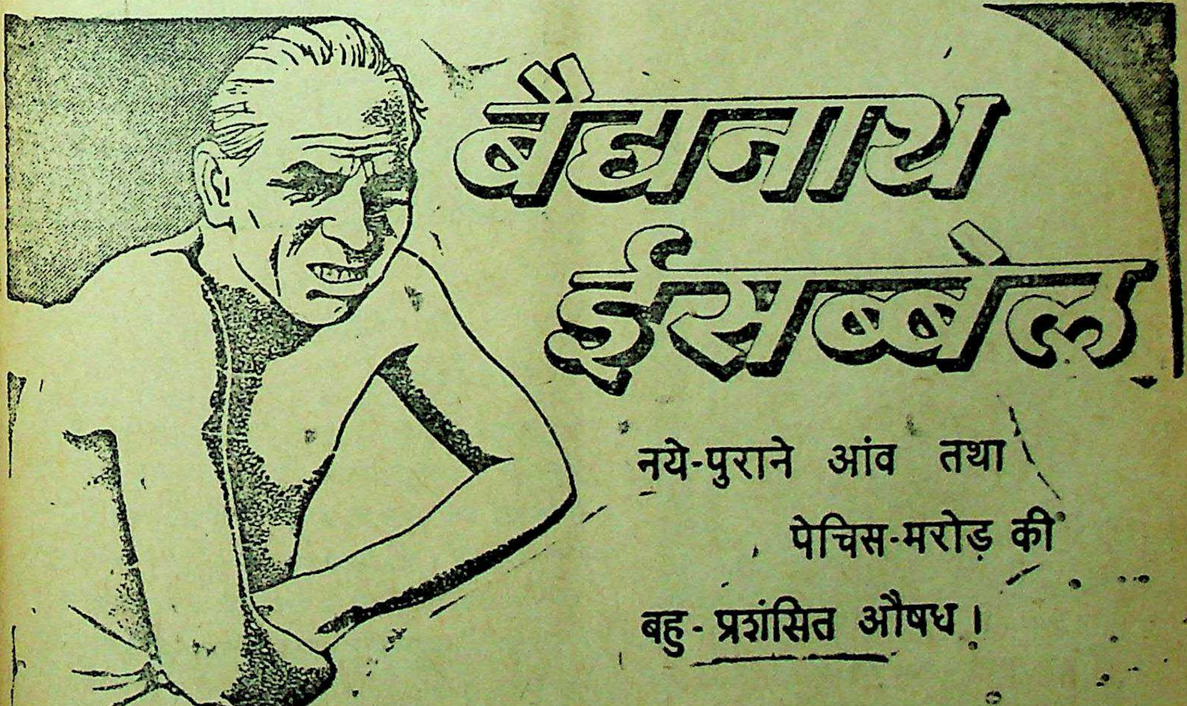

बैद्यनाथ
ईसब्बोल
नये-पुराने आंव तथा
पेचिस-मरोड़ की
बहु-प्रशंसित औषध।

रोहीतक के याकृत कर्म का परीक्षण

श्री भृगुनाथ सिंह एवं प्रियव्रत शर्मा
द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

रोहीतक का प्रयोग यकृद्रोगों में प्रसिद्ध है। सम्प्रति इस नाम से दो द्रव्यों का प्रचलन है :—

1. Amoora rohituka W. & A. (अमूरा रोहीतक)

2. Tecomella undulata (G. Doa) Seem. (टेकोमेला अण्डुलेटा)

प्रस्तुत अध्ययन में रोहीतक के यकृत कर्म का परीक्षण किया गया है तथा उपर्युक्त दोनों द्रव्यों के कर्म का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

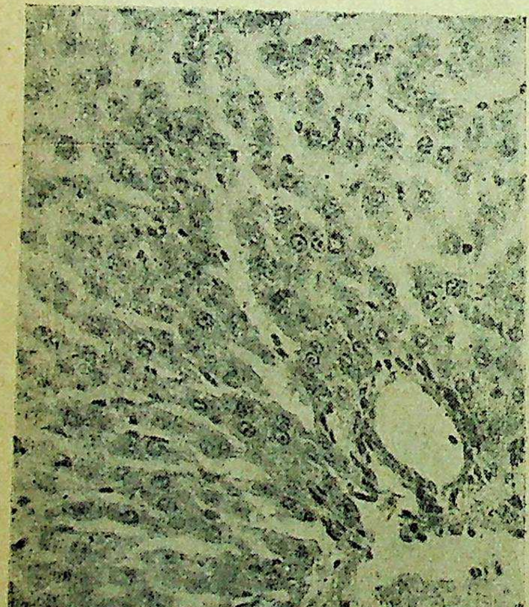

चि० सं० १
नियंत्रित वर्ग

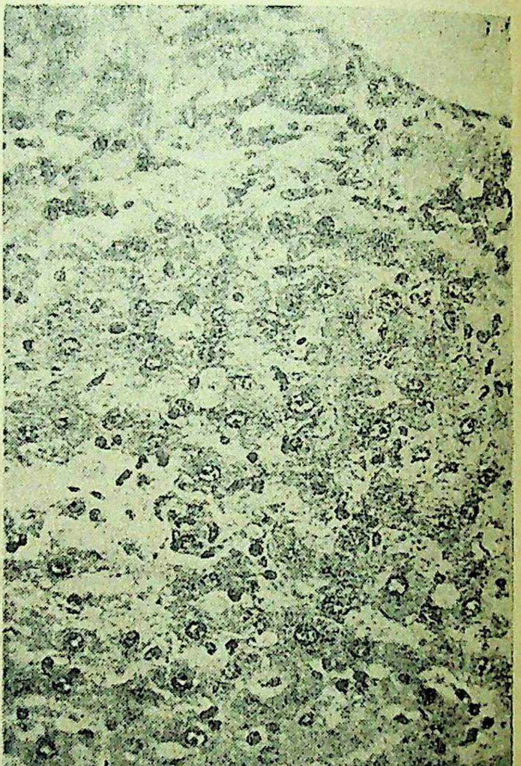

चित्र सं २
चिकित्सित वर्ग

वस्तु एवं विधि

प्रस्तुत प्रयोग के लिए १-१ किलोग्राम भार के ६-६ शशक के तीन समूह बनाये गये। एक शशक समूह नियन्त्रित वर्ग तथा अन्य दो समूह चिकित्सित वर्ग में निर्धारित किये गये। प्रत्येक शशकसमूह को एक सप्ताह तक प्रयोगशालीय वातावरण में रखा गया। तत्पश्चात् प्रत्येक शशकसमूह के शशकों के सिरम बिलीरुबिन का मापन किया गया। इन सभी शशकों को पेन्टोबारबिटोन सोडियम ४५ मि० ग्रा० प्रतिकिलोग्राम भार की मात्रा में

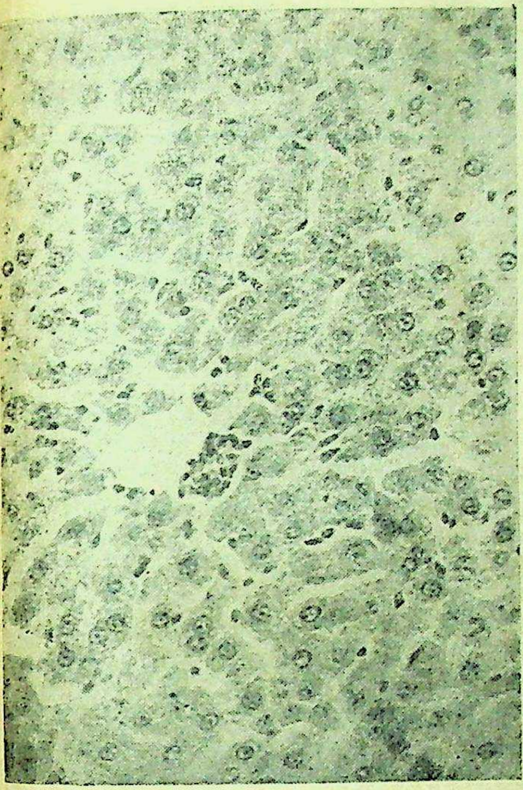

चित्र सं० ३
चिकित्सित वर्ग

अन्तःउदरावरण सूचीवेध द्वारा दिया गया। अब प्रत्येक समूह के शशकों का पृथक्-पृथक् सोने का काल (सुप्तावधि) अंकित किया गया। पुनः कार्बनटेट्राक्लोर ०-०२८ मि० लि० एवं अरेकिस आयल ०-११२ मि० लि० मात्रा के अनुपात में विलयन तैयार कर, इसमें से १.४ मि० लि० प्रत्येक समूह के शशकों को अन्तःपेशीय सूचीवेध द्वारा क्रमशः तीन दिनों तक दिया गया। अंतिम सूचीवेध के एक सप्ताह पश्चात् प्रत्येक समूह के शशकों को सिरम विलिरुविन एवं सुप्तावधि का परीक्षण किया गया तथा प्रत्येक शशकसमूह से २-२ शशक को मारकर यकृत् निकाल कर सुरक्षित रख लिया गया। तत्पश्चात् समूह सं० १ (नियन्त्रित वर्ग) के शशकों को सामान्य आहार पर तथा अन्य परीक्ष्य समूहों के शशकों को सामान्य आहार के अतिरिक्त उन्हें परीक्ष्य द्रव्य के सकल धनमत्व का जलीय विलयन मुख द्वारा दो सप्ताह तक पिलाया गया। दो सप्ताह के अन्त में पुनः सभी समूहों के शशकों का सिरम विलिरुबिन, सुप्तावधि का मापन कर परिणाम को अंकित किया गया तथा २-२ शशकों को प्रत्येक समूह से लेकर उन्हें मारकर सभी का यकृत् सुरक्षित रखकर उतक विकृति का अध्ययन किया गया। उपर्युक्त परिणामों का तुलनात्मक संख्यिकी मूल्यांकन भी किया गया।

परिणाम

उपर्युक्त प्रयोग में अमूरा रोहीतक में चिकित्सित शशकवर्ग में सीरम विलिरुविन तथा सुप्तावधि टेकोमेला की अपेक्षा अल्प पाया गया (तालिका सं० १, २)। उतक विकृति के अध्ययन में अमूरा रोहीतक से चिकित्सत शशक वर्ग में टेकोमेला की उपेक्षा अल्प उतक विकृति पायी गयी (चित्र, सं० १,२,३) जिससे अमूरा रोहीतक के उत्तम यकृद्रोगहर होने की पुष्टि होती है। सांख्यिकी मूल्यांकन से भी परिणाम की संपुष्टि हुई।

निष्कर्ष :—

प्रस्तुत प्रयोग के आधार पर रोहीतक का यकृद्रोगहर कर्म प्रमाणित हुआ तथा टेकोमेला अण्डुलेटा की अपेक्षा रोहीतक अधिक कार्यकर सिद्ध हुआ।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
सदा, सबके लिए सेवनीय पौष्टिक रसायन

तालिका सं० 1

चिकित्सित शशकों के सीरम बिलिरूबिन का तुलनात्मक परीक्षण-परिणाम

Group	Mean + S. D.	
	After carbon tetrachlor	After treated with drugs
1. Amoora robitak	109	0.0
	+0.031	+0.0
2. Tecomella undulata	0.313	−0.015
	+0.135	+0.019
3. Control	1.999	1.687
	+0.1001	+0.1614
Comparison of R & T U	t=2.914*	t/1
Control Vs. AR	t=26.91***	t=19.21***
Control Vs TU	t=8.2***	t=22.92***

तालिका सं० 2

चिकित्सित शशकों में पेन्टोबारबिटोन प्रयोग का परीक्षण परिणाम

Group	Mean + S. D.	
	After carbon tetrachlor	After treated with drug
1. Amoora robitak	1.105	−0.375
	+0.075	+0.103
2. Tecomella undulata	0.82	1.07
	+0.305	+0.121
3. Control	3.11	4.25
	+0.317	+0.127
Comparison of A. R & T. U.	t=2.229*	t=1.618
Control Vs. A. R.	t/1	t=51.2***
Control Vs. T. U.	t=5.47***	t=39.62***

क्लीतक

डा० कृष्ण प्रसाद मिश्र
द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-५

क्लीतक आयुर्वेद का एक संदिग्ध द्रव्य है। इस लेख में इस पर विचार किया जा रहा हैं।

संहिता ग्रन्थ

चरक संहिता

चरक संहिता में क्लीतक की दो जातियों का उल्लेख मिलता है। एक आनूप और दूसरा स्थलज[१]। इस ग्रन्थ में द्रव्यों के व्यवहार्य अंग की दृष्टि से वर्गीकरण किया है जिसमें मूलिनी औषधियों के मूल और फलिनी औषधियों के फलों का प्रयोग कहा गया है। इस संहिता में क्लीतक फलिनी औषधियों के अन्तर्गत पठित है और दोनों प्रकार के क्लीतक स्थलज और जलज का विरेचन कर्म (संशोधनकर्म) के लिए प्रयोगार्थ निर्देश किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि चरक ने इसके फलों को ही श्रेयस्कर मानकर चिकित्सा कर्म में इसका विधान बतलाया है। पुनश्च विमान स्थान में भी विरेचन कर्म के लिए क्लीतक के प्रयोग को उत्तम माना गया है[२]। इस ग्रन्थ में इसके अतिरिक्त और कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

सुश्रुत संहिता

सुश्रुतसंहिता में क्लीतक दो स्थानों (कल्प और चिकित्सा स्थानों) में वर्णित है। इस संहिता में चरक की अपेक्षा दो विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम तो क्लीतक स्थावर मुल विषों के अन्तर्गत वर्णित है[3] और दूसरा यह कि इसके मूल को ही प्रयोज्य माना गया है। पित्तार्बुद और पित्तोदरी रोगो की चिकित्सा में इसका प्रयोग श्रेयस्कर माना है[४]।

अष्टांग संग्रह

इस संहिता में क्लीतक का उल्लेख विरेचक द्रव्यों के अन्तर्गत है तथा इसके फलों को ही विरेचन कर्म के लिए उपयोगी माना है[५]। स्पष्टतः इसमें चरक संहिता का अनुसरण किया गया है।

अष्टांग हृदय

इस संहिता में क्लीतक का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

निघण्टु और कोष

अष्टांग निघण्टु

सारिवादिगण के अन्तर्गत मधुयष्टी के पर्यायों में क्लीतक का निर्देश किया गया है[६] यथा यष्टीमधु, यष्टयाह्व, मधुकं, क्लीतक इत्यादि।

धन्वन्तरिनिघण्टु

इस ग्रन्थ में क्लीतक मधुयष्टी विशेष के लिए आया है तथा इसमें दो भेद स्थलज और जलज बतलाये गये हैं[७]।

निघण्टुशेष

इस ग्रन्थ में क्लीतक जलज मधुयष्टी के लिए आया है[८] तथा नीलिनी के लिए क्लीतकिका शब्द आया है[९]।

मदनपाल निघण्टु

इस ग्रन्थ मे क्लीतक जलजा मधुयष्टीं के पर्याय माने गये हैं[१०] नीलिनी के पर्याय में क्लीतिका या क्लीतनिका नहीं दिया है।

राजनिघण्टु

क्लीतनक (मधुयष्टीविशेष) के पर्याय में क्लीतनक, मधुवल्ली, मधूलिका, मधुरलता, मधुपर्णी, मधुरसा, अतिरसा और शोषापहा कहो गये हैं[११] (१८४)। इसके दो भेद हैं स्थलज और जलज[११] (१८५)। यह अधिक स्वादिष्ट और मधुररसयुक्त होता है। यह शीत, गुरु, बल्य, वृष्य, चक्षुष्य, रक्तपित्त और व्रणशामक हैं[११] (१८६)।

भावप्रकाशनिघण्टु

इस ग्रन्थ में मधुयष्टी के पर्याय रूप में क्लीतक का प्रयोग किया गया है[12]।

शालिग्रामनिघण्टु

इस ग्रन्थ में क्लीतका मधुयष्टी का पर्याय दिया है[13]। निघण्टु रत्नाकर के श्लोक इस प्रसंग में उद्धृत है जिसमें मधुवल्ली दो प्रकार की बतलायी गयी है, जलज और स्थलज[14]। शालिग्राम ने इसका विवरण देते हुए लिखा है कि मुलेठी का क्षुप होता है और दूसरी बेलवाली मुलेठी होती है। जलजयष्टी के अर्क का गुण भी लिखा है[15]। नीलिनी का पर्याय क्लीतिका दिया है[16]।

अमरकोष

मधुकं क्लीतकं यष्टीमधुकं मधुयष्टिका (वनौषधि वर्ग ४) १०९

क्लीतमधाटष्टयं कलति। कलक्षेपे (चु० प० से०) इतिऽः। क्लीं क्लीवत्वं तकति। वृष्यस्वात्। तक हसने (भ्वा० प० से०)। मूल विभुजादिकः (वा०३/२/५)। क्रीतकं क्रयोऽस्त्यस्याः। कपिलिकादित्वात् (वा० ८/२/१८) लत्वम्। अतः (५/२/११५) इतिठन। क्रातकं विनिमयः 'इति स्वामिमुकुटौ।

जो क्लैव्य को दूर करे और जिसका क्रय-विक्रय किया जाता रहा हो या विनिमय होता रहा हो उसे क्लीतक संज्ञा दी गयी है।

टीकाकार

चक्रपाणि (चरक व्याख्या)

आचार्य चक्रपाणि ने क्लीतक को मधुयष्टी मानकर इसके फलों के प्रयोग का विरेचन कर्म के लिए निर्देश दिया है।[17] इनका विचार है कि सुश्रुत ने यद्यपि इसके मूल को ही श्रेयस्कर माना है परन्तु विरेचन कर्म के लिए इसके फल ही उत्तम हैं।

डल्हण (सुश्रुत व्याख्या)

आचार्य डल्हण ने एक स्थान पर क्लीतक को मधुयष्टी माना है[18] किन्तु कल्प स्थान में मूल विषों की चर्चा करते हुए कहा है कि इन द्रव्यों का प्रयत्न करने पर भी ज्ञान संभव नहीं है अतः इनके सम्बन्ध में जानकारी हिमवत् प्रदेश में रहने वाले किरातादि लोगों से करनी चाहिए।[19]

अरुणदत्त (अष्टांग हृदय व्याख्या)

इस सम्बन्ध में आचार्य ने यष्टयाह्व से क्लीतिका का ग्रहण किया है।[20] इसी प्रकार सारिवादिगण में 'यष्टी क्लीतक संज्ञा' कहा गया है।[21]

विमर्श :

चरक संहिता में क्लीतक का उल्लेख फलिनीगण में विरेचन कार्य के लिए हुआ है। इससे पता चलता है कि चरकोक्त क्लीतक विरेचन द्रव्य है जिसके फलों का प्रयोग विहित था। सुश्रुत में इसके विरेचन कार्य का संकेत तो किया है किन्तु उसकी गणना मूल-विषों में की गयी है। इससे स्पष्ट है कि इसके मूलों का प्रयोग होता था जिनसे विषाक्त प्रभाव उत्पन्न होता था। यह संभव है कि इसके फल और मूल दोनों ही विरेचन होते हैं। जैसे-दन्ती, इन्द्रायण आदि के होते हैं और उनके उपयोग-व्यतिक्रम से विषाक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार चरक और सुश्रुत का क्लीतक एक हो सकता है किन्तु सुश्रुत ने मूलविषों के लक्षण में प्रलाप, मोह, उद्वेष्टन लिखे हैं किन्तु विड्भेद या अतिसार नहीं लिखा है, इससे संदेह होता है कि यह क्षोभक विष न होकर मादक विष हो और इस प्रकार चरकोक्त क्लीतक से सुश्रुतोक्त क्लीतक भिन्न हो। एक और संभावना यह भी हो सकती है कि इसके फल विरेचक हों जिनका गुल्म आदि रोगों में प्रयोग होता हो और मूल मादक विष हो।

मध्यकालीन निघण्टुओं में क्लीतक मधुयष्टी का पर्याय माना गया किन्तु प्राचीन मान्यता ऐसी नहीं हो सकती, इसमें निम्नांकित प्रमाण दिये जा सकते हैं।

११ मधुयष्टी एक उत्तम रसायन कहा गया है और मेध्य भी है जबकि क्लीतक विष की श्रेणी में आता है और मादकता उत्पन्न करता है, इसके अतिरिक्त क्लीतक तीव्र विरेचक है, जबकि मधुयष्टी मधुर स्निग्ध होने के कारण अनुलोमन मात्र है। इस प्रकार गुण और कर्म की दृष्टि से दोनों विरुद्ध है।

(२) चरक ने क्लीतक के फलों का प्रयोग बतलाया है किन्तु मधुयष्टी के मूलों का ही प्रयोग होता है। चक्रपाणि ने जो इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया है कि विरेचन में मधुयष्टी के फलों का ही प्रयोग प्रशस्त है, यह परम्परा-विरुद्ध होने के कारण स्वीकार्य नहीं हो सकता।

निघण्टुओं में क्लीतकिका या क्लीतनिका आदि शब्द नीलिनी के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु चरक और अष्टांगसंग्रह में नीलिनी और क्लीतनिका का एकत्र पाठ होने से दोनों के ऐक्य का निराकरण हो जाता है और यह स्पष्ट है कि क्लीतनिका और नीलिनी भिन्न द्रव्य हैं।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने गुञ्जा की ओर संकेत किया है किन्तु सुश्रुत में मूल विषों के अन्तर्गत क्लीतक के साथ गुञ्जा भी पठित है। अतः क्लीतक गुञ्जा से भिन्न द्रव्य है।

इस प्रकार प्राचीन संहिताओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि क्लीतक या क्लीतनिका मधुयष्टी, नीलिनी और गुंजा से भिन्न द्रव्य है। संभवतः प्राचीन काल का अंत होते-होते सन्दिग्धता के कारण इसका प्रचलन अवरुद्ध हो गया। संभवतः इसी कारण वाग्भट ने अष्टांगसंग्रह में चरक का केवल अनुसरण मात्र किया और अष्टांगहृदय में इसका नामोल्लेख तक नहीं किया। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि क्लीतक का सम्बन्ध मधुयष्टी के साथ किस प्रकार सम्बन्धित हुआ।

क्लीतक का अर्थ कोषों के अनुसार किया है कि एक तो क्लैव्य को दूर करे और दूसरा क्रय-विक्रय में महत्व हो। चूंकि यह शब्द नीलिनी का भी पर्याय है जो वृष्य नहीं है इससे हमारी धारणा ऐसी बनती है कि इस शब्द का गुणकर्म से कोई सम्बन्ध न होकर यह केवल व्यापारिक सम्बन्ध का सूचक है। ऐसे द्रव्य जो आयात और निर्यात की दृष्टि से व्यापारिक महत्व रखते थे उनको यह संज्ञा दी जाती थी। मधुयष्टी और नीलिनी ऐसे द्रव्यों में प्रमुख थे। इस आधार पर क्लीतक एक सामान्य संज्ञा हो जाती थी। सम्भवतः प्राचीनकाल में चरकोक्त क्लीतक एक ऐसा ही द्रव्य था जो बाहर से आता था। यह भी सम्भव है कि जिन प्रदेशों से मधुयष्टी आती हो उन्हीं प्रदेशों से क्लीतक भी आता हो और इसी प्रकार आगे चलकर क्लीतक शब्द मधुयष्टी के लिए प्रयुक्त होने लगा हो।

यह स्मरणीय है कि सभी टीकाकारों ने मधुयष्टी के लिए क्लीतक का प्रयोग किया है। सुश्रुतोक्त क्लीतक भी ऐसा ही रहा होगा। वनस्पतिवेत्ता डल्हण ने इसी कारण मध्यकालीन विचारों का अनुसरण करते हुए इसके परिचय में सन्देह व्यक्त किया है। यदि क्लीतक स्पष्टतः मधुयष्टी होता तो डल्हण जैसे व्याख्याकार इसका उल्लेख अवश्य करते। ऐसा प्रतीत होता है कि संहितोक्त क्लीतक दन्तीकुल या इन्द्रायणकुल का कोई द्रव्य रहा होगा जो बाहर से आता था और जो मध्यकाल में दूसरे द्रव्यों के प्रचलन के कारण दब गया हो। जयपाल का उल्लेख प्राचीन काल में नहीं मिलता मध्यकाल से ही इसका उल्लेख मिलता है। क्या यह सम्भव है कि क्लीतक जयपाल का ही कोई भेद हो?

जहाँ तक स्थलज और अनूपज भेदों का प्रश्न है यह इनके उद्भव या भौगोलिक वितरण से सम्बन्ध रखता है। एक ही द्रव्य शुष्क प्रदेश में होने के कारण स्थलज कहा जाता है।

निष्कर्ष :

संहितोक्त क्लीतक मधुयष्टी, नीलिनी तथा गुञ्जा से भिन्न द्रव्य रहा होगा।

सन्दर्भ

१ आनूपं स्थलजं चैव क्लीतकं द्विविधांस्मृतम्।
प्रकीर्या चोदकीर्या च प्रत्यकपुष्पी तथाऽभया।
.... फलान्येकोनविंशतिः।
च० सू० १/८२-८७

२ विरेचनद्रव्याणितु श्यामांत्रिवृच्चेतुरङ्गलतिल्वक-महावृक्ष सप्तला शङ्खिनी दन्ती द्रवन्तीनां क्षीरमूल त्वक-पत्र पुष्प फलानि यथायोगं तैस्तैः क्षीरमूल-त्वक पत्र-पुष्पविकिल्प्ताविविलप्तैः अजगन्धाश्व-गन्धाजश्रृङ्गीक्षोरिणी-नीलिनी क्लीतक कषायैश्च.... दद्याद्विरेचनम्
च० वि० ८/१३६

३ तत्र क्लीतकाश्वभारगुञ्जासुगन्धगर्गरककरघाट-विद्युच्छिखाविजयानोत्यष्टौ मूलविषाणि।
सु० क० २/५

४ श्यामागिरिह्वाज्जनकीरसेषु द्राक्षारसे सप्तलि-कारसे च।

घृतं पिबेत् क्लीतकसम्प्रसिद्धं पित्तार्बुदी तज्जठरी च जन्तुः
सु० चि० १८/३४

५ त्रिफला पीलुपियालकुवल बदरकर्कन्धुकाश्यमर्यपरुप-द्राक्षा नीलिनी क्लीतकनिकोदकीर्या विडङ्गपुगप-ज्वाङ्गुल फलानि.... चेति विरेचनोपयोगानि।
अ० सं० सू० १४/४

६ यष्टीमधुकयष्ट्याह्वा मधुकं क्लीतकाह्वयम् ।
परुषको मृदुफलो रोषजो धन्वनच्छदः ।
सारिवादिगण द्वितीय ।

अ० नि० २९

७ तल्लक्षणं क्लीतनकं क्लीतनं क्लीतिका च सा ।
स्थलजा जलजाऽन्यातु मधुपर्णी मधूलिका ।
गुडूच्यादिवर्ग ।

ध० नि० १४४

८. मधुयष्ट्यां यष्टोमधुस्तल्लणं मधुस्त्रवा ।
क्लीतकं च नीरजाऽसौ मधुपर्णो मधूलिका ।

नि० शे० १८९.

९. द्रोणी क्लीतकिका ग्राम्या नीलकेशी महारसा ।

नि० शे० २५०.

१०. मधुयष्टी क्लीतकं यष्टीमधु मधूलिका ।
यष्ट्याह्वं मधुकं यष्टिमधूकं जलजामधु ।
मधुयष्टी गुरुः शीताबल्यातृट्छर्दिपित्तजित् ।

म० पा० नि० वर्ग १/८७

११. अन्यत्क्लीतनमुक्तं क्लीतनकं क्लीतनीपकं-मधुकम् मधुवल्ली च मधूलो मधुरलता मधुरसाऽतिरसा- ।१८४। शेषापहा च सौम्या स्थलजा जलजा च सा-द्विधाभूता। सामान्येन मतेयं द्वादश संज्ञा बहुज्ञधिया ।१८५। क्लीतनं मधुरं रुच्यं बल्यं वृष्यं व्रणापहम् । शीतलं गुरु चक्षुष्यमस्रपित्तापहं ।१८६। रा० नि०

१२. यष्टीमधु तथायष्टीमधुकं क्लीतकं यथा ।
अन्यत् क्लीतनकं त्तु भवेत्तोयमधूलिका ।

भा० प्र०

१३. मधुयष्टी यष्टिमधूर्यष्ट्याह्वा क्लीतकाम्मृता ।
मधुकंयष्टि मधुकं यष्टिकामधुयष्टिका ।

शा० नि० पृ० १७१.

१४. मधुवल्ली द्विप्रकारा जलजा च स्थोलद्भवा

(नि० र०)-शा० नि० पृ० १७३

१५. वार्यष्ट्यर्कोविषच्छर्दि तृष्णाग्लानिक्षयापहः ।

शा० नि० पृ० ४०३.

१६. नीली तु नीलिनी नीलामेत्रवर्णा च कुत्सला ।
दूली क्लीतकिका कालानीलिका नीलपुष्पिका ।

शा० नि० पृ० ४०४.

१७. क्लीनकं यष्टीमधु, अस्य तु यद्यपि सुश्रुते मूलं— प्रशस्तं, मूलेनैत्र व्यवहारः, तथापि विरेचनं प्रतियष्टी-मधुद्वयस्यापि फलमेव प्रशस्तं ज्ञेयम् । च० सु० चक्र० १/८१ क्लीतकं यष्टीमधु । च० वि० चक्र० ८/१३६

१८. क्लीतक सम्प्रसिद्धं यष्टीमधुकल्क सिद्धम् ।

सु० चि० डल्हण १८/२६.

१९. मूलादिविषाणांयत्नपरैरपि ज्ञातुमशायत्वात्ता हिमवत्-प्रदेशे किरातशवरादिभ्यो ज्ञेयानि ।

सु० क० डल्हण २.

२०. यष्ट्याह्वं-क्लीतिका । अं० हृ० अरुणदत्त ।

२१. सारिवादिगण में यष्टी - क्लीतक संज्ञा ।

अं० हृ० अरुणदत्त

बैद्यनाथ
हिंग्वष्टक चूर्ण
मन्दाग्नि, आँव, पेट-दर्द-नाशक तथा अग्निवर्धक अत्युत्तम चूर्ण

हिमाचल प्रदेश और आयुर्वेद

डा० प्रेमनाथ चतुर्वेदी, ऑफिसर इन्चार्य
एवं वैद्य मायाराम उनियाल, (रीसर्च ऑफिसर)
रीजनल रिसर्च सेन्टर (आयुर्बेद) जोगिन्दरनगर(हि.प्र.)

प्रस्तुत लेख में हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, जलवायु एवं वनसम्पदा के सन्दर्भ में प्रकाश डाला गया है। लेख में यह स्पष्ट किया गया है कि इस प्रदेश में आज भी आयुर्वेद का विकास किशोरावस्था में है, जब कि देश को आजादी मिले हुए २५ वर्ष पूरे हो गये हैं। इस प्रदेश में आयुर्वेद का विकास तभी सम्भव है जबकि अन्य राज्यों के समान यहां पर स्वतंत्र आयुर्वेद निदेशालय, आयुर्वेद महाविद्यालय, स्नात्तकोत्तर संस्थान, शोध संस्थान आदि विभाग हों। भौगोलिक रचना के अनुसार यह पहाड़ी प्रदेश है तथा इस प्रदेश की जनता गांवों में रहती है और इस प्रदेश में आयुर्वेद विकास के लिए अनुकूल साधन है।

यदि राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हो सके तो इसमें संदेह नहीं कि यह प्रदेश जो बिजली, सेव, आलू, आदि कत्तिपय योजनाओं में सफलता प्राप्त कर रहा है वह आयुर्वेद के विकास में भी आगे बढ़ सकता है।

हिमाचल का भौगोलिक परिचय

खण्डपञ्चहिमालयस्य कपिता नैपाल कूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रूचिरः कश्मीर संज्ञोत्तिम् ॥

यह हिमाचल खण्ड पुराणों के आधार पर जलन्धर (पञ्जाब) खण्ड के नाम से जाना जाता है, जिसमें व्यास, सतुलज, रावी, चेनाव, आदि प्रसिद्ध नदियां प्रवाहित होती हैं। देश स्वतन्त्र होने के बाद अनेकों रियासतों का जब विलय होने पर १५ अप्रैल, १९४८ को हिमाचल प्रदेश का उदय हुआ, एवं १९५७ में यह प्रदेश केन्द्रशासित राज्य बना, जिसकी सारी देखरेख भारत सरकार के नियन्त्रण में होती थी तथा उपराज्यपाल महोदय इस प्रदेश का शासन देखते थे। पुराने हिमाचल की आबादी एवं जनसंख्या बहुत कम थी। केवल चम्बा, महासू, किन्नौर, मण्डी, रोहड़ू, डोडसक्वार सिरमौर, ये जिले हिमाचल प्रदेश के नाम से जाने जाते थे एवं मुख्यमंत्री २ सहायक मन्त्री, देश व्यवस्था तथा योजना केन्द्र सरकार के समक्ष रखते थे। सन् १९६६, १ नवम्बर को विशाल हिमाचल का उदय हुआ जिसके फलस्वरूप आबादी एवं क्षेत्रफल दुगुना हो गया। सन् १९७१, २५ जनवरी को देश की खुशहाली मद्दे नजर रखते हुए भारत के प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने हिमाचल को पूर्ण राज्यत्व की मान्यता प्रदान कर दी। शिमला इस प्रदेश की राजधानी है। प्रदेश की जनसंख्या १९७१ की गणना के अनुसार ३५ लाख है।

प्रदेश की सीमायें:—प्रदेश की उत्तरीसीमा में कश्मीर पूर्व मे तिब्बत, पश्चिम सीमा पर पञ्जाब एवं दक्षिण में हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश हैं। प्रदेश की जनसंख्या एवं क्षेत्र जिला अनुसार निम्न प्रकार से है।

जिलों के नाम	जनसंख्या	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर में
१. कांँगड़ा	८,००,८६३	३,५३४"
२. कुल्लू	१,९२,९१३	८,१४८"
३. शिमला	४,२८,९१३	५,१८३"
४. सोलन	२,३७,४०४	१९३६"
५. लाहुलस्थिति	२३,५३९	१२,१९९"
६. मण्डी	५,१५,१८०	३,९४५"
७. चम्बा	२५५,२३३	८,१९५"
८. सिरमौर	२४५,०३३	२,८३६"
९. हमीरपुर	३०४,३३९	१५६१"
१०. ऊना	२,२२,००९	१५२४"
११. विलासपुर	१९४,७८६	१,१६०"
१२. किन्नौर	४९,८३५	६,५१९"

ये सभी स्थान हिमालय की उपत्यकाओं में फैले हुए हैं। इस क्षेत्र में यातायात के साधन कठोर एवं टेढ़े-मेड़े तथा लम्बे हैं। यहां की जनता अधिकतर गरीब है। खेती, मजदूरी, यहां का मुख्य व्यवसाय है। कुछ स्थान के मार्ग १३ हजार से लेकर १४ हजार फीट

को ऊँचाई पर होने के कारण दिसम्बर से लेकर मई तक अत्यधिक बर्फ गिर जाने के कारण, लोगों से सम्पर्क टूट जाता है तथा यातायात के साधन भी बन्द हो जाते हैं। इन स्थानों में बड़ा-मंगल (कांगडाविला), पांगी (चम्बा जिला) लाहूलस्पिति, डोडराक्वार आदि स्थान हैं। किन्नौर एवं स्पिति सीमान्त प्रदेश हैं। ये स्थान तिब्बत से मिलते हैं। यहां पर भोट एवं किन्नौरी लोग रहते हैं जिनकी भाषा एवं संस्कृति तिब्बत से मिलती-जुलती है।

जलवायु—इस प्रदेश के अधिकतर भाग बर्फ से ढके रहते हैं। जाड़ों में अधिक शीत एवं हिमपात होता है। वर्षा भी इस क्षेत्र में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक होती है। वनस्पदा इस प्रदेश की विशेष निधि है। यहां से प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों की इमारती लकड़ी (चीड़) विरोजा, देवदार, खैर, कैल, राई, मुरेन्डा, खिड़की, थुनेर आदि का नीलाम किया जाता है।

जड़ी-बूटियों की दृष्टि से भी यह प्रदेश अधिक महत्त्व रखता है, जिसमें कि प्रतिवर्ष लाखों रुपयों की जड़ी-बूटियाँ बाहर जाती हैं। यथा कुटकी, काला जीरा, अतीस, रेवन्दचीनी, कूठ, रसौत, इफेड्रा सिंगली, भिंगली (डायस्कोरिया) धूप लकड़ी, सालमपञ्जा, कस्तूरी आदि मुख्य हैं।

लाहुलास्पिति क्षेत्र कूष्ठ (कूठ) पुष्करमूल एवं काला जीरा के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर जड़ी-बूटियों की खेती की जाती है। फलों की दृष्टि से भी यह प्रदेश काफी तेजी से आगे बढ़ रहा है। कुल्लू घाटी, शिमला क्षेत्र चम्बा, भरमौर, किन्नौर आदि स्थानों के सेव सारे देश में प्रसिद्ध हैं।

प्राकृतिक सौन्दर्य एवं कला—प्राकृतिक सौन्दर्य एव कला की दृष्टि से भी यह प्रदेश विश्वभर में प्रसिद्ध है जिसमें कि कांगड़ी घाटी की वास्तु कला, चम्बा के मन्दिर कुल्लू का दशहरा आदि हैं। इस प्रदेश में ज्वाला जी का मन्दिर, कांगड़ा का मंदिर, बैजनाथ का मन्दिर, नैना देवी, मनि कर्ण आदि प्रसिद्ध मन्दिर हैं। पर्यटन क्षेत्र में भी हिमाचल का अपना विशेष स्थान है। प्रति वर्ष लाखों पर्यटक शिमला, कुल्लू, मनाली, धर्मशाला, डलहौजी, खंजियार, उदयवर, सोलन आदि स्थानों पर गर्मियों में आते हैं। इस प्रदेश की गगनचुम्बी चोटियों एवं सनातन हिम-रेखाओं की निर्मल पवित्रता तथा इन घाटियों में प्रवाहित होने वाली कलकलनादिनी स्वच्छ धाराएं, उत्ताल तरंगे आदि झरने एवं जल-प्रपातों की शोभा भारतवासियों एवं विदेशियों के हृदय में आदर्श जमाने की अमोघ शक्ति रखती है, इसलिए ऐसे प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर एव अनेकों वनसम्पदा से युक्त जिसमें कि खनिज, प्राणिज, उद्भिज सभी प्रकार के साधन-सम्पन्न हैं यदि देशी चिकित्सा-प्रद्धति के विकास पर ध्यान दिया जाय तो निश्चित रूप से देश में अग्रसर हो सकता है परन्तु यह सखेद कहना पड़ता है कि इस प्रदेश में आयुर्वेद आज भी सुप्तावस्था में पड़ा हुआ है। जब कि वर्त्तमान स्थिति आयुर्वेद की है।

हिमाचल में आयुवद की वर्त्तमान स्थिति—जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया गया है कि इस क्षेत्र मे कई रियासतें थीं। उस समय इन स्थानों पर आयुर्वेद के चिकित्सालयों की संख्या ना के बराबर थी। देश के आजाद होने के कुछ समय बाद हिमाचल का उदय हुआ तथा १९५२ के आम चुनावों में माननीय डा० यशवन्त सिंह परमार मुख्य-मंत्री बने एवं दो अन्य सहायक मन्त्री बनाये गये जिसमें पं० पद्मदेव जी एवं श्री गौरीप्रसाद जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

केन्द्रीय शासित प्रदेश होने के कारण सभी विकास सम्बन्धी योजनायें भारत सरकार से स्वीकृत होती थीं अतः श्री गौरी प्रसाद जी, मन्त्री, हिमाचल प्रदेश का ध्यान आयुर्वेद के विकास की दिशा में जाग्रत हुआ एवं मन्त्री महोदय ने आयुर्वेद के अनुसन्धान एव औषधि निर्माण की योजना तैयार कर तथा भारत सरकार से स्वीकृत कराकर १९५४ में आयुर्वेदिक फार्मेसी जोगिन्दर नगर में बनाई गई। इसके साथ-साथ देशी चिकित्सा पद्धति का अनुसन्धान संस्थान के भवन का भी जोगिन्दर नगर में निर्माण कराया। कुछ समय बाद फार्मेसी की एक शाखा माझरा (सिरमौर) में भी खोली गई, जिनके प्रयासों से इस प्रदेश में दो फार्मेसियां आयुर्वेद के औषधि निर्माण का कार्य करती हैं। आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान के प्रभारी श्रीयुत् वैद्य अनिरूद्ध शर्मा जी को १९६० के करीब बनाया गया, जो कि १९७१ तक इस संस्थान को देखते रहे परन्तु अनुसन्धान कार्य की प्रगति होनी चाहिए थी वह शोध शास्त्रियों के स्थिर न होने के कारण नहीं हो सकी।

जैसा कि सरकार की योजना है ग्रामीण क्षेत्रों में आयुर्वेदिक चिकित्सालय ५ मील की परिधि में खोले जायें ताकि ग्रामीण जनता को चिकित्सा-सुविधा का अभाव न रहे। इसको मद्दे नजर रखते हुए हिमाचल प्रदेश सरकार ने सन् १९६१ को आयुर्वेद अधिकारी की नियुक्ति हेतु केन्द्र से स्वीकृति प्रदान की और श्री रमेश त्रिपाठी जी ने उप-प्रधान आयुर्वेद चिकित्सा अधिकारी (A. P. M. O) का भार सम्भाला। श्री त्रिपाठी जी का प्रधान कार्यालय शिमला से जोगिन्दरनगर कर दिया गया। आयुर्वेद का स्वतन्त्र निर्देशन न होने के कारण एवं एलोपैथी विभाग के निदेशालय द्वारा नियन्त्रण होने के फलस्वरूप आयुर्वेद का विकास नहीं हो सका तथा कुछ सिद्धान्तों की भिन्नता के कारण श्री त्रिपाठी जी को इस स्थान से हटना पड़ा तथा जिसके कारण आज भी यह स्थान रिक्त है।

प्रदेश में करीब ५०० के लगभग आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरियाँ हैं जिसमें एक वैद्य, उपवैद्य (कम्पाउन्डर), एक परिचारिका होती हैं। इसके अतिरिक्त दो आयुर्वेदिक चिकित्सालय हैं एक जोगिन्द्र नगर एवं एक कटराई (कुल्लू) में, जिसमें कि २० शय्याओं की व्यवस्था है। परन्तु यह खेद से कहना पड़ता है कि अभी तक सुचारु रूप से इन चिकित्सालयों में भोजन-आवास आदि की सुचारू व्यवस्था नहीं है। वैद्यों एवं उपवैद्यों के पञ्जीकरण हेतु हिमाचल प्रदेश ने भारतीय एवं यूनानी चिकित्सा बोर्ड भी बना लिया है जिसमें कि वैद्य एवं उपवैद्यों का पञ्जीकरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद (भारत सरकार) का प्रादेशिक अनुसन्धान संस्थान जोगिन्दर नगर में है जो कि इस प्रदेश में पैदा होने वाली वनौषधियों का सर्वेक्षण, संकलन एवं सचल आयुर्वेदिक चिकित्सालय की एक इकाई भी कार्य कर रही है। इसके अतिरिक्त बड़े पैमाने पर आयुर्वेद चिकित्सालय एवं अनुसन्धानशाला खोलने की भी योजना है।

अतः उपर्युक्त परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए यह कह सकते हैं कि किसी भी भाषा एवं चिकित्सा का अभ्युदय तभी सम्भव है जब कि इस विषय के जानने वाले उच्च अधिकारी की नियुक्ति हो, अन्यथा उस विज्ञान की गति धीमी पड़ जाती है। जैसा कि सर्व विदित है कि आज अनुसन्धान का युग है। कोई भी वैज्ञानिक विभाग तभी सम्भव है जब कि उस चिकित्सा क्षेत्र में समय-समय पर अनुसन्धान का कार्य चलता रहे ताकि विज्ञान सत्य की कसौटी पर निखर सके।

अन्त में हमारा यही विश्वास है कि यदि इस प्रदेश में स्वतंत्र आयुर्वेद निदेशालय की स्थापना हो जाय तो इस प्रदेश में निश्चित रूप से आयुर्वेद का विकास काफी तेजी से हो सकता है कि जिसकी कि बहुत आवश्यकता है।

बैद्यनाथ
अभ्रक भस्म
सप्तधातु पोषक, वृष्य और समय पर काम आनेवाली सर्वोत्तम भस्म।

शिशु स्वास्थ्य

बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल कीजिये

सुशीला देवी जैन

वर्तमान वैज्ञानिक युग में मानवीय क्षेत्र में जहां अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियां हुई हैं वहां बच्चों के स्वास्थ्य पर इस युग का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वैज्ञानिक भौतिक उपलब्धियों के कारण यह युग यद्यपि प्रगतिशील युग के नाम से जाना जाता है किन्तु इस युग में भौतिकवाद के कारण बालकों के स्वास्थ्य में औसत रूप से काफी ह्रास हुआ है। पिछले दिनों किए गए वैज्ञानिक सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि हमारे बच्चों के कुपोषण की समस्या ने जटिल और विषम रूप धारण कर सम्पूर्ण समाज और देश को आक्रान्त कर रखा है। शिशुओं, बालकों और किशोरों के स्वास्थ्य पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। हमारे नौनिहाल जब कुपोषण की जटिल समस्या के शिकार हों तो देश के कर्णधार, भावी नागरिक एवं भावी राष्ट्र-निर्माता के रूप में उनकी क्या स्थिति होगी इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः यह आवश्यक है कि बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय।

बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें ऐसा भोजन दिया जाय जिससे उनके अंग-प्रत्यंग की पुष्टि के लिए पर्याप्त पोषक तत्व उपलब्ध हो सकें। तत्वहीन एवं निःसार भोजन उनके स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद होता हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों के भोजन के विषय में इस बात का ध्यान रखना भी अत्यंत आवश्यक है कि उनके भोजन में ऐसे पदार्थ न हों जो उनकी प्रकृति एवं स्वास्थ्य के प्रतिकूल हों अथवा जिनका पाचन करने में उनकी पाचन-शक्ति असमर्थ हो। प्रायः देखा जाता है कि बच्चे घटिया किस्म की मिठाई, चाकलेट, निम्न कोटि की आइसक्रीम, कुल्फी तथा अन्य बाजारू चीजें खाने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि युवावस्था के पहुंचने तक उनकी पाचन-शक्ति इतनी विकृत हो जाती है कि सामान्य आहार भी पचाने की क्षमता उनमें नहीं होती। अतः यह आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही बच्चों की आदत सुधारी जाय, बाजारू चीजों से उन्हें बचाया जाय तथा नियमित रूप से भोजन करने की उनमें आदत डाली जाय। क्योंकि स्वास्थ्य-रक्षा में भोजन की नियमितता का बहुत बड़ा हाथ है। नियमित रूप से तथा समय पर भोजन करने से कभी भी स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है तथा पाचन-शक्ति ठीक रहती है।

इसी प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा में सन्तुलित आहार का भी विशेष महत्व है। सन्तुलित आहार के द्वारा बच्चों के कुपोषण की समस्या को आसानी से हल किया जा सकता है। बच्चों के सन्तुलित आहार के लिए कोई विशेष प्रकार के खाद्य तत्व आवश्यक नहीं हैं। अपितु बच्चों के खाद्य-पदार्थों में प्रायः उन्ही तत्वों की आवश्यकता होती है जिनकी आवश्यकता युवकों या सामान्य व्यक्ति के खाद्य पदार्थों में होती है। युवकों के लिए वे तत्व उनकी शारीरिक क्षति-पूर्ति, शारीरिक शक्ति एवं मस्तिष्क की पुष्टि के लिये होते हैं, किन्तु बच्चों के लिए वे ही तत्व उनके शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के लिए आवश्यक होते हैं। अतः बच्चों के आहार में सामान्यतः उन सभी पौष्टिक तत्वों का होना आवश्यक है जो उनके शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के लिए उपयोगी हैं।

हमारे सामान्य आहार में विटामिन का विशेष महत्व है। विटामिन आहार के माध्यम से शरीर के लिए आवश्यक तत्वों की पूर्ति करते हैं तथा शरीर एवं शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं के संचालन में सहायक होते हैं। आहार में विटामिन की न्यूनता के अभाव का प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़े बिना नहीं रहता। बच्चों के विकासशील शरीर एवं स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव तत्काल पड़ता है। अतः बच्चों के आहार में विटामिन्स का होना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास में विटामिन 'सी' और 'डी' विशेष महत्वपूर्ण हैं। वैसे तो किसी भी विटामिन की कमी बच्चों के शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक विकास में बाधक है। अतः उनके आहार से सभी विटामिन और तत्व का होना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु विटामिन 'सी' और 'डी' की पर्याप्त मात्रा यदि बच्चों को मिलती रहे तो उनके त्वरित विकास में वह विशेष सहायक होती है। जो बच्चे मानसिक रूप से विकारग्रस्तहीन, भावनायुक्त, चिड़चिड़े स्वभाव वाले या अविकसित मानसिक स्थिति वाले होते हैं, उनके लिए विटामिन 'सी' विशेष उपयोगी है। इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से अविकसित बच्चों के लिए विटामिन 'डी' विशेष महत्वपूर्ण है।

सामान्यतः विटामिन 'सी' की कमी का दुष्प्रभाव यह होता है कि बच्चे मन्दबुद्धि, शक्तिहीन, उत्साहहीन, निस्तेज, स्वाभाविक चपलता रहित, अल्प स्मरण शक्ति वाले मानसिक एवं बौद्धिक रूप से अविकसित तथा निर्बल होते हैं। ऐसे बच्चे पढ़ने-लिखने में कमजोर, पढ़ाई से जी चुराने वाले, भीरु स्वभाव वाले तथा हीन-भावना से ग्रस्त होते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चो को फोड़े-फुंसी होना, चमड़ी का फटना, ओठों का फटना तथा शरीर में रुक्षता होना आदि विकृतियां भी विटामिन 'सी' की न्यूनता की द्योतक हैं। आजकल बच्चों को होने वाला 'सूखा रोग' भी विटामिन 'सी' की कमी का दुष्परिणाम है।

विटामिन 'सी' की भांति विटामिन 'डी' भी बच्चों के शारीरिक विकास के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है। विटामिन 'डी' की कमी बच्चों को अस्थि की दृढ़ता से वंचित रखती है तथा अस्थि क्षय-सम्बन्धी अनेक विचारों से ग्रसित बनातीं है। विटामिन 'डी' की कमी से कमजोर हड्डियाँ शरीर के भार को वहन करने में समर्थ नहीं रहतीं और शरीर में दुर्बलता का एकछत्र साम्राज्य रहता है। परिणाम यह होता है कि थोड़ा-सा भी शारीरिक श्रम करने पर श्वास फूल जाता है तथा कुछ दूर पैदल चलना भी उनके लिए दुस्सह हो जाता है।

विटामिन 'डी' की न्यूनता बच्चों को दन्त विकारों से अधिक परेशान करती है। दांत निकलते समय उन्हें काफी तकलीफ होती है तथा बहुत दिनों तक उसका प्रभाव शरीर पर बना रहता है। विटामिन 'डी' की कमी के कारण बच्चों के दांत कमजोर रहते हैं, उनके मसूड़े अक्सर फूले रहते हैं, कठोर वस्तु चबाने में उन्हें तकलीफ होती है, अधिक ठन्डी या गरम वस्तुएं सहन नहीं होतीं तथा समय से पूर्व ही उनके दांत गिरने लगते हैं। इस प्रकार विटामिन 'डी' की कमी दांतों के विभिन्न विकार तथा दांतों की कमजोरी को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

विटामिन डी की कमी से आंतों की क्रिया विशेषतः पाचनक्रिया मुख्य रूप से प्रभावित होती है जिससे अनेक तरह के उदर-विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों को होने वाली यकृत (जिगर) की विकृति विटामिन 'डी' की ही न्यूनता का भयावह परिणाम है इस विकृति से बच्चों की मृत्यु तक होने की सम्भावना रहती है।

विटामिन 'सी' की प्राप्ति हरी शाक-सब्जी, ताजे फल (सन्तरा, नारंगी, अनार, नींबू आदि) चोकरयुक्त आटा दूध एवं गाजर से पर्याप्त मात्रा में हो सकती है। जो बच्चे खा नहीं सकते उन्हें फलों का रस काफी लाभदायक सिद्ध होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि आंवला और अमरूद ये दोनों फल विटामिन 'सी' के अक्षय भंडार हैं। इन फलों का सेवन करने से पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'सी' प्राप्त किया जा सकता है।

विटामिन 'डी' की प्राप्ति बड़े बच्चों को गाजर, टमाटर, पपीता, पेड़ पर पके हुए आम एवं दूध से पर्याप्त मात्रा में हो सकती है। छोटे बच्चों के लिए मां का दूध अमृत तुल्य है जो सभी पौष्टिक तत्वों से भरपूर होता है। इसके अतिरिक्त बकरी का दूध और उसके बाद गाय का दूध छोटे बच्चों को विटामिन 'डी उपलब्ध कराने के सुगम साधन है। विटामिन डी की कमी से होने वाली यकृत सम्बन्धी विकृति में बच्चों के लिए -

बकरी का दूध एक अमोल औषधि और अमृत के समान जीवनदायी है। यदि बच्चे को बिना किसी औषधि सेवन के बदले केवल बकरी के दूध पर ही रखा जाय तो यकृत विकार का तो पता नहीं चलता कि कब और कैसे नष्ट हो गया। सामान्यतः स्वस्थ बच्चों को भी बकरी का दूध हितकारी होता है।

इसके अतिरिक्त विटामिन 'डी' की अधिक मात्रा में उपलब्धि का एक मात्र सर्वसुलभ साधन है धूप। सूर्य की किरणें पर्याप्त मात्रा में बच्चों को विटामिन डी दे सकती हैं। शीत ऋतु में धूप में बैठ कर तेल की मालिश करने से सर्वाधिक विटामिन 'डी की, उपलब्धि हो सकती है।

बच्चों के सुस्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास के लिए विटामिन के अतिरिक्त कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, प्रोटीन, खनिज, लवण तथा चर्बी आदि तत्वों की पूर्ति होना भी आवश्यक है।

बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए निम्न बातों से भी उन्हें बचाया जाय जैसे-मिट्टी खाना, अधिक समय तक धूल में खेलना, प्रकाशहीन अशुद्ध वातावरण में रहना, अनियमितरूप से भोजन करना बाजार की सड़ी-गली वस्तुएं खाना आदि। इन बातों से यदि बच्चों की रक्षा न की जाय तो बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वे अनेक रोगों के शिकार बन जाते हैं। अतः बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

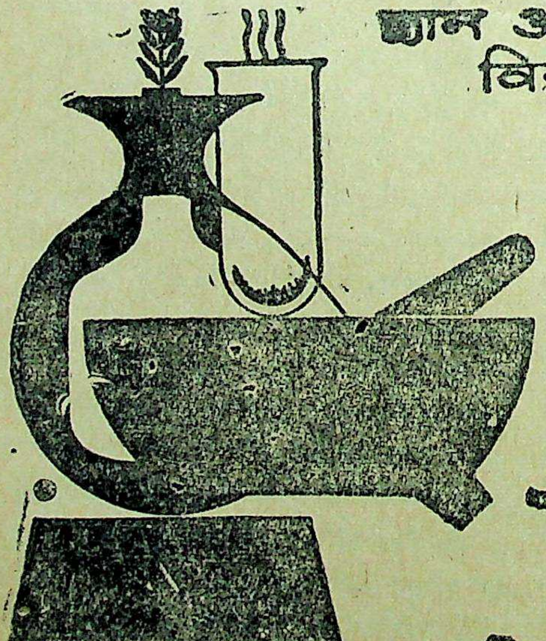

ज्ञान और
विज्ञान से प्रमाणित

बैद्यनाथ
दवाएँ

सभी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद·भवन प्राइवेट लि॰
कलकत्ता·पटना·झाँसी·नागपुर·इलाहाबाद-[illegible]

बैद्यनाथ औषधियां ताजी जड़ी-बूटियों द्वारा पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से [illegible] [illegible] निर्माणशालाओं में तैयार होती हैं और ४०० विक्रेता एजेन्सियों तथा १०,००० एजेन्सियों द्वारा देश भर में एक ही कीमत पर मिलती हैं।

शोर : श्रवण-शक्ति के लिए हानिकर

डा० वी० रिकनोव

ध्वनियों की दुनिया हमारे सारे जीवन का एक अंग है। ध्वनियां हमें सम्पर्क करने और ज्ञान प्राप्त करने में सहायता देती है। फिर भी वे अक्सर हमारे दुःख और पीड़ा तक का कारण बन जाती हैं।

पेड़ों में से गुजरती हुई हवा की गुनगुनाहट, वारिश की बूंदों की टप-टप, नालों की सरसराहट और पक्षियों का चहकना ऐसी ध्वनियां हैं, जो अस्तित्व की आनन्दप्रद पृष्ठभूमि की तरह समय के आरम्भ से हमारे साथ रही हैं। परन्तु हम आधुनिक मशीनरी के शोरगुल से कुछ समय पूर्व ही परिचित हुए हैं। अधिक से अधिक मनुष्य इनके अनुकूल बनने का प्रयत्न कर सकता है, और बहुत खराब हुआ तो फिर डाक्टर को बुलाने की नौबत आ जाती है।

हम पर आक्रमण करने वाले शोर के स्रोत तो लगभग हर स्थान पर मिलते हैं। भवन-निर्माण स्थलों पर वायवीय बरमों का कोलाहल १२० डेसिबल, (ध्वनियों के तारत्व को मापने की इकाई), मोटर साइकिलें और बड़ी लारियाँ लगभग १०५—११० डेसिबल; रेडियो सेंटों और टेप-रिकार्डरों की ध्वनियाँ ९० डेसिबल तक शोर पैदा करती हैं। कई-कई घण्टों और दिनों तक हमारे कान के पर्दे इन तीव्र ध्वनियों को सुनने पर विवश होते हैं। जिन स्थानों पर वह शोर विशेष रूप से अधिक है, इनके परिणाम मनोवैज्ञानिकों और चिकित्सकों के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बन गये हैं।

नगरों में रहने वाले पचास वर्ष से अधिक आयु के अधिकांश लोग अब ठीक तरह से सुन भी नहीं पाते। यह प्रक्रिया तेज होती जा रही है। जहां तक युवा पीढ़ी का सम्बन्ध है, दशा और भी खराब है। यह निष्कर्ष साइंसिज एन आवेनिर नामक पत्रिका में स्वीडन के डा० लोकैन्डर के अनुसन्धान-कार्य का उल्लेख करते हुए निकाला गया है, जिन्होंने पता लगाया था कि १९७० में किशोरों में श्रवण-सम्बन्धी अनियमितताएं १९५६ के मुकाबले दस गुना अधिक थीं।

युवा लोगों पर प्रायः बहरा कर देने वाले संगीत और ऊंची आवाजों में अधिक आसक्त होने का आरोप लगाया जाता है। परन्तु यह चिकित्सा-सम्बन्धी समस्या होने के साथ एक शैक्षिक समस्या भी है। कई युवा लोगों की सुनने की शक्ति अपने माँ-बाप की श्रवण-शक्ति से भी कम है। इसलिए आप एक दुष्चक्र में फंस जाते हैं। लोग प्रायः केवल उन्हीं ऊंची आवाजों को सुन सकते हैं जो प्रतिदिन पहले से ही क्षतिग्रस्त श्रवण-प्रणाली की और अधिक कोशिकाओं को नष्ट करती है।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि नगर के अधिक शोरगुल में लगातार रहने से मस्तिष्क की सन्दमक क्रियाविधि पर प्रभाव पड़ता है, जिससे अनुकूलित प्रतिवर्तों का रूप बदल जाता है। ऐसा व्यक्ति कम सतर्क होता है और उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। हर समय होने वाले शोर से आमाशय की कार्यप्रणाली दुर्बल हो जाती है। जिससे व्रण और आमाशय की और बीमारियाँ पैदा होती हैं। सामान्य 'शोर रहित' आराम न मिलने से काम की थकान इकट्ठी हो जाती है और जीर्ण बन जाती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य आसानी से अधिक रक्तचाप और स्नायु-सम्बन्धी गड़बड़ी जैसी खतरनाक बीमारियों का शिकार हो जाता है।

जैसा कि स्पष्ट है, 'शोर के आक्रमण' के दुष्प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनका वर्णन करने के लिए एवं नया नाम 'शोर की बीमारी' तक रख दिया गया है।

शोरगुल से रहित वातावरण आज एक विषम समस्या है। और पश्चिमी देशों के कई विद्वान अत्यन्त निराशाजनक दृष्टिकोण अपनाते हुए दावा करते हैं कि यह शोर प्रतिदिन बढ़ता जायेगा।

सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों में मनुष्य के स्वास्थ्य और कार्यक्षमता पर शोर के हानिकारक प्रभावों का सामना करने की समस्या पर काफी ध्यान

दिया जा रहा है। सोवियत संघ में चौथे दशक में ही 'शोरगुल वाली' दूकानों में कार्य कर रहे कर्मचारियों की श्रवण-शक्ति की नियमित डाक्टरी जांच शुरू हो गयी थी। और कुछ मशीनों और उपकरणों के शोर को कम करने की व्यावसायिक सिफारिशें भी की गई थीं। सोवियत ट्रेड यूनियनों की पहल पर, जिन्हें कम करने की परिस्थितियों की देखरेख का काम सौंपा गया था, ट्रेड यूनियन औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य अनुसन्धान संस्थान ने कई सर्वेक्षणों के आधार पर एक दस्तावेज तैयार किया। इस दस्तावेज १९५६ से देश के सभी उद्यमों और संगठनों के लिए आदेश के रूप में माना जा रहा है।

शोर की इस समस्या की बढ़ती हुई गम्भीरता को देखते हुए सोवियत सरकार ने १२६० में उद्योग में शोर कम करने के लिए कदम उठाने के बारे में एक विशेष आदेश जारी किया।

इस क्षेत्र में होने वाले अनुसन्धान में काफी वृद्धि हुई है। जिन २० विशेष प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई थी, उन्होंने ऐसी तकनीक अपनाने का कार्य शुरू किया है, जिससे इस समस्या का समाधान हो सकेगा। वायवीय उपकरणों, प्राकृतिक रेशों को मरोड़ने वाली मशीनों, स्वचालित खराद की मशीनों तथा शोर करने वाले अन्य साज-सामान के नमूनों में परिवर्तन किया गया है।

इसके साथ ही प्रयोगशालाओं, नमूना बनाने वाले कार्यालयों इत्यादि में शोर को कम करने के लिए और सख्त नियम बनाना सम्भव हुआ है।

शोर कम करने के प्रयत्न केवल फैक्टरियों और कार्यालयों तक ही सीमित नहीं है। राज्य नगरों में शोर कम करने के बारे में जटिल अनुसन्धान के लिए काफी धनराशि की व्यवस्था करता है। मास्को के विशेष मानचित्र बनाये गये हैं, जिनमें शहर के सबसे अधिक शोर वाले क्षेत्र दिखाये गए हैं, जिससे शोर को कम करने के लिए विवेकपूर्ण नियोजन आसान हो जाता है।

१९६८ में देश के सभी बड़े केन्द्रों में विशेष शोर-विरोधी समितियों का गठन किया गया। इनका कार्य आजादी वाले क्षेत्रों में फैक्टरियों की आवाजों को यथासम्भव कम करना, और नये औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए उपयुक्त स्थान और विवेकपूर्ण यातायात की योजनाएँ सुझाना है।

यद्यपि इस क्षेत्र में निश्चित रूप से प्रगति हुई है। पर कई समस्याओं को हल करना अभी बाकी है। ये समस्याएं वायु और जलप्रदूषण के विरुद्ध अभियान से कुछ कम महत्वपूर्ण या आवश्यक नहीं है।

प्राविधिक प्रगति के कारण इस 'शोर के आक्रमण' का मुकाबला करने की बहुत अधिक संभावनाएं हैं। परन्तु इस समस्या की कठिनाइयों के लिए वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, तकनीशियनों, डाक्टरों, वास्तुकारों और नगर बनाने वालों के संयुक्त प्रयत्न अपेक्षित हैं। विभिन्न देशों से इस क्षेत्र में केवल जानकारी के आदान-प्रदान के लिए ही सम्बन्ध बढ़ाने की नहीं, बल्कि संयुक्त परीक्षण करना भी अपेक्षित है। इस प्रकार के सारे सहयोग को हर तरह से बढ़ाया जाना चाहिए, क्योंकि इससे मनुष्य की इस नई शताब्दी की बीमारी' का मुकाबला करने में काफी सहायता मिलेगी।

बैद्यनाथ कासामृत—कफ और खाँसी के लिए।

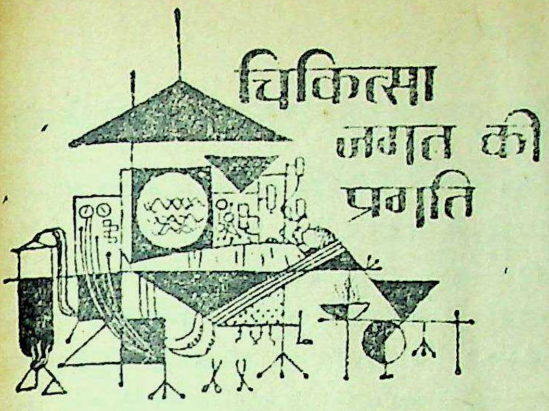

विषाणुओं के रहस्य

निक्तोर ज्वानोल

सोवियत चिकित्सा विज्ञान एकादमी के सदस्य तथा द. ईवानोव्स्की, विषाणु विज्ञान संस्था के निदेशक

आधुनिक विषाणु विज्ञान की सफलता का बहुत कुछ श्रेय व्यूहाणु-जीव विज्ञान को है। अब ऐसी आधार सामग्री प्राप्त हो गई है, जिससे हम जीवाणुओं के स्वरूप, कोशिकाओं में संवर्धन की उनकी पद्धति, और उनके जैविकीय गुणों की एक नये ढंग से व्याख्या कर सकते हैं। मिसाल के लिए, हम इन्फ्लुएंजा के विषाणु को ही लें। इसका एक छोटा 'जीन' होता है, जिसका व्यूहाणु-भार २५,००,०००—२८,००,००० डाल्टन होता है। इसका अर्थ यह है कि इसमें १० से अधिक प्रोटीनें उद्घाटित नहीं की जा सकतीं। वस्तुतः, इसमें से केवल ७ ही उद्घाटित की जाती हैं। इस विषाणु की एक विशेषता यह भी है कि इसके 'जीन' स्वतन्त्र होते हैं। उन्हें एक विषाणु में से निकाल कर उसी तरह दूसरे विषाणु में रखा जा सकता है।

यह भी पता चला कि उन सात प्रोटीनों में से तीन इन्फ्लुएंजा से प्रतिरक्षा पैदा करती हैं। यह विषाणु कुछ साल बाद अपना रूप बिलकुल बदल लेता है। जिससे स्थायी प्रतिरक्षा असम्भव हो जाती है। यही कारण है कि लोगों को बहुत बार इन्फ्लुएंजा हो जाता है।

इस समय सोवियत संघ, बर्तानिया और अमरीका में तीन संस्थाएं, विश्व स्वास्थ्य संगठन के दीर्घकालीन कार्यक्रम के अधीन, इस बात की शोध कर रही हैं कि ये विषाणु और कहां-कहां प्राकृतिक अवस्थाओं में मिल सकते हैं, और उनमें से कौन-से मनुष्यों में इन्फ्लुएंजा पैदा कर सकते हैं। इसका अर्थ, निस्सन्देह, यह नहीं है कि हमें छूत सदा पशुओं या पक्षियों से ही लगती है। मनुष्यों में मिलने वाले विषाणु की अपनी खास विशेषताएं होती हैं।

व्यूहाणु जीव विज्ञान की उपलब्धियां

व्यूहाणु-जीव विज्ञान की उपलब्धियों ने यह दिखा दिया है कि विषाणु-विरोधी एंटीबायोटिक (प्रतिजीव) खोजने की कभी जो कोशिशें की गई थीं, वे कितनी निराधार और व्यर्थ थी। उस समय जो परीक्षण किये गये वे अपने उद्देश्य में विफल रहे। वे उद्देश्य की पूर्ति कभी कर ही नहीं सकते थे, बल्कि इसके विपरीत, शोधकर्त्ताओं को उससे भटकाते थे। फिर भी, मेरा यह ख्याल है कि विषाणु-विरोधी एंटीबायोटिक निकट भविष्य में खोज लिये जायेंगे। परन्तु यह प्रक्रिया, सम्भवतः उतनी तेज नहीं रहेगी जैसी कि बैक्टीरिया-सम्बन्धी या अर्बुदों पर प्रभाव डालने वाले एंटीबायोटिकों के सिलसिले में रही थी।

प्रगति इसलिए भी धीरे-धीरे होनी है कि विषाणु बहुत ही विभिन्न होते हैं। मैं तो यहां तक कहूंगा कि इन्फ्लुएंजा का विषाणु चेचक के विषाणु से कम से कम उतना ही भिन्न है जितना कि बैक्टीरिया से मनुष्य, या शायद उससे भी ज्यादा। यह बात कितनी भी असंगत लगती हो, पर है सच। एक समस्या और है। जब एंटीबायोटिक आखिर खोज लिये जायेंगे, तब उन्हें प्रयोग में, लाने की नीति और तौर-तरीकों का सवाल पैदा होगा। विषाणु, पांच-छः पीढ़ियों में, केवल एंटीबायोटिकों का प्रतिरोध करने वाला बन सकता है, बल्कि उनकी मांग भी कर सकता है और यह स्थिति हो सकती है कि उनके बगैर उसकी वृद्धि ही न हो।

इंटरफेरोन में, जो एक कोशिकागत प्रोटीन है, सभी विषाणुओं के विरुद्ध बहुत शीघ्र (कुछ घण्टों में ही) असर करने का आश्चर्यजनक गुण है। विषाणु से

आक्रान्त कोशिका को स्वस्थ करने के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमारे सामने काम यह है कि इस प्रोटीन को किसी भेषज के रूप में नहीं, बल्कि शरीर-यंत्र से ही करने का ढंग जाना जाए।

भविष्य का जहां तक सवाल है, हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य की अतिश्वेतरक्तता के विषाणु की खोज होने ही वाली है। अतिश्वेतरक्तता पर सोवियत संघ की कई संस्थाओं में पूरे जोरों से शोध-कार्य हो रहा है। हमें उसमें काफी दिलचस्प परिणाम प्राप्त हुए हैं।

दो प्रकार व्याधिकीय प्रक्रियाएं

विषाणु दो प्रकार की और व्याधिकीय प्रक्रियाओं में भी भाग लेते हैं। पहले तो, तथाकथित कायिक व्याधियों मे। मेरा यह विश्वास है कि यदि वृक्कशोथ, यकृत-शोथ और मज्जा प्रकोप जैसी व्याधियां विषाणुओं से न भी होती हों, तो भी विषाणुओं की उनमें एक बड़ी भूमिका रहती है। इस दृष्टि से, यह बहुत सम्भव है कि शिजोफ्रेनिया जैसी मानसिक व्याधि का सम्बन्ध भी किसी विषाणु से हो।

दूसरे, मेरा यह ख्याल है कि विषाणुओं की शरीर-यंत्र को बूढ़ा करने में भी सक्रिय, भूमिका रहती है। यदि सार रूप में कहा जाए तो, बुढ़ापा जनन सम्बन्धी गलतियों का, जो कोशिकाओं में संचित होती जाती हैं, कुल जोड़ है। विषाणु इन गलतियों के जल्दी-जल्दी होने में सहायक होते हैं, और इस तरह बूढ़े होने की प्रक्रिया को तेज करते हैं। इस तरह का व्यापार शायद कैन्सर की प्रक्रियाओं में भी होता है।

मुझे यकीन है कि हम सब कैन्सर पैदा करने वाले विषाणुओं से संक्रान्त हैं। पर हमें इससे डरना नहीं चाहिए। कोई पचास वर्ष पहले हम सब यक्ष्मा के दण्डाणुओं से संक्रान्त थे। यह बात बिल्कुल निश्चित रूप से सिद्ध हो गई थी कि ९९ प्रतिशत बच्चों में काल दण्डाणु होते थे, पर हरेक को उनसे यक्ष्मा तो होता नहीं था। यही बात कैन्सर के विषाणु के बारे में भी है। सम्भवतः हम अनेक विषाणुओं से संक्रान्त होते भी कैन्सर की व्याधि से ग्रस्त क्यों नहीं होता। जब हम यह जान लेंगे तो सम्भवतः हम इस संक्रमण से लड़ने के तरीके मालूम कर सकेंगे।

यदि हम सुदूर भविष्य में झांकें और यह जानना चाहें कि कैन्सर पर विजय पा लेने के बाद, २१वीं शताब्दी में, विषाणु वैज्ञानिक क्या करेंगे, तो मैं कहूंगा कि वे तब उन विषाणुओं का अध्ययन करेंगे जो समय से पहले ही बुढ़ापा ले आते हैं।

इस कार्य में अन्तर्राष्ट्रीय अणु-जीव-विज्ञान सोसाइटी संघ, जिसका प्रधान होने का मुझे गौरव प्राप्त है, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का माध्यम है। हम विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सुझाई गई दिशाओं में व्यापक कार्यक्रमों पर काम कर रहे हैं। अधिकतर समाजवादी देशों के साथ हमारे करार हो चुके हैं, और बर्तानिया, अमरीका और फ्रांस के साथ हम एक संयुक्त कार्यक्रम पर काम कर रहे हैं। (सोवियत दूतावास के सौजन्य से)।

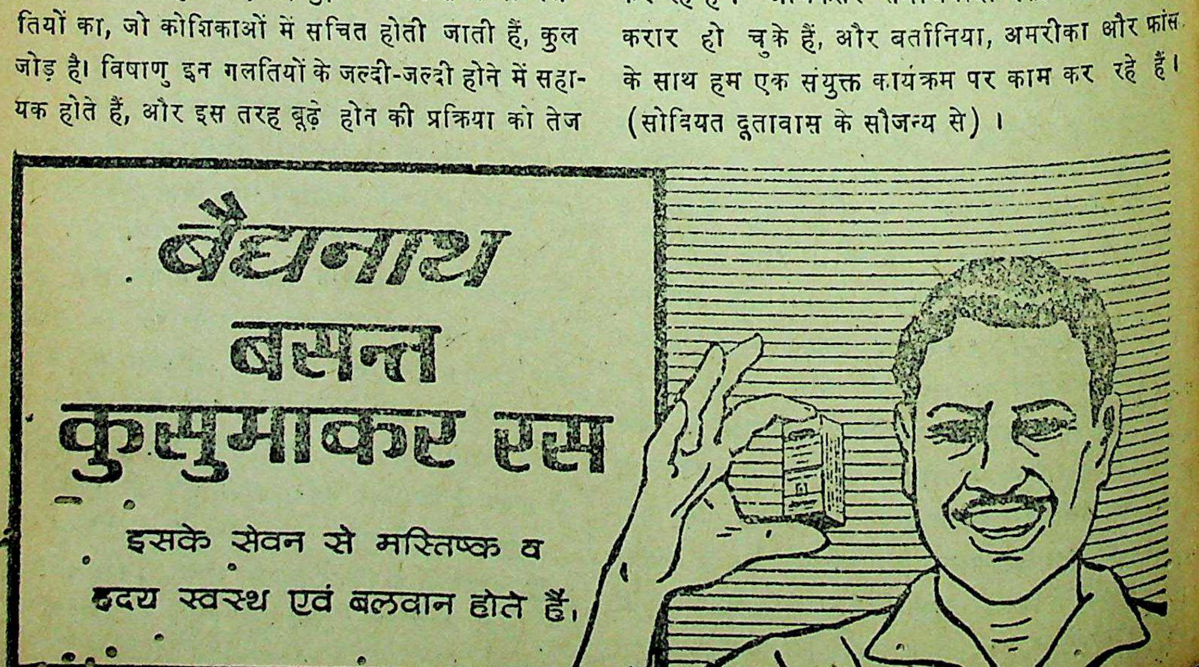

बैद्यनाथ
बसन्त
कुसुमाकर रस

इसके सेवन से मस्तिष्क व
हृदय स्वस्थ एवं बलवान होते हैं।

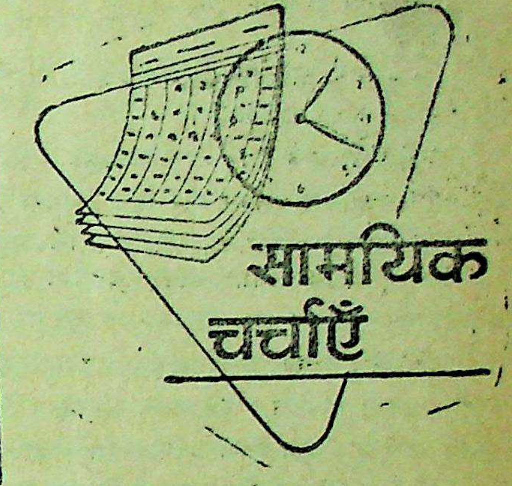

आयुर्वेदिक साहित्य का एक छिपा अभिनव रत्न "गुणरत्नमाला"

एक नया साहित्य का ग्रन्थ जो कि भाव मिश्र का है।

एक शोध कार्य : अनुसंधाता :

श्री विश्वनाथ द्विवेदी (प्रोजेक्ट आफिसर)
श्री सी० वी० दुवे, रिसर्च आफिसर
श्री यागेन्द्रनाथ शर्मा, रिसर्च असिस्टेंट
श्री शिवनारायण चतुर्वेदो

"गुण रत्नमाला" भाव मिश्र के द्वारा लिखित एक निघंटु-शास्त्र का उज्ज्वल ग्रन्थ है। इसका ज्ञान पहले किसी को न था। काश्यप संहिता का अध्ययन करते समय इस ग्रंथ का घ्यान आया। जब कि सरस्वती लाइब्रेरी सं० विश्वविद्यालय वाराणसी के ग्रंथागार में कई हजार हस्तलिखित मैनुस्क्रप्ट का अवलोकन किया गया। श्री भाव मिश्र का भाव प्रकाश मिश्र संहिता का दर्शन तो सबने किया है और उसमें के निघंटु अंश का भी सबको घ्यान है किन्तु भाव मिश्र के अन्य ग्रंथों का ज्ञान साधारण जनता या वैद्य बंधुओं.में से संभवतः कोई जानता होगा। केन्द्रीय परिषद की साहित्यिक इकाई के अन्वेषण काल में इस ग्रंथ पर घ्यान श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी का गया और उन्होंने इस कार्य को हाथ में लिया किन्तु समयाभाव एवं ग्रंथों की दुर्लभता के कारण इस पर विशेष अन्वेषण शेष था। सरस्वती लाइब्रेरी में प्राप्त होने पर इस ग्रंथ की दूसरी प्रति की प्राप्ति के लिये भारतीय प्रसिद्ध पुस्तकालयों में खोज की गई। क्योंकि सरस्वती लाइब्रेरी की पुस्तक में ऊपर कुछ पत्र नहीं थे। पृष्ठ १. ३. ढ. २७. १११ अतः तंजोर की, बीकानेर की, शांतिनिकेतन की व मद्रास की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों में इसका पता लगाया गया। इस में तंजोर की लाईब्रेरी में इससे भी कम पत्र वाला भाग प्राप्त हुआ। कोई सुविधा न देख कर इंगलैंड की इंडिया लाईब्रेरी में इसकी प्राप्ति हुई। वहां से प्रिंट कापी मांगने पर रुपया जमा करने पर भी पुस्तक की प्रिंट कापी समय से नहीं मिली। अतः पूरी पुस्तक का साहित्य न प्राप्त होने से यह शोध कार्य रुक गया।

इसके पश्चात् पुनः बार-बार लिखने पर यह कापी कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई है। और पूरी पुस्तक का स्वरूप सामने आया है। इस बीच केन्द्रीय सरकार ने अन्वेषण संस्थान बंद कर दिये। अन्य इकाइयां भी बंद हो गयीं। इसकी पूर्ति के लिये सत्यनारायण शास्त्री शोध संस्थान में पुनः कार्य प्रारंभ करके श्री द्विवेदी जी ने उसका अध्ययन कर निम्नलिखित विवरण प्रकाशित किया है।

गुणरत्न माला भाव मिश्र की एक अपूर्व कृति है। इसमें भाव-प्रकाश निघंटु से कई विशेषताए हैं। और कुछ ऐसे भाग भी हैं जो कि अन्यत्र प्रकाशित नहीं हैं। अतः इस ग्रंथ गुणरत्न माला का निबंधन ज्ञात होता है कि भाव मिश्र ने पुनः किया होगा। आम जनता के ज्ञानार्थ इसमें गुण भाग का अंश अधिक संग्रह किया हुआ पाते हैं। इसमें का प्रारम्भिक भाग न होने से पता न चलता था कि पुस्तक भाव मिश्र वाली है या किसी अन्य लेखक की। अब स्पष्ट है कि पुस्तक भाव मिश्र की ही है। जो अंश इण्डिया आफिस से प्राप्त हैं उनमें स्पष्ट लिखा है। प्रारम्भिक प्रार्थना में लिखा है :

गजमुखमभरप्रवरंसिद्धि करं विघ्न हर्त्तारम्।
गुरुभवनमयमनप्रदंमिष्ठ करीमिष्ट देवतां वन्दे।

आगे लिखा है—

परमोपयोगिकतिचिद्द्रव्याणां भाव मिश्रेण। संगृह्यते स्वभावो नाना मुनिभिः समाख्यातः॥
राज्ञांसु सुविज्ञासु सभां सुशोभां निजां समीहेन चिकित्सको यः।

श्री भावमिश्र ग्रथित सुवृत्तां दधातु कंठे गुणरत्न मालम् ।

इससे स्पष्ट हो गया कि भाव मिश्र ने ही 'गुणरत्न-माला' नामक पुस्तक लिखी थी ।

पूरी संहिता में से नित्य की आवश्यक द्रव्यों की गुणावली को ध्यान में रखकर लोक-हित कामना से इस पुस्तक को लिखा है। यह भी पता लगा कि वह वही भाव मिश्र हैं जो कि काशी के तत्कालीन राजा की सभा में चिकित्सक के पद पर आसीन थे व वहां पर मान्य थे। भाव मिश्र काशी के प्रसिद्ध वैद्य व नागरिक थे। यहां पर उनका मान था। एक मान्य परिषद् की तरह सुनाम प्राप्त थे। अतः निजां समीहेत चिकित्सको यः। यह शब्द स्पष्ट इसका निर्देश करता है कि वह राजसभा के सुविख्यात् चिकित्सक थे। आगे भाव प्रकाश में जैसे लिखा है इति श्रीमन् मिश्र लटकन तनय श्रीमन् मिश्र भाव विरचितायांगुणरत्न माला संपूर्णा। वैसे ही भाव प्रकाश में भी ऐसे ही परिचयात्मक विवरण हैं। इति-श्री लटकन तनय भावमिश्र। विरचितयां अमुक वर्गअमुक अध्यायः समाप्तः ।

ग्रंथ परिचय :

इसके प्रारंभ में ग्रंथ का साहित्य विवरण देते हुये भाव मिश्र ने लिखा है—तत्राभावनुक्रमणिका :

लक्षणं दीपनादिनांततो वर्गो रसादिकः ।
चरितवर्गादि स्परः कर्ज्वादिस्ततः परः ।

पुष्प वर्गश्च धात्वादिः गुडूच्यादिवटादिकः। चल वर्गो वान्य वर्गः समांशकः ।

द्रव वर्ग कृतान्नानि विरुद्धानि हितानि च। अहि-तान्ना यप्यजीर्णानां वक्ष्यामि शमनानि च ।

भेषजानां परीक्षार्थ परिभाषा च भेषजे। न गभावे तु भेषजानां च संग्रहः ।

दिनचर्या, निशाचर्या, ऋतुचर्या च वक्ष्यते। वात पित बलाहानां वर्गः शेषे प्रवक्ष्यते। अथ दीपनादिः

इस प्रकार ग्रंथ में जिन बातों का विवरण देना है वह श्री मिश्र जी ने दिया है। और पूर्वापेक्षा इस ग्रंथ को उपयोगी बनाने के लिये चेष्टा की है।

तुलनात्मक अध्ययन :

भाव मिश्र ने गुणरत्न माला लिखकर क्या विशेषता इसमें रखी है इसका अध्ययन करने के लिये हमारे सहयोगियों ने पूरा विवरण आद्यन्त का संग्रह किया है। भाव प्रकाश के निघंटु भाग का ही यह परिमार्जित स्वरूप है। यही नहीं कई स्थानों पर नवीन श्लोक पद तक बढ़ाया मिलता है।

यथाः गजपीपल के वर्णन में : निम्न भाग-भाव प्रकाश में नहीं है। :

यथा : कपिवल्ली कोल वल्ली श्रेयसी वाशिरश्च सः

ऐसे ही भाव - प्रकाश निघटु में निम्न वस्तु नहीं है: यथा : कल्हार, कन्दली, हरटुजा, कदंब, विचकिल, चोर पुष्पी, उत्तमारणी चर्मरंगा। ममरी गध वबई। बाल मोटा देव शिरी शआतील वोट आदि।

गुण-रत्नमाला व भाव प्रकाश के कई श्लोक एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं। कुछ नहीं हैं कुछ हैं। इस प्रकार गुण-रत्नमाला वास्तव में निघंटु के कई अंश की पूर्ति करता है। यह ग्रंथ प्रकाशनार्थ तैयार है। यदि कोई प्रकाशक इसका प्रकाशन करना चाहें तो करने की बातें प्रोजेक्ट आफीसर श्री द्विवेदी जी से करें।

बैद्यनाथ जुकामो—जुकाम में अवश्य सेवन करें।

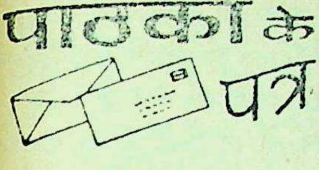

पाठकों के पत्र

"प्रतिवाद का प्रत्युत्तर"

"सचित्र आयुर्वेद' की मई १९७४ संख्या में डॉ० पी० एन० चतुर्वेदी, प्रभारी अधिकारी, प्रादेशिक अनुसंधान केन्द्र (आयु०), जोगिन्दर नगर (हि० प्र०) द्वारा लिखित एक प्रतिवाद मेरे "नाड़ी विज्ञान में अनुसंधान" शीर्षक लेख (सचित्र आयुर्वेद, एप्रिल ७४) के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है—उस प्रतिवाद के प्रत्युत्तर में मुझे कुछ लिखना ही पड़ रहा है। उक्त संस्था की ओर से वह निबन्ध लिखा या प्रकाशित कराया गया है—यह तथ्य भ्रमात्मक हो सकता है—परन्तु संस्था में इतना निम्नस्तर का कार्य होता है—यह प्रतिपादन करना मेरा उद्देश्य कतई नहीं था। शोधकर्त्ताओं का समवेत रूप ही शोध संस्था है -शायद डॉ० चतुर्वेदी को यह बात स्मरण कराना आवश्यक नहीं है। उनकी ही चिन्तनधारा से शोध संस्थाओं का कार्य प्रभावित तथा सम्पादित होता है। डॉ० चतुर्वेदी ने अपने प्रतिवाद के द्वारा अपने ही शोधकर्त्ताओं के ऊपर कटाक्ष किया है—जो शायद उचित नहीं था।

परन्तु प्रभारी अधिकारी का अधिकार वहां तक ही सीमित रखना उचित था। क्योंकि प्रतिवाद के अन्तिम भाग में मेरे लेख के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें कही गई हैं—जो तर्क-विहीन तथा तथ्य-रहित हैं। मेरे लेख में डॉ० चतुर्वेदी का "आधुनिक ज्ञान के साथ नाड़ी ज्ञान के समन्वय का भी अभाव' देखने को मिला। उनकी शिकायत है कि मैंने "आधुनिक नाड़ी ज्ञान के स्वभाव व नाड़ियों की वहिः अनुभूति (Character or form and condition of the vessel walls) पर लेश मात्र भी विचार नहीं किया है।"

मैं यह दावा कभी नहीं करता हूं—मेरा ज्ञान असीम है। मैं अपने सीमित ज्ञान के सहारे आयुर्वेद की यत् किंचित सेवा करता हूं—इससे अधिक दावा मेरा नहीं है। प्रभारी अधिकारी महोदय ने "नाड़ियों के स्वभाव अर्थात् Character or form" से उद्देश्य क्या था? साधारणत: Character of the pulse का अर्थ यही मैं समझता हूं The character of the pulse is the overall picture derived from the obsesvation of the pulse combinedly through the examination of Rate, Rhythm, Volume and tension और उसी पर्यवेक्षण के फलस्वरूप पाश्चात्य शास्त्र में Dicretic pulse, Anacretic pulse, Pulsus alternus, pulsus paradoxus आदि विभिन्न नामकरण किया गया है। अगर डॉ० चतुर्वेदी का उद्देश्य यही था कि मैंने नामकरण न करके गलती की है तो उन्हें यह जानकारी देना चाहता हू—कि जब तक आयुर्वेदानुसार वायु, पित्त व कफ की क्षय-वृद्धि-समता के आधार पर गति, यति, आकृति तथा संहति का अध्ययन सम्पन्न नहीं होता है—तब तक ऐसा नामकरण केवल असम्भव ही नहीं है—बल्कि अनुचित भी है। ऐसा तो आयुर्वेद में पारावतति, भेकगति, हंसगति, सर्पगति आदि विभिन्न जीवों की गति के द्वारा दोषों की क्षय वृद्धि का वर्णन मिलता ही है—परन्तु उन गतियों का समन्वय पहिले होना चाहिए—ताकि उसका प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव हो सके। अगर डॉ० चतुर्वेदी का उद्देश्य पाश्चात्य नामों का अनुवाद कर देना था—तो बात वही निम्नस्तर की हो जाती। डॉ० चतुर्वेदी को और एक बात कह देना चाहता हू—character एवं form—अलग-अलग वस्तु है। One is abstract thing whereas the other is a material thing, एक दूसरे का स्थानाभिविक्त नहीं हो सकता है।

नाड़ियों की वहिः अनुभूति (Condition of the vesselwalls), आकृति (Volume) परीक्षा से ही होती है। सूक्ष्म विचार से संहति (Tension) का कुछ भाग भी इन अनुभूति के लिये आवश्यक होता है—परन्तु स्थूलरूप से Volume परीक्षा से नाड़ियों की वहिः अनुभूति (Condition of the vasselwalls) होती है, उसके लिये शायद ही कोई विशेष पृथक परीक्षा की आवश्यकता होती है।

अन्त में उनके सुझाव के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना उचित समझता हुं। आयुर्वेद वर्णित व्याधियों में नाड़ियों का स्वरूप कैसा होता है—उसे सूत्रबद्ध करने के

लिये प्राथमिक आवश्यकता यही है—कि दोषों की क्षय-वृद्धि समता के अनुसार नाड़ी ज्ञान का समन्वय हो, बाद में स्वतः ही व्याधियों में नाड़ी-स्वरूपों की विशेषता तथा विविधता सूत्रबद्ध हो जायेगा—बशर्ते कि शोधकर्त्ताओं के निर्णय पर आयुर्वेद के विभिन्न विद्वानों की सहमति प्राप्त हो सके। तब ही सूत्रबद्ध करने का स्वप्न साकार हो सकता है—परन्तु वह अभी बहुत दूर है, कितना दूर है—कोई नहीं कह सकता है।

कविराज एस० एन० बोस

(२)

आभार-प्रदर्शन

श्रीयुत् सम्पादक महोदय,
'सचित्र आयुर्वेद'
महोदय,

आपके सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'सचित्र आयुर्वेद के माध्यम से मैं अपने उन सभी कृपालु बन्धुओं के प्रति आभार व्यक्त करना आवश्यक समझता हूं जिन्होंने निदेशक, देशी चिकित्सा बिहार के पद पर मेरी नियुक्ति के बारे में शुभकामना एवं बधाई-पत्र भेजे हैं। मैं सभी पत्रों का यद्यपि व्यक्तिगत रूप से उत्तर प्रेषित कर रहा हूँ, तथापि आपके माध्यम से भी आभार प्रदर्शन आवश्यक समझता हूँ। अतः कृपाकर निम्नांकित पंक्तियाँ प्रकाशित कर अनुगृहित करें—

एतद् द्वारा मैं उन सभी महानुभावों, आयुर्वेद-प्रेमियों एवं वैद्य बन्धुओं के प्रति प्राप्त शुभकामनाओं के लिए आभार प्रदर्शन करता हूं।

वैद्य नागेश द्विवेदी
निदेशक, देशी चिकित्सा
बिहार

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, लेखकों को आयुर्वेदिक एवं तिब्बी पुस्तकों पर पुरस्कार

आयुर्वेद एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ आयुर्वेदिक एवं यूनानी के विद्वानों को १- कायचिकित्सा २- शल्य शालाक्य ३- आयुर्वेद शिक्षण के लिए आधारभूत विज्ञान ४- द्रव्य विज्ञान एवं रस शास्त्र ५- प्रसूति एवं स्त्री-रोग एवं कौमारभृत्य आदि विषयों पर पुस्तक प्रणयन हेतु आमंत्रित करती है। उच्चस्तरीय विशेषकर आयुर्वेदिक महाविद्यालयों के लिए पाठ्य ग्रन्थ के रूप में उपादेय पुस्तकों पर शासन की स्वीकृति के पश्चात् पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे। इस प्रतियोगिता में वे ही पुस्तकें या पाण्डुलिपियां सम्मिलित की जायेंगी जो सन् १९६५ के पश्चात् लिखी गयी हों या प्रकाशित हुई हों। तिब्बी पुस्तकें उर्दू में भी स्वीकार की जायेंगी। प्रतियोगिता में आने वाली पुस्तकें सम्पूर्ण तथा कम से कम २५० पृष्ठ की अवश्य होनी चाहिए। वे पुस्तकें जो एक बार इस प्रतियोगिता में आ चुकी हैं अथवा अकादमी द्वारा जिनके किसी भाग पर पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है, उनका संस्करण इस प्रतियोगिता में नहीं सम्मिलित किया जायेगा। प्रतियोगी लेखकों को चाहिए कि वे अपनी मुद्रित पुस्तक की पन्द्रह प्रतियां दिनांक ३०-६-७४ तक अध्यक्ष, आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश, तुलसीदास मार्ग, पोस्ट बाक्स संख्या १४१, लखनऊ-४ के पास प्रेषित करें।

ह० मुकुन्दी लाल द्विवेदी
अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ० प्र०
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ-४

आयुर्वेद जगत

वैद्य प० रामनारायण शर्मा का जम्मू में स्वागत

गत दिनांक २३-४-७४ को सायं ४ बजे गवर्मेन्ट आयुर्वेद कालेज, जम्मू के प्रांगण में श्रीमान् पं० राम नारायण शर्मा, आयुर्वेदोपाध्याय, अध्यक्ष, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी-के पधारने पर कालेज के प्रिन्सीपल श्री सतीशचन्द्र सांख्यधर जी तथा जम्मू नगर आयुर्वेद सम्मेलन के महामंत्री श्री गौरी शंकर द्विवेदी जी माननीय पण्डित जी को बड़े आदर-भाव से कालेज हाल में ले गये। वहां पर उपस्थित सभी वैद्य महानुभावों तथा कालेज के अधिकारियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। जम्मू-कश्मीर प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन एवं जम्मू म्युनिसिपल कौंसिल के प्रधान श्री विष्णुदत्त शर्मा वैद्यवाचस्पति जी ने तथा कालेज के प्रिन्सीपल डा० सांख्यधर जी ने भावभीना अभिनन्दन करते हुए पण्डितजी को पुष्पमालायें अर्पित की और उपस्थित वैद्य महानुभावों ने करतल ध्वनि से स्वागत और अभिनन्दन किया। माननीय पण्डित जी के स्वागत भाषण में प्रिन्सीपल सांख्यधर जी ने कालेज के प्रारम्भ होने के काल से लेकर, आज तक की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए आज की आयुर्वेद की दुःखद दशा का दिग्दर्शन कराया।

जम्मू-कश्मीर आयुर्वेद सम्मेलन के महामंत्री श्री ज्योतिषि रामकृष्ण जी थे। आपने इस प्रदेश के वैद्य समाज रजिस्ट्रेशन एक्ट और गवर्मेन्ट आयुर्वेदिक तथा यूनानी डिसपेंसरियों की शोचनीय दशा का विवरण देते हुए श्रीमान पण्डित जी से प्रार्थना की, कि श्रीमान् आयुर्वेदोद्धार के पुनीत कार्य में हमारी सहायता करें। हम वहां पर एक धन्वन्तरि भवन एवं एक औषधालय निर्माण करना चाहते हैं तथा एक आयुर्वेद-गोष्ठी (सेमीनार) करवाना चाहते हैं। माननीय पण्डित जी इस कार्य में हमारे सहायक बनें।

श्री गौरीशंकर द्विवेदी जी ने उपस्थित सभी वैद्य महानुभावों का परिचय पण्डित जी से कराया और आयुर्वेदोद्धार के महान कार्य में सहायता के लिये पुनः प्रार्थना की, और कहा कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन परम्परा से अपनी उदारता के लिये भारत भर में प्रख्यात हैं।

श्री द्वारिकानाथ शास्त्री प्राध्यापक, आयुर्वेद कालेज ने पण्डित जी की स्तुति में अपनी सुललित संस्कृत रचना (नारायण पञ्चक और मणि पञ्चक) द्वारा उपस्थित वैद्य समाज को मन्त्र मुग्ध कर दिया।

आयुर्वेद के परम भक्त श्रीमान् पण्डित जी (अध्यक्ष-श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी) ने अपने स्वागत भाषणों के प्रत्युत्तर में जम्मू के वैद्य समाज, कालेज के प्रिन्सीपल तथा अधिकारियों का हार्दिक धन्यवाद किया, एवं परम उदारता का परिचय देते हुए श्री पण्डित जी ने निम्न घोषणायें कीं—

१. जम्मू गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज में आयुर्वेद विषयों में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र को भविष्य में एक स्वर्ण पदक श्रीमान् पं० रामनारायण आयुर्वेदोपाध्याय (अध्यक्ष—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी—उ० प्र०) जी की ओर से प्रदान किया जाया करेगा।

२. श्री धन्वन्तरि चिकित्सा भवन के लिये एक बड़ा कमरा, अपने गुरुवर स्वर्गीय पण्डित मणिराम जी शास्त्री, भिषगाचार्य, भूतपूर्व प्रधान निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, के नाम पर बनवायेंगे जिसका सम्पूर्ण खर्च वे स्वयं वहन करेंगे।

३. आयुर्वेद गोष्ठी (सेमीनार) के विषय में समय आने पर विचार कर के यथासम्भव सहायता का आश्वासन उन्होंने दिया। उक्त घोषणायें करने पर तुमुल करतल ध्वनि से उपस्थित वैद्य समाज ने पण्डित जी का अभिनन्दन किया।

इस सारे कार्य-क्रम में डिपुटी डायरेक्टर, स्वास्थ्य विभाग, जम्मू कश्मीर गवर्नमेंट, डा० जय कुमार शर्मा जी (सुपुत्र स्वर्गीय वैद्य शिरोमणि पण्डित मणिराम जी) भी उपस्थित थे।

४. अन्त में जम्मू-कश्मीर प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन के प्रधान एवं जम्मू म्युनिसिपल कौंसिल के अध्यक्ष श्री वैद्य विष्णुदत्त जी ने जम्मू-कश्मीर में आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा की गम्भीर स्थिति पर प्रकाश डालते हुए

पण्डित जी की घोषणाओं का हार्दिक धन्यवाद किया और आशा व्यक्त की कि श्रीमान् पण्डित जी अपने प्रभाव से आयुर्वेदोत्थान के लिये हमारे प्रदेश की सहायता करेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है। हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करके आपने हमें कृत-कृत्य किया है। मैं अपनी ओर से तथा जम्मू के वैद्य समाज की ओर से पुनः हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

अन्त में जलपान के अनन्तर पण्डित जी ने कालेज के आतुरालय तथा फार्मेसी विभाग को देखा, फार्मेसी में औषध-निर्माण के लिये और रोगियों की चिकित्सा के सम्बन्ध में कालेज के प्रिन्सीपल महोदय को अपने अनुभवपूर्ण अमूल्य सुझाव दिये।

भविष्य में पुनः पण्डित जी के दर्शनों की अभिलाषा से सभी वैद्य महानुभावों ने करबद्ध अभिवादन करते हुए हृदय-ग्राही अपने प्रिय अतिथि को भावपूर्ण विदाई दी।

इस प्रकार सौहार्दपूर्ण वातावरण में कार्यक्रम समाप्त हुआ।

हरिद्वार के कुम्भ-मेला में आयुर्वेद-सेवा

मैंने खुद १२-४-७४ से २५-४-७४ तक हरिद्वार में कुंभ मेला देखा, और यह पाया कि इस बार इतजाम और कुंभ की बजाय बहुत अच्छा किया गया था। मैंने अपनी याद में ये चौथा कुंभ देखा है।

मैं एक आयुर्वेदिक चिकित्सक हूं और हरिद्वार में ठहर कर आयुर्वेदिक शिविरों में खूब और कई-कई बार घूमा। मैंने भूपतवाला के राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के दोनों वैद्यों (जिनके नाम शायद श्री बलराम दत्त शर्मा और डा० सत्यपाल शर्मा थे) से बातचीत की। उन्होंने ही बतलाया कि राजकीय शिविर पंतद्वीप, रोड़ीवाला, बैरागी कैंप और सप्त सरोवर में भी हैं। मैं धीमे-धीमे पांचों अस्पतालों में कई बार घूमा। मैं अपने विचार लिख रहा हूं। मरीजों की दृष्टि मे शायद बैरागी कैम्प सबसे आगे रहा होगा, नम्बर दो पर भूपतवाला सजावट की दृष्टि से पंतद्वीप देखा, वहां पर श्री धर्मपाल जी और श्री आनन्द भूषण शर्मा चिकित्साधिकारी थे। उनके इन्स्पेक्टर साहब श्री शिवनाथ शास्त्री जी से नहीं मिल सके। मैं आखिर तक वहां पर रहा और यह देखा कि हर आयुर्वेदिक चिकित्सालय-क्षेत्र में राजकीय ऐलोपैथिक चिकित्सालय भी था पर जैसा जनता का आकर्षण आयुर्वेद के अस्पतालों के प्रति था वैसा उधर नहीं था।

मैं भूपतवाला के शिविर में उस दिन और उस समय वहीं पर था जब पुलिस के आदमी एक डूबे हुए व्यक्ति को गंगा में से निकाल कर आयुर्वेदिक अस्पताल में लाए, तुरन्त सब कामों को छोड़कर डा० सत्यपाल शर्मा और बलरामदत्त शर्मा दोनो ने मिलकर खूब प्रयास किया और अंत में परमात्मा ने उनको मेहनत का फल दिया और रोगी ने जीवन पाया।

वहां के अफसर लोग खूब प्रभावित थे। मैंने आकाशवाणी लखनऊ से प्रभारी चिकित्सा-अधिकारी श्री सत्यपाल शर्मा और श्री आनन्दभूषण शर्मा का प्रसारण भी सुना। बड़ा अच्छा विवरण दिया।

आयुर्वेद जगत में ऐसी सेवा वास्तव में प्रशंसनीय है। सभी कुंभ मेला में काम करने वालों को विभाग द्वारा इनाम मिलना चाहिए और प्रशंसा-पत्र भी। वर्तमान अधिकारी से रिपोर्ट मांगी जाय कि सर्वोत्तम तीन व्यक्ति कौन हैं, प्रत्येक को विभाग द्वारा प्रशंसा-पत्र व पांच सौ रुपया पारितोषिक मिलना चाहिए।

रामस्वरूप दास, आयुर्वेद मार्तण्ड, राजस्थान

श्री वेदप्रकाश शर्मा पी-एच० डी० की उपाधि से सम्मानित

प्राच्य-प्रतीच्य दर्शन, विज्ञान, एवं चिकित्सा वाङ्मय समन्वित 'पंचमहाभूत' विषयक उच्चस्तरीय शोध-प्रबन्ध पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने श्री वेदप्रकाश शर्मा—राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, उदयपुर (भूतपूर्व, आचार्य—आयुर्वेदिक विश्वभारती, सरदार शहर) को पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की है।

उक्त शोधकार्य राष्ट्रपति सम्मानित विद्यावाचस्पति श्री विद्याधर शास्त्री-डायरेक्टर हिन्दी विश्व भारती, बीकानेर के निर्देशन में सम्पन्न किया गया। संगरिया (श्री गगानगर) निवासी डा० शर्मा के पिता महामहोपाध्याय पं० श्री रामचन्द्र शास्त्री 'विद्यालङ्कार' भी राजस्थान के प्रमुख संस्कृत विद्वान् हैं।

राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ उत्तर प्रदेश

(१) गढ़वाल मंडल के मुख्यालय पौड़ी में दिनांक ४ मार्च, ७४ को राजकीय आयुर्वेद यूनानी चिकित्सा वा संघ की क्षेत्रीय शाखा चमोली का चुनाव क्षेत्रीय आयुर्वेद अधिकारी श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी गोपेश्वर मोली की अध्यक्षता में निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ।

अध्यक्ष श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, चिकित्साधिकारी वैराङ्गणा
उपाध्यक्ष ,, जाह्नवी प्रसाद जोशीं (चि० अ० वुगाणी :
मंत्री श्री शंकरमणि शर्मा, खंकरियाल चि० अ० साकनीखेत'
उपमंत्री श्री गोविन्द प्रसाद, कुकरेती चि० अ० पोखड़ा
प्रचार एवं विज्ञान गोष्ठी मंत्री शान्ति प्रसाद लखेड़ा चि० अ० तपोवन
आय-व्यय-निरीक्षक श्री महीपत सिंह रावत चि० अ० लमगोड़ी
सदस्य कार्यकारिणी—श्री त्रिपुराचरण बहुगुणा चि० अ० श्रीगढ़
,, ,, मुरलीधर पोखरियाल चि० अ० पोखरीखेन
,, ,, राम मिलन मौर्य चि० अ० चुरानी
,, ,, रमेशचन्द्र डिमरी चि० नगर
,, ,, इन्द्रदेव बहुगुणा चि० अ० देवलगढ़
,, ,, मदनगिरी गोस्वामी चि० किलकिलेश्वर

(२) मुख्यमंत्री बहुगुणा जी से निवेदन

गढ़वाल मंडल के मुख्यालय पौड़ी में प्रायः सभी विभागों के कार्यालय खोले गये हैं, किन्तु क्षे० आयुर्वेदिक अधिकारी के कार्यालय को गोपेश्वर चमोली में रखने का औचित्य समझ में नहीं आता। गोपेश्वर में आयुर्वेदिक अधिकारी को कार्यालय के कारण आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की प्रशासनिक व्यवस्था में जहां कठिनाई उपउनः हो रही है वहाँ उसके कर्मचारियों को भी परेशानी उठानी पड़ रही है। पौड़ी दोनों जिलों का केन्द्रस्थ स्थान तो पड़ता ही है, इसके अतिरिक्त जन-साधारण को भी कई विभागों के एक स्थान पर रखने से कार्य की दृष्टि से सभी सुविधा रहती है। इसमें जनता व सरकार के समय व धन की भी बचत होती है, अतः जन हित व प्रशासन की सुव्यवस्था के लिए हमारी उत्तर-प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री बहुगुणा जी से विशेष प्रार्थना है कि क्षे० आ० अधिकारी के कार्यालय को यथाशीघ्र गोपेश्वर से पौड़ी में स्थानान्तरण किया जाय।

भवदीयः श्री शंकर खंकरियाल
मंत्री रा० आ० यू० चि० सेवासंघ
क्षे० आ० चमोली, गढ़वाल

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र पटना :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० पटना द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र-पटना में माह अप्रील सन् १९७४ में कुल १०८४ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। जिसमें ७४४ रोगी पुराने तथा ३४० रोगी नये आये।

इनफ्लुंजा ८१, आमातिसार ६०, बालरोग ३०; वात व्याधि ३०, प्रदर २०, कर्णरोग १८, चर्मरोग ६०, अजीर्ण २०, पामा ५, यकृत वृद्धि ८, अण्डकोष ५, शिरः शूल ३, कास श्वास ४।

चिकि०
विश्वनाथ मिश्र वैद्य
जी० ए० एम० एस०

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र, झांसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय झांसी में माह मार्च १९७४ में कुल ४१४ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई, जिनमें नवीन रोगी ९४०.है। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार है।

वातज ज्वर ९८, पित्त ज्वर ४६, कफज ज्वर २४, जीर्ण ज्वर ७, पित्तज ज्वर १५, प्रसूत ज्वर ३, प्रतिश्याय ९४, गल शुण्ठिका ५, कृमि रोग १४, वातातिसार ११, पित्तातिसार १, कफातिसार ४, रक्तातिसार

६, अमातिसार २४, जीर्णातिसार १२, वालातिसार ३४, वातज कास ४५, पित्तज कास ५, कफज कास ३७ तमक श्वास ३, क्षुद्र श्वास ४, अग्निमांद्य १८, आमजीर्ण १४, विदग्धाजीर्ण ५, विष्टब्धाजीर्ण ५, विविध ७, वातोदर शूल २३, शिरः शूल ४९, पार्श्व शूल ४, वृक्क शूल १, कटि शूल ७, उरः शूल ३, वातव्याधि ३०, विश्वाची ६, छर्दि २, अम्लपित्त ५, शोथ ६, विद्रधि २, व्रण १०, पामा १०, कण्डू ३९ विचर्चिका १६, गर्भ रोग २, आघात् ४, अर्श १, रक्तार्श ६, प्रमेह १५, मूत्र कृच्छ्र ४, रक्त प्रदर ९, श्वेत प्रदर ३२, रक्ताल्पता २९, कर्ण रोग ५, कर्ण स्राव ३, दन्त रोग ५, नेत्र रोग ३, मुख पाक २१, भ्रम ९, उरः क्षत १, स्नायु दौर्बल्य ९, श्वेत कुष्ठ २. श्लीपद २, यकृत वृद्धि ४, हृदय दौर्बल्य १, कु० कास २, शीत पित्त १, वात रक्त १, दन्तोद्भेदन ३, खालित १, रोमान्तिका २, अण्डकोष वृद्धि १, नूतन-९४०, पुरातन ३२०३, मासिक योग-४१४३।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झांसी द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय झांसी में माह अप्रैल १९७४ में कुल ३९६० रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई—जिसमें नवीन रोगी ९५३ हैं, प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार हैं।

वातज ज्वर १२०, पित्तज ज्वर ६४, कफज ज्वर १२, जीर्ण ज्वर १०, विषम ज्वर १५, प्रसूत ज्वर २, प्रतिश्याय ८७, गलशुण्डिका ३, श्वसनक ज्वर १, कृमि रोग १२, वातातिसार ६, पित्तातिसार ७, कफातिसार १, रक्तातिसार ८, आमातिसार ३७, जीर्णातिसार ३२, बालातिसार २९, वातज कास ३४, पित्तज कास ३, कफज कास २२, क्षुद्र श्वास ८, अग्नि मांद्य ८, आमाजीर्ण २१, विष्टब्धाजीर्ण ५, विबंध ८, वातोदर शूल २९, शिरः शूल ४८, पार्श्व शूल ४, वृक्क शूल १, कटि शूल ५, उरः शूल ५, वात व्याधि ३३, गृध्रसी वात ४, विश्वाची ५, आमवात १, छर्दि ६, अम्लपित्त ५, शीत पित्त ३, रक्तपित्त १०, स्फोट १, शोथ ४, विद्रधि २, व्रण १२, पामा १५, कण्डू २८, विचर्चिका १५, दद्रु २, गर्भ रोग १०, आघात २, अर्श ३, प्रमेह ८, मूत्रकृच्छ्र १०, मूत्र रोग २, रक्तप्रदर ११, श्वेतप्रदर १९, रक्ताल्पता १३, कर्ण रोग ७, कर्ण स्राव २, दन्त शूल ३, नेत्र रोग ६, मुखपाक १९, भ्रम १४, दाह २, हृदय दौर्बल्य ७, दन्तोद्भेद ५, अग्नि दग्ध २, श्लीपद १, ग्रहणी १, मसूरिका २, स्नायु दौर्बल्य ४, यकृत वृद्धि १, वात रक्त १, रोमान्तिका १, उपदंश १, रजःकृच्छ्र १, श्वेत कुष्ठ २, नवीन ९५३, पुरातन ३००७, मासिक योग ३९६०।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ग्रेट नागपुर द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह अप्रैल सन् १९७४ में ६४९४ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ६९८ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वर १७२, कास ५८, उदावर्त्त २०, श्वास १४, अतिसार ५५, प्रतिश्याय ३६, शिरःशूल ८, दन्त रोग ३, कर्ण रोग ११, नेत्र रोग ३, वातव्याधि ३४, आमविकार ७, कृमि १३, शोथ ८, पार्श्वशूल १, शीतपित्त ४, पिड़िका २, व्रण, ६, दौर्बल्य ५७, दाह ३६, मुखपाक ७, रक्त पित्त १, मूत्रकृच्छ्र ७, अर्श १२, अम्लपित्त ८, रक्त विकार ७, मन्दाग्नि १२, अभिघात २, शिरोभ्रम ३, रक्त प्रदर ४, उरः शूल १, कोष्ठबद्धता ७, विसर्प ४३, गृध्रसी १, यकृतोदर १, प्रमेह ३, कष्टार्तव १, स्वर भग १, कटि शूल ५, शुक्रमेह २, प्रसूतिका विकार २, अश्मरी १, गुदभ्रंश १, अर्धावभेदक १५, कामला १, रजोविकार ३, कुल जोड़ ६९८।

'कल्याण'-सम्पादक श्री चिम्मनलाल जी गोस्वामी का निधन

५ मई, सन् १९७४ रविवार को ९ बजकर २२ मिनट पर 'कल्याण' के यशस्वी सम्पादक श्री चिम्मनलालजी गोस्वामी का गोलोकधामवास हो गया। आप गत पांच-छह महीनों से बीमार चल रहे थे। वृक्क एवं हृदय में विशेष दोष उत्पन्न होने से शरीर की स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती गयी और अन्त में श्री गोस्वामीजी कल्याण-परिवार को असहाय छोड़ भगवान् के परमधाम में प्रतिष्ठित हो गये। वे अपने पीछे विधवा धर्मपत्नी को छोड़ गये हैं।

स्वनामधन्य श्री गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान थे। ये कुछ वर्षों तक महामहोपाध्याय पण्डित श्री गोपीनाथ जी कविराज के छात्र रह चुके थे। उन्हीं के अन्तेवासी के रूप में आपने हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से एम० ए० किया था। एम० ए० में आपका मुख्य विषय संस्कृत दर्शन था। उसका अध्ययन आपने भारतविख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा की सेवा में रहकर किया था। उन्हीं दिनों आपने कुछ काल तक महामना मालवीयजी के प्राइवेट सेक्रेटरी के पदपर भी कार्य किया था। वहां से लौटने पर आप बीकानेर राज्य में उच्चपद पर नियुक्त हो गये थे।

बीकानेर की सत्संग-गोष्ठियों (संवत् १९७५) में आपने परमपूज्य भाईजी श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार के प्रवचन सुने और उनके लोकोत्तर आध्यात्मिक व्यक्तित्व का दर्शन किया। इससे आकृष्ट हो कर श्री गोस्वामीजी श्री भाईजी के सर्वथा अनुगत हो गये और अपने जीवन की बागडोर भगवत्स्वरूप श्रीभाईजी के ही हाथ में सौंप दी। पोद्दार जी का एक-ही-दो दिनों का सान्निध्य इनके भावी जीवन को विशेष दिशा की ओर मोड़ देने में समर्थ हुआ।

संवत् १९९०, सन् १९३३ में इन्होंने बीकानेर राज्य की नौकरी छोड़ दी और 'कल्याण' के सम्पादन-विभाग में कार्य करने के लिये ये सपत्नीक गोरखपुर आ गये। तब से इन्होंने ममता के सारे बन्धनों को समेटकर स्थायी रूप से श्री भाईजी के साथ दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'कल्याण-कल्पतरू' नामक मासिकपत्र निकालना आरम्भ किया। 'कल्याण-कल्पतरू' का विकास इन्हीं के श्रम एवं तत्परता से हुआ। इन्होंने कई सद्ग्रन्थों का सुन्दर, शुद्ध तथा प्रामाणिक अनुवाद अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किया और उसका सर्वत्र समादर हुआ। ब्रह्मलीन श्री जगदयालजी गोयन्दका द्वारा लिखित गीता-तत्वविवेचनी टीका, गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत महापुराण तथा वाल्मीकीय रामायण आदि ग्रन्थों के प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद आपने सरल, सुस्पष्ट प्रामाणिकरूप में तथा परिमार्जित भाषा में शिक्षित जगत् के लिये सुलभ कराये।

श्री भाईजी ने जो मर्यादा का क्षेत्र स्थापित किया था, गोस्वामीजी उसके मेड़ थे, इनके दिवंगत होने से वह मेड़ ढह गया-सा जान पड़ता है। इन्होंने अपने सफल सम्पादकत्व में 'कल्याण' के 'श्री रामाङ्क, श्री विष्णु-अङ्क, श्रीगणेश-अङ्क' प्रकाशित करके यह दिखा दिया कि श्री भाईजी की परम्परा का निर्वाह इनके द्वारा किस सीमा तक सफल हो सकता है।

श्री गोस्वामीजी बड़े ही विनयशील, उदार और प्रेमी अन्तःकरण के थे। उनका व्यवहार सबके प्रति अत्यन्त मृदु एव सौहार्दपूर्ण था। वे सबको संतुष्ट रखने में सफल तथा यशस्वी थे। उनके परमधामगमन से आध्यात्मिक क्षेत्र का एक महान् विद्वान उठ गया और अध्यात्म-साहित्य क्षेत्र को अपूरणीय क्षति पहुंची है।

श्री भदानी को श्रद्धांजलि

गया नगर के वैद्यों की यह सभा स्व० वैद्य रामावतार राम भदानी, व्यवस्थापक दी गया माहुरी ट्रेडिंग कम्पनी, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के विशिष्ट एजेन्ट के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। तथा उनके शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य एव भदानी जी की दिवगत आत्मा की शान्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती है।

दारोगा मिश्र वैद्य
अध्यक्ष

आयुर्वेद चिकित्सक का निधन

खामगांव के प्रतिष्ठित चिकित्सक वैद्यराज मदन लाल जी व्यास का २ मास की बीमारी के बाद सं० २०३० चैत्र कृष्णा १३ दि० २१-३-७४ गुरुवार को ७९ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। आप लब्धप्रतिष्ठ चिकित्सक दयालु स्वभाव के थे। आप ब्राह्मण समाज एव गरीबों को निःशुल्क औषधि प्रदान करते थे। आपके द्वारा हजारों रुग्णों को आयुर्वेदीय औषधि द्वारा जीवन प्रदान किया गया। उनके निधन से एक प्रतिष्ठित वैद्य वैद्य समुदाय से चल बसे।

आप संग्रहणी रोग के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। वह अपने पीछे ३ पुत्र एवं १ पुत्री तथा बड़ा परिवार छोड़ गये हैं तीन पुत्र सुशिक्षित होकर वैद्यक व्यवसाय करते हैं। भगवान दिवंगतात्मा को शांति प्रदान करें।

आरोग्य धाम आयुर्वेद विद्यालय, फैजाबाद

आरोग्यामामयायुर्वेद विद्यालय में बोद्ध पूर्णिमा के दिन बुद्ध जयन्ती, रवीन्द्रनाथ टैगोर जयन्ती तथा जगद गुरु शंकराचार्य जयन्ती उत्साह के साथ मनायी गई। सभा की अध्यक्षता भूतपूर्व एम०पी०पं० राजाराम मिश्र ने की

इस अवसर पर उपस्थित नागरिकों के समक्ष इन महापुरुषों के चरित्र व सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया।

पंत आयुर्वेदिक कालेज, हस्तिनापुर

पं० गो० ब० पन्त आयुर्वेदिक कॉलेज में छात्र-संघ की स्थापना इस वर्ष हो गयी है। निम्न पदाधिकारियों का चुनाव किया गया।

प्रीमियर श्री कृष्णपाल सिंह, जनरल सेक्रेटरी श्री प्रदीप कुमार मिश्र, चीफ-प्रीफेक्ट डा० श्री भगवान गुप्त, एडमिनिस्ट्रेटर श्री ओमानन्द पाल, कोषाध्यक्ष श्री महेन्द्रपाल वर्मा, लिटरेचर इंचार्ज श्री जितेन्द्र कुमार शर्मा, खाद्याध्यक्ष श्री रमेशचन्द्र शर्मा, क्रीड़ाध्यक्ष श्री सरदार चरन जीत सिंह, मुख्य कालिज प्रतिनिधि १. डा० श्री भगवान गुप्त, २. श्री महेन्द्रपाल वर्मा,

यह कालेज सन १९७३-७४ में भारतीय चिकित्सा परिषद् उ० प्र० लखनऊ से सम्बन्धित श्री १००८ वीतरागस्वामी कल्याणदेव जी महाराज के द्वारा हस्तिनापुर में स्थापित किया गया था।

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउन्डर उ० प्र० के बन्धुओं को आवश्यक सूचना

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ उ० प्र० का पन्द्रहवां वार्षिक अधिवेशन दिनांक १९ व २० जून ७४ को लखनऊ में करने के लिए निश्चित किया गया है तथा दिनांक १८ से २१ जून ७४ तक ४ दिन के विशेष आकस्मिक अवकाश की स्वीकृति हेतु श्री मान् निदेशक आयुर्वेद उत्तर प्रदेश, लखनऊ को लिखा गया है।

अतः समस्त राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर बन्धुओं से निवेदन है कि वह अपना वार्षिक चन्दा पाँच सौ एवं नूतन सदस्य एक रुपया सदस्यता शुल्क के साथ छः रुपया अधिवेशन से पूर्व ही भेजने की कृपा करें जिससे अधिवेशन का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करने में सहायता मिल सके तथा अधिवेशन में सम्मिलित हों।

वैद्यनाथ
महायोगराज
गुग्गुलु
सर्वांग शूल, कमर या मेरुदण्ड के दर्द एवं समस्त प्रकार के वायु के विकारों की सुप्रसिद्ध महौषधि।

"सचित्र आयुर्वेद" के जुलाई, १९७१ से जून, १९७४ तक के लेखों की त्रिवार्षिक—सूची

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ०सं०	अंक का नाम
अभिभाषण	पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य	८९	अगस्त ७१
अखिल भारतीय वैद्य-हकीम सम्मेलन, लखनऊ		१६०	"
अ० भा० आयुर्वेद पत्रकार संघ का ६ठा अधिवेशन		१६२	"
अभिभाषण	पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य	१७६	सितम्बर ७१
अनुसंधान विषयक समस्याएं (अंग्रेजी)	श्री आर० आर० पाठक	२००	"
अवकाश प्राप्त व्यक्तियों की समस्या	श्री भवानी शंकर बनर्जी	२१९	"
अध्यात्म बूढ़ों की बुढयस नहीं	श्री जयप्रकाश नारायण	३४१	"
अनन्तवात और अन्यतोवात	डा० करतारनाथ छतलानी	३७०	"
अन्तरराष्ट्रीय आयुर्वेद : समस्याएं और समाधान	पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य	५	मार्च ७२
अभिभाषण		३१४	अप्रैल ७२
अन्तरराष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन		७२३	मई ७२
अष्टांग आयुर्वेद—एक दृष्टि	कविराज धर्मदत्त चौधरी	६८५	" ७२
अपस्मार	कविराज एस० एन० बोस	५२	जुलाई ७२
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन		६८	" ७२
अग्न्यधिष्ठान-षष्ठीपित्तधराकला	वैद्य मणिभाई ब्रह्मभट्ट	६५	अगस्त ७२
ग्रहणीरूप नाड़ी-एक अभ्यास		११२	"
अरोचक—२ : शोथ :	वैद्य रणजित राय देसाई		
अपनी मौलिकताओं के कारण आयुर्वेद अमर है	पं० शिव शर्मा	२२९	अक्टूबर ७२
अश्मरी रोग पर कुलत्थ का एक प्रयोग	डा. आर.ए. प्रसाद, डा. एल.एम. सिंह	३५३	नवम्बर ७२
अग्निमांद्य तथा षड्विधोपक्रम	वैद्य वि० भा० म्हैसकर	३८५	दिसम्बर ७२
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महामंत्री का पत्रकार-गोष्ठी में वक्तव्य		५४८	फरवरी ७३
अखिल भारतीय फर्मास्यूटीकल कांग्रेस का २४वां वार्षिक अधिवेशन	वैद्य मायाराम उनियाल	५९१	"
अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में आयुर्वेद का प्रभाव और हमारा कर्तव्य	कविराज श्रीमती कादम्बरी आचार्य	६५४	मार्च ७३
अ० भा० आ० शास्त्र-चर्चा-परिषदों की यादवीय परम्परा और पं० रामनारायण शर्मा	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी	५०	जून ७३
अमरनाथ शास्त्री	डा० केवलधीर	१०५	अगस्त ७३
अभिभाषण	प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा	२५६	अक्टूबर ७३
अन्नंब्रह्म	डा० अनन्तराम शर्मा	३५२	दिसम्बर ७३
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के नई दिल्ली विशेषाधिवेशन में पारित प्रस्ताव		३६७	"
अनार—एक उपयोगी फल	श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु	६२९	अप्रैल ७४

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
आयुर्वेद में मेरी आस्था है	श्री निकोलायत्र	८५	अगस्त' ७१
आयुर्वेद अवैज्ञानिक नहीं	स्व० श्रीप्रकाश	क	सितम्बर' ७१
आयुर्वेद विश्वविद्यालय का सिद्धान्त एवं सन्देश (अं)	डा० पी० एम० मेहता	१९८	„
आयुर्वेद प्रवर्तक-'धन्वन्तरि'	श्री शिशिर पाठक	२७६	अक्टूबर' ७१
आयुर्वेदीय निदान विषयक मूल बातें (अंग्रेजी)	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी	२८८	„
आयुर्वेदिक फर्माकोपिया में प्रयुक्त वनौषधियों पर अनुसन्धान की आवश्यकता	वैद्य मायाराम उनियाल	३७६	नवम्बर' ७१
आयुर्वेद की परिपूर्त्ति एवं विस्तार अपेक्षित	स्व० यादवजी त्रिकमजी आचार्य	४१३	दिसम्बर' ७१
आयुर्वेद कायाग्नि पाचकपित्त-एक अभ्यास	वैद्य मणिभाई ब्रह्मभट्ट	४१७	„
आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धति का वैशिष्टय	श्री नरेशनाथ मुखर्जी	४८५	जनवरी' ७२
आयुर्वेद-सेवी मात्र भूतजीवी न बनें		४८६	„
आयुर्वेद साहित्य-प्रणयन में जैनाचार्यों का योगदान	श्री राजकुमार जैन	५५३	फरवरी '७२
आयुर्वेद समाराधन	आचार्य गौरकृष्ण गोस्वामी	१	मार्च' ७२
आयुर्वेद और वैद्यबन्धु	वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा	३	मार्च' ७२
आयुर्वेद का व्यापक स्वरूप	श्री मोहनलाल व्यास	९	„
आयुर्वेद में ब्रह्मविद्या-आयुर्वेदोपनिषद्	आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा	१४	„
आयुर्वेद और रसशास्त्र	आचार्य हरदयाल वैद्यवाचस्पति	३२	„
आयुर्वेद में शवच्छेद विज्ञान	डा० पी० सी० जैन एवं डा० दिनकर गोविन्द थत्ते	३७	„
आयुर्वेद निदान पद्धति की निपुणता	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे	४१	„
आयुर्वेद में राजरोग कैन्सर का विचार	वैद्य वेणीमाधव अश्विनी कुमार शास्त्री	६१	„
आयुर्वेद दर्शनाधार व्यावहारिकते	वैद्य नागेश द्विवेदी शास्त्री	१४७	„
आयुर्वेदिक एप्रोच टू द प्रोबलेम्स आफ हेल्थ (अं०)	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी	२६	„
आयुर्वेद-भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अंग	श्री देवकान्त बरूआ	६११	अप्रैल' ७२
आयुर्वेद में वर्णित गंधक (अं०)	डा० वी० के० अग्रवाल एवं डा० दामोदर जोशी	६३३	„
आयुर्वेद-जीवन का शास्त्र	आयुर्वेद चक्रवर्ती पं० शिव शर्मा	६७५	मई' ७२
आयुर्वेद का उपदेश	श्री धर्मदत्त वैद्य	६८०	„
आयुर्वेद-संगोष्ठी		७२६	„
आयुर्वेद-प्रदर्शनी		७६०	„
आयुर्वेद-भारतीयता का अभिन्न अंग	राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरन गुप्त	७४९	जून' ७२
आयुर्वेदिक चिकित्सकों से स्वास्थ्य-मंत्री की अपील		७५०	„
आयुर्वेदीय अनुसन्धाता	श्री रामाकान्त अग्निहोत्री	७५७	„
आयुर्वेदीय इन्जेक्शन-एक विवेचन	कविराज तेज बहादुर चौधरी	६९४	„
आयुर्वेदोन्नयन के लिए कठोर साधना जरूरी	श्री जगजीवन राम	६	जुलाई ७२
आयुर्वेद इन द मेल्टिंग पॉट (अं०)	कवि० एम० एस० नागेश राव	३६	„
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा	आचार्य रामरक्ष पाठक	८५	अगस्त' ७२

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
आयुर्वेद औषध संग्रह (फार्माकोपिया)	डी० एम० जय सिंघ	११७	अगस्त' ७२
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-२	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	१६७	सितम्बर' ७२
आयुर्वेदीय अनुसन्धान	डा० रमाकान्त अग्निहोत्री	१९७	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-३	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	२३५	अक्टूबर' ७२
आयुर्वेद में स्नातक स्तर शिक्षा की रूपरेखा	कविराज आशुतोष मजुमदार	३२५	नवम्बर'७२
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-४	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	३२९	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-५	आचार्य पं० रामरक्ष पाठक	४९७	दिसम्बर' ७३
आयुर्वेदानुसन्धान की समस्या और उसका स्वरूप	श्री मदन गोपाल वैद्य	४१४	"
आयुर्वेद में शोध की महती आवश्यकता	श्री वृजेन्द्र कुमार शर्मा	७	जनवरी'७३
आयुर्वेदिक इतिहास की रूपरेखा—६	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	१४	"
आयुर्वेदिक ड्रग इन्डस्ट्री	कविराज पुरुषोत्तमदेव मुल्तानी	३८	"
आयुर्वेद और सत्कार्यवाद	डा० मदनलाल	५५७	फरवरी'७३
आयुर्वेदिक इतिहास की रूपरेखा—७	आचार्य रामरक्ष पाठक	५७५	"
आयुर्वेदीय सद्वृत्त एवं स्वस्थवृत्त के परिप्रेक्ष्य में — एक अध्ययन	वैद्य एम० के० त्यागी श्रीमती आर० के० त्यागी	६२९	मार्च '७३
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा—८	आचार्य रामरक्ष पाठक	६४०	"
आयुर्वेद, आयुर्वेद है।	डा० सम्पूर्णानन्द	६६९	अप्रैल ७३
आयुर्वेद विकास के पथ पर	सम्पादक	६७०	"
आयुर्वेद मानव जीवन के उत्थान का शास्त्र	श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	६७३	"
आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का सिंहावलोकन	आचार्य हरदयाल वैद्यवाचस्पति	६८१	"
आयुर्वेद दर्शन का क्रमिक विकास एवं प्रयोजन	डा० मदन लाल काव्यतीर्थ	६९१	"
आयुर्वेदीय शल्यतंत्र का अतीत एवं वर्त्तमान	डा० शिव कुमार व्यास	७०३	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा—९	आचार्य रामरक्ष पाठक	७२१	"
आयुर्वेद—हमारा प्राचीन धरोहर	श्री वी० वी० गिरि	७४५	मई '७३
आयुर्वेदीथ इतिहास की रूपरेखा—१०	आचार्य पं० रामरक्ष पाठक	७७७	मई ७३
आयुर्वेद के विकास में 'सचित्र आयुर्वेद' का योगदान	श्री आर० के० भारिल्ल	५९	जून '७३
आयुर्वेदीय पत्रकारिता में 'सचित्र आयुर्वेद' का स्थान	श्री गौरीशंकर गुप्त	६३	"
आयुर्वेद की प्रगति पर एक दृष्टि	आचार्य बापालाल भाई	८६	"
आयुर्वेद पाठ्यक्रम	वैद्य रणजित राय देसाई	९२	"
आयुर्वेद में अनुसन्धान और स्नातकोत्तर शिक्षण	कविराज आशुतोष मजुमदार	९६	"
आयुर्वेद का दार्शनिक आधार तथा उसकी व्यावहारिकता	डा० ज्योतिर्मित्र	१११	"
आयुर्वेद की प्रगति के पिछले पचीस वर्ष	कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी	११७	"
आयुर्वेद के शिक्षण में आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र का स्थान	कवि० एस० एन० बोस	१२९	"
आयुर्वेद और मानस व्याधि विवेचन	डा० अयोध्या प्र० अचल	१३४	"
आयुर्वेद और मानसोपचार	श्री रमाकान्त अग्निहोत्री	१३८	"
आयुर्वेद और योग	आचार्य बल्लभराम वैद्य	१४१	"
आयुर्वेदीय शल्यतंत्रकागौरवपूर्णअतीतऔरउज्ज्वल भविष्य	डा० अनन्त राम शर्मा	१५१	"

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
आयुर्वेद औषध निर्माण एवं यत्र विचारणा	व्यास अतुल कुमार	१६८	जून' ७३
आयुर्वेदीय इंजेक्शन चिकित्सा	श्री कृष्णदत्त शर्मा	१७१	"
आयुर्वेदप्रगतिकेबढ़तेचरण:भारतीयचिकित्साकेन्द्रीयपरिषद्	आचार्य राजकुमार जैन	१७७	"
आयुर्वेद के शिक्षण में आधुनिक चिकित्सा का स्थान	कवि० एस० एन० बोस	९	जुलाई '७३
आयुर्वेद का पथ्य-अपथ्य विचार एवं आधुनिक मिथ्या-आहार-विहार	प्रोफेसर कान्तिकृष्ण	२०	जुलाई' ७३
आयुर्वेद की प्रगति और राजनैतिक पहलू	श्री दीनानाथ सिंह	७८	अगस्त' ७३
आयुर्वेदीय शल्य तंत्र का अतीत एवं वर्तमान	श्री शिशिर पाठक	११५	"
आयुर्वेदीय स्वस्थवृत: एक दृष्टि	प्राणाचार्य पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा	१३९	सितम्बर' ७३
आयुर्वेद में नाड़ी परीक्षा	डा० वी० एन० सण्ड, विमला सण्ड, वैद्य एम० आर० उनियाल	१५६	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-११	आचार्य पं० रामरक्ष पाठक	२३०	अक्टूबर' ७३
आयुर्वेद में आधुनिक ज्ञान का समावेश जरूरी	श्री गोपाल स्वरूप पाठक	२६७	नवम्बर' ७३
आयुर्वेद से ही जन-स्वास्थ्य-रक्षा संभव	श्री धर्मदत्त वैद्य	२६८	"
आयुर्वेद पर-मुखापेक्षी नहीं		३२६	दिसम्बर' ७३
आयुर्वेदीय शिक्षा का क्रमिक विकास	वैद्य शिवकुमार मिश्र	३४१	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-१२	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	४१७	जनवरी' ७३
आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और वृंहण जरूरी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य	४३८	फरवरी' ७४
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-१३	आचार्य श्री रामरक्ष पाठक	४७३	"
आयुर्वेद का भविष्य	रामचन्द्र अवतारी	५१७	"
आयुर्वेदीय इतिहास की रूपरेखा-१४	आचार्य प० रामरक्ष पाठक	५३७	मार्च' ७४
आयुर्वेदीय विकास में राजनैतिक दबाव	श्री दीनानाथ सिंह		
आयुर्वेद का महत्व पुनः प्रमाणित		७३३	मई' ७४
डा० श्री० नारायण स्वामी		७३५	"
आयुर्वैघृतम्	श्री अनन्त राम शर्मा	३४८	नवम्बर' ७१
आज के भारत से एक प्रश्न	आचार्य श्री रजनीश	५५०	फरवरी' ७२
आन्त्रगत-वात	श्री महादेव प्रसाद पाण्डेय	५७९	"
आत्ययिक चिकित्सा	श्री अनन्तराम शर्मा	५२	मार्च' ७२
आधुनिक युग में आयुर्वेदीय चिकित्सा की उपयोगिता	कविराज एस० एन० बोस	८४	"
आचार्य वैद्य धर्मदत्त		६४२	अप्रैल' ७२
आनाह	वैद्य रणजित राय देसाई	६८१	मई' ७२
आनाह-२ : अरोचक	" "	१३	जुलाई' ७२
आचार्य श्री बदरीविशाल त्रिपाठी	श्री हरनाथ शास्त्री	२०५	सितम्बर' ७२
आगन्तुक उन्माद	श्री अयोध्या प्रसाद 'अचल'	२७७	अक्टूबर' ७२
आदि देव भगवान धन्वन्तरि	वैद्यराज पं० सुन्दरलाल जैन	३०९	"
आमेबिक प्रवाहिका पर महत्वपूर्ण आयुर्वेदीय अनुसन्धान	वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा	३७९	दिसम्बर' ७२
आधुनिक सभ्यता का अभिशाप	संपादक	५४५	फरवरी' ७३

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
जिमोन मैक्सीकाना	श्री नरेश कुमार पाठक	५८९	"
पश्च विश्वभेषजी	संत विनोबा	६८	अगस्त' ७३
नुवंशिक व्याधियां क्या घातक होती हैं ?	अकादमिशियन व्लीदीमीर तिमाकोव	१२१	"
ध्र प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति	कवि० पुरूषोत्तमदेव मुलतानी	१८१	सितम्बर' ७३
रोग्य देवता नमन नमन	गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	२०४	अक्टूबर' ७३
रोग्य देवता की जयन्ती	संपादकीय	२०५	,,
रोग्य के देवता 'भगवान धन्वन्तरि'	श्री नागेण्द्र नारायण शर्मा वैद्य	२०९	,,
शुतोष मजुमदार का उद्घाटन भाषण		५८७	मार्च' ७४
त्मा और बुद्धि के मध्य 'मन'	आचार्य बापालालजी वैद्य	६०१	अप्रैल' ७४
सन एण्ड बीजक (अं०)	एम० सी० पाण्डेय	७७३	जून' ७४
र्पोटेन्स आफ इन्डिविजुएलिटी इन आयुर्वेदिक टमेन्ट (अं०)	डा० के० सदाशिव शर्मा डा० एल० सरोदाअम्मा	६९४	अप्रैल' ७३
र्पोटेन्स आफ रत्नाज (जेमस्टोन्स) एज डिस्क्राइब्ड न इण्डियन सिस्टम आफ मेडिसीन (आयु०) अं०	डा० दामोदर जोशी यू० बी० पाण्डेय	४३२	जनवरी' ७३
सापूर्व आयुर्वेदीय परिषद् एवं संगोष्ठियां	श्री लक्ष्मीधर द्विवेदी तथा डा० एल० वी० गुरू	१८८	सितम्बर' ७१
च्चटा	ड़ा० भृगुनाथ सिंह एवं डा० प्रियव्रत शर्मा	२७८	अक्टूबर' ७१
न्माद रोग	कविराज एस० एन० बोस	२८२	,,
दावर्त्त	वैद्य रणजित राय देसाई	४९७	नवम्बर' ७१
त्तेजक मानसिक विकृतियां	कविराज एस० एन० बोस	४३३	दिसम्बर' ७१
दावर्त्त-२	वैद्य रणजित राय देसाई	४९७	जनवरी' ७२
त्तर प्रदेश में आयुर्वेदीय विकास-सम्बन्धी कार्यों का विवरण एवं मूल्यांकन	आचार्य श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी	१२१	मार्च' ७२
दावर्त्त-३	वैद्य रणजित राय देसाई	६२०	अप्रैल' ७२
पयोगी वनस्पति : टाइलोफोरा इण्डिका	श्री दयाशंकर शुक्ल एवं श्री गोविन्दशरण श्रीवास्तव	६३३	मार्च' ७१
त्तरी हिमालय की पर्वत-मालाओं पर उपलब्ध नौषधियां	श्री मायाराम उनियाल	१५८	जून' ७३
दर	वैद्य रणजित राय देसाई	२८	जुलाई' ७३
दर-२	"	७३	अगस्त' ७३
दर-३	"	१४५	सितम्बर' ७३
दर-४	"	२१३	अक्टूबर' ७३
दर-५	"	२७८	नवम्बर' ७३
दर-६	"	३३९	दिसम्बर' ७३
दर-७	"	४०१	जनवरी' ७४
दर-८	"	४७९	फरवरी' ७४

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
उदर-८	,,	५४६	मार्च' ७४
एरंड	पं० नन्द किशोर शर्मा	४४०	दिसम्बर' ७१
ए सर्वे आफ सिस्टम्स आफ मेडिसीन प्रीवेलेन्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन (अं०)	डा० आर० आर० पाठक	१	मार्च' ७२
ए स्टडी आफ एनाटोमिकल मटेरियल इन विशुद्धि मग्ग आफ बुद्धघोष (अ०)	डा० ज्योतिर्मित्र	६४	मार्च '७२
एकेडमी आफ आयुर्वेद, विजयवाड़ा का अष्टम द्विवार्षिक समारोह	....	८०७	जून '७२
ए रिपोर्ट आन नियो काश्यप संहिता ऑफ वाराणसी (अ.)	वैद्य बी० एन० द्विवेदी	२६	जुलाई '७२
एक सारस्वत पुरुष का अवसान	सम्पादकीय	२३०	अक्टूबर '७२
ए प्रोट्रे आफ कनवल्सिभ डिसआईट्रस इन इण्डियन सिस्टम आफ मेडिसीन (अ०)	डा० (कु०) पी० भी० तिवारी	२५९	,,
एलोपैथी सामान्य जनता तक नहीं पहुंच पायी	श्रीमती इन्दिरा गांधी	६१३	मार्च '७३
एष धर्मः सनातनः	श्री अरविन्द	९१	सितम्बर '७३
एन आइडियल वैद्य आफ एनसियन्ट आयुर्वेद (अं०)	डा० पी० एम० मेहता	२२०	अक्टूबर' ७३
एक आयुर्वेद मनस्वी का महाप्रयाण	वैद्य घनश्याम शर्मा	२५३	,,
ए क्लीनीकल स्टडी आफ पारालाइटिकल पोलियोमीलीटीज (अं)	वैद्य एच० एस० कस्तुरे	२९७	नवम्बर' ७३
ए हिथर टू अननॉन हर्ब यूज्ड इन एक्यूट गैसट्रिटीज	श्रीनारायण सिंह चौहान	४९७	फरवरी '७४
एलोपैथी के मूल में ही हिंसा	डा० पी० एम० मेहता	५२९	मार्च '७४
औषधि निरूपण	मिश्र एवं शर्मा	३५६	दिसम्बर '७३
डा० के० सत्यनारायण स्वामी	....	१५५	अगस्त '७१
केन्द्रीय राजभाषा विधायी आयोग का स्वागत	....	१६४	,,
क्या आप दूषित वायु में सांस ले रहे है ?	श्री शिशिर पाठक	२२३	सितम्बर '७१
कुकूणक	वैद्य खेमचन्द शर्मा, भिषगाचार्य	२३६	,,
कुक्कुर कास	कवि० एस० एन० बोस	१७०	सितम्बर '७३
केरल, गुजरात और वाराणसी की आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाएं	कविराज कादम्बरी आचार्य	३१०	अक्टूबर '७१
काशी विश्व विद्यालय में आयुर्वेद का विकास	डा० सुरेन्द्रनारायण त्रिपाठी	४४८	दिसम्बर '७१
कृमिरोग और उसकी चिकित्सा	वैद्य कृष्णदत्त भारद्वाज	५७०	फरवरी '७२
कलकत्ते में प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का अभिनंदन	....	२९१	अक्टूबर '७२
कविराज कृष्ण बहादुर सिंह	कवि० शेषराज आचार्य	६५२	मार्च '७३
कास और उसका प्रतिकार	कविराज रवीन्द्रचन्द्र चौधरी	३०	जनवरी '७३
कार्टिको स्ट्राइड औषधियां	श्री निरंजनचन्द्र शाह	४३	,,
कुर्माञ्चल में उपलब्ध महत्वपूर्ण औषधियां	,, ,,	१४०	जून '७३
कौमार भृत्य	श्री शिशिर पाठक	७२	मार्च '७२
कौमारभृत्य का व्यावहारिक रूप	वैद्य कृष्णदत्त शर्मा	८०	,,

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
क्या सोम मिल गया ?	श्री एन० सी० शाह	४७	जुलाई ,७२
कैंसर से सावधान	श्री आर० के० भारिल्ल	१२८	अगस्त '७२
कुंकुष्ठ	डा० भृगुनाथ सिह, डा० श्री कृष्ण दीक्षित, प्रो० प्रियव्रत शर्मा	१४९	अगस्त '७१
करीकुलम एण्ड सिलेबस फार आयुर्वेदिक डिग्री कोर्स	....	६३	जून '७३
कन्ट्रीब्यूशन आफ सुश्रुत टू सर्जन्स आरमामेन्टेरियम	डा० पी० जे० देशपाण्डे, विद्यानन्द प्रसाद	६२	"
केन्द्रीय आयु० परिषद् द्वारा निर्मित आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम	कविराज एस० एन० बोस	२२५	अक्टूबर '७३
कुष्ठ व्याधि एक दृष्टिकोण	डा० गुरमोहन सिह, डा० जफरूद्दीन अंसारी	४१३	जनवरी '७४
करयोग	स्वामी विद्यानन्द विदेह	४६७	फरवरी '७४
काशी के कुछ विलक्षण चिकित्सक	श्री गौरी शंकर गुप्त	५११	"
कल्टीवेशन आफ मेडीसीनल प्लान्ट्स इन इण्डिया (अं)	वैद्य एम० आर० उनियाल	६२७	अप्रैल '७४
कूपमण्डूकता से हम ऊपर उठें	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	६६५	मई '७४
काममय एवायं पुरुष :	डा० भगवानदास	६६६	"
कवि बोपदेव एवं वैद्यक कृतियां	राजेन्द्र प्रकाश आ० भटनागर	७६५	जून '७४
गुल्म—२	वैद्य रणजित राय, देसाई	२५	जुलाई '७१
गुल्म—३	"	१०१	अगस्त '७१
गुल्म—४	"	१८३	सितम्बर '७१
गुल्म—५	"	२८३	अक्टूबर '७१
ग्रहणी रूप नाड़ी-एक अभ्यास	वैद्य मणि भाई ब्रह्मभट्ट	९५	अगस्त '७२
ग्रीष्म ऋतुचर्या	पं० कृष्णदत्त, आयुर्वेदालंकार	७११	मई '७३
गुण, गौरव और गीति	आचार्य गौरकृष्ण गोस्वामी	११	जून '७३
गान्धीनिष्ठ समाज-सेवी का तिरोधान	सम्पादकीय	७०	अगस्त '७३
ग्रामीण स्वास्थ्य योजना खटाई में	संपादकीय	६९	"
गन्ध प्रसारिणी	कुमारी शान्ति श्रीवास्तव	२२३	अक्टूबर '७३
गैस रोग	कविराज श्री अमर नाथ जी गुलाटी	६३४	अप्रैल '७४
ग्लूकोज सम्बन्धी हत्याकाण्ड	सपादकीय	६६७	मई '७४
गुरू, लघु गुण-वीर्य	श्री रणजित राय देसाई	७५३	जून '७४
चञ्चलं हि मनः कृष्ण		६७	अगस्त '६७
चित्रकूट का पारस पीपल	श्री दयाशंकर शुक्ल एवं श्री गोविन्द शरण श्रीवास्तव	५२	जुलाई '७१
चिकित्सा में वैज्ञानिक युग का आविर्भाव (अं०)	डा० पी० एम० मेहता	३६०	नवम्बर '७१
चिन्तन के क्षणों में	स्व० डा० भगवानदास	७८	अगस्त '७२
चिकित्सतात् पुण्यतमं न किंचित्	वैद्य पं० सुन्दरलाल जैन	३०३	अक्टूबर '७१
च्यवनप्राश का चमत्कारी प्रभाव	डा० कान्तिकृष्ण	७८६	मई '७३

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
चिकित्सा-पद्धति और लोकतंत्र	पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा	५३३	मार्च '७४
चरक संहिता में प्रमाण. विवेचन	डा० आर. वाई. शास्त्री	६१४	अप्रैल '७४
जल-परमात्मा की बहती हुई करूणा	आचार्य विनोबा	७७	अगस्त '७२
पं० जी० पी० विक्रमासिंघ	श्री शाण्डिल्य	१३३	,,
जन्म निरोध : एक समीक्षा	रवि० राजेन्द्र प्रकाश आ० भटनागर	२२	जनवरी '७३
जयपुर में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक		५९३	फरवरी '७३
जन स्वास्थ्य-संरक्षण में देशी चिकित्सक अधिक उपयोगी	श्री वी० वी० गिरि	७४५	मई '७३
ज्योतिष्मती कल्प	प० विश्वनाथ द्विवेदी	७५७	,,
जन स्वास्थ्योन्नति का प्रश्न	सम्पादकीय	१३७	सितम्बर '७३
जीवाणु	श्री शिशिर पाठक	५०७	फरवरी '७४
जस्टिफिकेशन आफ एप्लायड आस्पेक्ट्स आफ व्रण, शोधन (डिब्राइडमेन्ट) (अं०)	एस० के० शर्मा पी० जी० देशपाण्डे	५७६	मार्च '७४
ठाकुर बलवन्त सिंह	वैद्य मायाराम उनियाल शास्त्री	४८	जुलाई '७३
डा० की राय में सिर दर्द	डा० शिव कुमार व्यास	३७३	नवम्बर '७१
ड्रग प्लान्ट्स आफ आयुर्वेद (अं०)	श्री एन० सी० शाह	५५	मार्च '७२
डेवलॉपमेन्ट आफ सिस्टेमेटिक मेडिसिन इन एनसिपेन्ट इन्डिया	डा० वी० नारायण स्वामी	१४	जून '७४
त्वचा रोग और मानसिक स्वास्थ्य	संकलित	२३१	सितम्बर '७१
त्रिदोष-एक विवेचन	वैद्य छगनलाल समदर्शी	२१२	,,
तपस् भारतीय संस्कृति का मूलाधार	स्व० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	४१४	दिसम्बर '७१
तम्बाकू. सिगरेट और कैन्सर	डा० चन्द्रबली दुबे	५१०	जनवरी '७२
त्वक् रोग चिकित्सा में पथ्यापथ्य-एक विवेचन	डा० जेड० अन्सारी, डा० गुरुमोहन सिंह	१०४	अगस्त '७२
त्रिदोष एवं पंचमहाभूत्र के सिद्धान्त			
पूर्णतया वैज्ञानिक	स्व० डा० सम्पूर्णानन्द	५३०	मार्च '७४
तमक श्वास चिकित्सा समन्वय	डा० पी० एन० चतुर्वेदी	७६१	जून '७४
पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का वक्तव्य		२६५	अक्टूबर '७१
दन्त काष्ठ विमर्श	आचार्य बापालाल भाई वैद्य	४९१	जनवरी '७३
देश-विदेश में धन्वतरि जयन्ती की धूम		५३६	,,
पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का भाषण		७५२	जून '७२
दी सर्च फोर ए मेडिकल फिलोसाफी (अं०)	डा० एस० के० वर्मा, रीडर	७७२	जून '७२
दी ओरिजीन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ पल्स साइन्स इन आयुर्वेद (अ०)	कविराज अशोक मजुमदार	७७८	,,
डा० देशपाण्डे की अमेरिका यात्रा	डा० ज्योतिर्मित्र आचार्य	१९२	सितम्बर '७२
दी कन्सेप्ट आफ द एमब्रायजिनीसिस इन आयुर्वेद (अं०)	डा० पी० एम० मेहता	१७८	,,
दक्षिण-पूर्व एशिया में हिन्दू-धर्म	श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	३८३	दिसम्बर '७२

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
द रोल आफ आयुर्वेदिक फार्मेसी इन प्रजेन्ट एज (अं०)	श्री एल० वी० गुरु, आयुर्वेदाचार्य	५८५	फरवरी '७३
द कन्सेप्ट आफ श्लेष्मा इन आयुर्वेद	एच० आर० गोयल, डी० एन० शर्मा, आर० एस० राठौर	६३६	मार्च '७३
द एथिकल लाइफ एज डिस्क्राइब्ड इन आयुर्वेद विथ स्पेशल रेफरेन्स टू चरक (अं०)	आचार्य एल. वी. गुरु, आचार्य जे० मित्र	१५९	सितम्बर '७३
दी रोल आफ क्षार सूत्र इन भगन्दर, अर्शाज एण्ड अदर डिजीज—(अं०)			
द यूस आफ क्रूड इण्डियन ड्रग प्लान्ट्स फार 'पाण्डु रोग'	श्री सी० आर० कार्णिक	६२०	अप्रैल '७४
दिल्ली में सर्व सुविधायुक्त आयुर्वेद अस्पताल भी स्थापना का प्रश्न	संपादकीय	६०२	"
धन्वन्तरि वंदन	आचार्य गौरकृष्ण गोस्वामी	२६१	अक्टूबर ७१
धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर एक विचार	आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा	३५२	नवम्बर '७१
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		३८९	"
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		४५६	दिसम्बर '७१
धूमपान आपके लिए हानिकारक	संकलित	१९५	सितम्बर '७२
धन्वन्तरि सम्वन्दन	आचार्य गौरकृष्ण गोस्वामी शास्त्री	३०५	नवम्बर ७२
धन्वन्तरि जयन्ती : एक सांस्कृतिक पर्व	आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य	३११	"
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		४३०	दिसम्बर '७२
धन्वन्तरि स्तोत्रम्		१	जनवरी '७३
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		५५	"
धन्वन्तरि वन्दन	आचार्य गौरकृष्ण गोस्वामी शास्त्री	२०३	अक्टूबर '७३
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		३६७	दिसम्बर '७३
धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		४४४	जनवरी '७४
नैनीताल अधिवेशन		५८	जुलाई '७१
नाड़ी विज्ञान अनुसन्धान संस्थान का सप्तम वार्षिक विवरण		५८९	फरवरी '७२
निदान चिकित्सकयो विस्तरणम्	डा० एम० महादेव शास्त्री	१४५	मार्च '७२
नेपाल का आयुर्वेद का विकास	कविराज दानरत्न वज्राचार्य	११९	"
नेपाल में आयुर्वेद शिक्षा का विकास	श्रीमती कादम्बरी आचार्य	७१८	मई '७२
नेपाल में आयुर्वेद महासम्मेलन का तीसरा अधिवेशन		७२७	अप्रैल '७३
नेसेसिटीआफ एक्सपेरिमेन्टस इन आयुर्वेदिक रिसर्च (अं०)	के० सदाशिव शर्मा	२५०	जून '७३
नैषधीय चरित (११ वीं शती) में आयुर्वेद तथा औषधियां	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	११०	जून '७३
नेसेसिटी आफ सर्च एण्ड रिसर्च इन रस शास्त्र	डा० एन० गंगा सत्यम्	८८	अगस्त '७३
निसर्गोपचार तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में समत्व	आचार्य कविराज श्री हरदयाल	१०७	"
न्यू प्रोविंग्स इनटू योर आइन पनासिया-आॅरोसजेशन (अं.)	प्रोफ० माया प्रसाद त्रिपाठी	४१३	फरवरी '७४

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
नाड़ी विज्ञान में अनुसन्धान	कविराज एस० एन० बोस	६१०	अप्रैल '७४
पत्रकार गोष्ठी में श्री दुर्गा बाबू का वक्तव्य		७	जुलाई '७१
पंचमहाभूत: कुछ स्पष्टीकरण	स्व० कैप्टन जी० श्रीनिवास मूर्त्ति	६१	सितम्बर '७१
पाश्चात्य मतानुसार आयुर्वेदोक्त उन्माद रोग की तुलनात्मक विवेचना	कविराज एस० एन० बोस	३६७	नवम्बर '७१
प्राकृतिक जीवन का गर्भावस्था पर प्रभाव	सुश्री राजलक्ष्मी गौड़	५३०	जनवरी '७२
प्रमेह (अं०)	डा. बी. नारायण स्वामी	५६२	फरवरी' ७२
पंचकर्म का प्रयोग	वैद्य रणजित राय देसाई	२४	मार्च' ७२
प्राचीन तिब्बत में आयुर्वेद	आचार्य परमानन्द शास्त्री	११३	"
प्राचीन अभिलेखों में आयुर्वेद	कविराज राजेन्द्र प्रकाश आ. भटनागर	६१७	अप्रैल' ७२
प्लास्टिक शल्य चिकित्सा क्या है ?	डा. श्रुतिलाल मंडल	६३९	"
प्रैक्टिकल यूटिलिटी आफ शल्य-शालाक्य विथ टिरलेशन टू माडर्न सर्जरी एण्ड ई०एन०टी० (अं०)	कविराज आर. सी. चौधरी	६९१	मई' ७२
गायजन एण्ड इट्स प्लेस इन आयुर्वेदिक सिस्टम आफ मेडिसीन (अं.)	कविराज मुक्तिनाथ शर्मा	६९९	"
पूर्व रूप—विमर्श	शर्मा एवं ओझा	७६१	जून' ७२
पंचकर्म की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि	श्री गोपालकृष्ण चतुर्वेदी	१९	जुलाई' ७२
प्राणाचार्य पं. दुर्गाप्रसाद शर्मा का वक्तव्य		२३३	अक्टूबर' ७२
पटना में आयुर्वेद समारोह		३६२	नवम्बर' ७२
प्रगति का अर्थ है-मानव व्यक्तित्व का विकास	श्रीमती इन्दिरा गांधी	५४६	फरवरी' ७३
पंचकर्म का सामान्य परिचय	वैद्य एम. एल. कपूर	६१९	मार्च' ७३
पंडित त्रयम्बक शास्त्री	श्री गौरी शंकर गुप्त	७१७	अप्रैल' ७३
पुण्यश्लोक जोशी जी	संपादकीय	७४७	मई'७३
पुरुषोत्तमदेव मुल्तानी	श्री बालकृष्ण	७७३	मई, ७३
प्राचीन साहित्य में श्वसन संस्था तथा श्वास रोग का विवेचन	आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा	१२१	जून' ७३
प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का ही एक अंग	आचार्य धर्मदत्त वैद्य	१४२	सितम्बर' ७३
प्राकृतिक चिकित्सा और त्रिदोष सिद्धान्त	श्री विट्ठलदास मोदी	१६७	"
पत्रकार गोष्ठी में वक्तव्य	वैद्य पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा	२७१	नवम्बर' ७३
प्रभाव की अचिन्त्यता चिन्तनीय	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	२७३	"
पड़ोसी से हम प्रेरणा लें	सम्पादकीय	४६९	फरवरी' ७४
प्रदर रोग पर कुछ प्रयोग	वैद्य आदित्य भाई पटेल	५००	"
पाराथाइरोड एक्टीवीटी एण्ड मांसा एण्ड अस्थि धातुज (अं.)	डा. के. आर. श्रीकान्त मूर्ति	६९३	मई' ७४
फ्यूचर रोल आफ आयुर्वेद (अं.)	श्री सतीश 'करुण पुंज'	६१	मार्च' ७२
फाउन्डेशन आफ एनाटोमी एण्ड फिजीयोलाजी	आचार्य प्रभाकर चटर्जी	३४१	नवम्बर' ७१
[illegible]ोथेरापी : एन आयुर्वेदिक [illegible]	[illegible]	७५०	मई' ७३

लेक का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
बंगला देश	कविवर श्री रामदयाल पाण्डेय	२६३	अक्टूबर' ७१
बच्चों में वमन—एक समस्या	श्री घनश्यामदास अग्रवाल	३७९	नवम्बर' ७१
बच्चों में अध्ययनगत कमजोरियों तथा उसका निदान	श्री अरुण कुमार मिश्र	४५३	दिसम्बर' ७१
ब्राह्मी	प्रो. शंकरलाल शर्मा	७६५	जून' ७२
बिहार में आयुर्वेद की स्थिति	श्रीकान्त शर्मा	५२१	जनवरी' ७२
बलाचतुष्ट्यम्	श्री दयाशंकर शुक्ल	५५८	फरवरी' ७२
बैद्यनाथ भवन में नेत्रदान यज्ञ-शिविर का आयोजन		५९५	,,
बिहार में देशी चिकित्सा-पद्धति का अतीत, वर्तमान एवं भविष्य	डा. नागेश द्विवेदी	४६	जनवरी' ७३
बिहार में आयुर्वेदीय पठन-पाठन का क्रमिक विकास	प्रो. वामदेव त्रिपाठी	४१३	अप्रैल' ७३
बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का २२ वां अधिवेशन		८०३	मई' ७३
बैद्यनाथ प्रतिष्ठान का उद्भव और विकास	सम्पादक की कलम से	२५	जून' ७३
बाहर सम्मानित, किन्तु अपने घर में ही उपेक्षित	श्री शिव शर्मा	७६	अगस्त' ७३
बच्चों का दन्त स्वास्थ्य	डा. नरसिंह रंयानी	१२४	,,
डा. बी. एस. पार्वती का निधन		३१२	नवम्बर' ७३
बैद्यनाथ द्वारा मानव-सेवा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य	श्री आर. डी. भंडारे	३२५	दिसम्बर' ७३
बाल-परिचर्या	वैद्य सावित्री देवी भटनागर	५१३	फरवरी' ७४
बम्बई में आयुर्वेद शिक्षा-समिति की ६ ठी बैठक		५८४	मार्च' ७४
बिहार में आयुर्वेद निदेशालय	सम्पादकीय	६०२	अप्रैल' ७४
बिहार में आयुर्वेद की स्थिति एवं प्रगति	प्राणाचार्य पं. दुर्गा प्रसाद शर्मा	६०३	अप्रैल' ७४
बच्चों के स्वास्थ्य	सुशीला देवी जैन		जून' ७४
भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम, १९७०		११९	अगस्त '७१
भगवान् धन्वन्तरि (लघु एकांकी नाटक)	वैद्य हरिमोहन शर्मा	१६९	अक्टूबर '७१
भारतेतर देशों में आयुर्वेद का प्रचार	वैद्य राज पं० जगदीश प्रसाद शर्मा	१०५	मार्च '७२
भृंग राज	डा० दिवाकर उपाध्याय	४२०	दिसम्बर '७२
भा० चि० परिषद् संकाय संघ का विशेष अधिवेशन		७९७	मई '७३
भारतीय कैन्सर	डा० आर० वी शर्मा	५०४	फ़रवरी '७४
भ्रूण की जन्मजात विषमतायें	कु० शैलवाला काले	६३६	अप्रैल '७४
भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् का चतुर्थाधिवेशन		६४७	,,
भारतीय संस्कृति और रामचरितमानस	डा० संसार चन्द्र	७२४	मई '७४
"मानसोल्लास" में रसायन प्रयोग	बैद्यराज बापालाल भाई	९	जुलाई '७१
मन और उसका अस्तित्व	श्री प्रेमशंकर अंशुमान्	३४५	नवम्बर '७१
मारीशस के जनकवि का स्वागत		४८९	जनवरी '७२
मनोविधात	कवि० एस० एन० बोस	५१९	,,
मन्दबुद्धि बालकों की समस्याएं	श्री भवानी शंकर बनर्जी	५२६	,,
मूत्र में कितनी शर्करा है ?	श्री शिशिर पाठक	५८३	फ़रवरी '७४
मारीशस में आयुर्वेद	[illegible]	१३४	[illegible]

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
मोतियाबिन्द चिकित्सा-दर्शन	डा० दिवाकर उपाध्याय	७०५	अप्रैल '७२
मेन्टली रिटार्डेड्स (अं०)	बी० एस० बनर्जी	१२३	अगस्त '७२
मस्तिष्क रोगों में बैद्यनाथ का योग	वैद्य अम्बालाल जोशी	१३६	अगस्त '७२
मेरी जापान एवं द० पूर्व एशियाई देशों की यात्रा	श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	१६४	सितम्बर '७३
मेथड आफ टीचिंग द्रव्य गुण (अं०)	डा० पी० भी० शर्मा	१८४	,,
मक्का	आचार्य बापालाल भाई	४०५	दिसम्बर '७२
मेलएबर्जोपशन सिन्ड्रोम (अं०)	ए० के० मिश्र, एस.एन. त्रिपाठी	४०८	,,
मेटाफिजीकल एण्ड फिलासिफिकल डिसकसन इन आयुर्वेद (अं०)	डा० आर. आर. पाठक	१	जून '७३
स्व० पं० मणिराज शर्मा		१३८	सितम्बर '७३
माता में गर्भ की विषमयता	डा० दिवाकर उपाध्याय	२३६	अक्टूबर '७३
मधुमेह एक ऐतिहासिक अवलोकन	श्री मणिभाई ब्रह्मभट्ट, गोपालकृष्ण चतुर्वेदी	२८६	नवम्बर '७३
मिलावट-एक गंभीर राष्ट्रीय समस्या		३९९	जनवरी '७४
मूत्र परीक्षा सविशेष तैल बिन्दु परीक्षा : एक अध्ययन	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे वैद्य श्रीकान्त लक्ष्मण देशपांडे	४०७	,,
माई भिजिट टू १३थ इन्टरनेशनल कांग्रेस आफ रूमेटोलाजी (अं०)	कवि० आशुतोष मजुमदार	४२९	,,
मूत्र परीक्षा सविशेष तैल बिन्दु परीक्षा : एक अध्ययन-२	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे वैद्य श्रीकान्त लक्ष्मण देश पांडे	४८६	,,
मधुकोष में द्रव्यगुण का मधु	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	५५५	मार्च '७४
मानस शास्त्र मन की समाधि का विषय	वैद्य यादवजी विक्रमजी आचार्य	६००	अप्रैल '७४
मूत्र परीक्षा-सविशेष तैलबिंदु परीक्षा-एक अध्ययन-३	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे, वैद्य श्रीकांत लक्ष्मण देशपांडे	७१५	मई '७४
युद्ध में शल्य चिकित्सा	प्रो० अ० विश्नेवस्की, प्रो० म० अहूबर, प्रो० क० लिसितिन	२३८	सितम्बर '७१
योग एण्ड आयुर्वेद (अं०)	डा० आर० आर० पाठक, आयुर्वेदाचार्य	४२६	दिसम्बर '७१
योग रहस्य	कविराज केशवप्रसाद मिश्र	५६६	फरवरी '७२
युगानुरूप ग्रंथ निर्माण में बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन का योगदान	श्री जयदेव देसाई	९२	मार्च '७२
युगानुरूप आयुर्वेदीय शालाक्य-शास्त्र	डा० शिवकुमार व्यास	७११	मई '७२
यपिन-बस्ति	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे	७९९	जून '७२
योगिराज हिमौषधि की खोज में	प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा	८१	अगस्त '७२
यौन शुचिता भारत की श्रेष्ठ सांस्कृतिक उपलब्धि		३०६	नवम्बर '७२
[illegible] अभिप्राय है—चेतना का परिवर्तन	योगिराज श्री अरविन्द	३७७	दिसम्बर '७२

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ० सं०	अंक का नाम
योग और विज्ञान		४	जुलाई '७३
योग-साधन और आयोग		३९७	जनवरी '७४
योग साधन और आरोग्य	श्री भद्रसेन	७२७	मई '७४
रसवाङ्मय की दृष्टि से लौह विवेचन	डा० दामोदर जोशी	१३	जुलाई '७१
रिसर्च इन आयुर्वेद (अं०)	डा० वी० नारायण स्वामी	४९	"
रोहणी वनस्पति	श्री सांवलिया बिहारीलाल वर्मा	२१०	सितम्बर '७१
राजस्थान में आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर शिक्षा	आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य	२२८	"
रक्त रोगों का चिकित्सीय पक्ष-एक आयुर्वेदिक दृष्टि (अं०)	डा० जी० एन० चतुर्वेदी, डा० गुरुदीप सिंह	३६	नवम्बर '७१
राष्ट्रीय संकट की घड़ी	वैद्य दुर्गा प्रसाद शर्मा	४२७	दिसम्बर '७१
पं० रामरक्ष पाठक		५३२	जनवरी '७२
रसायनवेत्ता-आचार्य रावण	डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री	५५५	फरवरी '७२
राजवैद्य श्री चन्द्रानन्द		६४३	अप्रैल '७२
रक्ताधान की आयुर्वेदीय मौलिक वैज्ञानिकता	कविराज राजेन्द्र प्रकाश, आ० भटनागर	४९	जुलाई '७२
रोग-भौतिक प्राकृति का विकृत रूप	श्री अरविन्द	१६१	सितम्बर '७२
रसभस्म में अभ्रक के प्रयोग	श्री दामोदर जोशी	२४९	अक्टूबर '७२
राजयक्ष्माः उपचार विषयक नई उपलब्धियां	डा० जे० पी० कर्ण	४२८	दिसम्बर '७२
रूप-विवेचन	श्री गोपाल कृष्ण चतुर्वेदी	७५९	मई '७३
पं० रामदयाल जोशी स्मारक शोध-संस्थान	श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	७४९	मई '७३
रिसर्च इन पोस्ट ग्रेजुएट एजुकेशन इन आयुर्वेद (अं०)	डा० विनायक राव वापट	५६	जून '७३
पं० रामदयाल जोशी स्मृति-ग्रंथ विमोचन-समारोह		५०	जुलाई '७३
रसायन का आधुनिक परिपेक्ष्य में मूल्यांकन	कवि० राजेन्द्र प्रकाश भटनागर	३८	"
पं० रामदयाल जोशी स्मृति-ग्रंथ		१२७	अगस्त '७३
रास्ना	वैद्य सिद्धगोपाल शुक्ल 'पुरोहित'	१६४	सितम्बर '७२
रजत जयन्ती विशेषांक विद्वानों की दृष्टि में		३२१	दिसम्बर '७३
राष्ट्रीय स्तर पर कुष्ठ निवारण	डा० आर० के० भारिल्ल	४३९	जनवरी '७४
राष्ट्रीय प्राध्यापक श्री बोस		५३२	मार्च '७४
रिफ्रेक्टिव एटट एण्ड सुश्रुत	डा० पी. एन. राय डा. पी. जे० देश पाण्डे, डा. के. एस. मेहरा	६८९	मई '७४
रोहितक के याकृत कर्म का परीक्षण	श्री भृगुनाथ सिंह, प्रियव्रत शर्मा	७८०	जून '७४
लंकायुर्वेद वृतम्	पं आर्यदास कुमार सिंह शास्त्री	१३५	मार्च '७२
लघु उद्योग और बिक्री प्रोत्साहन	प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा	६	जुलाई '७३
लिङ्ग पुराण में आयुर्वेदिक तत्व	डा० मदन लाल	३३७	दिसम्बर '७३
लाइन आफ एप्रोच फोर द डेवलपमेन्ट आफ आयुर्वेद विथ स्पेशल रेफरेन्स टू प्लान्ट्स ड्रग्स	डा० पी० सी० शर्मा	३४९	"
वैद्यराज जगदीश प्रसाद शर्मा		६५	जुलाई '७१

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
वेदान्त अकर्मण्यों का शास्त्र नहीं	महामहोपाध्याय स्व० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	८६	अगस्त '७१
स्व० पं० विनोदानन्द झा: एक श्रद्धांजलि	श्री रामदयाल पाण्डेय	१७८	सितम्बर '७१
वैद्यराज श्री बापालाल भाई	वैद्य मनु भाई देसाई वैद्य, जयदेव भाई देसाई	२९६	अक्टूबर '७१
वैद्य श्री दौलतराम जी चतुर्वेदी	आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य	३८४	नवम्बर '७१
वैज्ञानिक प्रतिभा का पलायन	संकलित	३४८	नवम्बर '७१
वनौषधियों पर अनुसन्धान की आवश्यकता	वैद्य मायाराम उनियाल	३७६	"
व्यक्तिगत समाधि नहीं, सामूहिक समाधि	संत विनोबा	५४९	फरवरी '७२
वृद्धावस्था : संकट काल	श्री वीरेन्द्र सिंह कपूर	५७३	"
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी आयुर्वेद विभाग	श्री काशी नाथ शास्त्री	५८६	"
वेद और चिकित्सा-शास्त्र	डा० विजयेन्द्र शास्त्री, डा० सुरेश झन्द्र रामकृष्ण शास्त्री	५८	मार्च '७२
वेदों के वनस्पति विज्ञान-सम्बन्धी उल्लेखों का समीक्षात्मक अध्ययन	श्री आनन्दीलाल शर्मा एवं डा० विजयेन्द्र शास्त्री	६२९	अप्रैल '७२
वर्धमान पिप्पली कल्प-एक अध्ययन	वैद्य डी० एल० दीक्षित एवं वैद्य डी० एम० परमार	७८५	जून '७२
वैद्य हर गोविन्द मिश्र 'रंजन'	श्री त्रिपुरारि शरण 'मतवाला'	८०४	"
विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों में एकता जरूरी	श्री वाराह वैंकट गिरि	५	जुलाई '७२
वैदिक काल में आयुर्वेद	आचार्य राज कुमार जैन	४२	"
विदाई समारोह		१४३	अगस्त '७२
वैक्रान्त (विल्लौर)	आचार्य श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति	३१३	नवम्बर '७२
वनौषधि और रसायन-सम्बन्धी लघु उद्योग के विकास की कहानी	श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	५	जनवरी '७३
वनौषधि और मानव	श्री दयाशंकर शुक्ल	७६७	मई '७३
विश्व आयुर्वेद संघ : एक सुखद कल्पना	संपादकीय	५	जुलाई '७३
व्यवस्था-पत्र लेखन की कुछ भ्रान्तियां	डा. जेड अन्सारी, डा. गुरमोहन सिंह	८	अगस्त '७३
विदेशी दवाओं पर करोड़ों रुपये खोना राष्ट्रीय अपचय	पं० सुन्दर लाल	९	सितम्बर '७३
वनौषधि आधारित उद्योग—एक साक्षात्कार	पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा	४०१	फरवरी' ७४
वनस्पति घी	आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा	६९६	मई' ७४
वैदिक सोम एवं आयुर्वेदिक सोम का समीक्षात्मक अध्ययन	वैद्य मायाराम उनियाल, डा० पी० एन० चतुर्वेदी		
[illegible]नली तक	ए० वी० भट्ट	७०६	"
विषाणुओं के सदस्य	डा० कृष्ण प्र० मि०		जून' ७४
शिरः शूल वा शिरो रोग और उसका प्रतिकार	श्री [illegible]	३१	जुलाई' ७१
शरद [illegible] और हमारा स्वास्थ्य			

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
श्वेत कंटकारी एवं उसका प्रसारण	श्री दयाशंकर शुक्ल एवं श्री गोविन्द शरण श्रीवास्तव	५१६	जनवरी' ७२
श्री सुश्रुता चार्च	श्री जोशी सीताराम रंगनाथ	१५०	मार्च' ७२
श्योनाक और अरलु	श्री अनिरुद्ध मिश्र एवं श्री प्रियव्रत शर्मा	९	जुलाई' ७२
शोथ-३	वैद्य रणजित राय देसाई	२४३	अक्टूबर' ७२
शोथ-४		३१९	नवम्बर' ७२
शोथ-५		३९०	दिसम्बर' ७२
शोथ-६		९	जनवरी' ७३
श्रीलंका में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव		५५	,,
शोथ-७	वैद्य रणजित राय देसाई	५५१	फरवरी' ७३
शोथ-८	,, ,,	३७५	अप्रैल' ७३
शोथ-९	,, ,,	७५१	मई' ७३
श्योनाक और शुकनासा	वैद्य मायाराम उनियाल	९२	अगस्त' ७३
श्वेत प्रदर की चिकित्सा	श्री इन्द्रमोहन झा सच्चन	१७५	सितम्बर' ७२
शाकाहार ही मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है	विद्याभास्कर वैद्य परमेश्वर खिलडीलाल	१८६	,,
श्री धन्वन्तरि	आचार्य कृष्णदत्त शर्मा वैद्य	२०६	अक्टूबर' ७३
श्लेष्मक ज्वर (फ्लू)	आयु० डा० सत्यनारायण खरे	२४१	,,
शारंधर का रस शास्त्रीय ज्ञान एवं उसके आधार स्त्रोत	डा० दामोदर जोशी	५६२	मार्च' ७४
शिवदास सेन	श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर	५८०	,,
षड्विधोपक्रमों में गुण विचार	वैद्य विनायक भास्कर म्हैसकर	६०७	अप्रैल' ७४
सम्पूर्ण चेतन पदार्थ के साथ आयुर्वेद का सम्बन्ध	श्री मोहन लाल व्यास	३	जुलाई' ७१
स्व० श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार	वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा	४	,,
सुश्रुत का शल्य क्रिया का अवदान (अं०)	श्री पी० जे० देशपाण्डे	१०९	अगस्त' ७१
संक्रामक नेत्र रोग तथा चिकित्सा	डा० दिवाकर उपाध्याय	२३३	सितम्बर' ७१
समाज सेवकों का सम्मान होना चाहिए		३१४	अक्टूबर' ७१
स्वभाव प्रेरित एवं प्रयोग सिद्ध चिकित्सा (अं०)	डा० पी० एम० मेहता	५०८	जनवरी' ७१
सोयाबीन-प्रोटीन का खजाना	श्रीमती गंगा पन्त	५७७	फरवरी' ७२
स्वास्थ्य एवं चिकित्सा-सम्बन्धी दायित्व और आयुर्वेद	श्री राजत्यागी प्रभाकर	१००	मार्च' ७३
सार्वभौम आयुर्वेद	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	११	,,
सुदूरपूर्व के देशों में आयुर्वेद	श्री नारायण शास्त्री	१०१	,,
सर्जिकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स आफ सुश्रुत (अं०)	डा० पी० जे० देश पान्डे एण्ड विद्यानन्द प्रसाद	३५	,,
सय हिमालयन डिडीज (अं०)	श्री बापालाल वैद्य	४३	
सहिष्णुता तथा सहयोग को वरण करें	स्व० आदित्यनाथ झा	६१२	अप्रैल' ७२
संस्कृत वर्णित संस्कृति को जीवन दीजिये		६७६	मई' ७२
सर्प विनाशक वनौषधि-ईश्वरमूल	श्री दयाशंकर स्व० श्री गोविन्द		

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
सम्मेलनाध्यक्ष का भाषण	आचार्य पं० धर्मदत्त वैद्य	६२	जुलाई' ७२
स्व० पं० श्यामसुन्दराचार्य	गौरीशंकर गुप्त	२८७	अक्टूबर' ७२
समन्वयात्मक चिकित्सा-पद्धति	कवि० एस० एन० बोस	२६९	"
सम्प्राप्ति-समीक्षा	श्री शर्मा एवं ओझा	३४७	नवम्बर' ७२
सूतिका परिचर्या और सूतिका रोग	श्रीमती सावित्री देवी भटनागर	३५८	"
स्वस्थ शरीर के निर्माण में आधुनिक पोषक तत्वों का योग	श्री रामशरण मिश्र	४२४	दिसम्बर' ७२
स्नेहन	श्री एम० महादेव शास्त्री	५६०	फरवरी' ७३
सम हिमालयन ट्रीज-२ (अं०)	श्री बापालाल वैद्य	५६२	"
सुश्रुत	श्री नागेन्द्र नारायण शर्मा	६२९	मार्च' ७३
सांप्रत समाज का बढ़ता जाता रोग- अम्लपित्त	श्री आदित्य भाई पटेल	६८६	अप्रैल' ७३
संस्कृत साहित्य में वर्णित दोहद वृक्ष कुरवक	वैद्य मायाराम उनियाल	७०८	"
स्वास्थ्य का दुश्मन-धूम्रपान	डा० जितेन्द्र सहाय	७७५	मई' ७२
'सचित्र आयुर्वेद' के संस्थापक और पोषक	वैद्य अम्बालाल जोशी	२८	जून' ७३
'सचित्र आयुर्वेद' के कल्पक: वैद्य रामनारायण शर्मा	वैद्य परमेश्वर धिल्डीयाल	३१	"
'सचित्र आयुर्वेद' के वर्तमान संरक्षक-पं० दुर्गा प्र० शर्मा	सम्पादक की कलम से	३४	"
'सचित्र आयुर्वेद' के दिवंगत वरेण्य हितैषी (१) स्व० यादव जी (२) पं० भागीरथ स्वामी (३) स्व० जगन्नाथ प्र० शुक्ल, (४) स्व० सत्यनारायण शास्त्री	सम्पादक की कलम से	३७	जून '७३
सचित्र आयुर्वेद और वैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन	वैद्य जयदेव भाई देसाई	य४	"
'सचित्र आयुर्वेद' के पिछले पृष्ठों से—(१) जीवक कथा (२) चीनी इलाज की कहानी—(३) आयुर्वेद के अध्ययन का स्वरूप क्या हो ?	१. स्व० महापंडित राहुल सांकृत्यायन २. श्री लीताओ ३. डा० सम्पूर्णानन्द	६७	"
साइकोलोजो एण्ड साइमिकट्री इन आयुर्वेद (अं०)	डा० के. आर. श्रीकान्तमूर्ति	४५	जुलाई '७३
संशोधन एवं पंचकर्म चिकित्सा का महत्व	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे	३३	जुलाई '७३
सिद्ध भैषज्यमंजूषा	श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	८५	अगस्त '७३
स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर संवर्धन का प्राकृतिक उपाय "व्यायाम"	श्री गोपाल दास अग्रवाल	१८३	सितम्बर '७३
सामयिक चर्चाएं	संकलित	२५१	अक्टूबर '७३
समन्वय का प्रश्न	सम्पादकीय	२६९	नवम्बर '७३
संहितोक्त करहाटक एवं पिण्डीतक	वैद्य मायाराम उनियाल	३०८	"
स्वास्थ्य विभाग और आयुर्वेद	सम्पादकीय	३२६	दिसम्बर '७३
'सचित्र आयुर्वेद' रजत जयन्ती विशेषांक सहयोगियों की दृष्टि में		३९३	जनवरी '७४
समन्वय की समस्या	कवि० एस० एन० बोस	४२४	"
सन्तुलित आहार	संकलित	४४२	"
सरकार साफगोई से काम ले	सम्पादकीय	५३१	मार्च' ७४

080498

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृ.सं.	अंक का नाम
स कषाय	डा० चौधरी रामचद्र प्रसाद 'चन्द्र'	६०७	अप्रैल' ७४
न दोष मीमांसा	कविराज श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति	६७१	मई' ७४
समीक्षा'	डा० त्र्यम्बकनाथ शर्मा एवं डा० श्री कृष्ण दीक्षित	९२	अगस्त' ७१
रोग क्यों होता है	डा० पी० एस० नारायण	४४५	दिसम्बर' ७१
मालय की घाटियों में उपलब्ध मांसीत्रय का नस्पतिक अध्ययन	वैद्य मायाराम उनियाल	६३६	अप्रैल' ७२
राबाद में श्री दुर्गा बाबू के सम्मान में गोष्ठी		८०९	जून' ७२
ारी आवश्यकताएं	श्री ईश्वरी प्रसाद शर्मा	२०१	सितम्बर' ७२
यभिव व हृदयम्	श्री अनन्तराम शर्मा	१८७	,,
डग ओवर सरमनी आफ फार्माकोपिया		५३	जनवरी' ७३
य रोग के कारण और निदान	संमलित	१०३	अगस्त' ७३
ी-निरन्तर हंसो	[illegible]	३९८	जनवर' ७४
कर्पूरादिवटी	वैद्य परमेश्वर घिल्डीयाल	६४५	अप्रैल' ७४
माचल प्रदेश और आयुर्वेद	डा० प्रेमनाथ चतुर्वेदी		जून' ७४
र चिकित्सा शल्य विज्ञान की एक अमूल्य उपलब्धि	डा० विद्यानन्द प्रसाद, डा० कविरत्न शर्मा, प्रो० प्रभाकर जनार्दन देशपाण्डे	१५०	सितम्बर' ७३
ज संधिशोथ: एक आधुनिक निदान			
र आयुर्वेदीय चिकित्सा	डा० खण्डे ओझा	७२१	मई' ७४

कठिन से कठिन
वात-रोगों की सफल
शास्त्रीय महौषधि
बैद्यनाथ
वातचिन्तामणि
रस वृहत

CC-0. ublic D ukul K

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
080498

आयुर्वेदीय
पदार्थ विज्ञान
प्रकाशक
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
कलकत्ता-६

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान के लिए जिस प्रकार भौतिक (Physics), रसायन (Chemistry) शास्त्र की जानकारी आवश्यक है उसी प्रकार 'भारतीय चिकित्सा शास्त्र' को पूर्ण रूप से समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वर्तमान समय में उपलब्ध संहिता-ग्रन्थों में पदार्थ विज्ञान का विषय विविध स्थलों पर विकीर्ण रूपमें प्राप्त होता है। उनका एकत्र संग्रह कर स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में पाठ्यग्रन्थ तैयार करने की प्रयोजनीयता सदा अनुभव की जाती रही है।

वैद्य श्री रणजित राय देसाई, आयुर्वेदालंकार ने 'आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान' ग्रन्थ लिखकर अत्यन्त समयोचित कार्य किया है। पदार्थ विज्ञान को यथावत् समझने के लिए इस ग्रन्थ का उपयोग अध्ययन और अध्यापन में अध्यापक, विद्यार्थी और वैद्यजन करें, ऐसा मेरा अनुरोध है।

—वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

वैद्यनाथ
प्रकाशन

कलकत्ता-६, पटना कार्यालय: वैद्यनाथभवनरोड, पटना-१

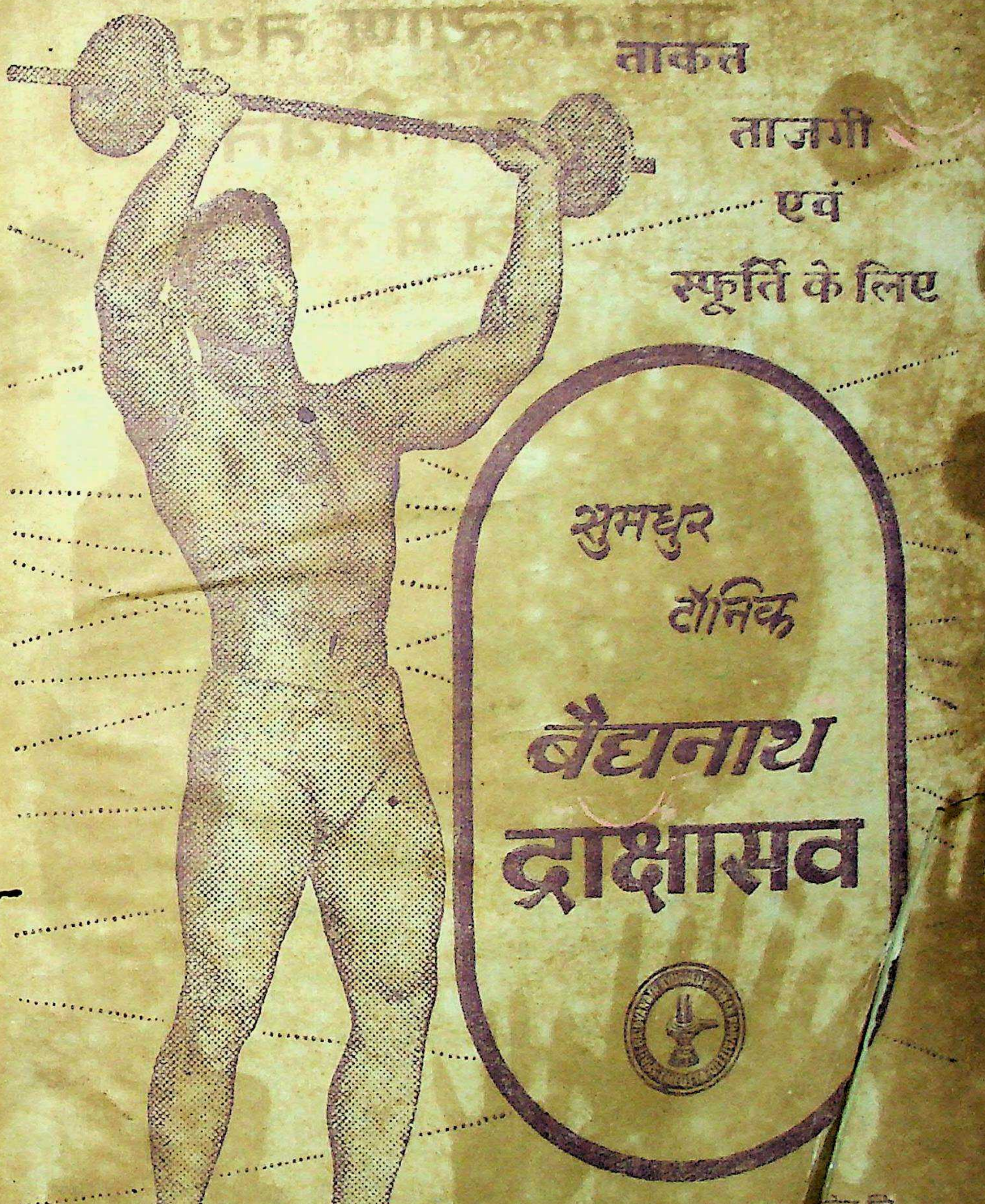

ताकत
ताजगी
एवं
स्फूर्ति के लिए

सुमधुर
टॉनिक
बैद्यनाथ
द्राक्षासव

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन [illegible]वेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर · नै[illegible]लाहाबाद)

सर्वाधिकारी श्री आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से श्री[illegible] शास्त्री द्वारा [illegible] नि. प्रेस, गोरखपुर
[illegible] में मुद्रित तथा उनके ही द्वारा बैद्यनाथ भवन [illegible] प्रकाशित

Compiled
1999-2000